प्रथम आवृत्तिः- प्रति- ५००+५०
राजसंस्करण-३०) रु०
राजाधिराज ,, -४०) रु०
वीर संवत २५००
विक्रम संवत २०३०

※ प्राप्तिस्थान ※

भारतीय-प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति
C/o रमणलाल लालचंद
१३५/१३७ झवेरी बाजार, बम्बई २

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
C/o शा समरथमल रायचंद
पिंडवाड़ा, (राज०)
स्टे० सिरोही रोड (W. R.)

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/o दिलीपकुमार रमणलाल,
सरस्वती मार्केट,
अहमदाबाद २.

•

मुद्रक
ज्ञानोदय प्रिंटिंग प्रेस, पिंडवाड़ा

Acharyadeva Shrimad-Vijaya-Premasurishwara-Karma-Sahitya-Granthmala
GRANTH NO. 10

BANDHA VIHANAM
UTTRA PAYADI
PAYES BANDHO

Second Part
[long with "**PREMAPRABHA**" commentary]

By
A GROUP OF DISCIPLES



Inspired and Guided by
His Holiness Acharya Shri madVijaya
PREMASURISHWARJI MAHARAJA
the leading authority of the day
on Karma philosophy.



Published by-
Bharatiya Prachya Tattva Prakasana Samiti, Pindwara

First Edition
Copies 500+50

DELUXE EDITION RS 30
SUPER DELUXE ,, RS. 40

A D 1974

AVAILABLE FROM :

1. BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHAN SAMITI
C/o Shah Ramanlal Lalchand,
135/137 Zaveri Bazzar
BOMBAY-2.
(INDIA)



2. BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHAN SAMITI.
C/o Shah Samarathmal. Raychandji,
PINDWARA, (Rajasthan)
St. Sirohi Road (W. R.)
(INDIA)



3 BHARATIYA PRACHYA TATTVA PRAKASHAN SAMITI
Shah Ramanlal Vajechand,
C/o Dilipkumar Ramanlal,
Maskati Market,
AHMEDABAD-2.
(INDIA)



Printed by ·
Gyanodaya Printing Press
PINDWARA (Raj.)
St Sirohi Road, (W.R.)
(INDIA)

— पदार्थसंग्रहकाराः —

कर्मशास्त्रधुरीण–गच्छाधिपा–ऽऽचार्यदेव–श्रीमद्-विजयप्रेमसूरीश्वर–विनीत-विनेय–प्रभावक-प्रवचनकारा-ऽऽचार्यदेवश्रीमद्विजयभुवनभानुसूरीश्वर-विनेयमुनिवर्यश्री-धर्मघोषविजयान्तिषदो विद्वद्वर्य-गीतार्थमुनिश्री–जयघोषविजयाः, आचार्यदेव-श्रीमद्विजयभुवनभानुसूरीश्वर-विनेया मुनिश्री धर्मानन्दविजयाः, गच्छाधिपतिविनीतविनेय-गीतार्थमूर्धन्य-आचार्यदेव श्रीमद्विजयहीरसूरीश्वरविनेय-मुनिराजश्री-ललितशेखरविजय-शिष्यरत्न-मुनिवर्यश्री-राजशेखरविजय-शिष्याणवो मुनिश्रीवीरशेखरविजयाश्च

★

मूलगाथाकारः —

प्राकृतविशारदा मुनिश्रीवीरशेखरविजयाः।

★

— टीकाकारः सम्पादकश्च :—

पूर्वार्धस्य

सिद्धान्तमहोदधि कर्मसाहित्यनिष्णात सच्चारित्रचूडामणि स्वर्गस्था-ऽऽचार्यदेव श्रीमद् विजय-प्रेमसूरीश्वर- विनेयरत्न-विद्वद्वर्य-प्रभावकप्रवचनकार-आचार्यदेवश्रीमद्विजयभुवन-भानुसूरीश्वरविनेयमुनिवर्य-धर्मघोषविजय-विनेय-मुनि–श्रीजयघोषविजयः

तथा

उत्तरार्धस्य

आचार्यदेव श्रीमद्विजयभुवनभानुसूरीश्वरविनेयमुनिवर्यश्री अमरेन्द्रविजयविनेय-मुनि श्रीमुनिचन्द्रविजयः

★

संशोधकाः :

सिद्धान्तविशारद-गच्छाधिपति-श्रीमद्-विजयप्रेमसूरीश्वरपट्टप्रभावका आगमप्रज्ञा-ऽऽचार्यदेव श्रीमद्-विजयजम्बूसूरीश्वराः पदार्थसंग्रहकारमुनिप्रवराश्च

संपादकीय

विश्व विचित्रताओं से भरपूर है। इन विचित्रताओं का कारण भिन्न भिन्न दर्शनकार ईश्वर, प्रकृति, अदृष्ट आदि भिन्न भिन्न बताते हैं, जब कि जैन दर्शनकार मुख्य कारण कर्म कहते हैं। इसी कर्म के भेद-प्रभेद, आत्मा के साथ इसके संयोग के कारण, विपाकानुभवावस्था में आत्मा पर इसकी गहरी असर, इसके समूल उच्छेद के उपाय आदि का गहन चिन्तन करने वाले वर्तमान युग में सिद्धान्त-महोदधि कर्म-साहित्यसूत्रधार परमाराध्यपाद पूज्य स्व० आचार्यदेव श्रीमद्विजय **प्रेमसूरीश्वरजी** महाराजा हुए। कर्म-विषयक शास्त्रों का जो गहन चिन्तन आपने किया वह **'बंधविधान'** के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थों में साकार हो रहा है।

आपने शिष्य-प्रशिष्य गण को अपने सान्निध्य में रखकर आगम, छेदग्रन्थ, कर्मग्रन्थ कम्मपयडि आदि ग्रन्थों का तलस्पर्शी अभ्यास कराया, तत्पश्चात् **'बंध विधान'** ग्रन्थों में ग्रथित करने योग्य पदार्थों की संकलनादि का कार्य भार सौंपा। आपकी कृपा और आपके ही सान्निध्य से अनेक वृत्तिकारों की वृत्तियों से समन्वित 'बंधविधान' ग्रन्थों के सर्जन-कार्य का करीबन तीन चौथाइ (पौना) हिस्सा आपकी जीवितावस्था में ही पूर्ण हुआ था जिसका सूक्ष्मता से सांगोपांग संशोधन स्वयं आपने अपने नाजुक स्वास्थ्य में भी किया था। शेष कार्य भी मुनिवृन्द द्वारा शीघ्र ही सम्पूर्ण हो रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के पदार्थों की संकलना के पश्चात् प्रथम विभाग का वृत्ति-लेखन के साथ संपादन कार्य भी मेरे जिम्मे रहा। इस कार्य को भी पूरा कर सका हूँ इसमें प्रधान कारण स्व० प० पू० आचार्यदेव की कृपा ही है आपने अपने सान्निध्य में रखकर मुझे ग्रहण-शिक्षा और आसेवन-शिक्षा प्रदानकर अनुगृहीत किया। पूज्य गुरुमह आचार्यदेव श्रीमद्विजय **भुवनभानुसूरीश्वरजी** महाराजा का भी असीम उपकार है, आपने दुस्तर भवसमुद्र में डूबते मुझे संयम-नौका प्रदान की। स्व० पू० पंन्यासप्रवर श्री **पद्मविजयजी** गणिवर्य की खूब कृपादृष्टि रही, आपने मेरी आसेवन-शिक्षा में पूरा २ हाथ बटाया। तथा पू० गुरुदेव श्री **धर्मघोषविजयजी** म० जो संसारी संबंध से मेरे पिता श्री हैं आपका भी अनहद उपकार है,

आपने स्वयं भागवती प्रव्रज्या स्वीकारी और साथ ही मुझे भी प्रदान करवाकर अनंत संसार के दारुण विपाकों से मेरी आत्मा की रक्षा कर पितृ--संज्ञा को सार्थक किया ।

इस ग्रन्थ का संशोधन-कार्य आगमप्रज्ञ पूज्य आचार्यदेव श्रीमद्विजयजम्बूसूरीश्वरजी महाराजा, विद्वान मुनिवर्यश्री धर्मानन्दविजयजी, मुनिश्री जितेन्द्रविजयजी, मुनिश्री जगच्चन्द्रविजयजी, मुनिश्री धीरशेखरविजयजी तथा महेसाणा जैन श्रेयस्कर मण्डल पाठशाला के प्रधानाध्यापक श्राद्धवर्यश्री पुखराजजी ने किया । इसी मुनि-वृन्द ने संपादन कार्य में भी पूर्ण सहयोग दिया । प्रेस-कॉपी कराने में पण्डितवर्य शान्तिलाल का सहयोग रहा । पण्डितवर्य वसंतलाल ने छपे हुए फार्म को देखकर प्रेसदोषादि के निमित्त रही अशुद्धियों का शुद्धि--पत्रक तय्यार किया । इसी तरह प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेकों ने साक्षात् या परम्परा से सहकार देकर श्रुत--भक्ति का लाभ लिया उन सब के प्रति मैं कृतज्ञता भाव को प्रदर्शित करता हूं ।

अन्त में पदार्थ, भाषा आदि की शुद्धि के लिये जागरूक रहने पर भी छाद्मस्थ्य दोष से क्षति रह गई हो तो मिथ्यादुष्कृत देता हूँ ।

मुनि जयघोषविजय



संपादकीय

प्रस्तुत ग्रन्थ के दूसरे विभाग की वृत्ति का आलेखन कार्य तथा संपादन कार्य जो मेरे हाथों हुआ इसका संपूर्ण श्रेयः स्व० प० पू० आचार्यदेव सिद्धान्त–महोदधि कर्म-साहित्य निष्णात परमाराध्यपाद श्रीमद्विजय **प्रेमसूरीश्वरजी** महाराजा को है, आपने ही मुझे इस कार्य के लिए उत्साहित किया और आपकी ही कृपा से इसे संपूर्ण कर सका । अधिक गौरव की बात तो यह है कि ग्रन्थ का संशोधन भी आपने किया । युवाजन प्रतिबोधक पूज्य गुरुमह आचार्यदेव श्रीमद्विजय **भुवनभानुसूरीश्वरजी** महाराजा का भी उपकार असीम है, आपके ज्ञान–संयम तप और सतत कार्य–शीलतादि आचारों से मूक प्रेरणा मिलती है । संयममूर्ति पूज्य गुरुदेव श्री **अमरेन्द्रविजयजी** महाराज की बडी कृपा है, आपमें संयम, निःस्पृहतादि गुणों के उत्कर्ष का दर्शन होता है । स्व० मुनिवर्यश्री **गुणभद्रविजयजी** गृहस्थ पर्याय से मेरे पिता श्री जिन्होंने मुझे बाल्यावस्था में ही भागवती प्रव्रज्या प्रदान करवाई और पश्चात् स्वयं समस्त परिवार के साथ प्रव्रजित हुए । प्रौढ -अवस्था में प्रव्रजित होने पर भी अदम्य उत्साह के साथ संस्कृत, प्राकृत और प्रकरण ग्रन्थों का अभ्यास अल्पकाल में ही करके आगम सूत्र और छेद सूत्रों के अध्ययन में पूरी रुचि रखते थे । तत्व-रुचि और श्री जिना-गमों के परिशीलन से भावितमति आपने कैंसर जैसी असह्य व्याधि को अपूर्व क्षमता से महा और अंतिमआराधनापूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए ।

ग्रन्थ के संशोधन कार्य में आगमप्रज्ञ पू० आचार्यदेव श्रीमद्विजय **जम्बुसूरीश्वरजी** महाराजा, पू० मुनिवर्यश्री **जयघोषविजयजी** म०, पू० मुनिवर्यश्री **धर्मानदविजयजी म.**, पू० मुनिवर्यश्री **जितेन्द्रविजयजी** म., मुनिवर्यश्री **वीरशेखरविजयजी** तथा महेसाणा जैन श्रेयस्कर मण्डल पाठशाला के प्रधानाध्यापक श्री पुखराजजी अमीचंदजी का भी हाथ रहा । उक्त मुनिवृन्द का तथा मुनिश्री कीर्तिचन्द्रविजयजी और मुनिश्री जिनचन्द्रविजयजी जो संसारी संबंध से मेरे लघु भ्राता हैं संपादन कार्य में इन सर्व का सहयोग भी चिरस्मरणीय है । महेसाणा पाठशाला के पण्डितवर्य श्री वसंतलाल ने प्रेसदोषादि के कारण रही हुई अशुद्धियों का शुद्धिपत्रक तय्यार किया । इसी तरह प्रस्तुत विभाग में अनेकोंने प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से सहयोग देकर श्रुत–भक्ति का लाभ लिया उन सब के प्रति मैं कृतज्ञ हूं ।

अन्त में पदार्थ की शुद्धि के लिए सावधानी रखने पर भी छाद्मस्थ्य दोष से क्षति रह गई हो तो मिथ्यादुष्कृत देता हूं ।

—मुनि मुनिचन्द्रविजय

सकलागमरहस्यवेदि-सूरिपुरन्दर-बहुश्रुतगीतार्थ-परमज्योतिर्विद्-परमगुरुदेव



परमपूज्य आचार्यदेवेश श्रीमद् विजयदानसूरीश्वरजी महाराज

प्रकाशकीय

आसन्न उपकारी चरमतीर्थपति श्री वर्धमानस्वामिरूप हिमवद्गिरि से निकली श्रुतगङ्गा जो करोडों जन्मों के पापमल से मलीन प्राणिगण को पवित्र करने के लिये प्रसिद्ध और विश्व की विविध आधि-व्याधियों से संतप्त शरीरधारिओं को शीतल करने में समर्थ है, उसका पवित्र प्रवाह को मुनि-वृषभों ने कुछ काल तक कण्ठस्थ पठन-पाठन पूर्वक प्रवाहित रखा। तत्पश्चात् दुःषमकाल के विषम-प्रभाव से बुद्धिबलादि की प्रतिक्षण हो रही हानि के कारण यह पवित्र और अत्युपयोगी प्रवाह भी हीन-क्षीण न हो जाय अतः पूर्वर्षिओं ने द्वादशांगी रूप श्रुतगङ्गा के ग्यारह अंग जो सूत्र-संख्या की अपेक्षा से सीमित थे उनको लेखन बद्ध किये। किन्तु बारहवां अंग दृष्टिवाद अति-गहन था तथा उसके अन्तर्गत चौदह पूर्व की सूत्र-संख्या तो इतनी विस्तृत थी कि उसे कण्ठस्थ रखना दुष्कर था, और परिमित साधनों से लेखन रूप शब्ददेह देना भी कठिन कार्य था। ऐसी स्थिति में महर्षिओं ने पदार्थों के संग्रहरूप प्रकरण ग्रन्थों की रचना का आरम्भ किया। फलतः वे प्रकरण ग्रन्थ आज भी जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा छिपाने के लिये स्रोतरूप सिद्ध हो रहे हैं।

इन प्रकरण रचना रूप पूर्व महर्षियों के महाप्रयत्नों के अन्तर्गत उक्तहेतु को लक्ष्य कर स्व० आचार्यदेव सिद्धान्तमहोदधि कर्म--साहित्यनिष्णात परम निःस्पृह १००८ श्रीमद्विजय-**प्रेमसूरीश्वरजी** महाराज ने भी कर्म, जो कि द्रव्यानुयोग का अतिगहन और सूक्ष्म विषय है, मन्दमति-जीवों की तो जिसमें तलस्पर्शी पहुंच ही नहीं होती, शायद इसी कारण कर्मविषयक अभ्यासिओं की खूब कमी है, यही बात ध्यान में रखकर इस विषय को सरल और विस्तृत रूप से संकलन कराने का शुभ संकल्प किया। महात्माओं के संकल्प कभी निष्फल नहीं होते हैं। फलतः स्वयं अपने शिष्य प्रशिष्यों को कर्म-विषयक तलस्पर्शी अभ्यास करवाया और उनको कर्म- साहित्य के विस्तृत संकलन विवेचन के लिए उत्साहित किये। अपूर्व ग्रन्थों का सर्जन हुआ और हो रहा है।

प० पू० स्व० आचार्यदेव की असीम कृपा से हम 'खवगसेढी' आदि ग्रन्थों के प्रकाशन में सफल रहे। प्रस्तुत ग्रन्थ "उत्तरपयडिपएसबंधो उत्तरार्ध" के प्रकाशन अवसर पर साफ-ल्य के हर्ष के साथ साथ पदार्थ संग्रहकार पूज्य मुनिराजश्री **जयघोष वि० म.**, पू० मु० श्री **धर्मानन्द वि० म०**, पू० मु० श्री **वीरशेखर वि० म०** मूलगाथाकार पू० मु०

श्री वीरशेखर वि० म० वृत्तिकार और संपादक पू० मु० श्री जयघोष वि० म० तथा पू० मु० श्री मुनिचन्द्र वि० म० आदि आप सर्व का हम खूब खूब हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

परमाराध्यपाद स्व० आचार्यदेव के गृहस्थ पर्याय से स्वजन पिन्डवाडा निवासी माडरीया कुटुंब के शा. हीराचंदजी गुलाबचंदजी, शा. भूरमलजी सरेमलजी, शा. मगुतमलजी किस्तुरचंदजी, शा. मनरूपचंदजी जवानमलजी, शा. वीरचंदजी पुनमचंदजी, शा. बाबुलाल चुनीलालजी ने सम्मिलित होकर रु. १००००) की विपुल धनराशि ग्रन्थ प्रकाशन में द्रव्य सहाय रूप से अर्पण करके अपूर्व श्रुतभक्ति का लाभ लिया तदर्थ इन सभी के इस सुकृत की हम बारबार अनुमोदन करते हैं। ज्ञानोदय-मुद्रणालय पिन्डवाडा के व्यवस्थापक ब्यावर निवासी फतेचंदजी जैन (हालावाले) और अन्य कर्मचारिओं की सेवा भी उल्लेखनीय है।

निकट भविष्य में और अधिक ग्रन्थों के प्रकाशन की आशा में—

भवदीय—

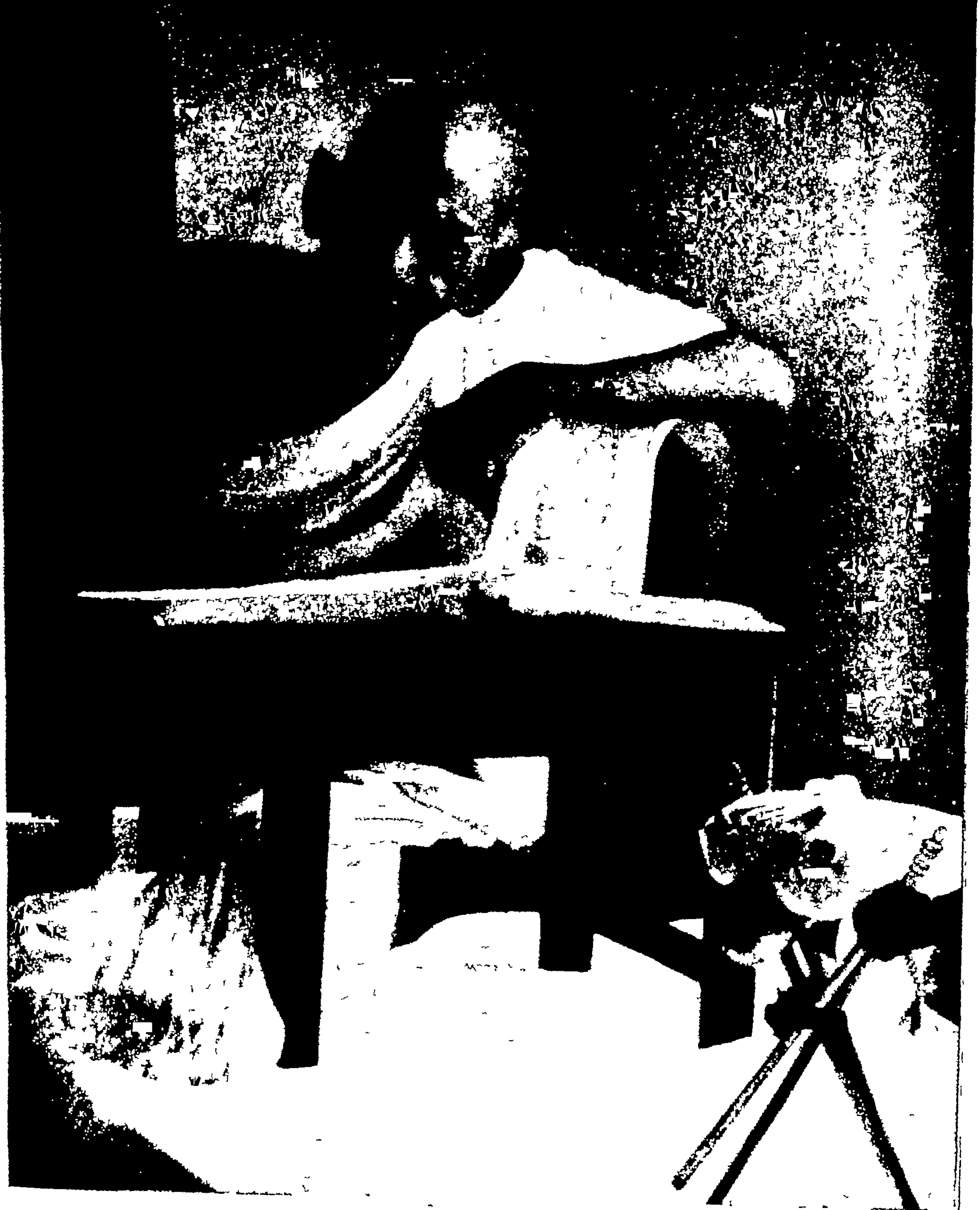
(I) पिंडवाडा
स्टे सिरोहीरोड (राजस्थान)
(II) १३५/१३७ जौहरी बाजार
बम्बई-२

शा. समरथमल रायचन्दजी (मंत्री)
शा. लालचन्द छगनलालजी (मंत्री)
भारतीय-प्राच्य-तत्त्व प्रकाशन समिति



કર્મસાહિત્ય ગ્રંથોના પ્રેરક, માર્ગદર્શક અને સંશોધક

સિદ્ધાન્તમહોદધિ સુવિશાલ-ગચ્છાધિપતિ કર્મશાસ્ત્રરહસ્યવેદી શાસનશિરછત્ર સ્વ. પરમપૂજ્ય



આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજયપ્રેમસૂરીશ્વરજી મહારાજા

सादर समर्पण

जिनकी तत्त्वदृष्टि और वात्सल्यपूर्ण प्रेरणा के कारण अज्ञान से पीड़ित और बालस्वभाव से चंचल हम जैसे में यत्किञ्चित् ज्ञान की स्फुरणा हुई तथा संयम में कुछ स्थिरता आई. जिन्होंने असीम कृपा कर श्रुतभक्ति का अवसर प्रदान किया उन्हीं युगपुरुष प्रगुरुमह सिद्धान्त महोदधि कर्मसाहित्य-निष्णात सूरिपुरन्दर परमाराध्यपाद स्व० पूज्य आचार्यदेव

श्रीमद्विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज

की पुण्य-स्मृति में...

卐

निर्मलरत्नत्रयलिप्सु

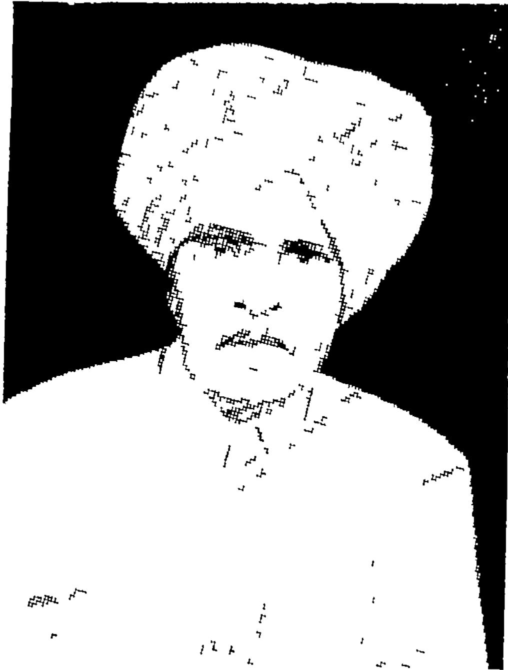
मुनि जयघोषविजय मुनि मुनिचन्द्रविजय



विषयानुक्रमः

[उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्ध-प्रथमाधिकारस्योत्तरार्धे]

આ ગ્રંથના પ્રકાશનમાં આર્થિક સહાય આપનારા મહાનુભાવો (સાદરીયા કુટુંબ)



શાહ ભબુતમલજી કસ્તુરજી સાદરીયા



શાહ ભુરમલજી સરેમલજી સાદરીયા



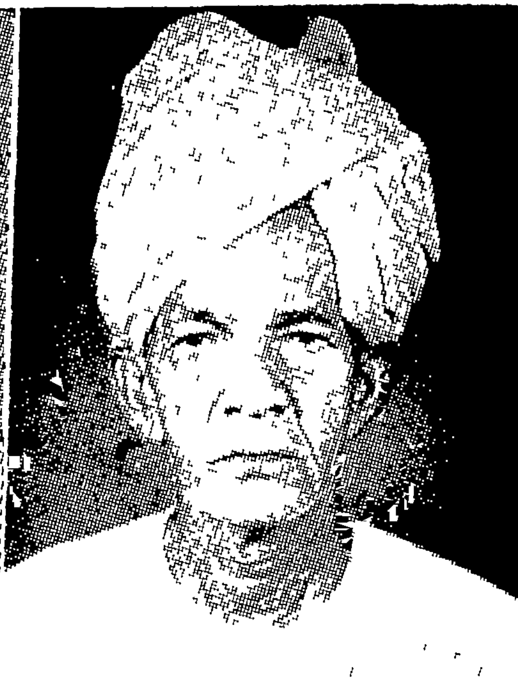
શાહ હીરાચંદજી ગુલાબચંદજી સાદરીયા

उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे भूयस्काराद्यधिकारत्रये विषयानुक्रमः

આ ગ્રંથના પ્રકાશનમાં આર્થિક સહાય આપનારા મહાનુભાવો (સાદરીયા કુટુંબ)



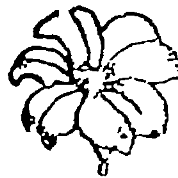
શાહ મનરૂપજી જવાનમલજી સાદરીયા



શાહ વીરચંદજી પુનમચંદજી સાદરીયા



શાહ ચુનિલાલજી મુલચંદજી સાદરીયા



॥ ॐ ह्रीँ अर्हं नमः ॥

॥ श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

सकलागमरहस्यवेदिपरमज्योतिर्विच्छ्रीमद्विजयदानसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः

प्रवचनकौशल्याधार-सुविहिताग्रणी-गच्छाधिपति-परमशासनप्रभावक-सिद्धान्तमहोदधि-कर्मशास्त्रनिष्णाता-ऽऽचार्यदेवश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरपादानां पुण्यतमनिश्रायां तदन्तेवासिवृन्दविनिर्मितं मुनिश्रीजयघोषविजय-धर्मानन्दविजय-वीरशेखरविजयसंगृहीतपदार्थकं मुनिश्रीवीरशेखरविजय-विरचितमूलगाथाकं प्रेमप्रभाटीकाविभूषित

बंधविहाणं

तत्र

मुनिश्रीजयघोषविजयविरचित

प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृतः

उत्तरपयडि–

पएसबंधो

(उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्ध उत्तरार्धः)

नाभेयादिजिनान् सर्वान् विघ्नव्रातविदारकान् ।
वाञ्छितदानकल्पद्रून् प्रणिदध्मे शिवाप्तये ॥१॥
सम्यग्बोधिप्रधानाङ्गं मोक्षावन्ध्यनिवन्धनम् ।
सर्वज्ञोक्तं श्रुतं वन्दे लोकालोकप्रकाशकम् ॥२॥
प्रेमाब्धिप्रेमसूर्यादीन् गुरून् मे स्मृतिमानये ।
जडोऽपि यत्प्रभावेण कार्येऽत्रोत्साहितोऽभवम् ॥३॥
प्रतिभा-वैभववृद्ध्यै यदुपास्त्यर्थं हि बुधा अपि यतन्ते ।
ध्यात्वा श्रीश्रुतदेवीं बन्धविधाने प्रदेशबन्धेऽत्र ॥४॥
अधिकारे प्रथमेऽहं पूर्वार्द्धे विवृतसन्निकर्षान्तो ।
सम्प्रत्युत्तरभागेऽर्धे परिमाणाद् विवरणमातेने ॥५॥ [गीतियुग्मम्]

॥ अथ अष्टमं भङ्गविचयद्वारम् ॥

अथ नानाजीवानधिकृत्य प्रदेशबन्धप्ररूपणां चिकीर्षुरादौ भङ्गविचयद्वारं निरूपयन्नाह—

भंगाट्ठ बंधगो च्चिअ पढमो बीओ अबंधगो तइओ ।
सव्वेवि बंधगा तह सव्वेवि अबंधगा चोत्थो ॥१॥
एगेण बंधगेणं एगोऽणेगे अबंधगा कमसो ।
णेगेहि बंधगेहिं सह एवं पंचमाइचऊ ॥२॥

(प्रे०) "भंगाट्ठ" इत्यादि, भङ्गा नाम विकल्पाः, भेदाः, तेषां समूहो भङ्गविचयः, तस्य निरूपणम्, प्रस्तुत उत्कृष्टाऽनुत्कृष्टजघन्याऽजघन्यभेदतः प्रदेशबन्धश्चतुर्धा, तेषां प्रत्येकं बन्धकाबन्धकाभ्यां भङ्गाश्चिन्तनीयाः । तद्यथा—उत्कृष्टाद्यन्यतमपदस्य बन्धकानामेकाऽनेकभेदेन द्वैविध्यमेवमबन्धकानामपि द्विविधत्वं ततोऽसंयोगजाश्चत्वारो भङ्गा भवन्ति, तत्र "एको बन्धकः" इति प्रथमः, "एकोऽबन्धकः" इति द्वितीयः, "सर्वे बन्धकाः" इति तृतीयः, "सर्वेऽबन्धकाः" इति चतुर्थः । अत्र द्विकसंयोगजा अपि चत्वारो भङ्गा भवन्ति, तद्यथा—"एको बन्धक एकश्चाऽबन्धकः" इति पञ्चमः, "एको बन्धकोऽनेके चाऽबन्धकाः" इति षष्ठः; "अनेके बन्धका एकश्चाबन्धकः" इति सप्तमः, "अनेके बन्धका अनेके चाऽबन्धकाः" इति अष्टमः । अत्र परस्परं शांकर्यस्य व्यवच्छेदार्थमेवकारप्रयोगः कर्तव्यः, स च मूलप्रकृतिप्रदेशबन्धसत्कप्रेमप्रभावृत्तौ प्रागेव दर्शितः, स च तत एवाऽवधारणीयः । अत्र तत्तत्प्रकृतीनामुत्कृष्टादिपदस्याबन्धकत्वेन प्रतिपन्नाऽनुत्कृष्टादिपदस्य ये बन्धकास्त एव ग्राह्याः, न पुनस्तत्तत्प्रकृतीनामबन्धका अपि ॥१-२॥ एवं चात्र संभवद्भङ्गानां स्वरूपं निरूप्य विंशत्युत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भङ्गानोघतो निरूपयन्नाह......

जेट्ठियरपएसाणं णिरयणरसुराउगाण अड भंगा ।
अट्ठमछट्ठचउत्था सेसाणं गुरुपएसस्स ॥३॥
अट्ठमसत्तमतइआ अगुरुपएसस्स........

(प्रे०) "जेट्ठियरे"त्यादि, नरकमनुष्यदेवायुषामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चाऽष्टावष्टौ भङ्गा भवन्ति । अत्र उत्कृष्टाद्यन्यतमस्य नानाजीवापेक्षया विवक्षित एकस्मिन्समय एक एव विकल्पो भवति, भिन्नभिन्नकालापेक्षया तु नानाविकल्पा अपि संभवन्ति, तथा च यत्र येषां विकल्पानां संभवः, तेषामत्र भङ्गविचयद्वारेण निरूपणं भवति । भङ्गविचयोपपत्तौ हि प्रथमतस्तावत् तत्तत्प्रकृतिबन्धकानां सान्तरत्वं निरन्तरत्वं वा विमर्षणीयम् । तद्यथा—ओघतो मार्गणासु

वा यत्र यद्यत्प्रकृतेः प्रकृतिबन्धका एव सान्तराः, तत्र तस्या तस्या ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चाद्यगाथाद्वयदर्शिता अष्टौ अष्टौ भङ्गा भवन्ति । अत्र छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिमार्गणयोर्यथासमयं विशेषो भावनीयः । यत्र पुनर्यासां प्रकृतीनां बन्धका निरन्तरास्तत्रोत्कृष्टप्रदेशबन्धयोग्या जीवा यदि असंख्येयलोकतो न्यूना भवन्ति तर्हि तत्रोत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः सान्तरा भवन्ति, तत्रैवानुत्कृष्टप्रदेशबन्धका निरन्तरा एव, अतस्तत्र तासां प्रकृतीनां चतुर्थः षष्ठोऽष्टमश्चेति त्रयो भङ्गा ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भवन्ति, तत्रैव तासामेव प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य तु तृतीयः सप्तमोऽष्टमश्चेति त्रयो भङ्गा भवन्ति । यत्र पुनर्यासां प्रकृतीनां बन्धका निरन्तरा ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवा असंख्यलोकप्रमाणास्तदधिका वा भवन्ति, तत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चाष्टम एव भङ्गो भवति ।

प्रस्तुतौघप्ररूपणायां नरकाद्यायुस्त्रयस्य नानाजीवापेक्षया सान्तरबन्धभावाद् नरकाद्यायुषां त्रयाणां द्विविधप्रदेशबन्धस्याष्टौ अष्टौ भङ्गा भवन्ति । तद्यथा यदोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य प्रथमो भङ्गस्तदानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य द्वितीयः, यदोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य द्वितीयस्तदानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य प्रथमः, एवं यदोत्कृष्टस्य तृतीयस्तदानुत्कृष्टस्य चतुर्थः, यदोत्कृष्टस्य चतुर्थस्तदानुत्कृष्टस्य तृतीयः, एवं यदोत्कृष्टस्य षष्ठस्तदानुत्कृष्टस्य सप्तमः, यदोत्कृष्टस्य सप्तमस्तदानुत्कृष्टस्य षष्ठः । पञ्चमभङ्गस्तूत्कृष्टानुत्कृष्टप्रदेशबन्धयोर्युगपद्भवति, एवमष्टमभङ्गोऽपि विज्ञेयः । शेषभावना तु सुगमा, प्रागनेकशो भावितत्वात् ।

अथ प्रकृतीनां सप्तदशोत्तरशतस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य भङ्गान् गाथायाः उत्तरार्धेन दर्शयति- "अट्ठमे"त्यादि, एतासां सप्तदशोत्तरशतप्रकृतीनां नानाजीवापेक्षया बन्धे निरन्तरं प्राप्यमाणत्वात् ; उत्कृष्टप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानां संख्येयानां पल्योपमाऽसंख्येयभागमितानां प्रतराऽसंख्येयभागमितानामेव वा लाभाच्चानन्तरदर्शितप्रकारेणोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चतुर्थः षष्ठोऽष्टम इति त्रयो भङ्गा भवन्ति । उक्तसप्तदशोत्तरशतस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य तृतीयस्सप्तमोऽष्टम इति त्रयो भङ्गा भवन्ति । तद्यथा—यदोत्कृष्टस्य चतुर्थस्तदानुत्कृष्टस्य तृतीयः, यदोत्कृष्टस्य षष्ठस्तदानुत्कृष्टस्य सप्तमः, अष्टमस्तु युगपदेवेति । तदेवं नरकमनुष्यदेवायुर्विहाय सप्तदशोत्तरशतस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य त्रयो भङ्गा द्वितीयगाथाया देशोनपूर्वार्धे दर्शिता इति ॥३॥

अथ सान्तरमार्गणासु आयुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां बन्धस्य सान्तरत्वात् तासु सर्वासामष्टानां भङ्गानामेव संभवात्तासु तथैव साधिकसार्धगाथया दर्शयति——

..............................हुन्ति भंगाऽट्ठ ।
जेट्ठियरपएसाणं सप्पाउग्गाउवज्जाणं ॥४॥

अपजणरविउव्वमिस्साहारदुगअवेअसुहुमुवसमेसु ।
सासणमिस्सेसु सयमुज्झा छेअपरिहारेसु ॥५॥

(प्रे०) "जेट्ठियरे"त्यादि, अपर्याप्तमनुष्यवैक्रियमिश्राहारकतन्मिश्रयोगापगतवेदसूक्ष्मसंपरायसंयमौपशमिकसम्यक्त्वसास्वादनसम्यग्मिथ्यात्वरूपासु नवसु मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याष्टौ भङ्गा भवन्ति । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्याप्यष्टावेव भङ्गा भवन्ति, भावना तु सुगमा, उक्तमार्गणास्वेकादिजीवस्यापि सद्भावात्तस्य चोत्कृष्टादि द्विविधप्रदेशबन्धस्याऽपि प्रायोग्यत्वात् । छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिमार्गणयोः पुनः स्वप्रायोग्याणां चतुःषष्टिप्रकृतीनां द्विविधप्रदेशबन्धस्य भङ्गाः प्राग्निरूपितमूलप्रकृतिप्रदेशबन्धग्रन्थोक्त्या सिद्धान्तानुसारेण यथासंभवं भावनीया इति ॥४-५॥

अथ यासु मार्गणास्वायुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धकानां निरन्तरलाभो ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्या जीवाश्चासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमिता अनन्ता वा, तासु मार्गणासु तासामायुर्वर्जानां केवलमष्टमस्यैव भङ्गस्य द्विविधप्रदेशबन्धे भावात्तासु तथैव दर्शयन्नाह

अट्ठमभंगोऽत्थि सयलएगिंदिणिगोअसेससुहमेसु ।
असमत्तबायरचउगपत्तेअवणेसु वणकाये ॥६॥

(प्रे०) "अट्ठमे"त्यादि, ओघ-सूक्ष्मौघ-पर्याप्तसूक्ष्मा-ऽपर्याप्तसूक्ष्म-बादरौघ-पर्याप्तबादरा-ऽपर्याप्तबादररूपाः सप्तैकेन्द्रियभेदाः, एवं सप्त साधारणवनस्पतिकायभेदाः, सूक्ष्मौघपर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मसंज्ञकास्त्रयः सूक्ष्मपृथ्वीकायभेदाः, एवं त्रयः सूक्ष्माप्कायभेदाः, एवं त्रयः सूक्ष्मतेजस्कायभेदाः, एवं त्रयस्सूक्ष्मवायुकायभेदाः, अपर्याप्तबादरपृथ्वीकायाप्कायतेजःकायवायुकायापर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायभेदाः, वनस्पतिकायौघश्चेति द्वात्रिंशद्मार्गणाभेदाः। एताभ्यः सप्तैकेन्द्रियमार्गणाभेदेषु सप्तसाधारणवनस्पतिकायभेदेषु वनस्पतिकायौघे चेति पञ्चदशमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकतया अनन्तजीवानां सर्वदैव लाभात्, तथानन्तानामसंख्येयबहुभागप्रमितानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य सदैव लाभात्केवलमष्टम एव भङ्ग उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य च प्राप्यते । शेषासु सप्तदशमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जप्रकृतीनां सप्तोत्तरशतस्य चतुरुत्तरशतस्य वा ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमिताः सदैव भवन्ति । एवं मार्गणागताऽसंख्येयबहुभागप्रमिता असंख्येयलोकाकाशमिता जीवाः सदैवाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका भवन्ति । अतः शेषासु सप्तदशमार्गणास्वपि बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चाष्टम एव भङ्गः प्राप्यत इति तथैव दर्शितः ॥६॥ अथ शेषासु सप्तविंशत्युत्तरशतमार्गणासूत्कृष्टप्रदेशबन्धस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य च भङ्गानतिदेशेन निरूपयन् तथा सप्तविंशत्युत्तरशतमार्गणाऽन्तर्गतास्वौदारिकमिश्र-

कार्मणानाहारकमार्गणासु देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां भङ्गेषु प्राप्तातिप्रसक्तिं परिहरन्नाह—

अणाह ओघव्व परमुरलमिस्से कम्मणे अणाहारे ।
जिणसुरविउव्वदुगाणं दुविहपएसाण अडभंगा ॥७॥

(प्रे०) "अणाह" इत्यादि उक्तेतराः सप्तविंशत्युत्तरशतमार्गणा ध्रुवा:=सर्वदैवाऽनेकजीवैस्सम्मन्विता: । एतास्वेव चतुर्विंशत्युत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जसर्वप्रकृतीनां प्रकृतिबन्धका: सदैव प्राप्यन्ते । औदारिकमिश्रकार्मणानाहारकरूपासु तिसृषु मार्गणासु देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां प्रकृतिबन्धका: सदैव न लभ्यन्ते. मार्गणात्रय आयुर्वर्जानां शेषबन्धप्रायोग्याणां समोत्तरशतस्य बन्धका: सदैव लभ्यन्ते । तथोक्तमार्गणास्वेव कासुचिद् मार्गणासु जीवा एवाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशतो न्यूना:, कासुचिन्मार्गणासु असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमितजीवानामनन्तजीवानां वा सद्भाव:, तथाऽपि तत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्या जीवा असंख्येयलोकाकाशप्रदेशतो न्यूना सन्ति । अतश्चतुर्विंशत्युत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां सर्वासां, मार्गणात्रये च देवद्विकादिपञ्चप्रकृतीर्मुक्त्वा शेषाणां सर्वासामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चतुर्थः षष्ठोऽष्टमश्चेति त्रयो भङ्गा भवन्ति । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य तृतीयसप्तमोऽष्टमश्चेति त्रयो भङ्गा भवन्ति । उक्तमार्गणास्थानां प्रकृतीनां बन्धकानां सदैव लाभे सति ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशतो न्यूनत्वात् । औदारिकमिश्रे-देवद्विकादिपञ्चानां बन्धका एकादय: संख्येयपर्यवसाना एव. नानाजीवापेक्षया निरन्तरबन्धकालस्त्वन्तर्मुहूर्तमेव. तदूर्ध्वं तु तद्बन्धकानां नैरन्तर्येणाऽलाभ: । एवमेव कार्मणानाहारकयोरपि केवलं नानाजीवापेक्षया निरन्तरबन्धकाल: संख्येयसमया एव, अत उक्तमार्गणात्रये देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चाष्टौ अष्टौ भङ्गा भवन्ति । भावना तु सुगमा प्राग्वत्कार्या च । शेषा: सप्तविंशत्यधिकशतमार्गणा: पुनरिमा:—अपर्याप्तमनुष्यवर्जपट्चत्वारिंशद्गतिभेदा:, नवविकलेन्द्रियत्रिपञ्चेन्द्रियभेदा:, पृथ्वीकायौघ-अप्कायौघ-तेजस्कायौघ-वायुकायौघ-बादरपृथ्वीकायौघ-बादराप्कायौघ-बादरतेजस्कायौघ-बादरवायुकायौघ-प्रत्येकवनस्पतिकायौघ-बादरपर्याप्तपृथ्वीकाय-बादरपर्याप्ताप्काय-बादरपर्याप्ततेजस्काय-बादरपर्याप्तवायुकाय-बादरपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकाय—त्रिव्रसकायरूपा: सप्तदशकायमार्गणाभेदा:, पञ्चमनोयोग-पञ्चवचोयोग-काययोगौघौदारिकौदारिकमिश्रवैक्रियरूपकाययोगमार्गणा:, एताश्च पञ्चदश, त्रयोवेदमार्गणाभेदा:, चत्वार: कषायमार्गणाभेदा: त्रयो मतिज्ञानादिमार्गणाभेदा, अज्ञानत्रयम् . संयमौघ-सामायिकसंयमदेशविरत्यविरतयथाख्यातसंयममार्गणाभेदा: चक्षुरादिदर्शनत्रयम् . लेश्याषट्कम् . भव्याभव्यौ, सम्यक्त्वौघक्षायिक-क्षायोपशमिक-मिथ्यात्वानि, संज्ञ्यसंज्ञिभेदौ, आहारकानाहारकौ चेति ॥७॥ एवमायुर्वर्जानामुत्कृष्टानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य भङ्गान् निरूप्य मार्गणास्वायुषां ज्येष्ठाज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भङ्गान्

दर्शयन्नाह

सव्वणिरयपंचिंदियतिरिक्खमाणुस्सदेवभेएसुं ।
सव्वेसुं विगलिंदियपणिंदितसकायभेएसुं ॥८॥
पज्जगपत्तेअवणे बायरपज्जपुहवाइचउगम्मि ।
पणमणवयविउवाहारदुगपुमित्थिचउणाणेसुं ॥९॥
विब्भगसंजमेसुं समइअछेअपरिहारदेसेसुं ।
णयणोहिदंसणेसुं पसत्थलेसासु सम्मत्ते ॥१०॥
खइअम्मि वेअगम्मि य सासणसण्णीसु हुन्ति अड भंगा ।
जेट्ठियरपएसाणं सप्पाउग्गाण आऊणं ॥११॥
सव्वेसुं एगिंदियणिगोअभेएसु सेससुहुमेसुं ।
असमत्तबायरचउगपत्तेअवणेसु वणकाये ॥१२॥
तिरियाउगस्स अट्ठमभंगोऽत्थि णराउगस्स अडभंगा ।
सेसासुं आऊणं सप्पाउग्गाण ओघव्व ॥१३॥

(प्रे०) "सव्वणिरये"त्यादि, गाथाषट्कम्, अत्र सप्तत्यधिकशतमार्गणाभ्यस्त्रिषष्ट्युत्तरशतमार्गणास्वेवायुर्बन्धसद्भावः, यासु सप्तमार्गणास्वायुर्बन्ध एव नास्ति, ताः पुनरिमाः-वैक्रियमिश्र-कार्मणकाययोगा-ऽपगतवेद-सूक्ष्मसंपरायसंयमो-पशमसम्यक्त्व-मिश्रसम्यक्त्वा-ऽनाहारकमार्गणाः । त्रिषष्ट्युत्तरशतमार्गणाभ्यो नरकौघाद्येकोत्तरशतमार्गणासु जीवानामसंख्येयलोकतो न्यूनत्वात् तासु मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां बन्धकाः कदाचित्प्राप्यन्ते, न पुनः सर्वदा, अत एवैतासु नरकौघाद्येकोत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चाष्टौ अष्टौ भङ्गा भवन्ति । ता एकोत्तरशतमार्गणा इमाः-अष्टौ नरकभेदाश्चत्वारस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियभेदाश्चत्वारो मनुष्यभेदास्त्रिंशद्देवमार्गणा नवविकलाक्षभेदास्त्रयस्त्रयः पञ्चेन्द्रियत्रसकायभेदाः पर्याप्तबादरपृथ्वीकायाप्कायतेजःकायवायुकायपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः पञ्चमनोयोगाः पञ्चवचनयोगा वैक्रियकाययोगाहारकाहारकमिश्रकाययोगाः पुरुषवेदस्त्रीवेदौ मतिज्ञानश्रुतज्ञाना-ऽवधिज्ञान-मनःपर्यवज्ञान-विभङ्गज्ञानमार्गणापञ्चकं संयमौघ-सामायिकच्छेदोपस्थापनीय-परिहारविशुद्धि-देशविरतिमार्गणापञ्चकं चक्षुर्दर्शनाऽवधिदर्शने तेजःपद्मशुक्ललेश्यात्रयं सम्यक्त्वौघ-क्षायिक-क्षायोपशमिक-सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणाचतुष्कं संज्ञिमार्गणा चेति ।

शेषा या द्वाषष्टिमार्गणास्ताभ्यो द्वात्रिंशद्मार्गणासु तिर्यगायुषो बन्धो ध्रुवः, यथासंभवं

मनुष्यायुषो बन्धः पुनरध्रुवः, एतासु तिर्यगायुषो बन्धकानां ध्रुवत्वे सति ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां जीवानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमितानामनन्तानां वा भावाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य च केवलमष्टम एव भङ्गो भवति। यथैतास्वेव मार्गणासु मतिज्ञानावरणादीनामष्टमो भङ्गो भवति; तथैव प्रस्तुतेऽपि भावनीयम्। मनुष्यायुषः पुनः सान्तरबन्धभावात् ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयलोकादिप्रमाणत्वेऽपि मनुष्याणां श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणत्वेन मनुष्यायुर्बन्धकानां श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणतोऽधिकानां कदाचिदपि लाभाऽभावाच्च बन्धप्रायोग्यासु मार्गणास्वष्टौ भङ्गा मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भवन्ति, तथैवाष्टौ भङ्गा अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य भवन्ति। देवनरकायुषोर्बन्धो नैतासु भवति, अतो न तन्निर्देशः। द्वात्रिंशद्मार्गणाः पुनरिमाः—सप्तैकेन्द्रियसप्तसाधारणवनस्पतिकाय-वनस्पतिकायौघभेदास्त्रयस्त्रयः सूक्ष्मपृथ्वीकायाऽप्कायतेजःकायवायुकायभेदाः अपर्याप्तबादरपृथ्वीकायाप्कायतेजःकायवायुकायाः, अपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायश्चेति।

अथ तिर्यगोघादित्रिंशद्मार्गणा अवशिष्टास्ताः पुनरिमाः-तिर्यग्गत्योघ-पृथ्वीकायौघ-बादरपृथ्वीकायौघा-ऽप्कायौघ-बादराऽप्कायौघ-तेजःकायौघ-बादरतेजःकायौघ-वायुकायौघ-बादरवायुकायौघ-प्रत्येकवनस्पतिकायौघ-काययोगौघौदारिकौदारिकमिश्र-नपुंसकवेद-कषायचतुष्क-मत्यज्ञान श्रुताज्ञाना-ऽसंयमा-ऽचक्षुर्दर्शन-कृष्णनीलकापोतलेश्या-भव्या-ऽभव्य-मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञ्या-ऽऽहारकमार्गणाः। एतासु त्रिंशन्मार्गणासु स्वप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठाऽज्येष्ठप्रदेशबन्धयोर्भङ्गा ओघवद् भवन्ति, तद्यथा—एतासु प्रत्येकं जीवा यथासंभवमसंख्येयलोकप्रमाणा अनन्ता वा, तथा पृथ्वीकायौघादिनवकायमार्गणा औदारिकमिश्रकाययोगश्चेति दशमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुषोरेव बन्धः, तत्र मनुष्यायुषो बन्धोऽध्रुवः, तिर्यगायुर्बन्धस्तु ध्रुवः, शेषासु विंशतिमार्गणासु चतुर्णामपि आयुषां बन्धः, तत्र त्रयाणामायुषां बन्धोऽध्रुवः, तिर्यगायुषो बन्धस्तु ध्रुवः। एतासु देवनरकायुषोर्बन्धप्रायोग्या जीवाः प्रतराऽसंख्येयभागप्रमिता एवेति तयोरोघवज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चाष्टौ अष्टौ भङ्गा भवन्ति। मनुष्यायुषो बन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयलोकप्रमाणानामनन्तानां वा भावेऽपि मनुष्याणां श्रेण्यसंख्येयभागमितत्वादेतासु प्रत्येकं श्रेण्यसंख्येयभागतोऽधिका जीवा मनुष्यायुर्बन्धकतया नैव प्राप्यन्ते, अत एव मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चौघवदष्टौ अष्टौ भङ्गा भवन्ति। तिर्यगायुषः पुनः पृथ्वीकायादिनवकायमार्गणासु असंख्येयलोकाकाशमिता शेषास्वनन्ता जीवा बन्धकास्सदैव लभ्यन्ते। एतासु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवा असंख्येयलोकतो न्यूना एव, अत एतासु त्रिंशन्मार्गणासु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य चतुर्थः षष्ठोऽष्टमश्चेति त्रयो भङ्गा ओघवद् भवन्ति, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य पुनस्तृतीयः सप्तमोऽष्टमश्चेति भङ्गत्रयमोघवद् भवति। भावना तु प्रागेव दर्शिता, यथासंभवमोघवदपि भावनीया चेति।

एवं मार्गणास्वायुषां ज्येष्ठाऽज्येष्ठप्रदेशबन्धयोर्भङ्गा निरूपिताः । इत्युत्कृष्टाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धयो र्भङ्गप्ररूपणा ॥८-१३॥

अथ जघन्यप्रदेशबन्धस्याजघन्यप्रदेशबन्धस्य च भङ्गान्निरूपयन्नोघतः प्राह

हस्सियरपएमाणं णिरयणरसुराउविउवछकाणं ।
तित्थाहारदुगाणं उक्कोसियरपएसव्व ॥१४॥
भंगोऽत्थि अट्ठमो च्चिअ सेसाणो ....।

(प्रे०) "हस्सियरे"त्यादि, नरकमनुष्यदेवायुषां वैक्रियषट्कस्य जिननाम्न आहारकद्विकस्य च य उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य भङ्गास्त एव जघन्यप्रदेशबन्धस्य विज्ञेयाः । येऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य भङ्गास्तेऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य विज्ञेयाः । अयं भावः—यथोत्कृष्टाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धभङ्गानां निर्णये तत्तत्प्रकृतीनां बन्धस्य नानाजीवाऽपेक्षया सान्तरत्वं निरन्तरत्वं च ज्ञातव्यं भवति, तथा जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोरपि, तच्च तद्वदेव । तद्यथा—नरकमनुष्यदेवायुषां प्रकृतिबन्धे साऽन्तरत्वं तथा शेषनवप्रकृतीनां निरन्तरत्वम् । अत्राऽऽयुस्त्रयस्य प्रकृतिबन्धसाऽन्तरत्वेन यथोत्कृष्टाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धयोरष्टावष्टौ भङ्गास्तथैव जघन्याऽजघन्यप्रदेशबन्धयोरपि अष्टौ अष्टौ भङ्गाः । तथा यथा प्रकृतिबन्धस्य नैरन्तर्येऽपि यासामुत्कृष्टप्रदेशबन्धयोग्यजीवा असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणतो न्यूनास्तासामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य सान्तरत्वेन चतुर्थष्षष्ठोऽष्टमश्चेति भङ्गत्रयं प्राप्यते; अत एवाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य तृतीयः सप्तमोऽष्टमश्चेति त्रयो भङ्गा भवन्ति, तथैव प्रकृतिबन्धस्य निरन्तरत्वे सति जघन्यप्रदेशबन्धकानामसंख्येयलोकतो न्यूनत्वे जघन्यप्रदेशबन्धस्य सान्तरत्वमतो जघन्यप्रदेशबन्धस्य चतुर्थषष्ठाऽष्टमभङ्गाः; अत एव तासामजघन्यप्रदेशबन्धस्य तृतीयसप्तमाऽष्टमभङ्गा भवन्ति । अतस्तादृशानां वैक्रियषट्काऽऽहारकद्विकजिननामरूपनवप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य चतुर्थषष्ठाऽष्टमरूपास्त्रयो भङ्गा उत्कृष्टप्रदेशबन्धवद् भवन्ति । अजघन्यप्रदेशबन्धस्य पुनस्तृतीयस्सप्तमोऽष्टमश्चेति भङ्गत्रयमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धवद् भवति, भावनापि तद्वद्यथासंभवं विधेया । प्रकृतिबन्धस्य निरन्तरसत्त्वे निगोदादिमार्गणासु यथा मतिज्ञानावरणादीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धप्रायोग्याणामनन्तानामसंख्येयलोकप्रमाणानां वा जीवानां भावाद् यो द्विविधप्रदेशबन्धस्याऽष्टम एव भङ्गो दर्शितः । तथैवौघतोऽष्टोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धकानामनन्तानां जीवानां भावाज्जघन्याऽजघन्यप्रदेशबन्धयोरपि केवलमष्टम एव भङ्गो भवति, अतस्तथैव दर्शितः । अत्र "सेसाणो" त्यनेनाऽष्टोत्तरशतप्रकृतयो ग्राह्याः, भावनादयस्तु सुगमा भावितप्रायाश्चेति ॥१४॥

अथ मार्गणास्वायुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्याणां जघन्याऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य भङ्गविचयं निरूपयिषुर्यासु मार्गणासु जीवानामसंख्येयलोकादिप्रमाणत्वेऽपि मतिज्ञानावरणादीनामष्टोत्तरशतस्य ज्येष्ठ-

प्रदेशबन्धप्रायोग्याणां जीवानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशतो न्यूनत्वेन तासु तासामष्टोत्तरशतस्य ज्येष्ठाऽज्येष्ठप्रदेशबन्धयोर्भङ्गत्रयस्य भावेऽपि, तास्वेव मार्गणासु तासामेव मतिज्ञानावरणादीनामष्टोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां जीवानामनन्तानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमितानां वा भावेन तासु मार्गणासु तासां जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धकानामष्टमभङ्गस्यैव सद्भावात् तासु द्वात्रिंशद्मार्गणासु तं निरूपयन् तथा शेषास्वष्टात्रिंशदुत्तरशतमार्गणास्वतिदेशेन भङ्गविचयं दर्शयन्नाह—

.....................(ओ)घव्व होइ भंगा ।
इयरपएसाणं सप्पाउग्गाउवज्जाणं ॥१५॥
तिरिपुहवाइचउगतव्बायरपत्तेअकायजोगेसु ।
उरलदुगकम्मणेसुं णपुंसगे चउकसायेसुं ॥१६॥
अण्णाणदुगे अजये अचक्खुअपसत्थलेसभवियेसुं ।
अभवियमिच्छत्तेसु असण्णिआहारगियरेसुं ॥१७॥
णवरि उरालियमीसे कम्मणजोगे तहा अणाहारे ।
सुरविउवदुगजिणाणं दुविहपएसाण अडभंगा ॥१८॥
सेसासु मग्गणासुं सप्पाउग्गाण आउवज्जाणं ।
जहकमसो विण्णेया उक्कोसेयरपएसव्व ॥१९॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, पृथ्वीकायौघ-बादरपृथ्वीकायौघा-ऽप्कायौघ-बादराप्कायौघ-प्रत्येकवनस्पतिकायौघरूपासु पञ्चसु मार्गणासु सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां द्विविधप्रदेशबन्धस्यौघवदष्टम एव भङ्गो भवति । तेजस्कायौघ-वायुकायौघ बादरतेजस्कायौघ-बादरवायुकायौघरूपासु चतसृषु चतुरुत्तरशतस्य द्विविधप्रदेशबन्धस्याऽष्टम एव भङ्गः । औदारिकमिश्रकार्मणानाहारकमार्गणात्रये देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां पञ्चानां जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोरऽष्टावष्टौ भङ्गा भवन्ति । तिसृषु नरकद्विकाऽऽहारकद्विकनाम्नोर्बन्धो न भवति, शेषाणां सप्तोत्तरशतस्य द्विविधप्रदेशबन्धस्याऽष्टम एव भङ्गः । काययोगौ-दारिककाययोग-नपुंसकवेद-चतुष्कषाया-ऽचक्षुर्दर्शन-भव्या-ऽऽहारकमार्गणासु दशसु सप्तोत्तरशतस्य द्विविधप्रदेशबन्धेऽष्टम एव भङ्गः, वैक्रियषट्काऽऽहारकद्विकजिननाम्नां जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोस्त्रयस्त्रयो भङ्गा ओघवद्विज्ञेयाः । असंयमाऽप्रशस्तलेश्यात्रयलक्षणचतसृषु मार्गणासु सप्तोत्तरशतस्य जघन्यस्याजघन्यस्य च प्रदेशबन्धस्याष्टम एव भङ्गः, वैक्रियषट्कजिननामरूपाणां सप्तानां द्विविधप्रदेशबन्धयोस्त्रयस्त्रयो भङ्गा विज्ञेयाः । तिर्यग्गत्यज्ञानद्वयाभव्यमिथ्यात्वासंज्ञिरूपासु षण्मार्गणासु सप्तोत्तरशतस्य द्विविधप्रदेशबन्धेऽष्टम एव भङ्गः,

वैक्रियषट्कस्य द्विविधप्रदेशबन्धस्य त्रयस्त्रयः भङ्गाः । इति द्वात्रिंशद्मार्गणासु भङ्गनिरूपणम् । शेषाणामष्टात्रिंशदुत्तरशतमार्गणासूत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य ये भङ्गास्त एव जघन्यप्रदेशबन्धस्य तथा अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य ये भङ्गास्त एवाजघन्यप्रदेशबन्धस्य विज्ञेयाः । अत्रासंख्येयलोकप्रमितजीवा अनन्तजीवा वा याश्चतुःषष्टिमार्गणास्ताभ्यो द्वात्रिंशन्मार्गणासु भङ्गविचयं दर्शितम् , शेषैकेन्द्रियौघादिद्वात्रिंशद्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुर्वर्जप्रकृतीनामुत्कृष्टानुत्कृष्टप्रदेशबन्धवदष्टमभङ्गस्यैव भावात् तद्वदतिदेशः । ओघवदतिदेशे तु तासां मार्गणानां नामग्रहणं कर्तव्यं स्यादतः समानत्वेऽपि भङ्गविचयस्य पृथगतिदेशो विहित इति । शेषासु षडुत्तरशतमार्गणासु पुनरुत्कृष्टाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धवदेव भङ्गा भवन्ति, ते च तत एव अवधार्याः सुगमाश्चेति ॥१५-१९॥

अथायुर्बन्धप्रायोग्यासु त्रिषष्टयुत्तरशतमार्गणासु जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोर्भङ्गान् निरूपयन्नाह—

जत्थत्थि पएसाणं जेट्ठियराणाउगाण अडभंगा ।
तत्थ जहण्णियराणं ते च्चिअ ओघव्व सेसासु ॥२०॥

(प्रे०) "जत्थत्थि" इत्यादि, यासु मार्गणासु येषामायुषां बन्धो नानाजीवापेक्षयाऽपि सान्तरस्तासु मार्गणासु तेषामायुषां यथा ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य चाष्टौ अष्टौ भङ्गा भवन्ति, तथैव जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोरपि भङ्गा अष्टावष्टौ विज्ञेयाः, प्रकृतिबन्धसाऽन्तरत्वे सति एकादिजीवानां बन्धकत्वेन लाभात् । अयं भावः—नरकमनुष्यदेवायुषां यासु यासु मार्गणासु बन्धस्तासु तासु तेषां जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोरष्टौ अष्टौ भङ्गा भवन्ति । तिर्यगायुषस्तु एकोत्तरशतमार्गणाभ्यो यासु यासु मार्गणासु तद्बन्धस्तासु तासु तद्बन्धस्य सान्तरत्वेनाष्टौ अष्टौ भङ्गा एवं द्विविधप्रदेशबन्धस्य ज्ञातव्याः । तिर्यगोघादिद्वाषष्टिमार्गणास्वसंख्येयलोकप्रमितास्तदधिका वा जीवा भवन्ति अतस्तासु तिर्यगायुषो बन्धो नानाजीवापेक्षया निरन्तरो भवति, तत्रापि एकेन्द्रियौघादिद्वात्रिंशद्मार्गणासु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽपि नैरन्तर्येण यथा ज्येष्ठाज्येष्ठप्रदेशबन्धयोरष्टम एव भङ्गस्तथैव तासु द्वात्रिंशद्मार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धस्यापि नैरन्तर्येण भावाज्जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोरष्टम एव भङ्गो भवति । तिर्यगोघादित्रिंशद्मार्गणासु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां जीवानामसंख्येयलोकतो न्यूनत्वात् ज्येष्ठाज्येष्ठप्रदेशबन्धयोस्त्रयस्त्रयो भङ्गा भवन्ति, किन्तु तास्वेव त्रिंशद्मार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां जीवानामसंख्येयलोकप्रमाणत्वात् तदधिकत्वाद् वा जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोरष्टम एव भङ्गः, अतस्तिर्यगोघादिद्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यगायुषो जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोरष्टमभङ्गस्यौघवद्भावादोघवदतिदिष्ट इति । अत्र "सेसासु" इत्यनेन तिर्यगोघाद्या द्वाषष्टिमार्गणा उपादेया इति ॥२०॥

॥ इति श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे प्रथमाधिकारे अष्टमं भङ्गविचयद्वारं समाप्तम् ॥

॥ अथ नवमं भागद्वारम् ॥

अथ क्रमप्राप्तं नवमं प्रदेशबन्धकानां भागद्वारं निरूपयन्नाह—

भागो असंखियइमो जेट्ठपएसस्स बंधगा णेया ।
णिरयणरसुराऊणं वेउव्वियछक्कतित्थाणं ॥२१॥
संखेज्जइमो भागो आहारदुगस्स बंधगा णेया ।
सेसाण अणंतंसो सव्वह इयरस्स सेसंसा ॥२२॥

(प्रे०) "भागो" इत्यादि, अत्र भागप्ररूपणायां तत्तत्प्रकृतीनां बन्धकानां कियद्भागप्रमिता जीवा ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति कियन्तश्च भागा अज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां भवन्तीत्यस्य प्ररूपणम्, एवं जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोरपि भागा अत्र कथयिष्यन्ते ।

यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयास्तत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धका वा संख्येयभागप्रमिता भवन्ति । संख्येयबहुभागमिता अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अजघन्यप्रदेशबन्धकाश्च भवन्ति । यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धका असंख्येयास्तत्र तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धका वा असंख्येयभागप्रमिता भवन्ति । असंख्येयबहुभागमितास्तु अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अजघन्यप्रदेशबन्धका वा भवन्ति । यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धका अनन्तास्तत्र तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्या जीवाः संख्येया असंख्येया वा तर्हि तत्र तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अनन्तभागप्रमिता भवन्ति, ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामेवाऽनन्तभागप्रमितत्वात् । शेषा अनन्तबहुभागा अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य विज्ञेयाः, जघन्यप्रदेशकाः कुत्राप्यनन्तभागप्रमिता नैव सन्ति । यदि तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्या जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्या वा जीवा अनन्तास्तर्हि तत्र तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धका वा असंख्येयभागप्रमाणा विज्ञेयाः । शेषा असंख्येयबहुभागप्रमाणा जीवा अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्याजघन्यप्रदेशबन्धस्य च बन्धका ज्ञातव्याः । उक्ताऽनुसारेण सर्वाऽपि भागप्ररूपणोन्नेयेति ।

तद्यथा-ओघत आहारकद्विकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयतमभागप्रमिताः, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमिताः, वैक्रियषट्कजिननामदेवमनुष्यनरकायुस्त्रयरूपाणां दशप्रकृतीनामसंख्येयभागप्रमिता ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः असंख्येयबहुभागप्रमिता अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका भवन्ति । आसां दशानां प्रकृतीनां प्रकृतिबन्धकानामसंख्येयत्वात् । शेषाणामष्टोत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अनन्ततमे भागे भवन्ति, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकास्त्वनन्तबहुभागप्रमाणास्सन्ति, प्रकृतिबन्धकानामानन्त्ये सत्यपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानां संख्येयत्वादसंख्येयत्वाद्वा ।

'**सव्वह इयरस्स सेसंसा**' इत्यनेनौघे मार्गणासु च बन्धप्रायोग्याणामायुःसहितानां सर्वासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य भागप्ररूपणा निरूपितेति ॥२१-२२॥

अथ मार्गणासु भागद्वारं निरूरूपयिषुर्यासु मार्गणासु जीवानामानन्त्यं ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां संख्येयत्वमसंख्येयत्वं वा, तासु मार्गणास्वायुर्वर्जानामोघवदतिदेशेन भागं निरूपयन् प्राप्ताऽतिप्रसक्तिं चाऽपवादेनोद्धरन्नाह—

सप्पाउग्गाणाउगवज्जाणोघव्व गुरुपएसस्स ।
तिरिकायुरलणपुंसगकसायदुअणाणअजएसुं ॥२३॥
अणयणतिअसुहलेसाभवियरमिच्छामणेसु आहारे ।
अत्थि णवरि संखंसो जिणरसुरलकिण्हणीलासुं ॥२४॥

(प्रे०) "**सप्पाउग्गाणे**"त्यादि, अत्र तिर्यग्गत्योघादिविंशतिमार्गणास्तासु सर्वासु सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अनन्ततमे भागे भवन्ति । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अनन्तबहुभागप्रमाणाः । वैक्रियषट्कस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः पुनरसंख्येयबहुभागप्रमाणा भवन्ति । तिर्यग्गत्योघादिदशमार्गणासु आहारकद्विकस्य बन्धाऽभावात्काययोगौघौदारिककाययोगनपुंसकवेदकषायचतुष्काऽचक्षुर्दर्शनभव्याहारकरूपासु दशमार्गणास्वाहारकद्विकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयतमैकभागप्रमाणाः, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकास्तु संख्येयबहुभागप्रमिता विज्ञेया इति । एतच्च सर्वमोघवदेव । जिननाम्नो बन्धस्तिर्यग्गत्योघाज्ञानद्वयाभव्यमिथ्यात्वासंज्ञिमार्गणाषट्के न भवति, शेषचतुर्दशमार्गणासु तस्य बन्धो भवति, तत्रौदारिकयोगे कृष्णानीललेश्ययोश्चेति मार्गणात्रये जिननाम्नो बन्धस्य केवलं मनुष्याणामेव भावादुक्तमार्गणात्रये जिननाम्नो बन्धकाः संख्येया भवन्ति, अतस्तत्र तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयतमे भागे वर्तन्ते, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकास्तु संख्येयबहुभागमिता विज्ञेयाः । शेषासु काययोगौघाद्येकादशमार्गणासु जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयतमभागप्रमिता भवन्ति, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः पुनरसंख्येयबहुभागप्रमितास्सन्ति । ननु ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य सार्वकालिकत्वाभावादनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः कदाचित्सर्वेऽपि भवन्तीति कथमुक्तं दर्शितमिति चेत् ? उच्यते, यदोत्कृष्टप्रदेशबन्धका उत्कृष्टपदगता भवन्ति तदपेक्षयैषा भागप्ररूपणाऽवसातव्या । अतो नोक्तप्रश्नावकाशः । एवं जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धकानां भागप्ररूपणायामपि भावनीयमिति ॥२३-२४॥

अथ मनुष्यौघे भागमाह

मणुए संखियभागो तित्थाहारदुगविउव्वछक्काणं ।
सेसाणं पयडीणं णेया भागो असंखयमो ॥२५॥

(प्रे०) "मणुए" इत्यादि, मनुष्यौघमार्गणायां वैक्रियषट्काहारकद्विकजिननाम्नां नवानां बन्धका एव संख्येयाः, गर्भजलब्धिपर्याप्तमनुष्याणामेव तद्बन्धकत्वात्तेषाञ्च संख्येयत्वात् । तथा च तद्बन्धकेभ्यः संख्येयभागप्रमाणा ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः, संख्येयबहुभागप्रमाणा अनुत्कृष्ट-प्रदेशबन्धकाः सन्ति । शेषाणां सप्तोत्तरशतस्यापर्याप्तकानामपि बन्धकत्वात् तेषां चासंख्येयत्वात् तासामसंख्येया बन्धका भवन्ति, तासामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तु पर्याप्तमनुष्या एव, ते च संख्येया एव, अतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयतमे भागे भवन्ति, अनुत्कृष्टस्य पुनरसंख्येय-बहुभागास्सन्ति ॥२५॥

अथ संख्यातराशिकमार्गणासु प्रस्तुतं निरूपयति-

संखंसो अत्थि दुणरसव्वत्थाहारदुगअवेएसु ।
मणणाणसंजमेसुं समइअछेअपरिहारसुहमेसुं ॥ २६ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) "संखंसो" इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धदेवाहारकतन्मिश्रापगत-वेदमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायसंज्ञकद्वादशमार्ग-णास्तासु जीवानां संख्येयत्वात् बन्धप्रायोग्यायुर्वर्जप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयभाग-प्रमाणाः, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमिता भवन्ति ॥२६॥

अथ पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणासु प्रस्तुतं निरूपयन्नाह-

दुपणिंदियतसपणमणवयपुमणाणतिगचक्खुओहीसुं ।
सुहलेसासुं सम्मे वेअगखइएसु मण्णिम्मि ॥२७॥
संखेज्जइमो भागो आहारदुगस्स बंधगा णेया ।
सेसाणं पयडीणं असंखभागो मुणेयव्वो ॥२८॥

(प्रे०) "दुपणिंदि" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसौघ-पर्याप्तत्रसाः, मनो-योगसामान्य-सत्या-ऽसत्य-सत्याऽसत्या-ऽसत्यामृषाभेदात्पञ्चमनोयोगभेदाः एवं पञ्चवचन-योगाः पुरुषवेदो मतिश्रुतावधिज्ञानानि चक्षुरवधिदर्शने तेजःपद्मशुक्ललेश्यात्रयं सम्यक्त्वौघ-क्षयोपशमसम्यक्त्वक्षायिकसम्यक्त्वसंज्ञिमार्गणाश्चेति सप्तविंशतिमार्गणाः । उक्तमार्गणा-स्वसंख्येया एव जीवाः, एतासु आहारकद्विकस्य बन्धकाः संख्येयाः, शेषाणामायुर्वर्जानां

मार्गणासु बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका असंख्येया भवन्ति । अत एतास्वाहारकद्विकस्य ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धकाः संख्येयैकभागप्रमाणाः, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणाः। शेषबन्ध-प्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयभागप्रमिताः, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्येयबहु-भागप्रमाणा विज्ञेयाः ॥२७-२८॥

अथौदारिकमिश्रकार्मणानाहारकमार्गणात्रये प्राह--

संखंसो अत्थि उरलमीसे कम्मे तहा अणाहारे ।
सुरविउवदुगजिणाणं अणंतभागोऽत्थि सेसाणं ॥२९॥

(प्रे०) "**संखंसो**" इत्यादि, औदारिकमिश्रकार्मणानाहारकमार्गणात्रये देवद्विकवैक्रिय-द्विकजिननाम्नां बन्धकाः संख्येयाः, अतस्तासां पञ्चानां मार्गणात्रयेऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयभागप्रमिताः, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणा भवन्ति । शेषाणामायुर्वर्जानां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धका अनन्ताः, ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्या जीवाः संख्याता असंख्याता वा, अतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अनन्तभागमात्राः, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अनन्तबहुभागप्रमिता भवन्ति ॥२९॥

अथ वैक्रियमिश्रदेशविरत्योः प्राह

वेउव्वमीसजोगे देसे तित्थयरणामकम्मस्स ।
संखंसो सेसाणं असंखभागो मुणेयव्वा ॥३०॥

(प्रे०) "वेउव्वे"त्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोगे देशविरतमार्गणायां च जीवा असंख्येया भवन्ति, तत्र जिननाम्नो बन्धकास्तु संख्येयाः, अतस्तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयतमे भागे भवन्ति । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकास्तु संख्येयबहुभागमितास्सन्ति । शेषाणामायुर्वर्जानां वैक्रियमिश्रे एकोत्तरशतस्य देशविरतौ पञ्चषष्टेश्च प्रकृतिबन्धका असंख्येयाः। अतस्तत्र तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयतमे भागे भवन्ति, अनुत्कृष्टस्यासंख्येयबहुभागप्रमाणा जीवा बन्धका विज्ञेयाः ॥३०॥

संप्रति स्त्रीवेदमार्गणायामुपशमसम्यक्त्वे शेषमार्गणासु चायुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठाज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भागान्निरूपयन्नाह--

तित्थाहारदुगाणं हवन्ति थीउवसमेसु संखंसो ।
सेसाण असंखंसो सेसासु अत्थि सव्वेसिं ॥३१॥

(प्रे०) "तित्थे"त्यादि, औपशमिकसम्यक्त्वे स्त्रीवेदे च जिननाम्न आहारकद्विकस्य च बन्धकाः केवलं पर्याप्तमनुष्या एवेति संख्येयाः, अतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयभागप्रमाणाः,

अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमिता भवन्ति । उक्तमार्गणाद्वये शेषबन्धप्रायोग्यायुर्वर्जप्रकृतीनां बन्धका असंख्येयाः, तत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयभागप्रमिताः, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकास्त्वसंख्येयबहुभागमिता भवन्ति । एवं देशोनगाथानवकेन सप्तषष्टिमार्गणासु आयुर्वर्जानां भागान्निरूप्य शेषासु त्र्युत्तरशते तान् दर्शयन्नाह **"असंखसो सेसासु अत्थि सव्वेसिं"** अत्र 'असंखंसो' इतिपदं देहलीदीपकन्यायेनोभयत्र सम्बन्धनीयम् । शेषमार्गणा नामत इमाः— अष्टौ नरकमार्गणाः, चत्वारः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणाः, अपर्याप्तमनुष्यः, सर्वार्थसिद्धवर्जैकोनत्रिंशद्देवमार्गणाः, सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः, नव विकलाक्षभेदाः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियः, सप्तपृथ्वीकायभेदाः, सप्ताऽप्कायभेदाः, सप्ततेजस्कायभेदाः, सप्तवायुकायभेदाः, एकादश वनस्पतिकायभेदाः, अपर्याप्तत्रसकायः, वैक्रियकाययोग-विभङ्गज्ञान-सम्यग्मिथ्यात्व-सास्वादनमार्गणाश्चेति । एतासु त्र्युत्तरशतमार्गणास्वायुर्वर्जबन्धप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, अनुत्कृष्टबन्धकाः पुनरसंख्येयबहुभागप्रमिता ज्ञातव्याः । एताभ्यः सप्तैकेन्द्रियमार्गणाः सप्तसाधारणवनस्पतिकायमार्गणाः वनस्पतिकायौघश्चेति या पञ्चदश मार्गणाः, तासु जीवा अनन्ताः, एवं ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्या अपि जीवा अनन्ताः, अत एतासु पञ्चदशसु ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयतमे भागे भवन्ति । शेषास्वष्टाशीतिमार्गणासु जीवा एवासंख्येयाः, अतस्तदसंख्येयतमभागो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामसंख्येयबहुभागास्त्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां दर्शिता इति ॥३१॥

अथ मार्गणास्वायुष्कर्मणो ज्येष्ठाज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां भागान्निरूपयन्नाह—

सव्वाउगाऊणं जेट्ठपएसस्स बंधगा णेया ।
ओघव्व तिरियकायुरलदुगणपुंसगकसायेसु ॥३२॥
अण्णाणदुगे अजए अचक्खुदंसणतिअसुहलेसासु ।
भवियेयरमिच्छेसु तहा असण्णिम्मि आहारे ॥३३॥

अथ यासु पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यायुषोरेव बन्धस्तासु नरकादिमार्गणासु प्राह--

णिरयपढमाइछणिरयदेवसहस्सारअंतविउवेसु ।
तिरियाउस्स असंखियभागो इयरस्स संखंसो ॥ ३४ ॥

(प्रे०) "**णिरये**"त्यादि, नरकौघादिविंशतिमार्गणाः, एतासु प्रत्येकमसंख्याता जीवाः, तिर्यगायुर्बन्धकाः सर्वास्वप्यसंख्येयाः, मनुष्यायुषो बन्धकाः पुनः संख्येयाः । अतस्तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयतमे भागे भवन्ति । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः पुनरसंख्येयबहुभागप्रमिताः । तथा मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयतमे भागे विज्ञेयाः । मनुष्यायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकास्तु संख्येयबहुभागगता इति । अत्र "इयरस्स" इत्यनेन मनुष्यायुष एव ग्रहणं ज्ञेयमिति ॥३४॥ अथ मनुष्यौघे प्राह

णिरयसुराऊण णरे संखंसो बंधगा असंखंसो ।
इयरेसिं .... ॥

(प्रे०) "**णिरये**"त्यादि, मनुष्यौघमार्गणायां जीवा असंख्येयाः, तथापि पर्याप्तमनुष्याणामेव देवनरकायुषोर्बन्धप्रायोग्यत्वात् देवनरकायुषोर्बन्धकाः संख्येयाः, तिर्यग्मनुष्यायुषोरपर्याप्तमनुष्याणामपि बन्धभावेन तयोर्बन्धका असंख्येयाः, तत एव मनुष्यौघे देवनरकायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयतमे भागे भवन्ति, संख्येयबहुभागाश्चाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः । तथा तिर्यग्मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयतमभागमात्राः, असंख्येयबहुभागमात्राः पुनरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका विज्ञेया इति । अथ पर्याप्तमनुष्यादिमार्गणासु प्राह--

.... संखंसो सप्पाउग्गाण आऊणं ॥३५॥
दुणराणताइगेसु आहारदुगमणपज्जवेसु तहा ।
संजमसामइएसु छेए परिहारसुक्कखइएसु ॥३६॥ (गीतिः)

(प्रे०) "**संखंसो**" इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धदेवाऽऽहारकतन्मिश्रकाययोगमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकछेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिरूपासु दशमार्गणासु जीवानामेव संख्येयत्वात् तत्तद्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयैकभागप्रमाणाः, संख्येयबहुभागप्रमाणास्त्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका भवन्ति । आनतादिसप्तदशदेवमार्गणासु शुक्ललेश्यायां क्षायिकसम्यक्त्वे च जीवानामसंख्येयत्वेऽपि आयुर्बन्धकजीवानामेव संख्येयत्वाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयभागमिताः, संख्येयबहुभागमितास्त्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका भवन्ति ॥३५-३६॥

अथ मतिज्ञानादिमार्गणासु प्राह

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मत्ते वेअगे णराउस्स ।
संखियभागो णेया असंखभागो सुराउस्स ॥३७॥
संखंसो तेउपउमसासाणेसु हविरे णराउस्स ।
इयराण असंखंसो सेसासु हुन्ति सव्वेसि ॥३८॥

(प्रे०) "णाणतिगे"त्यादि, मतिज्ञानादिमार्गणाषट्कम्, तासु षट्सु मनुष्यदेवायुषोरेव बन्धः, तत्र मनुष्यायुषो बन्धकाः संख्येयाः, देवायुषोबन्धका असंख्येयाः। अतो मतिज्ञानादिमार्गणाषट्के मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयतमे भागे भवन्ति, संख्येयबहुभागास्त्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका विज्ञेयाः । तथा देवायुषोऽसंख्येयतमभागमिता ज्येष्ठप्रदेशनिर्वर्तकाः, असंख्येयबहुभागास्त्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका भवन्ति ।

तेजःपद्मलेश्यासास्वादनमार्गणासु नरकवर्जाऽऽयुस्त्रयं बन्धयोग्यम्, मार्गणागतजीवास्त्वसंख्येयाः। एतासु मनुष्यायुषो बन्धकाः संख्येयाः, पर्याप्तमनुष्यप्रायोग्यस्यैव तद्बन्धकत्वात्, देवतिर्यगायुषोर्बन्धकास्त्वसंख्येयाः। अतो मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयतमे भागे भवन्ति । संख्येया भागास्तु अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका विज्ञेयाः। देवायुषस्तिर्यगायुषश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयतमे भागे भवन्ति, असंख्येयबह्वंशास्त्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां प्राप्यन्ते, भावना तु सुगमा ।

तदेवं सातिरेकसार्धषड्गाथाभिर्नरकौघाद्यशीतिमार्गणासु ज्येष्ठाऽज्येष्ठप्रदेशबन्धकभागान्निरूप्य शेषासु त्र्यशीतिमार्गणासु तान् 'सेसासु' इत्यादिना दर्शयति, तद्यथा– शेषासु सप्तमनरक-चतुस्तिर्यग्भेदाऽपर्याप्तमनुष्य-सप्तैकेन्द्रियभेदनवविकलाक्षभेदत्रिपञ्चेन्द्रियभेदाः एकोनचत्वारिंशत्पृथ्वीकायादिपञ्चकायमार्गणाभेदास्त्रयस्त्रसकायभेदाः पञ्चमनोयोगाः पञ्च वचनयोगाः स्त्रीपुरुषवेदौ विभङ्गज्ञानं देशविरतिश्चक्षुर्दर्शनं संज्ञिमार्गणा चेति त्र्यशीतिमार्गणासु तत्तद्मार्गणायां बन्धप्रायोग्यायुषां यावन्तो जीवा प्रकृतिबन्धका भवन्ति, तेषां जीवानामसंख्येयतमे भागे बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति, असंख्येयबहुभागप्रमाणास्त्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका भवन्ति । उक्तमार्गणाभ्यः सप्तैकेन्द्रियसप्तसाधारणवनस्पतिकायवनस्पतिकायौघलक्षणासु पञ्चदशमार्गणासु मनुष्यायुषो बन्धका एवासंख्येयास्तिर्यगायुषो बन्धका अनन्ताः, तथैव एतासु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अपि अनन्ता एव, ते चाऽऽयुर्बन्धकानामसंख्येयतमे भागे भवन्ति । शेषाष्टषष्टिमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां बन्धका एवासंख्येयाः; अतस्तदसंख्येयभागमात्रा एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति; योगस्थानानामसं-

ख्येयत्वेन ज्येष्ठयोगस्थाने असंख्येयभागमात्राणामेव जीवानां लाभात् ॥३७-३८॥

अथौघतो जघन्यप्रदेशबन्धकानामजघन्यप्रदेशबन्धकानां च भागान्निरूपयन्नाह

भागो संखेज्जइमो हस्समपएसस्स बंधगा णेया ।
आहारदुगस्स इयरपयडीण असंखभागोत्थि ॥३९॥

(प्रे०) "भागो"इत्यादि, यासां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयाः, तत्र बन्धप्रायोग्ययोगस्थानानामसंख्येयत्वेऽपि अन्यतमयोगस्थाने एकादिसंख्येयपर्यवसानानां जीवानामेव तद्बन्धकतया लाभः । ते च प्रकृतिबन्धकजीवानां संख्येयभागप्रमाणाः, एवं च सत्याहारकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धकास्तु संख्येयभागाः । शेषाणामष्टादशोत्तरशतप्रकृतीनां यावन्तो बन्धकास्तदसंख्येयैकभागगतजीवा जघन्यप्रदेशबन्धकाः; असंख्येयबहुभागप्रमिताश्चाजघन्यप्रदेशबन्धका भवन्ति । अयं भावः—वैक्रियाष्टकजिननाममनुष्यायुष्करूपाणां दशानामसंख्येया बन्धकाः, अतस्तदसंख्येयभागगतजीवानां यथासंभवं संख्येयानामसंख्येयानां वा जघन्यप्रदेशबन्धकत्वं शेषाणामसंख्येयबहुभागानामजघन्यप्रदेशबन्धकत्वं च । अष्टोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धका अनन्तास्तथैव तासां जघन्यप्रदेशबन्धकाः सूक्ष्मापर्याप्तका इति तेऽप्यनन्ताः सन्तोऽपि प्रकृतिबन्धकानामसंख्येयभागप्रमाणा एव अजघन्यप्रदेशबन्धकास्त्वसंख्येयबहुभागप्रमाणा इति ॥३९॥

अथ मार्गणास्वायुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां प्रस्तुतभागप्ररूपणां कुर्वन्नाह

तिमणुससव्वत्थविउवमीसाहारदुगथीअवेएसुं ।
मणणाणसंजमेसुं समइअछेअपरिहारेसुं ॥४०॥
देससुहमुवसमेसुं जेट्ठपएसव्व बंधगा णेया ।
सप्पाउग्गाणाउगवज्जाणोघव्व सेसासु ॥४१॥
णवरं संखियभागे देवविउवदुगजिणाणुरलमीसे ।
कम्माणाहारेसु य जिणसुरलकिण्हणीलासुं ॥४२॥

(प्रे०) "तिमणुसे"त्यादि, त्रिमनुष्यादिसप्तदशमार्गणाः, तासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धकभागवज्जघन्यप्रदेशबन्धकभागो विज्ञेयः । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकभागवदजघन्यप्रदेशबन्धकसत्कभागा विज्ञेयाः ।

तद्यथा—पर्याप्तमनुष्यादिद्वादशमार्गणासु संख्येयजीवानामेव भावेन जघन्यप्रदेशबन्धकाः

संख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणा भवन्ति ।

मनुष्यौघे वैक्रियषट्काहारकद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयभागप्रमाणा अजघन्यप्रदेशस्य संख्येयबहुभागप्रमाणाः । शेषाणां सप्तोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयबहुभागप्रमिताः ।

वैक्रियमिश्रे देशविरतौ च जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धकास्तु संख्येयबहुभागप्रमिता भवन्ति । शेषाणामायुर्वर्जबन्धप्रायोग्याणां वैक्रियमिश्र एकोत्तरशतस्य तथा देशविरतौ पञ्चषष्टेर्जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयतमे भागे भवन्ति, अजघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयबहुभागप्रमाणाः ।

स्त्रीवेदमार्गणायामुपशमसम्यक्त्वमार्गणायाञ्च जिननाम्न आहारकद्विकस्य च जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयतमभागप्रमिताः, अजघन्यप्रदेशबन्धकास्तु संख्येयबहुभागप्रमिता भवन्ति । शेषाणां स्त्रीवेदे त्रयोदशोत्तरशतस्य तथोपशमसम्यक्त्वे चतुस्सप्ततेर्जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयबहुभागास्सन्ति । शेषासु सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुर्वर्जसर्वप्रकृतीनां तथा वक्ष्यमाणमार्गणाषट्केऽपवादस्थानीयाः काश्चित्प्रकृतीर्विहाय शेषप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका अजघन्यप्रदेशनिर्वर्तकाश्चौघवद्भवन्ति । तद्यथा—आहारकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धका संख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणाः । शेषाणां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयभागप्रमाणास्तथा अजघन्यप्रदेशबन्धका असंख्यबहुभागप्रमाणा भवन्ति । अत्र त्रिपञ्चाशदुत्तरशतमार्गणासु संख्यातजीवराशिका मार्गणा एव न भवति; असंख्यातजीवराशिकासु मार्गणासु आहारकद्विकं विहायाऽऽयुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका असंख्याता एव भवन्ति, अतस्तदसंख्येयभागे जघन्यप्रदेशबन्धका भवन्ति । तथाऽनन्तजीवासु मार्गणास्वाहारकद्विकं विहाय वैक्रियषट्कजिननामभ्यां यासां बन्धस्तासां बन्धका असंख्याताः, अतस्तासां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयतमे भागे भवन्ति, अजघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयबहुभागप्रमाणाः । केवलमत्रायं विशेषः-औदारिकमिश्रे कार्मणाऽनाहारकमार्गणयोश्चेति तिसृषु मार्गणासु जीवानामानन्त्येऽपि देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयाः, अतो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणाः । तथा जीवानामानन्त्येऽपि औदारिककाययोगकृष्णलेश्यानीललेश्यामार्गणात्रये जिननाम्नो बन्धकाः संख्येयाः, अतस्तज्जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणा इति अपवादद्वयम् । एतास्वनन्तजीवासु षण्मार्गणासु सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धका अनन्तास्तथा तासु सर्वासु

जघन्यप्रदेशबन्धस्य साधारणवनस्पतिकायेषु भावेन जघन्यप्रदेशबन्धकानामानन्त्यात् प्रकृतिबन्धकानामसंख्येयतमे भागे जघन्यप्रदेशबन्धका भवन्ति । अजघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयबहुभागेषु विज्ञेया इति । अत्रासंख्येयजीवराशिका मार्गणाः पुनरिमाः अष्ट नरकभेदाश्चत्वारः, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्भेदाः, अपर्याप्तमनुष्यभेदः, सर्वार्थसिद्धवर्जैकोनत्रिंशद्देवभेदाः, नव विकलाक्षभेदाः, त्रयः पञ्चेन्द्रियाः, सप्त पृथ्वीकायाः, सप्ताऽप्कायाः, सप्त तेजस्कायाः, सप्त वायुकायाः, त्रयः प्रत्येकवनस्पतिकायाः, त्रयस्त्रसकायाः, पञ्च मनोयोगाः, पञ्च वचनयोगाः, वैक्रियकाययोगः, पुरुषवेदः, मतिज्ञान-श्रुतज्ञाना-ऽवधिज्ञान-विभङ्गज्ञानानि, चक्षुरवधिदर्शने, तेजःपद्मशुक्ललेश्या-सम्यक्त्वौघ-क्षयोपशम-क्षायिक-मिश्र-सास्वादनानि संज्ञिमार्गणा चेति पञ्चदशोत्तरशतमार्गणाः । अनन्तजीवराशिका मार्गणाः पुनरिमाः तिर्यग्गत्योघ-सप्तैकेन्द्रियभेदसप्तसाधारणवनस्पतिकायाः, वनस्पतिकायौघः, काययोगौदारिक-तन्मिश्र-कार्मणकाययोगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, मत्यज्ञान-श्रुताज्ञाने, असंयमा-ऽचक्षुर्दर्शने, अशुभलेश्यात्रयम्, भव्या-ऽभव्यौ मिथ्यात्वम्, असंज्ञ्याहारका-ऽनाहारकाश्चेत्यष्टात्रिंशदिति ॥४०-४१-४२॥

अथ मार्गणास्वायुःकर्मणो जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धकानां भागान्निरूपयन्नाह--

णिरयपढमाइछणिरयतिणरेसु सव्वदेवभेएसु　।
विउवे आहारदुगे णाणचउगसंजमेसु च　॥४३॥
सामाइअछेएसु परिहारविसुद्धिओहितेऊसु　।
पम्हसुइलसम्मखइअवेअगसासायणेसु च　॥४४॥
सप्पाउग्गाऊणं हस्सपएसस्स गुरुपएसव्व　।
होअन्ति बंधगा खलु अवसेसासु असंखंसो　॥४५॥

(प्रे०) "णिरये" त्यादि, अत्र नरकौघाद्येकोनषष्टिमार्गणाः, एताभ्यः कासुचिद्मार्गणासु जीवानामेव संख्येयत्वात्तासु बन्धप्रायोग्यान्यतमायुषो बन्धकानां संख्येयत्वेन तस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धकास्तु संख्येयबहुभागमिता भवन्ति, अतस्तत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धगतभागद्वारवदतिदेशः । संख्यातराशिका दशमार्गणाः पुनरेताः पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धाहारकतन्मिश्रमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धयः । असंख्यातजीवराशिकाभ्यो मार्गणाभ्यः कासुचिद्मार्गणास्वायुर्बन्धकजीवानां संख्येयत्वात् ज्येष्ठप्रदेशबन्धकवदतिदेशः, ता मार्गणाः पुनरिमाः—आनताद्यपराजितपर्यवसानाः सप्तदश देवभेदाः शुक्ललेश्या क्षायिकसम्यक्त्वञ्चेति । कासुचिद् मार्गणासु पर्याप्तमनुष्यप्रायोग्यस्यैव मनुष्यायुषो

बन्धकत्वात् मनुष्यायुषः संख्येया एव बन्धकाः अतस्तस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयबहुभागप्रमाणाः । एतासु बन्धप्रायोग्यशेषायुर्बन्धका असंख्येयास्तत्र तासां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयभागप्रमाणाः, अजघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयबहुभागमिताः । तद्यथा—नरकौघ—प्रथमादिषड्नरक—देवौघ—भवनपत्यादिसहस्रारपर्यन्तदेवभेद-वैक्रियकाययोगभेदेषु तिर्यगायुषो बन्धका असंख्येयाः, मनुष्यायुषो बन्धकाः संख्येयाः । मतिश्रुताऽवधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु षट्सु मनुष्यायुषो बन्धकाः संख्येयाः, देवायुषो बन्धका असंख्येयाः, तेजोलेश्यापद्मलेश्यासास्वादनमार्गणासु मनुष्यायुषो बन्धकाः संख्येयाः, देवतिर्यगायुषोर्बन्धका असंख्येयाः । तथा मनुष्यौघे देवनरकायुषोर्बन्धकाः संख्येयास्तिर्यग्मनुष्यायुषोरसंख्येया इति एतत्सर्वं ज्येष्ठप्रदेशबन्धकभागवद् भवतीति तद्वदतिदेशः कृत इति ।

"अवसेसासु असंखंसो" इति सुगमः । ननु अनन्तजीवराशिकाः षट्त्रिंशद्मार्गणा विहाय शेषासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धवद् भागप्ररूपणाया भावात् पृथ्व्यादिषु ज्येष्ठप्रदेशबन्धकवत्कस्मान्नातिदिष्टा इति चेत्, उच्यते-यासु बन्धप्रायोग्यायुष्ष्वेकाद्यायुषो बन्धकाः संख्येयास्तासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धभागप्ररूपणामतिदिश्य शेषासु चतुरुत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषामसंख्येयजीवानामनन्तजीवानां वा बन्धकत्वेऽपि तदसंख्येयभागमितानां जघन्यप्रदेशबन्धकत्वेन लाभादसंख्येयबहुभागमितानामजघन्यप्रदेशबन्धकत्वाच्च तथा निर्देशः । यद्वा प्ररूपणाया नानात्वं भवतीति न कश्चिद्दोष इति । शेषाश्चतुरुत्तरशतमार्गणा नामत इमाः सप्तमनरकपञ्चतिर्यग्भेदापर्याप्तमनुष्यैकोनविंशतीन्द्रियभेदद्विचत्वारिंशत्कायभेदपञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगौदारिकतन्मिश्रवेदत्रयकषायचतुष्काऽज्ञानत्रयदेशविरत्यसंयमचक्षुरचक्षुर्दर्शनाशुभलेश्यात्रिकभव्याभव्यमिथ्यात्वसंज्ञ्यसंज्ञ्याहारिमार्गणा इति ॥४३-४४-४५॥

॥ श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने
उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे प्रथमाधिकारे
नवमं भागद्वारं
समाप्तम् ॥



॥ अथ परिमाणद्वारम् ॥

गतं भागद्वारमथ दशमस्य परिमाणद्वारस्य निरूपणाया अवसरः, तत्रादावोघत उत्कृष्टानुत्कृष्टप्रदेशबन्धकपरिमाणं दर्शयन्नाह

जेट्ठपएसस्स सुहमअणियट्टी जाण सिं दुवीसाए ।
तित्थाहारदुगाणं संखाऽण्णेसिं असंखेज्जा ॥४६॥
आहारदुगस्स मुणह अगुरुपएसस्स संखियाऽसंखा ।
विउवट्ठगमणुसाउगजिणाण इयराण य अणंता ॥४७॥

(प्रे०) "जेट्ठपएसस्से"त्यादि, ओघतो ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चकसातवेदनीययशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्राणां सूक्ष्मसंपरायसंयतज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिकानां संज्वलनचतुष्कस्य पुरुषवेदस्य चेति पञ्चानामनिवृत्तिबादरसंपरायस्थज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिकानाञ्चेति द्वाविंशतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येया भवन्ति। पर्याप्तमनुष्यविशेषाणां विशिष्टगुणस्थानस्थसंयतानां शतपृथक्त्वमात्रत्वात्। एवमाहारकद्विकस्य जिननाम्नश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, केषाञ्चित्पर्याप्तमनुष्याणामेव तद्बन्धकत्वात्; अत्र जिननाम्नो देवनारकाणां बन्धभावेऽपि न तेषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वम्, तेषां मनुष्यप्रायोग्यत्रिंशद्बन्धस्थाननिर्वर्तकत्वात्। जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य तु देवप्रायोग्यैकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने वर्तमानस्य भावात्, स च मनुष्याणामेवेति।

अत्र परिमाणद्वारे उत्कृष्टपदगतबन्धकपरिमाणं दर्श्यते, अतः संख्येया उत्कृष्टपदे ज्येष्ठप्रदेशबन्धका उक्तपञ्चविंशतिप्रकृतीनां दर्शिताः, जघन्यत एकोऽपि। शेषाणां पञ्चनवतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येया भवन्ति, तत्र प्रत्याख्यानावरणाप्रत्याख्यानावरणहास्यषट्कनिद्राद्विकानां षोडशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्या जीवाः पल्योपमासंख्येयभागप्रमाणा भवन्ति, एतेभ्य उत्कृष्टपदे ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः पुनः पल्यासंख्येयभागप्रमाणा आवलिका-ऽसंख्येयभागप्रमाणा वा यथासंभवं भावनीयाः। मनुष्यायुषो बन्धकाः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिताः, तासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तदसंख्येयभागप्रमाणास्ते चाऽऽवलिका-ऽसंख्येयभागप्रमाणाः पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणाः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिता वा यथासंभवमागमाविरोधेन ज्ञातव्याः। शेषाणामष्टमहतः प्रतराऽसंख्येयभागगताऽसंख्यातसूचिश्रेणिप्रमाणा ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति, केवलं नरकायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामसंख्येयत्वेऽपि सूचिश्रेणितो न्यूना अधिका वा तन्न सम्यग् ज्ञायते। अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकास्तु प्रकृतिबन्धकतुल्याः संख्येयत्वादिना भवन्ति तथाऽपि स्पष्टार्थं दर्शयामः, तद्यथा—आहारकद्विकस्य संख्येयाः, संयतानामेव लाभात्। वैक्रियाष्टकजिननाममनुष्यायुष्कलक्ष-

णानां दशप्रकृतीनामसंख्याताः, तत्र जिननाम्नः पल्योपमासंख्येयभागप्रमाणाः, मनुष्यायुषः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणाः, वैक्रियाष्टकस्यासंख्येयसूचिश्रेणिप्रमाणास्तथा शेषाणामष्टोत्तरशतप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अनन्तजीवा भवन्ति ॥४६-४७॥

अथ मार्गणास्वायुर्वर्जानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां परिमाणं निरूपयन्नाह

ओघव्व बंधगा खलु जेट्ठपएसस्स आउवज्जाणं ।
दुपणिंदियतसपणमणवयकायोरालजोगेसुं ॥४८॥
लोहम्मि-तिणाणेसुं तिदरिसणेसु तह सुक्कभवियेसुं ।
सम्मत्तखाइएसुं उवसमसण्णीसु आहारे ॥४९॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, द्विपञ्चेन्द्रियद्वित्रसकायपञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगौदारिककाययोगलोभमतिश्रुताऽवधिज्ञानत्रिकचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनत्रिकशुक्ललेश्याभव्यसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वौपशमिकसम्यक्त्वसंज्ञ्याहारकमार्गणासु त्रिंशत्यायुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकपरिमाणमोघवद् विज्ञेयम् । तद्यथा—मतिश्रुतावधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघोपशमसम्यक्त्वेषु मतिज्ञानावरणादिपञ्चविंशतिप्रकृतीनां संख्येया एव बन्धकाः, शेषाणां द्वापञ्चाशत्प्रकृतीनामसंख्येयाः । एवं क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायाम् , नवरं युगलिकेषु ज्येष्ठयोगस्थानस्यानङ्गीकारे तु देवप्रायोग्याणां यशःकीर्तिवर्जानां देवद्विकादित्रिंशन्नामप्रकृतीनां बन्धकाः संख्येया एव वाच्याः शुक्ललेश्यामार्गणायां ज्ञानावरणादिपञ्चविंशतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, शेषाणां सप्तसप्ततेरायुर्वर्जबन्धप्रायोग्याणामसंख्येया ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति । शेषासु द्वाविंशतिमार्गणासु ज्ञानावरणादिपञ्चविंशतेः संख्येया ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः, शेषाणामेकनवतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्त्वसंख्याताः । शेषा द्वाविंशतिमार्गणा इमाः—द्विपञ्चेन्द्रियद्वित्रसकायपञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगकाययोगौदारिकलोभचक्षुरचक्षुर्दर्शनभव्यसंज्ञ्याहारकमार्गणाः । अत्रासंख्येयत्वं प्रत्येकं मार्गणासु तत्तत्प्रकृतीनां यथासम्भवं विज्ञेयम् , नत्वनन्तरगाथाद्वयवृत्तिदर्शितप्रमाणमिति ॥४८-४९॥ उक्तद्विपञ्चेन्द्रियादिमार्गणान्तर्गतक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां प्राप्तामतिप्रसक्तिमुद्धरन्नाह

णवर खइए संखा तइअकसायचउगस्स बोद्धव्वा ।
संखा असंखिया वा तीसाए सुरदुगाईणं ॥५०॥

(प्रे०) "णवर"इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्याता एव भवन्ति, ओघे तु देशविरततिरश्चामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वेन

तत्परिमाणस्यासंख्येयत्वेऽपि प्रस्तुते देशविरततिरश्चामसम्भवाद् , देशविरतमनुष्या एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धकतया प्राप्यन्ते, अतस्ते प्रस्तुतक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां संख्याता एव भवन्तीत्योघवदिति कृतेऽतिदेशेऽपवादः। तथा येषां मते देवद्विकादिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः केवलं मनुष्या एव, तेषां मते तासां बन्धकपरिमाणं संख्येयं विज्ञेयम् । येषां मते तु देवद्विकादिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तिर्यञ्चोऽपि भवन्ति तेषां मते तु युगलिकतिरश्चां संख्यातत्वे संख्येयास्तद्बन्धका विज्ञेयाः, युगलिकतिरश्चामसंख्येयत्वे पुनरसंख्येया इत्यत्र नानामतसंभवात् **"संखा असखिया वा"** इत्यत्र दर्शितो वाकारो मतान्तरसूचक इति । देवद्विकादित्रिंशत्प्रकृतयः पुनरिमाः-देवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकतैजसकार्मणशरीरसमचतुरस्रसुखगतिवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणत्रसनवकाऽस्थिराशुभाऽयशःकीर्तिनामानीति ॥५०॥

अथ संख्यातजीवराशिकमार्गणासु मनुष्यौघे च प्राह--

संखा सव्वाण तिणरसव्वत्थाहारदुगअवेएसु ।
मणणाणसंजमेसुं समइअछेअपरिहारसुहमेसुं ॥५१॥(गीतिः)

(प्रे०) **"सखा"** इत्यादि, पर्याप्तमनुष्यादिद्वादशमार्गणास्तासु जीवानामेव संख्येयत्वात् ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्याता एव प्राप्यन्ते, मनुष्यौघे तु जीवानामसंख्येयत्वेऽपि तत्र पर्याप्तमनुष्याणामेव सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वात् तेषाञ्च संख्येयत्वात् षोडशोत्तरशतस्य संख्याता एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति ॥५१॥

अथानन्तजीवासु यासु आयुर्वर्जबन्धप्रायोग्याणां सर्वासामनन्ता एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तासु तान् दर्शयन्नाह

विण्णेया सव्वेसिं सप्पाउग्गाण बंधगाऽणंता ।
सव्वेसुं एगिंदियणिगोअभेएसु वणकाये ॥५२॥

(प्रे०) **"विण्णेया"** इत्यादि, यासु मार्गणासु साधारणवनस्पतिकायिकानामन्तर्भावस्तेषाञ्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वं स्यात् तासु मार्गणास्वायुर्वर्जबन्धप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां बन्धका अनन्ताः प्राप्यन्ते, ताश्च मार्गणाः–सप्तैकेन्द्रियभेदाः सप्तसाधारणवनस्पतिकायिका वनस्पतिकायौघश्चेति पञ्चदश । उक्ताऽन्यासु त्रयोविंशतिमार्गणासु साधारणवनस्पतिकायिकानामन्तर्भावेऽपि न तासु तेषां कस्या अपि प्रकृतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो लभ्यत इति ता नात्र संगृहीता इति ॥५२॥

अथौदारिकमिश्रे प्रस्तुतपरिमाणं निरूपयन्नाह

जाणन्थि उरलमीसे सम्मत्ती ताण पंचतीसाए ।
संखेज्जा विण्णेया सेसाण असंखिया हुंते ॥५३॥

(प्रे०) "जाणे"त्यादि औदारिकमिश्रकाययोगे सर्वासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संज्ञिन एव भवति, तत्राऽपि दर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायभयजुगुप्सापुरुषवेदहास्यरतिशोकारतीनां पञ्चविंशतेस्तथा देवद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसुखगतिसुभगत्रिकजिननाम्नां दशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येया एव भवन्ति; प्रस्तुतमार्गणागतानां सम्यग्दृष्टीनां संख्येयत्वात् । ते च लब्धिपर्याप्तमनुष्या मनुष्येभ्य उद्वृत्तास्तिर्यञ्चो वेति । शेषाणां शतमसतः प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयाः, असंख्येयसूचिश्रेणिप्रमाणाः, संज्ञिलब्धिपर्याप्ततिरश्चामपि तत्स्वामित्वात् ॥५३॥

अथ वैक्रियमिश्रादिमार्गणासु प्राह

वेउव्वमीसजोगे देसअसंजमतिअसुहलेसासु ।
णेया जिणस्स संखा असंखिया हुंति सेसाणं ॥५४॥

(प्रे०) "वेउव्वे"त्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोगे देशविरत्यसंयमयोरशुभलेश्यात्रये चेति षण्मार्गणासु जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्याता एव भवन्ति, अत्र वैक्रियमिश्रादिमार्गणाचतुष्के तु प्रकृतिबन्धकानां संख्येयत्वात्संख्येया एव बन्धका विज्ञेयाः । असंयमे देवनारकाणां तथा कापोतलेश्यायां नारकाणां जिननाम्नो बन्धकत्वेऽपि तेषां देवानां नारकाणां वा मनुष्यप्रायोग्याणां त्रिंशत एव बन्धकत्वात् न तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वम् , अत उक्तमार्गणाद्वये मनुष्याणामेव देवप्रायोग्याणामेकोनत्रिंशतो बन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्संख्येया एव बन्धका विज्ञेया इति । उक्तमार्गणासु शेषबन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जप्रकृतीनामसंख्येया बन्धका भवन्ति, असंयमेऽशुभलेश्यात्रये च संज्ञिपर्याप्तानामेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वादसंख्येयत्वम् , शेषमार्गणाद्वये त्वसंख्येयानां जीवानामेव भावात् । अत्र वैक्रियमिश्रे दर्शनावरणषट्कादिपञ्चविंशतिप्रकृतीनां सम्यग्दृष्टीनामेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभेनाऽसंख्यातानां सम्यग्दृष्टितिर्यग्भ्यो देवेषूत्पन्नानां वैक्रियमिश्रकाययोगे वर्तमानसम्यग्दृष्टिदेवानां तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभात् तदपेक्षया तासां प्रस्तुतपरिमाणं विज्ञेयमिति । उक्तशेषाः प्रकृतयः पुनर्वैक्रियमिश्रे एकोत्तरशतम् , देशविरतौ पञ्चषष्टिः, असंयममार्गणायामशुभलेश्यात्रये च त्रयोदशोत्तरशतमिति ॥५४॥

अथ कार्मणाऽनाहारकमार्गणाद्वये बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां परिमाणं दर्शयन्नाह—

सुरविउवदुगसुहागिइखगइजिणसुहगतिगाण संखेज्जा ।
कम्माणाहारेसुं हो अन्ति असंखिया ऽण्णेसिं ॥५५॥

(प्रे०) "सुरे"त्यादि, कार्मणकाययोगेऽनाहारकमार्गणायाञ्च वर्तमानाः सम्यग्दृष्टयो देवेष्वसंख्याता भवन्ति, शेषगतित्रये प्रस्तुतमार्गणाद्वये वर्तमानाः सम्यग्दृष्टयस्तु संख्याता एव भवन्ति, यतः सम्यग्दृष्टिदेवनारकाणां पर्याप्तमनुष्येष्वेवोत्पादात्तेषां संख्येयत्वाच्च मनुष्येषूक्तमार्गणाद्वये संख्यातानामेव लाभः तिर्यग्नैरयिकेषु तु पर्याप्तमनुष्येभ्य एव कृतकरणवेदकसम्यग्दृष्टिः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वा उत्पद्यतेऽतस्तिर्यग्नरकगत्योरुक्तमार्गणाद्वये सम्यग्दृष्टीनां संख्येयत्वम् । अतो देवद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसुखगतिसुभगत्रिकजिननामरूपाणां दशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका उक्तमार्गणाद्वये मनुष्याः, तथा जिननाम विहाय नवानां तिर्यञ्चोऽपि, न पुनर्देवा नारका वा । आसां ज्येष्ठप्रदेशस्य देवप्रायोग्यबन्धे सत्येव बन्धभावात् प्रस्तुतमार्गणायां देवप्रायोग्यबन्धकास्तिर्यग्मनुष्याः संख्येया एवाऽत उक्तदशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्याता एवेति । अत्रैव कार्मणाऽनाहारकमार्गणाद्वये उक्तशेषाणां द्व्युत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येया भवन्ति, संज्ञिनामेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् । अत्र केवलं सम्यग्दृष्टीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां दर्शनावरणषट्कादिपञ्चत्रिंशतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामसंख्येयत्वं देवानपेक्ष्यैव विज्ञेयमिति । शेषगतित्रयगतजीवापेक्षया तु संख्याता एव तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति ॥५५॥

अथ वेदमार्गणात्रये क्रोधमानमायामार्गणासु च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकपरिमाणं निरूपयन्नाह—

चउवीआवरणपुरिससंजलणाहारदुगजिणजसाणं ।
वेअकमायतिगेसुं संखाऽण्णेसिं असंखेज्जा ॥५६॥

(प्रे०) "चउ"इत्यादि, पुरुषस्त्रीनपुंसकवेदमार्गणासु क्रोधमानमायाकषायमार्गणात्रये च नवगुणस्थानकानि भवन्ति । तासु षट्स्वपि मार्गणासु सञ्ज्वलनचतुष्कपुरुषवेदलक्षणानां पञ्चप्रकृतीनां नवमगुणस्थान एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वं भवति । दर्शनावरणचतुष्कस्याऽष्टमगुणस्थानस्य द्वितीयभागादारभ्य मार्गणाचरमसमयपर्यन्तं ज्येष्ठप्रदेशबन्धयोग्यत्वं भवति । यशःकीर्तिनाम्नोऽष्टमगुणस्थानसप्तमभागे नवमगुणस्थाने च ज्येष्ठप्रदेशबन्धयोग्यत्वं भवति । आहारकद्विकस्य तु संयतस्य । जिननाम्नो देवप्रायोग्यैकोनत्रिंशद्बन्धकमनुष्यस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति । अत उक्तत्रयोदशप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य केवलं पर्याप्तमनुष्याणामेव भावात् संख्येया एव तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका उक्तमार्गणाषट्के भवन्ति । शेषाणां त्र्युत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्याता विज्ञेयाः । संज्ञिपर्याप्ततिर्यगादिषु तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावादिति । ज्ञानावर-

णपञ्चकाऽन्तरायपञ्चकसातवेदनीयोच्चैर्गोत्राणामोघे संख्याता ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः, प्रस्तुते त्वसंख्याता इति ओघतो विशेषः ॥५६॥

अथ तेजःपद्मलेश्याद्वये क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे शेषमार्गणासु च बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकपरिमाणं दर्शयन्नाह—

तेउदुगवेअगेसु संजलणाहारजुगलतित्थाणं ।
संखेज्जा सेसाणं असंखिया ऽण्णासु सव्वेसिं ॥५७॥

(प्रे०) "तेउ"इत्यादि, तेजोलेश्यापद्मलेश्याद्वये प्रथमादिसप्तमान्तगुणस्थानकानि भवन्ति। वेदकसम्यक्त्वे तु चतुर्थादिसप्तमान्तानि चत्वारि गुणस्थानकानि भवन्ति । एतासु तिसृषु संज्वलनचतुष्काहारकद्विकरूपषट्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संयमिन एव, ते च संख्येयाः । तथा जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका देवप्रायोग्यबन्धका मनुष्या एव, अतस्तेऽपि संख्येयाः, एवमुक्त-मार्गणात्रये संज्वलनचतुष्काऽऽहारकद्विकजिननाम्नां सप्तानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्याता दर्शिताः । उक्तशेषाणां तेजोलेश्यायामेकोत्तरशतस्य, पद्मलेश्यायामष्टनवतेः, क्षयोपशमसम्यक्त्वे सप्ततेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्याता भवन्ति; यथासंभवं तिर्यगादीनां तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वात् । तदेवं 'ओघव्वे"त्यादिना (गा०४८) पादोनगाथादशके आयुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धका दर्शिताः । अथ "असंखियाऽण्णासु सव्वेसिं"इत्यनेन गाथाचरमपादेन शेषासु चतुर्नवतिमार्गणासु बन्धार्हाणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकपरिमाणं दर्शितम् , तद्यथा—उक्तेतरासु चतुर्नवतिमार्गणास्वायुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्याता भवन्ति । शेषमार्गणाः पुनरिमाः——अष्टनरकभेदपञ्चतिर्यग्भेदाऽपर्याप्तमनुष्यैकोनत्रिंशद्देवभेदनवविकलाऽप-र्याप्तपञ्चेन्द्रियसप्तपृथ्वीकायसप्ताऽप्कायसप्ततेजस्कायसप्तवायुकायत्रिप्रत्येकवनस्पतिकायाऽपर्याप्त-त्रसकायवैक्रियकाययोगमत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानाऽभव्यमिश्रसास्वादनसम्यक्त्वमिथ्यात्वासं-ज्ञिमार्गणाः, एतासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयत्वम् , कस्या अपि प्रकृतेर्ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धस्य केवलं संयमिनां पर्याप्तमनुष्याणां वा स्वामित्वाऽभावात् , इतरेषामपि तद्बन्धकत्वा-दिति भावः। सूक्ष्मपृथ्व्यादिचतुर्णां द्वादशभेदेष्वपर्याप्तबादरपृथ्व्यादिचतुर्भेदेष्वपर्याप्तप्रत्येकवनस्प-तिकाये चेति सप्तदशमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्य-लोकाकाशप्रदेशप्रमिताः । वायुकायादिभेदत्रये ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां विशेषपरिमाणं स्वयं विज्ञेय-मिति । शेषासु पुनः प्रतराऽसंख्येयभागप्रमाणास्ततोऽपि न्यूना न्यूनतरा वा विज्ञेया इति ॥५७॥

अथ मार्गणास्वायुर्वर्जबन्धप्रायोग्याणामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां परिमाणं निरूपयन्नाह

ओघव्व बंधगा खलु अगुरुपएसस्स आउवज्जाणं ।
तिरिक्खायुरलणपुमचउकसायदुअणाणअजएसु ॥५८॥

अणयणतिअसुहलेसाभवियरमिच्छामणेसु आहारे ।
णवरं णेया संखा जिणसुरलकिण्हणीलासु ॥५९॥
अत्थि णरे संखेज्जा तित्थाहारदुगविउव्वछक्काणं ।
सेसाणं पयडीणं असंखिया बंधगा णेया ॥६०॥
संखा सव्वाण दुणरसव्वत्थाहारदुगअवेएसु ।
मणणाणसंजमेसु समइअछेअपरिहारसुहमेसु ॥६१॥(गीतिः)
विण्णेया सव्वेसिं सप्पाउग्गाण बंधगाऽणंता ।
सव्वेसु एगिंदियणिगोअभेएसु वणकाये ॥६२॥
दुपणिंदियतसपणमणवयपुरिसतिणाणओहिचक्खूसु ।
सुहलेसासम्मेसु वेअगखइएसु सण्णिम्मि ॥६३॥
संखेज्जा विण्णेया आहारदुगस्स बंधगा जीवा ।
होअन्ति असंखेज्जा सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥६४॥
संखाऽत्थि उरलमीसे कम्मणजोगे तहा अणाहारे ।
सुरविउवदुगजिणाणं सेसाणं बंधगाऽणंता ॥६५॥
वेउव्वमीसजोगे देमे संखाऽत्थि तित्थणामस्स ।
होअन्ति असंखेज्जा सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥६६॥
तित्थाहारदुगाणं णेया थीउवसमेसु संखेज्जा ।
सेसाण असंखेज्जा सेसासु हुन्ति सव्वेसिं ॥६७॥

(प्रे०) "ओघव्वे" त्यादिगाथादशकम्, सप्तत्युत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुर्वर्जप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां परिमाणमत्रैव बन्धविधाने उत्तरप्रकृतिबन्धकानां यावत्परिमाणं संख्येयत्वादिकं दर्शितं तावदेवात्रापि संख्येयत्वादिकं प्राप्यते, तथाऽपि पाठकगणस्मृतिदार्ढ्यार्थं ग्रन्थकारेण स्पष्टमेव दर्शितम् ।

तद्यथा—तिर्यग्गत्योघकाययोगौघौदारिककाययोगनपुंसकवेदचतुष्कषायमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनाऽशुभलेश्यात्रयभव्याभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकरूपासु विंशतिमार्गणासु बन्ध-

प्रायोग्याणामोघवदनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका भवन्ति, तच्चैवम्—वैक्रियषट्कस्यासंख्येयाः, सप्तोत्तरशतस्यानन्ताः, काययोगौघादिदशमार्गणासु आहारकद्विकस्य संख्येयाः, तासु अशुभलेश्यात्रयेऽसंयमे चेति चतुर्दशमार्गणासु जिननाम्नः बन्धो भवति; तस्य औदारिककाययोगनीललेश्याकृष्णलेश्यामार्गणात्रये तस्य संख्येया एव बन्धकाः शेषास्वेकादशमार्गणासु जिननाम्नो बन्धका असंख्याता विज्ञेयाः ।

मनुष्यौघे वैक्रियषट्काऽऽहारकद्विकजिननाम्नां नवानां संख्येयाः; शेषाणां सप्तोत्तरशतस्याऽसंख्येया अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य बन्धका विज्ञेयाः ।

पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धाऽऽहारकद्विकाऽपगतवेदमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायमार्गणासु द्वादशसु बन्धप्रायोग्यायुर्वर्जसर्वप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, मार्गणागतजीवानां संख्येयत्वात् । बन्धप्रायोग्यप्रकृतयस्तु सुगमा इति न पुनः प्रदर्श्यते ।

सप्तैकेन्द्रियभेदसप्तनिगोदरूदवनस्पतिकायौघभेदेषु पञ्चदशसु बन्धप्रायोग्याणां सप्तोत्तरशतस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशस्य बन्धका अनन्ताः ।

द्विपञ्चेन्द्रियद्वित्रसकायपञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगपुरुषवेदमतिश्रुताऽवधिज्ञानचक्षुर्दर्शनाऽवधिदर्शनतेजःपद्मशुक्ललेश्यासम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वक्षायिकसम्यक्त्वसंज्ञिमार्गणासु सप्तविंशतावाहारकद्विकस्य बन्धकाः संख्येयाः, शेषाणामायुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धका असंख्याता भवन्ति । नवरं क्षायिकसम्यक्त्वे देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धका आगमाभिप्रायेण संख्येया एवेति ।

औदारिकमिश्रे कार्मणानाहारकयोश्च देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामरूपाणां पञ्चानां बन्धकाः संख्याता भवन्ति, शेषाणां सप्तोत्तरशतस्य बन्धका अनन्ता भवन्ति ।

वैक्रियमिश्रे देशविरतौ च जिननाम्नो बन्धकाः संख्येयाः; शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां वैक्रियमिश्र एकोत्तरशतस्य देशविरतौ पञ्चषष्टेर्बन्धका असंख्याता भवन्ति ।

स्त्रीवेदमार्गणायामुपशमसम्यक्त्वे च जिननामाऽऽहारकद्विकयोर्बन्धकाः संख्येयाः, शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां स्त्रीवेदे त्रयोदशोत्तरशतस्योपशमसम्यक्त्वमार्गणायां चतुःसप्ततेर्बन्धका असंख्याता भवन्ति ।

एवं द्व्यशीतिमार्गणासु दर्शितं बन्धकपरिमाणम् । शेषास्वष्टाशीतिमार्गणासु तत्तद्मार्गणास्वायुर्वर्जबन्धप्रायोग्याणां प्रकृतिबन्धवदनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाश्चाऽसंख्याता भवन्ति । ता मार्गणा नामतः पुनरिमाः—अष्टनरकभेदपञ्चेन्द्रियतिर्यग्भेदचतुष्काऽपर्याप्तमनुष्यसर्वार्थसिद्ध-

वैजैकोनत्रिंशद्देवभेदनवविकलाक्षाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियसप्तपृथ्वीकायसप्ताप्कायसप्ततेजस्कायसप्त-वायुकायत्रिप्रत्येकवनस्पतिकायाऽपर्याप्तत्रसकायवैक्रियकाययोगविभङ्गज्ञानमिश्रसास्वादनमार्गणा इति । एतासु मार्गणासु प्रत्येकं जीवानामसंख्येयत्वाद्बन्धप्रायोग्यप्रकृतिबन्धका असंख्याता भवन्ति तत एवाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अपि तथैवेति ॥५८-६७॥

अथ मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकपरिमाणं दर्शयन्नाह

णिरयपढमाइछणिरयदेवसहस्सारअंतविउवेसुं ।
तेउपउमसासायणतिणाणऽवहिसम्मवेअगेसुं च ॥६८॥ (गीतिः)
मणुसाउगस्स संखा जेट्ठपएसस्स बंधगा णेया ।
सप्पाउगाणं खलु सेसाऊणं असंखेज्जा ॥६९॥
तिणाणयाइगेसुं आहारदुगमणपज्जवेसु तहा ।
संजमसामइएसुं छेए परिहारसुक्कखइएसुं ॥७०॥ (गीतिः)
सप्पाउगाऊणं संखेज्जा बंधगा मुणेयव्वा ।
सव्वेसुं एगिंदियणिगोअभेएसु वणकाये ॥७१॥
तिरियाउस्स अणंता णराउगस्स इयरे असंखेज्जा ।
सेसासु असंखेज्जा सप्पाउग्गाण आऊणं ॥७२॥

(प्रे०) "णिरये"त्यादि, नरकौघप्रथमादिषड्नरकदेवौघभवनपत्यादिसहस्रारान्तदेवभेद-वैक्रियकाययोगाः, तासु विंशतिमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुषोरेव बन्धः, तत्र मनुष्यायुषः पर्याप्तमनु-ष्यप्रायोग्यस्यैव बन्धयोग्यत्वात् पर्याप्तमनुष्याणां संख्येयत्वाच्च संख्येया एवैतासु विंशतिमार्गणासु मनुष्यायुषः प्रकृतिबन्धका भवन्ति; तेषां संख्येयतमभागप्रमाणाः संख्येयास्तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धका विज्ञेयाः । एतासु तिर्यगायुषोऽसंख्येया बन्धकास्तदसंख्येयभागप्रमाणा असंख्येयास्तस्य ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धकास्सन्ति । तेजोलेश्यापद्मलेश्यासास्वादनमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यदेवायुषां बन्धः, तत्र मनुष्यायुषः संख्येया एव बन्धकाः, उक्तमार्गणात्रयेऽपर्याप्तप्रायोग्याणां बन्धाभावेन पर्याप्त-मनुष्यप्रायोग्यस्यैव बन्धकत्वात्, प्रकृतिबन्धकानामपि संख्येयभागप्रमाणा ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति । तिर्यगायुषो देवायुषश्च बन्धका असंख्येया भवन्ति, तदसंख्येयभागगतानामसंख्येयानां पुनर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति । मतिश्रुताऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वरूपासु षट्सु मार्गणासु देवमनुष्यायुषो बन्धः, तत्र मनुष्यायुषो बन्धकाः संख्येयाः, देवायुषस्तु बन्धका

असंख्येयाः, अतो मनुष्यायुषो बन्धकानां संख्येयभागप्रमाणाः, संख्येया ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः, एवं देवायुषो बन्धकानामसंख्येयभागप्रमाणा असंख्येया ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति । उक्तैकोनत्रिंशद्मार्गणासु जीवा असंख्येयाः, आयुर्बन्धका अप्यसंख्याताः, केवलं मनुष्यायुर्बन्धकाः संख्येया इति समुदितानां निर्देशः ।

मनुष्यौघे जीवानामसंख्येयत्वेऽपि देवनरकायुषोर्बन्धकानां संख्येयानां भावात् तयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अपि संख्येयाः, तिर्यग्मनुष्यायुषोर्बन्धकानामसंख्येयत्वेऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य पर्याप्तमनुष्याणां भावात्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येया एवेति मनुष्यौघे चतुर्णामायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः । आनताद्यपराजिताख्याऽनुत्तरविमानपर्यन्तासु सप्तदशदेवमार्गणासु जीवानामसंख्येयत्वेऽपि तेषां पर्याप्तमनुष्येष्वेवोत्पादात्तासु मनुष्यायुष एव बन्धो भवति, ते च मनुष्यायुषो बन्धकाः संख्येयाः । तत्संख्येयभागप्रमाणा ज्येष्ठप्रदेशबन्धका इति तेषामपि संख्येयत्वमिति । पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धदेवा-ऽऽहारकतन्मिश्रमनःपर्यवज्ञान संयमौघ-सामायिक-च्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिरूपासु दशमार्गणासु जीवानां संख्येयत्वाद् बन्धप्रायोग्यायुषां बन्धकाः संख्येया एव, अतस्तासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अपि संख्येयाः । क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां शुक्ललेश्यायाश्च जीवानामसंख्येयत्वेऽपि देवमनुष्यायुषोर्बन्धकाः संख्येया एव । एतच्च प्रकृतिबन्धे स्थितिबन्धादौ सप्रपञ्चं भावितम्, तत एव चावधार्यमत उक्तमार्गणाद्वये देवमनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अपि संख्येया एव । तदेवं मनुष्यौघवर्जैकोनत्रिंशद्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां प्रकृतिबन्धका ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाश्च संख्येया एव भवन्ति ।

तथा सप्तैकेन्द्रियसप्तसाधारणवनस्पतिकायभेदवनस्पतिकायौघलक्षणेषु पञ्चदशमार्गणाभेदेषु अनन्ता जीवा भवन्ति, तत्र तिर्यगायुषो बन्धका अनन्ता मनुष्यायुषस्त्वसंख्याताः, एतासु प्रत्येकं साधारणवनस्पतिकायिकानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अनन्ता भवन्ति, मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्याता इति । एवं सार्धगाथाचतुष्केण चतुस्सप्ततिमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकपरिमाणं दर्शितम् ।

शेषासु नवाशीतिमार्गणासु **'सेसासु'** इत्यादिना दर्शयति—शेषनवाशीतिमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्याता भवन्ति । तद्यथा—सप्तमनरकसप्ततेजस्कायसप्तवायुकायेषु तिर्यगायुषोऽसंख्याता जीवा ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति । अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्यनवविकलाक्षाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियसप्तपृथ्वीकाय-सप्ताऽप्कायत्रिप्रत्येकवनस्पतिकायाऽपर्याप्तत्रसकायेषु त्रिंशति तिर्यग्मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येया भवन्ति, एतासु जीवानामुक्तायुर्द्वयप्रकृतिबन्धकानां तयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानाञ्चाऽसंख्येयत्वात् । पञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्रिक-पञ्चे-

न्द्रियद्विक-त्रसकायद्वय-पञ्चमनोयोग पञ्चवचनयोग-स्त्रीवेद-पुरुषवेद-विभङ्गज्ञान--देशविरति चक्षुर्दर्शन-संज्ञिमार्गणासु त्रयोविंशतौ जीवा असंख्याता भवन्ति, चत्वार्यप्यायूंषि बन्धप्रायोग्याणि, तेषां प्रत्येकं बन्धका जीवा असंख्येयाः अतस्तेषां प्रत्येकं ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवा अप्यसंख्याता भवन्ति, अत एतासु चतुर्णामप्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्याता भवन्ति । तिर्यग्गत्योघकाययोगौदारिकनपुंसकवेदकषायचतुष्कमत्यज्ञानश्रुताऽज्ञानासंयमाचक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतले--श्याभव्याभव्यमिथ्यात्वासंज्ञ्याऽऽहारकमार्गणासु विंशतौ जीवा अनन्ता भवन्ति, एतासु प्रत्येकं तिर्यगायुर्बन्धका अनन्ताश्शेषायुस्त्रयबन्धका असंख्यातास्सन्ति, एतासु चतुर्णामप्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य पञ्चेन्द्रियाणामेव भावात् ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवा असंख्याताः, अतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अपि असंख्येया इति । औदारिकमिश्रे तु जीवा अनन्ता भवन्ति, तत्र तिर्यग्मनुष्यायुषोरेव बन्धः; तिर्यगायुर्बन्धका अनन्ता मनुष्यायुर्बन्धका असंख्याताः, अस्यां मार्गणायां संज्ञ्यपर्याप्तपञ्चेन्द्रियस्यैवोक्तायुर्द्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, अतो यथा ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्या जीवा असंख्याता भवन्ति तथैव ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अपि तिर्यग्मनुष्यायुषोरसंख्येया भवन्तीति । अत्राऽऽयुषामायुर्वर्जानाञ्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां परिमाणमुत्कृष्टपदे भणितमन्यथा असंख्येयसंख्येयस्थाने एकादयोऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः प्राप्यन्ते, यासु पञ्चदशमार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अनन्ता दर्शितास्तासु पञ्चदशमार्गणासु सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां तिर्यगायुषश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धका सदैव अनन्ताः प्राप्यन्ते इति । एवं सूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुकायसत्का द्वादशभेदा अपर्याप्तबादरपृथ्व्यप्तेजोवायुकाया अपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायश्चेति सप्तदशमार्गणास्तासु बन्धप्रायोग्याणां सप्तोत्तरशतस्य तिर्यगायुषश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः सदैवाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमिताः प्राप्यन्ते इति द्वात्रिंशद्मार्गणा विहाय शेषासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामुक्तपरिमाणमुत्कृष्टपदप्राप्तं भवतीति तथा विज्ञेयमिति ॥६८-७२॥

अथ मार्गणास्वायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकपरिमाणं दर्शयन्नाह

तिरिये सव्वेगिंदियणिगोअवणकायुरालियदुगेसु ।
णपुमचउकसायेसुं दुअणाणाजयअचक्खूसुं ॥७३॥
तिअसुहलेसाभवियरमिच्छत्तासण्णिगेसु आहारे ।
सप्पाउग्गाऊणं अणुरुपएसस्स ओघव्व ॥७४॥
णिरयपढमाइछणिरयदेवसहस्सारअंतविउव्वेसुं ।
तह तेउपउमसासणतिणाणऽवहिसम्मवेअगेसुं च ॥७५॥ (गीतिः)

मणुसाउगस्स संखा इयराण असंखिया णरे संखा ।
णारगदेवाऊणं असंखिया तिरिणराऊणं ॥७६॥
दुणराणयाइगेसु आहारदुगमणपज्जवेसु तहा ।
संजमसामइएसु छेए परिहारसुक्कखइएसु ॥७७॥ (गीतिः)
संखेज्जा आऊणं सप्पाउग्गाण बंधगा णेया ।
सेसासु मग्गणासु अडसट्ठीए असंखेज्जा ॥७८॥

(प्रे०) "तिरिये"त्यादि, सर्वासु त्रिपष्ट्यधिकशतमार्गणासु तत्तद्मार्गणायां बन्धप्रायोग्यायुषां प्रकृतिबन्धे यावत्परिमाणं भवति संख्येयमसंख्येयमनन्तं वा, तावदेव परिमाणं संख्येयत्वादिकमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां परिमाणं भवति, एतच्च प्रकृतिबन्धपरिमाणतोऽपि ज्ञायते, तथाऽपि विनेयजनानुग्रहाय स्मृतिपाटवार्थं चाऽत्र स्पष्टतया ग्रन्थकार एव दर्शयति । तद्यथा-तिर्यगोघादिपट्त्रिंशद्मार्गणा एतासु जीवा अनन्ता भवन्ति, अत एतासु प्रत्येकं बन्धप्रायोग्यायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकपरिमाणमोघवद् भवति; तच्चैवम्-एतासु प्रत्येकं तिर्यगायुषोऽनन्ताः, शेषायुस्त्रयस्य बन्धसंभवे तेषामसंख्याता बन्धकाः । अयम्भावः-सप्तैकेन्द्रियभेदसप्तनिगोदभेदवनस्पतिकायौघौदारिकमिश्रमार्गणासु षोडशसु तिर्यगायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अनन्ताः, मनुष्यायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्येयाः, शेषायुर्द्वयस्य बन्ध एव न भवति । तिर्यगोघकाययोगौघौदारिककाययोगनपुंसकवेदकषायचतुष्कमत्यज्ञानश्रुताऽज्ञानाऽसंयमाचक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतलेश्याभव्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकमार्गणासु विंशतौ तिर्यगायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अनन्ताः, अनन्तानां निगोदजीवानां भावात् । शेषाणां त्रयाणामायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्याताः, जगति त्रयाणामायुषां वेदकानामसंख्येयत्वेन ततो न्यूनतराणामेव तद्बन्धकत्वात् ।

नरकौघाद्येकोनत्रिंशद्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां यथोत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः प्ररूपिताः संख्येया असंख्येया वा, तथैव तासामायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अपि प्ररूपणीयाः, तद्यथा—एतासु सर्वासु मनुष्यायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, नरकौघादित्रयोविंशतिमार्गणासु तिर्यगायुषस्तथा तेजोलेश्यादिनवमार्गणासु देवायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्याता भवन्ति ।

मनुष्यौघे देवनरकायुषोरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, पर्याप्तमनुष्याणामेव तयोः प्रकृत्योर्बन्धकत्वात्, तिर्यग्मनुष्यायुषोरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्याताः, लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणामपि तद्बन्धकत्वात् ।

(प्रे०) "इगुणरे" त्यादि, पर्याप्तमनुष्याद्येकोनत्रिंशद्मार्गणाः, तासु बन्धप्रायोग्यायुषां बन्धकाः संख्येया एवेति तेषामायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अपि संख्येया एव । एतास्वायुर्बन्धकानां संख्येयत्वं ज्येष्ठप्रदेशबन्धकपरिमाणाऽवसरे भावितमेव । एकोनत्रिंशद्मार्गणाः पुनरेताः—पर्याप्तमनुष्यमानुष्यानतादिसर्वार्थसिद्धपर्यवसानाऽष्टादशदेवभेदा-ऽऽहारकद्विक-मनःपर्यवज्ञान-संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिशुक्ललेश्याक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणा इति । एवं सार्धपञ्चगाथाभिः पञ्चनवतिमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां परिमाणं दर्शितम् । अथ गाथाऽर्धेन शेषास्वष्टपष्टिमार्गणासु तद्दर्शयति—'सेसासु" इत्यादि, शेषमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां बन्धका असंख्याता भवन्ति, तद्यथा—सप्तमनरकसप्ततेजस्कायसप्तवायुकायेषु तिर्यगायुषः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्यनवविकलाक्षाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियसप्तपृथ्वीकायसप्ताऽप्कायत्रिप्रत्येकवनस्पतिकायाऽपर्याप्तत्रसकायेषु त्रिंशति तिर्यग्मनुष्यायुषोस्तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्रिकपञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसकायौघपर्याप्तत्रसकायपञ्चमनोयोगपञ्चवचनयोगस्त्रीवेदपुरुषवेदविभङ्गज्ञानचक्षुर्दर्शनसंज्ञिमार्गणासु द्वाविंशतौ चतुर्णामप्यायुषां देशविरतौ च देवायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्याता भवन्ति, एतासु मार्गणागतजीवानामसंख्येयत्वेन बन्धप्रायोग्यायुषां प्रकृतिबन्धकानामसंख्येयत्वादनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्याता विज्ञेयाः । विशेषभावना तु सुगमा, प्रागनेकशो भाविता च । तदेवमुत्कृष्टानुत्कृष्टप्रदेशबन्धकपरिमाणं समाप्तम् ॥७३-७८॥

अथौघतो विंशत्युत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धकानामजघन्यप्रदेशबन्धकानाञ्च परिमाणं दर्शयन्नाह

हस्सपएसस्स णिरयतिगणरदेवाउगाण य असंखा ।
सुरविउवाहारजुगलजिणाण संखा मुणेयव्वा ॥७९॥
सेसाण बंधगा खलु हुंति अणंता अगुरुपएसव्व ।
सव्वेसिं पयडीणं अलहुपएसस्स विण्णेया ॥८०॥

(प्रे०) "हस्से"त्यादि, ओघतो नरकत्रिकमनुष्यायुर्देवायुषां पञ्चानां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येया भवन्ति, तद्यथा—नरकत्रिकस्य देवायुषश्च जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंज्ञिपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिरश्चां भवति, तेषामसंख्येयत्वात्तज्जघन्यप्रदेशबन्धका अप्यसंख्याता भवन्ति । मनुष्यायुषस्तु जघन्यप्रदेशबन्धस्य पर्याप्ताऽपर्याप्तमनुष्यप्रायोग्यबन्धकानामेव लाभेन सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तानामनन्तानां बन्धप्रायोग्यत्वे सत्यप्यसंख्याता एव बन्धका भवन्तीति ।

देवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः । संयतानामेव आहारकद्विकबन्धकत्वेन प्रकृतिबन्धकानामपि संख्येयत्वम् , अत्र तु जिननामदेवायुर्म्यां

सहैव जघन्यप्रदेशबन्धभावात्ततोऽपि न्यूनतरं संख्येयत्वमिति । जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धस्तु सम्यग्दृष्टिमनुष्येभ्यो जिननामबन्धकेभ्यो देवनारकेषूत्पन्नानां भवप्रथमसमये वर्तमानानां केषाञ्चिदेव, तथाच सम्यग्दृष्टिमनुष्याणां संख्यातत्वात् तेभ्य उद्धृत्य देवनारकेषूत्पन्नानां संख्यातत्वम्, ततो भवन्ति जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येया इति । देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धका भवप्रथमसमयवर्तिनो लब्धिपर्याप्ताः सम्यग्दृष्टयो मनुष्या एव भवन्ति, ते च संख्येया एवेति ।

उक्तशेषाणां ज्ञानावरणीयादिसप्तोत्तरशतप्रकृतीनां तिर्यगायुषश्च जघन्यप्रदेशबन्धस्य सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तस्य भावात्तद्बन्धप्रायोग्यजीवानामानन्त्याच्चैतासामष्टोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका अनन्तास्सदैव प्राप्यन्त इति ।

अजघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणमोघतस्सर्वासां प्रकृतीनामादेशतश्च बन्धप्रायोग्यसर्वासां प्रकृतीनां प्रकृतिबन्धकपरिमाणवदेव भवति । अत्राऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकसंख्यावदतिदेशस्त्वतिदेशसान्निध्यात्तत्र स्पष्टतया दर्शितत्वाच्च, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अपि प्रकृतिबन्धकसंख्यावदेव भवन्तीति तत्राऽपि दर्शितम् । ओघतोऽजघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणमेवम्—आहारकद्विकस्य संख्येयाः, वैक्रियाष्टकमनुष्यायुर्जिननाम्नामसंख्येयाः शेषाणामष्टोत्तरशतस्याऽनन्ता अजघन्यप्रदेशबन्धका भवन्तीति ॥७९-८०॥

अथ मार्गणास्वायुर्वर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धकानां परिमाणं निरूपयन्नाह—

दुपणिंदितसवयेसुं कायपुरिसथीकसायअजयेसुं ।
णयणेयरकाऊसुं भविये सण्णिम्मि आहारे ॥८१॥
सुरविउवदुगजिणाणं हस्सपएसस्स बंधगा संखा ।
अणुरुपएसव्वाउगवज्जाणं सेसपयडीणं ॥८२॥

(प्रे०) "दुपणिंदि" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसकायौघपर्याप्तत्रसकायवचनयोगौघव्यवहारवचनयोगकाययोगौघपुरुषवेदस्त्रीवेदकषायचतुष्काऽसंयमचक्षुर्दर्शनाऽचक्षुर्दर्शनकापोतलेश्याभव्यसंज्ञ्याहारकमार्गणासु विंशतौ देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येया भवन्ति, भावना त्वोघवत्कार्या, केवलं वचनयोगद्वये मनुष्यायुर्बन्धसहितान्देवनारकानपेक्ष्य जिननाम्नः, देवायुर्बन्धसहितान्मनुष्यानपेक्ष्य देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्भावना कार्या, तेषामेव तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वात् । तथा पुरुषवेदमार्गणायां जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणस्य देवानपेक्ष्य भावना कार्या, नारकाणां प्रस्तुतमार्गणाबाह्यत्वात् ।

स्त्रीवेदमार्गणायां मानुष्यैव देवद्विकादिपञ्चानां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनी भवतीति तदपेक्षया भावना कार्या । कापोतलेश्यायां जिननाम्नो नारकानपेक्ष्य भावना कार्येति । शेषाणामेकादशोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकपरिमाणवज्ज्ञातव्यम् । अत्रोक्त-मार्गणासु शेषप्रकृतीनां परिमाणमेवम्-यत्र यासां प्रकृतिबन्धकाः संख्येयास्तत्र तासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धका अजघन्यप्रदेशबन्धकाश्च संख्येया भवन्ति, यासां प्रकृतिबन्धका असंख्येयास्तासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धका अजघप्रदेशबन्धकाश्चाऽसंख्याता भवन्ति, एवमनन्तबन्धकेष्वपि भावनीयम् । तच्चैवम्—काययोगकषायचतुष्काऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकापोतलेश्याभव्याहारकमार्गणासु दशसु नरकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्याताः, असंयम-कापोतलेश्यावर्जास्वष्टास्वाहारकद्विकस्य संख्येयाः, दशस्वपि शेषाणां सप्तोत्तरशतस्याऽनन्ता जघन्यप्रदेशबन्धका भवन्ति । पञ्चेन्द्रियौघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियत्रसकायौघपर्याप्तत्रसकायवचनयोगौघव्यवहारवचनयोगस्त्रीवेदपुरुषवेदचक्षुर्दर्शनसंज्ञिमार्गणासु दशसु आहारकद्विकस्य संख्येयाः । शेषाणां नवोत्तरशतस्याऽसंख्येया जघन्यप्रदेशबन्धका भवन्तिः मार्गणागतजीवानामसंख्येयत्वेन प्रकृतिबन्धकानामसंख्येयत्वे सति जघन्य प्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयत्वात् ॥८१-८२॥

अथ नरकौघादिमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणं प्राह

णिरयऽज्जतिणिरयामरणपुंसवेएसु तित्थणामस्स ।
संखेज्जा सेसाणं अणुरुपएसव्व विण्णेया ॥८३॥

(प्रे०) "णिरये"त्यादि, नरकौघप्रथमद्वितीयतृतीयनरकदेवौघनपुंसकवेदेषु जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, अत्र नरकौघप्रथमनरकदेवौघमार्गणात्रये मनुष्यभवादुत्पन्नानां भवप्रथमसमयस्थानां केषाञ्चिदेव जिननाम्नो बन्धकत्वेन संख्येयत्वात् । द्वितीयतृतीयनरके तु एकेन मतेनैवमेव, अन्यमतेन तु मनुष्यायुर्बन्धसहितत्वात् संख्येयत्वमिति । उक्तमार्गणाषट्के आयुर्वर्जबन्धप्रायोग्यशेषप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकपरिमाणवद् भवन्ति । एतेन प्राप्तं शेषप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणं पुनरेवम्—नरकौघे प्रथमनरकत्रिके च जिननामाऽऽयुर्द्वयं च विहाय बन्धप्रायोग्याणामष्टानवतिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येया भवन्ति । द्वितीयतृतीयनरकमार्गणायोः सम्यक्त्वेन सहोत्पादे स्वीकृते मनुष्यद्विकस्याऽपि भवप्रथमसमये त्रिंशद्बन्धस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धलाभात् तस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येया भवन्ति इत्यवधेयम् । देवौघे जिननामाऽऽयुर्द्वयं च विहाय शेषैकोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येया विज्ञेयाः, नपुंसकवेदमार्गणायामाहारकद्विकस्य संख्येयाः, वैक्रियषट्कस्य जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयाः, शेषाणां सप्तोत्तरशतस्य अनन्ता इति ॥८३॥

अथ तिर्यगोघादिमार्गणास्वाह–

तिरिये पणिंदितिरिये तप्पज्जे उरलकिण्हणीलासु ।
अगुरुपएमव्व णवरि सुरविउव्वदुगाण संखेज्जा ॥८४॥

(प्रे०) "तिरिय" इत्यादि, तिर्यग्गत्योघपञ्चेन्द्रियतिर्यगोघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगौदारिककाययोगकृष्णलेश्यानीललेश्यामार्गणासु देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य लब्धिपर्याप्तमनुष्याणां तस्य उत्पन्नतिरश्चां वा भवाऽऽद्यान्तर्मुहूर्ते भावात् । उक्तषड्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुर्वर्जशेषप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकवद् भवति, तद्यथा-तिर्यगोघादिमार्गणात्रये नवोत्तरशतस्याऽतिदेशः, तत्र तिर्यगोघे सप्तोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका अनन्ताः, साधारणवनस्पतिकायिकानां तद्बन्धकत्वात्, नरकद्विकस्याऽसंख्येयाः। पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणाद्वये नवोत्तरशतस्याऽपि जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्याताः । औदारिककाययोगे आहारकद्विकजिननामसहितानां द्वादशशतस्याऽतिदेशः; तेनाऽऽहारकद्विकस्य जिननाम्नश्च संख्येयाः, ज्ञानावरणादिसप्तोत्तरशतस्याऽनन्ताः, नरकद्विकस्य चाऽसंख्येया जीवा जघन्यप्रदेशबन्धका भवन्ति । कृष्णलेश्यामार्गणायां नीललेश्यामार्गणायां च देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, सम्यग्दृष्टिमनुष्याणां तिरश्चां वा भवप्रथमसमय एव तद् भावात् भवप्रथमसमयवर्तिसम्यग्दृष्टितिर्यग्मनुष्याः संख्येया एव । आहारकद्विकस्य जिननाम्नश्च जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, मनुष्याणामेव तद्बन्धकत्वात् । नरकद्विकस्यासंख्याता जघन्यप्रदेशबन्धका ओघवद्भावनीयाः, शेषाणां सप्तोत्तरशतस्य त्वनन्ता इति ॥८४॥

अथ सौधर्मादिमार्गणासु प्राह––

अडसोहम्माइविउव्वदुगेसु णरदुगजिणाण संखेज्जा ।
सेसाण असंखाऽऽणयसुराइसुकासु खइउवसमेसु ॥८५॥
सव्वेसिं संखेज्जा (गीतिः)

(प्रे०) "अड" इत्यादि, सौधर्मादिसहस्रारपर्यवसाना अष्टमार्गणास्तासु वैक्रियतन्मिश्रयोगद्विके च मनुष्यद्विकस्य जिननाम्नश्च जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येया भवन्ति, मनुष्येस्य उत्पन्नस्य भवप्रथमसमये वर्तमानस्य मार्गणाप्रथमसमये वर्तमानस्य वा मनुष्यप्रायोग्यत्रिंशतं बध्नत एवोक्तप्रकृतित्रयस्य जघन्यप्रदेशबन्धकत्वात्संख्येयत्वं विज्ञेयम् , आद्यकल्पद्वये वैक्रियद्विके च नवनवतिप्रकृतीनां सनत्कुमारादिकल्पषट्के षण्णवतिप्रकृतीनां तिर्यग्स्य उत्पन्नस्याऽपि भवप्रथमसमये वर्तमानस्य मार्गणाप्रथमसमये वर्तमानस्य वा जघन्यप्रदेशबन्धभावादसंख्येया-

स्तद्बन्धका विज्ञेयाः । आनतादिसर्वार्थसिद्धपर्यवसानाऽष्टादशदेवभेदेषु शुक्ललेश्यामार्गणायाञ्चाऽऽयुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येया भवन्ति; भवप्रथमसमयस्थजीवानां संख्येयत्वात् करणापर्याप्तमनुष्याणां मनुष्येभ्य उत्पन्नजीवानामेव वा भवप्रथमसमयवर्तिनामासां जघन्यप्रदेशबन्धकत्वमिति । इदमुक्तं भवति—आनताद्यष्टादशदेवभेदेषु देवानामेव शुक्ललेश्यायां यथासंभवं देवानां मनुष्याणां वा बन्धप्रायोग्याणां भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धो भवतीति संख्येया एव बन्धकाः, भवप्रथमसमयगतानां प्रस्तुतमार्गणासु संख्यातत्वादिति । क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां सप्तसप्ततेः प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, प्रस्तुतमार्गणागतानां भवप्रथमसमयवर्तिजीवानां संख्येयत्वात् , शेषं सुगमम् ।

उपशमसम्यक्त्वमार्गणायामेकसप्ततेर्जघन्यप्रदेशबन्धस्य मनुष्येभ्य उपशमश्रेणौ निधनं प्राप्य देवेषूत्पन्नस्य भवप्रथमसमये वर्तमानस्य भावात् संख्येयत्वम् । वैक्रियद्विकाहारकद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः संयता एवेति तयोः संख्येयत्वम् । देवद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धः पर्याप्तमनुष्यस्यैकोनत्रिंशद्बन्धकस्येति तस्याऽपि संख्यातत्वमिति ॥८५॥

अथ मनोयोगाद्यष्टमार्गणासु प्राह

... . णरसुरवेगदुगचउतणुजिणाणं ।
पंचमणतिवयणेसु संखात्थि असंखियाऽण्णेसि ॥८६॥

(प्रे०) "णरे" त्यादि, पञ्चमनोयोगत्रिवचनयोगमार्गणासु मनुष्यद्विकदेवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकतैजसकार्मणशरीरजिननामरूपाणामेकादशप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येया भवन्ति, तद्यथा—मनोयोगाद्यष्टमार्गणासु मनुष्यद्विकस्य जिननाम्नश्च देवनैरयिकाणां मनुष्यप्रायोग्यं जिननामसहितं त्रिंशतं मनुष्यायुस्सहितं बध्नतामेव जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावात्संख्येया एव बन्धका भवन्ति, देवद्विकस्य पुनर्मनुष्यस्य जिननामसहितं देवप्रायोग्यैकोनत्रिंशतं एकत्रिंशतं वा बध्नत एव जघन्यप्रदेशबन्धभावात् तस्य बन्धकाः संख्येया इति । वैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकतैजसकार्मणरूपाणां षण्णां संयतस्य देवप्रायोग्यमेकत्रिंशतं बध्नतो देवायुर्बन्धसहितस्यैव जघन्यप्रदेशबन्धलाभात् तासां संख्यातत्वं भावनीयम् । मनोयोगाद्यष्टमार्गणासु उक्तशेषाणां पञ्चोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्याताः, मनुष्येभ्य इतरेषामपि जीवानां मनुष्येतराऽऽयुषा सहाप्यासां जघन्यप्रदेशबन्धकतया लाभादिति । शेषप्रकृतयः पुनरेताः -ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकमोहनीयषड्विंशत्यन्तरायपञ्चकरूपाः पञ्चचत्वारिंशद्घातिप्रकृतयः, वेदनीयद्वयगोत्रद्वय-नरकद्विकतिर्यग्द्विकौदारिकद्विक-जातिपञ्चक-संस्थानषट्क-संहननषट्कखगतिद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघुचतुष्काऽऽतपोद्योतनिर्माणत्रसदशकस्थावरदशकनामानीति पञ्चोत्तरशतम् ॥८६॥

अथ मतिज्ञानादिसप्तमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणं निरूपयन्नाह–

णाणतिगे देसावहिसम्मेसु वेअए मुणेयव्वा ।
णामपयडीण संखा असंखिया हुन्ति सेमाणं ॥८७॥

(प्रे०) "णाण"इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानदेशविरतिसंयमाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौपशमिकक्षायोपशमसम्यक्त्वरूपासु सप्तमार्गणासु असंख्यातानां तिरश्चां मार्गणावर्तिनां देवेषूत्पादात्तेषाञ्च नामप्रकृतिविरहितानां जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वाद् मतिज्ञानावरणाद्यष्टत्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्याताः, ताः प्रकृतयः पुनरिमाः ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायहास्यषट्कपुरुषवेदसाताऽसातवेदनीयोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकानि । देशविरतिमार्गणायां पुनः तिरश्चामेवाऽसंख्यातानां देवायुर्बन्धकानामप्रत्याख्यानावरणवर्जानां मतिज्ञानावरणादिचतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकत्वात् , असंख्येयाः, केवलमसातवेदनीयशोकारतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकत्वे देवायुरबन्धकानां बोद्धव्यमिति । एतासु सप्तमार्गणासु बन्धप्रायोग्यैकोनचत्वारिंशन्नामप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकाः पुनः संख्येयास्तद्यथा–देशविरतिमार्गणायां बन्धप्रायोग्यद्वात्रिंशन्नामप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका मनुष्याः, जिननामबन्धकानामेव तद्बन्धकत्वात् । शेषषट्मार्गणासु मनुष्यप्रायोग्यत्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य मनुष्येभ्य उद्वृत्तस्य देवस्य नैरयिकस्य वा जिननामसहितं मनुष्यप्रायोग्यं त्रिंशतं बध्नतो जघन्यप्रदेशबन्धभावात् तस्य संख्येया एव बन्धकाः । एवं देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्देवनैरयिकेभ्य उद्वृत्तस्य मनुष्यस्य भवप्रथमसमये वर्तमानस्य देवप्रायोग्यैकोनत्रिंशतं बध्नत एव जघन्यप्रदेशबन्धभावात्तयोर्बन्धकाः संख्येया इति । आहारकद्विकबन्धकस्य संख्येयत्वं सुगमम् ॥८७॥

अथ तेजःपद्मलेश्याद्वये प्राह

णरसुरविउव्वाहारगदुगतित्थाणं हवेज्ज संखेज्जा ।
तेउपउमलेसासु सेसाण असंखिया णेया ॥८८॥

(प्रे०) "णर"इत्यादि, तेजोलेश्यायां पद्मलेश्यायां च मनुष्यद्विकदेवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः. तत्र मनुष्यद्विकजिननाम्नोर्जघन्यप्रदेशबन्धो भवप्रथमसमयस्थदेवानां भवति, तथा देवेभ्य उत्पन्नभवप्रथमसमयस्थमनुष्याणां देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्ध इति नवानां जघन्यप्रदेशबन्धकानां संख्येयत्वं । आहारकद्विकबन्धकानां संख्येयत्वं तु सुगममिति । शेषप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयाः, तिर्यग्भ्य उत्पन्नानां भवप्रथमसमयस्थदेवानामेतासां जघन्यप्रदेशबन्धभावादसंख्येयत्वलाभ इति, शेषप्रकृतयः

पुनस्तेजोलेश्यामार्गणायां नवनवतिः। पद्मलेश्यायां षण्णवतिश्चेति। भावना तु यथाक्रमं सौधर्म-सनत्कुमारदेववत् कार्येति ॥८८॥ तदेवं गाथाऽष्टकेनाशीतिमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणं प्रदर्श्य सार्धगाथया शेषमार्गणासु तं सातिदेशं सापवादं दर्शयति—

सेसासु सव्वेसिं अणुरुपएसव्व आउवज्जाणं ।
णवरि विभंगे संखा मयंतरेणं णरदुगस्स ॥८९॥

(प्रे०) "सेसासु" इत्यादि, शेषनवतिमार्गणासु बन्धप्रायोग्याऽऽयुर्वर्जप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका यावन्तोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयत्वादिना दर्शिताः तावन्त एव भवन्ति, शेषनवतिमार्गणा नामत इमाः-चतुर्थादिसप्तमान्तचतुर्नरकमार्गणा-तिरश्च्य-ऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यभेदचतुष्कभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कदेवसप्तैकेन्द्रियनवविकलेन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियैकोनचत्वारिंशत्पञ्चकायभेदाऽपर्याप्तत्रसकायौदारिकमिश्राऽऽहारकतन्मिश्रकार्मणकाययोगाऽपगतवेदमनःपर्यवज्ञानाऽज्ञानत्रयसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायाऽभव्यमिश्रसास्वादनमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्यनाहारकमार्गणाः। एतदेव किञ्चिद् भाव्यते—चतुर्थादिनरकमार्गणाचतुष्के बन्धप्रायोग्याष्टनवतिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयाः, तिरश्चीमार्गणायां त्रयोदशोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्याताः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसनवविकलाक्षसप्तपृथ्वीकायसप्ताऽप्कायत्रिप्रत्येकवनस्पतिकायरूपासु त्रिंशद्मार्गणासु सप्तोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्याताः। मनुष्यौघे देवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां संख्याताः शेषाणां सप्तोत्तरशतस्याऽसंख्याताः। पर्याप्तमनुष्य-मानुषी-आहारकद्विकाऽपगतवेद-मनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायरूपास्वेकादशमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां जघन्यप्रदेशबन्धका संख्याताः। भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये बन्धप्रायोग्याणामेकोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्याताः, सप्तैकेन्द्रियसप्तसाधारणवनस्पतिकायवनस्पतिकायौघरूपासु पञ्चदशमार्गणासु सप्तोत्तरशतस्याऽनन्ता बन्धका विज्ञेयाः, सप्ततेजस्कायमार्गणासप्तवायुकायमार्गणासु चतुरुत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्याता भवन्ति। औदारिकमिश्रे कार्मणानाहारकयोश्च देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, शेषप्रकृतीनां सप्तोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका अनन्ता भवन्ति। मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिरूपासु पञ्चमार्गणासु देवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकानां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्याताः। शेषाणां सप्तोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका अनन्ता भवन्ति। विभङ्गज्ञानमार्गणायां सर्वासां त्रयोदशोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्याताः, मतान्तरे पुनः पर्याप्तावस्थायामेव तज्जघन्यप्रदेशबन्ध इत्येवमङ्गीकर्तुरपेक्षया मनुष्यद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धः

पर्याप्तमनुष्यप्रायोग्यं बध्नन् मनुष्यायुर्बन्धं करोति, पर्याप्तमनुष्यप्रायोग्यायुर्बन्धकास्तु संख्येयाः, अतो मनुष्यद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येया भवन्ति । शेषाणामेकादशोत्तरशतस्य त्वसंख्येया जघन्यप्रदेशबन्धका भवन्ति । मिश्रे चतुस्सप्ततेस्तथा सास्वादनेऽष्टनवतेर्जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येया भवन्ति । तदेवं मार्गणास्वायुर्वर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धकानां परिमाणं दर्शितमिति ॥८९॥

अथाऽऽयुर्वर्जानामजघन्यप्रदेशबन्धकानां परिमाणं तथाऽऽयुषो जघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणमजघन्यप्रदेशबन्धकपरिमाणं च प्रदर्शयन्नाह-

सव्वह अगुरुपएसव्वऽलहुपएसस्स आउवज्जाणं ।
सगजोग्गाणाऊण य दुविहपएसाण बंधगा णेया ॥९०॥ (गीतिः)

(प्रे०) "सव्वहे"त्यादि, सर्वासु सप्तत्युत्तरशतमार्गणासु आयुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामजघन्यप्रदेशबन्धकानां परिमाणं तासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां यावत् परिमाणं भवति तावद् द्रष्टव्यम् । उत्कृष्टं जघन्यं च प्रदेशबन्धस्थानं विहाय शेषस्थानानामुभयत्र समानत्वात् बहुभागप्रमाणजीवानामनुत्कृष्टाजघन्यपदबन्धकत्वेनैव लाभाच्च ।

त्रिषष्ट्युत्तरशतमार्गणासु आयुषो बन्धप्रायोग्यत्वात्तासु सर्वासु बन्धप्रायोग्यायुषां जघन्यप्रदेशबन्धका अजघन्यप्रदेशबन्धकाश्चाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकवद्विज्ञेयाः । जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवसंख्यावद् संख्येयत्वादिना तुल्यत्वात् । अजघन्यप्रदेशबन्धकास्त्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकसंख्यावत्प्रकृतिबन्धकसंख्यावद् वा संख्येयत्वादिना तुल्या भवन्तीति, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां संख्यापरिमाणं प्रागासन्न एव दर्शितत्वात् न पुनर्दर्श्यते सुगमप्रायं चेति ॥९०॥

॥ इति श्री प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने
उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे प्रथमाधिकारे
दशमं परिमाणद्वारम् ॥



॥ अथ एकादशं क्षेत्रद्वारम् ॥

गतं परिमाणद्वारम् । अथ क्षेत्रद्वारस्य निरूपणाया अवसरः । अत्र वर्तमानसमये यद्वा उत्कृष्टपदगतोत्कृष्टादिप्रदेशबन्धका यस्मिन्समये प्राप्यन्ते तस्मिन्समये तैस्तैर्जीवै रुद्धं=व्याप्तं क्षेत्रं विमर्शनीयम् । समुदितातीतकालं त्रिकालं वा समाश्रित्य ज्येष्ठादिप्रदेशबन्धकैर्यावत्क्षेत्रमवगाढं तावत्क्षेत्रस्य विमर्शः स्पर्शनाद्वारेण निरूपणीयः । तथा भङ्गविचय-भाग-परिमाणद्वाराण्यनेकजीवाऽश्रितान्येव । क्षेत्रद्वारं स्पर्शनाद्वारं चैकजीवविषयकं नानाजीवविषयकं च भवति । तत्रैकजीवविषयकस्य तु सुगमप्रायमत्त्वात्तत्प्ररूपणां विसृज्य नानाजीवविषयकमेव ग्रन्थकारो दर्शयिष्यति इत्यवधेयम् । अत्र क्षेत्रस्पर्शनयोः प्ररूपणा त्रिधा भवितुमर्हति । तद्यथा—उत्पातेन समुद्घातेन स्वस्थानेन च । तत्रोत्पतनमुत्पातः, स च भवाद् भवान्तरगमने सति भवति, तेन भवप्रथमसमयगतैर्यावत्क्षेत्रं व्याप्तं तदुत्पातक्षेत्रं तच्च भवाद्यक्षणवर्तिनामेव भवति, नयविशेषात्तु भवाद्यद्वित्रिसमयवर्तिनामपि । समुद्घातः सप्तविधः प्रतीतः, तद्गतैर्यावत्क्षेत्रं रुद्धं तत्समुद्घातक्षेत्रम् । स्वस्थानं नाम शरीरगताऽवस्था, तेनावगाढं यत्क्षेत्रं तत्स्वस्थानक्षेत्रम् । तच्च द्विविधम्—गमनागमनक्षेत्रं तदितरच्च । तत्र गमनागमननिष्पन्नं तु विशेषतो देवानधिकृत्यैव द्रष्टव्यम्, अन्येषां तु गमनागमनक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्यभागमात्रतया स्वस्थानक्षेत्रेण तुल्यप्रायस्त्वात् । गमनागमनव्याप्तक्षेत्रस्य स्पर्शनाद्वारे एव विशेषोपयोगः, न त्विह क्षेत्रद्वारे; यतो गमनागमनार्हसर्वैर्जीवैर्गमनागमनेन व्याप्तं सामयिकक्षेत्रं लोकासंख्येयभागमितमेवेति । प्रस्तुते तूत्कृष्टादिप्रदेशबन्धकानामुक्तप्रकारत्रयेण यावत् क्षेत्रं प्राप्यते तावन्निरूपणीयम् । तत्रादौ तावदुत्कृष्टाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रमोघतो निरूपयन्नाह—

> जेट्ठपएसस्स जगअसंखंसे बंधगाऽत्थि सव्वेसिं ।
> णिरयणरसुराउविउव्वछक्काहारदुगतित्थाणं ॥११॥
> लोगासंखियभागे अणुरुपएसस्स बंधगा हुन्ते ।
> सेसाणं पयडीणं विण्णेया सव्वलोगम्मि ॥१२॥

(प्रे०) "जेट्ठपएसस्से"त्यादि, विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य संज्ञिपञ्चेन्द्रियेष्वेव भावेन तासां सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकस्याऽसंख्येयभागमात्रं भवति ।

अत्राऽयं नियमः—यासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः पर्याप्तबादरवायुकायान् विहाय असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणतो हीनास्तासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका लोकाऽसंख्येयभागे एव भवन्ति, इत्यतः प्रस्तुतं क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागमात्रमेव ।

अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं पुनरेवम्—नरकत्रिक-देवत्रिक वैक्रियद्विक-मनुष्यायु-आहारक-द्विक-जिननामरूपाणां द्वादशानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका लोकस्याऽसंख्येयतमे भागे वर्तन्ते, पञ्चेन्द्रियाणामेव मनुष्यायुर्वर्जनरकाद्येकादशानां बन्धकत्वात्पञ्चेन्द्रियाणां च त्रिविधमपि क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभाग एवेति प्रस्तुतेऽपि तावत् । अयं भावः—पर्याप्तबादरवायुकायान् विहाय यत्र जीवा असंख्येयलोकतो हीनास्तत्र तेषां केवलिसमुद्घातक्षेत्रं विहाय त्रिविधमपि क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागमितं भवति, कथं ज्ञायते? श्रीमदार्यश्यामाचार्येण श्रीप्रज्ञापनायां द्वितीयस्थानपदे त्रिविधक्षेत्रं पञ्चेन्द्रियादीनां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणं दर्शितमिति । तदेवं प्रस्तुते नरकत्रिकाद्येकादशानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणमेव क्षेत्रं भवति । मनुष्यायुषो बन्धस्य सूक्ष्माणां भावेऽपि तस्य बन्धकाः प्रकृष्टतोऽपि श्रेण्यसंख्येयभागतोऽधिका नैव भवन्ति, तदायुर्वेदकानामुत्कृष्टतः श्रेण्यसंख्येयभागमात्रत्वात् , अतस्तस्याऽपि बन्धका लोकाऽसंख्येयभागप्रमाण एव क्षेत्रे प्राप्यन्ते । शेषाणामष्टोत्तरशतस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः सर्वलोके भवन्ति सर्वलोकव्यापिनामनन्तानां सूक्ष्माणां तद्बन्धकतया लाभादिति ॥९१-९२॥

अथ मार्गणास्वायुर्वर्जानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं प्रदर्शयितुकामो यासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं तासु तथैव प्राह—

सव्वसुहुमभेएसुं सव्वाउग्गाण आउवज्जाणं ।
होअन्ति बंधगा खलु जेट्ठपएसस्स सव्वजगे ॥९३॥

(प्रे०) "सव्व"त्यादि, सूक्ष्मैकेन्द्रियपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायसत्केषु त्रिषु त्रिषु भेदेष्विति सर्वसंख्ययाऽष्टादश सूक्ष्मभेदेषु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां सर्वासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः सर्वस्मिँल्लोके भवन्ति, सूक्ष्माणां सर्वलोकव्यापित्वात् , एकैकाऽवगाहनायां सूक्ष्मपृथ्व्यादीनामसंख्येयलोकप्रमाणानां सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायिकानां चाऽनन्तानां भावादिति ॥९३॥ अथाऽन्यासु मार्गणासु प्राह

एगिंदियम्मि तदखिलबायरभेएसु णरदुगुच्चाणं ।
लोगासंखियभागे एआसु तहा अपज्जवाउम्मि ॥९४॥ (गीतिः)
णेया सुहमेगिंदियजोग्गाणं पंचसयरिपयडीणं ।
सव्वजगे सेसाणं हवन्ति देसूणलोगम्मि ॥९५॥
णवरं सयं च्चिअ ऊज्झं बायरवज्जाण सेसपयडीणं ।
एगिंदियतब्बायरतप्पज्जत्तेसु णाऊणं ॥९६॥

(प्रे०) "एगिंदियम्मि" इत्यादि, एकेन्द्रियौघबादरैकेन्द्रियौघपर्याप्तबादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणाचतुष्के बादराणामेव सर्वप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, तत्राऽपि मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोस्तेजोवायुकायिकानां बन्धाऽभावात्पृथ्व्यब्वनस्पतिकायिकानामेव तद्बन्धाच्च स्वस्थानेन लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणक्षेत्रे एव ते भवन्ति, वायुकायान्विहाय शेषबादराणां स्वस्थानेन लोकासंख्येयभाग एवावस्थानात् । ननु समुद्घाते वर्तमानानां बादरपृथ्व्यादीनां मनुष्यद्विकादिज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्कथं तत्क्षेत्रस्योक्तताऽऽधिक्यं न भवति, कुतस्तल्लोकाऽसंख्येयभाग एव प्राप्यते ? इति चेद्, उच्यते—उत्पादाऽवस्थायां तु ज्येष्ठयोगाऽभावान्न तत्क्षेत्रं प्रस्तुते लभ्यते, मारणान्तिकसमुद्घाते वर्तमानास्तु यत्रोत्पत्स्यन्ते तत्प्रायोग्या एव प्रकृतीर्बध्नन्ति । मनुष्यगतावुत्पद्यमाना जीवा असंख्येयलोकतोऽतीवहीनाः अतः प्रस्तुतमार्गणाचतुष्के उक्तप्रकृतित्रिकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकजीवानामानन्त्येऽपि समुद्घाताऽवस्थायां वर्तमानास्तु मनुष्यद्विकस्य बन्धकाः असंख्येयाः सन्तोऽपि ते श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणास्ततो न्यूना वा । उच्चैर्गोत्रस्य तु ते संख्येया एवेति स्वस्थानाऽतिरिक्तं समुद्घातक्षेत्रमपि लोकाऽसंख्येयभागं नातिक्रमतीति तथाभणितमिति ।

उक्तमार्गणाचतुष्के शेषाणामायुष्कवर्जानां चतुरुत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो बादरवायुकायिकस्याऽपि भवति, अत एकेन्द्रियौघ-बादरैकेन्द्रिय-पर्याप्तबादरैकेन्द्रिया-ऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तबादरवायुकायरूपासु पञ्चमार्गणासु सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेः प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणं भवति, सूक्ष्मेषूत्पित्सूनामपि एतासां मार्गणाप्रायोग्यज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात्, कृतमारणसमुद्घातैरनन्तैरसंख्यलोकप्रमितैर्वा सर्वलोको व्याप्यते । सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याः पञ्चसप्ततिप्रकृतयः पुनरिमाः—सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनपुंसकवेदहास्यादियुगलद्वयसाताऽसातवेदनीयनीचैर्गोत्रतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरहुण्डकपराघातोच्छ्वासस्थावरचतुष्कपर्याप्तनामप्रत्येकनामस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभदुर्भगाऽनादेयाऽयशःकीर्तिनामानीति ।

अथ स्त्रीवेदपुरुषवेदद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कचरमवर्जसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयाऽऽतपोद्योतत्रसबादरसुभगचतुष्कदुःस्वरनामानीत्येतासामुक्तातिरिक्तैकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामुक्तमार्गणापञ्चकाद् बादराऽपर्याप्तैकेन्द्रियेऽपर्याप्तबादरवायुकाये च क्षेत्रं देशोनलोको भवति, कथं नाधिकम् ? सूक्ष्मेषूत्पित्सूनां समुद्घाते आसां बन्धाऽभावात् । कथं बन्धाभावः ? बादरनाम विहाय शेषाणां त्रसप्रायोग्यत्वादातपोद्योतयशःकीर्तिनाम्नां पुनर्यथासम्भवं तेजोवायुकायवर्जबादरपर्याप्तप्रत्येकैकेन्द्रियप्रायोग्यत्वाच्च । इत्थं हि एतद्वेदनप्रायोग्यजीवाः प्रतराऽसंख्येयभागप्रमाणा इति ते लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणं क्षेत्रं मरणसमुद्घातेन प्राप्नुवन्ति, नाधि-

कम् । तथाऽपिमार्गणाद्वयेऽपर्याप्तबादरवायुकायिकानां प्रवेशात्तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्य देशोनलोकमितत्वाच्चैकोनत्रिंशत्प्रकृतिज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रमभिहितम् । शेषमार्गणात्रये पुनर्बादरनामवर्जशेषाऽष्टाविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं स्वयमुपयुज्य वक्तव्यम् । इतः ? आसु तिसृषु मार्गणासु बादरपर्याप्तवायुकायिकानां स्वस्थानक्षेत्रस्य देशोनलोकमितत्वेऽपि उत्कृष्टप्रदेशबन्धकतया वर्तमानानां तेषां देशोनलोकव्यापितया निर्णयाऽभावात् । बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तु मार्गणापञ्चके देशोनलोक एव भवन्ति । अपर्याप्तबादरैकेन्द्रियेऽपर्याप्तबादरवायुकाये च स्वस्थानेनैतावत्क्षेत्रं व्याप्तम् । शेषमार्गणात्रये तु तत्र प्रविष्टानां बादरपर्याप्तसाधारणवनस्पतिकायानां बादराऽपर्याप्तवायुकायिकतयोत्पित्सूनामसंख्येयलोकप्रदेशमितानां बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्र मरणसमुद्घातेन देशोनलोकस्सर्वदा प्राप्यते ।

भावार्थः पुनरयम्—अपर्याप्तबादरवायुकायमार्गणायामपर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणायां च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽपर्याप्तबादरवायुकायिकानां भावेन तेषां प्राय एकैकाऽवगाहनायामसंख्येयलोकप्रदेशप्रमाणजीवानां सद्भावेन च उक्तमार्गणाद्वये स्त्रीवेदाद्येकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं प्राप्यते ।

एकेन्द्रियौघे बादरैकेन्द्रियौघे पर्याप्तबादरैकेन्द्रिये चेति मार्गणात्रये बादरपर्याप्तपृथ्व्यादिपञ्चकायिका ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति, तेभ्यो बादरवायुकायिकान् विहाय शेषाणां बादरपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजोवनस्पतिकायिकानामुक्तप्रकृतिबन्धकाना क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभाग एव, तेषां पृथ्व्यादीनां स्वस्थानक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणत्वात् । स्त्रीवेदादीना ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां समुद्घातक्षेत्रमपि साधारणवनस्पतिकायिकान्विहाय लोकाऽसंख्येयभागमात्रमिति सुज्ञातम्, बन्धकराशीनां पतद्ग्रहराशीनां चाऽल्पत्वात्, साधारणवने तु बन्धयोग्यराशीनां बाहुल्येऽपि पतद्ग्रहराशीनामत्यल्पत्वाद् न लोकाऽसंख्येयभागतोऽधिकक्षेत्रं व्याप्नुवन्ति । केवलं बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां साधारणवनस्पतिकायिकानां देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं भवति, पतद्ग्रहराशीनामपि बादराऽपर्याप्तवायुकायरूपाणामसंख्येयलोकप्रमाणत्वाद्देशोनलोकक्षेत्रे भावाच्च । प्रस्तुते पतद्ग्रहराशिर्नाम बध्यमानप्रकृत्युदययोग्यजीवसमुदाय इति । एवञ्चोक्तमार्गणात्रये स्त्रीवेदादिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रबाहुल्यं पर्याप्तबादरवायुकायिकानाश्रित्य प्राप्यते; अतः पर्याप्तबादरवायुकायिकानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रमन्वेषणीयम् । पर्याप्तबादरवायुकायिका घनीकृतलोकस्य संख्येयतमे भागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावन्तो भवन्ति । उक्तं च जीवसमासे-"पज्जत्तवायुकाया भागो लोगस्स संखेज्जो" । १६० ।। संख्याततमे लोकाकाशस्य भागे यावन्तो नभःप्रदेशास्तत्प्रमाणाः सर्वेऽपि बादरपर्याप्ता वायवो भवन्तीत्यर्थः" तद्वृत्तौ चेति । किञ्च तेषां स्वस्थानक्षेत्रं देशोनलोकप्रमितम् । वायुकायिकजीवस्य प्रकृष्टाऽप्यवगाहना

संख्येयभागभाजितघनाङ्गुलैकभागमाना । यदि पुनः संख्याताऽऽकाशप्रदेशमिता एवाऽवगाहना स्यात्तदा प्रत्येकं भिन्ना संघटते । अत एकजीवव्याप्ताऽवगाहनायां जघन्यतोऽपि घनाङ्गुलाऽसंख्येयभागगतप्रदेशसंख्याप्रमितजीवास्सन्ति, ते च जीवाः कालतोऽसंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीप्रमिता ज्ञातव्याः । कुत्रचिदेकावगाहनायां जीवाः पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमिता दर्शिताः, तत्र क्षेत्रपल्योपमस्याऽसंख्येयभागो विज्ञेयः, स च घनाङ्गुलस्याऽसंख्येयभागमित एव स्यात्, क्षेत्रपल्योपमे संख्यातानां घनाङ्गुलानामेव भावात् ।

किञ्च पर्याप्तबादरवायुकायिकप्रायोग्याणि योगस्थानानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणानि, एकैकस्यामवगाहनायां जीवानां श्रेण्यसंख्येयभागतोऽतीवन्यूनत्वात् न तेषां स्वस्थानेन वर्तमानानां व्याप्तासु सर्वाऽवगाहनासु स्त्रीवेदादीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संभवति, अपि तु लोकाऽसंख्येयभागमात्रव्याप्तानामेव संभाव्यत इति । यद्वा योगस्थानानां श्रेण्यसंख्येयभागमात्रत्वेऽपि तानि यदि घनाङ्गुलाऽसंख्यभागमात्राण्येव स्युस्तदा एकैकस्यामवगाहनायामप्युत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः कदाचित्प्राप्येरन्, तेन देशोनलोकप्रमाणमपि क्षेत्रमुक्तमार्गणात्रये घटामञ्चतीत्येवं संभावनाद्वयमाश्रित्य मूले "णवर" इत्यादि कथितम् । तदेवं ज्ञानावरणादिपञ्चसप्ततिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं बादरनाम्नश्च देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं साधारणवनस्पतिकायिकानधिकृत्य प्राप्यत इति । एकेन्द्रियादिमार्गणात्रये स्त्रीवेदाद्यष्टाविंशतेर्लोकासंख्येयभागमात्रं क्षेत्रं देशोनलोकप्रमाणं वा क्षेत्रं प्राप्यत इति ॥१४-१५-१६॥

अथ बादरवायुकायसत्कमार्गणात्रये ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं निरूपयन्नाह

सयमेव वाउकाये बायरवाउम्मि तस्स पज्जत्ते ।
णाऊणं विण्णेयं मप्पाउग्गाण सव्वेसिं ॥ १७ ॥

(प्रे०) "**सयमेव**" इत्यादि, वायुकायौघे बादरवायुकायौघे पर्याप्तबादरवायुकाये चेति मार्गणात्रये आयुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्याणां चतुरुत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धका बादरपर्याप्तवायुकायिका एव, तेषां च क्षेत्रविषयेऽनन्तरदर्शितस्त्रीवेदादिज्येष्ठप्रदेशबन्धकक्षेत्रयुक्त्या लोकाऽसंख्येयभागमात्रम्, यद्वा देशोनलोकप्रमाणमिति विकल्पद्वयस्य संभवेनैकतरनिर्णयाऽभावसूचकं मूले "**सयमेव णाऊण विण्णेय**" इत्युक्तम् । तत्र स्वयमित्यनेन सिद्धान्ताऽनुसारेण तज्ज्ञातृसकाशाज्ज्ञात्वोहादिना विशेषतो हेतूनां स्थैर्यमापादनीयमिति दर्शितम् ॥१७॥

अथाऽपर्याप्तबादरपृथ्व्यादिमार्गणासु शेषमार्गणासु च प्राह

अप्पज्जबायरपुढविदगऽग्गिपत्तेअवणणिगोएसुं ।

बायरतिणिगोएसुं ऊणजगो बायरस्स भवे ॥ १८ ॥
होअन्ति सव्वलोगे सुहमेगक्खऽरिहपंचसयरीए ।
सेसाण असंखंसे जगस्स सेसासु सव्वेसिं ॥ १९ ॥

(प्रे०) "अपज्जे"त्यादि, बादराऽपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजःप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाचतुष्के वनस्पतिकायौघे निगोदौघे बादरनिगोदभेदत्रये चेति नवमार्गणासु बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्देशोनलोकक्षेत्रं व्याप्तम्, बादरवायुकायिकानां देशोनलोकक्षेत्रे भावेन तेषां चाऽसंख्यलोकमितत्वेन तत्रोत्पित्सूनां मरणसमुद्घातगतानामसंख्यलोकप्रमिततत्तन्मार्गणागतजीवानां बादरनामज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां देशोनलोकप्रमाणक्षेत्रे सर्वदा प्राप्यमानत्वात् ।

सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्यपञ्चसप्ततिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणं भवति; निरुक्तमार्गणागतानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धार्हाणां स्वस्थानेन लोकाऽसंख्येयभागमात्रव्याप्तत्वेऽपि तेषामसंख्यलोकमितत्वेन वाऽनन्तत्वेन वा तैः सूक्ष्मेषूत्पित्सुभिर्मारणसमुद्घातगतैः सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं व्याप्यते, तथा तादृगवस्थायां तेषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽपि भवतीति । उक्तशेषप्रकृतीनां बादराऽपर्याप्ततेजस्काये स्त्रीवेदाद्यष्टाविंशतेः, शेषमार्गणाऽष्टके स्त्रीवेदाद्येकत्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः स्वस्थानेन मरणसमुद्घातेन च लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणं क्षेत्रं व्याप्यते, सूक्ष्मेषु बादरवायुकायिकेषु वा समुत्पित्सूनां मरणसमुद्घात आसां बन्धाभावात् । शेषैकत्रिंशत्प्रकृतयः पुनरेताः—स्त्रीवेदपुरुषवेदमनुष्यद्विकद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्काऽन्तिमवर्जसंस्थानपञ्चकखगतिद्विकाऽऽतपोद्योतत्रससुभगचतुष्कदुःस्वरनामोच्चैर्गोत्राणि ।

एवं पादोनगाथासप्तकेनाऽष्टादशसूक्ष्मभेदाऽपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिकायवायुकायौघबादरवायुकायौघपर्याप्तबादरवायुकायैकेन्द्रियौघबादरैकेन्द्रियौघपर्याप्ताऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियवनस्पतिकायौघसाधारणवनस्पतिकायौघबादरसाधारणवनस्पतिकायौघपर्याप्ताऽपर्याप्तबादरसाधारणवनस्पतिकायरूपासु पञ्चत्रिंशद्मार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रमुक्तम् । अथ शेषमार्गणासु तद्दर्शयन्नाह- "**सेसासुं सव्वेसिं**"मित्यादि, गाथोत्तरार्धोक्तं "**असंखंसे जगस्स**" इति पदमत्राऽपि सम्बन्धनीयम्, तेनाऽयमर्थो भवति—शेषासूक्तातिरिक्तासु पञ्चत्रिंशदुत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका लोकासंख्यभागे भवन्ति, एताभ्यो मार्गणाभ्यः कासुचिन्मार्गणासु जीवानामसंख्येयलोकतो न्यूनत्वाल्लोकाऽसंख्येयभागमात्रमेव क्षेत्रं भवति, कासुचिच्च मार्गणासु जीवानामसंख्येयलोकप्रमाणानामनन्तानां वा भावेऽपि तासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां जीवानामसंख्येयलोकतोऽतीवन्यूनत्वात् लोकाऽसंख्येयभागमात्रमेव तैः क्षेत्रं व्याप्तमिति ।

अत्राऽनन्तजीवयुक्तमार्गणाः पुनरेताः तिर्यग्गत्योघकाययोगौवौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगनपुंसकवेदकषायचतुष्कमत्यज्ञानश्रुताऽज्ञानासंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतलेश्याभव्याऽभव्यमिथ्यात्वासंज्याहारकाऽनाहारकमार्गणास्त्रयोविंशतिः । असंख्यलोकप्रमाणजीवयुक्तसप्तमार्गणाः पुनरेताः पृथ्वीकायौघबादरपृथ्वीकायौघाऽप्कायौघबादराप्कायौघतेजस्कायौघबादरतेजस्कायौघप्रत्येकवनस्पतिकायौघमार्गणा इति ।

शेषपञ्चोत्तरशतमार्गणागतजीवाः पुनरसंख्येयलोकतो हीनतमप्रमाणाः, संख्येयजीवा असंख्येयजीवा वा भवन्ति । ता नामतः पुनरिमाः–तिर्यग्गत्योघं विहाय षट्चत्वारिंशद्गतिभेदा नवविकलाक्षभेदास्त्रयः पञ्चेन्द्रियभेदा बादरपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजःप्रत्येकवनस्पतिकायास्त्रयस्त्रसकायभेदा मनोयोगौघश्चत्वारस्तदुत्तरभेदा वचनयोगौघश्चत्वारस्तदुत्तरभेदा वैक्रियतन्मिश्राऽऽहारकतन्मिश्रकाययोगाश्चत्वारः स्त्रीपुंवेदौ गतवेदश्च मतिश्रुताऽवधिमनःपर्यवविभङ्गज्ञानपञ्चकं संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायदेशविरतयथाख्यातसंयमभेदाश्चक्षुरवधिदर्शने तेजःपद्मशुक्ललेश्याः सम्यक्त्वौघोपशमसम्यक्त्वक्षायोपशमिकसम्यक्त्वक्षायिकसम्यक्त्वमिश्रसम्यक्त्वसास्वादनरूपाः षट् संज्ञिमार्गणा चेति ॥९८-९९॥

अथ मार्गणास्वायुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं दर्शयति–

सव्वासु मग्गणासुं सप्पाउग्गाण सव्वपयडीणं ।
अणुरुपएसस्स अणुरुठिइव्व खेत्तं मुणेयव्वं ॥१०१॥

(प्रे०) "सव्वासु" इत्यादि, सुगमार्था । अत्राऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्राऽवगमायेमे नियमा ज्ञेया भवन्ति । तद्यथा–

(१) (अ) यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां बन्धकाः सूक्ष्मा भवन्ति; तासु मार्गणासु तासां प्रकृतीनां बन्धकक्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणमवसातव्यमिति ।

(ब) यासु मार्गणासु सूक्ष्मजीवानां प्रवेशोऽपि यासां प्रकृतीनां ते बन्धका न भवन्ति, तासां प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागमात्रमवसातव्यम् ।

(२) यासु मार्गणासु सूक्ष्मजीवानां प्रवेशो नाऽस्ति, किन्तु बादराऽपर्याप्तपृथ्व्यादिपञ्चानां प्रवेशो बादरसाधारणवनस्पतिकायिकानां वा प्रवेशस्तासु असंख्यलोकप्रदेशप्रमाणजीवास्वनन्तजीवासु वा मार्गणासु

(i) सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणं भवति ।

(ii) बादरनाम्नो बन्धकैः क्षेत्रं देशोनलोकप्रमाणं प्राप्यते ।

(iii) शेषप्रकृतिबन्धका यदि बादरवायुकायिका अपि भवन्ति तर्हि तासां प्रकृतीनां बन्धकक्षेत्रं देशोनलोकप्रमाणं ज्ञातव्यम् ।

(iv) यदि शेषप्रकृतीनां बन्धकतया बादरवायुकायिका न भवन्ति, तर्हि तासां प्रकृतीनां बन्धकक्षेत्र लोकाऽसंख्येयभागमात्रं ज्ञेयम् ।

(३) बादरपर्याप्तवायुकायिकानां प्रवेशे तेषां बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं भवति ।

(४) बादरपर्याप्तवायुकायिकान्विहाय यासु मार्गणासु जीवा असंख्यलोकाकाशप्रदेशतो न्यूना भवन्ति, तासु पञ्चोत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणं क्षेत्रं भवति । एतन्नियमचतुष्केण मार्गणासु बन्धप्रायोग्याऽऽयुर्वर्जप्रकृतीनां तदनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां च क्षेत्रं ज्ञातव्यम् ।

तद्यथा-तिर्यग्गत्योघे एकेन्द्रियौघपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायौघनिगोदौघेषु अष्टादशसु एकेन्द्रियपृथ्व्यप्तेजोवायुनिगोदसत्कसूक्ष्मभेदेषु काययोगौघौदारिककाययोगतन्मिश्रकार्मणयोगनपुंसकवेदकषायचतुष्काऽज्ञानद्वयाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतलेश्याभव्याऽभव्यमिथ्यात्वासंज्ञ्याहारकानाहारकमार्गणासु समुदितास्वष्टचत्वारिंशति बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रमोघवद् भवति। तद्यथा- वैक्रियषट्काऽऽहारकद्विकजिननाम्नां लोकासंख्येयभागः; प्रथमनियमद्वितीयांशस्य प्रवेशात् । शेषाणां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां सर्वलोकः, प्रथमनियमप्रथमांशस्य लाभात् । एवमेव तिर्यगोघादिमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां क्षेत्रं भावनीयम् ।

बादरैकेन्द्रियौघपर्याप्ताऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियबादरवायुकायौघाऽपर्याप्तबादरवायुकायमार्गणासु पञ्चसु सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां तिर्यगायुर्वर्जानां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः सर्वस्मिँल्लोके भवन्ति, बादरैकेन्द्रियमार्गणात्रये मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोर्लोकाऽसंख्येयभागः; सूक्ष्माणां बादरवायुकायिकानां च तद्बन्धकत्वेनाऽप्रवेशेन द्वितीयनियमस्य चतुर्थांऽशेऽन्तर्भावात् । शेषाणामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकैर्देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं व्याप्यते, द्वितीयनियमतृतीयांशप्रवेशात् ।

बादरपृथ्वीकायौघाऽपर्याप्तबादरपृथ्वीकायबादराप्कायौघाऽपर्याप्तबादराऽप्कायबादरतेजस्कायौघाऽपर्याप्तबादरतेजस्कायप्रत्येकवनस्पतिकायौघाऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायबादरसाधारणवनस्पतिकायभेदत्रयरूपास्वेकादशमार्गणासु सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेः प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकः, द्वितीयनियमप्रथमांशप्रवेशात् । बादरनाम्नो देशोनलोकः, द्वितीयनियमद्वितीयांशप्रवेशात् ।

ननु बादराऽपर्याप्तपृथ्व्यादिकायतया सर्वलोकव्यापिसूक्ष्मादिजीवेभ्योऽसंख्येयलोकप्रमाणजीवानां प्रतिसमयमुत्पद्यमानत्वेन बादराऽपर्याप्तपृथ्व्यादीनामुत्पादक्षेत्रस्य सर्वलोकप्रमाणत्वात्; तथैव श्रीप्रज्ञापनासूत्रे द्वितीये क्षेत्रपदे बादराऽपर्याप्तपृथ्व्यादीनामुत्पादक्षेत्रस्य सर्वलोकप्रमाणस्य कथितत्वात्, तत्र बादरनाम्नो बन्धस्य भावाच्च बादरनाम्नः सर्वलोकप्रमाणैव स्पर्शनाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धे तथैव प्रकृतिबन्धेऽनुत्कृष्टस्थितिबन्धादिषु च वक्तुमुचिता, एवं सर्वलोकेभ्यो बादराऽपर्याप्तपृथ्व्यादितयोत्पित्सूनां मनुष्यगत्यादीनां बन्धस्य सप्ततिकादौ एकेन्द्रियाणामेकविंशत्युदये विग्रहगतौ वर्तमानानां मनुष्यप्रायोग्यैकोनत्रिंशद्बन्धस्याऽपि प्रतिपादनाद् मनुष्यगत्यादिसर्वप्रकृतीनामपि सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं प्राप्यते, अतो प्रस्तुते लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणक्षेत्रस्य निरूपणमसङ्गतमिति चेत्, न, अभिप्रायस्याऽनवगमात्। अयं भावः--प्रकृतिबन्धादिषु यत्र स्वस्थानसमुद्घातक्षेत्रयोर्लाभः, तत्रोत्पादक्षेत्रस्य विवक्षा नैव कृता, अत एव प्रकृतिबन्धेऽपि मरणसमुद्घातेन स्वस्थानेन च भावना विहिता न पुनरुत्पादेन सर्वलोकादिरूपा, अत एव स्पर्शनाद्वारेऽपि तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामतीतकाले सर्वलोकेभ्योऽप्युत्पादात्सप्तोत्तरशतप्रकृतिसत्कानुत्कृष्टप्रदेशबन्धादीनां सर्वलोकप्रमाणस्पर्शनाया वक्तुमुचितत्वेऽपि उत्पादक्षेत्रस्याऽविवक्षणात्, मरणसमुद्घातादिना यावती स्पर्शना प्राप्ता तावती दर्शिता इत्यवधेयम्, ततो मार्गणास्वनुत्कृष्टाऽजघन्यप्रदेशबन्धविषये क्षेत्रस्पर्शनाद्वारे उत्पातक्षेत्रेण क्षेत्रं स्पर्शना वा न दर्शिता। उत्पादक्षेत्रेण तच्चिन्तयितुकामेन क्षेत्रस्पर्शनानामो ग्रन्थस्य वृत्तिमवधार्य पूर्वापरमुपयुज्य च क्षेत्रस्पर्शनयोर्भावना भावनीया, सुगमप्रायत्वात् न दर्शयिष्याम इति।

बादरपृथ्वीकायौघादिनवमार्गणासु शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामेकत्रिंशत्प्रकृतीनां बादरतेजस्कायभेदद्वयेऽष्टाविंशतिप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागः, द्वितीयनियमचतुर्थांशस्य भावात्।

बादरपर्याप्तवायुकायमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां चतुरुत्तरशतस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका देशोनलोके भवन्ति, तृतीयनियमस्य प्रसरात्।

शेषासु पञ्चोत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां प्रस्तुतबन्धका लोकाऽसंख्येयभाग एव प्राप्यन्ते; चतुर्थनियमविषयत्वात्। ताश्च पञ्चोत्तरशतमार्गणा नामत इमाः—तिर्यग्गत्योघं विना पट्चत्वारिंशद्गतिभेदा नवविकलाक्षत्रिपञ्चेन्द्रियभेदा बादरपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजस्कायप्रत्येकवनस्पतिकायत्रित्रसकायभेदा मनोयोगौघश्चत्वारस्तदुत्तरभेदा वचनयोगौघश्चत्वारस्तदुत्तरभेदा वैक्रियतन्मिश्रयोगद्वयमाहारकतन्मिश्रयोगद्वयं स्त्रीपुरुषवेदौ अपगतवेदश्च मतिश्रुताऽवधिमनःपर्यायज्ञानानि विभङ्गज्ञानं संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायदेशविरतय-

श्चक्षुरवधिदर्शने तेजःपद्मशुक्ललेश्यात्रयं सम्यक्त्वौघोपशमक्षयोपशमक्षायिकमिश्रसास्वादनसंज्ञकाः षट् सम्यक्त्वभेदाः संज्ञिमार्गणा चेति । केवलिसमुद्घातगतसातवेदनीयबन्धकक्षेत्रं विहाय अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकस्य क्षेत्रं प्रकृतिबन्धकक्षेत्रवदेव भवति, अत एव "पयडिबन्धव्व" इति विहाय "अणुक्कोडिव्व" इति भणितम्, भावना प्रकृतिबन्धाऽनुसारेणाऽप्यत्र तद्विशेष-जिज्ञासुना कार्येति । गाथार्थस्तु सुगम इति न वितन्यत इति ॥१००॥

अथ मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठाऽज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं प्रदिदर्शयिषुरादौ तावज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं प्रदर्शयन्नाह

सव्वसुहुमभेएसुं जेट्ठपएसस्स सव्वलोगम्मि ।
तिरियाउस्स हवन्ते हुन्ति णराउस्स ओघव्व ॥१०१॥
तिरियाउस्सूणजगे एगिंदियवाउबायरापज्जे ।
सयमुज्झं सेसेसुं एगिंदियवाउभेएसुं ॥१०२॥
मणुसाउस्स हवन्ते लोगस्स असंखभागम्मि ।
सेसासुं सव्वेसिं सप्पाउग्गाण आऊणं ॥१०३॥ (उपगीतिः)

(प्रे०) "सव्वे"त्यादि, अष्टादशसूक्ष्मभेदेषु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणं विज्ञेयम्, मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागो भवति, तच्चैवम्—देवमनुष्यनरकायुषां यासु यासु मार्गणासु बन्धस्तासु तासु मार्गणासु तेषां प्रत्येकं ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाश्च लोकस्यासंख्येयतमे भागे भवन्ति । तिर्यगायुषस्तु ज्येष्ठप्रदेशबन्धकक्षेत्रं यत्र सूक्ष्माणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वं तत्र सर्वलोकः, यत्र बादरापर्याप्त-वायुकायिका ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तत्र तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं देशोनलोकः, बादरवायु-कायिकानां देशोनलोकक्षेत्रेऽवस्थानात्, मरणसमुद्घातेन सर्वलोकक्षेत्रस्य भावेऽपि आयु-र्बन्धतो निवृत्तानामेव मरणसमुद्घातप्रारम्भान्न तदधिकारः । शेषासु पुनस्तिर्यगायुषो बन्धे तेषां क्षेत्रं लोकासंख्येयभागप्रमितं भवति, तेषां स्वस्थानेन गमनागमनेन च लोकाऽसंख्येयतमे भागे एवाऽवस्थानात् । अतः सूक्ष्मसत्काऽष्टादशभेदेषु तिर्यगायुरुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां सर्वलोक-प्रमाणं क्षेत्रं भवति ।

अथ "तिरियाउस्सूणजगे" इत्यादिना शेषैकेन्द्रियवायुकायसत्कभेदेषु प्रकृतं कथयति—अपर्याप्तबादरैकेन्द्रिये बादराऽपर्याप्तवायुकाये चेति मार्गणाद्वये तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं देशोनलोकप्रमाणं भवति, तेषामसंख्यलोकादिप्रमाणत्वात् देशोनलोकव्यापित्वाच्च । शेषेषु भेदेषु चैकेन्द्रियसत्केषु वायुकायसत्केषु चैकेन्द्रियौघ-बादरैकेन्द्रियौघ-पर्याप्तबादरैकेन्द्रिय-

वायुकायौघ-बादरवायुकायौघ-पर्याप्तबादरवायुकायरूपेषु षट्सु भेदेषु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणं देशोनलोकप्रमाणं वा क्षेत्रं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वयमुपयुज्य सिद्धान्ताऽनुसारेण वाच्यम्, तज्ज्ञातृसकाशाद् ज्ञातव्यमिति भावः । उक्तमार्गणाऽष्टकेभ्यो वायुकायसत्कमार्गणाचतुष्के मनुष्यायुषो बन्ध एव न भवति, अत एकेन्द्रियसत्कभेदचतुष्के मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकासंख्येयभागप्रमाणमेव भवति; बादरपृथ्व्यव्वनस्पतिकायिकानां लोकाऽसंख्यभागमात्रे एव स्वस्थानेनाऽवस्थानादिति ।

उक्तशेषाभ्यः सप्तत्रिंशदुत्तरशतमार्गणाभ्यो यासु तिर्यगायुषो बन्धः सम्भवति, तासु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका लोकासंख्येयभागमात्रे क्षेत्रे भवन्ति, सूक्ष्माणां बादरवायुकायिकानां च मार्गणास्वप्रवेशाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽनर्हत्वाद्वा इति ॥१०१-१०३॥

अथ मार्गणास्वायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं प्रदर्शयन्नाह

तिरिये एगिंदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहमेसु ।
कायोरालदुगेसुं णपुंसगे चउकसायेसुं ॥१०४॥
अण्णाणदुगे अजए अचक्खुदंसणतिअसुहलेसासुं ।
भवियेयरमिच्छेसुं असण्णिआहारगेसुं च ॥१०५॥
सप्पाउग्गाऊणं अणुरुपएसस्स अत्थि ओघव्व ।

(प्रे०) "तिरिये" इत्यादि, तिर्यग्गत्योघादिषट्चत्वारिंशद्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रमोघवद्विज्ञेयम् । तद्यथा—एतासु सर्वासु तिर्यगायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकः, सूक्ष्माणां प्रवेशात् । मनुष्यायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागः । तिर्यग्गत्योघ-काययोगौघौदारिककाययोगनपुंसकवेदकषायचतुष्काऽज्ञानद्विकाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनाऽशुभलेश्यात्रयभव्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकमार्गणासु विंशतौ देवनरकायुषोर्बन्धस्तासु तयोरज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागमात्रं विज्ञेयम् । शेषैकेन्द्रियौघादिषड्विंशतिमार्गणासु देवनरकायुषोर्बन्ध एव न भवति इति स्वप्रायोग्यायुषां ग्रहणम् ॥१०४-१०५॥

अथ बादरैकेन्द्रियभेदत्रये बादरवायुकायभेदत्रये शेषासु च प्राह

सव्वेसुं खलु बायरएगिंदियवाउभेएसुं ॥१०६॥
तिरियाउस्सूणजगे असंखभागे जगस्स णायव्वा ।
मणुसाउगस्स अण्णहि सप्पाउग्गाण आऊणं ॥१०७॥

(प्रे०) 'सव्वेसु' इत्यादि, "मणुसाउगस्स" इत्यन्तसाधिकगाथया मार्गणाषट्के क्षेत्रं निरूपितम्, तत्र त्रिविधानां बादरवायुकायिकानां देशोनलोकव्यापित्वात्प्रत्यवगाहनमसंख्यजीवानां भावात्, तत्संख्येयभागमितानां तिर्यगायुषो बन्धकत्वात्, तिर्यगायुर्बन्धकजीवानामसंख्येयभागं विहायाऽसंख्येयबहुभागमितानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकत्वेन देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं सुसंगतम्। एवं बादरैकेन्द्रियभेदत्रयेऽपि वायुकायाऽपेक्षयैव देशोनलोकक्षेत्रं भावनीयम्। बादरवायुकायिकान् विहाय बादरैकेन्द्रियभेदत्रये तिर्यगायुषो बन्धकक्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणमेव भवति, बादरवायुकायान्विहाय शेषबादरपृथ्व्यादिकायैस्त्रसकायैश्च स्वस्थानेन यथासंभवं वेदनाकषायवैक्रियतैजसाऽऽहारकसमुद्घातगतैश्च लोकाऽसंख्येयभागमात्रमेव क्षेत्रं रुध्यते इति। तथा बादरैकेन्द्रियभेदत्रये मनुष्यायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभाग एव भवतीति।

तदेवं द्विपञ्चाशन्मार्गणासु दर्शितमायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रम्। वैक्रियमिश्रादिसप्तमार्गणास्वायुषो बन्ध एव न भवति। शेषास्वेकादशोत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकासंख्येयभागमात्रमेव भवति। तत्र बादरनिगोदभेदत्रये जीवा अनन्ताः, बादरपृथ्व्यप्तेजःप्रत्येकवनस्पतिकायौघास्तदपर्याप्ताश्चेत्यष्टमार्गणासु जीवा असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाः, शेषासु शतमार्गणासु जीवा घनीकृतलोकस्यैकप्रादेशिकप्रतरतोऽपि न्यूनाः, एतास्वेकादशोत्तरशतमार्गणासु सूक्ष्माणां बादरवायुकायिकानामप्रवेशात् मरणसमुद्घातगतानां जीवानामायुर्बन्धाऽसंभवाच्च बन्धप्रायोग्यायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य लोकाऽसंख्येयभागप्रमितमेव क्षेत्रं भवतीति ॥१०६–१०७॥ तदेवमोघाऽऽदेशाभ्यामुत्कृष्टाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं निरूपितम्।

अथ जघन्यप्रदेशबन्धकानामजघन्यप्रदेशबन्धकानां च क्षेत्रमोघत आदेशतो मार्गणासु च निरूपयिषुर्लाघवार्थं सापवादातिदेशेनैव दर्शयन्नाह

ओहाएसेहि खलु अगुरुपएसव्व सव्वपयडीणं।
होअन्ति बन्धगा खलु हस्सियराणं पएसाणं ॥१०८॥
परमुप्पायस्सिह खलु अविवक्खाओऽत्थि जगअसंखंसो।
वायरपुहवीदगऽगणिपत्तेअवणेसु सि अपज्जेसु ॥१०९॥(गीतिः)
वायरतिणिगोएसु य सुहमाणिह-वायराण, ऊणजगे।
सुहमाणिहाण वायरंतयपज्जेगक्खवाऊसु ॥११०॥

सव्वेसिं विण णरतिगउच्चं पज्जत्तबायरेगक्खे ।
सयमुज्झं सव्वेसिं वायरपज्जत्तवाउम्मि ॥१११॥

(प्रे०) "ओहाएसेहि"मित्यादि, ओघतो विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनामादेशतस्तु वक्ष्यमाणापवादयुक्ता मार्गणा विहाय शेषासु त्रिपञ्चाशदुत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकानामजघन्यप्रदेशबन्धकानां च क्षेत्रं यथैव तत्तन्मार्गणासु वा तत्तत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां यावत्क्षेत्रं दर्शितम्, तावदत्र द्विविधप्रदेशबन्धकानां तद्भवतीति तथातिदेशः। अत्राऽजघन्यप्रदेशबन्धस्यातिदेशस्तु सुगमः, ज्येष्ठप्रदेशबन्धरूपं जघन्यप्रदेशबन्धरूपं चैकैकस्थानं विहाय शेषसर्वप्रदेशबन्धस्थानानामुभयत्र समानत्वात्। अतिदेशानुसारेण जघन्यप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं पुनरेवम्-यथा तिर्यगोघाद्यष्टचत्वारिंशन्मार्गणासु सूक्ष्मजीवानां प्रवेशाद् वैक्रियाष्टकाहारकद्विकजिननामानि मनुष्यायुश्च विहाय शेषाणामष्टोत्तरशतस्य सूक्ष्मजीवापेक्षयाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं प्राप्यते, तथैव जघन्यप्रदेशबन्धकानामपि, सूक्ष्माणामेवासां जघन्यप्रदेशबन्धकत्वात्, यथा च मनुष्यायुषो बन्धस्य सूक्ष्मजीवेषु भावेऽपि तद्बन्धकजीवानामत्यन्ताल्पतयाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्येयभागमात्रम्, तथैव जघन्यप्रदेशबन्धकानामपि। यथासंभवं बन्धप्रायोग्ये सति वैक्रियाष्टकाहारकद्विकजिननाम्नां तु पञ्चेन्द्रियाणामेव बन्धभावाल्लोकासंख्येयभागमितं क्षेत्रमतिदेशानुसारेण सुघटम्। अष्टचत्वारिंशन्मार्गणाः पुनरिमाः तिर्यग्गत्योघैकेन्द्रियौघसूक्ष्मैकेन्द्रियभेदत्रिकपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायौघसाधारणवनस्पतिकायौघ-सूक्ष्मपृथ्वीकायभेदत्रिकसूक्ष्माप्कायभेदत्रिकसूक्ष्मतेजस्कायभेदत्रिकसूक्ष्मवायुकायभेदत्रिकसूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायभेदत्रिककाययोगौदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगकार्मणयोगनपुंसकवेदकषायचतुष्कमत्यज्ञानश्रुताज्ञानासंयमाचक्षुर्दर्शनाशुभलेश्यात्रिकभव्याभव्यमिथ्यात्वासंज्ञ्याहारकानाहारकमार्गणा इति।

नरकगत्योघादिपञ्चोत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणं क्षेत्रमतिदेशानुसारेण प्राप्यत इति। आसु मार्गणागतानां जीवानां त्रिविधक्षेत्रस्यापि लोकासंख्यभागप्रमाणत्वात्। पञ्चोत्तरशतमार्गणा नामत इमाः—अष्टौ नरकभेदाश्चत्वारः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्भेदाश्चत्वारो मनुष्यभेदास्त्रिंशद् देवभेदाः, नवविकलाक्षमार्गणाः पञ्चेन्द्रियभेदत्रयम्, बादरपर्याप्तपृथ्वीकायाप्कायतेजस्कायप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाचतुष्कम्, त्रसकायभेदत्रयम्, मनोयोगपञ्चकम्, वचनयोगपञ्चकम्, वैक्रियवैक्रियमिश्राहारकाहारकमिश्रयोगाः, स्त्रीपुरुषापगतवेदाः, मतिश्रुतावधिमनःपर्यवज्ञानानि विभङ्गज्ञानम्, संयमौघ--सामायिक च्छेदोपस्थापनीय--परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसम्परायदेशविरतिमार्गणाः, चक्षुरवधिदर्शने, तेजःपद्मशुक्ललेश्यात्रयम्, सम्य-

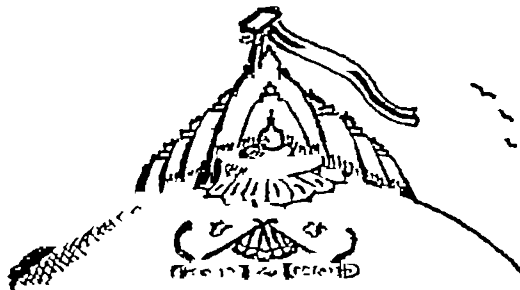
क्त्वौघौपशमिकसम्यक्त्वक्षायोपशमिकसम्यक्त्वक्षायिकसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वसास्वादनानि संज्ञिमार्गणा चेति ।

बादरैकेन्द्रियौघादिसप्तदशमार्गणास्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं सूक्ष्मादिप्रायोग्यप्रकृतीनां मरणसमुद्घातेन भावितम् । प्रस्तुते मरणसमुद्घातस्यासंभवादुपपातस्वस्थानाभ्यां जघन्यप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं चिन्तनीयम् । अत्र क्षेत्रस्पर्शनाद्वारद्वये प्रकृतिबन्धादिवदुपपातेन क्षेत्रस्पर्शनयोर्बाहुल्येनाचिन्तनम् । अतस्तदेव दर्शयन् तथा सप्तदशमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानेन क्षेत्रं प्ररूपयन्नाह गाथात्रिकम्—'**परसु**' इत्यादि 'इह' इति **बन्धविधानग्रन्थे** बाहुल्यतो यत्र यत्र क्षेत्रद्वारं स्पर्शनाद्वारं च तत्र उपपातक्षेत्रस्य विवक्षा नाधिकृता । अन्यथा स्पर्शनाद्वारे पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु सूक्ष्माणामुत्पादेन तदा च पञ्चेन्द्रियजात्यादीनां बन्धभावात् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायां पञ्चेन्द्रियजात्यादीनां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा वक्तव्या स्यात् , न च तत्राऽपि तथोक्ता । एवं प्रस्तुतेऽपि बादराऽपर्याप्तपृथ्वीकायादिषु प्रतिसमयं सूक्ष्मेभ्योऽसंख्यलोकप्रमितानां जीवानामुत्पादेन यथा श्री**प्रज्ञापना**सूत्रे श्रीमदाऽऽ**र्यश्यामाचार्यै**र्बादरापर्याप्तपृथ्व्यादीनामुत्पादेन सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं दर्शितम् , तथा जघन्यप्रदेशबन्धकानामपि वक्तव्यं स्यात् , न च तथोक्तम् , सङ्गच्छते चेदमुत्पादेऽधिकृत इति हेतोर्ग्रन्थकारेणाऽत्रोत्पादक्षेत्रं न प्राप्यत इत्यनुक्त्वाऽविवक्षाऽस्त्यत्रेति दर्शितम् । कस्मादेवमिति चेत्-संप्रदायाभावात् सुगमत्वात् कारणान्तराद्वेति एतत्तु न विद्मः । मूलप्रकृतिप्रदेशबन्धे क्षेत्रद्वारे जघन्यप्रदेशबन्धेऽतिदेशानुसारेणापर्याप्तबादरपृथ्वीकायिकादिषु यत्सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं प्राप्यत इति प्ररूपितम् , तदुत्पादक्षेत्रस्यानधिकृते न घटत इति कृत्वा तत्र विनेयजनानुग्रहार्थं मतिवैशद्यार्थं च दर्शितमिति न पूर्वापरविरोध उद्भावनीयः ।

अथ शेषसप्तदशमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं दर्शयामः, तद्यथा-बादरपृथ्वीकायौघ-बादराप्कायौघ-बादरतेजस्कायौघ-प्रत्येकवनस्पतिकायौघेष्वेतेषां चतुर्णामपर्याप्तभेदेषु च बादरसाधारणवनस्पतिकायभेदत्रये चेत्येकादशभेदेषु सूक्ष्मप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेर्बादरनाम्नश्चानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य क्रमेण सर्वलोकप्रमाणस्य देशोनलोकप्रमाणस्य च क्षेत्रस्य भावेऽपि जघन्यप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रमेतास्वेकादशमार्गणासु लोकाऽसंख्यभागप्रमाणं प्राप्यते, उपपातक्षेत्रस्याऽविवक्षितत्वान्मरणसमुद्घातक्षेत्रस्यात्रासंभवात् स्वस्थानक्षेत्रस्यैव लाभाच्चापवादभणनम् । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामायुष्कसहितानां त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनां तेजस्कायभेदद्वय एकोनत्रिंशत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रवदत्रापि लोकाऽसंख्यभागप्रमाणमेव क्षेत्रं प्राप्यते । बादरैकेन्द्रियौघतदपर्याप्तभेदद्वये बादरवायुकायौघाऽपर्याप्तबादरवायुकायभेदद्वये चेति मार्गणाचतुष्के सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं सर्वलोकप्रमाणं भवति,

जघन्यप्रदेशबन्धकानां तु देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं विज्ञेयमित्यपवदनम् । मनुष्यत्रिकस्योच्चैर्गोत्रस्य चैकेन्द्रियभेदद्वयेऽतिदेशवदत्रापि लोकाऽसंख्यभागप्रमाणं क्षेत्रं प्राप्यते, शेषाणामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं भवति । बादरपर्याप्तैकेन्द्रियमार्गणायां तत्रानुत्कृष्टप्रदेशबन्धे सूक्ष्मप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेः सर्वलोकप्रमाणं बादरनाम्नो देशोनलोकप्रमाणं च क्षेत्रं यत्प्रतिपादितमेतत्क्षेत्रं तु बादरसाधारणवनस्पतिकायिकानधिकृत्य मरणसमुद्घातेन प्राप्यते, न च तथात्र प्राप्यते, बादरसाधारणवनस्पतिकायिकानपेक्ष्य प्रस्तुते लोकासंख्यभागमात्रस्यैव क्षेत्रस्य प्राप्यमाणत्वेऽपि पर्याप्तबादरवायुकायिकापेक्षयाऽत्र तासां पञ्चसप्ततेः क्षेत्रं स्वयं ज्ञातव्यं भवति । एवं बादरनाम्नोऽपि । भावना तु बादरपर्याप्तवायुकायिकानधिकृत्य यथा ज्येष्ठप्रदेशबन्धकपरिमाणे कृता तथा कार्येति । बादरपर्याप्तैकेन्द्रियभेदे मनुष्यत्रिकोच्चैर्गोत्रयोरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकक्षेत्रवज्जघन्यप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रमपि लोकाऽसंख्यभागप्रमाणमतिदेशानुसारेण प्राप्यते । शेषैकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं बादरपर्याप्तवायुकायमार्गणायां यावत् प्राप्यते तावद्विज्ञेयम्, बादरकायिकेषु स्वस्थानक्षेत्रस्य वायुकायिकप्राधान्येन लाभात् । तेषु यावज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं प्राप्यते तावत् प्रस्तुते जघन्यप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रमभ्यूह्यम् । भावना पुनः सविशेषा कार्येति । शेषाः प्रकृतयः पुनरिमाः—स्त्रीवेदपुरुषवेदद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्काद्यसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयातपोद्योतत्रससुभगचतुष्कदुःस्वर-नामानि तिर्यगायुष्कं च । बादरपर्याप्तवायुकाये बन्धप्रायोग्याणां पञ्चोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं ज्येष्ठप्रदेशबन्धकवत् स्वयं श्रुतानुसारेण विभावनीयम्, लोकाऽसंख्येयभागमात्रं देशोनलोकप्रमाणं वा । एव सप्तदशमार्गणास्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धे योऽतिदेशः कृतस्तत्रापवादो भणित इति ॥१०८-१११॥ तदेवं जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रमोघत आदेशतश्च समाप्तम् ।

॥ श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे
प्रथमाधिकारे क्षेत्रद्वारं समाप्तम् ॥



॥ अथ द्वादशं स्पर्शनाद्वारम् ॥

अथ क्रमप्राप्तस्पर्शनाद्वारस्यावसरः । तत्र स्पर्शना द्विविधा वर्तमानकालविषया अतीतकालविषया च । तत्र वर्तमानकालं प्रतीत्य या स्पर्शना तस्याः प्ररूपणा क्षेत्रनिरूपणतो नातिरिच्यते, क्षेत्रतः किञ्चिदधिकस्या एव स्पर्शनाया भावात् । अतीतकालविषयाऽपि स्पर्शना द्विविधा एकजीवविषया अनेकजीवविषया च, तत्रैकजीवविषयकस्पर्शनाया वक्तव्यतां विमुच्य नानाजीवविषयां तामुत्कृष्टादिप्रदेशबन्धकानधिकृत्य दिदर्शयिषुरादौ तावल्लाघवार्थं प्रकृतिसंग्रहगाथां निरूपयन्नाह

सुहगतिगं च पसत्था खगई पढमागिई छ संघयणा ।
मज्झिमसंठाणित्थी उरलोवंगं तसपणिंदी ॥११२॥
दुस्सरकुखगइणारगविउवदुगणपुमअसायअरइदुगं ।
पण अथिराई हुंडं णीअं परघायऊसासा ॥११३॥
धुवबंधी सगचत्ता तह पज्जत्तं य पत्तेअं ।
तिरियदुगउरलथावरएगिंदी थिरसुहा सायं ॥११४॥(उपगीतिः)
हस्सरई सुहमतिगं इह जं आइम्मि करिअ एआओ ।
जावइआ जा वोच्छं तावइआ ता कमा गेज्झा ॥११५॥

(प्रे०) "सुहगे"त्यादि, अत्र स्पर्शनाद्वारे, विशेषत उत्कृष्टाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकसत्कस्पर्शनाधिकारे 'एताभ्यः' सुभगत्रिकादिप्रकृतिभ्यः सपादगाथात्रयदर्शिताभ्यो यां प्रकृतिमादौ कृत्वा संख्यया यावतीः प्रकृतीर्वक्ष्यामि, तां प्रकृतिमादौ कृत्वा तावतीरेव ताः क्रमाद् ग्राह्याः, न पुनर्न्यूनाधिका अनानुपूर्व्या पश्चानुपूर्व्या वा । सुभगत्रिकादिप्रकृतयः पुनरेताः—सुभगत्रिकं सुखगतिः समचतुरस्रं संहननषट्कं द्वितीयादिपञ्चमान्तं मध्यमं संस्थानचतुष्कं स्त्रीवेद औदारिकाङ्गोपाङ्गं त्रसनाम पञ्चेन्द्रियजातिनाम दुःस्वरनाम कुखगतिनाम नरकद्विकं वैक्रियद्विकं नपुंसकवेदोऽसातवेदनीयमरतिशोकेऽस्थिराशुभदुर्भगानादेयायशःकीर्तिनामानि हुण्डकसंस्थानं नीचैर्गोत्रं पराघातोच्छ्वासौ सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः पर्याप्तनाम प्रत्येकनाम तिर्यग्द्विकमौदारिकशरीरनाम स्थावरनामैकेन्द्रियनाम स्थिरशुभे सातवेदनीयं हास्यरती सूक्ष्मत्रिकमिति शतप्रकृतयः संगृहीताः । पुरुषवेद-देवद्विक-मनुष्यद्विक-विकलत्रिकाऽऽहारकद्विका-तपो द्योत--जिननाम-बादर-यशःकीर्तिनामानि

आयुष्कचतुष्कमुच्चैर्गोत्रं चेति विंशतिप्रकृतयो न संगृहीताः, तासां यथास्थानं नामतः पृथग् वक्ष्यमाणत्वात् ॥११२-११५॥

अथौघत उत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

दुइअकसायदुणिद्दाआयवहस्सछगतिरिणराऊणं ।
छुहिआऽत्थि बंधगेहिं जेट्ठपएसस्स अड भागा ॥११६॥
फुसणाअ वुच्चिरे इह जे भागा भाजिआअ चउदमहिं ।
तसनाडीअ लहे जं णेया ते तावइअमाणा ॥११७॥

(प्रे०) "दुइअ" इत्यादि, अत्र स्पर्शनाप्ररूपणायां यत्र स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा देशोनलोकप्रमाणा लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा वा न भवति, किन्तु लोकस्य संख्येयभागप्रमाणा भवति तत्र तत्परिमाणस्य स्पष्टावबोधाय या त्रसनाडी आयामविष्कम्भाभ्यां रज्जुमात्रा, उच्चत्वेन पुनश्चतुर्दशरज्जुप्रमाणा, चतुर्दशभिः समभागैर्विभाजितायां तस्यां यावत्प्रमाणं भागफलं लभेत तावत्प्रमाण एको भागो भवति । देशोनएकघनरज्जुप्रमाण एकभागो भवतीति निष्कर्षः । ततोऽत्र यावद्भागप्रमाणा स्पर्शना निरूप्यते तावद्रज्जुप्रमिता स्पर्शना भवतीत्यायातम् ।

त्रसनाड्या रज्जुविभागास्त्वेवम्—अधोलोकान्ततो सप्तमपृथ्व्या उपरितलान्तं यावत्प्रथमा रज्जुः,ततः षष्ठपृथ्व्युपरितलं यावद्द्वितीया, ततः पञ्चमपृथ्व्युपरितलं यावत्तृतीया, ततश्चतुर्थपृथ्व्या उपरितलान्तं यावत्तुर्या, ततस्तृतीयान्तं यावत्पञ्चमी, ततो द्वितीयान्तं यावत् षष्ठी, ततश्च समभूतलं यावत्सप्तमी रज्जुर्भवति । एताश्चाधोलोकसत्काः सप्त रज्जवः । समभूतलतः सार्धरज्ज्वतिक्रमे सौधर्मदेवलोकस्य समाप्तिः, ततो रज्ज्वतिक्रमे माहेन्द्रनामकचतुर्थदेवलोकस्य परिसमाप्तिः, तिर्यग्लोकात् सार्धरज्जुद्वयमिति । ततो रज्ज्वतिक्रमे ब्रह्मलोकस्यावसानम्, तिर्यग्लोकात् सार्धरज्जुत्रयस्यातिक्रमे ब्रह्मलोकाख्यस्य पञ्चमकल्पस्य प्रान्त इति भावः, ततोऽर्धरज्ज्वन्तरे लान्तककल्पो निष्ठां प्राप्नोति; ततोऽर्धरज्ज्वतिक्रमे महाशुक्रनामकल्पस्य पर्यवसानम्, ततोऽर्धरज्जुलङ्घने सहस्रारकल्पस्य प्रान्तः, स च तिर्यग्लोकात् पञ्चरज्ज्वन्तरे भवति । ततोऽर्धरज्ज्वन्तरे नवमदशमकल्पद्वयस्य चरमान्तः, ततः पुनरर्धरज्जुलङ्घने एकादशद्वादशकल्पद्वयस्य पर्यन्तः, स च तिर्यग्लोकात् षट्स्वतिक्रान्तासु भवति, तत एकरज्ज्वतिक्रमे लोकान्तः, स च लोकान्तस्तिर्यग्लोकतः सप्तरज्ज्वन्तरे भवति । उक्तं च

ईसाणम्मि दिवड्ढा अड्ढाइज्जा य रज्जु माहिंदे । पंचेव सहस्सारे छ अच्चुए सत्त लोगन्ते ॥

अत्र मतान्तराणि सन्ति, किन्त्वत्रैतन्मतमधिकृत्यैव निरूपयामः, अन्यमतानुसारेण त्वेतदनुसारेण स्वयमवधारणीयम् । एवं क्षेत्रविभागं प्रतिपाद्यमानान् तद्भागांश्च निरूप्यौघतः

ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां दर्शयति-"दुइअ" इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणसंज्ञकद्वितीय-कषायचतुष्कनिद्राद्विकातपनामहास्यषट्कतिर्यग्मनुष्यायुष्करूपाः पञ्चदश प्रकृतयः, तासां ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धकैस्त्रसनाड्या अष्ट चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, देवानां गमनागमनेनैतावत् क्षेत्रस्य स्पृष्टत्वात्,

अत्र पुनरिमाः व्याप्तयः स्पर्शनाद्वारे विज्ञेयाः

(१) प्रथमा सर्वलोकविषया व्याप्तिः-ओघत आदेशतो वा सूक्ष्मतयोत्पित्सवो मरणसमु-द्घातगता अपि जीवा यासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः, यद्वा सूक्ष्मा एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवेयुस्तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा विज्ञेया ।

(२) द्वितीया देशोनलोकविषया व्याप्तिः-ओघत आदेशतो वा यासु बादरनाम्नो ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धका मरणसमुद्घातेन बादरवायुकायिकतयोत्पित्सवो भवेयुः, यद्वा बादरवायु-कायिका यासां सूक्ष्मानर्हप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवेयुः, तासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्ध-कानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा समागच्छति ।

(३) तृतीया एकादिचतुर्दशभागानां व्याप्तिः-इयं व्याप्तिः स्वस्थानादिक्षेत्रापेक्षया निष्प-द्यते, तच्च क्षेत्रं त्रिविधम्-स्वस्थानक्षेत्रम्, पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रम्, तदन्तरालक्षेत्रं च । तत्र (१) स्वस्थानक्षेत्रं नाम स्वकीयावस्थानक्षेत्रमिति (२) पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रं नाम विवक्षितप्रकृतीना-मुत्कृष्टादिप्रदेशं बध्नन्तो जीवाः कालं कृत्वा यस्मिन् क्षेत्रे उत्पद्यन्ते तत्क्षेत्रम् । एतत्पारभविकक्षेत्रं स्वस्थानतो यावद्दूरतमं यावदायतविस्तृततमं प्राप्तुमर्हति तावद्दूरतमं तावदायतविस्तृततमं ग्राह्यम् । (३) अन्तरालक्षेत्रम्-स्वस्थानक्षेत्रपारभविकोत्पत्तिक्षेत्रयोर्मध्यगतं व्यवधानरूपं क्षेत्र-मत्रान्तरालक्षेत्रमुच्यते । व्याप्तिः पुनरेवम्-(१) विवक्षितजीवाः=प्रस्तुते तत्तत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदे-शादिबन्धकजीवाः, तेषां स्वस्थानक्षेत्रं पारभविकक्षेत्रमित्युभयम् एकतरं वा प्रतररज्जुप्रमाणं स्या-त्तथा द्वयोरन्तरालमेकद्व्यादिरज्जुप्रमाणं स्यात् तदाऽन्तरालक्षेत्रानुसारेणैकद्व्यादिभागरूपा स्पर्शना प्राप्यते । (२) यदा पुनः तत्तत्प्रकृतीनां ज्येष्ठादिप्रदेशबन्धकजीवानां देवानां गमनागमनापेक्षया स्पर्शना प्राप्यते, तदा सहस्रारान्तदेवानाश्रित्याष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते (३) आनताद्य-च्युतान्तदेवानाश्रित्य सा षड्रज्जुप्रमाणाऽवाप्यते ।

(४) चतुर्थी लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणक्षेत्रविषया व्याप्तिः-यस्याः प्रकृतेर्ज्येष्ठादिप्रदेशबन्धका जीवाः सूक्ष्मजीवा बादरवायुकायिकजीवा देवाश्च न भवेयुः, न वा सूक्ष्मेषु बादरवायुकायिकेषु च समुत्पत्तिमवाप्यमाना मरणसमुद्घातगताः भवेयुः; तथा उक्तजीवानां यदि स्वस्थानक्षेत्रं पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रं च प्रतररज्जुप्रमितं न भवेद् यद्वा स्वस्थानपारभविकक्षेत्रयोः प्रतररज्जुमित-त्वेऽपि द्वयोरन्तरालक्षेत्रं रज्जोरसंख्याततमभागमेव स्यात्तर्हि तत्प्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना लोका-ऽसंख्यभागप्रमाणा प्राप्यते । प्रथमद्वितीयतृतीयव्याप्त्यविषयाणां प्रकृतीनां बन्धका चतुर्थव्या-प्तिविषया भवेयुरिति भावः ।

एतद्व्याप्तीनां सविस्तृता सोपपत्तिका भावना त्वर्थतो **मूलप्रकृतिस्थितिबन्धद्वितीयाधिकारस्पर्शनाद्वारप्रेमप्रभाग्रन्थे** दर्शिता तत एवावधारणीयेति ।

अथ प्रस्तुतम्-तत्राऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य चातुर्गतिकाविरतसम्यग्दृशां भावेऽपि नारकापेक्षया तस्य लोकाऽसंख्येयभागमाना एव स्पर्शना भवति । स्वस्थानतो लोकाऽसंख्येयभागमानत्वात् , मरणसमुद्घातेनाऽपि तेषां मनुष्येष्वेवोत्पादात् स्वस्थानपारभविकोत्पत्तिस्थानयोस्तिर्यक्प्रतरासंख्यभागगतत्वेन चतुर्थव्याप्त्या लोकाऽसंख्येयभागमात्रा एव स्पर्शना प्राप्यते । एवं मनुष्याऽपेक्षयाऽपि तेषामुत्पत्तेश्चतसृषु गतिषु सद्भावेऽपि चतुर्थव्याप्त्या लोकाऽसंख्येयभागमात्रा एव स्पर्शना भवति । तिरश्चामपेक्षया स्वस्थानेन लोकाऽसंख्येयभागमात्रत्वेऽपि मरणसमुद्घातेन सहस्रारं यावत्तेषामुत्पादात् तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्यायामविष्कम्भाभ्यां प्रतररज्जुप्रमाणत्वेन पारभविकक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्यभागमितत्वेऽपि तयोरन्तरालक्षेत्रस्य पञ्चरज्जुप्रमाणत्वेन तृतीयव्याप्तिप्रथमांशेन पञ्चरज्जुप्रमाणा स्पर्शना भवति, सा च तिर्यग्लोकात् सहस्रारपर्यवसाना विज्ञेया इति । देवापेक्षया तु स्वस्थानेन लोकाऽसंख्येयभागमात्रत्वेऽपि ऊर्ध्वमच्युतकल्पान्तं यावत् अधस्तृतीयनरकं यावच्च सहस्रारान्तदेवानां गमनागमनं भवतीति तृतीयव्याप्त्या द्वितीयांशेन मूलोक्ताऽष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना संगच्छते ।

इदमत्रावधेयम्—इह सर्वत्र या । एकादिभागप्रमाणा स्पर्शना दर्शयिष्यते सा देशोना अधिका वा यथासंभवं विज्ञेया इति ।

यथाऽप्रत्याख्यानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना भाविता, तथैव निद्राद्विकस्य हास्यषट्कस्य चेत्यष्टप्रकृतीनां भावनीयाः । एतासामष्टप्रकृतीनां देशविरत्यादौ ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेऽपि न स्पर्शनायां विशेषक्षेत्रस्य रज्जुसंख्येयभागादिरूपस्य लाभः, किन्तु संयताद्यपेक्षया ऊर्ध्वलोकसत्कसप्तमरज्जोरसंख्येयतमभागप्रमाणक्षेत्रस्य पूर्वतोऽत्राधिकलाभ इति ।

आतपनाम्नस्तिर्यग्मनुष्यायुषोश्चेति प्रकृतित्रयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना तिर्यग्मनुष्यापेक्षया लोकाऽसंख्येयतमभाग एव चतुर्थव्याप्त्या भवति, नारकापेक्षयाऽऽतपनाम्नो बन्धाभावादायुर्द्वयस्य स्वस्थानेनैव बन्धकत्वेन च लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते, अत उक्तप्रकृतित्रयस्य देवापेक्षयैवाष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना गमनागमनकृता तृतीयव्याप्तिद्वितीयांशेन प्राप्यते ऊर्ध्वलोकसत्कचरमरज्ज्वोः स्पर्शना त्वत्र न प्राप्यते तत्र गमनागमनाभावात् , मरणसमुद्घाते आयुषोर्बन्धाभावात् , आतपनाम्न उदयवर्ता तिर्यग्लोके एव भावात् , समुद्घातेन यो यत्रोत्पित्सुस्तत्प्रायोग्यप्रकृतीनामेव तस्य बन्धकत्वेनातपनामज्येष्ठप्रदेशबन्धकैरूर्ध्वलोकसत्का सप्तमरज्जुस्पर्शना मरणसमुद्घातेनाऽपि नैव प्राप्यते, अतो गमनागमनापेक्षया देवानेवाश्रित्योक्ता प्रमाणा स्पर्शना ज्ञातव्येति ॥११६-११७॥

एवमोघतः पञ्चदशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना दर्शिता । अथ स्त्यानर्द्धित्रिकादि-सत्कस्पर्शनामाह

सव्वजगमसायणपुमथीणद्धितिगाणमिच्छणीआणं ।
आयवदुगबायरजसवज्जेगक्खरिहणामपयडीणं ॥११८॥ (गीतिः)

(प्रे०) "सव्वजग"मित्यादि, असातवेदनीयनपुंसकवेदस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धि-चतुष्कमिथ्यात्वनीचैर्गोत्राणां तथाऽऽतपोद्योतबादरनामयशःकीर्तिनामवर्जानामेकेन्द्रियप्रायोग्यनामप्रकृतीनां तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजात्यौदारिकतैजसकार्मणशरीरहुण्डकसंस्थानवर्णचतुष्कागुरुलघूपघात-निर्माणस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तप्रत्येकसाधारणास्थिराशुभदुर्भगाऽनादेयाऽयशःकीर्तिनामरूपाणां चतुर्विंशतेस्त्रयोविंशतिबन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धानां पराघातोच्छ्वासपर्याप्तस्थिरशुभनाम्नां पञ्चानां पञ्चविंशतिबन्धे ज्येष्ठप्रदेशबन्धानां चेति समुदितानां चत्वारिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा भवति । सूक्ष्मेषूत्पित्सूनां कृतमारणसमुद्घातानां संज्ञिपर्याप्तानां तिरश्चां मनुष्याणां चाऽऽसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकतया प्राप्यमाणत्वेन तेषामपेक्षया सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति । भावना तु प्रथमभ्याप्त्यनुसारेण कार्येति ॥११८॥

अथ स्त्रीवेदादीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

थीपणसंघयणागिइचउगाणं बार फोसिआ भागा ।
परिपुट्ठा एगारस भागा अत्थि विउव्वदुगस्स ॥११९॥

(प्रे०) "थीपणे"त्यादि, स्त्रीवेदचरमवर्जसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्काणां दशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्द्वादश भागाः स्पृष्टाः, वैक्रियद्विकस्य तैः पुनरेकादश भागाः स्पृष्टाः ।

भावना पुनरेवम्—सप्तमनरकनारकैस्तिर्यक्षूत्पित्सुभिः कृतमारणान्तिकसमुद्घातैः स्त्रीवेदादिदशप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैरधोलोकसत्काः षड् भागाः स्पृष्टाः, ऊर्ध्वलोकसत्काः षड्भागास्तिर्यग्लोकतोऽच्युतान्तास्तु देवानां गमनागमनापेक्षया भावनीयाः । अत्र तिर्यगपेक्षया तु संहननपञ्चकस्य संस्थानचतुष्कस्य च लोकाऽसंख्येयभागमात्रा एव स्पर्शना प्राप्यते, स्त्रीवेदस्य पुनरीशानान्तेष्वेवोत्पादात् सार्धरज्जुरिति न तदपेक्षयोक्तस्पर्शना लभ्यते । मनुष्यापेक्षया तु दशानामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्लोकाऽसंख्यभाग एव स्पृष्टः । तदेवं देवनारकसमुदितापेक्षयैवोक्तस्पर्शना प्राप्यत इति ।

वैक्रियद्विकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैस्तिर्यग्भिः सप्तमनरके उत्पित्सुभिः कृतमारणान्तिकसमुद्घातैरधोलोकसत्काः षड् रज्जवः स्पृष्टाः, एवं वैक्रियद्विकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां तिरश्चा-

मूर्ध्वं सहस्रारं यावदुत्पादात् तत्रोत्पित्सुभिस्तैः कृतमारणान्तिकसमुद्घातैरूर्ध्वलोकसत्काः पञ्चरज्जवः स्पृष्टाः । मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव स्पर्शना वैक्रियद्विकज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां भवति, स्वस्थानपारभविकोत्पत्तिस्थानयोः प्रतररज्ज्वसंख्येयभाग एव भावात् । एकादश भागानां भावना तु तृतीयव्याप्त्या भावनीया ॥११९॥

अथ प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कादिबन्धकानां प्राह

तइअकसायसुरजुगलसुहगतिगसुखगइआगिईणऽत्थि ।
पण भागा परिपुट्ठा अत्थि छ चउदुस्सराईणं ॥१२०॥

(प्रे०) "तइअ" इत्यादि, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कदेवद्विकसुभगत्रिकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थाननामरूपाणामेकादशप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः पञ्च भागाः स्पृष्टाः, आसां सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तिर्यग्मनुष्या एव भवन्ति, न तु देवनारकाः, यतः प्रत्याख्यानावरणस्य देशविरतय एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः । शेषाणां सप्तानां तु देवप्रायोग्याष्टाविंशतिप्रकृतिबन्धका ज्येष्ठप्रदेशबन्धं कुर्वन्ति । अतस्तादृशाः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्या एव । ते च स्वस्थानेन लोकाऽसंख्येयतमभागमात्रमेव स्पृशन्ति, मरणसमुद्घातेन पुनस्तिरश्चां सहस्रारान्तेष्वेवोत्पादात् ते पञ्च भागान् स्पृशन्ति, तृतीयनियमप्रथमांशस्य प्रवेशात् । मनुष्यापेक्षया तेषामनुत्तरसुरं यावदुत्पादेऽपि स्वस्थानपारभविकोत्पत्तिस्थानक्षेत्रयोरायामविष्कम्भाभ्यां रज्ज्वसंख्येयभागमात्रत्वाच्चतुर्थव्याप्त्या लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव स्पर्शना भवतीति ।

दुःस्वरकुखगतिनरकद्विकप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां षड् भागा स्पर्शना भवति । तिरश्चां मनुष्याणां नरकप्रायोग्याष्टाविंशतिनामप्रकृतिबन्धकानामेव तासां चतसृणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, सप्तमनरकेषूत्पित्सूनां तिरश्चां मारणान्तिकसमुद्घातेन तिर्यग्लोकादधः षड्रज्जुस्पर्शना भवति, भावना तृतीयव्याप्तेः प्रथमांशेन कार्या ॥१२०॥

अथोद्योतनाम्नः शेषप्रकृतीनां च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

उज्जोअस्स फरिसिआ णव भागा बायरस्स ऊणजगं ।
लोगासंखियभागो छत्तीसाअ अवसेसाणं ॥१२१॥

(प्रे०) "उज्जोअस्से"त्यादि, उद्योतनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्नव भागाः स्पृष्टाः । उद्योतनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो नाम्नः षड्विंशतिबन्धकैरेव निर्वर्त्यते, अतो नारकाणां न ज्येष्ठप्रदेशबन्धो तथा च न तत्प्रयुक्तस्पर्शनाऽपि । तथा प्रथमपृथ्वीतोऽध उद्योतनाम्न उदयवन्त एकेन्द्रियजीवा नैव भवन्तीति न मरणसमुद्घातेन तिरश्चामधोलोकस्पर्शना । ऊर्ध्वलोकसत्का सप्तरज्जुस्पर्शना

प्रस्तुतबन्धकैस्तिर्यग्भिर्मरणसमुद्घातकृता प्राप्यते, स्वस्थानकृतक्षेत्रस्य प्रतररज्जुप्रमाणत्वेन पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य वैमानिकविमानादिरूपस्य प्रान्ते सिद्धशिलारूपस्य च प्रतररज्ज्वसंख्येयभागप्रमाणत्वेऽप्युभयोरन्तरालस्य सप्तरज्जुप्रमाणत्वात् तृतीयव्याप्त्या सप्तरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, मनुष्यानधिकृत्य पुनर्लोकाऽसंख्येयभागमाना एव, देवापेक्षया तु नवरज्जुस्पर्शना प्राप्यते, तत्र तिर्यग्लोकादधो द्वे रज्जू तथोर्ध्वलोकसत्का आद्याः षड्रज्जवस्तु देवैर्यथासंभवं गमनागमनेन मरणसमुद्घातेन च स्पृष्टाः, ऊर्ध्वलोकसत्का चरमरज्जुस्पर्शना तु प्रस्तुतबन्धकदेवैर्मरणसमुद्घातकृतैव प्राप्यते इति न ततोऽधिकस्पर्शनाया अवकाश इति । बादरापर्याप्तप्रायोग्यत्रयोविंशतिबन्धकसंज्ञितिर्यग्मनुष्याणां बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा भवति, संज्ञितिर्यग्मनुष्याणां बादरवायुकायिकेषु मरणसमुद्घातेनोत्पित्सूनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धसद्भावात् , बादरवायुकायिकानां देशोनलोकप्रमाणक्षेत्रे व्याप्तत्वाच्च । एवं सार्धगाथापञ्चकेन चतुरशीतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना ओघतो निरूपिता ।

शेषाणां षट्त्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयभाग एव अतीतकालेनाऽपि स्पृष्टो नाधिक इति । षट्त्रिंशत् प्रकृतयः पुनरेताः—ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कसातवेदनीयोच्चैर्गोत्रयशःकीर्तिनामानि संज्वलनचतुष्कं पुरुषवेदो मनुष्यद्विकद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसेवार्तसंहननाहारकद्विकजिननामत्रसनामानि देवनरकायुषी चेति । भावना पुनरेवम्-ज्ञानावरणादिपुरुषवेदपर्यन्तानां द्वाविंशतेरुपशमक्षपकश्रेणिद्वये यथासंभवं नवमदशमगुणस्थान एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति । ततो मनुष्याणामेव तद्भावात् , तेषां च क्षपकश्रेण्यपेक्षया पारभविकोत्पत्तिस्थानस्यैवाभावादुपशमश्रेण्यपेक्षया तद्भावेऽपि तस्य पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य वैमानिकदेवरूपस्यानुत्तरदेवरूपस्य वाऽऽयामविष्कम्भाभ्यां रज्ज्वसंख्येयभागप्रमाणत्वेन लोकाऽसंख्यभागमात्रैव स्पर्शना भवति । एवमेवाऽऽहारकद्विकजिननाम्नोरपि भावना यथासंभवं कार्या, सम्यग्दृष्टिमनुष्याणामेवोक्तप्रकृतित्रयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वात् । मनुष्यद्विकद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसेवार्तसंहननत्रसनामरूपाणां नवानां नाम्नामपर्याप्तत्रसप्रायोग्या पञ्चविंशतिं बध्नन्तस्तिर्यग्मनुष्या एव भवन्ति, देवनैरयिकाणामपर्याप्तप्रायोग्यबन्धाभावात् । अपर्याप्तत्रसकायिकास्तु तिर्यग्मनुष्या एव, तेषां स्वस्थानक्षेत्रं तु तिर्यग्लोके तदासन्नोर्ध्वाऽधोलोके वा, एवं सति तद्बन्धकानां तदुदयवतां च जीवानां तिर्यग्लोके तत्प्रत्यासन्न एव वा क्षेत्रे भावाद् रज्ज्वाद्यन्तर्गतक्षेत्रस्याभावाल्लोकासंख्यभाग एव तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्नानाजीवैः कृता स्पर्शना अतीतकाले प्राप्यते । देवनरकायुषोस्तु संज्ञिपर्याप्ततिर्यग्मनुष्यैरेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रियते, आयुर्बन्धोत्तरकाले मरणसमुद्घातस्य भावादायुर्बन्धस्य स्वस्थान एव भावः, संज्ञितिर्यग्मनुष्याणां स्वस्थानक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्यभागमात्रत्वेन देवनरकायुर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां क्षेत्रं लोकाऽसंख्यभागमात्रमेव प्राप्यत इति ॥१२१॥

अथौघतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनामतिदेशेन निरूपयन् लाघवार्थं मार्गणास्वपि बन्धप्रायोग्याणामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां सममेव निरूपयन्नाह

ओहेणाएसेण वि सप्पाउग्गाण सव्वपयडीणं ।
अणुरुठिइव्व फरिसणा अणुरुपएसस्स विण्णेया ॥१२२॥

(प्रे०) "ओहेणे"त्यादि, ओघतः सामान्यतो मार्गणा अनधिकृत्य विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनाम्, आदेशेन सप्तत्युत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना यथाऽनुत्कृष्टस्थितिबन्धे प्रदर्शिता, तथा प्रस्तुतेऽपि द्रष्टव्या । अयं भावः-यद्यपि प्रकृतिबन्धेऽनुत्कृष्टस्थितिबन्धेऽनुत्कृष्टरसबन्धेऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धे च स्पर्शना तुल्यप्राया, तथापि सातवेदनीयबन्धकानां स्पर्शना प्रकृतिबन्धे केवलिसमुद्घातमाश्रित्य प्राप्यते, स्थितिबन्धादिषु तु केवलज्ञानवतामप्रवेशात् सकषायजीवानाश्रित्यैव सातवेदनीयबन्धकानां स्पर्शना प्राप्यते, अतः कासुचिन्मार्गणासु प्रकृतिबन्धतः सातवेदनीयस्यानुत्कृष्टस्थित्यादिबन्धकानां स्पर्शनायां विशेषो रूचतीत्यतः प्रकृतिबन्धं विहाय स्थितिबन्धवदतिदेशः कृतः । अत्रौघतः स्पर्शना पुनरेवम्-आहारकद्विकस्य देवनरकायुषोरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकैर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः, तद्यथा—आहारकद्विकस्य संयतैरेव बध्यमानत्वेन तेषां स्वस्थानस्य पारभविकोत्पत्तिस्थानस्य च प्रतररज्ज्वसंख्यभागमात्रत्वाच्चतुर्थ्यांप्त्या लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव स्पर्शना भवति । देवनरकायुषोस्तु स्वस्थानपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्मनुष्यैरेव निर्वर्तनाल्लोकासंख्येयभागमात्रैव स्पर्शना भवति । नरकद्विकस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धकैः षड् भागाः स्पृष्टाः, तिरश्चां सप्तमनरकमुत्पित्सूनां मारणान्तिकसमुद्घातेन रेज्जुषट्कस्याधोलोकसम्बन्धिनः स्पर्शनात्, मनुष्यानधिकृत्य तु लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यत इति । देवद्विकस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धकैः पञ्च भागाः स्पृष्टाः, अतीतकाले प्रतररज्जुं व्याप्यस्थितानां तिरश्चां सहस्रारान्तमुत्पादात् समुद्घातेन पञ्चभागानां स्पर्शना सुघटैव । वैक्रियद्विकस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धकैरधोलोकसत्काः षड् भागा ऊर्ध्वलोकसत्काः पञ्च भागाश्चेति सर्वसंख्ययैकादशभागा तिर्यग्भिर्व्याप्ता भवन्ति । उक्तादशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां च तुल्यैव स्पर्शना । प्रकृतिबन्धेऽपि तावत्येव स्पर्शना प्राप्यत इति ।

जिननाम्नोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकैरष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, तद्बन्धकानां नारकाणां मनुष्याणां च लोकासंख्येयभागमात्रस्पर्शनाया लाभेऽपि देवानां गमनागमनादिना रज्ज्वष्टकस्य स्पर्शनात् । अत्र देवानां गमनागमनक्षेत्रेण यावती स्पर्शना प्राप्यते, ततः साधिका स्पर्शना विज्ञेया, ग्रैवेयकानुत्तरदेवादीनां मरणसमुद्घातकृतस्पर्शनाक्षेत्रस्याधिकतया लाभात्, तत्क्षेत्रं च लोकाऽसंख्येयभागमात्रमेवेति न पूर्वतो विशेष इति । एवं सूक्ष्माणां बन्धाप्रायोग्याणामेकाद-

शानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य स्पर्शना दर्शिता। शेषाणां नवोत्तरशतस्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सर्वजगद् भवति; सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां चासां बन्धस्य भावात्। आसां त्रिंशदुत्तरशतप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्याजघन्यप्रदेशबन्धस्य च स्पर्शना प्रकृतिबन्धक-स्पर्शनावद्भवतीति विशेषतो भावना तत एव भावनीयेति। मार्गणास्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना विनेयजनबोधाय ज्येष्ठप्रदेशबन्धकस्पर्शनानिरूपणानन्तरं वृत्तौ भणिष्याम इति ॥१२२॥

अथ मार्गणास्वायुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह—

सम्मत्ती च्चिअ सामी जेसिं णिरयदुइआइणिरयेसुं ।
सिं च णरदुगुच्चाण य परिपुट्ठो जगअसंखंसो ॥१२३॥
सेसाणं सयरीए सप्पाउग्गाण फोसिआ णेया ।
कमसो छेगं दोण्णि य तिण्ण य चउरो पण छ भागा ॥१२४॥

(प्रे०) "सम्मत्ती" इत्यादि, नरकौघे द्वितीयादिसप्तमान्तासु षड्नरकमार्गणासु च यासां प्रकृतीनां केवलं सम्यग्दृष्टय एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तासां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति। ताः प्रकृतयः पुनरेताः—दर्शनावरणचतुष्कनिद्राद्विकाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरण-संज्वलनकषायरूपद्वादशकषायहास्यषट्कपुरुषवेदा इति पञ्चविंशतिः। भावना पुनरिमा—नारकाणां स्वस्थानक्षेत्रं लोकाऽसंख्येयमात्रमेव। तथा मरणसमुद्घातेन तेषां सम्यग्दृष्टीनां मनुष्येष्वेवो-त्पादात्, स्वस्थानस्य पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य च प्रतररज्ज्वसंख्यभागमात्रत्वादुभयक्षेत्रयोरन्तरा-लस्याधिकत्वेऽपि लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यत इति। विशेषभावना पुनश्चतुर्थव्या-प्त्या कार्या। एवमेव जिननाम्नो नरकौघद्वितीयतृतीयनरकमार्गणासु लोकाऽसंख्येयभागप्रमिता स्पर्शना विज्ञेया। तथा मनुष्यद्विकस्योच्चैर्गोत्रस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां लोकाऽसंख्येयभाग-प्रमाणैव स्पर्शना भवति, चतुर्थव्याप्तिविषयत्वेन लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यत इति। उक्तशेषाणामायुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य मरणसमुद्घातगतैस्तिर्यक्षूत्पि-त्सुभिरपि क्रियमाणत्वान्नारकाणां स्वस्थानक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्यभागमात्रत्वेऽपि पारभविकोत्पत्ति-क्षेत्रस्य प्रतररज्जुप्रमाणत्वाच्च तत्तन्नरकक्षेत्रतस्तिर्यग्लोको यावद्रज्ज्वन्तरितो भवति, तावद्रज्जुप्र-माणा स्पर्शना भवति। तद्यथा-द्वितीयनरकमार्गणागतानां रज्जुः, तृतीयनरकमार्गणागतानां रज्जु-द्वयम्, चतुर्थनरकमार्गणागतानां रज्जुत्रयम्, पञ्चमनरकमार्गणागतानां चतस्रो रज्जवः, षष्ठनरक-मार्गणागतानां पञ्च रज्जवः, नरकौघे सप्तमनरकमार्गणागतानां च षड् रज्जवः स्पर्शना प्राप्यते,

भावना पुनस्तृतीयव्याप्त्या कार्येति । शेषप्रकृतयः पुनरेताः-ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकस्त्या-नर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वस्त्रीवेदनपुंसकवेदसातासातवेदनीयनीचैर्गोत्रतिर्यग्द्विकपञ्चे-न्द्रियजातिनामौदारिकद्विकतैजसकार्मणशरीरद्वयसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्वयवर्णचतुष्काऽ-गुरुलघुचतुष्कनिर्माणोद्योतत्रसचतुष्कस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कनामानीति सप्ततिः ॥१२३-१२४॥

अथ यासु मार्गणासु बन्धप्रायोग्यप्रकृतिज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना तासु तां दर्शयन्नाह

लोगासंखियभागो सण्णाउग्गाण सव्वपयडीणं ।
परिपुट्ठो पढमणिरयगेविज्जाइसुरउरलमीसेसु ॥१२५॥ (गीतिः)
विक्कियमीसाहारगजुगल-अवेअमणपज्जवेसु तहा ।
संजमसामइएसुं छेए परिहारसुहुमेसु ॥१२६॥

(प्रे०) "लोगा०"इत्यादि, प्रथमनरकनवग्रैवेयकपञ्चानुत्तरसुरौदारिकमिश्रवैक्रियमि-श्राऽऽहारकतन्मिश्रयोगापगतवेदमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणास्विति षड्विंशतौ स्वस्थानादिक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्यभागप्रमाणत्वेन न ततोऽधिका स्पर्शना बन्धप्रायोग्याणां प्राप्यते, केवलमौदारिकमिश्रे ज्येष्ठप्रदेशबन्धयोग्यानां कर-णापर्याप्तसंज्ञितिर्यग्मनुष्याणां स्वस्थानक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्यभागमात्रत्वेन स्पर्शना न ततोऽधिका प्राप्यत इति । तद्यथा-प्रथमनरके नारकाणां पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य तिर्यग्लोकतत्प्रत्यासन्नरूपस्य तिर्यक्प्रतररज्ज्वात्मकत्वेऽपि स्वस्थानपारभविकक्षेत्रयोरन्तरालस्य संख्येययोजनमितत्वेन रज्ज्व-संख्यभागमात्रत्वाल्लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव स्पर्शना भवति । ग्रैवेयकानुत्तरदेवरूपचतुर्दशमार्गणा-भेदेषु तद्गतजीवानां मनुष्येष्वेवोत्पादभावात् स्वस्थानक्षेत्रपारभविकक्षेत्रसत्कयोश्चायामविष्कम्भयोः तिर्यक्प्रतररज्ज्वसंख्यभागमात्रत्वेन तयोरन्तरालस्य साधिकषड्रज्ज्वादिप्रमाणत्वेऽपि चतुर्थव्या-प्त्या लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव स्पर्शना समुद्घातगतेनापि लभ्यते । अतस्तासु बन्धप्रायोग्यप्रकृ-तीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामपि स्पर्शना तथैव लभ्यत इति । औदारिकमिश्रे तु बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां यथासम्भवं तिर्यग्मनुष्याणां करणाऽपर्याप्तानां मार्गणा-चरमसमये भवति अतस्तेषां मरणाभावदायुर्बन्धाभावाच्च न मारणान्तिकसमुद्घातो भवति, तेषां स्वस्थानस्य तिर्यग्लोके तदासन्ने चैव भावाल्लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति, अतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामपि लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते । एवं वैक्रियमिश्र-मार्गणायां करणाऽपर्याप्तावस्थागतानां देवानां नारकाणां चापेक्षया यथासंभवं भावना कार्या,

तेषां स्वस्थानस्य लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणत्वान्मारणान्तिकसमुद्घातस्य गमनागमनक्षेत्रस्य चाभावात् । आहारकाहारकमिश्रकाययोगापगतवेदमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायरूपा नवमार्गणाः, तासु स्वस्थानसमुद्घाताभ्यां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति अतस्तत्तन्मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां कर्मणां बन्धकानां लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव स्पर्शना भवति । भावना तु चतुर्थव्याप्त्या कार्येति । अत्रापगतवेदादिमार्गणायां सकषायजीवसत्कस्यैव प्रदेशबन्धस्याधिकृतत्वात् श्रीसर्वज्ञानाश्रित्य प्राप्तसर्वलोकस्पर्शना नवक्तुमुचितेति ॥१२५-१२६॥

अथ तिर्यग्गत्योघादिमार्गणासु प्राह

पण भागा सिं सम्मो देसो व तिरितिपणिंदितिरियेसुं ।
जाण तहुच्चसुहगतिगसुखगइआगिइसुरदुगाणं ॥१२७॥
थीअ दिवड्ढा चउदुग्गरपमुहविउवदुगाण छेगार ।
पण दस उ तिरिच्छीए सत्तु ज्जोअजसणामाणं ॥१२८॥
लोगासंखियभागो तसजोग्गऽण्णायवाण ऊणजगं ।
बायरणामस्स भवे सेसिगवण्णाअ सव्वजगं ॥१२९॥

(प्रे०) "पणे"त्यादि, तिर्यग्गत्योघे पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्तिरश्वीमार्गणात्रये चेति चतसृषु मार्गणासु यासां पञ्चविंशतिवातिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाश्चतुर्थे पञ्चमे वा गुणस्थाने भवन्ति तासां तथा देवद्विकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्राणामष्टानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना पञ्च भागा विज्ञेयाः । कथं ? सम्यक्त्वितिर्यञ्चो देवेभ्योऽन्यत्र नैवोत्पद्यन्ते । एवं देवद्विकादिसप्तानामपि मरणसमुद्घातगता ज्येष्ठप्रदेशबन्धका देवेभ्योऽन्यत्र नैवोत्पादार्हा इति । उच्चैर्गोत्रस्य पुनर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धका देवेषु मनुष्येषु वोत्पद्यते । अत्र संज्ञितिरश्चां स्वस्थानेन लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति । एवं मनुष्येषु वैमानिकं विहायेतरदेवेषु वा उत्पद्यमानानां तेषां समुद्घातकृताऽपि स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव भवति, अत उक्तत्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्योक्तस्पर्शना वैमानिकदेवेषूत्पित्सूनां कृतमारणान्तिकसमुद्घातानां जीवानामपेक्षया प्राप्यते, तिरश्चामुत्पादस्य चाष्टमदेवलोकं यावदेव भावात् । तिर्यग्लोकात् सहस्रारदेवलोकं यावदन्तरालस्य पञ्चरज्जुप्रमाणत्वात् पञ्चरज्जुप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते । विशेषभावना तु तृतीयव्याप्त्या कार्येति । स्त्रीवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सार्धरज्जुप्रमाणा भवति । तद्यथा—स्त्रीवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशं बध्नन्तस्तिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यदेवेष्वेवोत्पद्यन्ते, न

पुनर्नारकादिषु, ततः पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु मनुष्येषु भवनपत्यादित्रिविधदेवेषु चोत्पित्सूनां कृतमारणान्तिकसमुद्घातानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति। स्वस्थानकृता स्पर्शना तु लोकाऽसंख्येयभागमात्रा, स्त्रीवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां वैमानिकेष्वपि स्त्रीत्वेनोत्पादाद् देवीत्वेन च द्वितीयदेवलोकं यावद्देवोत्पादभावेन तिर्यग्लोकाद् द्वितीयदेवलोकान्तं यावत् सार्धरज्जुक्षेत्रस्य भावात् तावत्प्रमाणा स्पर्शना प्रस्तुते प्राप्यते नाधिकेति। भावना तु तृतीयव्याप्त्या कार्या। दुःस्वरकुखगतिनरकद्विकरूपाणां चतसृणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः षड्भागा अधोलोकसत्काः स्पृष्टाः, भावना त्वोघवत्कार्या, ओघेऽपि तिर्यगपेक्षयैव प्रोक्तस्पर्शनाया लाभात्। वैक्रियद्विकस्यैकादशभागा ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः स्पृष्टाः, भावना त्वोघवद् विधेयेति। केवलं तिरश्चीमार्गणायां दुःस्वरादिचतसृणां पञ्च भागाः, वैक्रियद्विकस्य दशभागा स्पर्शना विज्ञेयाः।

उद्योतनाम्नो यशःकीर्तिनाम्नश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः सप्तभागान् स्पृशन्ति स्म, रत्नप्रभापृथ्वीतोऽध उत्पन्नानामुद्योतनामयशःकीर्तिनाम्नोरुदयाभावान्नाधोलोकगता विशेषस्पर्शना, अधोलोकस्थभवनपत्यादिभवनेषु रत्नादितयोत्पित्सूनामुक्तप्रकृतिद्वयज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकासंख्यभागमात्रा भवति, एवं तिर्यग्लोकस्थैकेन्द्रियजीवान् तदुदयवतश्चाधिकृत्यापि वाच्यम्, अत ऊर्ध्वलोकस्यान्ते सिद्धशिला तत्रोत्पित्सूनामतीतानन्तकालापेक्षया समस्ततिर्यग्लोके तिर्यक्प्रतरव्याप्तानामुक्तप्रकृतिद्वयज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां रज्जुमारणान्तिकसमुद्घातगतानामूर्ध्वलोकसत्कसप्तरज्जुप्रमाणा स्पर्शना भवति। भावना तु तृतीयव्याप्त्या कार्या। पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणात्रिके प्रकृतिबन्धकक्षेत्रस्याप्येतावत् प्रमाणत्वाद् यथासंभवं ततोऽपि भावनाऽवधेया सुगमा चेति। उक्तप्रकृतिद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो बादरपर्याप्तप्रत्येकैकेन्द्रियप्रायोग्या यथासंभवं पञ्चविंशति षड्विंशतिं वा बध्नत एव भवतीति न विस्मर्तव्यमिति।

उक्तशेषाणां केवलं त्रसप्रायोग्याणामेकेन्द्रियेष्वेकान्ततस्तदुदयायोग्यानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येभागमात्रा भवति। ताः प्रकृतयः पुनरिमाः—मनुष्यद्विक-द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग संहननषट्क-मध्यमसंस्थानचतुष्क त्रसनामानीत्यष्टादशप्रकृतयः। आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संज्ञिपर्याप्ततिर्यञ्चः, ते च तिर्यग्लोके तदासन्ने वा क्षेत्रे वर्तन्ते। एव तद्वेदका अपि तिर्यग्लोके तदासन्ने वा वर्तन्ते, अतः स्वस्थानेन मरणसमुद्घातेन च लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना लभ्यते। भावना तु चतुर्थव्याप्त्या कार्येति। एवमातपनाम्नो बादरपर्याप्तपृथ्वीकायप्रायोग्यत्वेऽपि तदुदयवतां जीवानां बाहुल्यतस्तिर्यग्लोके एव भावाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकजीवानां तिर्यग्लोके तदासन्ने वा भावाच्च लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना। तथा बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा भवति, ओघवदत्रापि बादरापर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्याः त्रयोविंशतिं बध्नतां देशोनलोकस्थेषु बादरापर्याप्तवायुकायिकेषूत्पादात्।

अथ तिर्यग्मार्गणाचतुष्के उक्तशेषप्रकृतीनां स्पर्शना गाथापादेन दर्शयति-"**सेसिगवण्णाअ**" इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वनपुंसकवेद-सातासातवेदनीयनीचैर्गोत्रतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिनामौदारिकतैजसकार्मणशरीरहुण्डकसंस्थानवर्ण-चतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणस्थावरचतुष्कपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगानादेयाऽयशः-कीर्तिनामानि । उक्तमार्गणाचतुष्के आसामेकपञ्चाशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां सूक्ष्मेष्वपि मरणसमुद्घातस्य भावेन सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते इति ॥१२७-१२९॥

अथापर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणासु प्रस्तुतं निरूपयन्नाह—

असमत्तपणिंदितिरियपणिंदितसस्व्वविगलअमणेसुं ।
सव्वजगं पगिपुट्ठं णपुमाइगपंचमयरीए ॥१३०॥
अत्थि जसुज्जोआणं सगभागा वायरस्स ऊणजगं ।
लोगासंखियभागो सप्पाउग्गाण सेमाणं ॥१३१॥

(प्रे०) "असमत्ते"त्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसनव-विकलाक्षलक्षणद्वादशमार्गणा असंज्ञिमार्गणा च तासु त्रयोदशमार्गणासु नपुंसकवेदादिपञ्चसप्तति-प्रकृतीनां सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः सर्वलोकः स्पर्शना प्राप्यते । ताः प्रकृतयः पुनरेताः ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकषोडशकषायहास्यषट्कनपुंसकवेदमिथ्यात्ववेदनीय-द्वयनीचैर्गोत्रान्तरायपञ्चकानि तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिनामौदारिकतैजसकार्मणशरीरहुण्डकसंस्था-नवर्णचतुष्काऽगुरुलघुचतुष्कनिर्माणपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभस्थावरचतुष्कास्थिराशुभदुर्भगानादेया-यशःकीर्तिनामानीति पञ्चसप्ततिप्रकृतयः । उक्तत्रयोदशमार्गणासु सूक्ष्मैकेन्द्रियेषूत्पित्सूनां मारणा-न्तिकसमुद्घातगतानामप्युक्तपञ्चसप्ततिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावेन प्रथमव्याप्त्या सर्वलो-कप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । तथोद्योतनाम्नो यशःकीर्तिनाम्नश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः सप्तचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, भावना पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वत्कार्या । बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्देशोनलोकप्रमाणमेव क्षेत्रं स्पृष्टम्, भावना तु द्वितीयव्याप्त्याऽनन्तरोक्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वत्कार्या । एवमष्टसप्ततिप्रकृतीनां स्पर्शना निरूपिता । शेषाणामायुर्वर्जानामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनामुक्तमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति । शेषप्रकृतयः पुनरेताः—स्त्रीवेदपुरुषवेदोच्चैर्गोत्रमनुष्य-द्विकद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयाऽऽतपत्रससुभ-गत्रिकदुःस्वरनामानि । उक्तमार्गणासु देवनरकप्रायोग्याणां बन्धाभावेनाऽऽतपनाम विहाय शेषा-ष्टाविंशतिप्रकृतीनां त्रसप्रायोग्यत्वेन द्वीन्द्रियादितिर्यक्प्रायोग्यं मनुष्यप्रायोग्यं वा बध्नतां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, उक्ततिर्यग्मनुष्याणां मार्गणागतजीवानां च तिर्यग्लोके तदासन्ने

वा भावाल्लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यत इति । आतपनाम्न उदयस्य सूर्यबिम्बस्थपृथ्वीकायिकानां भावात् सूर्यविमानानां तिर्यग्लोकवर्तित्वाच्च लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना सुघटेति ॥१३०-१३१॥ अथापर्याप्तमनुष्यादिमार्गणास्वाह—

जसउज्जोआण भवे अपज्जणरऽगणितिबायरग्गीसुं ।
सयमुज्झा सव्वजगं णपुमाईण पणमयरीए ॥१३२॥
देसूणजगं बायरनामस्सियराण जगअसंखंसो ।

(प्रे०) "जस"इत्यादि, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां "ऽगणितिबायरग्गीसु"ति सूक्ष्माणां सर्वलोकव्याप्तित्वात् तान् विहाय ओघबादरौघपर्याप्ताऽपर्याप्तबादरलक्षणेषु चतुरग्निकायभेदेषु चैवं मार्गणापञ्चके उद्योतनाम्नो यशःकीर्तिनाम्नश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः स्पृष्टक्षेत्रपरिमाणं तु स्वयं श्रुतानुसारेण वाच्यम् । कुतः एवम्? इति चेत्, उच्यते—उक्तमार्गणापञ्चके स्वस्थानेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः केवलं मनुष्यक्षेत्रेष्वेव प्राप्यन्ते; तथोक्तप्रकृतिद्वयबन्धप्रायोग्यक्षेत्रमूर्ध्वलोके तिर्यक्प्रतररज्ज्वसंख्येयभागमात्रमिति ऊर्ध्वलोकापेक्षया लोकाऽसंख्यभागमात्रा स्पर्शना प्राप्तुमर्हति, यदि वा देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याष्टरज्जुप्रमाणत्वात् तत्राऽपान्तराले वर्तमानानां विभूषिताभूषणानामाभूषणादिषूत्पद्यमानापेक्षया यदि सा स्पर्शना प्राप्यते तदाऽष्टरज्जुप्रमाणा सा स्याद्, अन्यथा लोकाऽसंख्येयभागादिमाना इति "सयमुज्झा" इत्यभिधानम् । विशेषभावना तूत्तरप्रकृतिबन्धविधानग्रन्थानुसारेणाऽपि कार्येति । केचित्तु बादरतेजस्कायिकानां सम्पूर्णतिर्यग्लोके स्थितिं कालभेदेन मन्यन्ते, न चैतत् श्रीव्याख्याप्रज्ञप्त्याद्यनुसारि, अतस्तन्मतस्यानुपादनं बोध्यमिति । सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नता या पञ्चसप्ततिप्रकृतयो बध्यन्ते, तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैरुक्तमार्गणापञ्चके सर्वलोकः स्पृष्टो विज्ञेयः, भावना तु प्रथमव्याप्त्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वत्कार्या । बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम् , भावना तु द्वितीयव्याप्त्या कार्या; बादरवायुकायिकानां देशोनलोकक्षेत्रे भावात् । उक्तशेषाणामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां षड्विंशतिप्रकृतीनां च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयभागः स्पृष्टः, शेषप्रकृतीनां वेदकानां तिर्यग्मनुष्याणां तिर्यग्लोके तदासन्ने वा भावात् , भावना त्वनन्तरोक्ताऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणावत् कार्येति ॥१३२॥ अथ पृथ्वीकायौघादिमार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

भूदगणिगोअतयखिलबायरपत्तेअवणतिगेसु वणे ॥१३३॥ (गीतिः)
णपुमाइदुसट्ठीए तेरसतिरियाइगाण सव्वजगं ।
देसूणजगं बायरणामस्सियराण सयमुज्झा ॥१३४॥

(प्रे०) "भूदगे"त्यादि, पृथ्वीकायौघाप्कायौघवनस्पतिकायौघसाधारणवनस्पतिकायौघरूपासु चतसृषु मार्गणासु, तथा बादरपृथ्वीकायभेदत्रये, एवमप्कायभेदत्रये बादरसाधारणवनस्पतिकायभेदत्रये प्रत्येकवनस्पतिकायभेदत्रये समुदितासु षोडशमार्गणासु स्वस्थानेन लोकाऽसंख्येयभाग एव सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां भावेऽपि सूक्ष्मप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा मरणसमुद्घातेन प्राप्यते । सूक्ष्माणां सर्वलोके भावेन तत्रोत्पित्सूनां मरणसमुद्घाते वर्तमानानामासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽपि भावात् । स्पर्शनाया अतीतादिकालविषयत्वेन जीवानामानन्त्यात् सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना संघटत इति । बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनोक्तमार्गणासु देशोनलोकप्रमाणा विज्ञेया । बादरनाम्न उदयवतां जीवानां देशोनलोके भावाद् । भावना तु द्वितीयव्याप्त्या करणीया । उक्तशेषाणामेकत्रिंशत्प्रकृतीनां स्पर्शनामानं स्वयं श्रुतानुसारेण तज्ज्ञायकेभ्यो ज्ञातव्यम् । यदि सप्तमपृथिवीगताः पृथ्वीकायिकाद्या ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्युः, ततश्चोर्ध्वमागच्छन्तस्ते त्रसनाड्यां सर्वत्र प्राय ऊर्ध्वदण्डा यदि कुर्वन्ति तर्हि स्पर्शना षडादिरज्जुप्रमाणा प्राप्येत, अन्यथा लोकाऽसंख्येयभागमात्रैवेति विशेषनिर्णयाभावेन "सयमुज्झा" इति मुकुलितभणनम् ॥१३४॥

अथ मनुष्यौघादिमार्गणात्रये प्रस्तुतं निरूपयन्नाह

जाणोहे सव्वजगं तिणरेसु वि बायरस्स ऊणजगं ।
सयमुज्जोअस्सूज्झा सेसाणं जगअसंखंसो ॥१३५॥

(प्रे०) 'जाणोहे''त्यादि, ओघप्ररूपणायां यासां चत्वारिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोको भवति, तासामत्र मनुष्यौघ पर्याप्तमनुष्य-मानुषीमार्गणात्रये ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोको भवति, मिथ्यादृशां सूक्ष्मेषूत्पित्सूनां मरणसमुद्घाते वर्तमानानां स्पर्शनायाः सर्वजगति भावाद् , भावना तु प्रथमव्याप्त्या कार्या । चत्वारिंशत्प्रकृतयः पुनरिमाः स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कनपुंसकवेदमिथ्यात्वासातवेदनीयनीचैर्गोत्रतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिनामौदारिकतैजसकार्मणशरीरहुण्डकवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणस्थावरचतुष्कपर्याप्तप्रत्येकनामस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगानादेयायशःकीर्तिनामानि । बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्देशोनलोकः स्पृष्टः, भावना तु द्वितीयव्याप्त्यनुसारेणौघवदेव कार्या । उद्योतनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनामानं स्वयमागमानुसारेण तज्ज्ञातृसकाशाद् विभावनीयम् । हेत्वादयस्तु अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावद् विभावनीयाः । उक्तशेषचतुस्सप्ततिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां लोकस्यासंख्येयभागः स्पर्शनाया विषयो भवति । तद्यथा-ज्ञानावरणादिशेषप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशं बध्नन्तो मनुष्यौघादिमार्गणात्रये सूक्ष्मेषु बादरवायुकायिकेषु च नोत्पद्यन्ते, अतश्चतुर्थव्याप्त्या लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा

स्पर्शना भावनीया। शेषप्रकृतयः पुनरेताः-ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणषट्काद्यवर्जद्वादशकषाय-हास्यषट्कपुरुषवेदस्त्रीवेदसातवेदनीयोच्चैर्गोत्रमनुष्यद्विकनरकद्विकदेवद्विकद्वीन्द्रियादिजाति----चतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियद्विकाहारकद्विकसंहननषट्काद्यसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयातपजिननाम-त्रसुभगचतुष्कदुःस्वरनामान्तरायपञ्चकानीति। अत्र देवनैरयिकेषूत्पित्सूनां कृतमारणान्तिकसमुद्घातानां यासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य च तिर्यक्प्रतररज्ज्वसंख्येयभागप्रमाणत्वेन तयोरन्तरालस्य रज्ज्वादिप्रमाणत्वेऽपि चतुर्थ्यव्याप्त्या लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते, उक्तेतरासां पुनः ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तिर्यग्लोके तदासन्ने वा उत्पद्यन्ते, अतः कासाञ्चित्प्रकृतीनां बन्धकानां पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य तिर्यक्प्रतररज्जुप्रमाणत्वेऽपि स्वस्थानक्षेत्रपारभविकक्षेत्रयोरन्तरालस्याभावाद् रज्ज्वसंख्येयभागप्रमाणत्वाद्वा लोकाऽसंख्यभागमात्रैव स्पर्शना प्राप्यते, चतुर्थ्यव्याप्त्यान्तर्भावादिति। विशेषभावना च स्वामित्वानुसारेण सुगमत्वात् स्वयं कार्या ॥१३५॥

अथ देवौघादिमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां स्पर्शनां निरूपयन्नाह—

सुरईसाणंतेसु सिं अड भागाऽत्थि जाण सम्मो च्च।
सुहगाइएगवीसाअ तह णरदुगायवुच्चाणं ॥१३६॥
सेसाण णव भागा .... ।

(प्रे०) 'सुरे'त्यादि देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानदेवलोकरूपासु षड्मार्गणासु यासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः सम्यग्दृष्टय एव तासां दर्शनावरणषट्काप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायहास्यषट्कपुरुषवेदानां जिननाम्नश्च षड्विंशतेस्तथा सुभगत्रिकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्कस्त्रीवेदौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसनामपञ्चेन्द्रियजातिदुःस्वरकुखगतिरूपाणां सुभगत्रिकाद्येकविंशतिप्रकृतीनां मनुष्यद्विकातपनामोच्चैर्गोत्राणां चेति समुदितानामेकपञ्चाशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा भवति, देवानां गमनागमनकृतस्पर्शनायास्तावत्प्रमाणत्वात्। एकेन्द्रियेषूत्पित्सूनां मारणान्तिकसमुद्घातेन नवमरज्जोः स्पर्शनाया भावेऽपि तत्राऽऽद्याः सप्तविंशतिप्रकृतीनां बन्धाभावात् दर्शनावरणादिचतुर्विंशतिप्रकृतीनां बन्धभावेऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धाभावाद् नोक्तैकपञ्चाशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुतोऽधिका प्राप्यत इति। उक्तशेषाणामेकपञ्चाशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना नवरज्जुप्रमाणा भवति, एकेन्द्रियेषूत्पित्सूनामपि मारणान्तिकसमुद्घाते वर्तमानानामासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावेनोर्ध्वलोकसत्कचरमरज्जुरूपाया नवमरज्जोः स्पर्शनाया अपि लाभात्। शेषप्रकृतयः पुनरिमाः-ज्ञानावरणपञ्चकस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वनपुं-

सकवेदसातासातवेदनीयनीचैर्गोत्रान्तरायपञ्चकानि तथा तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिनामौदारिकतैजसकार्मणशरीरहुण्डकसंस्थानवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणोद्योतबादरत्रिकस्थावरस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तिनामानीति समुदिता एकपञ्चाशत् । भावना तु देवानां गमनागमनक्षेत्रं समुद्घातक्षेत्रं चानुसृत्य तृतीयव्याप्त्या कार्येति ॥१३६॥

अथ सनत्कुमारदेवादिमार्गणासु सर्वसूक्ष्ममार्गणासु च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्पर्शनां प्राह–

....सव्वाण अड तइआइकप्पेसुं ।
चउआणयाइगेसु छ, सव्वजगं सव्वसुहमेसुं ॥१३७॥

(प्रे०) "सव्वाणे" त्यादि, सनत्कुमारादिसहस्रारपर्यवसानेषु षट्सु मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां नवनवतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमष्टौ भागा विज्ञेया, उक्तमार्गणाषट्के देवानां गमनागमनकृतस्पर्शनायास्तावत्प्रमाणत्वाद् गमनागमनक्षेत्रमध्य एव तेषां पारभविकक्षेत्रस्य भावाद् मरणसमुद्घातेन नाधिका स्पर्शना प्राप्यत इति । एवमानतप्राणतारणाच्युतदेवमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां षण्णवतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना षड्रज्जुप्रमाणा भवति, आनतादिदेवानां बाहुल्यतोऽधोगमनाभावेनाधोलोकसत्करज्जुद्वयस्पर्शनाया अभावाद् गमनागमनकृता षड्रज्जुस्पर्शनैव प्राप्यते । मरणसमुद्घातेनाधिकस्पर्शनाया अभावस्तु सनत्कुमारदेववद् यथासंभवं भावनीय इति । नवग्रैवेयकानुत्तरपञ्चकेषु लोकासंख्यभागप्रमाणस्पर्शनायाः प्राक् प्रतिपादितत्वात्, देवमार्गणासु प्रस्तुतस्पर्शनानिरूपणं समाप्तम् । अथेन्द्रियकायमार्गणासु दिदर्शयिषुः सूक्ष्मैकेन्द्रियाद्यष्टादशसूक्ष्मभेदेषु गाथापादेनाऽऽयुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयति–"सव्वजग" मित्यादि, एकेन्द्रिय-पृथ्वीकायाप्कायतेजस्कायवायुकायसाधारणवनस्पतिकायानां सूक्ष्मौघतत्पर्याप्ताऽपर्याप्तभेदेष्वष्टादशसु बन्धप्रायोग्याणां सर्वेषां कर्मणां सप्तोत्तरशतस्य चतुरुत्तरशतस्य वा ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा भवति । उक्ताष्टादशविधसूक्ष्मजीवानां सर्वदैव सर्वलोकव्यापित्वात् । भावना तु प्रथमव्याप्त्या कार्येति ॥१३७॥

अथैकेन्द्रियौघादिमार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां प्राह

एगिंदियवाऊसुं ताण सयलबायरेसु सव्वेसिं ।
सप्पाउग्गाण भवे सबायरापज्जखेत्तव्व ॥१३८॥

(प्रे०) 'एगिंदिय०" त्यादि, एकेन्द्रियौघे वायुकायौघे तयोश्च त्रिषु त्रिषु बादरभेदेषु समुदितास्वष्टसु मार्गणासु तत्तन्मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः स्पर्शनया व्याप्तक्षेत्रं यथा क्षेत्रद्वारे बादराऽपर्याप्तैकेन्द्रियस्य निरूपितं तथैवैकेन्द्रियसत्कचतुर्भेदेषु विज्ञेयम्,

यथा च तत्र बादराऽपर्याप्तवायुकायस्य दर्शितं तथैवात्र वायुकायभेदचतुष्के स्पर्शनायाः क्षेत्रं बोद्धव्यम् ।

तद्यथा-एकेन्द्रियभेदचतुष्के मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोर्लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना भवति, वायुकायवर्जपर्याप्तापर्याप्तबादरैकेन्द्रियाणां स्वस्थानक्षेत्रस्य लोकाऽसंख्यभागप्रमाणत्वात् । मरणसमुद्घातेनाऽपि अधोलोकस्थानां त्रसनाडीगतानां प्राक् तिर्यग्गत्या पश्चादूर्ध्वमागच्छतां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते । अन्यपद्धत्याऽधोलोके तेषां गतिरेव न स्यात् , यद्वा कारणान्तरमूह्यमिति । तिर्यग्लोकोर्ध्वलोकस्थानामुक्तप्रकृतित्रयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा चतुर्थव्याप्त्या भावनीयेति । उक्तमार्गणाष्टके सूक्ष्मप्रायोग्याणां पञ्चसप्तति-प्रकृतीनां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा भवति, प्रस्तुते स्पर्शनाया अतीतकालविषयत्वेनानन्तानां ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धकानां लाभात् । पर्याप्तबादरवायुकायिकादिषु क्षेत्रद्वारस्य वर्तमानकालविषयत्वेन विवक्षितैकसमयविषयत्वेन वा तत्राल्पजीवानां लाभात् "नाऊण"इत्यादि दर्शितम् । न तथा प्रस्तुतेऽपि, अतो बादराऽपर्याप्तैकेन्द्रियवद् बादरापर्याप्तवायुकायवच्चातिदेशः । भावना तु प्रथमव्याप्त्या कार्येति । उक्तमार्गणाष्टके शेषाणामायुर्वर्जानामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा विज्ञेया, बादरवायुकायिकानामपि तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वाद् । भावना तु द्वितीयव्याप्त्या कार्येति । शेषैकोनत्रिंशत्प्रकृतयः पुनरिमाः- स्त्रीवेदपुरुषवेदद्वीन्द्रियादिजाति-चतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्ग-संहननषट्क-चरमवर्जसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयातपोद्योतत्रसनामबादरनाम-सुभगचतुष्कदुःस्वरनामानीति ॥१३८॥

अथ पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणासु यासु बन्धप्रायोग्याणां स्पर्शना सर्वथैवौघवद् भवति तासु तां तथैव दर्शयन्नाह

सव्वाणोघव्व भवे दुपणिंदितसपणमणवयेसु तहा ।
काये लोहणयणियरभवीसु सण्णिम्मि आहारे ॥१३९॥

(प्रे०)' सव्वाणे"त्यादि, पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसकायौघ-पर्याप्तत्रसकाय-काय-योगौघ-मनोयोगौघ-तदुत्तरभेदचतुष्क-वचनयोगौघ-तदुत्तरभेदचतुष्क--लोभ-चक्षुर्दर्शना--ऽचक्षु-र्दर्शन-भव्य-संज्ञ्या-ऽऽहारकमार्गणास्वेकविंशतौ बन्धप्रायोग्याऽऽयुर्वर्जानां षोडशोत्तरशतस्य ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धस्य स्पर्शनाक्षेत्रमोघवद् भवति । ओघोक्तज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामेतासु सर्वासु मार्गणा-स्वन्तर्भावात् । भावना त्वोघवत्कार्या ॥१३९॥ तदेवं इन्द्रियकायमार्गणाभेदेषु ज्येष्ठप्रदेशबन्ध-कानां स्पर्शना निरूपिता ।

अथ क्रमप्राप्ता योगमार्गणा । तदवान्तरभेदेभ्योऽपि मनोयोगभेदेषु वचोयोगभेदेषु काययोगौघौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रयोगाऽऽहारककाययोगतन्मिश्रेषु च प्रसङ्गतो निरूपितत्वात् , उक्तशेषयोगेभ्यः क्रमप्राप्तौदारिककाययोगे ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

चत्ताए जाणाहि सव्वजगं सिमुरले वि सव्वजगं ।
थीवायरउज्जोअछदुस्सरपमुहाण तिरियव्व ॥१४०॥
णिद्दुगहस्सछगपणसुहगाइसुरदुगअडकसायाणं ।
पण भागा परिपुट्ठा सेसाणं जगअसंखंसो ॥१४१॥

(प्रे०) "चत्ताए" इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां संज्ञिपर्याप्ततिर्यग्मनुष्या ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति । अतः स्वस्थानेन लोकाऽसंख्यभागमात्रैव प्रस्तुतस्पर्शना सर्वप्रकृतीनां प्राप्यते, मरणसमुद्घातेन स्त्यानर्द्धित्रिकादिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां सूक्ष्मेषूत्पद्यमानानामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धसंभवात् तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकस्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा भवति । भावना तु प्रथमव्याप्त्या कार्या । ताः प्रकृतयो नामत इमाः-स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वनपुंसकवेदाऽसातवेदनीयनीचैर्गोत्राणि तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिनामौदारिकतैजसकार्मणशरीरहुण्डकवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणपर्याप्तप्रत्येकस्थावरचतुष्कस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगानादेयायशःकीर्तिनामानि चेति चत्वारिंशत्प्रकृतयः । बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम् । भावना तु द्वितीयव्याप्त्या कार्या । स्त्रीवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः सार्धरज्जुप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम् , ईशानान्तं यावदेव देवीनामुत्पादात् तिरश्चामपेक्षया सार्धरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यत इति । उद्योतनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां सप्तरज्जुप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेया । तथा दुःस्वरनामकुखगतिनामनरकद्विकनाम्नां षड्भागाः, वैक्रियद्विकस्यैकादश भागा ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना भवति, भावना तु तिर्यग्मार्गणानुसारेण कार्या । प्रस्तुतमार्गणायां तिरश्चामपेक्षयैवोक्तस्पर्शनाक्षेत्रस्य लाभात् मूलकारेण तिर्यग्वदतिदेशो विहितः । मनुष्यानधिकृत्य तु लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव स्पर्शना प्राप्यत इति ।

निद्राद्विकहास्यषट्कसुभगत्रिकसमचतुरस्रसुखगतिसुरद्विकाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणरूपाणां त्रयोविंशतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना पञ्चरज्जुप्रमाणा विज्ञेया । आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां सम्यग्दृष्टित्वाद् देवप्रायोग्यबन्धकत्वाद्वा तिरश्चां देवेषु सहस्रारान्तमेवोत्पादात् तिर्यग्लोकतः सहस्रारदेवलोकस्य पञ्चरज्जुप्रमाणान्तरितत्वेन तिरश्चामपेक्षयैवोक्तप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । भावना तु तिर्यग्मार्गणावदेव कार्या । मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति ।

उक्तशेषाणां चतुश्चत्वारिंशतो लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना विज्ञेया । तद्यथा-ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चकसातवेदनीयोच्चैर्गोत्रयशःकीर्तिनामसंज्वलनचतुष्क-पुरुषवेदाहारकद्विकजिननामानि । आसां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकतया मनुष्या एव

भवन्ति, अत तदपेक्षयौघवद् मनुष्यमार्गणावद् वा स्पर्शना भावनीया। मनुष्यद्विकजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानचतुष्कातपत्रसनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशवन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा तिर्यग्मार्गणावद् मनुष्यमार्गणावद् वा भावनीया, चतुर्थव्याप्तिप्रवेशादिति ॥१४०-१४१॥ अथ वैक्रियकाययोगमार्गणायां प्रस्तुतं निरूपयन्नाह

वेउव्वे अड भागा छुहिआ तेसिं हवन्ति सम्मो च्च।
जेसिं छव्वीसाए तहा णरदुगायवुच्चाणं ॥१४२॥
छुहिआ भागा बारस णेया सुहगाइएगवीसाए ।
सेसाणं णामाणं णव तेरस सेसपयडीणं ॥१४३॥

(प्रे०) "वेउव्वे" इत्यादि, वैक्रियकाययोगमार्गणायां देवनैरयिका भवन्ति, अतस्तदपेक्षया स्पर्शना भावनीया। तत्र यासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः सम्यग्दृष्टय एव, न तु मिथ्यादृष्टयोऽपि, तासां षड्विंशतिप्रकृतीनां दर्शनावरणचतुष्कनिद्राद्विकाप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनकषायहास्यषट्कपुरुषवेदजिननाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टभागप्रमाणा विज्ञेया, देवानां गमनागमनक्षेत्रस्य तावत्प्रमाणत्वात्, नारकापेक्षया लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणस्पर्शनाया एव लाभान्न तदपेक्षया कश्चिद्विशेषः। भावना तु तृतीयव्याप्त्या कार्येति। एवं मनुष्यद्विकातपनामोच्चैर्गोत्राणामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा भावनीयेति। सुभगत्रिकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्कस्त्रीवेदौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसनामपञ्चेन्द्रियजातिदुःस्वरनामकुखगतिनाम्नामेकविंशतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां द्वादशरज्जुप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेया, सप्तमनरकनारकैर्मरणसमुद्घातगतैरधोलोकसत्काः षड् रज्जवः स्पृष्टाः, देवैर्गमनागमनैरूर्ध्वलोकसत्काः षड् रज्जवः स्पृष्टा इति। अत्रोऽधोलोकसत्करज्जुद्वयस्य देवानां गमनागमनविषयत्वेऽपि नारकसत्कस्पर्शनाया विषयत्वेन दर्शितत्वान्न पृथगुपादानम्, पुनरुक्तिभावाद् रज्जुसंख्यायां व्यामोहभावाच्च। उवशेषा नामप्रकृतयस्तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिनामौदारिकतैजसकार्मणशरीरहुण्डकसंस्थानवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणोद्योतनामस्थावरबादरत्रिकस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगानादेय-यशःकीर्तिनामायशःकीर्तिनामानीति। आसामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां वैक्रियकाययोग एकेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नतां देवानामेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामित्वाद् यथा देवगतिमार्गणायामासां स्पर्शना प्राप्यते; तथा प्रस्तुतेऽपि नवरज्जुप्रमाणा स्पर्शना यथार्हं गमनागमनमरणसमुद्घाताभ्यां प्राप्यते। भावना तु तृतीयव्याप्त्या कार्येति। नामभिन्नशेषास्तु ज्ञानावरणपञ्चकस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वनपुंसकवेदसातासातनीचैर्गोत्रान्तरायपञ्चकानीति द्वाविंशतिप्रकृतयः, तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना त्रयोदशभागप्रमाणा विज्ञेया, तत्र नारकापेक्षयाऽधोलोकसत्का षड्रज्जुप्रमाणा स्पर्शना मरण-

समुद्घातेन प्राप्यते; देवापेक्षया तूर्ध्वलोकसत्काः सप्तरज्जवो मरणसमुद्घातेनोक्तप्रकृतीनां ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धकैः स्पृष्टा, एवं समुदितास्त्रयोदशेति ॥१४२-१४३॥

अथ कार्मणानाहारकमार्गणयोः प्रस्तुतं निरूपयन्नाह

छदरिसणावरणाणं वारकसायसगणोकसायाणं ।
उच्चस्स य पण भागा फुसिआ कम्मे अणाहारे ॥१४४॥
वारस भागा पुट्ठा हवेज्ज सेसाण णामवज्जाणं ।
तह पणसंघयणागिइचउक्कदुस्सरकुखगईणं ॥१४५॥
भागा परघाऊसासायवदुगपज्जथिरसुहजसाणं ।
छ फरिसिआ बोद्धव्वा फुसणा खेत्तव्व सेसाणं ॥१४६॥

(प्रे०)"छदरिसणा०"इत्यादि, कार्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां च दर्श-नावरणषट्कहास्यषट्कपुरुषवेदाद्यवर्जद्वादशकषायाणां पञ्चविंशतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः अविरत-सम्यग्दृष्टय एव भवन्ति, तेषां नारकेभ्यो मनुष्येषूत्पादे लोकाऽसंख्यभाग एव स्पर्शना भवति, एवं मनुष्येभ्यो देवेषूत्पादेऽपि लोकाऽसंख्यभाग एव स्पर्शना भवति, तिर्यग्भ्यो देवेषूत्पादे तेषां सहस्रारान्तेषूत्पादात्पञ्चरज्जुप्रमाणा स्पर्शना भवति । अत्र संज्ञिभ्यः संज्ञिष्वेवोत्पादात् समयद्वय-मेवानाहारकत्वम् । देवानां सम्यक्त्वेन सह मनुष्येष्वेवोत्पादात् लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना तैः प्राप्यतेऽतस्तिर्यगपेक्षया भावना कार्येति । उच्चैर्गोत्रस्यापि भावना एवमेव, केवलं मिथ्या-दृष्टितिरश्चामपेक्षयाऽपि सा स्पर्शना प्राप्यत इति । उक्तशेषाणां नामवर्जानां ज्ञानावरणादीनां ज्ञानावरणपञ्चकस्त्यानर्द्धित्रिकसातासातवेदनीयस्त्रीवेदनपुंसकवेदानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्व-नीचैर्गोत्रान्तरायपञ्चकानां त्रयोविंशतेस्तथा चरमवर्जसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्कदुःस्वरकुख-गतिनाम्नामेकादशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना द्वादशभागप्रमाणा भवति, सप्तमनरकनार-काणां तिर्यक्षूत्पत्तिमधिकृत्याधोलोकसत्काः षड्रज्जवस्तथा सहस्रारान्तदेवानामच्युतदेवलोकग-तानां च्यवनेन तिर्यक्षूत्पत्तिमाश्रित्योर्ध्वलोकसत्काः षड्रज्जवश्चेति द्वादशरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, मिथ्यादृग्देवनारकेभ्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षूत्पद्यमानानामप्यासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् । तिर्यग्मनुष्येभ्यो देवनरकेषूत्पद्यमानानाश्रित्य स्पर्शनाक्षेत्रस्य न्यूनत्वात् तान् विहाय देवनरकेभ्य-स्तिर्यक्षूत्पद्यमानानाश्रित्य भावना कृता ।

अथ पराघातोच्छ्वासातपोद्योतपर्याप्तनाम-स्थिरशुभयशःकीर्तिनाम्नामष्टानां ज्येष्ठप्रदेश-बन्धकाः संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्याः पञ्चविंशतिं षड्विंशतिं वा बध्नन्तो भवन्ति ।

तत्रापि नारकाणां सनत्कुमारादिदेवानां चैकेन्द्रियप्रायोग्यस्य बन्धाभावेन न तैः कृता स्पर्शना प्राप्यते । किञ्च नारकेभ्य उद्वृत्त्य तिर्यक्षूत्पद्यमानास्तु न तत्प्रायोग्यं बध्नन्तीति न तदपेक्षयाप्यधोलोकसत्कस्पर्शना । ऊर्ध्वलोकसत्का स्पर्शनाऽपि न सनत्कुमारादिदेवापेक्षया, अपि तु द्वितीयकल्पान्तदेवानामच्युतदेवलोकगतानां तत्रैवायुःक्षयेण ततश्च्युत्वा संज्ञितिर्यक्षूत्पद्यमानानामुवततीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात्तदपेक्षया षड्रज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । एवं पादोनगाथात्रयेणाष्टषष्टिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना दर्शिता । शेषाणां चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना क्षेत्रद्वार उक्तमार्गणाद्वय आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां यावत् क्षेत्रं निरूपितं तावती भवति, तच्च लोकाऽसंख्येयभागमानम् । अत्र लोकाऽसंख्यभागेन सादृश्यत्वं ज्ञेयम्, न तु प्रतिनियतदेशेन, क्षेत्रतः स्पर्शनायां द्वीन्द्रियजात्यादिषु असंख्यगुणक्षेत्रस्य लाभात् । अन्यथाऽपदार्थनिरूपणापत्तिः स्यादिति । शेषप्रकृतयस्त्विमाः-मनुष्यद्विकतिर्यग्द्विकदेवद्विकैकेन्द्रियादिजातिपञ्चकवैक्रियद्विकौदारिकद्विकतैजसकार्मणशरीरसेवार्तसंहननसमचतुरस्रहुण्डकसुखगतिवर्णचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणजिननामत्रसबादरप्रत्येकसुभगत्रिकस्थावरचतुष्कास्थिराशुभदुर्भगानादेयाऽयशःकीर्तिनामानि । अत्र देवद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसुखगतिजिननामसुभगत्रिकनाम्नां देवनैरयिकेभ्य उद्वृत्त्य मनुष्येषूत्पद्यमानानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेऽपि लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते । इयं हि देवानामन्यतमस्थानस्थितानां च्यवनमपेक्ष्य विज्ञेया, अन्यथा गमनागमनैःक्रियमाणानां मार्गेऽपि कालकरणे तु स्पर्शना यथायोग्यं स्वयं विज्ञेयेति । तिर्यग्लोकस्थानां तदासन्नस्थितानां वा तत उद्वृत्त्य तिर्यग्लोके तदासन्ने वोत्पद्यमानानामेव शेषप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वेन भावाल्लोकासंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना सुघटैव । भावना तु चतुर्थव्याप्त्या कार्येति ॥१४४-१४५-१४६॥

अथ स्त्रीपुरुषवेदमार्गणयोर्बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकस्य स्पर्शनां निरूपयन्नाह

थीपुरिसेसुं छुहिअं पणणाणावरणविग्घसायाणं ।
जाणोहे सव्वजगं सिं चत्ताए य सव्वजगं ॥१४७॥
फुसिआऽत्थि अट्ठ भागा दुणिद्दसगणोकसायउच्चाणं ।
दुइअकसायायवपणसंघयणागिइचउक्काणं ॥१४८॥
तइअकसायसुरजुगलसुहगतिगसुखगइआगिईणं तु ।
पण भागा थीअ उ चउदुस्सरपमुहाण वि पुमे छ ॥१४९॥
विउवदुगस्स कमा दस एगारुज्जोअगस्स णव भागा ।
बायरगस्सूणजगं सेसाणं जगअसंखंसो ॥१५०॥

(प्रे०) "थीपुरिसे०"इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां पुरुषवेदमार्गणायां च ज्ञानावरणपञ्चका-न्तरायपञ्चकसातवेदनीयरूपाणामेकादशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा भवति, उक्तमार्गणाद्वय आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य प्रथमगुणस्थानेऽपि भावेन सूक्ष्मेषूत्पित्सूनां कृतमारणा-न्तिकसमुद्घातानामप्यासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति । भावना तु प्रथमव्याप्त्यनुसारेण कार्या, सुगमा च । यासां चत्वारिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्पर्शना यथौघे सर्वलोकप्रमाणा भवति तथैव प्रस्तुतमार्गणाद्वयेऽपि तासां सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति । भावना प्रथमव्याप्त्या तथैव कार्या । चत्वारिंशत्प्रकृतयः पुनरिमाः-स्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धि-चतुष्कमिथ्यात्वनपुंसकवेदासातवेदनीयनीचैर्गोत्राणि तथा तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिनामौदारिकतैज-सकार्मणशरीरहुण्डकवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभस्थावरनवकनामानीति ।

निद्राद्विकहास्यषट्कस्त्रीवेदाप्रत्याख्यानावरणचतुष्कातपनामाद्यसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थान-चतुष्काणामुच्चैर्गोत्रस्य चेति चतुर्विंशतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा भवति । नारकाणां प्रस्तुतमार्गणयोरभावेन देवानां गमनागमनप्रयुक्तोक्तस्पर्शना विज्ञेया । मनुष्यापेक्षया पुनरासां सर्वासां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते । तिर्यगपेक्षया तु कासाञ्चि-त्प्रकृतीनां पञ्चरज्जुप्रमाणा, कासाञ्चिच्च लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा, स्त्रीवेदस्य सार्धरज्जुप्रमाणेति ।

प्रत्याख्यानावरणचतुष्कदेवद्विकसमचतुरस्रसुखगतिसुभगत्रिकाणामेकादशानां ज्येष्ठप्रदेश-बन्धकैः पञ्चभागाः स्पृष्टाः, तिरश्चां सहस्रारं यावदेव देवेषूत्पादात् ; तदपेक्षयोक्तप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यत इति । देवानामुक्त-प्रकृतिभ्यो देवद्विकस्य तु बन्ध एव न भवति, शेषाणां नवानां न ज्येष्ठप्रदेशबन्ध इति । दुःस्वर-कुखगतिनरकद्विकनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः पुरुषवेदमार्गणायामधोलोकसत्काः षड् भागाः स्पृष्टाः, स्त्रीवेदमार्गणायां पुनः पञ्च भागाः, सप्तमनरके तिरश्चीनामुत्पादाभावात् । उक्तचतसृणां प्रकृतीनां निरुक्तस्पर्शना तिर्यगपेक्षयैव प्राप्यते, मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्येयभागमात्रैव स्पर्शना । देवपेक्षया तु प्रकृतिबन्धाभावाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धाभावाद् वा न स्पर्शनाविचार इति । वैक्रि-यद्विकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैरेकादश भागाः पुरुषवेदमार्गणायां स्पृष्टाः, स्त्रीवेदमार्गणायां पुनर्दश-भागाः, अधःक्रमेण षष्ठं सप्तमं च नरकं यावदूर्ध्वं तु सहस्रारान्तं तिरश्चामुत्पादात्तदपेक्षया तृतीय-व्याप्त्या भावना कार्या । मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्येयभागमात्रैवेति । उद्योतनाम्नो ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धकानां नवरज्जुप्रमाणा स्पर्शना भवति । संपूर्णतिर्यग्लोकप्रतरतः सिद्धशिलायामुत्पित्सूनां तिरश्चामुद्योतनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभेऽपि तेषामपेक्षयोक्तमार्गणाद्वये सप्तरज्जुप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते । देवानां देवीनां चापेक्षया तु नवरज्जुप्रमाणास्पर्शना उद्योतनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां भवति । भावना तु देवमार्गणातः कार्या । बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं

स्पृष्टम् , भावना तु द्वितीयव्याप्त्या कार्या । उक्तशेषप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्लोकाऽसंख्यभाग एव स्पृष्टः । शेषप्रकृतयो नामतः पुनरिमाः—दर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कपुरुषवेदमनुष्यद्विकद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गाहारकद्विकसेवार्तसंहननजिननामत्रसनामयशःकीर्तिनामानीति द्वाविंशतिः । भावना त्वोघवत्कार्या, ओघवदत्राप्यामी ज्येष्ठप्रदेशबन्धका यथासंभवं तिर्यग्मनुष्या एवेति, केवलं प्रस्तुते दशमगुणस्थानकस्य नवमगुणस्थानकप्रान्तभागस्य चाभावेन मूलषड्विधप्रकृतिबन्धस्थानस्य तथा मोहनीयस्य चतुर्विधादिबन्धस्थानस्याभावाद् दर्शनावरणचतुष्कस्य यशःकीर्तिनाम्नश्च सप्तविधबन्धकापेक्षया, संज्वलनचतुष्कस्य तु मोहनीयपञ्चविधबन्धकानधिकृत्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकस्पर्शनायां भावना कार्येति ॥१४७-१४८-१४९-१५०॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां प्राह

णपुमे छुहिआ भागा पण णिद्दसुरदुगहस्सछक्काणं ।
अडकसायसुहागिइसुखगइसुहगतिगउच्चाणं ॥१५१॥
सिं छुहिअं सव्वजगं जाणिगवण्णाअ थीअ सव्वजगं ।
चउदुस्सराइआगिइपणसंघयणाण भागा छ ॥१५२॥
दुविउवथीउज्जोआणे गारस-सड्ढसत्त-सत्तंसा ।
वायरगस्सूणजगं सेसाणं जगअसंखसो ॥१५३॥

(प्रे०)"णपुमे"इत्यादि नपुंसकवेदमार्गणायां निद्राद्विकदेवद्विकहास्यषट्कप्रत्याख्यानावरणाप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्राणां चतुर्विंशतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना पञ्चरज्जुप्रमाणा भवति । तद्यथा—प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य तथा देवद्विकसमचतुरस्रसुखगतिसुभगत्रिकाणां सप्तानां देवप्रायोग्यां अष्टाविंशतिं बध्नतां तिर्यग्मनुष्याणामेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धः, तत्राऽपि तद्बन्धकमनुष्याणां स्वस्थानपारभविकोत्पत्तिस्थानयोस्तिर्यक्प्रतररज्ज्वसंख्येयभागप्रमाणत्वेन तदपेक्षया लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते, तिर्यगपेक्षया तु पञ्चरज्जुप्रमाणा स्पर्शना तिर्यग्मार्गणावद् भावनीया । निद्राद्विकहास्यषट्ककषायचतुष्कोच्चैर्गोत्राणां त्रयोदशानां नारकाणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावेऽपि तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्य तिर्यक्प्रतराऽसंख्यभागप्रमाणत्ववद् मरणसमुद्घातेनाऽपि उक्तत्रयोदशप्रकृतिज्येष्ठप्रदेशाग्रं बध्नतां मनुष्येष्वेवोत्पत्तिभावेन पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्याऽपि तिर्यक्प्रतरासंख्येयभागगतत्वमेव, स्वस्थानपारभविकोत्पत्तिस्थानयोः प्रतररज्ज्वसंख्यभागप्रमाणत्वे तूक्तक्षेत्रद्वयान्तरालस्य षड्रज्जुप्रमाणत्वेऽपि चतुर्थव्याप्त्या लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शनोक्तप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्नारकैः

प्राप्यते । मनुष्यापेक्षयाऽप्येवं लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति । अतः पञ्चरज्जुप्रमाणा मूलोक्ता स्पर्शना प्रस्तुतमार्गणागततिर्यगपेक्षया भावनीया, तेषां परिपूर्णतिर्यग्लोकतो देवेषूत्पित्सूनां पारभविकोत्पत्तिस्थानस्य तिर्यक्प्रतरासंख्येयभागगतत्वेऽपि स्वस्थानक्षेत्रस्य तिर्यक्प्रतरव्याप्तत्वादिति । देवानां स्त्रीपुरुषवेदद्वयस्यैव भावेन प्रस्तुतमार्गणाग्राह्यत्वान्न तदपेक्षया स्पर्शनोपपत्तिविचारावकाश इति ।

स्त्रीवेदमार्गणायां यासामेकपञ्चाशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः सर्वलोकः स्पृष्टः; तासामत्र नपुंसकवेदमार्गणायामपि सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेयेति । स्त्रीवेदमार्गणावदत्रापि दशमगुणस्थानाभावेन ज्ञानावरणाद्येकादशानां प्रथमगुणस्थानगतानां सूक्ष्मेषूत्पित्सूनां समुद्घाते वर्तमानानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात् , भावनाऽपि तद्वदेव कार्या, चत्वारिंशत्प्रकृतीनामोघवद् भावना विधेयेति । दुःस्वरकुखगतिनरकद्विकानां चतसृणां प्रकृतीनां तिरश्चां मनुष्याणां च ज्येष्ठप्रदेशबन्धः, तत्र मरणसमुद्घातेन सप्तमनरकेषूत्पद्यमानतिर्यगपेक्षया षड्रज्जुप्रमाणस्पर्शना विज्ञेया, मनुष्याणां तु लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते, नारकाणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धाभावः प्रकृतिबन्धाभावो वा । मध्यमसंस्थानचतुष्कप्रथमादिसंहननपञ्चकरूपाणां नवानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्पर्शना नारकाणां तिर्यक्षूत्पित्सूनां मरणसमुद्घातगतानां तिर्यक्प्रायोग्यैकोनत्रिंशतं बध्नतां षड्रज्जुप्रमाणा भवति । तिर्यग्मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते, कुतः ? उक्तप्रकृतिवेदकानां तिर्यग्लोके तदासन्ने वैव वर्तमानत्वात् । अतो मूलोक्ता उक्तनवप्रकृतीनां स्पर्शना नारकापेक्षयैव भावनीया चतसृणां तु तिर्यगपेक्षयेति ।

वैक्रियद्विकस्य ज्येष्ठबन्धकैरेकादश भागाः स्पृष्टाः, भावनौघवत्तिर्यगपेक्षया कार्येति । तथा स्त्रीवेदज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां सार्धसप्तरज्जुप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेया । तत्र षड्रज्जुप्रमाणा सप्तमनारककृता, सार्धरज्जुस्पर्शना तु तिर्यक्कृता, कुतस्तेषां तिरश्चां स्त्रीवेदबन्धकानामीशानान्तेष्वेवोत्पादेन मरणसमुद्घातेन तावत्प्रमाणक्षेत्रस्यैव व्याप्तत्वात् , रत्नप्रभाया अधःस्त्रीवेदीनामभावेन स्त्रीवेदबन्धकानां तिरश्चां तत्र नैवोत्पाद इत्यधोलोकसत्कषड्भागास्तु स्त्रीवेदबन्धकानां तिर्यक्षूत्पित्सूनां नारकाणां मारणान्तिकसमुद्घातापेक्षया भावनीयाः, मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना भावनीयेति । उद्योतनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः सप्तरज्जुप्रमाणा स्पर्शना कृता भवति, उद्योतनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यैकेन्द्रियप्रायोग्याः षड्विंशतिं बध्नतामेव भावेन नारकाणां तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धाभावात् , देवेषु प्रस्तुतमार्गणाया अभावात् , मनुष्यापेक्षया लोकाऽसंख्यभागप्रमाणस्पर्शनाया एव लाभाच्च पञ्चेन्द्रियतिर्यगपेक्षयोक्तप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेया । भावना तु तिर्यग्मार्गणावद् विधेयेति । बादरनामज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्देशोनलोकः स्पृष्टः, भावना

त्वोघवद् विधेयेति । उक्तशेषाणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्लोकाऽसंख्यभाग एव स्पृष्टः, शेषप्रकृतयः पुनरिमाः–दर्शनावरणचतुष्कसंज्वलनचतुष्कपुरुषवेदमनुष्यद्विकद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गाहारकद्विकसेवार्तसंहननातपनामजिननामत्रसनामयशःकीर्तिनामानीति त्रयोविंशतिः, भावना त्वोघवत् स्त्रीवेदवद् वा कार्या । केवलमातपनाम्नि विशेषः-तत्र देवानधिकृत्याष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, प्रस्तुते तु देवानामभावात् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यापेक्षयैव तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभात् तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वं तदुदयवतामपि तिर्यग्लोके भावेन लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते, भावना तु चतुर्थ्यांप्त्या तिर्यग्मार्गणावत् कार्येति । तदेवं गाथात्रयस्य भावार्थः, गाथार्थोऽपि सुगमः, केवलं तृतीयगाथार्धदलार्थ एवम्–वैक्रियद्विकस्य स्त्रीवेदस्योद्योतनाम्नश्च क्रमेणैकादश सार्धसप्त-सप्तभागाः स्पृष्टा इति ॥१५१-१५२-१५३॥

अपगतवेदमार्गणायां तु प्रथमनरकादिमार्गणाभिः सह प्रागेव निरूपिता प्रस्तुतस्पर्शना बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणेति ।

अथ क्रोधमानमायामार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

कोहाइकमायतिगे　पणणाणावरणविग्घमायाणं ।
सव्वजगमट्ठ भागा　उच्चस्सोघव्व सेसाणं　॥१५४॥

(प्रे०) "कोहाइ"इत्यादि, क्रोधादिकषायमार्गणात्रिके ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकसातवेदनीयानामेकादशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य मिथ्यादृशामपि भावेन तेषां च सूक्ष्मेषूत्पित्सूनां कृतसमुद्घातानामप्यासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वात् सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति, भावना तु प्रथमव्याप्त्या कार्या । उच्चैर्गोत्रस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा भवति, तिर्यक्प्रायोग्यं बध्नतोऽस्य बन्धाभावेन संज्ञिनामेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वेन च देवानां गमनागमनक्षेत्रापेक्षयोक्तस्पर्शना लाभात् । तिर्यगपेक्षया पुनः पञ्च रज्जवः स्पृष्टा भवन्ति, नारकान् मनुष्यांश्चाधिकृत्य लोकाऽसंख्यभागप्रमाणेति । उक्तशेषाणामायुर्वर्जानां चतुरुत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना यथौघे तथैवाऽत्रापि वक्तव्या, दर्शनावरणचतुष्कयशःकीर्तिनामसंज्वलनकषायाणां च स्वामिनामोघतो भेदेऽपि श्रेणिगतानामेवाऽऽसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वात्स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा भवति । शेषप्रकृतीनां तु ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामोघवदेव भावेन स्पर्शना सुतरां तद्वद् प्राप्यते । भावनाऽपि तथैव भावनीयेति ॥१५४॥ अथ मतिज्ञानादिमार्गणासु प्राह

जाण सुहमाणियट्टी तिणाणऽवहिसम्मउवसमेसु सिं ।
तित्थाहारदुगाण य　परिपुट्ठो जगअसंखंसो　॥१५५॥
पण भागा अत्थि तइअकसायसुरजोग्गतीसणामाणं ।
सिमुवसमे पुण लोगासंखंसोऽण्णाण अड भागा ॥१५६॥

(प्रे०) "णाणे"त्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघोपशमसम्यक्त्वरूपासु षड्मार्गणासु यासां प्रकृतीनां नवमे दशमगुणस्थाने वा ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तासां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चकसातवेदनीययशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रसंज्वलनचतुष्कपुरुषवेदानां द्वाविंशतेस्तथाऽऽहारकद्विकजिननाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्लोकाऽसंख्यभागः स्पृष्टः, अप्रमत्तगुणानां मनुष्याणामेवासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामित्वात् , भावना चतुर्थव्याप्त्या कार्येति । प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य तथा देवप्रायोग्याष्टाविंशतिबन्धे यशःकीर्तिनामवर्जानां यासां त्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तासां देवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकतैजसकार्मणशरीरसमचतुरस्रसुखगतिवर्णचतुष्काऽगुरुलघुचतुष्कनिर्माणत्रसचतुष्कस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगत्रिकाऽयशःकीर्तिनामरूपाणामेवं चतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनां देशविरतौ चतुर्थादिगुणस्थाने वा तिर्यग्मनुष्याणामेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् , तत्र मनुष्यापेक्षया लोकाऽसंख्यभागप्रमाणस्पर्शनाया लाभादप्रधाना, अतः पञ्चरज्जुस्पर्शना तिर्यगपेक्षया ज्ञेयेति । अत्र यो विशेषः सः "सिमुवसमे"इत्यादिना कथ्यते, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं मनुष्येष्वेव भवति, तेषां च स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव भवति, प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गतिचतुष्केऽपि प्राप्यते, न च तत्सत्त्वे मरणं संपद्यतेऽतो नारकाणां तिरश्चां मनुष्याणां चोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति, देवानां तु सा गमनागमनापेक्षयाऽष्टरज्जुप्रमाणा, अत्र प्रस्तुतानामुक्तचतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तिर्यग्मनुष्याः, अत उपशमे आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति । शेषाणां प्रकृतीनां निद्राद्विकाप्रत्याख्यानावरणचतुष्कहास्यषट्कासातवेदनीयमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहनननामष्टादशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य देवानामपि स्वामित्वेन तेषां गमनागमनक्षेत्रप्रयुक्ताष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेया , भावना तु तृतीयव्याप्त्या कार्येति ॥१५५-१५६॥

मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां स्पर्शनायाः प्राग्निरूपितत्वात् क्रमप्राप्ताऽज्ञानत्रयादिमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां प्ररूपयन्नाह

सव्वजगं परिपुट्ठं होइ तिअण्णाणअभवियमिच्छेसु ।
णेयं णपुमाईणं पयडीणं पंचसयरीए ॥१५७॥
बारस भागा इत्थीपुमपणसंघयणआगिइचउण्हं ।
छुहिआ अत्थि छ भागा चउण्ह खलु दुस्सराईणं ॥१५८॥
सुरदुगसुहागिइखगइसुहगतिगाण छुहिआऽत्थि पण भागा ।
विउवदुगस्सेगारस भागा अड आयवुच्चाणं ॥१५९॥

णवभागा परिपुट्ठा उज्जोअजसाण बायरस्स भवे ।
ऊणजगं सेसाणं लोगस्स असंखभागोऽत्थि ॥१६०॥

(प्रे०) "सव्वजग"मित्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानाभव्यमिथ्यात्वरूपासु पञ्चसु मार्गणासु सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम्, पञ्चसप्ततिप्रकृतयः पुनरेताः–ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकवेदनीयद्वयषोडशकषाय-हास्यषट्कनपुंसकवेदमिथ्यात्वतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिनामौदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयहुण्डकवर्ण-चतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभस्थावरचतुष्कास्थिराशुभदुर्भगानादेयायशः-कीर्तिनामनीचैर्गोत्रान्तरायपञ्चकानीति । अत्र तुर्यादिगुणस्थानानामभावेन निद्राद्विकादीनामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सूक्ष्मेषूत्पित्सूनामपि लभ्यते, भावना तु प्रथमव्याप्त्या कार्येति ।

स्त्रीवेदपुरुषवेदाद्यसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्करूपाणामेकादशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकै-र्द्वादशभागाः स्पृष्टाः, तद्यथा-सप्तमनरकनारकैस्तिर्यक्षूत्पद्यमानैरधोलोकसत्काः षड् भागाः स्पृष्टाः, ऊर्ध्वलोकसत्काः षड्भागास्तु देवैर्गमनागमनेनेति द्वादश । अधोलोकसत्काद्यरज्जुद्वयं देवानां गमनागमनापेक्षया वा विज्ञेयमिति, मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्येयभागः । तिर्यगपेक्षया स्त्रीवेदस्य सार्धरज्जुः, पुरुषवेदस्य पञ्च रज्जवः, शेषनवानां तु चतुर्थव्याप्त्या लोकाऽसंख्येय-भागप्रमाणैव स्पर्शना ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्विहितेति । पुरुषवेदं विहायौघवदेवोक्तस्पर्शना प्राप्यत इत्योघवदेव भावनीयेति । दुःस्वरकुखगतिनरकद्विकानां चतसृणां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः षड् भागाः स्पृष्टाः, सप्तमनरकेषूत्पित्सूनां तिरश्चामपेक्षयैषा स्पर्शनौघवद् भावनीयेति । देवद्विक–सम-चतुरस्रसुखगतिसुभगत्रिकनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो देवप्रायोग्या अष्टाविंशतिं बध्नतामेव भवति, तत-स्तिर्यग्मनुष्या एवाऽऽसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः, तत्र मनुष्याणां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना । तिरश्च आश्रित्य पञ्च भागा भूलोकाः स्पर्शना प्राप्यते । भावना त्वोघवदेव । वैक्रियद्विकस्यै-कादशभागास्तिर्यग्लोकादधः षड्भागा ऊर्ध्वं तु पञ्चभागास्तिर्यग्भिर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैः स्पृष्टा विज्ञेयाः, भावना त्वोघवत्कार्येति । आतपनाम्न उच्चैर्गोत्रस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैरष्ट भागाः स्पृष्टाः, देवानां गमनागमनापेक्षयाऽनयोः स्पर्शना प्राप्यते । तिर्यगपेक्षया तूच्चैर्गोत्रस्य पञ्च भागाः, आतपनाम्नस्तु लोकाऽसंख्येयभागः । नारकापेक्षया त्वातपनाम्नो बन्धाभावः, उच्चै-र्गोत्रस्य लोकाऽसंख्येयभागः, मनुष्यापेक्षया द्वयोरपि लोकासंख्येयभागः, अतो देवापेक्षयैवोक्ता-स्पर्शना प्राप्यते उद्योतयशःकीर्तिनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां नवरज्जवः स्पर्शना भवति, देवा-पेक्षयैव एतयोरुक्तप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, भावनाऽपि देवगतिमार्गणावदेव कार्या । तिरश्च आश्रित्योक्तप्रकृतिद्वयस्य सप्तरज्जुप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते । मनुष्यानधिकृत्य प्रस्तुते लोका-ऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते, नारकाश्च न उक्तप्रकृतिद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धका इति ।

बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्लोकस्यासंख्येयबहुभागाः स्पृष्टा भवन्ति, भावना द्वितीयव्याप्त्या ओघवत् कार्येति। उक्तशेषाणां मनुष्यद्विकद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसेवार्तसंहननत्रसनाम्नां नवानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्लोकाऽसंख्येयभागः स्पृष्टः, तिर्यग्मनुष्याणां तिर्यग्लोके तदासन्ने वा वर्तमानानां द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यं बध्नतामेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावाद्। भावना त्वोघवद् चतुर्थव्याप्त्या कार्येति। तदेवमज्ञानादिमार्गणासु स्पर्शना निरूपिता ॥१५७-१५८-१५९-१६०॥

तदनन्तरं क्रमप्राप्तसंयममार्गणाया उत्तरभेदेभ्यः संयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसंयमसूक्ष्मसंपरायमार्गणापञ्चके प्रथमनरकादिमार्गणाभिः समं बन्धप्रायोग्याणां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा निरूपितेति। अथ क्रमप्राप्तायां देशविरतिमार्गणायां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयति

देसे जिणस्स छुहिओ असंखभागो जगस्स विण्णेयो।
होअन्ति पंच भागा परिफुसिआ सेसपयडीणं ॥१६१॥

(प्रे०) "देसे" इत्यादि, देशविरतिमार्गणायामायुर्वर्जबन्धप्रायोग्याः षट्षष्टिप्रकृतयः, ताभ्यो जिननाम्नो बन्धका ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाश्च मनुष्या एव, अतो जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति, भावना त्वोघवत्कार्या। शेषपञ्चषष्टिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तिर्यग्मनुष्याः, अतस्तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकस्पर्शना पञ्चरज्जुप्रमाणा भवति, तिरश्चां देवेषु सहस्रारान्तमेवोत्पादात्, देशविरतानां देवेभ्योऽन्यत्रोत्पादस्यैवाभावेन तत्सम्बन्धिसमुद्घातस्याप्यभावाच्च। भावना तु तृतीयव्याप्त्या कार्येति ॥१६१॥

अथाऽविरत्यां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

अजए असंखभागो जगस्स तित्थस्स जाण सम्मो च्च।
सि पणवीसाए अड भागाऽण्णाण तिअणाण व्व ॥१६२॥

(प्रे०) "अजए" इत्यादि, असंयममार्गणायां षड्विंशतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनः केवलमविरतसम्यग्दृष्टयः। आहारकद्विकस्य बन्धाभावः। शेषाणामष्टाशीतिप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टयो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति। आभ्योऽष्टाशीतिप्रकृतिभ्यः कासाञ्चिज्ज्ञानावरणादीनां सम्यग्दृष्टीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेऽपि मिथ्यादृष्टीनामपि तद्भावेन तत्कृतस्पर्शनाया आधिक्यात्, देवद्विकादिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कस्पर्शनायाः सम्यग्दृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां च तुल्यत्वात्, मिथ्यात्वादिमार्गणानां चाज्ञानत्रयमार्गणाभिः समं पठितत्वाच्चाष्टाशीतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकस्पर्शना निरवशेषा अज्ञानत्रयमार्गणावद् विज्ञेयेति तथैवातिदेशः, स च सुगमः, आसन्न एव च व्याख्यातत्वान्न भूयो व्याख्यायते। सम्यग्दृष्टिप्रायोग्यज्येष्ठप्रदेशबन्धानां षड्विंशतिप्रकृतीनां स्पर्शना पुनरेवम्—जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति, मनुष्याणामेव तज्ज्येष्ठ-

प्रदेशबन्धस्य भावेन तेषां च स्वस्थानपारभविकोत्पत्तिस्थानयोः क्षेत्रस्य तिर्यक्प्रतररज्ज्वसंख्येयभाग-प्रमाणत्वात्, भावना त्वोघवदेव कार्येति। दर्शनावरणषट्काप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरण-संज्वलनकषायहास्यषट्कपुरुषवेदानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामष्टरज्जुप्रमिता स्पर्शना भवति, सम्यग्दृष्टिदेवानां गमनागमनक्षेत्रस्य तावत्प्रमाणत्वात्। तिर्यगपेक्षया पुनः पञ्चरज्जुप्रमिता एव। मनुष्यान् नारकान् वाऽधिकृत्य लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैवातो देवापेक्षयैव तृतीयव्याप्त्या भावना कार्येति। तदेवं संयममार्गणाया उत्तरभेदेषु स्पर्शना निरूपिता ॥१६२॥ अथ क्रमप्राप्ता दर्शनमार्गणाः, तत्र चक्षुरचक्षुर्दर्शनमार्गणयोः पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणाभिः समं स्पर्शना निरूपिता। अवधिदर्शनमार्गणायां त्ववधिज्ञानेन सहेति। केवलदर्शनमार्गणायां पुनः सकषायप्रदेशबन्धस्यैवाभावान्न तद्विचारः। तदनुक्रमप्राप्ता लेश्यामार्गणाः, तासु तां निरूपयिषुरादावप्रशस्तलेश्यात्रय आह—

अपसत्थतिलेसासुं जाणिगवण्णाअ थीअ सव्वजगं।
सिं पुट्ठं सव्वजगं उज्जोअजसाण णव भागा ॥१६३॥
सम्मो च्च जाण भागी सिं जिणवज्जाण पंचवीसाए।
तह आयवउच्चाणं अड भागा फोसिआ णेया ॥१६४॥
इत्थीसंघयणपणगचउमज्झिमआगिईण परिपुट्ठा।
जाणेयव्वा भागा बारस दस अट्ठ जहकमसो ॥१६५॥
णिरयविउव्वदुगकुखगइसराण भागा कमा छ चउरो दो।
बायरगाऽऽऊणजगं सेसाणं जगअसंखंसो ॥१६६॥
विंति जगअसंखंसो छुहिओऽण्णे सिमड जाण भागुत्ता।
सत्त जसुज्जोआणं सिं छाई जाण बारसाई उ ॥१६७॥ (गीतिः)

(प्रे०) "अपसत्थ" इत्यादि, यासामेकपञ्चाशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना स्त्रीवेदमार्गणायां सर्वलोकप्रमाणा भणिताः, तासां कृष्णनीलकापोतलेश्यामार्गणात्रये सर्वलोकप्रमाणा भवति, भावना तु प्रथमव्याप्त्या स्त्रीवेदवत्कार्या। एकपञ्चाशत्प्रकृतयः पुनरिमाः—ज्ञानावरणपञ्चकस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वनपुंसकवेदसातासातवेदनीयनीचैर्गोत्रान्तरायपञ्चकानि तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियौदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयहुण्डकवर्णचतुष्का-गुरुलघुचतुष्क-निर्माणपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभ--स्थावरचतुष्कास्थिराशुभदुर्भगानादेयायशःकीर्तिनामानि चेति। बादरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैर्देशोनलोकः स्पृष्टो ज्ञेयः, भावना द्वितीयव्याप्त्या कार्या। उद्योतनामयशःकीर्तिनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां नवरज्जुप्रमाणा स्पर्शना देवापेक्षयैव

प्राप्यते, तिर्यगपेक्षया तु सप्तरज्जुप्रमाणैव स्पर्शनेति । भावना तु तृतीयव्याप्त्याऽज्ञानत्रयमार्गणावत्कार्या । दर्शनावरणषट्कानन्तानुबन्धिवर्जद्वादशकषायहास्यषट्कपुरुषवेदरूपाणां पञ्चविंशतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा, देवानां गमनागमनप्राप्तस्पर्शनाक्षेत्रस्य तावत्प्रमाणत्वात् । अथ भावः-अत्र मार्गणात्रय उक्तपञ्चविंशतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः सम्यग्दृष्टयः, तादृशां नारकाणां मनुष्याणां च चतुर्थव्याप्त्या लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति, तिरश्चामशुभलेश्यायां सम्यक्त्वावस्थायां एकेन मतेन मरणसमुद्घाताभावेन लोकाऽसंख्यभागप्रमाणस्पर्शनाया एव भावात् , अन्यमतेनाऽपि सा उक्तस्पर्शनातोऽतीवन्यूनेति देवापेक्षयैवोक्तभावना कार्येति । आतपनामोच्चैर्गोत्रयोरष्ट भागाः स्पृष्टाः,ज्येष्ठप्रदेशबन्धकैरिति गम्यते, देवानां गमनागमनक्षेत्रापेक्षया तृतीयव्याप्त्याऽज्ञानमार्गणावद् भावना कार्येति । स्त्रीवेदाद्यसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्कप्रकृतीनां दशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना कृष्णलेश्यायां द्वादश भागाः, नीललेश्यायां दश भागाः, कापोतलेश्यायामष्टौ भागा विज्ञेया, भावना तु देवान् नारकान् चेति समुदितानधिकृत्य कार्या, अत्र कृष्णलेश्यायामधोलोकसत्काः षड् भागाः सप्तमनारकापेक्षया प्राप्यन्ते । नीललेश्यायां पञ्चमनारकापेक्षयाऽधोलोकसत्काश्चत्वार एव रज्जवः प्राप्यन्ते, षष्ठसप्तमनरकेषु नीललेश्याया अभावात् । कापोतलेश्यामार्गणायामधोलोकसत्कं भागद्वयमेव, तृतीयनारकापेक्षया देवानां गमनागमनक्षेत्रापेक्षया च प्राप्यते, चतुर्थादिनैरयिकाणां कापोतलेश्याया अभावाद् न तत्कृता स्पर्शना प्रस्तुते प्राप्यत इति । ऊर्ध्वलोकसत्काः षड्भागा देवानां गमनागमनापेक्षया मार्गणात्रयेऽपि प्राप्यन्त इति द्वादशादिभागानां स्पर्शना देवनारकानाश्रित्य ज्ञेया । भावना तु तृतीयव्याप्त्या कार्येति । तिर्यगपेक्षया तूक्तदशानां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यत इति । नरकद्विकवैक्रियद्विककुखगतिदुःस्वरनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना तिरश्चां नरकेषूत्पित्सूनां नरकप्रायोग्या अष्टाविंशतिं बध्नतां मरणसमुद्घाते वर्तमानानामपेक्षया प्राप्यते, तत्र कृष्णलेश्यावतां सप्तमनरक उत्पादात् षड्रज्जुप्रमाणा, नीललेश्यायां पञ्चमान्तपृथिव्यामुत्पादेन रज्जुचतुष्कप्रमाणा, कापोतलेश्यायां तृतीयान्तपृथिव्यामुत्पादेन रज्जुद्वयप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यत इति ।

उक्तशेषाणां प्रकृतीनां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति । शेषप्रकृतयो नामत इमाः मनुष्यद्विकद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौदारिकाङ्गोपाङ्गसेवार्तसंहननत्रसनामानि तथा देवद्विकसमचतुरस्रसुखगतिसुभगत्रिकनामानि जिननाम चेति सप्तदश प्रकृतयः । आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो यथासंभवं तिर्यग्मनुष्याणां भवति, मरणसमुद्घातेन च उक्तप्रकृतिबन्धकत्वे सति तिर्यग्लोके तदासन्ने वा तेषामुत्पत्तिभवेन लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते । जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां कापोतलेश्यायां तृतीयनरके मतान्तरेण प्रथमनरके समुत्पित्सोर्मरणसमुद्घातस्य भावेऽपि चतुर्थव्याप्त्या लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना

प्राप्यत इति । अथ ये केचन देवानां पर्याप्तावस्थायामशुभलेश्या नाङ्गीकुर्वन्ति तदभिप्रायेण स्पर्शनां निरूपयन्नाह–'चिंति'इत्यादि, अशुभलेश्यात्रये यासां प्रकृतीनामष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना देवानां गमनागमनापेक्षया भणिता तासामस्मिन् मते लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव वाच्या, गति-त्रयकृततत्स्पर्शनाया लाभात् । ताः प्रकृतयः पुनरिमाः–दर्शनावरणषट्कानन्तानुबन्धिवर्जद्वादश-कषायहास्यषट्कपुरुषवेदातपोच्चैर्गोत्राणि । तथोद्योतयशःकीर्त्योर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य तत्र या नवरज्जुप्रमाणस्पर्शना उक्ता तथापि परमतेन सा सप्तरज्जुप्रमाणैव तिर्यगपेक्षया विज्ञेया, तिर्य-ग्लोकतः सिद्धशिलायाः सप्तरज्ज्वन्तरितत्वेन तृतीयव्याप्त्या तावत्स्पर्शना प्राप्यत इति । तथा स्त्रीवेदाद्यपञ्चसंहननमध्यमसंस्थानचतुष्काणां तत्र कृष्णलेश्यायां द्वादश भागाः, नील-लेश्यायां दश भागाः कापोतलेश्यायामष्ट भागाश्च स्पर्शनाविषयत्वेन दर्शिताः, पराभिप्रायेण त्वत्र षड्चत्वारो द्वे भागाः क्रमेण वेदितव्या, नारकापेक्षयैव एते प्राप्यन्त इति । शेषाणां पञ्चसप्तति-प्रकृतीनां स्पर्शनाया उभयत्र समानत्वान्न कश्चिद्विशेष इति ॥१६३-१६७॥

अथ तेजोलेश्यायां बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

तेऊअ दिवड्ढंसा तइअकसायसुरविउवजुगलाणं ।
पर्चिदियतससुखगइआगिइसुहगातिगपयडीणं ॥१६८॥
लोगाऽसखियभागो संजलणाहारजुगलतित्थाणं ।
छुहिओ णेया फुसणा सुरव्व सेसाण पयडीणं ॥१६९॥

(प्रे०) "तेऊअ"इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां देवमनुष्यतिर्यञ्चो भवन्ति, तत्र यासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका देवा भवन्ति तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना देवापेक्षयैव यथा देवौघमार्गणायां दर्शिता तथैव प्राप्यते, तिर्यग्मनुष्यकृतस्पर्शनाक्षेत्रस्यात्रैवान्तर्भावात् । अतः प्रथमं यासां देवाः स्वामिनो न भवन्ति तासां तां दर्शयति–प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क-देवद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातित्रसनामसुखगतिसमचतुरस्रसुभगत्रिकाणां पञ्चदशानां ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सार्धरज्जुप्रमाणा भवति, तिर्यगपेक्षयैषा प्राप्यते, तेजोलेश्याकदेवाना-मीशानकल्पान्तेषु भावेन तिर्यग्लोकतः सार्धरज्ज्वन्तरे तत्कल्पस्य भावात् सार्धरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । श्रीमद्–उत्तराध्ययनादि ग्रन्थाभिप्रायेण तृतीयकल्पे तेजोलेश्याया भावेऽपि तदधस्तनप्रस्तटे तल्लाभात् सातिरेकसार्धरज्जुप्रमिता स्पर्शना विज्ञेया इति । मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शनेति । संज्वलनचतुष्काऽऽहारकद्विकजिननाम्नां सप्तानां केवलं मनुष्येष्वपि प्राप्तसंयमसम्यक्त्वादिगुणेष्वेव तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावाल्लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यत इति चतुर्थव्याप्त्या भावना विधेयेति । एवं द्वाविंशतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्पर्शना दर्शिता । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां षडशीतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना

देवौघमार्गणावद्भवति, भावनाऽपि तद्वदेव कार्या केवला स्पर्शनाऽस्माभिर्निगद्यते—दर्शनावरणषट्काप्रत्याख्यानावरणचतुष्कहास्यषट्कपुरुषवेदस्त्रीवेदमनुष्यद्विकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्ककुखगतिनामातपदुःस्वरनामोच्चैर्गोत्राणां पञ्चत्रिंशतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना भवति। ज्ञानावरणपञ्चकस्त्यानर्द्धित्रिकसातासातवेदनीयानन्तानुबन्धिचतुष्कनपुंसकवेदमिथ्यात्वतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिनामौदारिकतैजसकार्मणशरीरहुण्डकवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणनामोद्योतबादरत्रिकस्थिरशुभयशःकीर्तिस्थावरनामास्थिराशुभदुर्भगानादेयाऽयशःकीर्तिनामनीचैर्गोत्रान्तरायपञ्चकानामेकपञ्चाशतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना नवरज्जुप्रमाणा भवतीति। विकलत्रिकसूक्ष्मत्रिकनरकद्विकानि त्वत्र नैव बध्यन्त इति ॥१६८-१६९॥

अथ पद्मलेश्यामार्गणायां तत्साम्याच्च क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

पउमाअ वेअगम्मि य संजलणाहारजुगलतित्थाणं ।
लोगस्स असंखयमो भागो पुट्ठो मुणेयव्वो ॥१७०॥
तइअकसायाण तहा सुरगइपाउग्गएगतीसाए ।
पण भागा परिपुट्ठा अड भागा सेसपयडीणं ॥१७१॥

(प्रे०) "पउमाअ" इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायां यासां प्रकृतीनां देवा ज्येष्ठप्रदेशबन्धका भवन्ति, तासां सनत्कुमारादिसहस्रारान्तवर्तिदेवानां यावती स्पर्शना प्राप्यते, तावत्येव प्रस्तुतेऽपि, देवेषु सनत्कुमारादिसहस्रारान्तदेवानामेव पद्मलेश्याकत्वात्तेषां च बन्धप्रायोग्याणां स्पर्शनाष्टरज्जुप्रमाणा भवतीति तद्वदत्रापि दिश्याष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना दर्शिता। अत्र यासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका देवा न भवन्ति तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकस्पर्शनां पूर्वं दर्शयति—संज्वलनचतुष्काहारकद्विकजिननाम्नां सप्तानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा प्राप्यते, मनुष्याणामेव तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वात्तेषां च स्वस्थानपारभविकोत्पत्तिस्थानयोः तिर्यक्प्रतररज्ज्वसंख्यभागप्रमाणावगाढत्वाल्लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यत इति। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य तथा देवप्रायोग्यैकत्रिंशत्प्रकृतीनां देवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकतैजसकार्मणशरीरसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणत्रसदशकास्थिराशुभाऽयशःकीर्तिनामलक्षणानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य देवप्रायोग्याष्टाविंशतिबन्धस्थाने वर्तमानस्यैव भावादासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना पञ्चरज्जुप्रमाणा भवति, तिरश्चोऽधिकृत्यैषा प्राप्यते, मनुष्यापेक्षया तु लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव। देवास्तु नासां पञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका इति। एवं पादोनगाथाद्वयेन द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतीनां स्पर्शना दर्शिता। शेषाणां त्रिषष्टिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जु-

प्रमाणा भवति, देवानां गमनागमनक्षेत्रस्य तावत्प्रमाणत्वात् । भावना तु सहस्रारदेवमार्गणावत् तृतीयव्याप्त्या कार्या । शेषास्त्रिषष्टिप्रकृतयः पुनरिमाः ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकवेदनीयद्वयाद्यकषायाष्टकहास्यषट्कवेदत्रयमिथ्यात्वगोत्रद्वयान्तरायपञ्चकानि तथा मनुष्यद्विकतिर्यग्द्विकौदारिकद्विकसंहननषट्कसंस्थानपञ्चककुखगतिनामोद्योतदुर्भगत्रिकाणीति ।

क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां स्पर्शनैवमेव विज्ञेया, तद्यथा—संज्वलनचतुष्काहारकद्विकजिननाम्नांलोकाऽसंख्यभागः, देवप्रायोग्यैकत्रिंशत्प्रकृतीनां प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य च पञ्च भागाः, शेषाणां पञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा भवति । शेषप्रकृतयो नामत इमाः—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कवेदनीयद्वयाप्रत्याख्यानावरणचतुष्कहास्यषट्कपुरुषवेदमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननामोच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकानीति । भावना तु पद्मलेश्यावदेव कार्येति ॥१७०-१७१॥

अथ क्रमप्राप्तशुक्ललेश्यामार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

जाण सुहमाणियट्टी सामी सुक्काअ सिं दुवीभाए ।
तित्थाहारदुगाण य परिपुट्ठो जगअसंखंसो ॥१७२॥
तइअकसायाण तहा सेसामरजोग्गतीसणामाणं ।
फुसणा सयं च णेया पुट्ठा भागा छ सेसाणं ॥१७३॥

(प्रे०) "जाणे"त्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चकसातवेदनीययशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रसंज्वलनचतुष्कपुरुषवेदरूपाणां द्वाविंशतेर्नवमे दशमगुणस्थाने वा ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां जिननामाहारकद्विकयोश्चेति पञ्चविंशतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा भवति, भावना त्वोघवत्कार्या, ओघेऽपि द्वाविंशतेः श्रेणीगतानामेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वेन शुक्ललेश्याकत्वात् । आहारकद्विकजिननाम्नोर्विशिष्टगुणवद् मनुष्याणामेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वादोघवदत्रापि लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना विज्ञेया । प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य तथा देवप्रायोग्याणां यशःकीर्तिवर्जानां त्रिंशत्प्रकृतीनां देवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विक-तैजसकार्मणशरीर-समचतुरस्रसुखगतिवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणत्रसनवकास्थिराशुभायशःकीर्तिनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तिर्यग्मनुष्या एव भवन्ति, न तु देवाः, अतस्तानधिकृत्य यावती स्पर्शना प्राप्यते तावती विज्ञेया, सा च लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा पञ्चरज्जुप्रमाणैवेति तु स्वयं विज्ञातव्यमिति । उक्तशेषाणां त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका देवा अपि भवन्ति, तत्रापि कासाञ्चित्तु देवा एव, ततश्चैतासां आनतादिदेवगमनागमनकृता षड्रज्जुस्पर्शना प्राप्यते, शेषाः प्रकृतयः पुनरिमाः निद्रापञ्च-

कासातवेदनीयानन्तानुबन्धिकषायचतुष्कप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कहास्यषट्कस्त्रीवेदनपुंसकवेदमिथ्यात्वमनुष्यद्विकौदारिकद्विकसंहननषट्काऽऽद्यवर्जसंस्थानपञ्चककुखगतिदुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्राणीति । एवं लेश्यामार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना निरूपिता ॥१७२-१७३॥

तदनु क्रमप्राप्ता भव्यमार्गणा पञ्चेन्द्रियौघादिभिः, तथा अभव्यमार्गणाऽज्ञानत्रिकेण सह निरूपिता । तदनु सम्यक्त्वौघोपशमसम्यक्त्वमार्गणे ज्ञानादिमार्गणाभिः सह, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणा च पद्मलेश्यया समं प्ररूपिता । अथ क्रमप्राप्तक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

खइए असंखभागो जगस्स सुरजोग्गणामपयडीणं ।
तिण्णयो परिपुट्ठो फुसणा ओहिव्व सेसाणं ॥१७४॥

(प्रे०) "खइए" इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां देवप्रायोग्याणां नाम्नश्चतुस्त्रिशत्प्रकृतिभ्य आहारकद्विकजिननामयशःकीर्तिवर्जानां त्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । यतस्तिर्यक्षु क्षायिकसम्यक्त्वं युगलिकेष्वेव भवति । तत्र च ज्येष्ठयोगस्थानाभावेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याप्यभावोऽतः सम्यग्दृष्टिमनुष्यापेक्षया देवप्रायोग्याऽष्टाविंशतिं बध्नतामपेक्षयैवोक्तस्पर्शनाया लाभात् लोकाऽसंख्यभाग एव स्पर्शना चतुर्थेऽप्याप्त्या प्राप्यत इति, अन्याभिप्रायेण युगलधार्मिकेष्वपि ज्येष्ठयोगस्थानस्य भावेन क्षायिकसम्यग्दृक्तिर्यक्षु आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य संभवेऽपि तेभ्यस्तेषां वैमानिकेषु त्रिपल्योपमस्थितित उपरितनस्थितिष्वनुत्पादेन प्रथमप्रस्तर एवोत्पादस्य स्वीकृतत्वात् तन्मते प्रथमप्रस्तरस्य तिर्यग्लोकत आसन्न एव स्थितत्वाच्च लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । देवेन्द्रस्तवाभिप्रायेण तु प्रथमप्रस्तरस्योर्ध्वलोकस्यैकोनविंशतितमे भागे स्थितत्वाद् रज्जुसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना भवितुमर्हति, युगलिकतिरश्चां ज्येष्ठप्रदेशबन्धसद्भावे तु येषां मतेन सर्वप्रतरेषु जघन्या स्थितिर्भवति तन्मते सार्धरज्जुप्रमाणा सा स्यादिति, तत्त्वविद एव, तत्त्वं निश्चिन्वन्तु । प्रस्तुते तु मनुष्यापेक्षयैवोक्तस्पर्शना दर्शितेति प्रतिपत्तव्यम् । स्वामित्वे मनुष्याणामेव तासां स्वामितया प्रतिपादनात् । त्रिंशत्प्रकृतयः पुनरिमाः देवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकतैजसकार्मणशरीरसमचतुरस्रसुखगतिवर्णचतुष्काऽगुरुलघुचतुष्कनिर्माणत्रसनवकाऽस्थिराशुभाऽयशःकीर्तिनामानीति ।

उक्तशेषाणां बन्धप्रायोग्याणां सप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽवधिज्ञानमार्गणावद् विज्ञेया, अवधिज्ञानमार्गणावदिहापि मनुष्यापेक्षया देवापेक्षया वोक्तस्पर्शनाया लाभात्, तत्र ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चकसातवेदनीययशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रसंज्वलनचतुष्कपुरुषवेदाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य चेति नवविंशति-

र्लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते, भावना तु मनुष्यानाश्रित्यैव कार्येति । निद्राद्विका-प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कहास्यषट्काऽसातवेदनीयमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंह--ननाम्नां क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेवानां गमनागमनापेक्षयाऽष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शनाऽतीतकालेन प्राप्यत इति । तदेवं क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां स्पर्शना निरूपिता ॥१७४॥

अथ सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणायां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

मीसे हवेज्ज छुहिओ सुरपाउग्गेगतीसणामाणं ।
लोगासंखियभागो फुसिआ भागाऽट्ठ सेसाणं ॥१७५॥

(प्रे०) 'मीसे' इत्यादि, सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणायां पर्याप्तावस्थागता मरणसमुद्घातरहिताश्चातुर्गतिकाः संज्ञिजीवाः सन्ति, ततो नारकतिर्यग्मनुष्यानपेक्ष्य बन्धप्रायोग्यसर्वासां लोकाऽसंख्यभाग एव स्पर्शना भवति । देवापेक्षया गमनागमनकृताऽष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, ततो यासां तिर्यग्मनुष्या एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तासां देवप्रायोग्यैकत्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव प्राप्यते, आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य देवप्रायोग्यामष्टाविंशतिं बध्नतामेव भावेन देवानां तदभावात् । एकत्रिंशत्प्रकृतयः पुनरिमाः–देवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकतैजसकार्मणशरीरसमचतुरस्रसुखगतिवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कनिर्माणत्रसदशकास्थिराशुभाऽयशःकीर्तिनामानि । शेषाणां त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां देवानामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वात्तासामष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेयेति । त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतयः पुनरिमाः ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्काद्यवर्जद्वादशकषायहास्यषट्कपुरुषवेदसातासातवेदनीयमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननोच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकानीति ॥१७५॥

अथ क्रमप्राप्तायां सास्वादनमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां प्रदर्शयन्नाह

सासाणे पण भागा छुहिआ सुरजोग्गएगतीसाए ।
अट्ठ णरदुगुच्चाणं बारह भागाऽत्थि सेसाणं ॥१७६॥

(प्रे०) "सासाणे" इत्यादि, सास्वादनमार्गणायां त्रयोविंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशतिरूपस्थानत्रयस्य बन्धेऽभावाद् देवप्रायोग्या अष्टाविंशतिं बध्नतामेव देवद्विकाद्येकत्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, अतस्तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकास्तिर्यग्मनुष्या एव । तत्र मनुष्यापेक्षया लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते । तिरश्चामपेक्षया पुनः पञ्चरज्जुप्रमाणा प्रस्तुतस्पर्शना भवति, संपूर्णतिर्यग्लोकतः सहस्रारान्तेषु तेषामुत्पादात्, भावना तु तृतीयव्याप्त्या कार्येति । मनुष्यद्विकोच्चै-

गोत्रयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा देवानां गमनागमनक्षेत्रापेक्षया प्राप्यते; शेष-गतित्रयापेक्षया तु लोकाऽसंख्यभागप्रमिता स्पर्शना भवति केवलमुच्चैर्गोत्रस्य तिर्यगपेक्षया पञ्च-रज्जुप्रमाणा सा प्राप्यत इति । शेषाणां चतुःषष्टिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां द्वादशभागप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । तद्यथा उक्तप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः षष्ठनरकनैरयिकाः, ते च मरणसमुद्-घातेन षष्ठनारकतस्तिर्यग्लोकं यावत् क्षेत्रं व्याप्नुवन्तीति तेषां पञ्चरज्जवः स्पर्शना भवति । सप्तम-नरकनैरयिकाणां सास्वादनगुणस्थानेन सह मरणाभावेनैव मारणान्तिकसमुद्घातस्याप्यभावान्न तदपेक्षया अधोलोकसत्का षड्रज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । तिर्यग्मनुष्यास्तु रत्नप्रभापृथ्वी-तोऽधः सास्वादनेन सह मरणसमुद्घातेनाऽपि नैव गच्छन्तीति नाधोलोकसत्का स्पर्शना तिर्यग-पेक्षया प्राप्यते । तथा तिर्यञ्चो देवा वा तिर्यग्लोकतः सिद्धशिलायां समुत्पित्सवो मरणसमुद्घाते स्थिताः सास्वादनगुणस्थानवर्तिन ऊर्ध्वलोकसत्कसप्तभागप्रमाणां स्पर्शनां कुर्वन्ति । देवापेक्षया पुनरधोलोकसत्काद्यरज्जुद्वयस्पर्शना भवति । तदा च तेषां शेषप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽपि भवति, तदेवमूर्ध्वलोकसत्कसप्तरज्जवोऽधोलोकसत्कपञ्चरज्जवश्च मिलिता द्वादश रज्जवो स्पर्शना भवन्ति । अत्र गुणप्रत्ययेनैकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धाभावेनैकेन्द्रियेषूत्पित्सूनां मरणसमुद्घाते वर्तमा-नानामपि पञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धसंभवात्, न प्रथमसंहननादीनां पुरुषवेदा-दीनां च प्रकृतिबन्धाभावस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धाभावस्य चासद्भावतिरुद्भाव्येति । शेषप्रकृतयो नामत इमाः ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकवेदनीयद्वयषोडशकषायहास्यषट्कपुरुषवेदस्त्रीवेदतिर्यग्द्वि--कौदारिकद्विकाद्यसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्ककुखगतिनामोद्योतदुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्रा-ऽन्तरा-यपञ्चकानीति ॥१७६॥

मिथ्यात्वमार्गणायां तु व्यज्ञानादिमार्गणाभिः साकम्; संज्ञिमार्गणायामाहारकमार्गणायां च पञ्चेन्द्रियौघादिभिः सह, असंज्ञिमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना प्रागपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणाभिस्समं च दर्शिता । अनाहारकमार्गणायां तु कार्मणमार्ग-णया सह निरूपिताऽऽयुर्वर्जानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाना स्पर्शनेति ।

अथ मार्गणास्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाया निरूपणाया अवसरः, सा च मूलकारे-णौघिकानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्पर्शनया सममतिदेशेन निर्दिष्टा, तथाऽपि तां विनेयजनानुग्रहार्थं स्वस्मृत्यर्थं च दर्शयामः ।

तद्यथा—नरकौघे मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रजिननाम्नामनुत्कृष्टस्थितिबन्धवल्लोकाऽसंख्येयभाग-प्रमाणैव स्पर्शना प्रस्तुते प्राप्यते; भावना तु चतुर्थव्याख्या कार्या । अत्र व्याप्तयस्तूत्कृष्टप्रदेश-बन्धस्पर्शना प्रस्तावे दर्शितैव विज्ञेयेति । उपपातेनाऽत्र स्पर्शना न दर्शिता न दर्शयिष्यते चेति न विस्मर्तव्यमिति । शेषाणां मार्गणाप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां पञ्चनवतेष्षड्रज्जुप्रमाणा स्पर्शना

तृतीयव्याप्त्या मारणान्तिकसमुद्‍घातेन प्राप्यत इति । सप्तमनरकमार्गणायामेवमेव जिननाम विहाय शेषाणामष्टनवतेः स्पर्शना विज्ञेयेति ।

प्रथमनरक-नवग्रैवेयकपञ्चाऽनुत्तरसुरवैक्रियमिश्राऽऽहारकद्विकमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायसंयमरूपासु चतुर्विंशतिमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति । तत्र प्रथमनरकमार्गणायां पारभविकोत्पत्तिस्थानस्य तिर्यक्प्रतररज्जुप्रमाणत्वेऽपि तयोरन्तरालस्य रज्ज्वसंख्यभागप्रमाणत्वेन लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेया । वैक्रियमिश्राऽऽहारकमिश्रमार्गणाद्वये पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्यैवाऽभावात्स्वस्थानस्य लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणत्वाच्च लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेयेति । शेषासु ग्रैवेयकाद्येकविंशतिमार्गणासु स्वस्थानस्य पारभविकोत्पत्तिस्थानस्य च तिर्यक्प्रतररज्ज्वसंख्यभागप्रमाणत्वेन तयोरन्तरालस्य सप्तादिरज्जुमितत्वेऽपि लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यत इति ।

द्वितीयनरकमार्गणायां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रजिननाम्नां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, शेषाणां पञ्चनवतेरेकरज्जुः स्पर्शना भवति । तृतीयनरकमार्गणायां पञ्चनवतिप्रकृतीनां रज्जुद्वयम् , चतसृणां लोकाऽसंख्येयभागः । चतुर्थनरकमार्गणायां पञ्चनवतेरज्जुत्रयम् , जिननाम्नोऽत्र बन्धाऽभावाद् मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोर्लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । पञ्चमनरके पञ्चनवतिप्रकृतीनां रज्जुचतुष्कम्, मनुष्यगत्यादित्रयाणां लोकाऽसंख्येयभागः । षष्ठनरके पञ्चनवतेरज्जुपञ्चकम् , मनुष्यगत्यानुपूर्व्युच्चैर्गोत्राणां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यत इति । भावना त्वेकादिरज्जुप्रमाणस्पर्शनायां तृतीयव्याप्त्या कार्या, लोकाऽसंख्यभागप्रमाणस्पर्शनायां तु चतुर्थव्याप्त्येति ।

तिर्यग्गत्योघ-काययोगौघ-कषायचतुष्क-मत्यज्ञान-श्रुताज्ञानाऽसंयमा-ऽचक्षुर्दर्शन-भव्या-ऽभव्य-मिथ्यात्वा-ऽऽहारकरूपासु चतुर्दशमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनां स्पर्शनौघवद्भवति । तद्यथा ज्ञानावरणादिसप्तोत्तरशतस्य सर्वलोकः, नरकद्विकस्य षड्रज्जवः, देवद्विकस्य पञ्च रज्जवः, वैक्रियद्विकस्यैकादशरज्जवः, जिननाम्नस्तिर्यग्गत्योघादिपञ्चमार्गणासु बन्धाऽभावेन शेषासु काययोगादिनवमार्गणास्वष्ट रज्जवः, आहारकद्विकस्य चाऽसंयममार्गणायामपि बन्धाऽभावेन काययोगाद्यष्टमार्गणासु लोकाऽसंख्येयभागः स्पर्शना भवति । भावना तु प्रथमतृतीयचतुर्थव्याप्तिभिर्यथासंभवं कार्येति ।

पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणाद्वये सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां मतिज्ञानावरणादिपञ्चसप्ततेरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति । पञ्चसप्ततिप्रकृतयः पुनरिमाः-ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणनवक-साताऽसातवेदनीय-षोडशकषाय-हास्यषट्क-नपुंसकवेद-मिथ्यात्वतिर्यग्द्विकै-केन्द्रियजातिनामौ-दारिकतैजसकार्मणशरीरत्रय-हुण्डकसंस्थानवर्णचतु-

ष्का-ऽगुरुलघुचतुष्क निर्माण-पर्याप्त-प्रत्येक-स्थिर-शुभ--स्थावरचतुष्का-ऽस्थिरा-ऽशुभ-दुर्भगाऽना-देया-ऽयशःकीर्तिनाम-नीचैर्गोत्रा -ऽन्तरायपञ्चकानीति । बादरनाम्नो देशोनलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति । देवद्विक-समचतुरस्र-सुखगति-सुभगत्रिक-पुरुषवेदो-च्चैर्गोत्राणां नवानां पञ्चरज्जुप्रमाणा स्पर्शना भवति । नरकद्विककुखगतिदुःस्वरनाम्नां षड्भागप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेया । स्त्रीवेदस्य सार्धरज्जुप्रमाणा स्पर्शना भवति । पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकत्रसनाम्नामेकादश भागप्रमाणा स्पर्शना भवति। यशःकीर्तिनाम्न उद्योतनाम्नश्च सप्तरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते । शेषाणां मनुष्य-द्विकविकलत्रिकौ-दारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्काऽऽतपनामरूपाणां सप्तदशानां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति, एतत्प्रकृतिबन्धकानां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारभविको-त्पत्तिक्षेत्रस्य च साधिकतिर्यग्लोकान्तर्गतत्वेन लोकस्याऽसंख्येयभागमात्रत्वात्, शेषभावना तु व्याप्त्यनुसारेण कार्येति । एवमेव तिरश्चीमार्गणायामपि स्पर्शना विज्ञेया । केवलं तासां सप्तम-नरकतयोत्पादाऽभावात् दुःस्वरादिचतुर्णां पञ्चभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते, एवं पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विकत्रसनाम्नां दशरज्जुप्रमाणा स्पर्शना भवति ।

अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसकायनवविकलाक्षभेदलक्षणासु द्वादश-मार्गणासु सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकैः सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम्, यशःकीर्तिनामोद्योतनाम्नोर्बन्धकैः सप्तरज्जुप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम्, बादरनामबन्धकैर्देशोनलोक-प्रमाणक्षेत्रं स्पृष्टमिति । उक्तशेषैकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धकैर्लोकस्याऽसंख्यभागः स्पृष्टः । शेष-प्रकृतयः पुनरिमाः—पुरुषवेद-स्त्रीवेद-मनुष्यगति-द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कौ--दारिकाङ्गोपाङ्ग-संहनन-षट्कप्रथमादिसंस्थानपञ्चक-मनुष्यानुपूर्वी-खगतिद्विक त्रस सुभगत्रिक-दुःस्वरा-ऽऽतपो-च्चैर्गोत्ररूपा एकोनत्रिंशत्प्रकृतयः ।

अपर्याप्तमनुष्ये बादराऽग्निकायमार्गणात्रये च यशःकीर्तिनाम्न उद्योतनाम्नश्च बन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं स्वयं ज्ञात्वा वाच्यम् । सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्यपञ्चसप्ततेः सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति । बादरनाम्नो देशोनलोकः । शेषैकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । अग्निकायभेदत्रये मनुष्यद्विकमुच्चैर्गोत्रं च विना षड्विंशतिप्रकृतय एव शेषप्रकृतित्वेन ग्राह्या इति ।

मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणात्रये सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्यपञ्चसप्ततेः प्रकृतीनां बन्धकैः सर्वलोकः स्पृष्टः । बादरनाम्नस्तु देशोनलोकः । यशःकीर्तिनामोद्योतनाम्नोः स्पर्शनाक्षेत्रमागमा-नुसारेण स्वयं विभावनीयम् । शेषाणामष्टात्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धकैर्लोकाऽसंख्यभागप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टमिति । शेषप्रकृतयस्त्विमाः—अनन्तरोक्ता एकोनत्रिंशत्प्रकृतयस्तथा देवद्विकनरकद्विका-ऽऽहारकद्विकवैक्रियद्विकजिननामानीति ।

देवौघे सौधर्मेशानयोश्च आतपनामवर्जानां पर्याप्तबादरैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेर्बन्धकै-र्नव चतुर्दश भागाः स्पृष्टाः । शेषाणां सप्तविंशतेः प्रकृतीनामज्येष्ठप्रदेशबन्धकैरष्ट भागाः स्पृष्टा

भवन्तीति । भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रयेऽप्येवमेव, केवलमत्र जिननाम्नो बन्धाऽभावेन शेषाः षड्विंशतिः प्रकृतयो बोध्या इति । सनत्कुमारादिसहस्रारान्तषड्मार्गणाभेदेषु बन्धप्रायोग्याणां नवनवतेः प्रकृतीनां स्पर्शनाक्षेत्रमष्टचतुर्दशभागप्रमाणं भवति । आनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतमार्गणाचतुष्के बन्धप्रायोग्याणामायुष्कवर्जानां षण्णवतेः प्रकृतीनां बन्धकैः षट्चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः ।

एकेन्द्रियौघपृथ्वीकायौघाऽप्कायौघतेजस्कायौघवायुकायौघवनस्पतिकायौघसाधारणवनस्पतिकायौघरूपासु सप्तसु तथाऽष्टादशभेदलक्षणेषु सर्वसूक्ष्मभेदेषु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जप्रकृतीनां बन्धकैः सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम्, भावना तु प्रथमव्याप्त्या कार्या ।

बादरैकेन्द्रियभेदत्रये बादरवायुकायभेदत्रये च सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा भवति । मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोर्बन्धकानां बादरैकेन्द्रियभेदत्रये लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । मार्गणाषट्केऽप्येकोनत्रिंशच्छेषप्रकृतीनां बन्धकैर्देशोनलोकः स्पृष्टः ।

बादरपृथ्वीकायभेदत्रये बादराऽप्कायभेदत्रये बादरनिगोदत्रये प्रत्येकवनस्पतिकायभेदत्रये चेति द्वादशमार्गणासु सूक्ष्मप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेः प्रकृतीनां बन्धकैः सर्वलोकः स्पृष्टः । बादरनामबन्धकैर्देशोनलोकः स्पृष्टः । अवशेषाणामेकत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धकसत्कस्पर्शनाक्षेत्रं स्वयं तज्ज्ञातृसकाशाद्विज्ञेयमिति ।

पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसकायौघ-पर्याप्तत्रसकाय-मनोयोगसामान्य-तदुत्तरभेदचतुष्क-वचनयोगसामान्य-तदुत्तरभेदचतुष्क-चक्षुर्दर्शन-संज्ञिमार्गणासु षोडशसु सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेः प्रकृतीनां बन्धकैः सर्वलोकप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम् । पुरुषवेदादिद्वाविंशतिप्रकृतीनां बन्धकैर्द्वादशरज्जुमितं क्षेत्रं स्पृष्टम्; अधोलोकसत्काः षट्, ऊर्ध्वलोकसत्काः षट् चेति । द्वाविंशतिप्रकृतयः पुनरिमाः—पुरुषवेदसुभगत्रिकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्कस्त्रीवेदौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसनामपञ्चेन्द्रियजातिदुःस्वरनामकुखगतिनामानि । नरकद्विकस्य षड् भागाः स्पृष्टाः, देवद्विकस्य पञ्च भागाः, वैक्रियद्विकस्यैकादश भागाः स्पृष्टाः । मनुष्यद्विकजिननामाऽऽतपोच्चैर्गोत्राणां बन्धकैरष्ट भागाः स्पृष्टाः, ऊर्ध्वलोकसत्काः षडधोलोकसत्कौ द्वौ इति । विकलत्रिकस्याऽऽहारकद्विकस्य च लोकाऽसंख्येयभागः स्पृष्टः । यशःकीर्तिनाम्न उद्योतनाम्नश्च त्रयोदश भागाः स्पृष्टाः, ऊर्ध्वलोकसत्काः सप्तरज्जवोऽधोलोकसत्काः षट् चेति । बादरनाम्नः पुनर्देशोनलोकप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टमिति ।

औदारिककाययोगमार्गणायां जिननामाऽऽहारकद्विकयोर्बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टम्, शेषप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनौघवद्भवति, तद्यथा सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धकानां सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति । नरकद्विकस्य

बन्धकाः षड्भागान् देवद्विकस्य बन्धकाः पञ्चभागान् वैक्रियद्विकस्य बन्धका एकादशभागान् स्पृशन्ति स्म ।

औदारिकमिश्रकार्मणाऽनाहारकमार्गणात्रये देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां बन्धका लोकाऽसंख्येयभागं स्पृष्टवन्तः । शेषाणां सप्तोत्तरशतस्य बन्धकाः सर्वलोकं स्पृष्टवन्त इति ।

वैक्रियकाययोगमार्गणायां सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्या याः पञ्चसप्ततिप्रकृतयस्ताभ्यः सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणनामानि तथैकेन्द्रियस्थावरनाम्नी विहाय शेषा याः सप्ततिप्रकृतयस्तासामुद्योतबादरयशःकीर्तिनाम्नां चेति त्रिसप्ततिप्रकृतीनां बन्धकैस्त्रयोदश भागाः स्पृष्टाः, अधोलोकसत्काः षड् भागा ऊर्ध्वलोकसत्काश्च सप्तेति । पुरुषवेदादिद्वाविंशतिप्रकृतीनां बन्धका द्वादशभागान् स्पृशन्ति स्म । मनुष्यद्विकजिननामाऽऽतपोच्चैर्गोत्राणां पञ्चप्रकृतीनां बन्धकैरष्ट भागाः स्पृष्टाः । एकेन्द्रियस्थावरनामबन्धकैर्नव रज्जवः स्पृष्टा इति ।

स्त्रीवेदमार्गणायां सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेः प्रकृतीनां बन्धकाः सर्वलोकं स्पृशन्ति स्म । पुरुषवेदाद्यष्टादशप्रकृतीनां मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्राऽऽतपनामलक्षणानां चतसृणां चेति द्वाविंशतिप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृष्टवन्तः । पुरुषवेदाद्यष्टादश प्रकृतयः पुनरिमाः—पुरुषवेदसुभगत्रिकसुखगतिसमचतुरस्रसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्कस्त्रीवेदौदारिकाङ्गोपाङ्गनामानीति । नरकद्विकस्य देवद्विकस्य च बन्धकैः पञ्च भागाः स्पृष्टाः । त्रसनामपञ्चेन्द्रियजातिकुखगतिदुःस्वरनाम्नां बन्धकैरेकादश भागाः स्पृष्टाः । विकलत्रिकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां षण्णां बन्धकैर्लोकस्यासंख्यांशः स्पृष्टः । वैक्रियद्विकस्य बन्धका दशभागान् स्पृष्टवन्तः । बादरनामबन्धका देशोनलोकं स्पृशन्ति स्म । उद्योतनाम्नो यशःकीर्तिनाम्नश्च बन्धका नव रज्जूः स्पृष्टवन्तः ।

पुरुषवेदमार्गणायां सूक्ष्मैकेन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चसप्ततेर्बन्धकैः सर्वलोकः स्पृष्टः, बादरनामबन्धकैर्देशोनलोकः स्पृष्टः । पुरुषवेदाद्यष्टादशप्रकृतीनां मनुष्यद्विकजिननामाऽऽतपोच्चैर्गोत्राणां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृष्टवन्तः । नरकद्विकस्य षड् भागान्, देवद्विकस्य पञ्चभागान्, वैक्रियद्विकस्यैकादशभागांस्तद्बन्धकाः स्पृशन्ति स्म । विकलत्रिकस्याऽऽहारकद्विकस्य च बन्धकैर्लोकाऽसंख्यभागः स्पृष्टः । यशःकीर्तिनामोद्योतनाम्नोर्नव भागाः स्पृष्टा इति । पञ्चेन्द्रियजातित्रसनामकुखगतिदुःस्वरनाम्नां द्वादशभागाः परिस्पृष्टाः ।

नपुंसकवेदमार्गणायां सर्वप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शनौघवद्भवति, केवलं तत्रौघे जिननाम्नो बन्धकानां स्पर्शना देवाऽपेक्षयाऽष्टौ रज्जवः प्राप्यन्ते, प्रस्तुते तु देवानामप्रवेशाल्लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना विज्ञेयेति ।

अपगतवेदमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणामेकविंशतेरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं लोकाऽसंख्यभागप्रमाणं भवति। अत्र प्रकृतिबन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रमपि तथैव । केवलं सातवेदनीयस्य केवलिसमुद्घाताऽपेक्षया सर्वलोकप्रमाणस्पर्शनाक्षेत्रस्य प्रकृतिबन्धे भावेऽपि सकषायप्रदेशबन्धस्यैव प्रस्तुतेऽधिकृतत्वात् लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यत इति ।

अकषायकेवलज्ञानकेवलदर्शनयथाख्यातसंयममार्गणासु सकषायप्रदेशबन्धाऽभावान्न तत्र प्रस्तुतस्पर्शनाया निरूपणाऽवसरः ।

मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनपद्मलेश्यासम्यक्त्वक्षायिकक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शनाऽऽहारकद्विकबन्धकानां भवति। देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकाः पञ्च भागान् स्पृशन्ति स्म। शेषाणामेकसप्ततेः पद्मलेश्यायां नवनवतेश्च प्रकृतीनां बन्धका अष्टरज्जूः स्पृष्टवन्तः।

विभङ्गज्ञानमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां त्रयोदशोत्तरशतस्य बन्धकानां स्पर्शनाक्षेत्रं पञ्चेन्द्रियमार्गणावद्विज्ञेयम्, पञ्चेन्द्रियमार्गणावत्तेषां सूक्ष्मादिषूत्पादसंभवेन मरणसमुद्घातेन स्पर्शनाया भावात् ।

देशविरतिमार्गणायां जिननाम्नो बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयभागः स्पृष्टः। शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां पञ्चषष्टेः प्रकृतीनां बन्धकास्तु पञ्च भागान् स्पृशन्ति स्म।

कृष्णलेश्यामार्गणायां देवद्विकस्य जिननाम्नश्च लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा स्पर्शना भवति। नरकद्विकस्य वैक्रियद्विकस्य च बन्धकैः षड् भागाः स्पृष्टाः। आहारकद्विकस्य चाऽत्र बन्धाऽभावः, शेषाणां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धकाः सर्वलोकं स्पृशन्ति। एवमेव नीललेश्यामार्गणायां केवलं नरकद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकैश्चत्वारो भागाः स्पृष्टा विज्ञेयाः। कापोतलेश्यायामप्येवमेव, परं नरकद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धका रज्जुद्वयं स्पृशन्ति स्म ।

तेजोलेश्यामार्गणायां मनुष्यद्विकाऽऽतपजिननामोच्चैर्गोत्राणां पुरुषवेदसुभगत्रिकसुखगतिसमचतुरस्रसंस्थानसंहननषट्कमध्यमसंस्थानचतुष्कस्त्रीवेदौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसपञ्चेन्द्रियदुःस्वर-कुखगतिनाम्नां द्वाविंशतेश्च बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः। देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकाः सार्धरज्जुं स्पृशन्ति स्म। आहारकद्विकबन्धकानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । शेषाणां पञ्चसप्ततेः प्रकृतीनां बन्धकैर्नव रज्जवः स्पृष्टाः । पञ्चसप्ततिप्रकृतयः पुनरिमाः—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकसातवेदनीयाऽसातवेदनीयषोडशकषायहास्यषट्कनपुंसकवेदमिथ्यात्वनीचैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकानि तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिनामौदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रिकहुण्डकसंस्थानवर्णचतुष्काऽगुरुलघुचतुष्कनिर्माणोद्योतस्थावरबादरत्रिकस्थिराऽस्थिरशुभाऽशुभदुर्भगाऽनादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तिनामानि चेति ।

पद्मलेश्यामार्गणायां मतिज्ञानादिमार्गणाभिरसहोक्ता प्रस्तुतस्पर्शना । शुक्ललेश्यामार्गणायामाहारकद्विकबन्धकानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमात्रा पञ्चरज्जुप्रमाणा वाऽन्या वा यावती भवति तावत्यागमानुसारेण स्वयं भाव्या । उक्तशेषाणां पण्णवतेः प्रकृतीनां बन्धकाः षड्भागान् स्पृशन्ति स्म । अत्र पञ्चनवति प्रकृतयो याः प्रकृतिबन्ध उक्ताः ता एव विज्ञेया अधिकं च सातवेदनीयम्, यतस्तत्र तस्य केवलिसमुद्घाताऽपेक्षया सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यते, प्रस्तुते तु केवलिनोऽप्रवेशान्न तत्प्रयुक्ता स्पर्शना, अत आरणाऽच्युतान्तदेवाऽपेक्षयैषा लभ्यमाना तथैव भावनीया।

क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागो लोकस्य संख्येयभागः सार्धरज्जुप्रमाणं वाऽऽगमानुसारेण यथासंभवं विज्ञेया, युगलिकतिरश्च आश्रित्य भावना ज्ञेया, तेषां स्वस्थानक्षेत्रस्योत्पत्तिक्षेत्रस्य च नानाभिप्रायवत्त्वेन स्पर्शनाप्ररूपणाया भिन्नत्वात् । विशेषभावना तु प्रकृतिबन्धादिग्रन्थतो विलोकनीया । तत्त्वं तु श्रुतकेवलिनो विदन्ति । आहारकद्विकबन्धकानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । शेषाणामेकसप्ततेः प्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति स्म ।

उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां सप्तानां बन्धका लोकाऽसंख्येयभागं स्पृशन्ति स्म । शेषाणां मार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां सप्ततिप्रकृतीनां बन्धकैरष्टौ भागाः स्पृष्टाः ।

सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकैर्लोकाऽसंख्येयभागः स्पृष्टः । शेषसप्ततिप्रकृतीनां बन्धका अष्टौ भागान् स्पृशन्ति स्म ।

सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धकाः पञ्च चतुर्दशभागान् स्पृशन्ति स्म । मनुष्यद्विकस्योच्चैर्गोत्रस्य च बन्धका अष्टौ भागान् स्पृष्टवन्तः । उक्तशेषैकनवतिप्रकृतिबन्धकानां स्पर्शना द्वादशरज्जुप्रमाणा भवति ।

असंज्ञिमार्गणायां वैक्रियषट्कस्य बन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति । शेषाणां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धकानां स्पर्शना सर्वो लोकोऽवसेय इति ।
अत्र प्रकृतीनां बन्धकत्वेन सामान्यतो निर्देशेऽपि अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य प्रस्तावात्तत्तत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशस्य बन्धकत्वमवसेयम् । हेत्वादिभावना तु प्रकृतिबन्धस्थितिबन्धादिग्रन्थतो विभावनीया सूक्ष्मधिया उक्तव्याप्त्यचतुष्कानुसारेण चेति । तदेवमोघे मार्गणासु चाऽऽयुर्वर्जानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना निरूपिता ॥१७६॥

अथ मार्गणासु बन्धप्रायोग्याऽऽयुषामुत्कृष्टाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाया अवसरस्तत्रादावुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरुरूपयिषुराह

तिरियमणुस्साऊणं देवसहस्सारअंतविउवेसुं ।
छुहिआऽत्थि बंधगेहिं जेट्ठपएसस्स अड भागा ॥१७७॥
फुसिआ णराउगस्स छ भागा चउआणयाइसुक्कासु ।
सुक्काअ असंखंसो जगस्स छुहिओ सुराउस्स ॥१७८॥
दुपणिंदितसपणमणवयकायथीपुमकसायअजएसुं ।
तिअणाणणाणदंसणपणलेसभवियरसम्मखइएसुं ॥१७९॥ (गीतिः)
वेअगसासायणमिच्छसण्णिआहारगेसु ओधव्व ।
सप्पाउगगाऊणं फुसणा खेत्तव्व सेसासुं ॥१८०॥
णवरि फुसिअमखिलजगं भवे णराउस्स सव्वसुहमेसुं ।
तिरियाउस्सूणजगं एगिंदियवाउभेअतिगे ॥१८१॥

(प्रे०) "**तिरियमणुस्साऊण**"मित्यादि, देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशान-सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलान्तकशुक्रसहस्साररूपासु द्वादशदेवमार्गणासु वैक्रियकाययोगे चेति त्रयोदशमार्गणासु तिर्यगायुषो मनुष्यायुषश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा भवति, देवानां गमनागमनक्षेत्रापेक्षया भावना कार्या, तदपेक्षयैवोक्तप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यत इति । आनतादिमार्गणाचतुष्के शुक्ललेश्यामार्गणायां च मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना षड्रज्जुप्रमाणा भवति, आनतादिदेवानां गमनागमनस्य तिर्यग्लोकतोऽधो बाहुल्यतोऽसंभवात्पञ्चसङ्ग्रहे श्रीमच्चन्द्रर्षिभिस्तथैवोक्तत्वादच्युतदेवलोकतस्तिर्यग्लोकस्य षड्रज्ज्वन्तरितत्वात्तथैव स्पर्शना प्राप्यत इति । एवं शुक्ललेश्यामार्गणायामपि आनतादिदेवाऽपेक्षया भावना कार्या, शुक्ललेश्यायां देवानामेव मनुष्यायुर्बन्धकत्वात् । शुक्ललेश्यामार्गणायां देवायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना भवति ।

पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसकायौघ-पर्याप्तत्रसकायमनोयोगौघ-तदुत्तरभेदचतुष्क-वचनयोगौघ-तदुत्तरभेदचतुष्क--काययोगौघ-स्त्रीवेद--पुरुषवेद--कषायचतुष्का--ऽसंयम--मतिज्ञान-श्रुतज्ञाना--ऽवधिज्ञाना--ऽज्ञानत्रय-चक्षुर्दर्शना- -ऽचक्षुर्दर्शना--ऽवधिदर्शनकृष्णलेश्या-नीललेश्या-कापोतलेश्या--तेजोलेश्या-पद्मलेश्या--भव्या-ऽभव्य--सम्यक्त्वौघ--क्षायिकसम्यक्त्व--क्षयोपशम-सम्यक्त्व-सास्वादन-मिथ्यात्व -संज्ञ्या-हारकरूपासु पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना ओघवद्भवति । तद्यथा--यथासंभवं बन्धप्रायोग्यतिर्यग्मनुष्या-युषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा भवति, भावना तु देवानां गमना-

गमनाऽपेक्षया कार्येति । देवनरकायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति, संज्ञितिर्यग्मनुष्याणां मरणसमुद्घातविरहितानामेव तत्स्वामित्वात् । उक्तशेषासु शतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना क्षेत्रद्वारे यथा दर्शिता तथा विज्ञेया । तद्यथा-

सूक्ष्मतेजस्कायभेदत्रये सूक्ष्मवायुकायभेदत्रये च केवलं तिर्यगायुष एव बन्धः, तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा भवति । अपर्याप्तबादरैकेन्द्रिये अपर्याप्तबादरवायुकाये च तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा भवति । अपर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणायां मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागमात्रा विज्ञेया । एकेन्द्रियौघबादरैकेन्द्रियौघ पर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणासु मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति । उक्तमार्गणात्रये तथा वायुकायौघे बादरवायुकायौघे बादरपर्याप्तवायुकायमार्गणायां चेति षट्सु मार्गणासु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽतिदेशानुसारेण "सयमुज्झं सेसेसुं एगिंदियवाउभेएसु" इत्यादिना क्षेत्रद्वारे क्षेत्रस्य स्पष्टमप्रतिपादितत्वेऽपि प्रस्तुते तु तासु षड्मार्गणासु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा प्राप्यते इत्यपवादभणनम् । स्पर्शनाया अतीतकालविषयत्वेन तद्बन्धकजीवानामानन्त्यात् , उक्तषड्मार्गणागतजीवानां स्वस्थानक्षेत्रस्य देशोनलोकमितत्वात् यथोक्ता स्पर्शना इति । सूक्ष्मैकेन्द्रियभेदत्रये सूक्ष्मपृथ्वीकायभेदत्रये सूक्ष्माऽप्कायभेदत्रये सूक्ष्मनिगोदभेदत्रये चेति द्वादशमार्गणासु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामतिदेशानुसारेण सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति, न च तथाऽतिदेशानुसारेण लब्धा स्पर्शना मनुष्यायुषः संगच्छते यतोऽतिदेशाऽनुसारेण लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव सा प्राप्यते क्षेत्रप्ररूपणस्य विवक्षितैकसमयविषयत्वेनाऽत्यल्पानामसंख्येयजीवानामेव तद्बन्धकतया लाभेऽपि स्पर्शनाया अतीतकालविषयत्वेन तद्बन्धकजीवानामानन्त्यात्सूक्ष्मजीवानां सर्वत्र सद्भावाच्च सर्वलोकप्रमाणेव स्पर्शना प्राप्यते, इत्यपवादभणनम् । शेषासु चतुस्सप्ततिमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा भवति । सर्वलोकाक्षेपकसूक्ष्मजीवानां देशोनलोकाक्षेपकबादरवायुकायिकानां च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वेनाऽप्रवेशात् , गमनागमनेन प्रधानक्षेत्राक्षेपकानामच्युतान्तदेवानामप्रवेशाच्च । शेषमार्गणा नामत इमाः अष्टौ नरकमार्गणास्तिर्यगोघमार्गणा चत्वारः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणाश्चत्वारो मनुष्यमार्गणा नवग्रैवेयकपञ्चाऽनुत्तरसुरमार्गणा नवविकलाक्षभेदा अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा पृथ्व्यप्तेजोवनस्पतिकायौघाः साधारणवनस्पतिकायौघो बादरपृथ्वीकायभेदत्रयं बादराऽप्कायभेदत्रयं बादरतेजस्कायभेदत्रयं बादरसाधारणवनस्पतिकायभेदत्रयं प्रत्येकवनस्पतिकायभेदत्रयमपर्याप्तत्रसकायमार्गणौदारिकौदारिक-

मिश्राहारका-ऽऽहारकमिश्रकाययोगा नपुंसकवेदो मनःपर्यवज्ञानं संयमौघ-सामायिकसंयमच्छेदोपस्थापनसंयम-परिहारविशुद्धि-देशविरतयोऽसंज्ञिमार्गणा चेति चतुःसप्ततिमार्गणाः ॥१७७-१८१॥

अथ मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

तिरिये एगिंदियपणकायणिगोएसु सव्वसुहमेसुं ।
कायुरलदुगणपुमचउकसायदुअणाणअजएसुं ॥१८२॥
अणयणतिअसुहलेसाभवियरमिच्छामणेसु आहारे ।
सप्पाउग्गाऊणं अणुरुपएसस्स फरिसणोधव्व ॥१८३॥ (गीतिः)
सव्वसुरदुपंचिंदियतसपणमणवयणविउवपुमथीसुं ।
णाणतिगविभंगेसुं णयणोहिपसत्थलेसासुं ॥१८४॥
सम्मत्तखइअवेयगसासणसण्णीसु गुरुपएसव्व ।
सप्पाउग्गाऊणं फुसणा खेत्तव्व सेसासुं ॥१८५॥

(प्रे०) "तिरिये" इत्यादि, पट्चत्वारिंशद्मार्गणासु सूक्ष्मजीवानां प्रवेशात्तदपेक्षया तिर्यग्मनुष्यायुषोरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना सर्वलोकप्रमाणा भवति । एताभ्यो यासु देवनरकायुषोर्बन्धसंभवस्तासु तयोर्लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैव स्पर्शना भवति, अकृतमरणसमुद्घातपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याणामेव तद्बन्धकत्वात् । पट्चत्वारिंशद्मार्गणा नामत एताः—तिर्यग्गत्योघैकेन्द्रियौघ-पृथ्वीकायौघा-ऽप्कायौघ-तेजस्कायौघ-वायुकायौघ-वनस्पतिकायौघ--निगोदौघ-सूक्ष्मैकेन्द्रियभेदत्रय-सूक्ष्मपृथ्वीकायभेदत्रय-सूक्ष्माऽप्कायभेदत्रय-सूक्ष्मतेजस्कायभेदत्रय-सूक्ष्मवायुकायभेदत्रय-सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायभेदत्रय-काययोगौघौ---दारिककायौ-दारिकमिश्र--नपुंसकवेदकषायचतुष्क-मत्यज्ञान-श्रुताऽज्ञाना-ऽसंयमा-ऽचक्षुर्दर्शन-कृष्णलेश्या--नीललेश्या--कापोतलेश्या--भव्याऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकमार्गणाः ।

सर्वदेवभेदाद्येकषष्टिमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना तदीयोत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां यावती प्राप्यते तावती विज्ञेया, तद्यथा-देवौघ भवनपत्यादिसहस्रारान्तदेवभेद द्विपञ्चेन्द्रिय-द्वित्रसकाय मनोयोगौघ तदुत्तरभेदचतुष्कवचनयोगौघतदुत्तरभेदचतुष्क-वैक्रियकाययोग पुरुषवेद-स्त्रीवेद--मतिश्रुताऽवधिज्ञान -विभङ्गज्ञानचक्षुर्दर्शना- ऽवधिदर्शनतेजःपद्मलेश्या-सम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्व-क्षयोपशमसम्यक्त्व सास्वादन संज्ञिमार्गणासु द्विचत्वारिंशति यथासंभवं तिर्यग्मनुष्यायुषोरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानामष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना देवानां गमनागमनक्षेत्राऽपेक्षया भवति । आनतादिमार्गणाचतुष्के शुक्लायां च मनुष्यायुषो बन्धका षड्रज्जूः स्पृशन्ति

स्म। नवग्रैवेयकपञ्चाऽनुत्तरसुरमार्गणासु चतुर्दशसु मनुष्यायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणा भवति। द्विपञ्चेन्द्रिय-द्वित्रसकाय-मनोयोगौघ-तदुत्तरभेदचतुष्कवचनयोगौघतदुत्तरभेदचतुष्क-पुरुषवेद-स्त्रीवेद-मति-श्रुताऽवधिज्ञान-विभङ्गज्ञान-चक्षुर्दर्शना-ऽवधिदर्शन-तेजः-पद्मशुक्ललेश्या-सम्यक्त्वौघ-क्षायिक-क्षायोपशमिक--सास्वादन--संज्ञिमार्गणासु यथासंभवं बन्धप्रायोग्यदेवनरकायुषोरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति, यथासंभवं पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याणामेव तद्भावात्।

शेषासु षट्पञ्चाशद्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषां निर्वर्तकानां स्पर्शनाविषयतया क्षेत्रद्वारे यावत्क्षेत्रं निरूपितं तावत्क्षेत्रं प्रस्तुतेऽपि प्राप्यते। अत्र देवानां सूक्ष्मैकेन्द्रियादीनां चाऽप्रवेशात्क्षेत्रद्वारवदतिदेशः। अतिदेशानुसारेण स्पर्शनायाः क्षेत्रं पुनरेवम्-बादरैकेन्द्रियभेदत्रये मनुष्यायुषोर्बन्धकानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना भवति, तथाऽत्रैव बादरैकेन्द्रियभेदत्रये बादरवायुकायभेदत्रये च तिर्यगायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा विज्ञेया, प्रकृतिबन्धकस्पर्शनाया अपि तावत्प्रमाणत्वात्। अष्टनरकमार्गणा-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणाचतुष्क मनुष्यमार्गणाचतुष्क--नवविकलाक्षा--ऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रिय--बादरपृथ्वीकायभेदत्रय--बादराऽप्कायभेदत्रय-बादरतेजस्कायभेदत्रय-बादरसाधारणवनस्पतिकायभेदत्रय-प्रत्येकवनस्पतिकायभेदत्रया--ऽपर्याप्तत्रसकाया-ऽऽहारका--ऽऽहारकमिश्र-मनःपर्यवज्ञान-संयमौघ-सामायिक च्छेदोपस्थापनीय परिहारविशुद्धि-देशविरतयः, एतासु पञ्चाशन्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति, सूक्ष्मजीवानां बादरवायुकायिकानां देवानां चाऽप्रवेशाद् मारणसमुद्घातस्य चायुर्बन्धकालेऽसंभवात्। संक्षेपत आयुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना प्रकृतिबन्धकस्पर्शनावद्भवतीति तद्वद् भावना कार्येति। तदेवं मार्गणास्वायुषामुत्कृष्टाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाप्ररूपणं समाप्तम् ॥१८२-१८५॥

अथ जघन्याऽजघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाया अवसरः, तत्राऽऽदौ तावदोघतो जघन्याऽजघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

लोगासंखियभागो हस्सपएसस्स बंधगेहि भवे।
विउव्वऽट्ठगआहारगदुगजिणणामाण परिफुसिओ ॥१८६॥
सेसाणं पयडीणं सव्वजगं बंधगेहि परिपुट्ठं।
अगुरुपएसव्व भवे अलहुपएसस्स सव्वेसिं ॥१८७॥

(प्रे०) "लोगा०" इत्यादि, वैक्रियाऽष्टकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति, तत्र देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां भवप्रथमसमयस्थानां मनुष्याणां तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वेनाहारकद्विकस्याऽप्रमत्तसंयतानामष्टविधमूल-

प्रकृतिबन्धकानां तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वेन नरकद्विकस्य देवनरकायुषोश्चाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्याऽष्टविधबन्धकस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वेन च तिर्यग्लोके तदासन्ने वा क्षेत्रे भावाद् मरणसमुद्घातस्य चाऽभावान्नाऽधिकस्पर्शनाया अवकाश इति । उक्तशेषाणां नवोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकानां सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति । सर्वलोकव्यापिनां सूक्ष्मजीवानां तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वादत्राऽष्टोत्तरशतस्य क्षेत्रद्वारे क्षेत्रमपि सर्वलोक एवोक्तम्, केवलं मनुष्यायुषस्तत्र लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणमेव क्षेत्रं प्राप्यते, तद्बन्धकजीवानां कस्मिंश्चिद् विवक्षितसमयेऽसंख्येयलोकतोऽतीवन्यूनत्वात्, स्पर्शनायास्त्वतीतकालविषयत्वेन तद्बन्धकजीवानामानन्त्यात्सर्वलोकप्रमाणा सा प्राप्यत इति ।

ओघतो विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनामजघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनावद्विज्ञेया, जघन्यमुत्कृष्टं चेति प्रदेशबन्धस्थानद्वयं विहाय शेषाणां प्रदेशबन्धस्थानानामुभयत्रान्तर्भावेन तत्र वर्तमानानां प्रदेशबन्धकानां स्पर्शनायास्तुल्यत्वादिति । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽऽसन्न एव दर्शितत्वात्तत एवाऽवधार्येति ॥१८६-१८७॥ अथ मार्गणास्वायुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्याणां जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां निरूपयन्नाह

पंचमणतिवयणेसुं विगलसुहमतिगविउव्वछक्काणं ।
तेआहारदुगाण य पयडीणं लहुपएसस्स ॥१८८॥
लोगासंखियभागो परिपुट्ठो बंधगेहि विण्णेयो ।
फुसिआऽत्थि अट्ठ भागा सेसाणं आउवज्जाणं ॥१८९॥
लोगासंखियभागो विब्भंगम्मि सयलाण णवरि परे ।
विंति विउवछक्कविगलसुहमतिगूणाण अड भागा ॥१९०॥
देसम्मि पंच भागा छअसायाईण फोसिआ णेया ।
लोगासंखियभागो परिपुट्ठो सेसपयडीणं ॥१९१॥
मीसम्मि अत्थि फुसिओ सुरविउवदुगाण जगअसंखंसो ।
अड भागा सेसाणं अण्णाह खेत्तव्व सव्वेसिं ॥१९२॥
परमत्थि दुवयणेसुं हस्सपएसस्स बंधगेहिं तु ।
परिपुट्ठा अड भागा तित्थंयरणामकम्मस्स ॥१९३॥

(प्रे०) "पंचे"त्यादि, मनोयोगौघश्चत्वारस्तदुत्तरभेदाः सत्या-ऽसत्य-सत्याऽसत्यवचन-

योगत्रयम् , एतास्वष्टसु मार्गणासु जघन्ययोगस्य परावर्तमानत्वेन षोडशोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽष्टविधमूलप्रकृतिबन्धकस्यैव भावेन तदा च मरणसमुद्घातकृतस्पर्शनाया अभावात् स्वस्थानकृता गमनागमनकृता वा स्पर्शना प्राप्यते, तत्र विकलत्रिकसूक्ष्मत्रिकवैक्रियद्विकदेवद्विकनरकद्विकतैजसकार्मणशरीराऽऽहारकद्विकरूपाणां षोडशानां जघन्यप्रदेशबन्धस्य यथासंभवं संज्ञितिर्यग्मनुष्याणां भावेन लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते । अत्र विकलत्रिकसूक्ष्मत्रिकनरकद्विकरूपाणामष्टानां तिर्यग्मनुष्यानधिकृत्य, देवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकतैजसकार्मणशरीररूपाणामष्टानां संयतनाश्रित्य स्पर्शनाया भावना कार्येति । शेषाणां शतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य देवानां गमनागमनं कुर्वतामपि भावेन देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽष्टरज्जुप्रमाणत्वेन च शतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा प्राप्यते । भावना तु सुगमेति ।

विभङ्गज्ञानमार्गणायां विकलेन्द्रियत्रिकसूक्ष्मत्रिकवैक्रियषट्करूपाणां द्वादशप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति, सा चैवम्-देवनारकाणामुक्तप्रकृतीनां बन्धाऽभावात्तिर्यग्मनुष्यानाश्रित्यैव स्पर्शना प्राप्यते, तत्राऽपि संज्ञिनामेव प्रस्तुतमार्गणाया भावात्तेषां च **श्रीमद्भगवतीसूत्राऽष्टमशतकाऽभिप्रायेणाऽपर्याप्ततिर्यग्मनुष्याणां** विभङ्गज्ञानस्याऽभावात्पर्याप्ताऽवस्थागतानां विभङ्गज्ञानस्य भावेनोक्तप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽऽयुर्बन्धसहितानामेव भावाल्लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यत इति । शेषाणामेकोत्तरशतस्य यथासंभवं देवानां नैरयिकाणां वा भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धभावादुपपातक्षेत्रस्य क्षेत्रस्पर्शनाद्वारद्वयेऽविवक्षितत्वाद् देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽत्राऽसम्भवाच्च स्वस्थानाऽपेक्षया लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यते ।

परमते तु विभङ्गज्ञानस्याऽपर्याप्ताऽवस्थायामनङ्गीकारेण देवनैरयिकाणामपि पर्याप्ताऽवस्थायामेव विभङ्गज्ञानस्य स्वीकारात्तन्मते शेषाणामेकोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धः परावर्तमानयोगिनोऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्य भवति, तदा च देवानां गमनागमनक्षेत्रस्य लाभादतीतकालऽपेक्षयाऽनेकजीवाऽपेक्षया च स्पर्शनाक्षेत्रस्य विचार्यमाणत्वादष्टरज्जुप्रमाणा स्पर्शना शेषैकोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकानां भवति ।

देशविरतमार्गणायां बन्धप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धः परावर्तमानयोगिन एव भवति, तत्राऽपि प्रस्तुतमार्गणायां केवलं देवायुष एव बन्धभावेनाऽसातवेदनीयशोकाऽरतिमोहनीयाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामप्रकृतीनां देवायुषा सह बन्धाऽभावात्ता विहाय शेषाणां षष्टिप्रकृतीनामायुषा सहैव जघन्यप्रदेशबन्धभावात्तस्मिन्नवस्थायां, मरणसमुद्घातस्य चाऽभावाल्लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा एव स्पर्शना षष्टिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकानां प्राप्यत इति । असातवेद-

नीयादिप्रकृतिपट्कस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य प्रस्तुत आयुर्बन्धविरहदशायामेव भावेन मरणसमुद्घातस्य संभवाद्देशविरततिरश्चां सहस्रारान्तं यावदुत्पादोत्तानधिकृत्य पञ्चरज्जुप्रमाणा स्पर्शना प्राप्यत इति । भावना तु तृतीयव्याप्त्या कार्या ।

सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणायां मरणसमुद्घातस्याऽभावात्स्वस्थानकृता गमनागमनकृता च स्पर्शना प्रधानतः प्राप्यते, यतोऽत्रापि परावर्तमानयोगिन एव सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, अतोऽत्र देवानां यासां प्रकृतीनां बन्धो भवति तासां सप्ततेर्जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना गमनागमनप्रयुक्ताऽष्टरज्जुप्रमाणा भवति । देवानां बन्धायोग्यानां देवद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां चतुर्णां जघन्यप्रदेशबन्धस्तिर्यग्मनुष्याणामेव भवति, अतस्तेषां स्वस्थानकृता स्पर्शना भवति, सा च लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा विज्ञेयेति । एवमेकादशमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना दर्शिता ।

शेषास्वेकोनपष्ट्युत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जप्रकृतीनां स्पर्शनामतिदेशेन दर्शयति-"अपणरु खेत्तव्व सव्वेसिं" इत्यादि, उक्तशेषमार्गणाभ्यः प्रभूतासु मार्गणासु भवप्रथमसमये एव जघन्यप्रदेशबन्धभावेन तत्राऽप्युपपातक्षेत्रस्याऽविवक्षितत्वेन स्वस्थानक्षेत्रैव जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां प्राप्यमाणत्वेन क्षेत्रद्वारे यावत्क्षेत्रं लोकाऽसंख्यभागादि प्राप्यते तावदेव स्पर्शनाद्वारेऽपि लोकाऽसंख्येयभागादि स्पर्शनाक्षेत्रं विज्ञेयम् ।

अयम्भावः-यत्र मार्गणादौ क्षेत्रद्वारप्ररूपितक्षेत्रप्रमाणापेक्षया प्रस्तुत स्पर्शनाया यदतीव बाहुल्यम् , तन्न केवलं तस्या अतीतकालविषयत्वादेव, अपि त्वतीतकालविषये सति यत्र सा देवानां गमनागमनप्रयुक्ता समुद्घातप्रयुक्ता उपपातक्षेत्रविवक्षायां उपपातप्रयुक्ता वा लभ्यते, तत्रैव क्षेत्रतः सा स्पर्शनाऽतीवातिरिच्यते । न च प्रस्तुते तथेति क्षेत्रातिदेशो विहित इति ।

यासु मार्गणासु पर्याप्ताऽवस्थाप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धः प्राप्यते; तास्वपि गमनागमनक्षेत्रस्य मरणसमुद्घातक्षेत्रस्य चाऽभावात्क्षेत्रवदतिदेशः । यासु मार्गणासु घोलमानयोगिनां जघन्यप्रदेशबन्धो भवति तास्वपि देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽलाभान्न तत्प्रयुक्तस्पर्शनाया विशेषः, तासु घोलमानयोगिस्वामिकजघन्यप्रदेशबन्धासु मार्गणासु बहुप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽऽयुर्बन्धसहभावित्वेन मारणसमुद्घातादन्यत्र भावान्न तत्प्रयुक्ताऽपि स्पर्शना प्राप्यते, एताभ्य एव कासुचित् संयमौघादिमार्गणासु कासाञ्चिदसातवेदनीयादिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽऽयुर्बन्धविरहदशायामेव भावेन मरणसमुद्घातस्य भावेऽपि तासु मार्गणासु जीवानां स्वस्थानक्षेत्रस्य पारभविकोत्पत्तिक्षेत्रस्य च तिर्यक्प्रतररज्ज्वसंख्येयभागमात्रस्यैव भावाच्चतुर्थव्याप्त्या लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणैव स्पर्शना प्राप्यत इति । तदेवमुक्तप्रकारेण मार्गणासु क्षेत्रद्वारवत्स्पर्शनाक्षेत्रं संगच्छत इति तद्वदतिदेशः कृतः ।

अतिदेशेन प्राप्तां स्पर्शनां मार्गणासु दर्शयामः, तद्यथा-तिर्यग्गत्योघै-केन्द्रियौघ-पृथ्व्यादि-पञ्चकायौघ निगोदौघ-सूक्ष्मैकेन्द्रियभेदत्रय-सूक्ष्मपृथ्वीकायभेदत्रय-सूक्ष्माऽप्कायभेदत्रय सूक्ष्मतेजस्कायभेदत्रय-सूक्ष्मवायुकायभेदत्रय-सूक्ष्मनिगोदभेदत्रय-काययोगौघौदारिकौदारिकमिश्र-कार्मणकाययोग-नपुंसकवेद-कषायचतुष्क-मत्यज्ञान-श्रुताऽज्ञाना-ऽसंयमा-ऽचक्षुर्दर्शन-कृष्णलेश्या-नीललेश्या-कापोतलेश्याभव्या-ऽभव्य-मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञ्या-हारका-ऽनाहारकमार्गणास्वष्टचत्वारिंशति बन्धप्रायोग्यप्रकृतिभ्यो देवद्विकवैक्रियद्विकनरकद्विकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां नवानां बन्धसंभवे तज्जघन्यप्रदेशबन्धकानां लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा स्पर्शना भवति । शेषसप्तोत्तरशतप्रकृतीनां यथासंभवं बन्धसंभवे तज्जघन्यप्रदेशबन्धकानां सर्वलोकप्रमाणा स्पर्शना भवति ।

बादरैकेन्द्रियभेदत्रये मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपप्रकृतित्रयस्य जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति । शेषाणां चतुरुत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा भवति ।

बादरवायुकायभेदत्रये बन्धप्रायोग्याणां चतुरुत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना देशोनलोकप्रमाणा विज्ञेया ।

अष्टनरकमार्गणा---पञ्चेन्द्रियतिर्यग्भेदचतुष्क---मनुष्यभेदचतुष्क- -त्रिंशद्देवमार्गणा---नवविकलाक्षमार्गणा--पञ्चेन्द्रियमार्गणात्रय---बादरपृथ्वीकायभेदत्रय---बादराऽप्कायभेदत्रय--बादरतेजस्कायभेदत्रय--बादरनिगोदभेदत्रय--बादरप्रत्येकवनस्पतिकायभेदत्रय- --त्रसकायभेद--त्रय--वचनयोगौघ---व्यवहारवचनयोग--वैक्रिय---वैक्रियमिश्रा---ऽऽहारक--ऽऽहारकमिश्र- स्त्री--वेद-पुरुषवेदा ऽपगतवेद-मति-श्रुता-ऽवधि-मनःपर्यवज्ञान--संयमौघ--सामायिक--च्छेदोपस्थापनीय-परिहारविशुद्धि--सूक्ष्मसंपरायसंयम-चक्षु--रवधिदर्शन--तेजःपद्मशुक्ललेश्या--सम्यक्त्वौघौपशमिक-क्षायिक--क्षायोपशमिकसम्यक्त्व--सास्वादनसम्यक्त्व-संज्ञिमार्गणाः, एतासु पञ्चोत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति, केवलं वचनयोगौघ-व्यवहारवचनयोगद्वये जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धका घोलमानयोगिनो देवा नारका वा, अतो देवाऽपेक्षयाऽष्टरज्जुप्रमाणा सा प्राप्यते इत्यपवादभणनम् । शेषं तु पूर्वोक्ताऽनुसारेण यथासंभवं भावनीयमिति । तदेवं मार्गणास्वायुर्वर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनानिरूपणं समाप्तम् ॥१८८-१९३॥

अथ मार्गणास्वायुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनामजघन्यप्रदेशबन्धकानां मार्गणास्वायुषां द्विविधप्रदेशबन्धकानां च स्पर्शनाक्षेत्रं सापवादाऽतिदेशेन निरूपयन्नाह

सव्वासु अत्थि फुसणा अगुरुपएसव्व आउवज्जाणं ।
अलहुपएसस्स तहा दुविहपएसाण आऊणं ॥१९४॥

णवरि तिरिणराऊणं हस्सपएसस्स जगअसंखंसो ।
छुहिओ दुपणिंदियतसवयथीपुमचक्खुसण्णीसु ॥१९५॥

(प्रे०)"सव्वासु" इत्यादि, सप्तत्युत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनामजघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना यथाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना दर्शिता तथैव विज्ञेया । एकत्र ज्येष्ठमन्यत्र ह्रस्वं प्रदेशबन्धस्थानं विहाय शेषप्रदेशबन्धस्थानानामुभयत्र समानत्वात् । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽऽसन्न एव दर्शितत्वेन वृत्तौ न भूयः प्रदर्श्यते, तत एव जिज्ञासुनाऽवधारणीयेति ।

अथ मार्गणास्वायुषां जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनां दर्शयति—"तह्य"इत्यादि, त्रिपष्ट्युत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुषां जघन्यप्रदेशबन्धकानामजघन्यप्रदेशबन्धकानां च स्पर्शना तत्तन्मार्गणास्वायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना यथा दर्शिता तथैव वक्ष्यमाणान्यपवादपदानि विहाय द्रष्टव्येति । ये जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनस्तेऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामिनोऽपि भवन्ति तथा द्वितीयादिसमयेऽजघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनोऽपि भवन्तीति तथैवाऽतिदेशः । यासु मार्गणासु यासामायुःप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका असंज्ञिनोऽपर्याप्तका वा भवन्ति तास्वेव मार्गणासु यदि देवानामपि प्रवेशः तर्हि तत्र तिर्यग्मनुष्यायुषोरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाऽष्टरज्जुप्रमाणा भवति,अतस्तासु मार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुषोरजघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनाया अष्टरज्जुप्रमाणत्वेऽपि जघन्यप्रदेशबन्धकानामसंज्ञित्वेन लब्ध्यपर्याप्तकत्वेन वा लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणाया एव स्पर्शनाया लाभात्तासु तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनायामपवादं दर्शयन्नाह-"णवरि" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसकायौघ-पर्याप्तत्रसकाय-वचनयोगौघ-व्यवहारवचनयोग-स्त्रीवेद-पुरुषवेद-चक्षुर्दर्शन-संज्ञिमार्गणासु दशसु तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा भवति, उक्तमार्गणास्वायुर्द्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धका यथासंभवं विकलाक्षा असंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्या वा भवन्ति, तेषां च स्पर्शना लोकाऽसंख्यभागप्रमाणैवेति । एतास्वेव दशमार्गणासु देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शना लोकाऽसंख्येयभागप्रमाणा प्राप्यते इति न तत्राऽपवादविषयतेति । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनायाः प्राग्नातिदूरे दर्शितत्वान्न सा पुनः प्रदर्श्यत इति । तदेवं मार्गणास्वायुषां जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धकानां स्पर्शनानिरूपणं समाप्तम् ॥१९४-१९५॥

॥ इति श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे प्रथमाऽधिकारे एकादशं स्पर्शनाद्वारं समाप्तम् ॥

अथ द्वादशं कालद्वारम्

अथोत्कृष्टादिचतुर्विधप्रदेशबन्धकानामनेकजीवानाश्रित्य कालो निरूपणीयः, तत्राऽऽदौ तावद् विंशत्युत्तरशतस्योत्कृष्टाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानामोघत आदेशतश्च तं निरूपयन्नाह

ओहाएसेहि लहू जेट्ठपएसस्स होइ सव्वाणं ।
समयो कालो संखा जाण गुरू ताण संखखणा ॥१९६॥
आवलिआसंखंसो सेसाण णवरि णराउवज्जाणं ।
जाण जहि अट्ठमो च्चिअ भंगो तहि ताण सव्वद्धा ॥१९७॥
ओहाएसेहि पयडिबंधव्व अगुरुदलस्स सव्वेसिं ।
णवरं जाणाऊण ण सव्वद्धा सिं लहू समयो ॥१९८॥
सव्वाण लहू समयो होइ अपज्जणरमीसुवसमेसु ।
समयो लहू अवेए सायस्स गुरू मुहुत्तंतो ॥१९९॥

(प्रे०) "ओह" इत्यादि, अत्राऽऽद्यगाथाद्वयेन ओघे मार्गणासु च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां सापवादं निरन्तरबन्धकालो जघन्यत उत्कृष्टतश्च दर्शितः। उत्तरगाथाद्वयेन ओघे मार्गणासु चाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां सततबन्धस्य कालोऽतिदेशेन साऽपवादं जघन्यत उत्कृष्टतश्च दर्शित इति। तत्र ओघतो विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां जघन्यकालो नानाजीवानधिकृत्याऽपि समयप्रमाण एव भवति, ज्येष्ठप्रदेशबन्धयोग्यजीवानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशतोऽतीवन्यूनासंख्येयत्वात्संख्येयत्वाद्वा ज्येष्ठप्रदेशबन्धका निरन्तरं सर्वदा नैव प्राप्यन्ते, तथा ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वेनैकादयोऽपि जीवा लभ्यन्ते। तस्मादेकजीवमाश्रित्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जघन्यतो यावान्कालः प्राप्यते तावानेवाऽनेकजीवाऽपेक्षयाऽपि तस्य स विज्ञेयः; स च समयप्रमाण इति। एवं यासु मार्गणास्वपि यासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयलोकाकाशप्रदेशेभ्यो न्यूना भवन्ति, तासु मार्गणासु तासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामनेकजीवाऽपेक्षया जघन्यकालः समयो विज्ञेयः। यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणास्तदधिका वा, तासु मार्गणासु तासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः सर्वदा नैरन्तर्येण प्राप्यन्ते, अतो न तत्र जघन्यत उत्कृष्टतश्च कालचिन्तनमिति। ता मार्गणा नामतः पुनरिमाः- सप्तैकेन्द्रियमार्गणा–सप्तसाधारणवनस्पतिकायमार्गणा--सूक्ष्मपृथ्वीकायभेदत्रय--सूक्ष्माऽप्कायभेदत्रय-सूक्ष्मतेजस्कायभेदत्रय -सूक्ष्मवायुकायभेदत्रय--बादराऽपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजोवायुकायमार्गणा–चतुष्का-ऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकाय-वनस्पतिकायौघमार्गणा इति द्वात्रिंशत्, एतासु मनुष्यायु-

वैर्जानां बन्धप्रायोग्यसर्वासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाःसर्वदा प्राप्यन्ते। एताभ्यो यासु मनुष्यायुर्बन्धसंभवः, तासु तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामनेकजीवापेक्षया जघन्यकालः समयो भवति। उक्तशेषास्वष्टात्रिंशदुत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सायुषां सर्वासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां जघन्यकालः समयो विज्ञेयः। तदेवमोघाऽऽदेशाभ्यां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां जघन्यकालः प्रोक्तः।

ओघत उत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां ज्येष्ठबन्धकालः पुनरेवम्—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चक-सातवेदनीय-यशःकीर्तिनामो-च्चैर्गोत्राणां संज्वलनचतुष्क-पुरुषवेदाऽऽहारकद्विक-जिननाम्नां चेति पञ्चविंशतेरुत्कृष्टप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानां पर्याप्तमनुष्यत्वेन संख्येयत्वात्तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य निरन्तरं ज्येष्ठो बन्धकालः संख्येयसमयमितो भवति, न तु तदधिक इति। उक्तशेषाणां पञ्चनवतेः प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयत्वे सत्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशेभ्योऽतीवन्यूनत्वात्तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका आवलिकाऽसंख्यातभागगतसमयप्रमितं कालं यावन्निरन्तरं प्राप्यते।

ओघतो मार्गणासु चोत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां जघन्यप्रदेशबन्धकानां चोत्कृष्टकालस्याऽवबोधार्थमेता व्याप्तयोऽनुसर्तव्याः। (१) यत्र यासां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धाऽर्हा जघन्यप्रदेशबन्धाऽर्हा वा जीवाः संख्याता एव भवन्ति, तत्र च तासामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य चैकजीवाश्रितो बन्धकालः संख्यातसमयाः, अतस्तत्र तयोः प्रदेशबन्धयोर्नानाजीवापेक्षया उत्कृष्टबन्धकालः संख्यातसमयमात्रः। अत एव तत्र तासामुत्कृष्टप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धकाश्च नैरन्तर्येणोत्कृष्टतः संख्यातसमयमितकालं यावल्लभ्यन्ते, तदूर्ध्वं त्ववश्यमेव तद्बन्धकानां सर्वथाऽभावलक्षणमन्तरं भवतीति प्रथमा व्याप्तिः। भावना चैवम्—यथा प्रस्तुत ओघतो मतिज्ञानावरणादीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनः सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकस्था एव, अतस्तेषां संयतत्वेन तद्बन्धकाः संख्याता एव सन्ति, तथोत्कृष्टयोगस्थाने जघन्यतः समयमुत्कृष्टतः समयद्वयमेवाऽवस्थानात् एकजीवाश्रितो ज्येष्ठबन्धकालः समयद्वयप्रमाणः। अतो नानाजीवानाश्रित्य मतिज्ञानावरणादीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठकालः संख्यातसमयमित एव भवति। एवं पर्याप्तमनुष्यादिमार्गणासु मतिज्ञानावरणादीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्यातसमयाः इति प्रथमा व्याप्तिः।

(२) यत्रौघत आदेशतो वा यासां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धका वा जीवा असंख्येयाः सन्तोऽप्यसंख्यलोकाकाशप्रदेशराश्यपेक्षया स्तोकास्सन्ति, अपि चैकजीवमाश्रित्य जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य वा कालः संख्यातसमयप्रमितो भवति, तत्र तयोरुत्कृष्टबन्धकाल आवलिकाऽसंख्येयभागमात्रः, तस्मात् तत्र तासामुत्कृष्टप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धका वा नैरन्तर्येणाऽऽवलिकाया असंख्येयतमभागकालं यावदवाप्यन्ते। तदूर्ध्वं तु नियमात्तद्विरहलक्षणमन्तरं संपद्यत इति द्वितीया व्याप्तिः। यथा ओघे स्त्यानर्द्धित्रिकादीनां ज्येष्ठप्रदेश-

बन्धकाः संज्ञिनः, अत एव तेऽप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशतो न्यूना असंख्येयाश्च, तथैकजीवमाश्रितो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकालश्च द्वौ समयौ, तेन प्रस्तुतद्वितीयव्याप्त्या स्त्यानर्द्धित्रिकादीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितो ज्येष्ठकाल आवलिकाया असंख्येयभागमात्रो विज्ञेय इति ।

(३) यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका जीवा जघन्यप्रदेशबन्धका वा जीवा असंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमिता अनन्ता वा भवन्ति, तासु मार्गणासु तासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धका वा सर्वदा प्राप्यन्ते, अतस्तासां तयोर्नानाजीवाश्रितः कालः सर्वाद्धा भवतीति तृतीयाव्याप्तिः । यथैकेन्द्रियौघादिमार्गणासु मतिज्ञानावरणादीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां सर्वाद्धा कालः प्राप्यत इति । तदेवं ज्येष्ठप्रदेशबन्धविषया जघन्यप्रदेशबन्धविषयाश्च तिस्रो व्याप्तयो दर्शिताः, एतदनुसारेणोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य च वक्ष्यमाणो नानाजीवाश्रितः कालो भावनीयः ।

अथ नरकगत्यादिमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितं ज्येष्ठकालं दर्शयामः । तद्यथा—

पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसकायौघ-पर्याप्तत्रसकाय-मनोयोगसामान्य-तदुत्तरभेदचतुष्क-वचनयोगसामान्य-तदुत्तरभेदचतुष्क-काययोगौघौ-दारिककाययोग-लोभमार्गणा-चक्षुरचक्षुर्दर्शन-भव्य-संज्ञ्या-हारकरूपासु द्वाविंशतिमार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्का-ऽन्तरायपञ्चक-सातवेदनीय-यशःकीर्तिनामो-च्चैर्गोत्राणां संज्वलनचतुष्क-पुरुषवेदा-ऽऽहारकद्विक-जिननाम्ना च पञ्चविंशतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठकालः संख्यातसमया विज्ञेयः, प्रथमव्याप्तेः प्रवेशात् । शेषाणां पञ्चनवतेः प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य निरन्तरं बन्धकाल आवलिकाया असंख्येयभागो द्वितीयव्याप्त्या विज्ञेयः ।

मतिज्ञानश्रुतज्ञाना-ऽवधिज्ञाना-ऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघोपशमसम्यक्त्वरूपासु षट्सु मार्गणासु मतिज्ञानावरणादिपञ्चविंशतेस्तथोपशमसम्यक्त्ववर्जासु पञ्चसु मार्गणासु मनुष्यायुषोऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य निरन्तरबन्धकालः संख्येयसमयप्रमितो विज्ञेयः । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां मतिज्ञानादिपञ्चमार्गणासु त्रिपञ्चाशतः, तथोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां देवायुषो बन्धाऽभावाद् द्विपञ्चाशतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य निरन्तरबन्धकाल आवलिकाया असंख्येयभागप्रमाणो विज्ञेयः ।

क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां मतिज्ञानावरणादिपञ्चविंशतेः प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य देवमनुष्यायुषोश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य निरन्तरो बन्धकालः संख्येयाः समया भवन्ति । नाम्नो देवप्रायोग्याष्टाविंशतिबन्धस्थाने बन्धप्रायोग्याणां यशःकीर्तिनामवर्जानां त्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य सातत्येन बन्धकालो युगलधार्मिकाणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽभावे संख्येयाः समया एव, युगलिकान् विहाय शेषेषु तिर्यक्षु क्षायिकसम्यक्त्वाऽभावेन केवलं पर्याप्तमनुष्याऽपेक्षया तत्प्राप्तेः ।

युगलधार्मिकाणां ज्येष्ठयोगस्थानलाभस्यस्वीकृतौ तूक्तत्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य सातत्येन बन्ध आवलिकाया असंख्येयभागकालं यावत्संभवतीति । शेषाणां निद्राद्विकाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कहास्यषट्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननाऽसातवेदनीयानामष्टादशप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य निरन्तरो बन्धकाल आवलिकाया असंख्येयभागप्रमाणो विज्ञेय इति ।

शुक्ललेश्यामार्गणायां मतिज्ञानावरणादिपञ्चविंशतेर्देवमनुष्यायुषोश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य निरन्तरबन्धकालः संख्येयसमयाः, शेषाणां सप्तसप्ततेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य नानाजीवापेक्षया सातत्येन बन्धकाल आवलिकाया असंख्येयभागप्रमाणो विज्ञेयः ।

मनुष्यौघ--पर्याप्तमनुष्य--मानुषी-सर्वार्थसिद्धदेवभेदा-ऽऽहारका-ऽऽहारकमिश्रा-ऽपगतवेद-मनःपर्यवज्ञान-संयमौघ-सामायिक-च्छेदोपस्थापनीय-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसंपरायरूपासु त्रयोदशमार्गणासु तत्र तत्र बन्धप्रायोग्याणां सायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य निरन्तरो बन्धकालः संख्येयाः समया भवति, तद्बन्धकजीवानां संख्येयत्वात् । भावना तु प्रथमव्याप्त्या कार्येति ।

सप्तैकेन्द्रियसूक्ष्मपृथ्वीकायभेदत्रयसूक्ष्माऽप्कायभेदत्रयसूक्ष्मतेजस्कायभेदत्रयसूक्ष्मवायुकायभेदत्रयबादराऽपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजोवायुकायभेदचतुष्काऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायवनस्पतिकायौघ—सप्तसाधारणवनस्पतिकायरूपासु द्वात्रिंशद्मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां मनुष्यायुर्वर्जानां सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य निरन्तरबन्धकालः सर्वाद्धा भवति, तृतीयव्याप्त्या भावना विधेया । मनुष्यायुषः पुनर्न सर्वासूक्तमार्गणासु बन्धः, अतो यासु तद्बन्धो भवति तासु तेजस्कायवायुकायसत्कभेदाऽष्टकवर्जासु चतुर्विंशतिमार्गणास्वित्यर्थः, मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य नानाजीवानाश्रित्य निरन्तरो बन्धकाल आवलिकाया असंख्येयभागप्रमाणो भवतीति ।

औदारिकमिश्रे दर्शनावरणषट्काऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायहास्यषट्कपुरुषवेददेवद्विकवैक्रियद्विकजिननामसमचतुरस्रसुखगतिसुभगत्रिकाणां पञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य निरन्तरो ज्येष्ठकालः संख्येयाः समया एव भवति, अपर्याप्ताऽवस्थागतानां सम्यग्दर्शी तिर्यग्मनुष्याणामेव यथासंभवं तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वेन भावात्तेषां च संख्येयत्वादिति । शेषाणामेकोनाशीतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां नानाजीवाश्रितो निरन्तरो ज्येष्ठबन्धकाल आवलिकाया असंख्येयभागगतसमयप्रमाणो भवति, द्वितीयव्याप्त्यनुसारेण भावना कार्येति ।

वैक्रियमिश्रदेशविरत्यसंयमकृष्णानीलकापोतलेश्यारूपासु षट्सु मार्गणासु जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितः सातत्येन बन्धकालः संख्यातसमयप्रमाणो भवति, मनुष्याणां यद्वा तेभ्य उद्वृत्तानां भवाद्यान्तर्मुहूर्ते एव तद्भावेन संख्येयजीवानामेव तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽर्हत्वात् ।

शेषाणां मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितो निरन्तरो बन्धकाल आवलिकाया असंख्येयभागप्रमाणो विज्ञेयः ।

कार्मणाऽनाहारकमार्गणयोर्देवद्विकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसुखगतिजिननामसुभगत्रिकरूपाणां दशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां नानाजीवाश्रितो ज्येष्ठकालः संख्यातसमयप्रमितो भवति । शेषाणां द्व्युत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां नानाजीवाश्रितो गुरुकाल आवलिकाया असंख्येयभागप्रमितो भवति । तत्र सम्यग्दृष्टिप्रायोग्यज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां पञ्चविंशतेर्दर्शनावरणषट्कादीनामुक्तकालस्तिर्यग्भ्यो देवेषूत्पद्यमानाऽपेक्षया एव भावनीयः । शेषभावना तु द्वितीयव्याप्त्या कार्येति ।

तेजोलेश्यापद्मलेश्यामार्गणाद्वये संज्वलनचतुष्काऽऽहारकद्विकजिननाम्नां सप्तानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितो ज्येष्ठकालः संख्येयसमयप्रमितो भवति, मनुष्याणामेव तत्स्वामित्वात् । शेषाणां चतुरुत्तरशतस्यैकोत्तरशतस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां नानाजीवाश्रितो निरन्तरो ज्येष्ठकाल आवलिकाया असंख्येयभागो विज्ञेयः ।

पुरुषस्त्रीनपुंसकवेदमार्गणात्रिके क्रोधमानमायाकषायमार्गणात्रिके चेति षट्सु मार्गणासु दर्शनावरणचतुष्कपुरुषवेदसंज्वलनचतुष्काऽऽहारकद्विकजिननामयशःकीर्तिनाम्नां त्रयोदशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितो गुरुकालः संख्येयसमयप्रमाणो भवति, पर्याप्तमनुष्याणामेव तद्बन्धकत्वात् । शेषाणां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टः काल आवलिकाया असंख्येयभागो विज्ञेयः ।

क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां संज्वलनचतुष्काहारकद्विकजिननाम्नां मनुष्यायुषश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्येयाः समयाः शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामेकसप्ततेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य गुरुबन्धकालाऽऽवलिकाया असंख्येयतमभागो भवति ।

शेषासु मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सायुषां सर्वासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां नानाजीवाऽपेक्षया निरन्तरोत्कृष्टबन्धकाल आवलिकाया असंख्येयभागो भवति । भावना तु स्वामित्वं बन्धकपरिमाणं चाऽवधार्य द्वितीयव्याप्त्या कार्येति । शेषाः सप्तसप्ततिमार्गणा नामत इमाः अष्टनरकभेद-पञ्चतिर्यग्भेदाऽपर्याप्तमनुष्यैकोनत्रिंशद्देवभेदनवविकलाक्षाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-पृथ्वीकायौघ-बादरपृथ्वीकायौघ-पर्याप्तबादरपृथ्वीकाया-ऽप्कायौघबादराऽप्कायौघ-पर्याप्तबादराऽप्कायतेजस्कायौघ-बादरतेजस्कायौघ-पर्याप्तबादरतेजःकाय-वायुकायौघ-बादरवायुकायौघ-पर्याप्तबादरवायुकाय-प्रत्येकवनस्पतिकायौघ-पर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकाया--ऽपर्याप्तत्रसकाय--वैक्रियकाययोग-मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञाना-ऽभव्य-मिश्र-सास्वादनसम्यक्त्व-मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञिमार्गणाः ।

शेषमार्गणास्य एकोनत्रिंशद्देवमार्गणासु सप्तमनरकं विहाय शेषसप्तनरकमार्गणासु वैक्रियकाययोगे सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां चेत्यष्टात्रिंशद्मार्गणासु मनुष्यायुषो बन्धकानां संख्येय-

त्वेन तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां संख्येयसमयमितो निरन्तरो ज्येष्ठबन्धकालो भवतीति विशेषः । भावना प्रथमव्याप्त्या कार्येति । तदेवं नानाजीवाश्रितो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जघन्योत्कृष्टभेदेन द्विविधः काल ओघत आदेशतश्च दर्शितः ।

साम्प्रतमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितबन्धकालस्य प्ररूपणा कर्तव्या, सा च मूलकारेण तृतीयचतुर्थगाथाभ्यां दर्शिता । तद्यथा ओघतो मार्गणासु चाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकाल उत्कृष्टकालश्च यावान्प्रकृतिबन्धे दर्शितस्तावान्प्रस्तुतेऽपि विज्ञेयः । एवं सामान्येनाऽतिदिष्टे सति कासुचिद्मार्गणासु प्राप्तामतिप्रसक्तिं निवारणायाऽपवादत्रयं दर्शयति-यत्र यद्-यदायुषो बन्धकालो न सर्वाद्धारूपः, अतस्तत्र काश्चिन्मनोयोगादिमार्गणा विहाय आयुःप्रकृतिबन्धकालो जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव भवति, तत्राऽपि तत्तदायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यबन्धकाल उत्कृष्टप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयो भवतीति प्रथममपवादपदम् ।

तथा सान्तरमार्गणाभ्यो यासु मार्गणाकालो जघन्योऽप्यन्तर्मुहूर्तमेव ततस्तत्र मतिज्ञानावरणादिप्रकृतीनां बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो जघन्यतोऽपि भवति, तास्वेव मार्गणासु तासां मतिज्ञानावरणादीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयमात्रस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य भावात्तास्वपर्याप्तमनुष्यसम्यग्मिथ्यात्वोपशमसम्यक्त्वरूपासु तिसृषु मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयप्रमाणो दर्शितः इति द्वितीयोऽपवादः । यासां प्रकृतिबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तं तासामत्रापवादविषयता, यासां तु समय एव प्रकृतिबन्धकालस्तासां न पुनरपवादविषयतेति ।

अपगतवेदमार्गणायां सातवेदनीयसत्कप्रकृतिबन्धकालस्य सयोगिकेवल्यपेक्षया अनाद्यनन्तत्वेऽपि सकषायप्रदेशबन्धस्य प्रस्तुतेऽधिकृतत्वेन सयोगिकेवलिनोऽप्रवेशात् , शेषाणां चाऽवेदिजीवानामन्तर्मुहूर्तादूर्ध्वमलाभाच्चाऽपगतवेदमार्गणायां सातवेदनीयस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितो जघन्यकालः समयो ज्येष्ठकालश्चान्तर्मुहूर्तप्रमाण एव प्राप्यत इति तृतीयोऽपवादः ।

उक्ताऽपवादत्रयं विहाय शेषसर्वोऽप्यनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्य उत्कृष्टश्च कालः प्रकृतिबन्धकालवद्विज्ञेयः । एवं मूलकारेणोक्तो नानाजीवाश्रितः साऽतिदेशः साऽपवादोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यो उत्कृष्टश्च कालः ।

अथ ओघादेशाभ्यामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य द्विविधं कालं संक्षेपेण निरूपयामः स्वपरस्मृतिहेतवे । तद्यथा—ओघतो देवमनुष्यनरकाऽऽयुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालःसमयः।ज्येष्ठस्तु पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणो भवति । सप्तदशोत्तरशतप्रकृतीनां तत्कालस्तु सर्वाद्धा भवतीति, भावना तु प्रकृतिबन्धवत्कार्या इति । मार्गणासु पुनरेवम्-अत्र सकषायप्रदेशबन्धः सप्तत्युत्तरशतमार्गणाश्चाऽधिकृताः । तत्राऽपर्याप्तमनुष्यवैक्रियमिश्राऽऽहारकाऽऽहारकमिश्राऽपगतवेदच्छेदोपस्थापनीयसंयमपरि-

हारविशुद्धिसंयमसूक्ष्मसंपरायसंयमोपशमसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वसास्वादनसम्यक्त्वमार्गणा इत्येकादश नानाजीवाऽपेक्षयाऽपि सान्तराः। कोऽर्थः ? कदाचिदेतास्वनेके जीवा भवन्ति, कदाचिदेको द्वौ वा, कदाचित्तु नैकोऽपीति नानाजीवाऽपेक्षया तत्र जीवानां सद्भाववत् सर्वथाऽसद्भावोऽपि प्राप्यते, अतो जीवानधिकृत्य सान्तरास्ता मार्गणा विज्ञेयाः। तत्राऽपि गतवेदमार्गणा सकषायजीवापेक्षया एव सान्तराऽन्यथा निरन्तरा भवति। शेषैकोनषष्टयुत्तरशतमार्गणासु सर्वदाऽनेकजीवानां सद्भावात्तासु मार्गणासु जीवा निरन्तरं प्राप्यन्त इति। प्रथमचतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमगुणस्थानेभ्यो निरन्तरमार्गणासु प्रत्येकं येषां येषां गुणस्थानानां सद्भावस्तत्र तेषु तेषु गुणस्थानेषु जीवा निरन्तरं सर्वदा प्राप्यन्ते, अत एतासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां सर्वासां प्रकृतीनां बन्धो नानाजीवैर्निरन्तरं क्रियते. अतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धोऽपि सर्वाद्धा भवति। केवलमौदारिकमिश्रकार्मणाऽनाहारकमार्गणात्रये द्वितीयचतुर्थगुणस्थानयोर्विरहस्य संभवः, तथा उक्तमार्गणात्रये देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां पञ्चानां प्रकृतिबन्धोऽपि चतुर्थगुणस्थानगतानामेव संभवतीति देवद्विकादिपञ्चप्रकृतीनां बन्धोऽपि साऽन्तरः। तत्र

कार्मणाऽनाहारकमार्गणाद्वये नानाजीवाश्रितसम्यग्दृष्टिसत्कमार्गणाजघन्यकालस्य सामयिकत्वाद्देवद्विकादिपञ्चानां जघन्यबन्धकालः समयप्रमाणो भवति, अतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धोऽपि तथैव। तथोक्तप्रकृतीनां बन्धस्य पर्याप्तमनुष्येष्वागच्छतां यद्वा पर्याप्तमनुष्येभ्यश्च्युतानामेव भावात्तेषां बन्धका निरन्तरं संख्येयसमयान् यावदेव प्राप्यन्ते, अतस्तासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानामपि तथैव संख्येयसमया निरन्तरबन्धकालो भवति। शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां सप्तोत्तरशतस्य प्रकृतिबन्धकालो यथा सर्वाद्धा भवति; तथाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालोऽपि।

औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायामेकजीवाश्रितचतुर्थगुणस्थानजघन्यकालस्याऽन्तर्मुहूर्तत्वाद्देवद्विकादिपञ्चानां प्रकृतिबन्धकालो जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति। तथौदारिकमिश्रे करणाऽपर्याप्तसत्कयोगस्य प्रतिसमयमसंख्येयगुणवृद्धिभावेन मार्गणाचरमसमये कस्यचिदेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धः प्राप्यते; अतो देवद्विकादीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धजघन्यकालोऽपि प्रकृतिबन्धकालवदन्तर्मुहूर्तं भवति। ज्येष्ठकालस्तु निरन्तरेण सम्यग्दृष्टिनानाजीवानामेतादृगवस्थागतानां संख्येयानामेव लाभाद् देवद्विकादिप्रकृतिबन्धकानां निरन्तरो बन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव; अतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालोऽपि तथा। शेषाणां सप्तोत्तरशतस्य तु प्रकृतिबन्धकालस्य सर्वाद्धात्वादनुत्कृष्टप्रदेशबन्धोऽपि सार्वकालिको विज्ञेयः।

एवमेकोनषष्टयधिकशतमार्गणास्वायुर्वर्जानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य कालो नानाजीवाश्रितो भणितः।

सान्तरमार्गणास्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां कालनिरूपणं पुनरेवम्–वैक्रियमिश्रकाययोगो नानाजीवाऽपेक्षया जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टतः पल्योपमाऽसंख्येयभागकालं यावदवतिष्ठते । तत्र मार्गणाचरमसमयवर्तिनां शरीरपर्याप्तिनिष्ठापनादर्वाक्समय एव केषाञ्चिज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावान्न कस्या अपि प्रकृतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयमात्रोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धः प्राप्यते, अतो यावान्प्रकृतिबन्धकालस्तावानेवाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः प्राप्यते । प्रकृतिबन्धकालस्तु मार्गणाप्रायोग्याणां ध्रुवबन्धिनीनां सप्तचत्वारिंशतस्तथा ध्रुवबन्धिकल्पानामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकरूपाणां षण्णां जिननाम्नश्चेति चतुष्पञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तं भवति; तथैवाऽऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्याऽप्युक्तचतुष्पञ्चाशत्प्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तप्रमाणो जघन्यकालो विज्ञेयः । शेषाणामष्टचत्वारिंशतोऽध्रुवबन्धित्वात्प्रकृतिबन्धकालः समयः प्राप्यते, तदपेक्षयाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालोऽपि समयो विज्ञेयः । न पुनरन्यप्रकारेणेति । उत्कृष्टकालस्तु जिननाम्नोऽन्तर्मुहूर्तं शेषैकोत्तरशतप्रकृतीनां नानाजीवसत्को निरन्तरोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालः प्रकृतिबन्धवदत्राऽपि पल्योपमस्याऽसंख्येयांशो विज्ञेय इति ।

आहारककाययोगमार्गणायां द्वाषष्टेरपि प्रकृतीनां नानाजीवाश्रितो जघन्यकालः समयो ज्येष्ठबन्धकालस्त्वन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विज्ञेयः । नानाजीवानाश्रित्य मार्गणाया अवस्थानकालस्य तावन्मात्रत्वादनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालोऽपि तावन्मात्रोऽवसेयः । आहारकमिश्रकाययोगे सातवेदनीयादिद्वादशानां जिननाम्नश्चाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यः कालः प्रकृतिबन्धकालवत्प्राप्यते, सातवेदनीयादीनां परावर्तमानबन्धेन जिननाम्नश्च मार्गणाचरमसमये बन्धप्रारम्भेन समयप्रमाणो बन्धकालो विज्ञेयः, शेषाणामेकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां तु प्रकृतिबन्धकालवदनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विज्ञेयः, उत्कृष्टबन्धकालस्तु द्वाषष्टेरपि प्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव, नानाजीवाश्रितमार्गणाया उत्कृष्टाऽवस्थानस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् ।

अपगतवेदमार्गणायामेकविंशतिः प्रकृतयो बन्धप्रायोग्याः, तासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितो जघन्यकालः समयः, उत्कृष्टकालस्त्वन्तर्मुहूर्तं भवति, छद्मस्थजीवाऽपेक्षयाऽपगतवेदमार्गणायाः कायस्थितेस्तावन्मात्रत्वात् ।

छेदोपस्थापनीयमार्गणायां परिहारविशुद्धिमार्गणायां च सातवेदनीयादिद्वादशानामाहारकद्विकजिननाम्नोश्चेति पञ्चदशप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालः स्वयमागमानुसारेण ज्ञातव्यः, भावना तु प्रकृतिबन्धकालवदेव कार्या । शेषैकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रकृतिबन्धकालस्य स्पष्टरूपतया निर्देशेऽपि प्रस्तुते तस्य स्वयमागमानुसारेण विमर्शः कर्तव्यः, यत उक्तप्रकृतीनां ध्रुवबन्धित्वेन तत्कल्पत्वेन वा श्रीपञ्चमाङ्गवृत्तिकाराऽभिप्रायेण जघन्यपदेऽपि विंशतिप्रभृतिजीवानां प्रकृतिबन्धकत्वेन नैरन्तर्येण लाभात् मार्गणाजघन्यकालप्रमाणो प्रकृतिबन्धकालो भवति,

तथाऽपि प्रस्तुते तु यथा प्रकृतिबन्धे सर्वासां युगपत्सातवेदनीयादीनां बन्धस्य संभावनयाऽसात-वेदनीयादीनां बन्धकानां सर्वथाऽभावं संभाव्याऽसातवेदनीयबन्धकालस्य जघन्यतः समयादि-मानस्य संभावनायाः सद्भावात्स्वयमूह्यत्वमुक्तम्, अन्यथा तु जघन्यमार्गणाकालप्रमाण एव कालो वक्तव्यः, तथैवाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धेऽपि मार्गणाप्रान्ते जीवानामत्यल्पप्रमाणानां भावे तेषां सर्वेषां विवक्षितप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य युगपत्संभवेऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य समयादिकालो मार्गणाद्वये नानाजीवाश्रितजघन्यकालत्वेन प्राप्येत, अन्यथा तु नानाजीवाश्रितमार्गणाया यावती जघन्या कायस्थितिस्तावत्प्रमाणोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालो लभ्येत, अतः सातवेदनीय-वदासामपि जघन्यकाल आगमानुसारेण सम्यग्विभावनीयः । उत्कृष्टकालस्तु छेदोपस्थापनीये सर्वासां पञ्चाशल्लक्षकोटीसागरोपमा निरन्तरबन्धकालः प्राप्यते; केवलं जिननाम्नोऽनुत्कृष्टप्रदेश-बन्धस्योत्कृष्टकाल आगमानुसारेण विज्ञेय इति विशेषः, परिहारविशुद्धौ तु देशोनपूर्वकोटिद्वयं सर्वासां प्रस्तुतबन्धकालः । मार्गणाद्वये जीवानामवस्थानस्य तावत्प्रमाणत्वात् , भावना तु प्रकृतिबन्धाऽनुसारेण कार्येति।

सूक्ष्मसंपरायमार्गणायाः सास्वादनमार्गणायाश्च नानाजीवाश्रिताऽवस्थानस्य जघन्यतः समयमात्रत्वादुत्कृष्टतस्सूक्ष्मसंपरायसंयमस्याऽन्तर्मुहूर्तमात्रस्य सास्वादनमार्गणायाः पल्योपमा-ऽसंख्येयांशप्रमाणस्य निरन्तरं लाभात्तयोर्बन्धार्हप्रकृतीनां बन्धकालोऽपि जघन्यतः समय-प्रमाण उत्कृष्टतश्चाऽन्तर्मुहूर्तं पल्योपमस्याऽसंख्येयांशप्रमितश्च यथाक्रमं भवति, भावना तु प्रकृति-बन्धवत्कार्या सुगमा चेति ।

अपर्याप्तमनुष्योपशमसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वरूपमार्गणात्रय एकादिजीवानामपि सद्-भावेन तत्र च मार्गणाप्रायोग्यज्ञानावरणादिध्रुवबन्धिप्रकृतीरधिकृत्य जघन्यबन्धकालस्याऽन्तर्मुहूर्त-प्रमाणत्वेऽपि प्रस्तुते उत्कृष्टप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालो लभ्यते, आयुर्वर्जानां मार्गणाप्रायोग्या-ऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तु प्रकृतिबन्धकालप्रयुक्तो ज्येष्ठप्रदेश-बन्धद्वयान्तरालकालप्रयुक्तश्चाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयप्रमाणो लभ्यते, अत उक्तमार्गणात्रये सर्वासां प्रस्तुतबन्धस्य जघन्यकालस्तु समयप्रमाण इति ।

उत्कृष्टकालस्तु उपशमसम्यक्त्वमार्गणायामाहारकद्विकस्य जिननाम्नश्चाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध-स्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति, तत्र शेषाणां चतुःसप्ततेः, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां सप्तोत्तरशतस्य सर्वासाम् , सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणायां चतुस्सप्ततेरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य पल्योपमाऽसंख्येयतम-भागप्रमाणो ज्येष्ठकालो भवति, मार्गणासु नानाजीवानां तावत्कालमेवोत्कृष्टतोऽवस्थानात् , तदूर्ध्वं तूक्तमार्गणासु नैकोऽपि जीवो लभ्यते, जीवैश्शून्या मार्गणा भवतीति यावत् । तदेवं मार्गणा-स्वायुर्वर्जानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य नानाजीवानधिकृत्य जघन्योत्कृष्टकालौ दर्शितौ । आयुषां

पुनरेवम्—तिर्यग्गत्योघ-सप्तैकेन्द्रियमार्गणा--सूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायसत्कपञ्च-दशमार्गणा-पृथ्व्यप्तेजोवायुकायौघभेदचतुष्क-तद्वादरौघभेदचतुष्क-बादराऽपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजोवायु-कायमार्गणाचतुष्क-वनस्पतिकायौघ-साधारणवनस्पतिकायौघ-बादरसाधारणवनस्पतिकायभेदत्रय-प्रत्येकवनस्पतिकायौघाऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकाय-काययोगौघौ-दारिकौ-दारिकमिश्र-नपुंसकवेद-कषायचतुष्क--मत्यज्ञान—श्रुताज्ञाना--ऽसंयमा—ऽचक्षुर्दर्शन—कृष्णानीलकापोतलेश्या—भव्याभव्य—मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञ्याहारकरूपासु द्वाषष्टिमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुर्ष्यो देवनरकमनुष्यायुषामनुत्कृष्ट-प्रदेशबन्धकानां नानाजीवाश्रितो जघन्यकालः समयप्रमाणो भवति, उत्कृष्टप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयमेकमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य लाभात् । कषायचतुष्कं काययोगमौदारिककाययोगं च विहाय प्रकृतिबन्धकालस्य जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वेनाऽपवादो दर्शितो मूलकारेणेति

काययोग औदारिककाययोगे कषायचतुष्के चोक्तायुस्त्रयस्य प्रकृतिबन्धे समयमात्रो जघन्य-बन्धकालः परावर्तमानशीलानां योगाकषायमार्गणानां चरमसमये आयुर्बन्धं प्रारभ्य द्वितीयसमये मार्गणान्तरगमनेन यद्वाऽऽयुर्बन्धकालचरमसमये प्रस्तुतमार्गणां प्रविश्य द्वितीयसमय आयुर्बन्धवि-रामेन भवति, प्रस्तुते तूक्तप्रकारद्वयेन प्रकृतिबन्धकालप्रयुक्तो ज्येष्ठप्रदेशबन्धद्वयान्तरालप्रयुक्तश्च समयप्रमाणोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालो भवति । उत्कृष्टकालस्तूक्तायुष्कत्रयमध्यात् प्रत्येकं बन्धसम्भवे पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणो विज्ञेयः, प्रकृतिबन्धकालस्याऽपि तावन्मि-तत्वात्, तदूर्ध्वन्तु प्रकृतिबन्धान्तरस्याऽवश्यं प्रवर्तनेनाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्याऽसंभवात् । उक्तद्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यगायुषो बन्धप्रायोग्यत्वम्, अतस्तासु प्रत्येकं तिर्यगायुषः प्रकृतिबन्ध-कालस्य सर्वाद्धाप्रमाणत्वेनाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालोऽपि सर्वाद्धारूपो भवति ।

पर्याप्तमनुष्यमानुषीसर्वार्थसिद्धदेवाऽऽहारकाऽऽहारकमिश्रमनःपर्यवज्ञानसंयमौघसामायिक-च्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिमार्गणासु जीवानां संख्येयत्वेन बन्धप्रायोग्यायुषामनुत्कृष्ट-प्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितो निरन्तरबन्धकालो जघन्यतः समयः, उत्कृष्टतश्चाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति ।

आनतादिसप्तदशदेवमार्गणाशुक्ललेश्याक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणासु प्रस्तुते जीवानामसंख्ये-यत्वेऽप्यायुर्बन्धप्रायोग्यजीवानां संख्येयत्वेन बन्धप्रायोग्यायुषः प्रकृतिबन्धकानां संख्येय-त्वादनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां संख्येयत्वम्, अतः प्रस्तुते नानाजीवाश्रितज्येष्ठबन्धकालोऽप्यन्त-र्मुहूर्तप्रमाण एव भवति, जघन्यकालस्तु समयः ।

मनुष्यौघे देवनरकायुषोरनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य कालो जघन्यतस्समयः, उत्कृष्टतश्चाऽन्त—

मुहूर्तप्रमाणो भवति, तिर्यग्मनुष्यायुषोः पुनर्जघन्यतः समयः, उत्कृष्टतस्तु पल्योपमाऽसंख्येय-भागप्रमाणो बन्धकालो विज्ञेय इति ।

नरकौघाऽऽद्यनरकषट्कदेवौघभवनपत्यादिसहस्रारान्तकादशतदुत्तरभेदवैक्रियकाययोगमार्गणासु मनुष्यायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालो जघन्यतस्समयः, ज्येष्ठोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः । तिर्यगायुषः पुनः प्रस्तुतबन्धकालो जघन्यतः समयः, उत्कृष्टतस्तु पल्योपमाऽसंख्येयभागः ।

मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु षट्सु देवायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालस्समयः, उत्कृष्टकालस्तु पल्योपमस्याऽसंख्येयभागः । मनुष्यायुषस्तु जघन्यकालस्समयः, ज्येष्ठोऽन्तर्मुहूर्तम् ।

तेजोलेश्या-पद्मलेश्या-सास्वादनमार्गणासु मनुष्यायुषोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयः, उत्कृष्टस्त्वन्तर्मुहूर्तम् , देवतिर्यगायुषोर्जघन्यकालस्समयः, ज्येष्ठस्तु पल्योपमाऽसंख्येयभाग इति ।

सप्तमनरकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्भेदचतुष्काऽपर्याप्तमनुष्यनवविकलाक्षत्रिपञ्चेन्द्रियबादरपर्याप्त-पृथ्व्यप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिकायत्रसकायमार्गणात्रिकमनोयोगौघतदुत्तरभेदचतुष्कवचनयोगौघ-तदुत्तरभेदचतुष्कस्त्रीवेदपुरुषवेदविभङ्गज्ञानदेशविरतिचक्षुर्दर्शनसंज्ञिरूपासु द्वाचत्वारिंशद्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालस्समयः, उत्कृष्टप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य लाभात् , उत्कृष्टकालस्तु पल्योपमस्याऽसंख्येयांशमितो भवति, मार्गणासु प्रकृतिबन्धकालस्य तथात्वात् । भावना तु सुगमा । आयुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालस्य भावना प्रकृतिबन्धकालमनुसृत्य कार्या, जघन्यकालस्य भावना तु प्रदेशबन्धस्यैकजीवाश्रितकालद्वारे यथा कृता तथा कार्येति । तदेवं समाप्तं मार्गणास्वायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितजघन्योत्कृष्टकालप्ररूपणम् ॥ १९६-१९९ ।

साम्प्रतमोघत आदेशतश्च बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य नानाजीवानधिकृत्य जघन्यमुत्कृष्टं च कालं निरूपयन्नाह गाथायुगलम्

जाणऽट्ठमो च्च भंगो ओहाएसेहि लहुपएसस्स ।
सिं कालो सव्वद्धा णेयो-ऽण्णेसिं लहू समयो ॥२००॥
जाणऽत्थि वंधगा खलु सखेज्जा ताण होइ उक्कोसो ।
संखियसमयाऽण्णेसिं आवलिआए असंखंसो ॥२०१॥

(प्रे०) "जाणे"त्यादि, ओघतो मार्गणासु च यासां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य केवलोऽष्टम एव भङ्गो भवति, तासां ओघे तत्तद्मार्गणासु च जघन्यप्रदेशबन्धस्य निरन्तरं प्राप्य-

माणत्वात्सर्वाद्धारूपः कालो भवति, सर्वदा तासां जघन्यप्रदेशबन्धकाः प्राप्यन्त इत्यर्थः । यत्र यासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य न केवलं अष्टमभङ्गः, किन्तु त्रयोऽष्टौ वा भङ्गा भवन्ति, तासां जघन्यप्रदेशबन्धकानां कदाचिल्लाभात्कदाचिच्चाऽलाभान्नानाजीवाऽपेक्षयाऽपि जघन्य उत्कृष्टश्चेति द्विविधकालो लभ्यते । तत्र तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालस्समयः, भवप्रथमसमये यद्वाऽजघन्यप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयं जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभात् । यद्वा सर्वयोगस्थानानां जघन्यत समयमात्रावस्थानात् सर्वप्रकृतीनां सर्वप्रदेशबन्धस्थानानां जघन्यत समयमात्रमेवास्थानात् ।

जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः पुनरेवम्—यासां प्रकृतीनामोघत आदेशतो वा जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येया एव लभ्यन्ते न पुनरसंख्येयास्तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्येयाः समया एव, यथौघतो देवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नाम् , एवं मार्गणास्वपि । यत्र पुनर्यासां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयलोकप्रदेशसंख्यातो न्यूनास्सन्तोऽप्यसंख्येयाः प्राप्यन्ते, तत्र तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य निरन्तरकाल आवलिकाऽसंख्यभागप्रमाण एव भवति, यथौघे नरकत्रिकदेवमनुष्यायुषां जघन्यप्रदेशबन्धो निरन्तरमावलिकाऽसंख्यभागकालं यावदेव प्राप्यते ।

तदेवं मूलकारेण करणरूपेणौघेऽऽदेशे च जघन्यप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितजघन्योत्कृष्टकालौ दर्शितौ । तमेव सुखावबोधाय व्यासतो दर्शयामः ।

तद्यथा—ओघत एकेन्द्रियेषु बन्धप्रायोग्याणां मनुष्यायुर्वर्जानामष्टोत्तरशतप्रकृतीनां नानाजीवाश्रितो जघन्यप्रदेशबन्धकालः सर्वाद्धा भवति, शेषाणां द्वादशप्रकृतीनां त्वसावसर्वाद्धेति, जघन्यतस्समयः, उत्कृष्टतस्तु देवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां सप्तानां संख्यातसमयाः, नरकत्रिकदेवमनुष्यायूरूपाणां पञ्चानां पुनरावलिकाया असंख्येयभागप्रमाणो भवति ।

अथ मार्गणासु प्ररूपयामः-तिर्यग्गत्योघादिचतुःषष्टिमार्गणाभ्यस्तेजस्कायवायुकायसत्कद्वादशमार्गणासु चतुरुत्तरशतस्य, शेषासु द्विपञ्चाशद्मार्गणासु सप्तोत्तरशतस्य, द्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यगायुषश्च जघन्यप्रदेशबन्धस्सर्वदा भवति, जीवानामानन्त्यादसंख्येयलोकप्रमाणत्वाद् वा । शेषाभ्यो द्वादशप्रकृतिभ्यो यस्यां मार्गणायां यावत्यः प्रकृतयो बन्धप्रायोग्यास्तस्यां मार्गणायां तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयप्रमाणो भवति । शेषद्वादशप्रकृतीनामुत्कृष्टकालः पुनरेवम्-सप्तैकेन्द्रिय-सप्तसाधारणवनस्पतिकाय-बादरपर्याप्तवर्जषट्पृथ्वीकाय-षड्प्काय-वनस्पतिकायौघ-प्रत्येकवनस्पतिकायौघाऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायरूपास्वेकोनत्रिंशति मार्गणासु केवलं मनुष्यायुषो जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकाल आवलिकाऽसंख्येयभागप्रमाणो भवति । तेजस्कायवायुकायसत्कद्वादशमार्गणासु शेषद्वादशप्रकृतिभ्यो नैकाऽपि प्रकृतिर्बन्धप्रायोग्येति । काययोगौघौदारिककाययोगकषायचतुष्का-ऽचक्षुर्दर्शनभव्याहारकमार्गणासु नवसु देवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टः कालः संख्येयाः समयाः । नरकत्रिकदेवमनुष्यायुषां जघन्यप्रदेश-

बन्धस्योत्कृष्टकाल आवलिकाया असंख्येयभागः । औदारिकमिश्रकार्मणाऽनाहारकमार्गणात्रये देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रित उत्कृष्टकालः संख्येयाः समयाः । औदारिकमिश्रे मनुष्यायुष आवलिकाया असंख्येयभागः । नरकत्रिकदेवायुराहारकद्विकानां षण्णां बन्ध एव न भवति । असंयमकृष्णनीलकापोतलेश्यामार्गणासु देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्यातसमयाः, नरकत्रिकदेवमनुष्यायुष्करूपाणां पञ्चानामावलिकाया असंख्येयभागः, आहारकद्विकस्योक्तमार्गणासु बन्धाऽभावो विज्ञेयः । तिर्यग्गत्योघे देवद्विकवैक्रियद्विकयोः संख्याताः समयाः । नरकत्रिकदेवायुर्मनुष्यायुर्लक्षणानां पञ्चानामावलिकाया असंख्येयभागः । नपुंसकवेद-मत्यज्ञानश्रुताऽज्ञानाऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणासु देवत्रिकनरकत्रिकवैक्रियद्विकमनुष्यायुर्लक्षणानां नवानां जघन्यप्रदेशबन्धस्य नानाजीवाश्रितो निरन्तरकाल आवलिकाया असंख्येयभागप्रमाणो भवति, आहारकद्विकजिननाम्नोस्तु नपुंसकवेदमार्गणायां संख्याताः समयाः, शेषपञ्चमार्गणासु तासां त्रयाणां बन्ध एव न भवति । एवं चतुःषष्टिमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धस्य द्विविधकालो नानाजीवाश्रितो दर्शितः । नरकगत्योघादिशेषषडुत्तरशतमार्गणासु कस्या अपि प्रकृतेः अद्वितीयस्याष्टमभङ्गस्याऽभावात्तासु सर्वासु मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां सायुषां जघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयो भवति, जघन्यप्रदेशबन्धः कदाचिद्भवति कदाचित्तु न, यदा भवति तदाप्येकादिजीवानामपि जघन्यप्रदेशबन्धकतया सद्भावेन यथैकजीवाऽपेक्षया कालद्वारे जघन्यप्रदेशबन्धकानां जघन्यकालो भावितस्तथा प्रस्तुतेऽपि भावनीयः ।

नरकौघादिषडुत्तरशतमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः पुनरेवम् नरकौघेऽऽद्यनरकत्रये च जिननाममनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्यातसमयाः । चतुर्थपञ्चमषष्ठनरकत्रये मनुष्यायुषः संख्यातसमयाः, उक्तमार्गणासप्तके शेषनवनवतेः, सप्तमनरकमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां नवनवतेर्जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकाल आवलिकाया असंख्येयभागः । पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघे पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायां च देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्यातसमयाः । शेषाणां त्रयोदशोत्तरशतस्याऽऽवलिकाया असंख्येयभागः ।

तिरश्चीमार्गणायां सप्तदशोत्तरशतस्याऽऽवलिकाया असंख्येयभागो जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालो भवति । अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसकायनवविकलाक्षबादरपर्याप्तपृथ्व्यप्प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणासु षोडशसु बन्धप्रायोग्याणां नवोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकाल आवलिकाया असंख्येयभागः । बादरपर्याप्ततेजस्कायवायुकायमार्गणयोः पञ्चोत्तरशतस्य बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठकालः आवलिकाया असंख्येयभागः । मनुष्यौघे वैक्रियाऽष्टकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्य

ज्येष्ठकालः संख्यातसमयाः, शेषाणां नवोत्तरशतस्य आवलिकाया असंख्येयभागः। पर्याप्त-मनुष्यमानुषीमार्गणाऽऽनतादिसर्वार्थसिद्धपर्यन्ताऽष्टादशदेवमार्गणाऽऽहारकतन्मिश्राऽपगतवेदमनः-पर्यवज्ञानसंयमौघसामायिकच्छेदोपस्थापनीयपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसंपरायशुक्ललेश्याक्षायिकसम्य-क्त्वरूपास्वेकत्रिंशद्मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्यात-समया विज्ञेयः। अत्र द्वादशमार्गणासु जीवानां संख्येयत्वात्; शेषास्वेकोनविंशतौ जीवानाम-संख्येयत्वेऽपि भवप्रथमसमयवर्तिनामायुर्बन्धकानां वा जीवानां संख्येयत्वात् तास्वपि बन्धप्रायो-ग्याणां जघन्यप्रदेशबन्धः संख्यातसमयान्यावन्निरन्तरं प्राप्यते। देवौघे सौधर्मेशानयोर्वैक्रियकाय-योगे च जिननाम्नो मनुष्यत्रिकस्य च जघन्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठकालः संख्यातसमयाः, शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनां त्वावलिकाया असंख्येयभागः। भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये मनुष्यायुष्कस्य संख्यातसमयाः, शेषाणां द्व्यधिकशतस्य त्वावलिकाया असंख्येयभागः। सनत्कुमारादिसहस्रारान्तदेवेषु जिननाम्नो मनुष्यत्रिकस्य च जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्यातसमयाः, शेषाणां सप्तनवतेरावलिकाया असंख्येयभागः।

द्विपञ्चेन्द्रियद्वित्रसकायपुरुषवेदचक्षुर्दर्शनसंज्ञिमार्गणासु देवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकजिन-नाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठकालः संख्यातसमया भवति, शेषाणां त्रयोदशोत्तरशतस्य त्वावलि-काया असंख्येयभागः। मनोयोगौघे तदुत्तरभेदचतुष्के सत्यवचनयोगाऽसत्यवचनयोगसत्यासत्य-वचनयोगत्रये चेत्यष्टमार्गणासु देवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकतैजसकार्मणशरीरमनुष्यद्विकजिन-नाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्यातसमयाः, शेषाणां नवोत्तरशतस्य त्वावलिकाया असंख्येयभागः। वचनयोगौघे व्यवहारवचनयोगे स्त्रीवेदे चाऽऽहारकद्विकजिननाम्नोः संख्यात-समयाः, शेषाणां सप्तदशोत्तरशतस्य त्वावलिकाया असंख्येयभागः। वैक्रियमिश्रे जिननाम्नो मनुष्यद्विकस्य च संख्यातसमयाः, शेषाणां नवनवतेरावलिकाया असंख्येयभागः।

मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु षट्सु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां नामप्रकृतीनामेकोनचत्वारिंशत्संख्याकानां मनुष्यायुषश्च जघन्यप्रदेश-बन्धस्य निरन्तरकालः संख्यातसमया भवति, शेषाणां सप्तकर्मसत्कबन्धप्रायोग्याणामेकोनचत्वा-रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धोऽऽवलिकाया असंख्येयभागं यावद्भवति। विभङ्गज्ञानमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां सप्तदशोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्ध आवलिकाया असंख्येयभागं याव-न्निरन्तरं नानाजीवैः क्रियते। देशविरतमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां सर्वनामप्रकृतीनां द्वात्रिंशद्रूपाणां जघन्यप्रदेशबन्धज्येष्ठकालः संख्यातसमयाः, शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां पञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्ध आवलिकाया असंख्येयभागं यावद्भवति, देशविरततिरश्चामसंख्येयत्वात्तेषामपि नामवर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धनिर्वर्तकत्वाच्च।

तेजोलेश्यापद्मलेश्याद्वये देवद्विकवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकमनुष्यत्रिकाजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धः संख्यातसमयान् यावदेव भवति, शेषाणां क्रमादेकोत्तरशतस्याष्टनवतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धोऽऽवलिकाया असंख्येयभागं यावद्भवति । उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां सप्तसप्ततेर्जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां संख्येयत्वात्तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य निरन्तरो ज्येष्ठकालोऽपि संख्यातसमयप्रमाण एव भवति । सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणायां तु चतुःसप्ततेर्बन्धः, तासां सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धका निरन्तरमावलिकाया असंख्येयभागकालं यावत्प्राप्यन्ते । सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां मनुष्यायुषो जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्यातसमयाः, शेषशतप्रकृतीनां पुनरावलिकाया असंख्येयभागः । इति शेषषड्त्तरशतमार्गणास्वपि जघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः । तदेवं नानाजीवसत्कजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्य उत्कृष्टश्च कालः बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्ररूपितः ॥२००–२०१॥

अथ नानाजीवानधिकृत्याऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यमुत्कृष्टं च कालं साऽपवादमतिदेशेन निरूपयन्नाह

ओहाएसेहि भवे अणुराएम०व सव्वपयडीणं ।
अलहुपएस स दुहा कालो णवरं अपज्जणरे ॥२०२॥
धुवबंधिउरालाणं लहुकायठिई लहू उवसमे उ ।
अट्ठकसायणरउरलदुगवइराणं मुहुत्तंतो ॥२०३॥
णो सव्वद्धा कालो जाणाऊणिह पडुच्च इगजीवं ।
जइ होइ मुहुत्तंतो लहू इह वि सिं मुहुत्तंतो ॥२०४॥

(प्रे०) "ओहाएसेहि" इत्यादि, ओघत आदेशतश्च बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनामजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकाल उत्कृष्टकालश्च वक्ष्यमाणाऽपवादपदानि विहायाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालवद्विज्ञेयः, नानाजीवानधिकृत्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धवदजघन्यप्रदेशबन्धस्य सर्वाद्धादिना तुल्यप्रायस्त्वात् । एवं देशोनगाथयाऽतिदिश्य साधिकगाथाद्वयेनाऽपवादपदानि दर्शयति–'णवर' मित्यादि, तत्र सपादगाथया मार्गणाद्वये आयुर्वर्जकर्मविषयकापवादद्वयम् । शेषास्वष्टषष्ट्यधिकशतमार्गणास्वायुर्वर्जानामजघन्यप्रदेशबन्धकालस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालतुल्यत्वमेव अतो न कश्चिदपवादः । मार्गणाद्वयेऽपवादद्वयं पुनरेवम्-अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनीनामौदारिकशरीरनाम्नश्चाजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयोनस्वजघन्यकायस्थितिः=समयन्यूनक्षुल्लकभवप्रमाणो भवति, यथाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालो ज्येष्ठप्रदेशबन्धद्वया-

न्तराले समयमितो लभ्यते, न तथाऽजघन्यप्रदेशबन्धकालोऽपि प्राप्तुं शक्यः, यतो मार्गणाप्रथमसमय एव जघन्यप्रदेशबन्धाऽर्हत्वम्, तेन जघन्यप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयमात्रस्याजघन्यप्रदेशबन्धस्य न सद्भावः, शेषाणामेकोनषष्टेः प्रकृतीनां त्वतिदेशानुसारेण समयोऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालो भवति; भावना तु प्रकृतिबन्धकालप्रयुक्ता कार्या, न पुनर्विरुद्धप्रदेशबन्धद्वयान्तरालापेक्षया। उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां कषायाष्टकस्य मनुष्यपञ्चकस्य चानुत्कृष्टप्रदेशबन्धजघन्यकालस्य समयमात्रत्वेऽप्यजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति चतसृषु गतिषु प्रत्येकं चतुर्थगुणस्थानस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति, देशविरतेर्जघन्यकालोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, तथा श्रेणिसत्कोपशमसम्यक्त्वावस्थायां कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नस्य तत्रान्तर्मुहूर्तं यावदुपशमसम्यक्त्वं नियमतः प्रवर्तते; श्रेणिसत्कोपशमसम्यक्त्वं विहायोपशमसम्यक्त्वे जीवाः कालमेव न कुर्वन्ति, अतः कषायाष्टकस्य निरन्तरबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तं भवति, तस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य देवभवप्रथमसमय एव भावेन देवभवतः पूर्वभवे तस्य बन्धे सत्यन्तर्मुहूर्तं यावदवश्यं तद्बन्धः प्रवर्तते, तत्र चाजघन्यप्रदेशबन्ध एव, देवभवप्रथमसमयादूर्ध्वमप्यवश्यं प्रस्तुतमार्गणायां तद्बन्धोऽन्तर्मुहूर्तं यावत् प्रवर्तते, तत्राप्यजघन्यप्रदेशबन्ध इति अजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण इति। मनुष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचरूपाणां पञ्चानां प्रस्तुतमार्गणासु मनुष्याणां तद्बन्ध एव न भवति; देवानां तु भवप्रथमसमये एव जघन्यप्रदेशबन्धसंभवे सति शेषमार्गणाकालं यावदजघन्यप्रदेशबन्ध एव भवतीति मनुष्यपञ्चकस्याजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तमेवेति। एकजीवसत्ककालप्ररूपणायां निरुक्तत्रयोदशानामजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तं दर्शित इति। शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां चतुःषष्टिप्रकृतीनां अजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयप्रमाणो भवति; तत्र देवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकानां श्रेणितोऽवरोहन् समयमात्रं तेषां बन्धं विधाय दिवं गतस्य तद्बन्धस्योपरमात् प्रकृतिबन्धकालप्रयुक्तः प्रस्तुतकालः प्राप्यते। यद्वा एतेषां जघन्यप्रदेशबन्धस्य परावर्तमानयोगेन निर्वर्तनात् जघन्यप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयप्रमाणोऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः प्राप्यते। सातादिद्वादशानां परावर्तमानेन प्रकृतिबन्धकालस्य समयप्रमाणत्वात् प्रस्तुतकालोऽपि समयः प्राप्यते। शेषाणां मतिज्ञानावरणादीनां षट्चत्वारिंशतः प्रकृतीनां श्रेणितोऽवरोहन् समयमेकमजघन्यप्रदेशबन्धं कृत्वा निधनं प्राप्य देवेषूत्पद्य जघन्यप्रदेशबन्धं यः करोति तस्यैव अजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयो भवति। एकजीवसत्काजघन्यप्रदेशबन्धजघन्यकालानुसारी प्रस्तुते कालो भवतीत्यवधार्यमिति। शेषाष्टषष्ट्युत्तरशतमार्गणास्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धसत्कद्विविधकालस्याऽऽसन्ने एव दर्शितत्वादजघन्यप्रदेशबन्धस्य च तत्समानप्रायस्त्वान्न भूयस्तं भावयाम इति। यन्त्ररूपेण पुनः कालं दर्शयामः, तद्यथा

मार्गणा	प्रकृतयः	अनेकजीवानधिकृत्य अजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः	ज्येष्ठकालः
१५६ ध्रुवमार्गणासु	आयुर्वर्जसर्वासाम्	सर्वाद्धा	सर्वाद्धा
कार्मणाऽनाहारकयोः	देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नाम्	समयः	संख्यातसमयाः
	शेषसप्तोत्तरशतप्रकृतीनाम्	सर्वाद्धा	सर्वाद्धा
औदारिकमिश्रे	देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नाम्	अन्तर्मुहूर्तम्	अन्तर्मुहूर्तम्
	शेषसप्तोत्तरशतप्रकृतीनाम्	सर्वाद्धा	सर्वाद्धा
अपर्याप्तमनुष्ये	सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकनाम्नश्च	अन्तर्मुहूर्तम्	पल्योपमस्याऽसंख्यांशः
	शेषाणामेकोनषष्टेः	समयः	”
वैक्रियमिश्रे	सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकनाम्नां	अन्तर्मुहूर्तम्	”
	जिननाम्नः	”	अन्तर्मुहूर्तम्
	उक्तशेषाणामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनाम्	समय	पल्योपमस्याऽसंख्यांशः
आहारककाययोगे	बन्धप्रायोग्यसर्वासां द्वाषष्टेः	समय.	अन्तर्मुहूर्तम्
आहारकमिश्रयोगे	सातादिद्वादशजिननाम्नाम्	”	”
	शेषैकोनपञ्चाशतः	अन्तर्मुहूर्तम्	”
अपगतवेदे	एकविंशतेः	समयः	”
सूक्ष्मसंपरायसंयमे	सप्तदशानाम्	”	”
सम्यग्मिथ्यात्वे	चतुस्सप्ततेः	”	पल्योपमस्याऽसंख्यांशः
सास्वादने	अष्टनवतेः	”	”
छेदोपस्थापनीयसंयमे	सातवेदनीयादिद्वादशाऽऽहारकद्विकजिननाम्नाम्	स्वयमूह्यः	पञ्चाशल्लक्षकोटिसागरोपमाः
	शेषैकोनपञ्चाशत	सार्धद्विशतवर्षप्रमाणः	”
परिहारविशुद्धिसंयमे	सातवेदनीयादिपञ्चदशानाम्	स्वयमूह्य	देशोनपूर्वकोटिद्वयम्
	शेषैकोनपञ्चाशत.	वर्षाणां विंशतिपृथक्त्वम्	”
उपशमसम्यक्त्वे	कषायाष्टकस्य	अन्तर्मुहूर्तम्	पल्योपमस्याऽसंख्येयभाग
	मनुष्यपञ्चकस्य च	”	”
	शेषाणां चतुःषष्टेः	समयः	” परं जिननाम्नोऽन्तर्मुहूर्तं

अथ मार्गणास्वाऽऽयुषामजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्य उत्कृष्टश्च कालो नानाजीवानधिकृत्य प्रदर्शयामः, तद्यथा-अतिदेशानुसारेण द्वाषष्टितिर्यग्गोघादिमार्गणासु तिर्यगायुषोऽजघन्यप्रदेशबन्धः सर्वाद्धा भवति, यतो द्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यगायुष एव जघन्याऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य केवलोऽष्टम एव भङ्गो भवति ।

एवमतिदेशानुसारेण देवनरकायुषोर्बन्धप्रायोग्यसर्वमार्गणासु तयोरजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयो विज्ञेयः, जघन्यप्रदेशबन्धद्वयान्तरालेऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभात् । यासु मार्गणासु मनुष्यायुषो बन्धः केवलं पर्याप्ताऽवस्थायामेव भवति, तासु मार्गणासु मनुष्यायुषोऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालो जघन्यप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयप्रमाणो भवति; स चाऽतिदेशानुसारेणानुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालवत्प्राप्यते । एवं तिर्यग्गोघादिद्वाषष्टिमार्गणा विहाय यासु मार्गणासु केवलं पर्याप्ताऽवस्थायां तिर्यगायुषो बन्धो भवति, तासु मार्गणासु तिर्यगायुषोऽतिदेशानुसारेणाऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयप्रमाणो जघन्यप्रदेशबन्धद्वयान्तरालप्रयुक्तो भवति । ता मार्गणा नामत इमाः नरकौघाऽऽद्यषड्नरकदेवौघभवनपत्यादिसहस्रारान्तदेवपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्तिरश्चीपर्याप्तमनुष्यमानुषीपर्याप्तद्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियमार्गणाबादरपर्याप्तपृथ्वीकायाऽप्कायप्रत्येकवनस्पतिकायपर्याप्तत्रसकायमनोयोगौघतदुत्तरभेदचतुष्कवचनयोगौघतदुत्तरभेदचतुष्कवैक्रियकाययोगस्त्रीपुरुषवेदविभङ्गज्ञानचक्षुर्दर्शनतेजःपद्मलेश्यासास्वादनसम्यक्त्वमार्गणाः, तासु तिर्यग्मनुष्यायुषोः, सप्तमनरकमार्गणायां बादरपर्याप्ततेजस्कायवायुकायमार्गणयोश्च तिर्यगायुषः, आनताद्यष्टादशदेवमार्गणामतिश्रुताऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनशुक्ललेश्यासम्यक्त्वौघक्षयोपशमसम्यक्त्वक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणासु तथा पर्याप्तसूक्ष्मबादरैकेन्द्रियपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायाऽप्कायसूक्ष्मनबादरपर्याप्तसाधारणवनस्पतिकायमार्गणाषट्के औदारिककाययोगे चेति त्रयस्त्रिंशद्मार्गणासु मनुष्यायुषोऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयप्रमाणोऽतिदेशानुसारेण प्राप्यत इति ।

काययोगौघे कषायमार्गणाचतुष्के च मनुष्यायुषोऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयप्रमाणो भवति; स च जघन्यप्रदेशबन्धद्वयान्तरालप्रयुक्तो न प्राप्यते, किन्तु योगानां कषायाणां च परावर्तमानत्वेनाऽऽयुषः प्रकृतिबन्धकालोऽपि समयप्रमाणो लभ्यत इति ।

अथ यासु मार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धो लब्ध्यपर्याप्तकस्याऽऽयुर्बन्धप्रथमसमये भवति, तासु तयोः प्रकृतिबन्धकालप्रयुक्तप्रस्तुतकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति, आयुर्बन्धकालस्य तु जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वाज्जघन्यप्रदेशबन्धद्वयान्तरालस्य समयप्रमाणत्वेनाऽलाभाच्च ।

अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकालस्तूत्कृष्टप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयप्रमाणो लभ्यते, अतस्तासु मार्गणासु तयोरायुषोरपवादपूर्वकं करणरूपेण कालं दर्शयति-'णो सव्वद्धा' इत्यादि, (१) तिर्यगायुष एव कासुचिन्मार्गणासु केवलमष्टमभङ्गस्य संभवात् यासु बन्धप्रायोग्यायुषः अष्टमभङ्गस्य संभवेऽपि तदतिरिक्तानामपि सम्भवः, अत एव तासु मार्गणासु न तस्य सर्वाद्धा कालः, (२) तथा यस्य यस्याऽऽयुष एकजीवमाश्रित्याऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो दर्शितः तासु मार्गणासूक्तनियमद्वययुक्तस्य तत्तदायुषोऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकाल एकजीवविषयककालवदन्तर्मुहूर्तप्रमाणो विज्ञेयः। अत्र प्रथमनियमेन नानाजीवाऽपेक्षया यद्यदायुर्बन्धस्य यत्र यत्र सान्तरत्वं तत्रैकादिजीवानामपि आयुर्बन्धकतया भावात्तदपेक्षया प्रस्तुते जघन्यकालोऽन्वेषणीयः, स चाऽतिदेशानुसारेणाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धे सर्वत्र समयप्रमाण एव प्राप्यते, अतः पुनरपि विशेषितः, उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्याऽऽयुर्बन्धकेषु सर्वत्र परावर्तमानयोगिन एव भावेनोत्कृष्टयोगस्थानद्वयान्तराले समयमात्रमनुत्कृष्टयोगस्थानस्याऽपि संभवादायुर्बन्धकालस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वेऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयप्रमाणोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यकाल एकजीवाऽपेक्षया सर्वमार्गणासु भवति। जघन्यप्रदेशबन्धः पुनर्द्विविधः, आयुर्बन्धाद्धायाः प्रथमसमयभाव्येव जघन्यप्रदेशबन्धः, आयुर्बन्धाद्धाया अन्यतमसमयसंभवज्जघन्यप्रदेशबन्धश्च। तत्र यासु मार्गणासु यद्यदायुषो बन्धो लब्ध्यपर्याप्तानां भवति, तासु तत्तदायुषो जघन्यप्रदेशबन्धस्य तेषामेवाऽऽयुर्बन्धप्रथमसमय एव भावात्तासु तत्तदायुषोऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकाल एकजीवाश्रितोऽन्तर्मुहूर्तमेव, अत एव तासु मार्गणासु तत्तदायुषोऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकाल एकजीवाश्रितजघन्यकालवदन्तर्मुहूर्तं दर्शितः। यासु मार्गणासु लब्ध्यपर्याप्तानामप्रवेशः, यद्वा तेषां प्रवेशेऽपि यद्यदायुषस्तेषां बन्धायोग्यत्वं तासु मार्गणासु तत्तदायुषो जघन्यप्रदेशबन्धस्य परावर्तमानयोगेनैव भावाज्जघन्यप्रदेशबन्धद्वयान्तराले समयमात्रस्याजघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभादनुत्कृष्टप्रदेशबन्धवदतिदेशतो न विशेषः। अत्र देवनरकायुषोः पर्याप्ताऽवस्थायामेव सर्वत्र बन्धभावान्न तयोरपवादविषयता, आहारकमिश्रे पुनरपवादविषयताया अभावस्तु तत्रायुर्बन्धकालस्यापि समयप्रमाणत्वादिति।

उक्ताऽपवादतो यासु मार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुर्भ्यां यद्यदायुषोऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणस्तासु तं दर्शयामः—तिर्यगोघमार्गणैकेन्द्रियौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघबादरैकेन्द्रियौघाऽपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणा। एवं पृथ्वीकायसत्कपञ्चभेदाऽप्कायसत्कपञ्चभेदसाधारणवनस्पतिकायसत्कपञ्चभेदवनस्पतिकायौघप्रत्येकवनस्पतिकायौघाऽपर्याप्तप्रत्येक—वनस्पतिकायमार्गणा औदारिकमिश्रनपुंसकवेदमत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽसंयमाऽचक्षुर्दर्शनकृष्णलेश्यानीललेश्याकापोतलेश्याभव्याभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञ्याहारकमार्गणास्वष्टात्रिंशति केवलं मनुष्या-

युषोऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति । भावना त्वेकजीवाश्रितकालवत्कार्या । तिर्यगायुषस्त्वजघन्यप्रदेशबन्धः सर्वाद्धा भवति इति न तत्राऽपवादविषयता । -पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यौघाऽपर्याप्तमनुष्यद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिय--पञ्चेन्द्रियौघतदपर्याप्तभेदत्रयत्रसकायौघाऽपर्याप्तत्रसकायसंज्ञिमार्गणासु पञ्चदशसु तिर्यग्मनुष्यायुषोर्नानाजीवानाश्रित्याऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति । भावना त्वेकजीवाश्रितकालवत्कार्या । एवं त्रिपञ्चाशन्मार्गणास्वायुषोरजघन्यप्रदेशबन्धजघन्यकालस्याऽपवादः, शेषदशोत्तरशतमार्गणास्वायुषामजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालोऽतिदेशानुसारेण सर्वाद्धा समयो वा प्राप्यत इति । मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुषामजघन्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धज्येष्ठकालवद्भवति, स चाऽऽसन्न एव दर्शित इति तत एवाऽववार्य इति ॥२०२-२०४॥

तदेवं समाप्तो मार्गणास्वायुषां नानाजीवाश्रितो जघन्याऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्योत्कृष्टकालः । तत्समाप्तौ च गतमोघाऽऽदेशाभ्यां सर्वासां जघन्याऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्योत्कृष्टकालप्ररूपणम् । तत्समाप्तौ च समाप्तं त्रयोदशं कालद्वारम् ।

श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे प्रथमाधिकारे त्रयोदशं नानाजीवाश्रितं कालद्वारं समाप्तम् ।



॥ अथ चतुर्दशमन्तरद्वारम् ॥

अथौघत आदेशतश्च बन्धप्रायोग्याणां कर्मणां ज्येष्ठादिचतुर्विधप्रदेशबन्धस्य नानाजीवानाश्रित्याऽन्तरस्य निरूपणाऽवसरः, तत्राऽऽदौ तावदोघत आदेशतश्चोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य तदाह–

समयो अत्थि जहण्णं जेट्ठपएसस्स सव्वपयडीणं ।
उक्कोसं सेढीए असंखभागो मुणेयव्वो ॥२०५॥
सव्वत्थेमेव णवरि णराउवज्जाण जहि दुतीसाए ।
सव्वद्धा खलु कालो जाण तहि सिमंतरं णत्थि ॥२०६॥

(प्रे०) "समयो" इत्यादि, ओघतो विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जघन्याऽन्तरं नानाजीवानधिकृत्याऽपि समयो भवति, ज्येष्ठप्रदेशबन्धयोग्यजीवानामसंख्येयलोकप्रमाणतोऽल्पत्वेन तद्बन्धस्य सार्वकालिकत्वाऽभावेन चाऽन्तरस्य सद्भावात् । एवं यास्वष्टात्रिंशदुत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयलोकाकाशप्रदेशतो न्यूनप्रमाणा भवन्ति, अतस्तासु तासां सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जघन्यान्तरं समयः । यासु मार्गणासु पुनर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धयोग्यजीवा असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा अनन्ता वा तासु द्वात्रिंशन्मार्गणासु मनुष्यायुर्वर्जानामष्टोत्तरशतप्रकृतिभ्यो बन्धप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां सर्वदैव प्राप्यमाणत्वेन तासु तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं नाऽस्ति । एतासु मनुष्यायुषो बन्धसंभवे तद्बन्धप्रायोग्यजीवानामधिकृत्वेऽपि मनुष्यायुर्वेदकजीवानां श्रेण्यसंख्यभागप्रमाणत्वेन तद्बन्धकजीवानामपि ततोऽधिकानामसंभवेन तत्प्रकृतिबन्धाऽन्तरस्य सद्भावात् प्रस्तुतेऽन्तरं प्राप्यते, तच्चौघवज्जघन्यतः समयप्रमाणमिति । द्वात्रिंशद्मार्गणाः पुनरेता नामतः–एकेन्द्रियसत्काः सप्तमार्गणाः, सप्तसाधारणवनस्पतिकायमार्गणाः, सूक्ष्मपृथ्वीकायाप्कायतेजस्कायवायुकायसत्कद्वादशमार्गणाः, बादराऽपर्याप्तपृथ्वीकायाऽप्कायतेजस्कायवायुकायप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणाः, वनस्पतिकायौघमार्गणा चेति ।

उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टाऽन्तरकालस्त्वोघतो विंशत्युत्तरशतस्य श्रेण्यसंख्यभागप्रमाणो भवति, ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य सान्तरत्वे सति तद्बन्धकजीवानां श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणयोगस्थानानां प्रायोग्यत्वसद्भावेन ज्येष्ठयोगस्थानस्य श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणमन्तरं प्राप्यते, अतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽप्यन्तरं तथैव प्राप्यत इति । एवमेव मार्गणास्वपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यान्तरसम्भवे ज्येष्ठान्तरं श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणं विज्ञेयम् । नानाजीवैरपि ज्येष्ठयोगस्थानप्राप्तेः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणान्तरस्य लाभात् । केवलमुक्तद्वात्रिंशद्मार्गणासु मनुष्यायुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्याणां सर्वप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकालस्य सर्वाद्धेति अन्तराभावः ॥२०५-२०६॥

अथाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यमुत्कृष्टं चान्तरमोघत आदेशतश्च निरूपयन्नाह

ओहाएसेहिं पयडिबंधव्वंतरमणुरुपएसस्स ।
सव्वाण परमवेए सायस्स खणो लहुं छ मासा-ऽण्णं ॥२०७॥(गीतिः)

(प्रे०) "ओहाएसेहिं" इत्यादि, ओघतो विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनामादेशतश्च तत्तन्मार्गणासु बन्धप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यमुत्कृष्टं चाऽन्तरं प्रकृतिबन्धे नानाजीवविषयकान्तरद्वारे यावद्दर्शितं तावदेव प्रस्तुतेऽपि द्रष्टव्यम् , यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां तत्र प्रकृतिबन्धेऽन्तरस्य प्रतिषेधस्तासु तासां प्रस्तुतेऽपि तथैवेति सर्वमप्यनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं प्रकृतिबन्धाऽन्तरवदतिदिष्टम् । केवलं गतवेदमार्गणायां प्रकृतिबन्धकेषु सयोगिकेवल्यपेक्षया सातवेदनीयबन्धका ध्रुवा लभ्यन्ते, अतस्तत्र प्रकृतिबन्धे सातवेदनीयस्य सदैव बन्धलाभादन्तरं नास्ति, शेषप्रकृतीनां विंशतेस्तत्राऽपि क्षपकाऽपेक्षया जघन्यतः समय उत्कृष्टतश्च षण्मासा अन्तरं भवति, क्षपकश्रेण्यन्तरस्य तावन्मात्रत्वादुपशमश्रेण्यन्तरस्य तु ततोऽप्यधिकत्वाद् वर्षपृथक्त्वमितत्वादित्यर्थः । प्रस्तुते तु सयोगिकेवलिनां प्रवेशाऽभावाद्यथा तत्र ज्ञानावरणादिबन्धस्यान्तरं प्राप्यते, तथैव प्रस्तुते सातवेदनीयस्याप्यनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यमुत्कृष्टं चान्तरं विज्ञेयम् । तच्च जघन्यतो समयः, उत्कृष्टतस्तु षण्मासाः । इममेकमपवादं विहाय शेषं सर्वं प्रस्तुताऽन्तरं प्रकृतिबन्धाऽन्तरवदेव प्राप्यत इति । एतदेव संक्षेपतः स्थानाशून्यार्थं दर्शयामः, तद्यथा

ओघत आयुर्वर्जानां षोडशोत्तरशतप्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां सदैव लाभादन्तरं नाऽस्ति । मार्गणास्वपि नरकौघादिषट्पञ्चाशदुत्तरशतध्रुवमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां सर्वासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्यान्तरं नाऽस्ति । औदारिकमिश्रकार्मणाऽनाहारकमार्गणात्रये देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यमन्तरं समयः, उत्कृष्टाऽन्तरं तु मासपृथक्त्वम् , जिननाम्नोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्यान्तरं समयः, गुर्वन्तरं तु वर्षपृथक्त्वम् । अत्र पृथक्त्वशब्दो बहुत्ववाची ज्ञेयः, शेषाणामायुर्वर्जानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानामन्तरं नास्ति । सान्तरैकादशमार्गणास्वेवमन्तरप्ररूपणा—अपर्याप्तमनुष्यसम्यग्मिथ्यात्वसास्वादनमार्गणात्रये बन्धप्रायोग्याणां सर्वासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं जघन्यतः समयः, उत्कृष्टतः पल्योपमस्याऽसंख्येयभागप्रमाणम् । वैक्रियमिश्रे एकेन्द्रियस्थावराऽऽतपनाम्नां बन्धाऽन्तरं चतुर्विंशतिमुहूर्तप्रमाणं ज्येष्ठान्तरम् , ह्रस्वाऽन्तरं तु समयमेकं विज्ञेयम् । जिननाम्नो बन्धस्य जघन्याऽन्तरं समयप्रमाणमुत्कृष्टं तु वर्षपृथक्त्वम् । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामष्टनवतेर्जघन्याऽन्तरं समयप्रमाणं ज्येष्ठान्तरं तु द्वादशमुहूर्तप्रमाणं भवति । मार्गणान्तरस्य तावत्प्रमाणत्वात् । आहारके तन्मिश्रे च बन्धप्रायोग्याणां द्वाषष्टेः प्रस्तुतान्तरं जघन्यतः समयप्रमाणम् , ज्येष्ठाऽन्तरं श्रीजीवसमासाऽभिप्रायेण वर्षपृथक्त्वं विज्ञेयम् , श्रीप्रज्ञापनासूत्रानुसारेण तु तद् षण्मासा बोध्यम् , तत्तन्मते नानाजीवापेक्षया मार्गणान्तरस्य ताव-

न्मितत्वात् । अपगतवेदमार्गणायामेकविंशतेस्तथा सूक्ष्मसंपरायमार्गणायां सप्तदशानां बन्धस्य जघन्याऽन्तरं समयः उत्कृष्टान्तरं तु षण्मासप्रमाणं वक्तव्यम् । छेदोपस्थापनीयसंयमे तथा परिहारविशुद्धिमार्गणायां सातवेदनीयादिद्वादशाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां पञ्चदशानां बन्धस्य नानाजीवानाश्रित्य जघन्यान्तरं स्वयमागमानुसारेण बहुश्रुतगुरुसकाशाद्विज्ञेयम् । शेषाणामेकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यान्तरं छेदोपस्थापनीयसंयमे त्रिषष्टिवर्षसहस्राणि परिहारविशुद्धिसंयमे चतुरशीतिवर्षसहस्राणि द्रष्टव्यम् । मार्गणाद्वय उत्कृष्टान्तरं तु चतुष्षष्टेरपि प्रकृतीनां बन्धस्याऽष्टादशसागरोपमकोटिकोटिप्रमाणं विज्ञेयम् । उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां जिननाम्न आहारकद्विकस्य च बन्धस्य जघन्यान्तरं समयः, उत्कृष्टान्तरं तु वर्षपृथक्त्वमिति । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां चतुःसप्ततेर्बन्धस्य जघन्यान्तरं समयः, उत्कृष्टान्तरं सप्त दिनानि वर्तते, कषायप्राभृतचूर्ण्यभिप्रायेण पुनश्चतुर्विंशतिदिनानीति ।

आयुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य नानाजीवानाश्रित्याऽन्तरं पुनरेवम् ओघतस्तिर्यगायुषो नाऽस्त्यन्तरम्, शेषाणां त्रयाणामायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य जघन्याऽन्तरं समयः, ज्येष्ठाऽन्तरं तु आगमानुसारेण स्वयं परिभावनीयम्, कुतः? तिर्यग्गतिभिन्नगतित्रय उत्पद्यमानानां च्यवमानानां वा जीवानामन्तरविषये भिन्नभिन्नमतानामुपलम्भात् । मार्गणासु पुनरेवम्–तिर्यगोघादिद्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यगायुषो बन्धस्य सदैव भावादन्तरं न प्राप्यते, उक्तेतरायुषां बन्धस्य सम्भवे तेषां जघन्याऽन्तरं समयः, उत्कृष्टाऽन्तरं तु स्वयमागमानुसारेण विभावनीयम् । पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्नवविकलाक्ष-पञ्चेन्द्रियौघाऽ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसकायौघा--ऽपर्याप्तत्रसकायमार्गणासु तिर्यगायुषो बन्धस्य जघन्याऽन्तरं समयः, उत्कृष्टाऽन्तरमन्तमुहूर्तम् । मनुष्यायुषो बन्धस्य जघन्याऽन्तरं समयः, ज्येष्ठान्तरं तु स्वयं विज्ञेयम् । उक्तशेषासु षडशीतिमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वेषामायुषां बन्धस्य जघन्याऽन्तरं समयः, उत्कृष्टाऽन्तरं तु स्वयं विभावनीयम् । भावना तु सर्वाऽपि प्रकृतिबन्धाऽनुसारेण कार्या, विशेषभावना तु प्रयुज्य वाच्येति ॥२०७॥

तदेवं नानाजीवानाश्रित्यौघत आदेशतश्च बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठाज्येष्ठप्रदेशबन्धयोर्जघन्यान्तरमुत्कृष्टान्तरं च समाप्तम् ।

अथ जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धयोर्जघन्यमुत्कृष्टं चाऽन्तरमोघादेशाभ्यां निरूपयन्नाह

णिरयणरसुराउविउवछक्काहारदुगतित्थणामाणं ।
जेट्ठपएसव्व दुहा हस्सपएसस्स णत्थि सेसाणं ॥२०८॥ (गीतिः)
णिरयणरसुराउविउवछक्काहारदुगतित्थवज्जाणं ।
तिरिपुढवाइचउगतब्बायरपत्तेअहरिएसुं ॥२०९॥

कायउरलदुगकम्मणणपुमकसायदुअणाणअजएसु ।
अणयणतिअसुहलेसाभवियेयरमिच्छअमणेसु ॥२१०॥
तह आहारियरेसुं लहुप्पएसस्स णत्थि सेसाणं ।
जेट्ठपएसव्वऽणाह सप्पाउग्गाण सव्वेसिं ॥२११॥
ओहाएसेहिं खलु सव्वप्पयडीण बंधगाणं तु ।
अलहुपएसस्संतरमगुरुपएसव्व विण्णेयं ॥२१२॥

(प्रे०) "णिरये" त्यादि, ओघत आदेशतो वा यासु मार्गणासु मनुष्यायुर्वर्जानां यासां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकाः सूक्ष्मा बादराऽपर्याप्तपृथ्व्यादिपञ्चकायाः साधारणवनस्पतिकायिका वा भवन्ति, तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य सर्वदैव लाभादन्तरं नास्ति, यासां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकत्वेन सूक्ष्मादित्रयाणामप्रवेशस्तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य नानाजीवानाश्रित्यान्तरं ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यान्तरवद्भवति; तच्च जघन्यतः समयः, उत्कृष्टतश्च श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणम् । तदेव स्पष्टार्थं दर्शयामः-ओघतो वैक्रियाष्टकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां मनुष्यायुषश्चेति द्वादशानां जघन्यप्रदेशबन्धस्य नानाजीवानाश्रित्य जघन्यान्तरं समयः, उत्कृष्टान्तरं तु श्रेण्यसंख्येयभागः । शेषाणामष्टोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्यान्तरं नास्ति ।

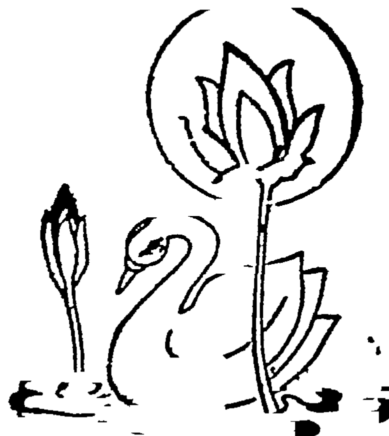
आदेशतः-तिर्यग्गत्योघपृथ्वीकायौघाऽप्कायौघ-तेजस्कायौघ-वायुकायौघ-बादरपृथ्वीकायौघ-बादराप्कायौघ-बादरतेजस्कायौघ-बादरवायुकायौघ-प्रत्येकवनस्पतिकायौघ-काययोगौघौ-दारिकौ-दारिकमिश्र-कार्मणकाययोग-नपुंसकवेद-कषायचतुष्क-मत्यज्ञान-श्रुताज्ञाना-ऽसंयमा-ऽचक्षुर्दर्शन-कृष्णालेश्या-नीललेश्या-कापोतलेश्या-भव्या-ऽभव्य-मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञ्या-हारका-ऽनाहारकरूपासु द्वात्रिंशति मार्गणासु वैक्रियाष्टकाऽऽहारकद्विकजिननाम्नां मनुष्यायुषश्च यथासंभवं बन्धप्रायोग्यत्वे तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्याऽन्तरं समयः, उत्कृष्टाऽन्तरं तु श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणं विज्ञेयम् । शेषाणामष्टोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य नानाजीवानाश्रित्य सर्वदैव निवर्तनादन्तरं नास्ति । सप्तैकेन्द्रियादिद्वात्रिंशन्मार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्येवात्रप्रस्तुतेऽप्यन्तरं प्राप्यते, तद्यथा-मनुष्यायुषो जघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्याऽन्तरं समयः, उत्कृष्टाऽन्तरं श्रेण्यसंख्येयभागः । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धस्यान्तरं नास्ति; तद्बन्धस्य सर्वदैवाऽनेकैर्जीवैर्निर्वर्त्यमानत्वात् । द्वात्रिंशन्मार्गणाः पुनर्नामत इमाः-सप्तैकेन्द्रिय-सप्तसाधारणवनस्पतिकाय-सूक्ष्मपृथ्वीकायभेदत्रय-सूक्ष्माऽप्कायभेदत्रय-सूक्ष्मतेजस्कायभेदत्रय-सूक्ष्मवायुकायभेदत्रय-बादराऽपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजोवायुकायाऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकाय-वनस्पतिकायौघमार्गणा इति । एवं चतुःषष्टिमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां

सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं दर्शितम् । उपशेषासु षड्नुत्तरशतमार्गणासु विंशत्युत्तरशतप्रकृतिभ्यो बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य ह्रस्वाऽन्तरं समयः, उत्कृष्टाऽन्तरं श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणं विज्ञेयम् । शेषमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धकतया सूक्ष्माणां बादराऽपर्याप्तैकेन्द्रियाणां साधारणवनस्पतिकायिकानां वाऽलाभेन बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयलोकाऽऽकाशप्रदेशप्रमाणतोऽतीवन्यूनाः, अतस्तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य सार्वकालिकत्वाऽभावादन्तरं प्राप्यते, तच्च जघन्यतः समयप्रमाणमुत्कृष्टतस्तु श्रेण्यसंख्येयभागः, प्रतिमार्गणं योगस्थानानां श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणत्वेन ज्येष्ठयोगस्थानप्राप्तिवज्जघन्ययोगस्थानलाभस्याऽनेकजीवाऽपेक्षयोत्कृष्टतः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणव्यवधानेन व्यवस्थितत्वात् । भावना तु ज्येष्ठप्रदेशबन्धान्तरवत्कार्या ।

अत्राऽऽद्यगाथयौघतो विंशत्युत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽन्तरमुक्तम् , ततो देशोनगाथात्रयेण तिर्यग्मत्योवादिद्वात्रिंशन्मार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं दर्शितम् । अत्र चतुर्थगाथाशेषेण तु शेषास्वष्टात्रिंशदुत्तरशतमार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽन्तरवदतिदेशेन जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं दर्शितम् । तदेवं गाथाचतुष्केण जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं निरूपितम् ।

अथाऽजघन्यप्रदेशबन्धस्य जघन्याऽन्तरं ज्येष्ठान्तरमन्तराऽभावश्चेति सर्वमप्यनुत्कृष्टप्रदेशबन्धाऽन्तरप्ररूपणावद्भवति । एतच्चैकगाथयाऽतिदेशेन दर्शितं 'ओहा०' इत्यादिगाथया, अक्षरार्थस्तु सुगमः, भावार्थस्त्वनुत्कृष्टप्रदेशबन्धान्तराऽधिकारतो विभावनीय इति ॥२०८-२१२॥

श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने
उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे प्रथमाधिकारे
चतुर्दशमन्तरद्वारं समाप्तम् ।



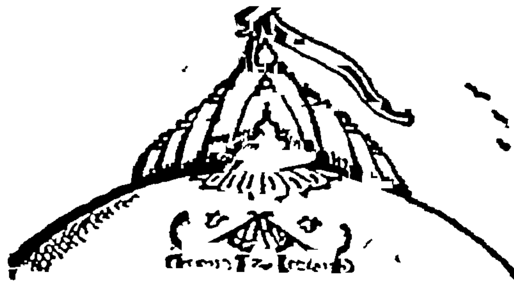
॥ पञ्चदशं भावद्वारं ॥

अथ पञ्चदशं भावद्वारं निरूपयन्नाह

सव्वासिं पयडीणं चउव्विहाण वि भवे पएसाणं ।
भावेणोदइएणं बंधो एमेव सव्वासु ॥२१३॥

(प्रे०) "सव्वासि" इत्यादि, ओघतो विंशत्युत्तरशतस्य सर्वप्रकृतीनामुत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यस्वरूपाणां प्रदेशसत्कचतुर्भेदानां बन्धे हेतुतयौदयिक--क्षायिक--क्षायोपशमिकौ-पशमिक-क्षायिक-पारिणामिकभावेभ्यः के भावा भवन्तीति प्रश्ने, इदमुत्तरमवसातव्यम्--कर्मबन्धहेतुरूपाणां मिथ्यात्वाविरतिकषायाणामौदयिकभावस्य सुगम्यत्वम्, योगस्य तु प्रवृत्तिवीर्यरूपत्वेन वीर्यान्तरायकर्मक्षय क्षयोपशमसहकृतत्वेऽपि शरीरादिनामकर्मण उदयस्य तत्र हेतुत्वेन लाभात् तत्राप्यौदयिकभावस्य निर्देशः । तथाचात्र काषायिकप्रदेशबन्धस्यैवाधिकृतत्वादौदयिकभावेन चतुर्विधप्रदेशबन्ध इति सुवचः । अतः सर्वप्रकृतीनां चतुर्भेदभिन्नः प्रदेशबन्ध औदयिकभावेन भवति । एवं बन्धप्रायोग्यसर्वमार्गणासु तत्तद्मार्गणायां बन्धप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां बन्धे हेतुरौदयिकभावो भवतीति विज्ञेयमिति । न च केवलं कर्मबन्धे तद्धेतुभूतस्य कार्मणशरीरोदयस्य भावेन औदयिकभावो हेतुतयाऽवधार्यः, किन्तु पञ्चानामपि शरीरपुद्गलानामात्मना सह सम्बन्धेऽप्यौदयिकभावो हेतुतया बोद्धव्यः, यतः तत्तच्छरीरनामकर्मण उदयेनैवाऽऽत्मा तत्तच्छरीरप्रायोग्यान् पुद्गलान् गृह्णातीति ॥२१३॥

॥ श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधाने
उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे प्रथमाधिकारे
पञ्चदशं भावद्वारं समाप्तम् ॥



॥ षोडशमल्पबहुत्वद्वारम् ॥

गतं भावद्वारम् । अथ क्रमप्राप्तं षोडशमल्पबहुत्वद्वारम्, तच्च द्विविधं प्रदेशनाश्रित्य प्रदेशबन्धकानाश्रित्य च । अयं भावः उत्तरप्रकृतिषूत्कृष्टप्रदेशबन्धे प्राप्तानां जघन्यप्रदेशबन्धे वा प्राप्तानां कर्मदलिकानामल्पबहुत्वं प्रथमम् । ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां तथा जघन्यप्रदेशबन्धकानामजघन्यप्रदेशबन्धकानामल्पबहुत्वं द्वितीयम् ।

तत्राऽऽदौ कर्मप्रदेशानामल्पबहुत्वं निरूपयामः—तस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धे बद्धानां जघन्यप्रदेशबन्धे बद्धानां दलिकानां भेदेन द्वैविध्यम्, अतस्तत्राऽऽदावुत्कृष्टप्रदेशबन्धे बद्धानां दलिकानां तन्निरूप्य पश्चाज्जघन्यप्रदेशबन्धे गृहीतानां कर्माणूनां तद्दर्शयिष्यते । उत्कृष्टप्रदेशबन्धे बद्धानां दलिकानामल्पबहुत्वमपि द्विधा-मूलप्रकृत्यभिन्नोत्तरप्रकृतीनां परस्परं स्वस्थानलक्षणं प्रथमम् । तत्रापि नाम्नि स्व-स्वावान्तरपिण्डप्रकृतीनां स्वप्रतिपक्षप्रकृतीनामेव वा तद्दर्शयामः, न पुनः सर्वनामप्रकृतीनां समुदितमित्यवधार्यम् । सर्वोत्तरप्रकृतीनां परस्परं तु परस्थानसंज्ञकं द्वितीयम्, । तत्राऽऽदौ स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं निरूप्य पश्चात् परस्थानाल्पबहुत्वमपि निरूपयिष्यति । एष च निरूप्यमाणानामल्पबहुत्वानां क्रमो दर्शितः । तत्र प्रथममोघतो बन्धे ज्येष्ठप्रदेशानामल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

केवलणाणस्सऽप्पो जेट्ठपएसो तओ अणंतगुणो ।
मणणाणस्स कमित्तो ओहिसुअमईण अब्भहियो ॥२१४॥

(प्रे०) "केवल" इत्यादि, ज्ञानावरणकर्मणः पञ्चोत्तरप्रकृतयः, पञ्चाऽपि सर्वत्र युगपद् बध्यन्त इति नावान्तरप्रकृतिबन्धस्य न्यूनाऽधिकता कृतो विशेषः, आसां पञ्चानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो दशमगुणस्थाने युगपत् प्राप्यते, मोहनीयायुषोर्बन्धाऽभावात् । तत्र केवलज्ञानावरणस्य सर्वाऽल्पं प्रदेशाग्रं सर्वघातित्वात्, ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्याऽनन्तगुणं देशघातिप्रकृतित्वात्, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकम्, ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकम्, ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकम् । अत्र पदत्रये प्रदेशाग्रस्य विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषादसंख्येयैकभागाधिकत्वं विज्ञेयमिति ॥२१४॥

अथौघतो दर्शनावरणप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं दर्शयन्नाह—

पयलाए सव्वप्पो जेट्ठपएसो तओ विसेसहियो ।
णिद्दाए ताउ पयलपयलाए ताउ णिद्दणिद्दाए ॥२१५॥ (गीतिः)
तत्तो कमसो थीणद्धिकेवलाणं तओ अणंतगुणो ।
ओहिस्स तओ कमसो विसेसअहियो अचक्खुचक्खूणं ॥२१६॥ (गीतिः)

(प्रे०) "पयलाए" इत्यादिगीतिद्वयम्, दर्शनावरणोत्तरप्रकृतिभ्यः प्रचलाया ज्येष्ठप्रदेशाऽग्रं सर्वाल्पम्, ततो निद्राया ज्येष्ठप्रदेशाऽग्रं विशेषाधिकम्, स्वामिनामैक्येऽपि प्रकृतिविशेषादसंख्येयभागेन विशेषाऽधिकत्वम्। ततः प्रचलाप्रचलाया उत्कृष्टप्रदेशाग्रमसंख्येयभागेन विशेषाधिकम्। निद्राया दर्शनावरणषड्विधबन्धकस्यैव ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वेऽपि नवविधबन्धे लब्धनिद्राप्रदेशातस्तस्य केवलमनन्तभागाधिकत्वमेव; नवविधबन्धे तु निद्राया ज्येष्ठप्रदेशबन्धतः प्रचलाप्रचलाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य प्रकृतिविशेषादसंख्येयभागाऽधिकत्वम्, अतः प्रस्तुते षड्विधबन्धगतस्य निद्राया ज्येष्ठप्रदेशबन्धतो नवविधबन्धकस्य प्रचलाप्रचलाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः। ततो निद्रानिद्राया ज्येष्ठप्रदेशाग्रमसंख्येयभागेन विशेषाधिकम्, प्रकृतिविशेषात्। ततः स्त्यानगृद्धेर्ज्येष्ठप्रदेशाग्रमसंख्येयभागेन विशेषाधिकम्, प्रकृतिविशेषात्। ततः केवलदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशाग्रमसंख्येयभागेन विशेषाधिकम्। ततोऽवधिदर्शनावरणस्यानन्तगुणं ज्येष्ठबन्धे प्रदेशाग्रम्, देशघातिप्रकृतित्वात् सर्वघातिदलिकतोऽनन्तगुणानां दलिकानां लाभात्। ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकं ज्येष्ठप्रदेशाग्रम्, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशाग्रं विशेषाधिकम्, प्रकृतिविशेषात्पदद्वयेऽप्यसंख्येयभागेनाऽधिकत्वं विज्ञेयमिति ॥२१५-२१६॥

अथ वेदनीयद्वयस्य तत्समानवक्तव्यत्वात् त्रसादियुगलानां च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं प्रदर्शयन्नाह

थोवो असायतसथिरसुहसुहगादेयपज्जणीआणं ।
तत्तो णेयो तेसिं पडिवक्खाणं विसेसहियो ॥२१७॥

(प्रे०) "थोवो" इत्यादि, वेदनीयद्वयमध्याद्गोत्रद्वयमध्याच्चाऽसातवेदनीयस्य नीचैर्गोत्रस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धे प्रदेशाग्रं स्तोकं भवति, सप्तविधमूलप्रकृतिबन्धकस्यैव तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभात्, ततस्तत्प्रतिपक्षभूतस्य सातवेदनीयस्योच्चैर्गोत्रस्य च प्रदेशाग्रं विशेषाधिकं भवति, षड्विधमूलप्रकृतिबन्धकस्यैव तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभात् भाज्यराशेस्तुल्यत्वे सति भाजकराशेर्न्यूनत्वेन भागफलस्याऽऽधिक्यात्, विशेषाऽधिकत्वं चाऽत्र संख्यातभागेन, स च भागो द्विचत्वारिंशत्तमांशमितो विज्ञेयः।

अथ प्रसङ्गतस्त्रसादियुगलेषु दर्शयति-"तसे" त्यादि, त्रसनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशाग्रं स्तोकम्, ततः स्थावरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशाग्रं विशेषाधिकम्, उभयत्र सप्तविधमूलप्रकृतिबन्धकानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेऽपि त्रसनाम्नो नाम्नः पञ्चविंशतिबन्धे ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन नाम्नि लब्धदलिकानामासन्नत्रयोविंशतितमो भागो भवति। स्थावरनाम्नः पुनर्नाम्नस्त्रयोविंशतिबन्धे ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेनैकविंशतिविभागा भवन्ति तेनाऽऽसन्नैकविंशतितमो भागः स्थावरनाम्ना लभ्यते, अतस्त्रसनामप्रदेशेभ्यः स्थावरनाम्नः प्रदेशा विशेषाधिका भवन्ति। एवं स्थिरशुभपर्याप्तनाम्नां

ज्येष्ठप्रदेशाग्रं स्तोकम्, ततोऽस्थिराऽशुभाऽपर्याप्तनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशाग्रं विशेषाऽधिकम्, भावना तु त्रसस्थावरनामवत्कार्या, तद्वदत्राऽपि पञ्चविंशतौ त्रयोविंशतौ च यथाक्रमं ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्। सुभगादेयनाम्नोरुत्कृष्टप्रदेशाग्रं स्तोकं सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्य नाम्नोऽष्टाविंशतिबन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन मूलनामलब्धस्य आसन्नषड्विंशतितमांशमितदलिकानां लाभात्, दुर्भगाऽनादेयनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशाग्रं संख्यातभागेन विशेषाधिकम्, सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्य नाम्नस्त्रयोविंशतिबन्धकस्य नाम्न आसन्नैकविंशतितमांशस्याऽत्र लाभात्। एवं षोडशप्रकृतीनामल्पबहुत्वमेकगाथया दर्शितम् ॥२१७॥ अथ मोहनीयकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धे प्राप्तानां दलिकानामल्पबहुत्वं दर्शयति

दुइअमयस्सऽप्पो खलु जेट्ठपएसो तओ विसेसहियो।
कमसोऽत्थि कोहमायालोहाणं ताउ उत्तकमा ॥२१८॥
तइअकसायाण तओ पढमकसायाण ताउ मिच्छस्स।
तोऽणंतगुणो कुच्छाअ तो भयस्स य विसेसहियो ॥२१९॥
तो हस्सियराण तओ रइअरईणं तओ णपुमथीणं।
तत्तो संखेज्जगुणो अंतिमकोहस्स विण्णेयो ॥२२०॥
तत्तो विसेसअहियो अंतिममाणस्स ताउ पुरिसस्स।
ताउ चरममायाए ताओ लोहस्स संखगुणो ॥२२१॥

(प्रे०) "दुइअ" इत्यादि. अप्रत्याख्यानावरणस्य मानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धे स्तोकं दलिकाग्रम्, ततोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधस्य विशेषाऽधिकमसंख्यातभागेनाऽधिकत्वम्, एवमुत्तरत्राऽपि भावनीयम्। ततोऽप्रत्याख्यानमायायाः प्रदेशाग्रं विशेषाधिकं ततोऽप्रत्याख्यानावरणलोभस्य प्रदेशाग्रं विशेषाधिकं ततः प्रत्याख्यानावरणस्य मानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य क्रमेण विशेषाधिकं प्रदेशाग्रं ज्येष्ठप्रदेशबन्धे भवति, ततोऽनन्तानुबन्धिनो मानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ज्येष्ठप्रदेशाग्रं बन्धे विशेषाधिकं भवति, ततो मिथ्यात्वस्य ज्येष्ठप्रदेशाग्रं विशेषाधिकं भवति, अत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां भिन्नभिन्नगुणस्थानस्थितत्वेऽपि तत्प्रयुक्तवृद्धिहान्योरनन्तभागमितत्वेन प्रस्तुतेऽकिञ्चित्करत्वादुदयाऽल्पबहुत्वे प्रकृतिविशेषप्रयुक्तमसंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वमवसेयम्, ततो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धे प्रदेशाग्रमनन्तगुणम्, प्रागुक्तप्रकृतीनां सर्वघातित्वात् जुगुप्साया देशघातित्वाच्च, ततो भयस्य प्रदेशाग्रं विशेषाधिकम्, स्वामिनां तौल्येऽपि प्रकृतिविशेषात्। ततो हास्यशोकयोर्ज्येष्ठप्रदेशाग्रं विशेषाधिकं परस्परं च तुल्यम्, विशेषाधिकत्वं चासंख्येयभागेन प्रकृतिविशेषाद्विज्ञेयम्। ततो रत्यरत्यो-

ज्येष्ठप्रदेशाग्रं विशेषाऽधिकं परस्परं तुल्यं च, ततो नपुंसकवेदस्य स्त्रीवेदस्य च ज्येष्ठप्रदेशाग्रं विशेषाधिकं परस्परं च तुल्यम् । एतयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य चतुर्थादिगुणस्थाने भावेऽपि प्रथमगुणस्थानतश्चतुर्थगुणस्थानेऽनन्तभागाधिक एव प्रदेशबन्धो भवति, प्रथमाद्यष्टमान्तगुणस्थानेषु बध्यमानयुगलस्य प्रदेशाग्रतो वेदस्य प्रदेशाग्रमसंख्येयभागेन विशेषाधिकं भवति, अतो वेदद्वयस्य प्रदेशाग्रं पूर्वपदतोऽसंख्येयभागाधिकं विज्ञेयम् । ततः संज्वलनक्रोधस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धे प्राप्तप्रदेशाग्रं संख्यातगुणम् । पूर्वपदे ज्येष्ठयोगलब्धदलिकसत्कसप्तमभागस्य मोहनीयद्रव्यस्य कषायनोकषायभेदेन द्विधा विभक्तस्य नोकषायतया लब्धभागस्याऽऽसन्नपञ्चमभागरूपत्वात्, प्रस्तुते तु नवमगुणस्थानद्वितीयभागे नोकषायद्रव्यस्य तद्बन्धाभावेन बध्यमानकषायेष्वेव लाभात् मोहनीयसत्कद्रव्यस्यासन्नचतुर्थभागस्य संज्वलनक्रोधे लाभात् पूर्वपदतोऽत्रासन्नसार्धद्विगुणद्रव्यं विज्ञेयम् । कर्मप्रकृतिचूर्णौ तु नपुंसकवेदतः संज्वलनक्रोधस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको दर्शितः । ततः संज्वलनमानस्य प्रदेशाग्रं विशेषाधिकं मोहनीयद्रव्यसत्कदेशोनतृतीयभागप्रमाणत्वात् । ततः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धे प्रदेशाग्रं विशेषाधिकम्, नवमगुणस्थाने हास्यादीनां चतुर्णां नोकषायाणां बन्धविच्छेदेन तत्सत्कदलिकानां पुरुषवेदे एव लाभेन मोहनीयद्रव्यस्य देशोनार्धभागप्रमाणत्वात् । ततः सञ्ज्वलनमायायाः प्रदेशाग्रं विशेषाधिकम्, अत्रापि मोहनीयसकलद्रव्यस्य देशोनार्धभागप्रमाणत्वेऽपि नोकषायद्रव्यतः कषायमोहनीयद्रव्यस्य विशेषाधिकत्वेन प्रस्तुतेऽपि विशेषाधिकत्वं मायाया द्रव्यस्येति । ततः संज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धे प्रदेशाग्रं संख्येयगुणं सकलमोहनीयद्रव्यस्य लाभेन पूर्वपदतः सातिरेकद्विगुणं प्रदेशाग्रं भवतीति ॥२१८-२२१॥

अथाऽऽयुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धे प्राप्तप्रदेशानामल्पबहुत्वं निरूपयितुकामः तत्तुल्यप्रायवक्तव्यत्वादातपादिनाम्नामपि तत्समसेवाह

चउआऊणं तुल्लो जेट्ठपएसो तहेव णायव्वो ।
आयवखगइसरजुगलबायरपत्ते असपडिवक्खाणं ॥२२२॥ (गीतिः)

(प्रे०) "चउ" इत्यादि, चतुर्णामपि नरकाद्यायुर्बन्धकानां ज्येष्ठयोगस्थानस्यैकरूपत्वादायुर्बन्धकाले चाऽष्टानामेव मूलप्रकृतीनां बन्धकत्वाज्ज्येष्ठयोगबद्धस्य देशोनाऽष्टमभागप्रमाणस्यैव प्रदेशाग्रस्य प्रत्येकं लाभात् चतुर्णामप्यायुषां प्रदेशाग्रं ज्येष्ठपदे तुल्यमेव भवति । आतपस्योद्योतस्य च द्वयोरपि ज्येष्ठप्रदेशाग्रं परस्परं तुल्यं भवति, सप्तविधमूलप्रकृतिबन्धकस्य नाम्नः षड्विंशतिबन्धे एतयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात् । एवं सुस्वरदुःस्वरयोरष्टाविंशतिबन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभाद् द्वयोरपि ज्येष्ठप्रदेशाग्रं तुल्यम् । बादरसूक्ष्मनाम्नोः ज्येष्ठप्रदेशबन्धे प्रदेशाग्रं परस्परं तुल्यं त्रयोविंशतिस्थाने एतयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात् । एवं प्रत्येकसाधारणनाम्नोः प्रदेशाग्रं तुल्यम्, भावना बादरसूक्ष्मनामवत्कार्येति ॥२२२॥

अथ नामप्रकृतीनां ज्येष्ठपदे प्रदेशाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

णिरयसुरगईणऽप्पो जेट्ठपएसो तओ विसेसहियो।
णरतिरियगईण कमा हवेज्ज एवमणुपुव्वीणं ॥२२३॥

(प्रे०) "णिरये"त्यादि, यशःकीर्तिनाम विहाय शेषनामप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य सप्तमूलप्रकृतीनां बन्धे सत्येव भावान्न मूलप्रकृतीनां न्यूनाऽधिकत्वस्य हेतुताऽल्पबहुत्वे; ओघतः सर्वप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धे ज्येष्ठयोगस्थानस्याऽप्येकरूपत्वान्न तत्प्रयुक्तमल्पबहुत्वे न्यूनाऽधिकत्वम्, अतः प्रस्तुताऽल्पबहुत्वे नाम्नो बन्धस्थानानां हेतुता; अत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धे बन्धस्थाने प्रकृतीनां न्यूनत्वे प्रदेशबन्धस्याऽऽधिक्यं संख्येयभागेन भवति, बन्धस्थानस्याऽधिकत्वे प्रदेशबन्धस्य संख्यातभागेन न्यूनत्वं भवति। तथा समानबन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभे प्रकृतिविशेषादसंख्येयभागेन न्यूनाऽधिकत्वमल्पबहुत्वे विज्ञेयमिति। अत्रैकगाथयौघतो गत्यानुपूर्वीचतुष्कयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वं दर्शितम्। तद्यथा—नरकगतिदेवगत्योर्ज्येष्ठपदे प्रदेशाऽग्रं स्तोकं परस्परं तुल्यं च; नाम्नोऽष्टाविंशतिबन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, ततो मनुष्यगतेः प्रदेशाग्रं विशेषाऽधिकं संख्येयभागेन, पञ्चविंशतौ तद्बन्धलाभात्, ततस्तिर्यग्गतेः प्रदेशाग्रं संख्यातभागेन विशेषाऽधिकं त्रयोविंशतिबन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्। एवमेव चतुर्णामानुपूर्वीणामल्पबहुत्वमवसातव्यम्; गतिनामवत्तासामपि तत्तद्बन्धस्थान एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावादिति। गाथार्थस्तु सुगमः ॥२२३॥ अथ जातिनाम्नां शरीरनाम्नां संघातननाम्नामङ्गोपाङ्गनाम्नां च प्रत्येकं ज्येष्ठपदे प्रदेशाल्पबहुत्वं दर्शयति

जाइचउगस्स थोवो जेट्ठपएसो तओ विसेसहियो।
एगिंदियस्स णेयो आहारतणुस्स सव्वप्पो ॥२२४॥
तत्तो विसेसअहियो कमसो विउव्वुरलतेअकम्माणं।
एमेव जाणियव्वो संघायणुवंगणामाणं ॥२२५॥

(प्रे०) "जाइ"इत्यादि, एकेन्द्रियजातेरुत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वेन तदितरद्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कस्य ज्येष्ठप्रदेशाग्रं सर्वस्तोकं परस्परं तुल्यं च; नाम्नः पञ्चविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य सत्त्वात्। तत एकेन्द्रियजातेः प्रदेशाग्रं विशेषाऽधिकं संख्यातभागेन, त्रयोविंशतिबन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात्।

अथ शरीरनाम्नां तदाह—"आहारे"त्यादि, आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशाग्रं सर्वाऽल्पं नाम्नस्त्रिंशद्बन्धस्थाने एव तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य सत्वात्ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकं

प्रदेशाऽग्रम् , विशेषः संख्येयभागरूपः, अष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धात् , तत औदारिकशरीरस्य प्रदेशाग्रं संख्येयभागेन विशेषेणाऽधिकं त्रयोविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धात् ,ततस्तैजसशरीरस्य ज्येष्ठ-प्रदेशाग्रमसंख्येयभागेन विशेषेणाऽधिकं प्रकृतिविशेषात् । ततः कार्मणशरीरस्य प्रदेशाग्रमसंख्येय-भागेनविशेषेणाऽधिकं तैजसकार्मणशरीरयोस्त्रयोविंशतिबन्धस्थाने एवौदारिकशरीरवज्ज्येष्ठप्रदेशबन्ध-भावेऽपि प्रकृतिविशेषात् पदद्वये विशेषाधिकत्वमसंख्येयभागेन विज्ञेयमिति । यथा शरीरनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशाग्रे अल्पबहुत्वं निरूपितं तथैव पञ्चानां संघातननाम्नामल्पबहुत्वमपि विभावनीयम् , तत्तच्छरीरनाम्ना सह तत्तत्संघातननाम्नः सर्वत्र बन्धोदयादौ सहचारित्वात् । अङ्गोपाङ्गानि त्वाद्य-शरीरत्रयस्यैव भवन्ति, अतोऽङ्गोपाङ्गत्रयस्याऽल्पबहुत्वं त्वाद्यशरीरत्रयसत्काऽल्पबहुत्ववद्वि-ज्ञेयम् । केवलमौदारिकाङ्गोपाङ्गस्य नाम्नः पञ्चविंशतिबन्धस्थानमधिकृत्य भावना कार्या; अङ्गो-पाङ्गनाम्नस्त्रयोविंशतौ बन्धाऽभावात् , भावना तु सुगमा स्वयमवधारणीया चेति ॥२२४-२२५॥

अथ पञ्चदशबन्धननाम्नां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं प्रकटयन्नाह

जेट्ठपएसो थोवो आहाराहारबंधणस्स भवे ।
तत्तो विसेसअहियो णेयो आहारतेयस्स ॥२२६॥
तो आहारगकम्मस्स तओ आहारतेयकम्मस्स ।
ताउ कमा उत्तकमा विउवचउक्कस्स उरलचउगस्स ॥२२७॥ (गीतिः)
तो तेअसस्स कमसो तेअसकम्मेहि संजुअस्स भवे ।
ताओ कम्मणकम्मणबंधणणामस्स बोद्धव्वो ॥२२८॥

(प्रे०) "जेठ्ठ"इत्यादि, आहारकाऽऽहारकबन्धननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकस्तत आहारकतैजसनाम्नो विशेषाऽधिकस्तत आहारककार्मणनाम्नो विशेषाऽधिकस्तत आहारक-तैजसकार्मणनाम्नो विशेषाऽधिकः, अत्र पदत्रयेऽपि विशेषाऽधिकत्वमसंख्येयभागेन विज्ञेयम् । ततो वैक्रियवैक्रियबन्धननाम्नो विशेषाऽधिकः, अत्र संख्येयभागाऽधिकत्वं ज्ञेयम् । ततो वैक्रिय-तैजसनाम्नो विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियकार्मणनाम्नो विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियतैजसकार्मणनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, पदत्रयेऽपि विशेषाऽधिकत्वमसंख्येयभागेन विज्ञेयम् ; प्रकृतिवि-शेषादेवमसंख्येयभागेनाधिकत्वम् । तत औदारिकौदारिकबन्धननाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येय-भागेन विशेषाऽधिकः, तत औदारिकतैजसनाम्नो विशेषाधिकस्तत औदारिककार्मणनाम्नो विशेषा-ऽधिकस्तत औदारिकतैजसकार्मणनाम्नो विशेषाऽधिकः, पदत्रयेऽपि प्रकृतिविशेषतोऽसंख्येयभागेन विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयम् । ततस्तैजसतैजसबन्धनस्य विशेषाधिकस्ततस्तैजसकार्मणबन्धनस्य

विशेषाऽधिकः, ततः कार्मणकार्मणबन्धनस्य विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, अत्राऽपि पदत्रये प्रकृतिविशेषादसंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वमिति ॥२२६-२२७-२२८॥

अथ संहननषट्कस्य संस्थानषट्कस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धमल्पाऽल्पबहुत्वमाह–

पणसंघयणाणऽप्पो ताउ विसेसाहिओ छिवट्ठस्स ।
आगिइचउगस्सऽप्पो पढमंताणं कमा विसेसहियो ॥२२९॥ (गीतिः)

(प्रे०) "पणे"त्यादि, प्रथमादिपञ्चमान्तानां संहनननाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकः परस्परं तुल्यश्च; पञ्चानामपि नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् । ततः सेवार्तसंहननस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्संख्यातभागेन विशेषेणाऽधिकः; पञ्चविंशतिबन्धस्थान एव तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् ।

संस्थाननाम्नामल्पबहुत्वं पुनरेवम्–द्वितीयादिपञ्चमान्तानां मध्यमसंस्थाननाम्नां ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धः सर्वाऽल्पः परस्परं तुल्यश्च; एकोनत्रिंशति तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, ततः प्रथम-संस्थानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः संख्यातभागेन, अष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात् । ततश्चरमस्य हुण्डसंस्थानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः संख्यातभागेन त्रयोविंशतौ तल्लाभात् । भावना तु सुगमप्राया इति ॥२२९॥

अथ वर्णरसगन्धस्पर्शनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वं दर्शयन्नाह–

किण्हरसऽप्पो तत्तो णीलाईणं कमा विसेसहियो ।
तित्ताईणं कडुआऽऽभहियो सुरहिस्स दुरहीओ ॥२३०॥
कक्खडगुरूण थोवो तओ विसेसाहियो मउलहूणं ।
तो सीअरुक्खगाणं ताहिन्तो णिद्धउण्हाणं ॥२३१॥

(प्रे०) "किण्हरसे"त्यादि, पञ्चानां वर्णनाम्नां सर्वत्र युगपदेव बन्धः, अतस्तेषां ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वे बन्धस्थानानां न्यूनाधिकत्वस्य मार्गणं न कार्यम्, त्रयोविंशतौ पञ्चानामपि वर्णनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, अतः प्रस्तुताऽल्पबहुत्वे प्रकृतिविशेष एव हेतुर्विभावनीयः, अत एवाऽसंख्येयभागवृद्धिरेव वाच्या । इत्येवं रसगन्धस्पर्शनाम्नामप्यल्पबहुत्वे हेतुर्भावनीयः । अल्पबहुत्वं पुनरेवम् कृष्णवर्णस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वाऽल्पस्ततो नीलवर्णस्य विशेषाऽधिकस्ततो लोहितस्य ततो हारिद्रस्य ततश्शुक्लस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाधिको भवति । कटुरसस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकस्ततस्तिक्तस्य ततः कषायस्य तत आम्लरसस्य ततो मधुररसस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्ध उत्तरोत्तरः क्रमेण विशेषाऽधिकः । गन्धनाम्नोरल्पबहुत्वं

पुनरेवम्—दुरभिगन्धस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पस्ततः सुरभिगन्धस्य विशेषाऽधिकः, अयं कर्मप्रकृतिचूर्णिकृदभिप्रायः । कर्मप्रकृतिवृत्तिकाराऽभिप्रायेण तु सुरभिगन्धस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वाऽल्पस्ततो दुरभिगन्धस्य विशेषाधिक इति । कर्कशगुरुनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो मृदुलघ्वोर्विशेषाऽधिकस्ततः शीतरूक्षयोर्विशेषाधिकः । ततः स्निग्धोष्णयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च । अन्ये तु कर्कशनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वाऽल्पस्ततः क्रमेण विशेषाधिको मृदुगुरुलघुस्निग्धरूक्षशीतोष्णनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति इत्येवं दर्शयन्ति ॥२३०-२३१॥

अथाऽगुरुलघ्वादिषट्प्रकृतीनामल्पबहुत्वं निषेधयन् शेषयोर्यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं निरूपयंश्चाह

छण्हं पत्तेआणं जेट्ठपएसस्स णत्थि अप्पबहू ।
अजसस्सऽप्पो तत्तो संखेज्जगुणो जसस्स भवे ॥२३२॥

(प्रे०) "छण्ह"मित्यादि, अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासनिर्माणजिननाम्नां षण्णां प्रत्येकनाम्नां प्रस्तुते अल्पबहुत्वं नास्ति, उक्तं च कर्मप्रकृतिवृत्तौ—"यत इदमल्पबहुत्वं शेषवर्णाऽपेक्षया कृष्णवर्णनाम्न इव सजातीयप्रकृत्यपेक्षं चिन्त्यते, न चैताः परस्परं सजातीयाः, अभिन्नैकमूलपिण्डप्रकृत्यभावात्, नाऽपि विरुद्धाः युगपदपि बन्धभावात् ततोऽत्राऽनधिकृता" इति । यदि पुनः कस्यचिदेतद्विमर्शेच्छा स्यात् तदाऽल्पबहुत्वमेवं द्रष्टव्यम्, तद्यथा—जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकः, एकोनत्रिंशति तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्ततः पराघातनाम्नो विशेषाऽधिकः, तत उच्छ्वासनाम्नो विशेषाऽधिकः पञ्चविंशतिबन्धस्थान एतयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात् । ततोऽगुरुलघुनाम्नस्तत उपघातनाम्नस्ततो निर्माणनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको भवति, त्रयोविंशतिबन्धस्थाने त्रयाणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, भावना तु सुगमा स्वयं कार्या च । त्रसादिनवयुगलस्याऽल्पबहुत्वं प्राग्दर्शितम्, अतो यशःकीर्तिनामाऽयशःकीर्तिनाम्नोरल्पबहुत्वं गाथोत्तरार्धेन प्ररूपितम्, तद्यथा—अयशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः मूलसप्तप्रकृतिबन्धकस्य नाम्नस्त्रयोविंशतिबन्धे तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात्, ततो यशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्यातगुणः आसन्नसार्धचतुर्विंशतिगुणः दशमगुणस्थाने षड्मूलप्रकृतिबन्धे प्रवर्तमाने नाम्नः केवलं यशःकीर्तेर्बन्धे वर्तमाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धात् ॥२३२॥

अथाऽन्तरायपञ्चकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धेऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

थोवो जेट्ठपएसो णेयो दाणंतरायकम्मस्स ।
तत्तो विसेसअहिओ कमसो लाहाइविग्घाणं ॥२३३॥

(प्रे०) "थोवो" इत्यादि, दानान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकस्ततो लाभान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, ततो भोगान्तरायस्य विशेषाधिकस्तत उपभोगान्तरायस्य विशेषाधिकस्ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, अत्रोत्तरोत्तरविशेषाधिकत्वमसंख्येयभागेन प्रकृतिविशेषाद्विज्ञेयमिति। अत्र लाभान्तरायादीनां क्रमो मूलप्रकृतिबन्धविधाने उत्तरप्रकृतिवर्णने यथोक्तस्तथा ज्ञेयः। तदेवमोघतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं समाप्तम् ॥२३३॥ अथ मार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयिषुरादौ तावन्नरकौघादिमार्गणासु तत् निरूपयति–

णिरयपढमाइछणिरयतइआइगअट्ठमंतदेवेसु ।
पढमदुइअचरमाणं वण्णचउक्कस्स ओघव्व ॥२३४॥
मोहस्स जा नपुमथी ओघव्व तओ भवे विसेसहियो ।
पुरिसस्स ताउ कमसो अंतिमभयकोहमायलोहाणं ॥२३५॥(गीतिः)
उरला विसेसअहियो तेअसकम्माण होइ जहकमसो ।
णुज्जोअपणिंदितसचउगुवंगाण सरिसोऽण्णेसिं ॥२३६॥

(प्रे०) "णिरये"त्यादि; नरकौघे प्रथमादिनरकषट्के तृतीयाद्यष्टमान्तेषु षड्देवभेदेषु चेति त्रयोदशमार्गणासु प्रत्येकं प्रथमादिचतुर्थान्तगुणस्थानानां भावात् नाम्न एकोनत्रिंशत्त्रिंशद्बन्धस्थानद्वयस्यैव भावाच्च तुल्यवक्तव्यत्वाद् युगपन्निर्देशः। एतासु ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां वर्णचतुष्कस्य चोत्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्भवति, यतो सर्वमार्गणासु ज्ञानावरणस्याऽन्तरायस्य च प्रत्येकं पञ्चानां प्रकृतीनां युगपद्बन्धभावात्सर्वमार्गणास्वोघवदेवाऽल्पबहुत्वं प्राप्यते। दर्शनावरणप्रकृतीनां तु यासु मार्गणासु नवानामपि बन्धस्तासु नवप्रकृतीनां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम्, यासु मार्गणासु षट्प्रकृतीनां बन्धस्तासु स्त्यानर्द्धित्रिकं विहाय षट्प्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम्। यत्र दर्शनावरणप्रकृतिचतुष्कस्यैव बन्धस्तत्राऽपगतवेदसूक्ष्मसंपरायमार्गणयोः प्रकृतिचतुष्कस्यौघवदेव प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं विज्ञेयम्। दलविभजनेऽप्ययमेव क्रमो दर्शित इति। वर्णादिचतुष्कसत्काऽवान्तरप्रकृतीनामविवक्षयाऽल्पबहुत्वं न भवति, एकैकप्रकृतेर्भावात्। अवान्तरप्रकृतीनां विवक्षया तु तासामल्पबहुत्वं सर्वासु बन्धप्रायोग्यास्वष्टपष्ट्युत्तरशतमार्गणासु ओघवदेव भावनीयम्। सर्वत्र वर्णादिविंशतेर्युगपदेव बन्धभावात्।

मोहनीयप्रकृतीनामल्पबहुत्वं पुनः सञ्ज्वलनचतुष्कं पुरुषवेदं च विहाय बन्धप्रायोग्याणामोघवद् विज्ञेयम्, तच्चैवम्-अप्रत्याख्यानावरणमानस्य सर्वस्तोको ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्ततोऽप्रत्याख्यानावरणस्य क्रोधस्य मायाया लोभस्य प्रत्याख्यानमानक्रोधमायालोभानामनन्तानुबन्धिमानक्रोध-

मायालोभानां मिथ्यात्वस्य चेति द्वितीयादित्रयोदशान्तपदानां क्रमेण विशेषाऽधिकस्ततो जुगुप्साया अनन्तगुणस्ततो भयस्य ततो हास्यशोकयोस्ततो रत्यरत्योर्विशेषाऽधिकस्ततो नपुंसकवेदस्त्रीवेदयोर्विशेषाऽधिकः परस्परं च तुल्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः, एतावत्पर्यन्तं सर्वमार्गणासु बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामेवमेवाऽल्पबहुत्वं भवति; केवलं यासु मार्गणासु याः प्रकृतयो न बध्यन्ते तासु मार्गणासु ताः प्रकृतीरुक्तक्रमादपसारणीया इति ।

यासु मार्गणासु प्रकृष्टगुणस्थानं प्रथमं द्वितीयं वा तासु नपुंसकवेदस्त्रीवेदवत्पुरुषवेदस्याऽपि तुल्यप्रदेशबन्धो भवति । सास्वादनमार्गणायां पुनर्नपुंसकवेदस्य बन्धाऽभावात्स्त्रीपुरुषवेदयोस्तुल्यप्रदेशबन्धो भवति ।

यासु पुनः प्रथमद्वितीयगुणस्थानयोरभावः, यदि च तासु नवमगुणस्थानस्याऽप्रवेशस्तर्हि तासु नपुंसकवेदस्त्रीवेदयोर्बन्धाऽभावात्तत्स्थाने केवलं पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको वाच्यः ।

वेदमार्गणात्रयं कषायमार्गणात्रयं च विहाय यासु मार्गणासु यथासम्भवमधस्तनगुणस्थानसहितनवमगुणस्थानस्य सद्भावस्तासु ओघोक्तक्रमेणैव पुरुषवेदस्य संज्वलनचतुष्कस्य चाल्पबहुत्वं वक्तव्यम् । तथा यासु मार्गणासु नवमगुणस्थानं नास्ति तासु तु पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धतः क्रमेण संज्वलनमानस्य क्रोधस्य मायाया लोभस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति ।

वेदमार्गणात्रये पुनः स्त्रीनपुंसकवेदप्रकृत्योरनन्तरं संज्वलनमानस्य विशेषाऽधिकस्ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको भवति, ततः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो भवति, देशोनचतुर्गुणो भवतीत्यर्थः ।

क्रोधमार्गणायां स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं यावदोघवदल्पबहुत्वं भवति, ततो वेदद्वयतः सञ्ज्वलनमानस्य संख्येयगुणः; पूर्वपदे मोहनीयसकलद्रव्यस्याऽऽसन्नदशांशमितस्य लाभात्; प्रस्तुते तु देशोनचतुर्थांशमितत्वात् । ततः क्रोधस्य विशेषाधिकः, प्रकृतिविशेषात्; ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकस्ततः पुरुषवेदस्य विशेषाऽधिकः; सञ्ज्वलनलोभतो देशोनद्विगुण इत्यर्थः ।

मानमार्गणायामप्येवमेव, केवलं वेदद्वयाऽनन्तरं संज्वलनक्रोधस्य संख्येयगुणत्वमभिधाय ततः सञ्ज्वलनमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, संख्येयभागेनाऽधिको भवति, प्रस्तुते सञ्ज्वलनक्रोधस्य चतुर्विधबन्धकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, संज्वलनमानस्य तु त्रिविधबन्धकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः, अतः क्रोधमार्गणातः क्रमव्यत्ययः संख्येयभागाऽधिकत्वं चेति विशेषद्वयम् ।

-मायामार्गणायामोघवदेवाऽल्पबहुत्वं भवति, केवलं चरमस्थानगतस्य संज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः पूर्वपदगतसंज्वलनमायात ओघवत्संख्येयगुणो न भवति, किन्तु विशेषाऽधिक एवास्ति, प्रस्तुते केवलं संज्वलनलोभो न बध्यतेऽतो न संख्येयगुणत्वम् । अत्र सञ्ज्वलनचतुष्कस्य पुरुषवेदस्य चाऽल्पबहुत्वे यः क्रमभेदादिः स तत्तत्प्रकृतिसत्कज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां भिन्नत्वात् , भावना तु दलविभाजनमनुसृत्य सुगमत्वात् स्वयं कार्येति । गतं प्रासङ्गिकमिति ।

अथ प्रस्तुतम्-दर्शितत्रयोदशमार्गणासु स्त्रीनपुंसकवेदयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धतः पुरुषवेदस्य विशेषाधिकः, अत्राऽऽधिक्यमनन्तभागेन विज्ञेयम् । ततः संज्वलनमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्ध उत्तरोत्तरपदेषु क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाधिको भवति । अत्र प्रथमपदे संख्यातभागाऽधिकः, शेषपदत्रये त्वसंख्येयभागाधिकः प्रदेशबन्धो विज्ञेयः ।

अथ नामप्रकृतिषु यासामल्पबहुत्वं संभवति, तासां तद्दर्शयति-"उरला" इत्यादि, औदारिकशरीरनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः प्रकृतिविशेषात्पदद्वये विशेषाधिकत्वमसंख्येयभागेन विज्ञेयम् । त्रसचतुष्कस्य पञ्चेन्द्रियजातेरौदारिकाङ्गोपाङ्गस्योद्योतनाम्नश्चेति सप्तानामल्पबहुत्वं नास्ति, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धाभावेन स्वस्थान एकैकप्रकृतेरेव बन्धात् । अल्पबहुत्वं तु द्व्यादिपदसंभवे एवोद्भवतीति । अगुरुलघुनामादिषण्णामल्पबहुत्वमोघवन्निषेधनीयम् । साताऽसातवेदनीयद्वयं तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयं तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्वीद्वयं संहननषट्कं संस्थानषट्कं खगतिद्वयं स्थिरादिषड्युगलानि गोत्रद्वयं चेति उक्तशेषाणां षट्त्रिंशत्प्रकृतीनां स्वस्वप्रतिपक्षप्रकृतिज्येष्ठप्रदेशबन्धेन तुल्य एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, न पुनर्न्यूनाधिक इति । भावना पुनरेवम्—ओघे तु दशमगुणस्थान एव सातस्योच्चैर्गोत्रस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, मूलषट्प्रकृतिबन्धकत्वाद् , एवं यासु मार्गणास्वपि दशमगुणस्थानस्य प्रवेशस्तास्वसातवेदनीयतः सातवेदनीयस्य विशेषाधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, एवं गोत्रस्याऽपि । यासु मार्गणासु दशमगुणस्थानकं नास्ति, तासु वेदनीयद्वयस्य गोत्रद्वयस्य च तुल्य एव भवति, द्वयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धे मूलप्रकृतिबन्धस्य तुल्यत्वात् मूलप्रकृत्यभिन्नाऽवान्तरेतरप्रकृतिबन्धाऽभावाच्च । सर्वत्राऽऽयुषां तुल्ययोगस्थाने तुल्य एव प्रदेशबन्धो भवति, आयुषां प्रदेशबन्धन्यूनाऽधिक्ये योगस्थानानां न्यूनाऽधिकत्वमेव हेतुः, न तु प्रकृतीनां न्यूनाऽधिकत्वमतस्तत्तन्मार्गणास्वायुषां बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्य एव भवति । नामप्रकृतिषु पुनर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यबन्धस्थानस्य परस्परं तुल्यत्वात्तुल्य एव प्रदेशबन्धो भवति । प्रस्तुते तु त्रिंशतोऽपि नामप्रकृतीनां एकोनत्रिंशति ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवतीति । तदेवं त्रयोदशसु स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं निरूपितम् ॥२३४-२३६॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायां सातिदेशं साऽपवादं दर्शयति प्रस्तुतम्

णिरयव्व तमतमाए सप्पाउग्गाण सव्वपयडीणं ।
जेट्ठपएसस्स णवरि णो तिरियाउस्स अप्पबहू ॥२३७॥

(प्रे०) "णिरयव्वे"त्यादि, सप्तमनरकमार्गणायां बन्धप्रायोग्यनवनवतिप्रकृतीनामल्पबहुत्वं नरकौघवद् भवति, उभयत्र गुणस्थानानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यनाम्नो बन्धस्थानानां च तुल्यत्वात्, केवलं प्रस्तुते जिननाम्नो बन्धो नाऽस्ति, तथा मनुष्यायुषो बन्धाऽभावेन तिर्यगायुष एव बन्धाऽर्हत्वात्तस्याऽल्पबहुत्वं नास्तीति विज्ञेयम् । भावना तु सुगमा ततोऽवधारणीया च ॥२३७॥

अथ तिर्यगोघादिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

णिरयव्व तिरिपणिंदियतिरियतिगाजयतिअसुहलेसासुं ।
जेट्ठपएसस्स भवे अप्पबहू णामवज्जाणं ॥२३८॥
थोवो जसस्स णेयो ताउ विसेसाहियोऽत्थि अजसस्स ।
णामपयडिसेसाणं सप्पाउग्गाण ओघव्व ॥२३९॥

(प्रे०) "णिरयव्वे"त्यादि, तिर्यग्गत्योघ-पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघ-तत्पर्याप्त-तिरश्चीमार्गणाऽसंयमा-ऽशुभलेश्यात्रयमार्गणास्वष्टसु नामकर्मवर्जानां बन्धप्रायोग्याणां त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनामल्पबहुत्वं नरकमार्गणावद्विज्ञेयम्, उभयत्र बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां तुल्यत्वात्प्रमादिगुणस्थानाऽनामभावाच्च । भावना तु तत एवाऽवधारणीया, तत्र वृत्तौ नामवर्जानां सर्वमार्गणासत्काऽल्पबहुत्वस्य दर्शितत्वात् । यद्यप्यत्राऽऽयुश्चतुष्कस्य बन्धः, नरकमार्गणायां त्वायुर्द्वयस्य बन्धो भवति, तथाऽपि यथा तत्र द्वयोरायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यस्तथा प्रस्तुते चतुर्णामप्यायुषामिति तद्वदतिदेशे न कश्चिद्दोषः । बन्धप्रायोग्याणां यशःकीर्तिवर्जनामप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्भवति, आहारकद्विकस्य बन्धाऽभावात् वैक्रियशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोको वाच्यः, तदूर्ध्वं त्वोघवत्, एवमङ्गोपाङ्गद्वयेऽपि विज्ञेयमिति । यशःकीर्तिनाम विहाय शेषाणां चतुष्षष्टेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां नाम्नो बन्धस्थानानामोघवदत्राऽपि लाभादोघवदेवाऽल्पबहुत्वं भवति । भावनाऽप्योघवदेव यथासंभवमवसातव्या । केवलं प्रस्तुत एकप्रकृत्यात्मकबन्धस्थानस्याऽभावादोघवद्यशःकीर्तिनामाऽयशःकीर्तिनाम्नोरल्पबहुत्वं न प्राप्यते, प्रस्तुते यशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य पञ्चविंशतिबन्धस्थाने भावेन तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्स्तोकः, ततोऽयशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, त्रयोविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, भावना त्वोघोक्तस्थिराऽस्थिरयोरल्पबहुत्ववत्कार्या सुगमा च ॥२३८-२३९॥

अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिपञ्चचत्वारिंशद्मार्गणासु स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं निरूपयति

असमत्तपणिंदितिरियमणुमपणिंदियतसेसु सव्वेसुं ।
एगिंदियविगलिंदियपुहवीदगहरिअकायेसुं ॥२४०॥
णिरयव्वऽप्पाबहुगं जेट्ठपएसस्स णामवज्जाणं ।
वण्णचउगस्स य णवरि तुल्लपएसो तिवेआणं ॥२४१॥
तिरियस्स णरगइत्तो विसेसअहियो तहाणुपुव्वीणं ।
एगिंदियस्स णेयो जाइचउक्का विसेसहियो ॥२४२॥
उरला विसेसअहियो तेअसकम्माण होइ जहकमसो ।
पणसंघयणागिइओ चरिमाण भवे विसेसहियो ॥२४३॥
ण उरलवंगस्सऽप्पो तमपज्जसरूणपणथिराईणं ।
तत्तो विसेसअहियो पडिवक्खाण सरिमोऽण्णेसिं ॥२४४॥

(प्रे०) "असमत्त"त्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसकायमार्गणाचतुष्के सप्तैकेन्द्रियभेदेषु नवविकलाक्षभेदेषु सप्तपृथ्वीकायमार्गणासु सप्ताऽप्कायमार्गणास्वेकादशवनस्पतिकायमार्गणासु चेति पञ्चचत्वारिंशद्मार्गणासु नामवर्जप्रकृतीनां वर्णचतुष्कस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वं नरकौघवद्भवति । केवलं मोहनीयप्रकृतिसत्काऽल्पबहुत्वे स्त्रीवेदनपुंसकवेदाभ्यां सहैव पुरुषवेदस्याऽपि तुल्य एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, न पुनस्ताभ्यां पुरुषवेदस्य विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो नरकौघवत्प्राप्यते, नरकौघे तृतीयचतुर्थगुणस्थानद्वयस्य लाभेऽपि प्रस्तुते तदभावात् । मोहनीयस्याऽल्पबहुत्वं पुनरेवम्—अप्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकस्ततोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततोऽनन्तानुबन्धिमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततो मिथ्यात्वस्य क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, ततो जुगुप्साया अनन्तगुणस्ततो भयस्य विशेषाधिकस्ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकः, परस्परं तुल्यश्च, ततो रत्यरत्योर्विशेषाऽधिकः, परस्परं तुल्यश्च, ततः स्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंसकवेदानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अन्योन्यं समानश्च, ततः संज्वलनमानस्य विशेषाऽधिकस्ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य ततः संज्वलनमायायास्ततः संज्वलनलोभस्य क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो

भवति, एतच्चाऽल्पबहुत्वं दलविभाजने प्रथमगुणस्थाने यथा भवति तथा प्रस्तुतेऽपि ज्ञातव्यमिति। ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणां सर्वमार्गणास्वोघवदेवेति प्रस्तुतेऽप्योघवद् भावनीयम्। वेदनीयद्वये ज्येष्ठप्रदेशबन्धः परस्परं तुल्यः, एवं गोत्रद्वये तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वये चाऽल्पबहुत्वं भावनीयम्। अथ पञ्चचत्वारिंशद्मार्गणासु नामकर्मणामल्पबहुत्वं गाथात्रयेण दर्शयति-"तिरिये"त्यादि, मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकः, नाम्नः पञ्चविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, ततस्तिर्यग्गतेर्विशेषाऽधिकः संख्यातभागेन, नाम्नस्त्रयोविंशतिबन्धे तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात्। देवनरकगतिद्वयं तूक्तमार्गणासु नैव वध्यते, यथा गतिनाम्नोरल्पबहुत्वं तथाऽऽनुपूर्वीनाम्नोऽप्यल्पबहुत्वं भावनीयम्। द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कस्य प्रदेशाग्रं सर्वाऽल्पं परस्परं तुल्यं च पञ्चविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्तत एकेन्द्रियजातेर्विशेषाऽधिकस्त्रयोविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्। औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः, त्रयाणामपि त्रयोविंशतिबन्धे ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन प्रकृतिविशेषात् पदद्वये विशेषाऽधिकत्वमवसेयम्। प्रथमादिसंहननपञ्चकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकः, परस्परं तुल्यश्च; एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, ततः सेवार्तसंहननस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, पञ्चविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्। प्रथमादिसंस्थानपञ्चकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वाऽल्पः एकोनत्रिंशति तल्लाभात्, ततो हुण्डस्य विशेषाऽधिकः; त्रयोविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात्। अथौदारिकाङ्गोपाङ्गस्य केवलस्यैव बन्धभावात्तदल्पबहुत्वं नाऽस्ति। त्रसनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पः; स्थावरनाम्नो विशेषाऽधिकः। पर्याप्तनाम्नोऽल्पः, अपर्याप्तनाम्नो विशेषाऽधिकः। स्थिरनाम्नोऽल्पः, अस्थिरनाम्नो विशेषाऽधिकः। शुभनाम्नोऽल्पः, अशुभनाम्नो विशेषाऽधिकः। सुभगस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पस्ततो दुर्भगस्य विशेषाऽधिकः। आदेयनाम्नोऽल्पस्ततोऽनादेयनाम्नो विशेषाऽधिकः। यशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पोऽयशःकीर्तिनाम्नो विशेषाऽधिकः। भावना तु ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामित्वं बन्धस्थानानि चाऽधिकृत्य यथासंभवं कार्या सुगमा चेति। आतपनामोद्योतनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यः षड्विंशतौ तयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्। सुस्वरदुःस्वरनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यः, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्। बादरसूक्ष्मयोः प्रत्येकसाधारणयोश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति, नाम्नस्त्रयोविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात्। वर्णादिचतुष्कस्यौघवदेवाऽल्पबहुत्वं विज्ञेयम्। खगतिद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः परस्परं तुल्यः। अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासनिर्माणनाम्नां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघवन्नाऽस्ति। भावना त्वोघानुसारेण यथासंभवं कार्येति ॥२४०-२४४॥

अथ मनुष्यौघादिमार्गणासु यासु स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वं सर्वथा ओघवद्भवति तासु तथैवाऽतिदेशेनाऽऽह

तिणरदुपंचिंदियतसपणमणवयकायउरललोहेसुं ।
णयणियरभवियसण्णीसु तहाहारम्मि ओघव्व ॥२४५॥

(प्रे०) "तिणरे"त्यादि. मनुष्यौघादिपञ्चविंशतिमार्गणाः, एतासु प्रत्येकं विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनां बन्धः, किञ्च उक्तसर्वमार्गणासु सर्वासां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धवत्तया ओघोक्तज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामेव लाभादोघवदेवाऽल्पबहुत्वं प्राप्यते, यद्यप्यत्र मनुष्यत्रये औदारिककाययोगमार्गणायां चेति मार्गणाचतुष्के मनुष्यत्रिकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचनाम्नां षण्णां सम्यग्दृष्टीनां बन्धाऽभावात्केवलं मिथ्यादृष्टीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामित्वं भवति, तथाऽपि ओघे मनुष्यद्विकौदारिकद्विकयोर्मिथ्यादृष्टीनामेव तथा मनुष्यायुष्कवज्रर्षभनाराचयोर्मिथ्यादृष्टीनामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामित्वाद् बन्धस्थानादिना च तुल्यत्वान्न भवत्यल्पबहुत्वे कश्चिद्विशेषः। भावना त्वोघानुसारेण सर्वा कार्येति ॥२४५॥

अथ देवौघादिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमाह

मणुमगईए थोवो सुरईसाणंतविउवजुगलेसु ।
तिरियगईएऽब्भहियो हवेज्ज एवमणुपुव्वीणं ॥२४६॥
थोवो जेट्ठपएसो आदेयसुहगपणिंदियतसाणं ।
तत्तो विसेसअहियो तेसिं चेव पडिवक्खाणं ॥२४७॥
पणआगिईए थोवो तओ विसेसाहियोऽत्थि हुंडस्स।
णिरयव्वऽप्पाबहुगं विण्णेयं सेसपयडीणं ॥२४८॥

(प्रे०) "मणुसे"त्यादि देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानदेवभेदेषु वैक्रियतन्मिश्रयोगद्वये चेत्यष्टमार्गणासु सामान्यतः सर्वमल्पबहुत्वं नरकमार्गणावद्भिावनीयम्, उभयत्र प्रथमादिगुणस्थानचतुष्टयस्य भावात् नामकर्म विहाय बन्धस्थानादीनां तुल्यत्वाच्च। नामप्रकृतौ तु-प्रस्तुताऽष्टमार्गणास्वेकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धभावेन नामप्रकृतिसत्काऽल्पबहुत्वे यो नरकापेक्षया विशेषस्तं दर्शयति मूलकारः, तद्यथा–मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, ततस्तिर्यग्गतेर्विशेषाऽधिकः पञ्चविंशतिबन्धे तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्। एवमानुपूर्वीनाम्नोरल्पबहुत्वं विज्ञेयम्। नरकगतौ तुल्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो दर्शित इत्यतो विशेषः। आदेयसुभगपञ्चेन्द्रियत्रसनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पः, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात्, ततः प्रतिपक्षाणामनादेयदुर्भगैकेन्द्रियजातिस्थावरनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, पञ्चविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात्। नरकगतौ तु सुभगादेय-

युगलद्वयस्य तुल्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः । पञ्चेन्द्रियजातित्रसनाम्नोस्त्वल्पबहुत्वं तत्र प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धाभावेन नास्तीति नरकगतितो विशेषः । प्रथमादिपञ्चमान्तसंस्थानपञ्चकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पः एकोनत्रिंशति ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् , ततो हुण्डकसंस्थानस्य विशेषाऽधिकः, पञ्चविंशतिबन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात् । नरकगतौ तु षण्णामपि तुल्य इति न तद्वदतिदेशः । एवमष्टादशप्रकृतीनामल्पबहुत्वं दर्शितम् । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामल्पबहुत्वं नरकगत्योघमार्गणायां यथा दर्शितं तथा वक्तव्यमिति । तत्राऽयं विशेषः——नरकगतौ आतपनाम्नो बन्धाऽभावेनोद्योतनाम्नोऽल्पबहुत्वं नाऽस्ति । प्रस्तुताऽष्टमार्गणास्वातपनाम्नो बन्धभावेनाऽऽतपनामोद्योतनाम्नोस्तुल्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवतीति ॥२४६ २४८॥ अथाऽऽनतादिनवमग्रैवेयकान्तासु त्रयोदशमार्गणासु स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

णिरयव्वऽप्पाबहुगं गेविज्जंतेसु आणयाईसुं ।
जेट्ठपएसस्स परं णत्थि णरतिगस्स अप्पबहू ॥२४९॥

(प्रे०) "णिरयव्वे"त्यादि, आनतादिनवमग्रैवेयकपर्यन्तासु त्रयोदशमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावद्विज्ञेयम् , उभयत्र प्रथमादिचतुर्थान्तगुणस्थानानां भावात् बन्धस्थानानां समानत्वाच्च । भावनाऽपि तद्वदेव कार्या, केवलमुक्तमार्गणासु तिर्यक्त्रिकस्य बन्धाऽभावेन मनुष्यत्रिकस्य प्रतिपक्षविरहिततयैव बन्धात् तस्याल्पबहुत्वं नास्ति । उद्योतनाम्नस्तु नरकगतौ बन्धभावेऽपि आतपनाम्नो बन्धाऽभावात् तदल्पबहुत्वं नाऽस्ति. प्रस्तुते त्वातपवदुद्योतनाम्नोऽपि बन्धाऽभावान्न तदल्पबहुत्वस्य निषेध आवश्यक इति ॥२४९॥ अथ पञ्चाऽनुत्तरसुरेषु प्रदर्शयन्नाह——

पढमतइअचरमाणं वण्णचउक्कस्सऽणुत्तरेसु भवे ।
णिरयव्व होइ थोवो पयलाअ तओ विसेसहियो ॥२५०॥
णिद्दाअ भवे तो केवलस्स णेयो तओ अणंतगुणो ।
ओहिस्स ताउ कमसो अचक्खुचक्खूण अब्भहियो ॥२५१॥
ओघव्व हवेज्ज दुइअतइअकसायाण तो अणंतगुणो ।
कुच्छाअ तओ णेयो हस्सियराणं विसेसहियो ॥२५२॥
तत्तो रइअरईणं हवए ताउ पुरिसस्स ताहिंतो ।
चरममयकोहमायालोहाण कमा मुणेयव्वो ॥२५३॥

णत्थि णराउच्चाणं उरला कमसो भवे विसेमहियो ।
तेअसकम्माण समो थिरजुगलतिगस्स णोऽण्णणामाणं॥२५४॥(गीतिः)

(प्रे०) "पढमे"त्यादि, अनुत्तरमार्गणापञ्चके ज्ञानावरणपञ्चकस्य वेदनीयद्वयस्याऽन्तराय-पञ्चकस्य वर्णचतुष्कस्य चाऽल्पबहुत्वं नरकमार्गणावद्भवति, ज्ञानावरणाऽन्तराययोर्वर्णचतुष्कस्य चाऽल्पबहुत्वस्यौघे मार्गणासु च सर्वत्र समानत्वेऽपि वेदनीयस्य त्वोघतो विसदृशत्वादोघवदनति-दिश्य नरकवदतिदिष्टम् । वेदनीयाऽल्पबहुत्वं पुनरेवम्—साताऽसातयोः परस्परं तुल्यो ज्येष्ठप्रदेश-बन्धः, ओघे तु सातावेदनीयस्य विशेषाऽधिक इति । दर्शनावरणषट्कस्याऽल्पबहुत्वं पुनरेवम्—प्रचलाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकस्ततो निद्राया विशेषाऽधिकस्ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततोऽवधिदर्शनावरणस्याऽनन्तगुणस्ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः, ततश्चक्षुर्दर्शना-वरणस्य विशेषाधिकः । इदमल्पबहुत्वमप्योघवदेव, केवलमत्र स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बन्धाऽभावात् तत्ततोऽपसारणीयम् , न च तदतिरिक्तोऽल्पबहुत्वे क्रमादिषु कश्चिद् भेदः । मोहनीयस्याऽल्पबहुत्वं तृतीयचतुर्थगाथाभ्यां दर्शयति- इदमल्पबहुत्वमपि नरकवदेव, केवलमत्र मिथ्यात्वाऽनन्तानु-बन्धिचतुष्कस्त्रीनपुंसकवेदानां बन्धाऽभावेन तत्तत्कपदान्यपसारणीयानि । भावनाऽपि तदनु-सारेण भावनीया । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—अप्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोक-स्ततोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति, ततः प्रत्याख्यानावरणलोभतो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः पूर्वोक्तप्रकृतीनां सर्वघातित्वात् जुगुप्सादीनां च देशघातित्वात् , ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयो-र्विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततो रत्यरत्योर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततः पुरुषवेदस्य विशेषाऽधिकः; अत्र विशेषोऽसंख्येयभागलक्षणो बोध्यः, न तु नरकमार्गणावदनन्त-भागलक्षणः, यतस्तत्र रत्यरत्योर्मणनानन्तरं स्त्रीनपुंसकवेदयोरसंख्येयभागेनाऽधिकत्वमभिधाय ततः पुरुषवेदस्याऽनन्तभागेन विशेषेणाऽधिकत्वमभिहितम् । प्रस्तुते तु स्त्रीनपुंसकवेदद्वयस्य बन्धाऽभावेन पुरुषवेदस्याऽसंख्येयभागाऽधिकत्वं विज्ञेयमिति । ततः संज्वलनमानस्य विशेषाधिकः संख्यातभागेन, ततः संज्वलनक्रोधस्य विशेषाधिकः, ततः संज्वलनमायाया विशेषाधिकः, ततः संज्वलनलोभस्य विशेषाधिकः पदत्रयेऽसंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वमिति ।

उच्चैर्गोत्रस्यैकस्यैव बन्धभावेनाऽल्पबहुत्वं नाऽस्ति, एवं मनुष्यायुषो मनुष्यगतेः पञ्चे-न्द्रियजातेरौदारिकाङ्गोपाङ्गस्य वज्रर्षभनाराचसंहननस्य समचतुरस्रसंस्थानस्य सुखगतेर्मनुष्यानु-पूर्व्यास्त्रसचतुष्कस्य सुभगत्रिकस्य च प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धाऽभावेनाऽल्पबहुत्वचिन्ता नाऽस्ति ।

वर्णचतुष्कसत्काऽवान्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वं त्वोघवद्विज्ञेयम्, सर्वत्र तदल्पबहुत्वस्यौघवदेव भावात् । औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकः, ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः, एकस्मिन्नेव बन्धस्थाने त्रयाणामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभेन प्रकृतिविशेषाद् विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयम् । अगुरुलघूपघातनिर्माणपराघातोच्छ्वासजिननाम्नां षण्णामोघवदत्राऽपि अल्पबहुत्वं नाऽस्ति, प्रतिपक्षप्रकृत्यभावात् न तद्विचारणा इत्यर्थः । स्थिराऽस्थिरनाम्नोः परस्परं तुल्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः, एकस्मिन्नेव बन्धस्थाने तयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्सप्रतिपक्षत्वाच्च । एवं शुभाऽशुभनाम्नोर्यशःकीर्तिनामाऽयशःकीर्तिनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति । तदेवं गतिमार्गणाभेदेषु प्रस्तुतस्वस्थानज्येष्ठप्रदेशाऽल्पबहुत्वं निरूपितम् । ॥२५०-२५४॥

एकेन्द्रियविकलेन्द्रियसत्कसर्वभेदेषु अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां च प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणया समं निरूपितम् । पञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वये तु त्रिमनुष्यादिमार्गणाभिस्समं निरूपितत्वात् गतमिन्द्रियभेदेष्वप्यल्पबहुत्वम् ॥ पृथ्वीकायाऽप्कायवनस्पतिकायसत्कसर्वभेदेषु अपर्याप्तत्रसकाये चाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणया सह तथा त्रसकायमार्गणाद्वये त्रिमनुष्यादिमार्गणाभिस्समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वस्य निरूपितत्वात्, शेषेषु कायमार्गणासत्कभेदेषु सप्ततेजस्कायेषु सप्तवायुकायेषु च स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

होइ अपज्जपणिंदियतिरिव्व सव्वग्गिवाउकायेसुं ।
णवरि ण अप्पाबहुगं हवेज्ज तिरियतिगणीआणं ॥२५५॥

(प्रे०) "होइ" इत्यादि, कायमार्गणासत्कासु सप्ततेजस्कायमार्गणासु सप्तवायुकायमार्गणासु चेति चतुर्दशमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां पञ्चोत्तरशतप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कस्वस्थानाऽल्पबहुत्वमपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणावद्विज्ञेयम्, तद्वदत्राऽपि तत्तद्बन्धस्थानादिषु सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात् । तत्रैव पृथ्वीकायादिमार्गणानां गृहीतत्वेऽपि तेजस्कायादिचतुर्दशमार्गणानामसंग्रहस्तु तासु चतुर्दशमार्गणासु मनुष्यत्रिकस्योच्चैर्गोत्रस्य च बन्धाऽभावेन तिर्यक्त्रिकस्य नीचैर्गोत्रस्य च सप्रतिपक्षत्वाऽभावान्न तासां चतुर्णामल्पबहुत्वं प्राप्यत इति । शेषभावनाऽल्पबहुत्वं चाऽतिदेशानुसारेण विभावनीयमिति । तदेवं कायमार्गणासत्कभेदेषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपितम् ॥२५५॥

मनोयोगौघ-तदुत्तरभेदचतुष्क--वचनयोगौघ--तदुत्तरभेदचतुष्क--काययोगौघौदारिककाययोगरूपेषु द्वादशयोगभेदेषु त्रिमनुष्यादिमार्गणाभिस्सह स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं निरूपितम् । अथौदारिकमिश्रमार्गणायामल्पबहुत्वं प्राह

णिरयव्व उरलमीसे णामरहिअसत्तमूलपयडीणं ।
कमसो विसेसअहियो णरतिरियदुगाण देवदुगा ॥२५६॥
विउवा विसेसअहियो होइ कमा उरलतेअकम्माणं ।
ओरालियुवंगस्स उ विसेसअहियो विउवुवंगा ॥२५७॥
असुहखगईअ थोवो तओ विसेसाहियो सुखगईए ।
एवं अप्पाबहुगं सराण तिरियव्व सेसाणं ॥२५८॥

(प्रे०) "णिरयव्वे"त्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां प्रस्तुते बन्धप्रायोग्यजीवानां प्रथमद्वितीयचतुर्थगुणस्थानकानि भवन्ति, अतो नामवर्जसप्तकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावद्भवति, अयं भावः—ज्ञानावरणपञ्चकस्य दर्शनावरणनवकस्याऽन्तरायपञ्चकस्य चाऽल्पबहुत्वमोघे नरकौघे च तुल्यमेव । वेदनीयगोत्रयोर्मोहनीयस्य चाऽल्पबहुत्वं प्रस्तुते नवमदशमगुणस्थानाऽभावेन ओघवदल्पबहुत्वं न प्राप्यते, इत्यतो नरकौघवद्भावनीयम् । तथा प्रस्तुते देवनरकायुषोर्बन्धाऽभावेन आयुषि नौघवदतिदेश इति । यथा नरकमार्गणायामोघज्येष्ठयोगस्थानगृहीतदलिकानां विभागेन सर्वकर्मणामल्पबहुत्वं भवति, तथा प्रस्तुते आयुर्द्वयं विहाय द्वादशोत्तरशतप्रकृतीनामल्पबहुत्वं मार्गणाप्रायोग्यज्येष्ठयोगस्थानगृहीतदलिकतो भवति । आयुर्द्वयस्य तु करणाऽपर्याप्तानां तद्बन्धाऽभावेन लब्ध्यपर्याप्तज्येष्ठयोगस्थानस्य च करणाऽपर्याप्तज्येष्ठयोगस्थानतोऽसंख्येयगुणहीनत्वेन लब्ध्यपर्याप्तसत्कसंभवज्ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतेन दलिकेन प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं भावनीयमिति ।

नामप्रकृतिष्वल्पबहुत्वं पुनरेवम्—देवगतेरुत्कृष्टप्रदेशबन्धोऽल्पः, अष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात्, ततो मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, ततस्तिर्यग्गतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अत्राऽल्पबहुत्वमोघवद्भवति, केवलं नरकगतेर्बन्धाऽभावेन गतित्रयविषयमिति । एवं त्रयाणामानुपूर्वीनाम्नाम् । अत्राऽऽहारकद्विकस्य बन्धाऽभावाच्छरीरचतुष्कमङ्गोपाङ्गद्वयं च बन्धप्रायोग्यम्, तत्र वैक्रियशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्तत औदारिकस्य विशेषाऽधिकः ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः, भावना त्वोघानुसारेण यथासंभवं कार्या, परमाद्यं पदमाहारकशरीरलक्षणं वर्जनीयम् । वैक्रियाऽङ्गोपाङ्गस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पः, तत औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, भावना त्वोघवदाहारकाङ्गोपाङ्गं विहाय कार्या, ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यबन्धस्थानानामोघेन समानत्वात् । अशुभविहायोगतेरुत्कृष्टप्रदेशबन्धः स्तोकः, प्रस्तुते नरकप्रायोग्यस्य बन्धाऽभावेन तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यैकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात्, ततः सुखगते-

विशेषाऽधिकः देवगतिप्रायोग्याऽष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभात् । एवमेव दुःस्वरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पः, ततः सुस्वरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, खगतिद्वयवद्भावना कार्या इति । शेषाणां जातिनाम-संहनननामा-ऽऽतपोद्योत-त्रसनवक-स्थावरनवकनाम्नामल्पबहुत्वं तिर्यग्गत्योघवद्विभावनीयम् । तिर्यग्गत्योघ एताभ्यो यस्मिन्बन्धस्थाने यासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति तासां प्रस्तुतेऽपि तस्मिन्नेव बन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धः प्राप्यते, अतस्तिर्यग्गत्योघवदल्पबहुत्वं दर्शितमिति । भावना तु तदनुसारेण यथासम्भवं कार्येति ॥२५६-२५८॥

अथाऽऽहारकाऽऽहारकमिश्रमार्गणाद्वये प्राह

आहारदुगे णेयो पढमदुइअतइअचरमपयडीणं ।
सव्वट्ठसुरव्व भये कुच्छाएऽप्पो अणुत्तरव्व तओ ॥२५९॥(गीतिः)
विउव्वस्सऽप्पो कमसो विसेसअहियोऽत्थि तेअकम्माण ।
वण्णाईणोघव्व उ समो थिराइजुगलाण णोऽण्णेसिं ॥२६०॥(गीतिः)

(प्रे०) "आहारदुगे"इत्यादि, ज्ञानावरणपञ्चकस्य दर्शनावरणषट्कस्य वेदनीयद्वयस्याऽन्तरायपञ्चकस्य च सर्वार्थसिद्धसुरवत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं विज्ञेयम् । अनुत्तरपञ्चकाऽन्तर्गतस्य चरमभेदस्य सर्वार्थसिद्धस्योपलक्षणपरत्वेनाऽनुत्तरमार्गणावत्प्रस्तुते द्रष्टव्यम् , अत्र दर्शनावरणभेदगतस्त्यानर्द्धित्रिकस्य बन्धाऽभावात्सर्वार्थसिद्धवदतिदेशः, अन्यथा स्त्यानर्द्धित्रिकं विहाय तत्राऽनुत्तरपञ्चकेऽत्र मार्गणाद्वये च ज्ञानावरणादिमूलप्रकृतिचतुष्कसत्कोत्तरभेदेषु नरकवदेवाऽल्पबहुत्वस्य लाभेन तद्वदतिदेशेऽपि कृतार्थता स्यात् । "भये"इत्यादि, मोहनीयप्रकृतीनामल्पबहुत्वमप्यनुत्तरमार्गणावद् भवति, केवलमत्र मध्यमकषायाऽष्टकस्य बन्धाऽभावेनाऽनुत्तरमार्गणोक्तमोहनीयसत्काऽल्पबहुत्वस्याद्याष्टपदानामभावाज्जुगुप्सायाः प्रारभ्यैवाऽल्पबहुत्वं भवति, अत एव जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, ततो भयस्य ततो हास्यशोकयोः, ततो रत्यरत्योः, ततः पुरुषवेदस्य ततः संज्वलनमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायाः, ततो लोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाधिको विशेषाधिको भवति । भावना तु सुगमा । उच्चैर्गोत्रस्य देवायुषश्चाऽल्पबहुत्वं नास्तिः सप्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धाऽभावात् । एवं नामप्रकृतिष्वपि शरीरनामवर्णगन्धरसस्पर्शस्थिरादियुगलत्रयं च विहाय शेषाणां देवगत्याद्यष्टादशप्रकृतीनामल्पबहुत्वं नाऽस्ति, सप्रतिपक्षत्वाऽभावात् । नाम्नः शेषाऽष्टादश प्रकृतयः पुनरेताः—देवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियाङ्गोपाङ्गसमचतुरस्रसंस्थानसुखगतिनामाऽगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासनिर्माणजिननामत्रसचतुष्कसुभगत्रिकनामानीति । वैक्रियशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतौ त्रयाणामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्प्रकृतिविशेषाद्

विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयम् । वर्णादिचतुःपिण्डप्रकृतिसत्काऽवान्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम् । स्थिराऽस्थिरयोः प्रकृष्टप्रदेशबन्धः परस्परं तुल्यः; अष्टाविंशतौ उभयोरपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् । एवं शुभाऽशुभयोर्यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धः प्रतिपक्षप्रकृत्या सह तुल्यो भावनीय इति ॥२५९-२६०॥

अथ कार्मणाऽनाहारकमार्गणाद्वये स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं सातिदेशेन निरूपयन्नाह

कम्माणाहारेसुं उरालमीसव्व होइ अप्पबहु ।
जेट्ठपएसस्स णवरि ण दोण्ह आऊण वत्तव्वं ॥२६१॥

(प्रे०) "कम्म" इत्यादि, कार्मणानाहारकमार्गणाद्वये बन्धप्रायोग्यद्वादशोत्तरशतप्रकृतीनामल्पबहुत्वमौदारिकमिश्रमार्गणावद्विज्ञेयम् । उभयत्र बन्धप्रायोग्यगुणस्थानकानां बन्धस्थानानां च समानत्वात् । भावना तु यथासंभवं तद्वत्कार्येति । आयुर्द्वयस्याऽत्र बन्धाऽभावात्तयोर्वर्जनमिति ॥२६१॥

अथ वेदमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह-

ओघव्व तिवेएसुं हवेज्ज णामपयडीण सेसाणं ।
णिरयव्व णवरि मोहे मव्वुवरि पुमस्स संखगुणो ॥२६२॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदमार्गणात्रये नामप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्भवति, ओघोक्तानां नामप्रकृतिसत्कज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामत्राऽपि लाभादल्पबहुत्वमप्योघवद्भवति, केवलं प्रस्तुते दशमगुणस्थानस्य प्रवेशाऽभावेन यशःकीर्तेः प्रकृष्टप्रदेशबन्धस्वामिनामोघवदलाभेऽपि अष्टमगुणस्थानस्य सप्तमभागादारभ्यैकविधबन्धकस्यैव तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामित्वेनाऽयशःकीर्तितो यशःकीर्तिनाम्नः सङ्ख्येयगुणत्वस्य लाभात् , नाऽल्पबहुत्वे कश्चिद्विशेषः । भावना तु सर्वाप्योघानुसारेणैव कार्येति । ज्ञानावरणादिसप्तकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वं तु नरकमार्गणावद्विज्ञेयम्, तत्र ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां स्वोघे नरके च समानमेवाऽल्पबहुत्वम् । वेदनीयस्य गोत्रस्य च प्रस्तुते दशमगुणस्थानाऽभावेनौघवच्छुभवेदनीयगोत्रयोर्विशेषाऽधिकत्वस्याऽसंभवान्नरकवच्च तुल्य एव वेदनीयद्वयस्य गोत्रद्वयस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, अतो नरकवदतिदेशः । आयुषि तु बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य तुल्यत्वादोघे नरके च न भेद इति ।

मोहनीयसत्कप्रकृतिषु पुरुषवेदं विहाय नरकवदेवाऽल्पबहुत्वं भवति, मोहनीयस्य चतुर्विधबन्धादीनामभावान्नौघवदल्पबहुत्वम् । यद्यपि नरकौघे पुरुषवेदतः संज्वलनचतुष्कस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, तथाऽपि प्रस्तुते सञ्ज्वलनचतुष्केभ्यः पुरुषवेदस्य

ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो भवति, नोकषायद्रव्यस्य सर्वस्याऽत्र लाभात् । एतत्सर्वमपि भावितं नरकौघमार्गणावृत्तौ, अतो विस्तृतार्थस्तत एवाऽवसातव्यः । मोहनीयसत्काऽल्पबहुत्वं त्वेवम्—अप्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकः, ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततोऽनन्तानुबन्धिमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततो मिथ्यात्वस्य क्रमेणोत्तरोत्तरपदेषु विशेषाऽधिको विशेषाऽधिकोज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, ततो मिथ्यात्वज्येष्ठप्रदेशबन्धतो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणस्ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः परस्परं तुल्यो विशेषाऽधिकश्च, ततो रत्यरत्योर्विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततः स्त्रीनपुंसकवेदयोर्विशेषाऽधिकः परस्परं च तुल्यः, ततः संज्वलनमानस्य विशेषाऽधिकस्ततः संज्वलनक्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको भवति, ततः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनचतुर्गुण इति । भावना तु सुगमा स्वयं कार्या चेति ।॥२६२॥ अथाऽपगतवेदसूक्ष्मसंपरायमार्गणयोः स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

होइ अवेए सुहुमे णावावरणपंचअंतरायाणं ।
ओघव्वऽप्पाबहुगं सायजसुच्चाण णेव भवे ॥२६३॥
अंतिमकोहस्सऽप्पो गयवेए ताउ माणमायाणं ।
चरमाण कमाऽब्भहियो संखगुणो ताउ चरमलोहस्स ॥२६४॥(गीतिः

(प्रे०) "होइ" इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां सूक्ष्मसंपरायमार्गणायां च ज्ञानावरणपञ्चकस्याऽनन्तरायपञ्चकस्य चाऽल्पबहुत्वमोघवद्भवति, सातवेदनीयस्योच्चैर्गोत्रस्य यशःकीर्तिनाम्नश्चाऽल्पबहुत्वं नाऽस्ति ; प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धाऽभावात् । दर्शनावरणचतुष्कस्याऽल्पबहुत्वमेवम् केवलदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकः, ततोऽवधिदर्शनावरणस्याऽनन्तगुणः, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः । अत्र प्रथमपदस्य सर्वघातित्वात्स्तोकत्वं द्वितीयपदस्य देशघातित्वादनन्तगुणत्वं तृतीयचतुर्थपदद्वये प्रकृत्योर्देशघातित्वेऽपि प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्वं विभावनीयम् । अपगतवेदमार्गणायां मोहनीयस्याऽल्पबहुत्वं पुनरेवम्—संज्वलनक्रोधस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पः, चतुर्विधबन्धकस्य तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वात् , ततः सञ्ज्वलनमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, त्रिविधबन्धभावित्वात्तस्य; अत्र विशेषत्वं संख्यातभागेन विज्ञेयम् ; पूर्वपदे मोहनीयद्रव्यं देशोनचतुर्थांशमितम् । अत्र तु सकलमोहनीयद्रव्यं देशोनतृतीयभागमितम् ; तेनात्र विशेषाऽधिकत्वं मोहनीयद्रव्यमपेक्ष्यासन्नद्वादशांशमितं क्रोधसत्कज्येष्ठद्रव्यमपेक्ष्यासन्नतृतीयांशं बोध्यमिति । ततः संज्वलनमायायाः ज्येष्ठप्रदेशबन्धः

संख्येयभागेन विशेषाऽधिकः; अत्र संख्येयभागो मोहनीयद्रव्यस्यासन्नपष्ठांशो बोध्यः। ततः संज्वलनलोभस्य संख्येयगुणः, अत्र तु साऽतिरेकद्विगुणदलं ज्ञेयम्। भावना त्वोघवद्यथासंभवं कार्या, सुगमत्वात् न भूयः प्रदर्श्यते। सूक्ष्मसंपराये तु मोहनीयस्य बन्धाभावान्न तदल्पबहुत्वविचारणेति ॥२६३-२६४॥

अथ क्रोधादिकषायमार्गणात्रये स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं प्राह

सत्तुत्तरपयडीणं तिकसायेसुं हवेज्ज वेअव्व ।
तह जा इत्थिणपुंसगवेआ मोहस्स ताहिन्तो ॥२६५॥
कोहे संखेज्जगुणो अंतिममाणस्स तो विसेसहियो ।
संजलणकोहमायालोहपुमाणं कमा णेयो ॥२६६॥
माणे संखेज्जगुणो अंतिमकोहस्स तो विसेसहियो ।
संजलणमाणमायालोहपुमाणं कमा णेयो ॥२६७॥
मायाए संखगुणो अंतिमकोहस्स तो विसेसहियो ।
अंतिममयपुरिसचरममायालोहाण होइ कमा ॥२६८॥

(प्रे०) "सत्तुत्तरे"त्यादि, मोहनीयवर्जशेषसप्तकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं वेदमार्गणात्रये यथा निरूपितं तथा द्रष्टव्यम्। तद्यथा-वेदनीयद्वये ज्येष्ठप्रदेशबन्धः परस्परं तुल्यो भवति, प्रस्तुते दशमगुणस्थानाऽभावेन षड्विधबन्धकाऽभावात्, एवं गोत्रद्वयेऽपि भावनीयम्। ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाऽऽयुष्काणां यथौघेऽल्पबहुत्वं निरूपितं तथा प्रस्तुतेऽपि भावनीयम्। नामकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वं तु यथा ओघे तथैव विज्ञेयम्, केवलं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योर्ज्येष्ठप्रदेशाल्पबहुत्वेऽयशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धतो यशःकीर्तेः संख्यातगुणत्वे भावना वेदमार्गणावत् कार्येति।

मोहनीयकर्मसत्काऽल्पबहुत्वे विशेषो भवति, ओघोक्तबन्धस्थानेभ्योऽत्र बन्धस्थानाना न्यूनत्वात्, स च सार्धगाथात्रयेण दर्शयति-तत्र स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं यावन्मोहनीयसत्कैकविंशतिप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्भवति, वेदमार्गणासु नरकौघमार्गणायां चैकविंशतिप्रकृतीनामल्पबहुत्वस्यौघवदेव भावात्। अल्पबहुत्वं पुनरेवम्-अप्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततोऽनन्तानुबन्धिमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततो मिथ्यात्वस्य क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, ततो मिथ्यात्वज्येष्ठप्रदेशबन्धतो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, ततो भयस्य विशेषाऽधिकः, ततो हास्यशोक-

योर्विशेषाऽधिकः, ततो रत्यरत्योर्विशेषाऽधिकः, ततः स्त्रीवेदनपुंसकवेदयोर्विशेषाऽधिकः । इत ऊर्ध्वं क्रोधादिमार्गणासु विशेषं दर्शयति–

"कोहे" इत्यादि, क्रोधमार्गणायां स्त्रीनपुंसकवेदज्येष्ठप्रदेशबन्धतः संज्वलनमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः सार्धद्विगुणप्रायस्त्वात् , ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकः, ततो मायाया विशेषाऽधिकः, ततो लोभस्य विशेषाऽधिकः, पदत्रयेऽपि प्रकृतिविशेषादसंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वं विज्ञेयम् , ततः पुरुषवेदस्य विशेषाऽधिकः, देशोनद्विगुणो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवतीत्यर्थः ।

मानमार्गणायां स्त्रीनपुंसकज्येष्ठप्रदेशबन्धतः संज्वलनक्रोधस्य संख्येयगुणः, ततः संज्वलनमानस्य विशेषाऽधिकः, ततः संज्वलनमायाया विशेषाऽधिकः, ततः संज्वलनलोभस्य विशेषाऽधिकः, ततः पुरुषवेदस्य विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति ।

मायामार्गणायां स्त्रीनपुंसकवेदज्येष्ठप्रदेशबन्धतः संज्वलनक्रोधस्य संख्येयगुणः, ततः संज्वलनमानस्य विशेषाऽधिकः, ततः पुरुषवेदस्य विशेषाऽधिकः, ततो मायाया विशेषाऽधिकः, एतावत्पर्यन्तं तु मायामार्गणायां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघवद्भवति, एतदुत्तरं पुनः संज्वलनलोभस्य प्रकृतिविशेषादसंख्येयभागेनाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धः प्रस्तुते भवति, ओघे तु साऽतिरेकद्विगुण इति चरमपदे ओघतो विशेष इति । २६५-२६८॥

अथ मतिज्ञानादिमार्गणासु स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

पढमदुइअतइअचरमचउवण्णाईण अत्थि ओघव्व ।
अप्पबहू णाणतिगे ओहिम्मि य सागारवइएसुं ॥२६९॥
मोहस्सऽणुत्तरव्व उ रइअरई जाव ताउ ओघव्व ।
पुमसंजलणाणाउगथिरसुहजुगलाण तुल्लोऽत्थि ॥२७०॥
मणुयगईए थोवो तओ विसेसाहियो मुणेयव्वो ।
देवगईए एवं अणुपुव्वीणं मुणेयव्वो ॥२७१॥
आहारतणुस्सऽप्पो कमा उरलविउव्वतेअकम्माणं ।
कमसो विसेसअहियो एमेव हवेज्जुवंगाणं ॥२७२॥
अजसस्सऽप्पो तत्तो संखेज्जगुणो जसस्स सेसाणं ।
णत्थि तहेव उवसमे दुआउवज्जाण विण्णेयो ॥२७३॥

(प्रे०) "पढमे"त्यादि. मतिश्रुताऽवधिज्ञानमार्गणात्रये-ऽवधिदर्शनमार्गणायां सम्यक्त्वौघे क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां चेति पण्मार्गणासु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणपट्कवेदनीयद्वयाऽन्तरायपञ्चकानां वर्णचतुष्कसत्काऽवान्तरप्रकृतीनां चाऽल्पबहुत्वमोघवद्भवति, ओघोक्तानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामत्र प्रवेशात् , केवलमत्र दर्शनावरणप्रकृतिसत्काऽल्पबहुत्वे स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बन्धाऽभावात्तद्विहाय प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं भावनीयमिति ।

मोहनीयप्रकृतिभ्योऽपि बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्भवति, एतदेव मूलकारेण त्वतिदेशेन दर्शितम् , तद्यथा—"मोहस्से" त्यादि, अनुत्तरदेवमार्गणासु रत्यरत्योरुत्कृष्टप्रदेशबन्धं यावन्मोहनीयप्रकृतिषु यादृगल्पबहुत्वं निरूपितं तादृक्प्रस्तुतेऽप्यल्पबहुत्वं प्राप्यते; तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकः, ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायायास्ततो लोभस्य ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको भवति, ततो जुगुप्साया अनन्तगुणः, ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकः, ततो रत्यरत्योर्विशेषाऽधिकः, इत ऊर्ध्वं पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्करूपपञ्चप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वमोघवद्भवति, तद्यथा—रत्यरत्योरुत्कृष्टप्रदेशबन्धतः संज्वलनक्रोधस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणस्ततः संज्वलनमानस्य विशेषाऽधिकः, ततः पुरुषवेदस्य विशेषाऽधिकः, ततः संज्वलनमायाया विशेषाऽधिकस्ततः संज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्संख्येयगुणः सातिरेकद्विगुण इत्यर्थः ।

"आउगे"त्यादि, प्रस्तुतमार्गणासु देवमनुष्यायुर्द्वयस्यैव बन्धः, द्वयोरपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यः, तुल्यैकयोगस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् , भावना त्वोघवत्कार्या । नामप्रकृतीनामल्पबहुत्वमेवम्—स्थिरास्थिरयोरुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्तुल्यः, एवं शुभाऽशुभयोः प्रकृष्टप्रदेशबन्धस्तुल्यः, एकस्मिन्नेव बन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य तुल्यत्वम् । मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, एकोनत्रिंशति तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात् , ततो देवगतेर्विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतौ तद्भावात् । एवमानुपूर्वीद्वयस्याऽप्यल्पबहुत्वं वाच्यम् । आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वाऽल्पः त्रिंशद्बन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् । तत औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, एकोनत्रिंशतितज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् । ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकः; अष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् , ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः. अष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेऽपि प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्व भवति । आहारकाङ्गोपाङ्गस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वाऽल्पः, तत औदारिकाऽङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः, ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः, भावना तु शरीरनामवत्कार्या । यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नोरल्पबहुत्वमोघवद्भवति, तदेव स्पष्टार्थं दर्शयति, तद्यथा-अयशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेश-

बन्धः सर्वस्तोकः, अष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात् ततो यशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, भावना त्वोघवदेवकार्या । "सेसाणं णत्थि" उक्तशेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं नाऽस्ति, प्रतिपक्षप्रकृतेरभावात् तद्बन्धाऽभावाद् वा । शेषप्रकृतयः पुनरेताः–पञ्चेन्द्रियजाति-वज्रर्षभनाराचसंहनन-समचतुरस्रसंस्थान-सुखगतिनामा-ऽगुरुलघू-पघात-पराघातो-च्छ्वास-निर्माण-जिननाम-त्रसचतुष्क-सुभगत्रिकनामानि उच्चैर्गोत्रं चेत्यष्टादश । एवं मार्गणाषट्केऽल्पबहुत्वं निरूपितम् ।

अथ देशोनगाथार्धेन उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां साऽतिदेशं साऽपवादं भणति–"तहेव" इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायामायुष्कर्मणो बन्धाऽभावात् देवमनुष्यायुष्कद्वयं विहाय शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं मतिज्ञानादिमार्गणावद् भवति । भावना तु तद्वदेव कार्येति ॥२६९-२७३॥ अथ मनःपर्यवज्ञानादिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निगदन्नाह–

मणणाण-विरइ-समइअ-छेएसुं तिपढमाइचरमाणं ।
ओहिव्व णवरि समइअछेएसु अणुत्तरव्व तइअस्स ॥२७४॥ (गीतिः)
कुच्छाएऽप्पो तत्तो ओहिव्वाहारगस्स सव्वप्पो ।
तत्तो विसेसअहियो कमा विउवतेअकम्माणं ॥२७५॥
एमेव उवंगाणं वण्णचउक्कतिथिराइजुगलाणं ।
ओहिव्वऽप्पाबहुगं णेव भवे सेसपयडीणं ॥२७६॥

(प्रे०) "मणणाणे"त्यादि, मनःपर्यवज्ञान-संयमौघ-सामायिक-च्छेदोपस्थापनीयमार्गणा-चतुष्के ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायसत्कोत्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वमनन्तरोक्तावधिज्ञानमार्गणावद् भवति, तच्च स्वप्रायोग्याणामोघवदेव, भावितं च मतिज्ञानादिमार्गणासु तत् । वेदनीयद्वयस्या-ऽल्पबहुत्वं मनःपर्यवज्ञानसंयममार्गणाद्वयेऽवधिज्ञानमार्गणावद्विज्ञेयम्, तद्यथा––असातवेदनी-यस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, सातवेदनीयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, षड्मूल-प्रकृतिबन्धकस्य तद्भावात् । सामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणाद्वये वेदनीयद्वयस्याऽल्पबहुत्वं नरकौघवद्भवति, प्रस्तुतमार्गणाद्वये सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानस्याऽभावेन साताऽसातवेदनीययोर्ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धस्तुल्यो भवतीति नौघवदवधिज्ञानमार्गणावद् वाऽऽप्यत इति । मूलकृता "अनुत्तरव्व" इत्यनेनानुत्तरमार्गणावदतिदिष्टेऽपि तत्र अस्य नरकौघवदतिदेशस्य भावात् वृत्तौ नरकौघवदेवा-तिदेशो विहितः । मार्गणाचतुष्के मोहनीयस्याऽल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावद्भवति; केवलं कषायाऽष्टकस्य बन्धाऽभावात् जुगुप्सायाः प्रारभ्यैवाऽल्पबहुत्वं भवति, अत एव जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोको दर्शितः ।

नामप्रकृतीनामल्पबहुत्वं त्वेवम्—आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पः; त्रिंशद्बन्धस्थान एव तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् , ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकः; ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतौ त्रयाणामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् । एवमङ्गोपाङ्गद्वयस्याऽप्यल्पबहुत्वं भवति । तद्यथा—आहारकाऽङ्गोपाङ्गस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पः, ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः । वर्णचतुष्कसत्काऽवान्तरप्रकृतीनां स्थिरादियुगलत्रयस्य चाऽल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावद्विज्ञेयं तद्वदत्राऽपि तत्तद्बन्धस्थान एव तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् । बन्धप्रायोग्याणामुक्तशेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं नाऽस्ति, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धाऽभावेनैकैकत्वात् । शेषप्रकृतयो नामत इमाः—देवद्विक--पञ्चेन्द्रियजाति-समचतुरस्र-सुखगतिनामा-ऽगुरुलघू-पघात-पराघातो--च्छ्वास--निर्माणनाम---जिननाम--त्रसचतुष्क--सुभगत्रिक-देवायुष्को-- च्चैर्गोत्राणीति विंशतिः प्रकृतयः ॥२७४-२७६॥

अथ मत्यज्ञानादिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह –

जेट्ठपएसस्स भवे तिअणाण-अभविय-मिच्छ-अमणेसु ।
सव्वाण तिरिव्व णवरि परोप्परसमो तिवेआणं ॥२७७॥

(प्रे०) "जेट्ठे"त्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानमार्गणात्रयेऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणासु चेति षट्सु मार्गणासु सर्वेषामपि कर्मणामल्पबहुत्वं तिर्यग्मार्गणावद्भवति, तद्यथा—केवलज्ञानावरणस्य सर्वस्तोकः, ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्याऽनन्तगुणः, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य ततः श्रुतज्ञानावरणस्य ततो मतिज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको भवति । दर्शनावरणे प्रचलाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकः, ततो निद्राया विशेषाऽधिकः, ततः प्रचलाप्रचलाया विशेषाऽधिकः, ततो निद्रानिद्रायाः, ततः स्त्यानर्द्धिनिद्रायाः, ततः केवलदर्शनावरणस्य क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, ततोऽवधिदर्शनावरणस्याऽनन्तगुणः; ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिक इति । अन्तरायकर्मणि दानान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, ततो लाभान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, ततो भोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, तत उपभोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाऽधिकः । एतच्च ज्ञानावरणदर्शनावरणाऽन्तरायाणामल्पबहुत्वमोघवद्भवति, भावना तु देशसर्वघात्यादिना प्रकृतिविशेषाच्च कार्येति । वेदनीयद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति । एवं गोत्रद्वयस्याऽऽयुश्चतुष्कस्य च विज्ञेयम् ।

मोहनीयसत्काऽल्पबहुत्वं पुनरेवम्—अप्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य ततः क्रोधस्य

ततो मायायास्ततो लोभस्य ततोऽनन्तानुबन्धिमानस्य ततस्तादृशः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततो मिथ्यात्वस्य क्रमेण विशेषाधिको विशेषाधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, ततो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणस्ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकः, परस्परं तुल्यश्च, ततो रत्यरत्योर्विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, एतावत्पर्यन्तमल्पबहुत्वमोघवत्तिर्यगोघवद्वा भवति, ततः स्त्रीपुरुषनपुंसकवेदानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च; त्रयाणामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामेकरूपत्वात् । अत्र पुरुषवेदस्य वेदद्वयेन तुल्य एव ज्येष्ठप्रदेशबन्ध इति तिर्यगोघतो विशेषः, इत ऊर्ध्वमपि तिर्यगोघवदेवाऽल्पबहुत्वम् , तद्यथा—वेदत्रयतः संज्वलनमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततः संज्वलनक्रोधस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततः संज्वलनमायाया विशेषाऽधिकस्ततः संज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः । संज्वलनचतुष्के पुरुषवेदे चौघवदल्पबहुत्वं न प्राप्यते, अत्र नवमगुणस्थानाऽभावात् । भावना तिर्यगोघवद्यथासंभवं कार्या ।

नामप्रकृतीनां सर्वमल्पबहुत्वं तिर्यगोघमार्गणावद्भवति, तद्वदत्राऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां लाभात् , अयं भावः—आहारकद्विकजिननाम्नोर्बन्धाऽभावाच्चतुःषष्टिनामप्रकृतयोऽत्र बध्यन्ते, तथा यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनामद्वयं विहाय शेषाणां द्वाषष्टेः प्रकृतीनामल्पबहुत्वं तिर्यगोघेन समं तुल्यमेव, कुतः? तद्वदत्रापि तत्तत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य त्रयोविंशत्यादिबन्धस्थाने लाभात् । ओघवत् कथं नातिदिश्यत इति चेत् , उच्यते; ओघेऽयशःकीर्तिज्येष्ठप्रदेशबन्धतो यशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य संख्येयगुणत्वेऽपि तिर्यगोघे प्रस्तुतमार्गणासु चैकप्रकृत्यात्मकबन्धस्थानस्याऽलाभेन यशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्स्तोकः, ततोऽयशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिक इत्यल्पबहुत्वस्य भिन्नत्वादोघवदतिदेशो न संगच्छेदिति । भावना तु सुगमा स्वतः कार्या चेति ॥२७७॥

अथ परिहारविशुद्धिमार्गणायां तन्निरूपयन्नाह

परिहारविसुद्धीए सरीरुवंगाण ओहिणाण०व ।
सेसाणं पयडीणं आहारदुग०व विण्णेयो ॥२७८॥

(प्रे०) "परिहारे"त्यादि, परिहारविशुद्धिमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां चतुर्णां शरीरनाम्नामङ्गोपाङ्गद्वयस्य चाऽल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावद्भवति, अवधिज्ञानमार्गणावत्तत्तद्बन्धस्थान एवाऽत्राऽपि तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात् , अल्पबहुत्वं पुनरेवम्-आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकः, ततो वैक्रियदेहस्य विशेषाऽधिकः, ततः तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः ।आहारकाऽङ्गोपाङ्गस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य

ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिक इति । अत्रावधिज्ञानदर्शनवदतिदिष्टेऽप्यर्थत औदारिकशरीरस्यात्र बन्धाभावात् तन्निषेधो बोद्धव्यः, एवमङ्गोपाङ्गनाम्नोऽप्यसौ ज्ञेयः । उक्तशेषाणामेकोनषष्टेर्ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वमाहारककाययोगमार्गणावद्विज्ञेयम्, तद्वदत्राऽपि तत्तत्प्रकृतीनां ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धस्थानादिना तुल्यत्वाद्भावनाऽपि तद्वद्यथासंभवं कार्या, केवलं तत्र प्रमत्तसंयतरूपमेकं गुणस्थानकं विवक्षितम्, प्रस्तुते तु षष्ठसप्तमगुणस्थानद्वयमिति ॥२७८॥

अथ देशविरतिमार्गणायां प्राह—

देसे मव्वत्थोवो मयस्स दुइयस्स ताउ विण्णेयो ।
सव्वत्थसिद्धिदेवव्वाहारदुगव्व सेसाणं ॥२७९॥

(प्रे०) "देसे" इत्यादि, देशविरतिमार्गणायां बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां स्वस्थानज्येष्ठप्रदेश-बन्धस्याऽल्पबहुत्वमाहारककाययोगमार्गणावद् भवति, बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायो-ग्यबन्धस्थानादीनां च तुल्यत्वात्, केवलं प्रस्तुते प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽपि बन्धो भवति, अतो मोहनीयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं सविशेषं सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणावदतिदिश्य शेषसप्त-कर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वमाहारककाययोगमार्गणावदतिदिष्टम् । सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणाया-मादावप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं मोहनीयसत्काऽल्पबहुत्वे निरूपितम्, प्रस्तुते तु तद्बन्धाऽभावात् प्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोको भवति, इत ऊर्ध्वमतिदेशाऽनुसारेणैव सर्वार्थ-सिद्धमार्गणावदऽल्पबहुत्वं भावनीयम्, सुगमत्वान्न भूयः प्रदर्श्यत इति । सूक्ष्मसंपरायसंयमे तु स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं गतवेदमार्गणया सह प्ररूपितम् । असंयममार्गणायां प्रस्तुता-ऽल्पबहुत्वं तिर्यग्गोघादिमार्गणाभिस्समं दर्शितम् । तथा चक्षुरचक्षुर्दर्शनमार्गणाद्वये त्रिमनुष्यादि-मार्गणाभिस्सह प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं प्रकटितम् । अवधिदर्शनमार्गणायां मतिज्ञानादिमार्गणानां निरूपणाऽवसरे कथितम् । तिर्यग्गोघादिना सममशुभलेश्यात्रये स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्प-बहुत्वं भणितम् ॥२७९॥

अथ क्रमप्राप्ततेजोलेश्यामार्गणायां तन्निरूपयन्नाह—

तेऊअ णरदुगत्तो कमा सुरतिरियदुगस्स अब्भहियो ।
ओहव्व सरीराणं भवे उवंगाण ओहिव्व ॥२८०॥
मज्झिमसंठाणाओ कमसो पढमचरमाण अब्भहियो ।
खगइसरेसु असुहा सुहस्स देवव्व सेसाणं ॥२८१॥

(प्रे०) "तेऊअ" इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां नामकर्माऽऽयुष्कर्म च विहाय शेषषड्मूलप्रकृतिसत्कोत्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वं देवौघमार्गणावद् भवति। अत्र मोहनीयप्रकृतिषु प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं संज्वलनचतुष्कं च विहाय देवानामपि तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वम्, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य संज्वलनचतुष्कस्य च देवानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽभावेऽपि शेषप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाल आसामष्टानामनन्तभागहीनस्यैव ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभः, प्रकृतिविशेषात्तु असंख्येयभागाधिकदलिकप्राप्तिरतो न देवौघमार्गणातोऽल्पबहुत्वे कश्चिद् भेदः। अत्र नरकायुषो बन्धाऽभावाच्छेषाणां त्रयाणामायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति।

नामकर्मसत्कप्रकृतीनामल्पबहुत्वं त्वेवम्—मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः; एकोनत्रिंशद्बन्धे तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्। ततो देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः; अष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभात्। ततस्तिर्यग्गतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, पञ्चविंशतौ तल्लाभात्। एवमानुपूर्वीनामामल्पबहुत्वं भावनीयम्। पञ्चेन्द्रियजातेरुत्कृष्टप्रदेशबन्धः स्तोकः; अष्टाविंशतौ तद्भावात्, एकेन्द्रियजातेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः; पञ्चविंशतौ तल्लाभात्, एतदल्पबहुत्वं देवौघवद् भवति, भावनायां पुनर्विशेषः, स च सुगम इति। आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, त्रिंशद्बन्धे तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभात्, ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकः; अष्टाविंशतौ तद्भावात्, तत औदारिकशरीरस्य विशेषाऽधिकः पञ्चविंशतौ तत्प्राप्तेः, ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाधिकः प्रकृतिविशेषात्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः प्रकृतिविशेषात्, एतच्चाऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति। आहारकाङ्गोपाङ्गस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पस्त्रिंशद्बन्धे तद्भावात्। तत औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः प्रस्तुतमार्गणायामपर्याप्तप्रायोग्यस्य बन्धाऽभावेन पञ्चविंशतौ नौदारिकाङ्गोपाङ्गस्य बन्धः, किन्तु एकोनत्रिंशति तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः. अतो वैक्रियाङ्गोपाङ्गज्येष्ठप्रदेशबन्धतस्तस्य न्यूनत्वम्. ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, एतदल्पबहुत्वमोघवन्न भवति; किन्तु मतिज्ञानादिमार्गणावद् भवति। संहननषट्कस्याऽल्पबहुत्वं देवौघवद् भवति। षण्णामपि संहनननाम्नामेकोनत्रिंशति ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् तुल्य एव षण्णां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति। संस्थानेषु मध्यमसंस्थानचतुष्कस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकः; एकोनत्रिंशति तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात्, ततः समचतुरस्रसंस्थानस्य विशेषाऽधिकः; अष्टाविंशतौ तद्भावात्, ततो हुण्डस्य विशेषाऽधिकः, पञ्चविंशतौ तस्य जायमानत्वात्, एतदल्पबहुत्वमोघवद् भवति। भावनायां पुनरोघतो विशेषः। देवौघवदेतदल्पबहुत्वं न भवतीत्यवधारणीयम्। कुखगतिदुःस्वरनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, एकोनत्रिंशति जायमानत्वात्, सुखगतिसुस्वरनाम्नोर्विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतौ तस्य जायमानत्वात्। एतच्च पदसाम्येनौदारिकमिश्रमार्गणावद् भवति। वर्णचतुष्कस्याऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति; सर्वत्र वर्णादिचतुष्कस्यौघवदेवाऽल्पबहुत्वस्य लाभात्।

आतपोद्योतनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति, षड्विंशतौ द्वयस्यापि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात् । अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासनिर्माणजिननाम्नामल्पबहुत्वमोघवदत्राऽपि नाऽस्ति । त्रसनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकः, स्थावरनाम्नो विशेषाऽधिकः । बादरत्रिकस्य प्रतिपक्षप्रकृतिबन्धाऽभावादल्पबहुत्वं नाऽस्ति। सुभगादेयनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पस्ततो दुर्भगाऽनादेयनाम्नोर्विशेषाऽधिकः, भावना तु सुगमा । स्थिराऽस्थिरयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यः, एवं शुभाऽशुभयोर्यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः परस्परं तुल्यो भवति, युगलत्रयस्य पञ्चविंशतौ ज्येष्ठप्रदेशबन्धात्, भावना तु देवौघवत्कार्येति ॥२८०-२८१॥

अथ पद्मलेश्यामार्गणायां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

पउमाअ विसेसहियो अत्थि सुरदुगस्स तिरिणरदुगत्तो ।
ओहिव्व तणुउवंगाण कुपणसंठाणखगइदुहगतिगा ॥२८२॥(गीतिः)
पडिवक्खाणऽब्भहियो सेसाण तइअसुरव्व.... ।

(प्रे०) "पउमाअ" इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायां नामवर्जप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वं सनत्कुमारदेवमार्गणावद् भवति, भावना तु सर्वाऽपि तेजोलेश्यामार्गणावत्कार्या । नामकर्मप्रकृतीनामल्पबहुत्वं पुनरेवम्—मनुष्यतिर्यग्गत्योर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः परस्परं तुल्यश्च एकोनत्रिंशति तस्य जायमानत्वात्, देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात् । एवमानुपूर्वीनामत्रयस्याऽपि भावनीयम् । पञ्चेन्द्रियजातेरल्पबहुत्वं नाऽस्ति, एकस्या एव बन्धात् । पञ्चानां शरीरनाम्नां त्रयाणामङ्गोपाङ्गनाम्नां च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावद् भवति, तद्यथा—आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पस्तत औदारिकशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः। आहारकाङ्गोपाङ्गस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पस्तत औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः । भावना त्ववधिज्ञानमार्गणावत्कार्या सुगमा चेति । षण्णां संहनननाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वं सनत्कुमारदेववद् भवति, तेषामेव तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वात् । द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकः परस्परं तुल्यश्च, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्ततः प्रथमसंस्थानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतौ तस्य जायमानत्वात्, सनत्कुमारदेवमार्गणायां षण्णामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति इति न तद्वदतिदेशः । कुखगतेर्दुर्भगत्रिकस्य च गुरुप्रदेशबन्धः स्तोकः, एकोनत्रिंशति तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभात्, सुखगतेः सुभगत्रिकस्य च विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतौ तल्लाभात्, सनत्कुमारे तु मिथस्तुल्य इति विशेषः । वर्ण-

चतुष्कस्याऽवान्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवत्सनत्कुमारदेववद् वा विज्ञेयम् । अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासोद्योतनिर्माणजिननाम्नां त्रसचतुष्कस्य चाऽल्पबहुत्वं नाऽस्ति; प्रतिपक्षप्रकृतेरभावाद् बन्धाऽभावाद् वा । स्थिराऽस्थिरयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो मिथस्तुल्यः सनत्कुमारदेववदत्राऽपि तुल्यैकबन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जायमानत्वात् । एवं शुभाऽशुभयोर्यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योश्च मिथस्तुल्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति । स्थिरादियुगलत्रयस्याऽष्टाविंशतौ ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात् ॥२८२॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायां स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वं दर्शयति

.................................सुक्काए ।

गइतणुवंगजसअजसअणुपुव्वीणऽत्थि ओहिव्व ॥२८३॥

पम्हव्व भवे छागिइदुखगइसुहगतिगजुगलणामाणं ।

आणतदेवव्व इयरणामाणोघव्व सेसाणं ॥२८४॥

(प्रे०) "सुक्काए" इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां नामकर्मवर्जानां ज्ञानावरणादिसप्तकर्मसत्कबन्धप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनामेकपञ्चाशतः प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम्; आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामोघवल्लाभात् प्रथमादिदशमान्तगुणस्थानानां च प्रस्तुते सद्भावात् । गतिद्वयाऽऽनुपूर्वीद्वयपञ्चशरीरनामाङ्गोपाङ्गत्रिकयशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नामल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावद्विज्ञेयमवधिज्ञानमार्गणावत्तत्तद्बन्धस्थान आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात्, तद्यथा—मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पस्ततो देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, एवमानुपूर्व्योरप्यल्पबहुत्वं विज्ञेयम् । आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकः, तत औदारिकस्य विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियस्य विशेषाऽधिकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः । आहारकाङ्गोपाङ्गस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकस्तत औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः । द्वितीयादिसंस्थानपञ्चकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकस्ततः समचतुरस्रसंस्थानस्य विशेषाऽधिकः । कुखगतेर्दुर्भगत्रिकस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकः; सुखगतेः सुभगत्रिकस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः । संस्थानादीनामल्पबहुत्वस्य भावना तेजोलेश्यामार्गणाऽनुसारेण यथासंभवं कार्या । वर्णचतुष्कसंहननपट्कस्थिरादियुगलत्रयाणामल्पबहुत्वमानतदेवमार्गणावद्विज्ञेयम् । भावना तु वर्णचतुष्कस्य स्थिरादियुगलत्रयस्य चाऽष्टाविंशतिबन्धस्थानमधिकृत्य कार्या, संहननपट्कस्यैकोनत्रिंशद्बन्धस्थानमधिकृत्य भावना कार्येति । पञ्चेन्द्रियजातिनामाऽगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासनिर्माणजिननाम्नां त्रसचतुष्कस्य चाऽल्पबहुत्वं नाऽस्ति, प्रतिपक्षप्रकृतेर्बन्धाऽभावादसत्त्वाद्वा ॥२८३-२८४॥

अथ क्रमप्राप्तायां भव्यमार्गणायां त्रिमनुष्यादिमार्गणाभिस्सहौघवदतिदेशेन प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमुक्तम् । अभव्यमार्गणायां तु मत्यज्ञानादिमार्गणाभिस्समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं गदितम् । ततः क्रमप्राप्तेषु सम्यक्त्वमार्गणासत्कोत्तरभेदेषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वस्य प्ररूपणाया अवसरः, तत्र सम्यक्त्वौघे क्षायिके औपशमिके मिथ्यात्वे च प्राक् प्रसङ्गतो व्याख्यातम् । अथ क्षयोपशमसम्यक्त्वे सम्यग्मिथ्यात्वे च प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं विभणिषुराह—

ओहिव्व वेअगे खलु आउगजसअजसवज्जणामाणं ।
सव्वत्थव्वऽण्णेसिं मीसे एमेव आउवज्जाणं ॥२८५॥ (गीतिः)

(प्रे०) "ओहिव्वे"त्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नी विहाय शेषाणां नामप्रकृतीनामल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावद्विज्ञेयम् ; तद्वदत्राऽपि अष्टाविंशत्यादिबन्धस्थानचतुष्कस्य लाभात् ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां च तुल्यत्वात् , प्रस्तुते श्रेणेरभावेन यशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽष्टाविंशतिबन्धस्थाने लाभाद्यशःकीर्तिनाम्नोऽयशःकीर्तिनाम्नश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति, एतच्च "सव्वत्थव्वऽण्णेसिं" इत्यनेन संगृहीतम् । आयुर्द्वयस्यैवात्र बन्धभावात्तयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽवधिज्ञानमार्गणावत्तुल्यो भवति । वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां श्रेणेरभावेन शेषाणां ज्ञानावरणादिषट्कर्मसत्कबन्धप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वं सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणावद् भवति । मोहनीयप्रकृतिषु कासाञ्चित्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकतया देशविरतस्य सर्वविरतस्य च प्राप्यमाणत्वेऽपि नाऽल्पबहुत्वे कश्चिद्भेदः, भावना तु यथासंभवं सर्वार्थसिद्धसुरवत्कार्या सुगमा चेति । यथा क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामल्पबहुत्वं प्राप्यते तथैव सम्यग्मिथ्यात्वे प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं विज्ञेयम् , मोहनीयं विहाय शेषाणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां बन्धस्थानादिना तुल्यत्वात् , मोहनीयप्रकृतिषु सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामेकरूपत्वात्सर्वार्थसिद्धमार्गणावदल्पबहुत्वं भवति, विशेषभावना तु सुगमा स्वयं कार्येति, आयुष्प्रकृतीनां बन्धाऽभावादुक्तम् "आउवज्जाणं" इति ॥२८५॥

अथ सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं व्याहरति—

सासाणे सव्वप्पो ओरालतणुस्स तो विसेसहियो ।
कमसो विउव्वतेअसकम्माणेवं उवगाणं ॥२८६॥
पम्हव्वऽप्पाबहुगं विण्णेयं सेसणामपयडीणं ।
दुअणाणव्वऽण्णेसिं णपुंसमिच्छत्तवज्जाणं ॥२८७॥

(प्रे०) "**सासाणे**" इत्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामेकेन्द्रियविकलेन्द्रियप्रायोग्याणामपर्याप्तप्रायोग्याणां नरकप्रायोग्याणां च बन्धो न भवति, एवमेव पद्मलेश्यामार्गणायामपि; यतः सास्वादनमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां नामप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनः पद्मलेश्यामार्गणागततत्तत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिभिस्तुल्या भवन्ति, अतोऽल्पबहुत्वमपि बन्धप्रायोग्यनामप्रकृतीनां पद्मलेश्यावद् भवति, अत्राऽऽहारकद्विकस्य बन्धाऽभावेन शरीराङ्गोपाङ्गनाम्नामल्पबहुत्वं निरूप्य शेषं पद्मलेश्यामार्गणावदतिदिशति–"पम्हव्व" इत्यादिना, अत्र शरीराङ्गोपाङ्गनाम्नामल्पबहुत्वमेवम्–औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकस्ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः । तथौदारिकाङ्गोपाङ्गस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकस्ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः । शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं पद्मलेश्यामार्गणावद्विज्ञेयम् । अत्र हुण्डकसंस्थानस्य सेवार्तसंहननस्य च बन्धाऽभावात् संस्थानपञ्चकस्य संहननपञ्चकस्य चाऽल्पबहुत्वं भवतीति । नामवर्जप्रकृतीनामल्पबहुत्वं तु मत्यज्ञानमार्गणावद्विज्ञेयम्, यद्यपि मोहनीयवर्जज्ञानावरणादिषट्कर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वस्य पद्मलेश्यावत्सद्भावस्तथाऽपि मोहनीयस्याऽल्पबहुत्वे तत्र स्त्रीवेदतः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, पुरुषवेदज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य चतुर्थादिगुणस्थानभावितया स्त्रीवेदतोऽनन्तभागाऽधिकत्वात्प्रस्तुते तु नपुंसकवेदबन्धाऽभावेन एकस्यैव द्वितीयगुणस्थानस्य सद्भावेन च स्त्रीपुरुषवेदयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवतीति न पद्मलेश्यावदतिदेशः । अत्र मत्यज्ञानमार्गणातोऽयं विशेषः–नरकायुषो नपुंसकवेदस्य मिथ्यात्वस्य चाऽत्र बन्धाऽभावादल्पबहुत्वमध्यात् तासां पदानि वर्जनीयानीति । तदेवं सम्यक्त्वमार्गणायां स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्काऽल्पबहुत्वं निरूपितम् । संज्ञिमार्गणायामाहारकमार्गणायां च त्रिमनुष्यादिमार्गणाभिस्सहाऽसंज्ञिमार्गणायां मत्यज्ञानादिमार्गणाभिस्समं तथाऽनाहारकमार्गणायां कार्मणेन सह प्रस्तुतस्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं दर्शितम् । तदेवमोघादेशाभ्यां स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशाऽल्पबहुत्वं समाप्तमिति ॥२८६-२८७॥



च सर्वमार्गणास्वपि बन्धप्रायोग्याणां दर्शनावरणप्रकृतीनां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं भावनीयम् । अन्यत्र पुनर्निद्रापञ्चकसत्कजघन्यप्रदेशबन्धविषयकाऽल्पबहुत्वे क्रमभेदो दृश्यते, तद्यथा-निद्राया जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोकस्ततः प्रचलाया विशेषाऽधिकस्ततो निद्रानिद्राया विशेषाऽधिकस्ततः प्रचलाप्रचलाया विशेषाऽधिकस्ततः स्त्यानगृद्धया विशेषाऽधिकः, उक्तं च कर्मप्रकृतिचूर्णौ "सव्वत्थोवं णिद्दाए जहण्णगं पदेसग्गं पयलाए जहण्णगं विसेसाहियं णिद्दाणिद्दाए जहण्णगं विसेसाहियं पयलापयलाए जहण्णगं विसेसाहियं थीणगिद्धीए जहण्णयं विसेसाहियं" इति. अत्र मतद्वये तत्त्वं सर्वविद्वेद्यम् । प्रस्तुते सर्वमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां दर्शनावरणसत्कोत्तरप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कस्वस्थानाऽल्पबहुत्वमोघवद्भवति, तच्च मतद्वयेन यथाऽऽगमं परिभावनीयमिति । यथाऽत्र मूलकृता प्रथममतेनैवाऽल्पबहुत्वं प्रदर्शितं तथैव परस्थानेऽपि । अतः परस्थाने द्वितीयमतेन प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं स्वयं परिभावनीयमिति । स्त्यानर्द्धयादिचक्षुर्दर्शनावरणान्तां पञ्चानां पदानामल्पबहुत्वं मतद्वये समानं ज्येष्ठप्रदेशबन्धवच्च भवतीति न तत्र विशेषः । भावनायां तु विशेषः, स्वामित्वादिना स विमर्शनीय इति ॥२८९–२९०॥

अथ मोहनीयप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वमोघतो प्रदर्शयन्नाह

दुइअभयस्सऽप्पो खलु हस्सपएसो तओ विसेमहियो ।
कमसोऽत्थि कोहमायालोहाणं ताउ उत्तकमा ॥२९१॥
तइअकसायाण तओ पढमकसायाण ताउ मिच्छस्स ।
तोऽणंतगुणो कुच्छाअ तो भयस्स उ विसेसहियो ॥२९२॥
तत्तो हस्सियराणं ताओऽत्थि रइअरईण ताहिन्तो ।
तिण्हं वेआण तओ उत्तकमांतिमकसायाणं ॥२९३॥

(प्रे०) "दुइअ" इत्यादि, ओघतो मोहनीयसत्कजघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनो मिथ्यादृष्टयः, अतो यथा मिथ्यात्वगुणस्थाने सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वं प्राप्यते तथा प्रस्तुतेऽपि । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्-अप्रत्याख्यानावरणमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोकस्ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकस्ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकस्ततोऽनन्तानुबन्धिमानस्य विशेषाऽधिकस्ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकस्ततो मिथ्यात्वस्य विशेषाऽधिकः, एतास्त्रयोदश सर्वघातिप्रकृतयस्तासूत्तरोत्तरपदेषु विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद्विभावनीयमिति । ततो जुगुप्साया

जघन्यप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, देशघातिप्रकृतित्वात्, ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च; ततो रत्यरत्योर्विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततस्त्रयाणां वेदानां विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततः सञ्ज्वलनमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकः, नोकषायतः कषायभागस्याऽधिकत्वात्, नोकषाये पञ्चविभागस्य कषाये विभागचतुष्कस्य भावान्नोकषायाऽनन्तरं कषायस्य भणनम्। सूक्ष्मसंपरायमार्गणायां मोहनीयस्य बन्धाऽभावात्तं विहाय शेषास्वेकोनसप्तत्युत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यमोहनीयप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकानामल्पबहुत्वमोघवद् भवति, यतोऽपगतवेदं विहायैतासु प्रत्येकं बन्धप्रायोग्यमोहनीयप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य यथासंभवं प्रथमाद्यष्टमान्तगुणस्थानेष्वेव भावेनाऽल्पबहुत्वस्य दलविभाजनोक्तप्रकारेण तुल्यत्वात्, इदमत्र बोध्यम् यासु मार्गणासु प्रथमगुणस्थानस्य सद्भावस्तासु तदितरगुणस्थानकानां सद्भावेऽपि त्रयाणां वेदानां जघन्यप्रदेशबन्धस्य प्रथमगुणस्थान एव भावाज्जघन्यपदे त्रयाणां वेदानां तुल्यत्वम्, एवं सास्वादनमार्गणायां वेदद्वयस्य, अपगतवेदमार्गणायां सञ्ज्वलनचतुष्कस्यैव बन्धो भवति, तेषां चतुर्णामप्यल्पबहुत्वमोघवद्भवति, तद्यथा सञ्ज्वलनमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकश्चतुर्णामपि जघन्यप्रदेशबन्धस्य युगपद्भावादल्पबहुत्वमोघवद् भवति ॥२९१–२९३॥

अथाऽऽयुश्चतुष्कस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वमाह—

तिरियणराऊहिन्तो णिरयसुराऊण उण असंखगुणो ।

(प्रे०) "तिरि" इत्यादि, तिर्यगायुषो मनुष्यायुश्च जघन्यप्रदेशबन्धः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तैकेन्द्रियस्य भावात् द्वयोरपि जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः परस्परं तुल्यश्च, ततो देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियतिरश्चामेतयोर्जघन्यप्रदेशबन्धभावेन सूक्ष्मैकेन्द्रिययोगस्थानात् तेषां योगस्थानस्याऽसंख्येयगुणत्वात्प्रदेशबन्धस्याऽसंख्यातगुणत्वं भवति, देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्ययोगस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धभावेन जघन्यप्रदेशबन्धस्य तुल्यत्वमिति ।

अथ नामप्रकृतिषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरुरूपयिषुर्गतिचतुष्कस्य प्राह

तिरियगईएऽप्पो तो विसेसअहियो णरगईण ॥२९४॥
ताउ असंखेज्जगुणो कमा सुरणिरयगईण विण्णेयो ।
जेट्ठव्वऽणुपुव्वीणं भणन्ति अण्णे गइव्व भवे ॥२९५॥

(प्रे०) "तिरि" इत्यादि, तिर्यग्गतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः, सर्वस्तोकः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तानां भवप्रथमसमये तिर्यग्गतिप्रायोग्यास्त्रिंशतं बध्नतां तज्जघन्यप्रदेशबन्धभावात्ततो मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वेऽप्येकोनत्रिंशद्बन्धे तस्य जायमानत्वात् । ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः सम्यग्दृष्टिमनुष्यो भवप्रथमसमये नाम्नो देवप्रायोग्या जिननामसहिता एकोनत्रिंशतं बध्नन् देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धं करोति, तस्य च जघन्यप्रदेशबन्धयोगस्थानं सूक्ष्मैकेन्द्रियजघन्ययोगस्थानादसंख्येयगुणम् , तथा च मनुष्यगतिजघन्यप्रदेशबन्धतो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुण एव भवति । देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धतो नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तस्य घोलमानयोगिनोऽष्टमूलप्रकृतीर्बध्नतो भवति, किञ्चापर्याप्तसंज्ञिनो जघन्ययोगस्थानतोऽसंज्ञिपर्याप्तजघन्ययोगस्थानमसंख्येयगुणम्, तथा च प्रदेशबन्धोऽपि तथेति । गतिनाम्ना सममेवाऽऽनुपूर्वीनाम्नोऽपि सर्वत्रैव बन्धभावेन यथा ज्येष्ठप्रदेशबन्धे ओघे सर्वमार्गणासु च गतिनामवदेवाऽऽनुपूर्वीनाम्नामल्पबहुत्वं प्राप्यते तथा प्रस्तुतेऽपि संगच्छते । अत्र कर्मप्रकृतिविवृत्त्यादिष्वानुपूर्वीनाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्ववत्स्पष्टोक्त्या दर्शितम्, तद्यथा- "सर्वस्तोकं जघन्यपदे देवनरकानुपूर्व्योः प्रदेशाग्रं ततो मनुजानुपूर्व्यां विशेषाऽधिकं ततोऽपि तिर्यगानुपूर्व्यां विशेषाऽधिकम्" एतत्संवादनं तु वयं न विद्मः कर्मप्रकृतिचूर्णौ "चउण्ह आणुपुव्वीणं जहा उक्कोसके तहा भाणियव्वं" इति दर्शितम्, तट्टीप्पनके श्रीमन्मुनिचन्द्रसूरिवर्यैराचार्यवचनप्रामाण्येनैतत्स्वीकृतम् , अन्यथा हेत्वादिना विचार्यमाणे तु गतिवदल्पबहुत्वं भवतीति दर्शितम् , तदक्षराणि पुनरेवम्- 'आनुपूर्वीणां च यथा गतीनां तथा वक्तव्यं । यथोत्कृष्टं तथा अपि तव्यमिति यदुक्तं चूर्णौ तत्राचार्यवचनमेव प्रमाणं अन्यद्वा [था] यथा जघन्यके गतिषु विशेष उक्तस्तथाऽत्रापि लभ्यते" इति ॥

अत्र "जहा उक्कोसगे" इत्येतच्चूर्णीकृद्वचनं यथोत्कृष्टपद आनुपूर्वीनाम्नां चतुर्णां गतिवदल्पबहुत्वं भवति तथा जघन्यपदेऽपि चतुर्णामानुपूर्वीनाम्नां गतिवदल्पबहुत्वं भवतीत्यर्थकं स्यात्तदा हेतुना घटितं स्यान्न च तथा टीप्पनककृता तत्तथा दर्शितमिति । तत्त्वं पुनस्तद्विदो विदन्ति । गाथार्थस्तु सुगमः स्वयं परिभावनीयश्चेति ॥२१४-२१५॥

अथ जात्यादिनाम्नां स्वस्थानजघन्यप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वमोघतः प्राह--

जाइचउगस्स थोवो तत्तो एगिंदियस्स अब्भहियो ।
उरलतणुत्तो कमसो अब्भहियो तेअकम्माणं ॥२१६॥
विउवाहारतणूणं कमा असंखियगुणो उवंगाणं ।

एमेव विसेसहियो थावरचउगाउ तसचउगा ॥२९७॥

(प्रे०) "जाइ" इत्यादि, चतुर्णां द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यवसानानां जातिनाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, पञ्चानां जातिनाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तैकेन्द्रियत्वेन तुल्यत्वेऽपि जातिचतुष्कस्य जघन्यप्रदेशबन्धं नाम्नस्तिर्यग्गतिप्रायोग्यास्त्रिंशतं बध्नन् करोति; एकेन्द्रियजातेर्जघन्यप्रदेशबन्धं तु षड्विंशतिं बध्नन्, अतो भाजकराशेराधिक्याज्जातिचतुष्कस्य जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोकः, एकेन्द्रियजातेर्जघन्यप्रदेशबन्धे तु भाजकराशेरल्पत्वात् जघन्यपदे प्रदेशाग्रं पूर्वतो विशेषाऽधिकं भवतीति। उत्कृष्टपदेऽप्यल्पबहुत्वमेवमेव भवति, तत्राऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाले द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कबन्धकाले भाजकराशेरधिकत्वात्, एकेन्द्रियज्येष्ठप्रदेशबन्धकाले भाजकराशेरल्पत्वाच्चेति।

औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततस्तैजसस्य विशेषाऽधिकं प्रदेशाग्रं ततः कार्मणशरीरस्य प्रदेशाग्रं विशेषाऽधिकं भवति, त्रयाणां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामेकरूपत्वेऽपि प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्वं विभावनीयमिति। ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, पूर्वपदत्रये सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तानां भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धभावात्प्रस्तुते तु संज्ञिकरणाऽपर्याप्तस्य सम्यग्दृष्टेर्भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धभावेन तज्जघन्ययोगस्य पूर्वपदगतजघन्ययोगतोऽसंख्येयगुणत्वाज्जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽसंख्येयगुणत्वमिति, तत आहारकशरीरस्य जघन्यपदे प्रदेशाग्रमसंख्येयगुणं संयतस्यैवाऽस्य बन्धभावेन संज्ञिपर्याप्तसत्कघोलमानजघन्ययोगस्य पूर्वतोऽसंख्येयगुणत्वात् प्रस्तुतेऽष्टविधमूलप्रकृतिबन्धकत्वेऽप्यसंख्येयगुणत्वमिति।

अथाऽङ्गोपाङ्गनाम्नोऽल्पबहुत्वं दर्शयति "उवगाणं एमेव" त्ति, अङ्गोपाङ्गत्रयस्याऽल्पबहुत्वं शरीरनामवद्भवति; सर्वत्र वैक्रियाऽऽहारकशरीरबन्धकालेऽवश्यं तदङ्गोपाङ्गस्य बन्धादौदारिकशरीरजघन्यप्रदेशबन्धस्य नाम्नस्त्रिंशद्बन्धस्थाने भावेन तत्राऽप्यवश्यमङ्गोपाङ्गस्य बन्धलाभात्। अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य जघन्यपदे प्रदेशाग्रं सर्वस्तोकं ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्याऽसंख्येयगुणं तत आहारकाङ्गोपाङ्गस्याऽसंख्येयगुणमिति।

अथ त्रसचतुष्कस्थावरचतुष्कयोरल्पबहुत्वं दर्शयति—"विसेसहियो" इत्यादि, त्रसचतुष्कस्य जघन्यप्रदेशाग्रं सर्वस्तोकं त्रसादियुगलचतुष्कस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वेऽपि त्रसादिचतुष्कस्य त्रिंशद्बन्धे जघन्यप्रदेशबन्धभावात्स्तोकत्वं ततः स्थावरस्य षड्विंशतौ सूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणनाम्नां च पञ्चविंशतौ जघन्यप्रदेशबन्धभावेन स्थावरचतुष्कस्य जघन्यप्रदेशाग्रं विशेषाऽधिकं भवति, विशेषतो भावना स्वयं कार्या सुगमा चेति ॥२९६-२९७॥

अथ शेषप्रकृतीनां जघन्यपदे प्रदेशाग्राऽल्पबहुत्वमोघतो निरूप्य समापयति

लाहाइगविग्घाणं कमा विसेसाहियोऽजविग्घत्तो ।
वण्णाईण गुरुव्व छपत्तोआण ण समोऽण्णेसिं ॥२१८॥

(प्रे०) "लाहाइग" इत्यादि, दानान्तरायस्य जघन्यप्रदेशाग्रं सर्वस्तोकं ततो लाभान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो भोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततः परिभोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, अत्र पदचतुष्टये विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद्विज्ञेयमिति, सर्वमार्गणासु पञ्चाऽन्तरायाणामल्पबहुत्वमेवमेव भवति । उत्कृष्टपदेऽपि पञ्चानामन्तरायाणां यथाऽल्पबहुत्वं भवति तथैव जघन्यपदेऽपि. अत उत्कृष्टवदतिदिष्टेऽपि कृतार्थता स्यात् । कर्मप्रकृतिचूर्ण्यादिषु तथैवाऽतिदेशेन दर्शितम् । "वण्णाईणे"त्यादि, वर्णादिचतुष्कस्य तु प्रत्येकमेकैकत्वेन विवक्षणात् स्वस्थानेऽल्पबहुत्वं न भवति, स्वस्वावान्तरप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कस्वस्थानाऽल्पबहुत्वं तु ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कस्वस्थानाऽल्पबहुत्ववद्विज्ञेयमिति । पञ्चसंघातननाम्नां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं शरीरनामवद्विज्ञेयम् । एवं पञ्चानां बन्धननाम्नामपि । यदि पुनः पञ्चदशबन्धननामानि विवक्ष्यन्ते तदाऽल्पबहुत्वं पुनरेवम्—औदारिकौदारिकबन्धनस्य जघन्यप्रदेशाग्रं बन्धे सर्वस्तोकं तत औदारिकतैजसस्य विशेषाऽधिकं तत औदारिककार्मणस्य विशेषाऽधिकं तत औदारिकतैजसकार्मणबन्धनस्य विशेषाऽधिकं ततस्तैजसतैजसस्य विशेषाऽधिकं ततस्तैजसकार्मणस्य विशेषाऽधिकं ततः कार्मणकार्मणबन्धनस्य विशेषाऽधिकं ततो वैक्रियवैक्रियस्याऽसंख्येयगुणं ततो वैक्रियतैजसस्य विशेषाऽधिकं ततो वैक्रियकार्मणस्य विशेषाऽधिकं ततो वैक्रियतैजसकार्मणबन्धनस्य विशेषाऽधिकं तत आहारकाऽऽहारकबन्धनस्याऽसंख्येयगुणं तत आहारकतैजसबन्धनस्य विशेषाऽधिकं तत आहारककार्मणबन्धनस्य विशेषाऽधिकं तत आहारकतैजसकार्मणबन्धनस्य विशेषाऽधिकम्, अत्र शरीरनामाऽनुसारेण प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं भावनीयं सुगमं चेति । "छ पत्तेआणाण" इति, उद्योतनाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, त्रिंशद्बन्धस्थाने तज्जघन्यप्रदेशबन्धभावात् तत आतपनाम्नो विशेषाऽधिकः षड्विंशतौ तल्लाभात् । षण्णां प्रत्येकप्रकृतीनां प्रस्तुतेऽल्पबहुत्वं नाऽस्ति, यत इदमल्पबहुत्वं सजातीयप्रकृत्यपेक्षया प्रतिपक्षप्रकृत्यपेक्षया वा, न चैताः परस्परं सजातीया अभिन्नैकमूलपिण्डप्रकृत्यभावात्; नाऽपि विरुद्धाः, युगपदपि बन्धसंभवात् । परस्थानाऽल्पबहुत्वविषयत्वादासामिति भावः । "समो" इत्यादि, मतिज्ञानावरणादिविंशत्युत्तरशतप्रकृतिभ्यो यासामल्पबहुत्वं पादोनद्वादशगाथाभिर्न दर्शितं तासां समानजातीयप्रकृतिभिः सप्रतिपक्षप्रकृतिभिः सह तुल्यबन्धस्थाने तासां जघन्यप्रदेशबन्धभावेन जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वात्तासां परस्परं तुल्यं प्रदेशाग्रं भवति । शेषप्रकृतयो नामतः पुनरिमाः-वेदनीयद्वय-गोत्रद्वय--संहननषट्क-संस्थानषट्क—खगतिद्वयं-स्थिरादिषड्युगलानि । तदेवमोघतो जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं समाप्तम् ॥२१८॥

अथ मार्गणासु तन्निरूपयन्नाह

ओघव्वऽप्पाबहुगं सप्पाउग्गाण लहुपएसस्स ।
तिरियदुपणिंदियतिरियतिणरदुपंचिंदियतसेसुं ॥२९९॥
कायउरलदुगकम्मदुवेअचउकमायअजयचक्खूसुं ।
अणयणतिअसुहलेसाभविसण्णाहारइयरेसुं ॥३००॥
णवरं पज्जपणिंदियतिरियणरपणिंदिपुरिसमणुसीसुं ।
चउआऊणं तुल्लं सुरणिरयदुगाण उण णपुमे ॥३०१॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, तिर्यगोघ--पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघ--पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्--मनुष्यौघ-पर्याप्तमनुष्य-मानुषी--पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसकायौघ-पर्याप्तत्रसकाय-काययोगौघौ-दारिकौ-दारिकमिश्र-कार्मणकाययोग--पुरुषवेद-नपुंसकवेद-कषायचतुष्का--ऽसंयम-चक्षुर्दर्शना-ऽचक्षुर्दर्शना-ऽशुभलेश्यात्रिक--भव्य-संज्ञ्या--हारकाऽनाहारकमार्गणासु त्रिंशति बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां स्वासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, तद्यथा--यथौघे आयुर्वर्जमतिज्ञानावरणादीनां सप्तोत्तरशतस्य तुल्यैकयोगस्थाने यद्यद्बन्धस्थाने च जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, तथैव कथितत्रिंशन्मार्गणास्वपि मार्गणाप्रायोग्यजघन्ययोगस्थानरूपे तुल्यैकयोगस्थाने तत्तद्बन्धस्थान एव च जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, अतोऽल्पबहुत्वमपि स्वामिनां कथञ्चिद्भेदेऽपि तुल्यमेव । औदारिकमिश्रकार्मणाऽनाहारकमार्गणात्रयं विहाय शेषसप्तविंशतौ नरकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिन ओघवदेव भवन्ति, ओघवच्च देवद्विकजघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थानतो नरकद्विकजघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थानस्याऽसंख्येयगुणत्वं भवति । नपुंसकवेदं विहाय शेषैकोनत्रिंशन्मार्गणासु देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थानस्य संज्ञिनः करणाऽपर्याप्तकस्यैव भावेन तिर्यग्द्विकमनुष्यद्विकजघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थानतोऽसंख्येयगुणत्वात् , तिर्यग्मनुष्यद्विकाभ्यां देवद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्ध ओघवदसंख्येयगुणो भवति, केवलं मानुषीमार्गणायां श्रीमन्मल्लिजिनपत्यादिवत्क्वचिद् विज्ञेयम् । प्राचुर्यमधिकृत्य तु देवनरकगत्योर्जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवतीति । आहारकद्विकस्य यत्र बन्धो भवति, तत्रौघवद्भवति । वैक्रियद्विकजघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थानतोऽसंख्येयगुणयोगस्थानेऽस्य जघन्यप्रदेशबन्धो लभ्यत इति ।

नपुंसकवेदमार्गणायां देवद्विकनरकद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति, पर्याप्ताऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामेव घोलमानयोगिनामष्टविधबन्धकानामेव तयोर्जघन्यप्रदेशबन्धभावादित्यपवाद-

भणनम्। आयुष्कसत्काऽल्पबहुत्वे कार्मणाऽनाहारकयोर्बन्धाऽभावात्, औदारिकमिश्रे तिर्यग्मनुष्यायुर्द्विकस्यैव बन्धभावेन तयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्य तुल्यस्वामित्वेन तुल्यप्रदेशबन्धो भवति। तथा पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्-पर्याप्तमनुष्य-मानुषी-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-पुरुषवेदमार्गणासु पञ्चसु चतुर्णामायुषां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वात्तुल्यजघन्यप्रदेशबन्धो भवतीत्यत्राऽप्यपवादभणनम्। शेषतिर्यगोघादिद्वाविंशतिमार्गणासु चतुर्णामप्यायुषामोघवदल्पबहुत्वं भवति, द्वयोर्द्वयोरायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां भिन्नत्वात् तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुण इति। एवं संक्षेपतः सविशेषा भावना विहिता, विस्तरतस्तु सा स्वयमेवौघानुसारेण कार्या इति॥२९९-३०१॥ अथ नरकौघादिमार्गणासु जघन्यपदे प्रदेशाग्रस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

णिरयऽज्जजइणिरयेसुं हासपएसस्स अत्थि अप्पबहू।
ओघव्व आइमदुइअतइअतुरिअगोअविग्घाणं ॥३०२॥
तिरियजुगलस्स थोवो तओ विसेसाहियो णरदुगस्स।
ण उरलुवंगपणिंदियसगपत्तेअतसचउगाणं ॥३०३॥
ओरालतणुस्सऽप्पो तओ विसेसाहियो मुणेयव्वो।
तेअसकम्माण कमा सेससजाईण तुल्लोऽत्थि ॥३०४॥

(प्रे०) "णिरये"त्यादि, नरकौघे प्रथमादिषष्ठान्तनरकमार्गणासु च नामकर्माऽऽयुष्कर्म च विहाय शेषाणां षड्मूलकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धसत्काऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, सर्वमार्गणासु ज्ञानावरणादिषट्कर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां स्वस्थानाऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, स्वामिनां भिन्नत्वेऽपि भवप्रथमसमयादिना यथासंभवं प्रकृतीनामाधिक्येनाल्पबहुत्वस्य तुल्यत्वात्, भावना त्वोघानुसारेण स्वामित्वमवगम्य स्वयं कार्या, सुगमा चेति। तिर्यग्द्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, भवप्रथमसमये त्रिंशतं बध्नता तज्जघन्यप्रदेशबन्धलाभात्। ततो मनुष्यद्विकस्य विशेषाऽधिकः, एकोनत्रिंशद्बन्धे तस्य प्राप्यमाणत्वात्, एतच्च द्वितीयतृतीयनरकमार्गणयोः सम्यग्दृशामनुत्पादप्रतिपादकपराणां श्रीजीवसमासादीनामभिप्रायेण विज्ञेयम्। तदुत्पादं स्वीकुर्वतां मतेन तु मनुष्यद्विकस्यापि जघन्यप्रदेशबन्धस्य त्रिंशद्बन्धे संभवेन तिर्यग्मनुष्यगत्योस्तुल्यः प्रदेशबन्धो द्वितीयतृतीयनरकयोर्भवतीति। पञ्चेन्द्रियजातिनामौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसचतुष्कनाम्नामल्पबहुत्वं नाऽस्ति, आसां प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धाऽभावात्। एवं बन्धप्रायोग्याणां सप्तप्रत्येकनाम्नामप्यल्पबहुत्वं नैव भवति, परस्परं सजा-

तीयत्वेन सप्रतिपक्षत्वेन वाऽभवनात् । औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणस्य विशेषाऽधिकः, त्रयाणां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वेऽपि प्रकृतिविशेषाद् न्यूनाऽधिकत्वं विज्ञेयम् । उक्तशेषाणां नाम्नां स्वस्वसमानजातीयप्रकृतिभिस्सह परस्परं तुल्य एव जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, शेषनाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वात्तुल्यैकबन्धस्थाने तासां जघन्यप्रदेशबन्धभावाच्च । शेषा नामप्रकृतयो पुनरिमाः— संहननषट्कं संस्थानषट्कं खगतिद्वयं स्थिरषट्कमस्थिरषट्कं चेति षड्विंशतिः । वर्णादिचतुर्णां तु प्रस्तुत एकैकविवक्षायां तदल्पबहुत्वं नाऽस्ति, तदवान्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वजिज्ञासायां त्वपगतवेदसूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणाद्वये वर्णचतुष्कस्य तदवान्तरप्रकृतीनां च बन्धाऽभावात्ते मार्गणे विहाय शेषास्वष्टपञ्चाशदुत्तरशतमार्गणासु वर्णादिचतुष्कसत्कविंशतेस्तदुत्तरप्रकृतीनां स्वस्थानाऽल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयमिति । अत्र मार्गणासप्तके तिर्यग्मनुष्यायुषोर्बन्धः, ते चाऽऽयुःप्रकृतिमधिकृत्य परस्परं सजातीयप्रकृती, अतस्तयोः परस्परं तुल्यजघन्यप्रदेशबन्धो भवति तुल्यैकयोगस्थाने तयोर्जघन्यप्रदेशबन्धभावात् । एतदपि **'सेससजाईण तुल्लोऽत्थि'** इत्यनेन मूलकृता संगृह्य दर्शितमिति । विस्तरभावना स्वामिनमवगम्य स्वयं कार्या सुगमा चेति ॥३०२-३०४॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायां प्राह

णाउस्स तमतमाए तिरिदुगणीआउ सपडिवक्खाणं ।
अत्थि असंखेज्जगुणो णिरयव्व हवेज्ज सेसाणं ॥३०५॥

(प्रे०) **"णाउस्से"**त्यादि, सप्तमनरकमार्गणायां मनुष्यायुषो बन्धाऽभावेन केवलं तिर्यगायुष एव बन्धभावादायुष्कर्मणोऽल्पबहुत्वं नाऽस्ति । तथाऽत्र मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोर्बन्धस्य तृतीयचतुर्थगुणस्थानयोरेव भावेन तयोः प्रस्तुते पर्याप्ताऽवस्थायामेव लाभात्तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रयोर्बन्धस्य भवप्रथमसमयेऽपि लाभेन तिर्यग्द्विकादिप्रकृतित्रिकस्य बन्धप्रायोग्यजघन्ययोगस्थानतो मनुष्यद्विकादिप्रकृतित्रयबन्धप्रायोग्यजघन्ययोगस्याऽसंख्येयगुणत्वात्तिर्यग्गतिसकाशाद् मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणो भवति, एवमानुपूर्वीद्विकस्य गोत्रद्विकस्य चेति, शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावद्विज्ञेयं तद्वदत्राऽपि भवप्रथमसमय एव शेषबन्धप्रायोग्याणां जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभाज्जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां बन्धस्थानानां तुल्यत्वाच्चाऽतिदेशस्य साङ्गत्यमिति ॥३०५॥

अथ तिर्यग्मार्गणाभेदेष्वल्पबहुत्वस्य निरूपणाऽवसरः, तत्र तिर्यग्गत्योघ-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्गत्योघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणास्वोघवदल्पबहुत्वस्य दर्शितत्वात्तिरश्चीमार्गणायां तथा तत्तुल्यप्रायोवक्तव्यत्वादन्यास्वपि मार्गणासु सममेवाऽऽह

ओघव्व तिरिच्छीए दुअणाणाभवियमिच्छअमणेसुं ।
णामरहियाण णवरं आऊण समो तिरिच्छीए ॥३०६॥
तिरियगईए थोवो तओ विसेसाहियो णरगईए ।
ताउ असंखेज्जगुणो णिरयसुरगईण विण्णेयो ॥३०७॥
एवं अणुपुव्वीणं ओरालतणुस्स अत्थि सव्वप्पो ।
तत्तो कमसो तेअमकम्मतणूणं विसेसहियो ॥३०८॥
ताउ असंखेज्जगुणो वेउव्वतणुस्सुवंगणामाणं ।
एमेवोघव्व भवे सेसाणं णामपयडीणं ॥३०९॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, तिरश्चीमार्गणायां मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धाऽऽल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम् । तद्यथा—मतिज्ञानावरणादिसप्तोत्तरशतस्य ये ओघे जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनस्त एव मत्यज्ञानादिपञ्चमार्गणास्वपि, तिरश्चीमार्गणायां पुनरोघोक्तस्वामिनामलाभेऽपि भवप्रथमसमय एव तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावाद् बन्धस्थानानां तुल्यत्वाच्चाऽल्पबहुत्वं तुल्यमेव भवति । नरकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनो मार्गणाषट्के यद्यप्योघतुल्या एव भवन्ति; तथाऽपि देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धो नौघवत्संज्ञिनः सम्यग्दृष्टेर्भवप्रथमसमये जायते, किन्तु मार्गणापञ्चके सम्यग्दृष्टीनामेवाऽप्रवेशात्तिरश्च्यां पुनर्भवप्रथमान्तर्मुहूर्ते सम्यक्त्वस्याऽभावाच्च मार्गणाषट्केऽपि देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धमसंज्ञिपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः कुर्वन्ति, अतो देवद्विकजघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनः नरकद्विकजघन्यप्रदेशबन्धस्वामिना सह तुल्ययोगवत्त्वेन तुल्यबन्धस्थानयुक्तत्वेन च देवनरकगत्योर्जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवतीति विशेषः, पूर्वपदतोऽसंख्येयगुणत्वं त्वोघवदेव । एवमानुपूर्वीद्वयस्याऽपि विज्ञेयम् । वैक्रियद्विके पुनः स्वामिनो भिन्नत्वेऽपि शरीराङ्गोपाङ्गनाम्नोरल्पबहुत्वे नौघतः कश्चिद्विशेषः; केवलमत्राऽऽहारकद्विकस्य बन्धाऽभावात्तत्सत्कमल्पबहुत्वं न वाच्यमिति । तथा तिरश्चीमार्गणायां लब्ध्यपर्याप्तस्याऽभावेन चतुर्णामायुषां जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकस्य भावेन तुल्यैकयोगस्थाने तासां जघन्यप्रदेशबन्धभावात्तुल्यप्रदेशबन्धो भवतीति विशेषोऽपवादरूपेण दर्शित इति । उक्तमार्गणाषट्क आहारकद्विकजिननामरहिताः सप्तदशोत्तरशतप्रकृतय एव बध्यन्त इत्याहारकद्विकस्याऽभणनं विज्ञेयमिति । शेषाऽल्पबहुत्वं चौघानुसारेण यथासंभवं विभावनीयमिति ॥३०६-३०९॥

अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयिषुराह

अपमत्तपणिंदितिरियमणुमपणिंदियतसेसु सव्वेसु ।
एगिंदियविगलेसु सव्वेसु पंचकायेसु ॥३१०॥
णिरयव्वाउगइतणुउवंगऽणुपुव्वीण अत्थि ओघव्व ।
सेसाण णवरि आउगगइअणुपुव्वीण णोऽग्गिवाऊसु ॥३११॥ (गीतिः)

(प्रे०) "अपमत्ते"त्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणादिनवपञ्चाशन्मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धमल्पबहुत्वस्थानाऽल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम् । बन्धप्रायोग्याः प्रकृतयः पुनः पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणासु नवोत्तरशतं तेजोवायुकायमल्कचतुर्दशमार्गणासु च मनुष्यत्रिकोच्चैर्गोत्रयोर्बन्धाऽभावात्पञ्चोत्तरशतम्, ओघवदतिदेशस्तु कासुचिदोघोक्तस्वामिनां प्रवेशात्कासुचिदोघोक्तस्वामिनां प्रवेशाऽभावेऽप्योघवज्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां भवप्रथमसमयवर्तित्वादिना बन्धस्थानादिना च तुल्यत्वात् । अत्र गतिनामादिपिण्डप्रकृतिषु नरकमार्गणावदतिदेशस्तु गत्यादिबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां नरकमार्गणया सह समानत्वाद् अङ्गोपाङ्गाऽल्पबहुत्वस्य निषेधार्थं च । तेजस्कायवायुकायमल्कचतुर्दशमार्गणासु मनुष्यगत्यादिप्रकृतिचतुष्कस्य बन्धाऽभावेन तिर्यक्त्रिकनीचैर्गोत्रयोरत्राऽल्पबहुत्वाऽभावः प्रतिपक्षप्रकृत्यभावात् । गाथार्थस्तु सुगमः । एवं तिर्यग्मार्गणाभेदेषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं समाप्तम् । त्रिमनुष्यमार्गणास्वोघवत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं प्राक् प्रदर्शितम् । अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायामत्रैव प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं कथितमिति ॥३१०-३११॥

अथ देवौघादिमार्गणासु तन्निरूपयन्नाह

सुरईसाणतविउव्वदुगेसु अत्थि तिरिणरदुगाण समो ।
णवरि सुरे भवणतिगे विसेसअहियो णरदुगस्स ॥३१२॥
पडिवक्खाण पणिंदियतसाउ णेयो विसेसअहियो उ ।
उज्जोआओ आयवणामस्सऽणणाण णिरयव्व ॥३१३॥

(प्रे०) "सुरे"त्यादि, देवौघमार्गणायां भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्कदेवभेदत्रये सौधर्मेशानदेवलोकद्वये वैक्रियकाययोगे तन्मिश्रे चेति मार्गणाऽष्टके तिर्यग्गतेर्मनुष्यगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति, तुल्यैकयोगस्थाने त्रिंशत्प्रकृत्यात्मकबन्धस्थाने च द्वयोरपि जघन्यप्रदेशबन्धभावात् । केवलं देवगत्योघे असंज्ञिपश्चात्कृतस्य विग्रहगतौ वर्तमानस्य तयोर्जघन्यबन्धभावेन भवनपत्यादिदेवमार्गणात्रये तु जिननाम्नो बन्धाभावेनोक्तमार्गणाचतुष्के मनुष्यगतेरेकोनत्रिंशद्बन्धे जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभात्तिर्यग्गतितो मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको विज्ञेय इति, एवमानुपूर्वीनाम्नोऽपि भावनीयम् । पञ्चेन्द्रियनाम्नो जघन्यप्रदेशाग्रं सर्वस्तोकम्,

एकेन्द्रियजातेर्जघन्यप्रदेशाग्रं विशेषाऽधिकम् । एवं त्रसनाम्नो जघन्यप्रदेशाग्रं सर्वस्तोकं ततः स्थावरनाम्नो विशेषाऽधिकम् , भावना त्वोघवद्भावनीयेति । उद्योतनाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, त्रिंशद्बन्धे तस्य जायमानत्वात् , तत आतपनाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, षड्विंशतौ तल्लाभात् । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं तु नरकमार्गणावद्विज्ञेयम् , उभयत्र बन्धप्रायोग्यशेषप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यबन्धस्थानस्य च समानत्वात् । अत्र सर्वाऽल्पबहुत्वस्य नरकौघवदनतिदेशस्त्वेकेन्द्रियस्थावराऽऽतपनाम्नामत्र बन्धभावेन पञ्चेन्द्रियजातित्रसनामोद्योतनाम्नां तत्राऽप्रतिपक्षत्वेनाऽल्पबहुत्वस्य निषिद्धत्वेऽपि प्रस्तुते तासां सप्रतिपक्षत्वेनाऽल्पबहुत्वस्य भावादिति । एवं नरकगतौ मार्गणाजघन्ययोगेऽसंज्ञित्वपश्चात्कृतस्यैव भावेन सम्यग्दृशां च तत्राऽसंभवान्मनुष्यद्विकजघन्यप्रदेशबन्धकाले जिननाम न बध्नाति, प्रस्तुते सौधर्मदेवादिमार्गणाचतुष्के मार्गणाप्रायोग्यजघन्ययोगे सम्यग्दृशामपि संभवात्तदा च जिननाम्नो बन्धस्याऽपि भावाद् , मनुष्यद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वे नरकौघतो विशेष इति तमपि प्रदर्श्य शेषं नरकौघवदतिदिष्टम् ॥३१२-३१३॥

अथ सनत्कुमारादिषण्मार्गणासु निरूपयन्नाऽऽह

णिरयव्वऽप्पाबहुगं　　तइआइगअट्ठमंतदेवेसुं　।
णवरि दुगईण तुल्लो एवं दोण्हाणुपुव्वीणं　॥३१४॥

(प्रे०) "णिरयव्वे"त्यादि, सनत्कुमारादिसहस्रारान्तासु षट्सु मार्गणासु बन्धप्रायोग्याः प्रकृतयो नरकमार्गणासमाना भवन्ति, तासामल्पबहुत्वमपि कथञ्चित्स्वामिनां भेदेऽपि तत्समानमेव विज्ञेयम् । केवलं तत्र सम्यग्दृशां जघन्ययोगस्थानस्याऽलाभेऽपि प्रस्तुते तल्लाभात्तिर्यग्द्विकमनुष्यद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं सौधर्मदेवमार्गणावद्भवति, तद्वदत्राऽपि मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धस्य तिर्यग्गतिनामवन्नामस्त्रिंशद्बन्धस्थाने लाभात् , गतिद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति, एवमानुपूर्व्योरपि भावनीयमिति । शेषाऽल्पबहुत्वं तु नरकगतिवद्यथासंभवं भावनीयमिति ॥३१४॥

अथाऽऽनतादिषु नवमग्रैवेयकान्तासु त्रयोदशमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाऽऽह

संघयणआगिईसुं　गेविज्जंतेसु　आणयाईसुं　।
थोवो पढमस्स तओ पंचऽण्णेसिं विसेसहिओ ॥३१५॥
असुहस्स विसेसहियो सुहाउ खगइसुहगाइजुगलतिगे ।

ण णरदुगस्सऽप्पबहू हवेज्ज णिरयव्व सेसाणं ॥३१६॥

(प्रे०) "संघयणे"त्यादि, आनतादित्रयोदशमार्गणासु तिर्यक्त्रिको-द्योतनाम्नां बन्धो नाऽस्ति, अतस्तिर्यग्गतिप्रायोग्य त्रिंशतो बन्धस्थानमपि नाऽस्ति, अतः सम्यग्दशां बन्धाऽप्रायोग्याणां नामप्रकृतीनामल्पबहुत्वे नरकौघतो विशेषः, तद्यथा—वज्रर्षभनाराचस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, त्रिंशतं बध्नतस्तद्भावात्, ततो द्वितीयादिसंहननपञ्चकस्य विशेषाऽधिकः, एकोनत्रिंशद्बन्धे तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभात् । एवमाद्यसंस्थानस्याऽल्पः, शेषसंस्थानपञ्चकस्य विशेषाऽधिकः । सुखगतेः सुभगत्रिकस्य च स्तोकस्तत्प्रतिपक्षस्य कुखगतेर्दुर्भगत्रिकस्य च विशेषाऽधिकः । तथा मनुष्यत्रिकस्य प्रतिपक्षप्रकृत्यभावादल्पबहुत्वं नाऽस्ति । शेषाऽल्पबहुत्वं तु नरकमार्गणावद्विज्ञेयम् । स्वामिनां भेदाद् भावना त्वत्रोपयुज्य कार्या सुगमा चेति ॥३१५-३१६॥

अथाऽनुत्तरसुरमार्गणापञ्चके प्रस्तुतमाह

पणऽणुत्तरेसु णेयो आइमतइअचरमाण ओघव्व ।
पयलाए सव्वप्पो णिद्दाए केवलस्स तओ ॥३१७॥
कमसो विसेसअहियो णेयो ताउ अवहिस्सऽणंतगुणो ।
तत्तो विसेसअहियो अचक्खुचक्खूण होइ कमा ॥३१८॥
दुइअमयरस हवेज्जा सव्वत्थोवो तओ विसेसहियो ।
दुइआण कोहमायालोहाण कमा मुणेयव्वो ॥३१९॥
तत्तो पुव्वुत्तकमा तइअकसायाण ताउ कुच्छाए ।
णेयो अणंतगुणिओ तओ भयस्स य विसेसहियो ॥३२०॥
तत्तो हस्सियराणं तो रइअरइपयडीण ताहिन्तो ।
पुरिसस्स तओ णेयो चरमकसायाण उत्तकमा ॥३२१॥
णिरयव्व हवेज्जा तणुचउवण्णाइतिथिराइजुगलाणं ।
णेव भवे अप्पबहू गोआउगसेसणामाणं ॥३२२॥

(प्रे०) "पणे"त्यादि, अनुत्तरमार्गणापञ्चके केवलं चतुर्थगुणस्थानकमेव भवति, तासु पञ्चसु मार्गणासु ज्ञानावरणवेदनीयाऽन्तरायाणां जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं सर्वमोघवद् भवति । दर्शनावरणमोहनीययोर्बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद् भवति, तथाऽपि सार्ध-

गाथाचतुष्केण तद्भणनं त्वबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां वर्जनार्थम् । भवप्रथमसमये तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वमवधार्य ओघानुसारेण यथासंभवं भावना कार्येति। आयुःकर्मणो गोत्रकर्मणश्चैकैकप्रकृतेर्बन्धभावेन तत्राऽल्पबहुत्वं नाऽस्ति। नामप्रकृतिषु शरीरत्रयस्य वर्णादिचतुष्कसत्काऽवान्तरप्रकृतीनां स्थिरादियुगलत्रयस्य चाऽल्पबहुत्वं नरकमार्गणावद्विज्ञेयम्, तद्वदत्राऽप्यासां त्रिंशद्बन्धस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धभावात्तत्तत्पिण्डप्रकृतेरवान्तरप्रकृतीना समानत्वाच्च । भावनाऽपि तद्वद्यथासंभवं कार्या । मनुष्यगत्यादेर्विंशतेर्नामप्रकृतीनां तु प्रतिपक्षप्रकृत्यभावेनाऽल्पबहुत्वं नाऽस्ति। विंशतिर्नामप्रकृतयः पुनरिमाः-मनुष्यगति-पञ्चेन्द्रियजातिनामौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-वज्रर्षभनाराचसंहनन-समचतुरस्रसंस्थान-सुखगतिनाम--मनुष्यानुपूर्व्य-गुरुलघूपघात-पराघातो-च्छ्वास-जिननाम-निर्माणनाम-त्रसचतुष्क--सुभगत्रिकनामानीति । शेषभावना तु सुगमा स्वयं कार्येति । तदेवं गतिमार्गणाभेदेषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं समाप्तम् । इन्द्रियमार्गणाभेदेषु कायमार्गणाभेदेषु च प्रसङ्गतोऽल्पबहुत्वं दर्शितम् ॥३१७-३२२॥ साम्प्रतं मनोयोगादिमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाऽऽह

आऊण समो पणमणतिवयेसुं गइदुगा विसेसहियो ।
सुरणिरयगईण कमा हवेज्ज एवमणुपुव्वीणं ॥३२३॥
विउव्वाउ विसेसहियो आहारगतेअकम्मउरलाणं ।
कमसोऽत्थि उवंगाण तहेव ओघव्व सेसाणं ॥३२४॥

(प्रे०) "आऊण" इत्यादि, मनोयोगौघश्चत्वारस्तदुत्तरभेदाः सत्यासत्यमिश्रवचनयोगाश्चेत्यष्टसु मार्गणासु करणपर्याप्तसंज्ञिन एव सद्भावः, तथा सर्वासां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धे योगस्थानस्य तुल्यत्वमष्टमूलप्रकृतिबन्धकत्वं च भवति, अतः प्रस्तुताऽल्पबहुत्वे प्रकृतिविशेषत्वमुत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानस्य न्यूनाऽधिकत्वं च हेतुतया विज्ञेयम् ।

तत्र नामाऽऽयुर्वर्जानां षट्कर्मसत्कसर्वोत्तरप्रकृतीनां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघवद्भवति, तत्र दर्शनावरणे नव बध्नतस्तथा मोहनीये द्वाविंशतिं बध्नत एव जघन्यप्रदेशबन्धभावादोघवदल्पबहुत्वं भवति, भावना तु प्रस्तुतस्वामित्वमवगम्यौघानुसारेण यथासंभवं स्वयं कार्येति । ज्ञानावरणाऽन्तराययोः प्रकृतिविशेषादल्पबहुत्वं विज्ञेयम् । वेदनीययोर्द्वयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति, एवं गोत्रयोरपि । चतुर्णामायुषां जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्य एव भवति, तुल्यैकयोगस्थाने तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य जायमानत्वात्, युगपन्नानाप्रकृतीनां बन्धाऽभावेन न प्रकृतिविशेषस्य हेतुत्वम्, न वा बन्धस्थानन्यूनाऽधिकताया हेतुत्वमिति, आयुर्मूलप्रकृतिलब्धसर्वभागस्य बध्यमानायुषि लाभात्तुल्यत्वं चतुर्णामायुषां जघन्यप्रदेशबन्धस्येति ।

नामप्रकृतिष्वल्पबहुत्वं पुनरेवम्–तिर्यग्मनुष्यगत्योर्जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः परस्परं तुल्यश्च; त्रिंशद्बन्धस्थाने द्वयोरपि जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावात्ततो देवगतेर्विशेषाऽधिक एकोनत्रिंशद्बन्धे तस्य जायमानत्वात्, ततो नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतौ भावादिति । एवं चतुर्णामानुपूर्वीनाम्नामल्पबहुत्वं विभावनीयमिति । वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, एकत्रिंशद्बन्धस्थाने वैक्रियाऽऽहारकतैजसकार्मणशरीरचतुष्टयस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य युगपद्भावेऽपि प्रकृतिविशेषादुत्तरोत्तरविशेषाऽधिकत्वं भवति, अतो वैक्रियस्य सर्वस्तोकस्तत आहारकस्य विशेषाऽधिकस्ततस्तैजसस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणस्य विशेषाऽधिको जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, तत औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, त्रिंशद्बन्धे तस्य जायमानत्वात्, शरीरपिण्डप्रकृतेरौदारिकशरीरबन्धकाले त्रिभागत्रयस्यैव जायमानत्वाच्च । अङ्गोपाङ्गनाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वं शरीरनामवद् भवति, तद्यथा-वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्तत आहारकाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकस्तत औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः, देशोनद्विगुण इति । शेषाणामेकपञ्चाशन्नामप्रकृतीनामोघे यद्यद्बन्धस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, प्रस्तुतेऽपि तत्तद्बन्धस्थान एव तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावात्तद्वदेव तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वं प्राप्यत इति । शेषैकपञ्चाशन्नामप्रकृतयः पुनरिमाः-जातिपञ्चकं संहननषट्कं संस्थानषट्कं खगतिद्वयं वर्णादिचतुष्कमगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासाऽऽतपोद्योतनिर्माणनामजिननामानि त्रसदशकं स्थावरदशकं चेति ॥३२३-३२४॥

अथ वचनयोगौघे व्यवहारवचनयोगे स्त्रीवेदे च प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह––

गइअणुपुव्वीण दुवयथीसु तिरिच्छिव्व होइ अप्पबहू ।
आऊण वि थीअ भवे तीसु वि ओघव्व सेसाणं ॥३२५॥

(प्रे०) "गइ" इत्यादि, वचनयोगौघ-व्यवहारवचनयोगद्वये स्त्रीवेदे च चतुर्णां गतिनाम्नां चतुर्णामानुपूर्वीनाम्नां चाऽल्पबहुत्वं तिरश्चीमार्गणावद् भवति, मार्गणात्रयेऽपि तिरश्चीमार्गणावन्नरकगतेर्देवगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति, इत्येवतो विशेषः । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्––तिर्यग्गतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततो देवनरकगत्योर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्च, एवमानुपूर्वीनाम्नामपि विज्ञेयमिति । केवलं स्त्रीवेदे आयुर्षमधिकृत्यैतद्विज्ञेयम्, अन्यथा ओघवदेव गतीनामानुपूर्वीणां चाल्पबहुत्वमिति स्त्रीवेदमार्गणायां तिरश्चीमार्गणावच्चतुर्णामायुषां जघन्यप्रदेशबन्धः परस्परं तुल्यो भवति, तुल्यैकयोगस्थानेऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तानां जघन्यप्रदेशबन्धभावात् । वचनयोगद्वये शेषद्वादशोत्तरशतप्रकृतीनां स्त्रीवेदमार्गणायामष्टोत्तरशतस्य चाल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम् । स्युत्तरशतस्य वचनयोगद्वये करणपर्याप्तद्वीन्द्रियस्य स्त्रीवेदमार्गणायां च भवप्रथमसमये करणाऽपर्याप्ता-

ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, अत्रौघतः स्वामिनां भेदेऽपि बन्धस्थानानामोघेन समानत्वाद् अल्पबहुत्वमोघवत्प्राप्यते, यद्यपि वचनयोगद्वये बन्धप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां जघन्य-प्रदेशबन्धोऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्य भवति, तथाऽप्युत्तरप्रकृतिसत्कबन्धस्थानानां समानत्वादल्प-बहुत्व समानमेवेति । एवं स्वामित्वाऽनुसारेण भावना कार्या ॥३२५॥

अथाऽऽहारककाययोगे तन्मिश्रे च जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूप-यिषुराह—

आहारदुगे णेयो सव्वप्पो सायथिरसुहजसाणं ।
तत्तो विसेसअहियो तप्पडिवक्खाण विण्णेयो ॥३२६॥
कुच्छाएऽप्पो तत्तो भयहस्सरइपुमसोगअरईणं ।
चरमभयकोहमायालोहाण कमा विसेसहियो ॥३२७॥
विउव्वसरीरस्सऽप्पो तओ विसेसाहियो मुणेयव्वो ।
तेअसकम्माण कमा अणुत्तरव्वऽत्थि सेसाणं ॥३२८॥

(प्रे०) "आहारदुगे" इत्यादि, आहारककाययोगे तन्मिश्रे च सातवेदनीयस्थिरशुभयशः-कीर्तिनाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोको भवति, प्रस्तुतमार्गणाद्वये संयमिन एव भावेन भव-प्रथमसमयस्याऽभावेनाऽष्टविधबन्धकस्य शोकादिषट्प्रकृतिवर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, शोकादिषण्णां तु देवायुषा सह तासां बन्धाभावेन शेषायुषामत्र बन्धाभावेन च सप्तमूलप्रकृतिबन्ध-कस्य जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, अतः सातवेदनीयादिषट्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धे भाजकरा-शेरधिकत्वेन प्रतिपक्षतो न्यूनाः प्रदेशा भवन्ति, ततोऽसातवेदनीयाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्ति-नाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः संख्यातभागाऽधिकः ।

मोहनीयप्रकृत्यल्पबहुत्वं पुनरेवम्-जुगुप्साया जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यस्य ततो रतेस्ततः पुरुषवेदस्य जघन्यप्रदेशबन्धः प्रकृतिविशेषाद्वि-शेषाऽधिकोऽसंख्येयभागेन भवति, ततः शोकस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः सप्तविध-बन्धकस्य तल्लाभेन संख्येयभागाधिकत्वं विज्ञेयमिति । ततोऽरतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽ-धिकः प्रकृतिविशेषात् ; ततः सञ्ज्वलनमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयभागेन विशेषा-ऽधिको भवति, अत्राऽष्टविधबन्धकत्वेऽपि दलविभाजनोक्तपद्धत्या पूर्वपदद्रव्यतोऽत्रासन्नसप्त-चत्वारिंशदधिकसप्तशतभागप्रमाणाधिको विभावनीय इति । ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य विशेषा-ऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिक इति । वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, ततस्तैजसकार्मणशरीरयोः क्रमेण विशेषाधिकः । एवं

द्वाविंशतिप्रकृतीनामल्पबहुत्वं दर्शितम्, शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामेकचत्वारिंशत्प्रकृतीनामनुत्तरसुरमार्गणावदल्पबहुत्वं तन्निषेधो वा भावनीयः। शेषा एकचत्वारिंशत्प्रकृतयः पुनरिमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कमन्तरायपञ्चकं वर्णादिचतुष्कं देवत्रिकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियाङ्गोपाङ्गं समचतुरस्रं सुखगतिरगुरुलघुचतुष्कं निर्माणनाम जिननाम त्रसचतुष्कं सुभगत्रिकमुच्चैर्गोत्रं चेति। अत्र वर्णचतुष्कं यावत् विंशतेरल्पबहुत्वं भवति, शेषैकविंशतेः प्रकृतीनामल्पबहुत्वमेव न भवति। भावना त्वतिदेशानुसारेण यथासंभवं भावनीयेति ॥३२६-३२७-३२८॥ काययोगौघौ-दारिकौदारिकमिश्र-कार्मणकाययोगेषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं तिर्यगोघादिना समभोघवदतिदेशेन दर्शितम्। वैक्रिय-तन्मिश्रकाययोगद्वये देवौघादिमार्गणाभिः समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपितम्। एवं वेदमार्गणात्रयेऽपि सप्रसङ्गं तत्तत्स्थले तन्निदर्शितम्। अथ क्रमप्राप्तायामपगतवेदमार्गणायां तदनु सूक्ष्मसंपरायेऽप्यतिदेशेन प्राह —

ओघव्व ऽज्जंताणं गयवेए केवला अणंतगुणो।
ओहिस्स तओ अणायणणयणाण कमा विसेसहियो ॥३२९॥

सायजसुच्चाण ण खलु चरममया कोहमायलोहाणं।
कमसो विसेसअहियो एवं सुहुमे सजोग्गाणं ॥३३०॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, अपगतवेदमार्गणायां पञ्चज्ञानावरणानां पञ्चान्तरायाणां च स्वस्थानजघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वमोघवद् भवति, सर्वत्र तथैव भावात्। केवलदर्शनावरणस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततोऽवधिदर्शनावरणस्याऽनन्तगुणस्ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः, अत्र प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्वम्, अत्रौघवदल्पबहुत्वस्य भावेऽपि निद्रापञ्चकस्य बन्धाऽभावाच्छेषप्रकृतिचतुष्कस्य स्पष्टतया निर्देश इति। वेदनीयनामगोत्राणां त्वेकैकतदुत्तरप्रकृतेर्बन्धभावेन जघन्यप्रदेशबन्धसत्कस्वस्थानाऽल्पबहुत्वं नास्तीति। मोहनीयप्रकृतीनामल्पबहुत्वं पुनरेवम्—सञ्ज्वलनमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकः, चतुर्णां जघन्यप्रदेशबन्धस्य युगपद्भावेन प्रकृतिविशेषादत्र विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयम्, एतदल्पबहुत्वमप्योघवदेव केवलं शेषप्रकृतिवर्जनार्थं तत्प्रदर्शनम्। अथ सूक्ष्मसंपरायसंयमेऽतिदिशति—"एव" इत्यादि, सूक्ष्मसंपराये सञ्ज्वलनचतुष्कं विहाय याः सप्तदश गतवेदे बन्धप्रायोग्यास्ता एवाऽत्रापि बन्धप्रायोग्या अतस्तद्वदतिदिष्टमिति। भावना

तु स्वयं कार्या सुगमा चेति । तदेवं वेदमार्गणायां प्रस्तुतं समाप्तम् । कषायमार्गणाचतुष्के तु तिर्यग्गत्योघादिमार्गणास्विवसममोघवदतिदेशेन तत्प्रदर्शितम् ॥३२९-३३०॥

अथ क्रमप्राप्तेषु ज्ञानमार्गणाभेदेषु मतिज्ञानादिषु तन्निरूपयन्नाह—

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मत्ते खइअवेअगेसु च ।
सव्वत्थव्वऽप्पबहू हवेज्ज णामाउवज्जाणं ॥३३१॥
तुल्लो हवेज्ज आउगदुगस्स तिण्ह य थिराइजुगलाणं ।
मणुयगईएऽप्पो तो देवगईए विसेसहियो ॥३३२॥
एवं अणुपुव्वीणं उरलसरीरस्स अत्थि सव्वप्पो ।
तत्तो विसेसअहियो तेअसकम्मविउवाण कमा ॥३३३॥
ताउ असंखेज्जगुणो आहारतणुस्स तह उवंगाणं ।
णेव भवे अप्पबहू सेसाणं णामपयडीणं ॥३३४॥

(प्रे०) "णाणतिगे" इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघ-क्षायिकसम्यक्त्व-क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासप्तके आहारकद्विकमायुर्द्वयं च विहाय शेषाणां भवप्रथमसमयेऽविरतसम्यग्दृष्टीनामेव जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, तत्र नामवर्जानामनुत्तरदेवानामपि जघन्यप्रदेशबन्धभावात्तत्र यथाऽल्पबहुत्वं प्राप्यते तथा अत्राऽपि, यथा च तत्र गोत्रस्य निषिद्धं तथाऽत्रापि तन्निषेधः, अतस्तद्वदतिदेशः । भावना तु सुगमा यथासंभवं तद्वदेव कार्या चेति । आयुषि प्रस्तुते देवमनुष्यायुषोरेव बन्धस्तयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्य एवेति । स्थिरादियुगलत्रयस्य जघन्यप्रदेशबन्धः प्रतिपक्षप्रकृत्या सह तुल्यो भवति, एकस्मिंस्त्रिंशद्बन्धस्थाने तासां षण्णामपि जघन्यप्रदेशबन्धभावात् । मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽल्पः, त्रिंशद्बन्धे तज्जघन्यप्रदेशबन्धभावात्; ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, एकोनत्रिंशद्बन्धे तन्नाम्नेन भाजकराशेरल्पत्वेन भागफलस्याऽऽधिक्यात् । एवमानुपूर्वीनाम्नोरप्यल्पबहुत्वं भावनीयमिति । औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः, नाम्नस्त्रिंशद्बन्धे शरीरत्रयस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभेनाऽत्र प्रकृतिविशेषादिविशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयम्, ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, एकोनत्रिंशद्बन्धे तद्बन्धनात् । तत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, भवप्रथमसमयगतयोगात् पर्याप्तानां योगस्याऽसंख्येयगुणत्वात्, भावना त्वोघानुसारेण कार्या, यतो वैक्रियाऽऽहारक-

शरीरयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनोऽप्यौघवद्भवन्तीति । यथा शरीरनाम्नामल्पबहुत्वं तथाऽङ्गोपाङ्गनाम्नामल्पबहुत्वं तद्धेतवश्च विज्ञेयाः । तत्राऽल्पबहुत्वं त्वेवम्–औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो वैक्रियस्य विशेषाऽधिकस्तत आहारकाऽङ्गोपाङ्गस्याऽसंख्येयगुण इति । शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वमेव न भवति, सजातीयप्रकृत्यभावात् प्रतिपक्षप्रकृत्यभावाद्वा । शेषा एकविंशतिः नामप्रकृतयः पुनरिमाः-पञ्चेन्द्रियजाति-समचतुरस्र-वज्रर्षभनाराचसंहनन-सुखगतिनाम-वर्णचतुष्काऽगुरुलघुचतुष्क-निर्माण-जिननाम-त्रसचतुष्क-सुभगत्रिकनामानि । वर्णचतुष्कसत्कावान्तरप्रकृतीनां पुनरल्पबहुत्वमोघवत्प्राप्यते ॥३३१-३३४॥

अथ मनःपर्यवज्ञानादिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयिषुराह

मणणाणसंजमेसुं समइअछेअपरिहारेसुं ।
वेउव्वतणुस्सऽप्पो तओ विसेसाहियो कमसो ॥३३५॥ (उपगीतिः)
आहारतेअकम्मणतणूण णेयो तहेवुवंगाणं ।
अप्पाबहुगं णेयं आहारदुगव्व सेसाणं ॥३३६॥

(प्रे०) "मणणाणे"त्यादि, मनःपर्यवज्ञान-संयमौघ-सामायिक-च्छेदोपस्थापनीय-परिहारविशुद्धिमार्गणासु पञ्चस्वसातवेदनीयादिप्रकृतिषट्कं विहाय बन्धप्रायोग्याणामेकोनषष्टिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धोऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्यैव भवति, असातवेदनीयादीनां तु सप्तविधबन्धकप्रमत्तसंयतस्य इति सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धः षष्ठे सप्तमे वा गुणस्थान एव यथासंभवं भवति । तथाऽत्राऽऽहारकद्विकस्य बन्धभावेन शरीरनाम्नोऽङ्गोपाङ्गनाम्नश्चाऽल्पबहुत्वं विहाय शेषमाहारककाययोगवत्तन्मिश्रयोगवद् वा सर्वमल्पबहुत्वं भवति, अतस्तथैवाऽतिदिष्टम् । बन्धप्रायोग्यशरीरचतुष्कस्याऽङ्गोपाङ्गद्वयस्य च स्पष्टमेव पृथग्दर्शितम् । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्–केवलज्ञानावरणस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्याऽनन्तगुणस्ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततश्श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकः । प्रचलायाः स्तोकस्ततो निद्राया विशेषाऽधिकस्ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततोऽवधिदर्शनावरणस्याऽनन्तगुणस्ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिक इति । जुगुप्साया जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो भयस्य ततो हास्यस्य ततो रतेस्ततः पुरुषवेदस्य ततः शोकस्य ततोऽरतेस्ततः सञ्ज्वलनमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य जघन्यप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति । सातवेदनीयस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततोऽसातवेदनीयस्य विशेषाऽधिकः । एवं स्थिराऽस्थिरयोः शुभा-

ऽशुभयोर्यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरल्पबहुत्वं विज्ञेयमिति । वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्तत आहारकस्य विशेषाऽधिकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः। वैक्रियाऽङ्गोपाङ्गस्य सर्वस्तोकस्तत आहारकाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः। देवत्रिक-पञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसुखगतिवर्णचतुष्काऽगुरुलघुचतुष्कनिर्माणनामजिननामत्रसचतुष्क सुभगत्रिकोच्चैर्गोत्राणि चतुर्विंशतिप्रकृतयस्तासामल्पबहुत्वं नाऽस्ति । वर्णचतुष्कसत्काऽवान्तर-प्रकृतीनामल्पबहुत्वं त्वोघवद्विज्ञेयमिति । दानान्तरायस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो लाभान्तरायस्य ततो भोगान्तरायस्य तत उपभोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाऽधिकः । भावना त्वोघानुसारेणाऽतिदेशानुसारेण च यथासंभवं कार्येति ॥३३५-३३६॥

अथ विभङ्गज्ञानमार्गणायां जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयिषुराह

गइतणुउवंगअणुपुव्वीणं तिरिजोणिणिव्व विब्भगे ।
णेयो विसेसअहियो पणिंदिएगिंदियस्स तओ ॥३३७॥
विगलतिगस्स असंखियगुणोऽत्थि बायरतिगस्स थोवो तो ।
सुहुमतिगस्स असंखियगुणो मणव्वऽत्थि सेसाणं ॥३३८॥
विंति परे तिरिगइओ विसेसअहियोऽत्थि णरगईअ तओ ।
णिरयसुरगईण भवे एवं होइ अणुपुव्वीणं ॥३३९॥
उरला विसेसअहियो कमा भवे तेअकम्मविउवाणं ।
एवमुवंगाण मणव्व जाइबायरतिगजुगाणं ॥३४०॥

(प्रे०) "गइ" इत्यादि, विभङ्गज्ञानस्य देवनैरयिकाणां भवप्रथमसमयतः स्वीकृतत्वेऽपि तिर्-यग्मनुष्याणामपर्याप्ताऽवस्थायां श्रीभगवतीसूत्राऽष्टमशतकाऽभिप्रायेण तदनङ्गीकुर्वतामपेक्षया प्रथमगाथाद्वयेन अत्राऽल्पबहुत्वं दर्शितम्, तत्र गतिनाम्नामानुपूर्वीनाम्नां शरीरनाम्नामङ्गोपाङ्ग-नाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं तिरश्चीमार्गणावद्विज्ञेयम्, तद्यथा—तिर्यग्गते-र्जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, देवनैरयिकाणां भवप्रथमसमये त्रिंशद्बन्धे तल्लाभात्, ततो मनुष्यगतेर्विशेषाऽधिकः, एकोनत्रिंशद्बन्धे तद्भावात्, ततो देवगतेर्नरकगतेश्चाऽसंख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्च। तिर्यग्मनुष्याणां पर्याप्ताऽवस्थागतानां तद्भावेन भवप्रथमसमयगतयोगतोऽसंख्येय-गुणयोगवत्त्वादसंख्येयगुणत्वम्, परस्परतुल्यत्वं तु द्वयोरपि जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्य-त्वात्तुल्यैकयोगस्थाने तुल्यैकबन्धस्थाने च द्वयोरपि जघन्यप्रदेशबन्धभावादिति । एवमानुपूर्वी-

नाम्नामप्यल्पबहुत्वं विज्ञेयमिति । शरीरनाम्नामल्पबहुत्वमेवम् औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणस्य विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियशरीरस्याऽसंख्येयगुणः पूर्वं पदत्रयं भवप्रथमसमयस्थस्य प्राप्यते प्रस्तुतं तु पर्याप्तकस्यैवेति । औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्याऽसंख्येयगुण इति ।

पञ्चेन्द्रियस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्त्रिंशद्बन्धे तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य देवनैरयिकाणां लाभात्, तत एकेन्द्रियस्य विशेषाऽधिकः षड्विंशतौ देवानां भवप्रथमसमये तल्लाभात, ततो विकलेन्द्रियत्रिकस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, पर्याप्तमनुष्यतिरश्चां तल्लाभेन पूर्वपदगतयोगतोऽस्याऽसंख्येयगुणयोगजन्यत्वात् ।

बादरनाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोकस्ततः सूक्ष्मनाम्नोऽसंख्येयगुणः, तद्बन्धकानां योगस्याऽसंख्येयगुणत्वात् । तत्र एवं पर्याप्ताऽपर्याप्तनाम्नोः प्रत्येकसाधारणनाम्नोश्चाऽल्पबहुत्वं भावनीयमिति । उक्तशेषाणां ज्ञानावरणादीनां द्वानवतेर्जघन्यप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं मनोयोगमार्गणावद्विज्ञेयम् । तत्र देवनरकायुर्वर्जानां नवतेर्जघन्यप्रदेशबन्धस्य देवानामपि भावेन देवौघवदल्पबहुत्वस्य प्राप्यमाणत्वेऽपि देवनरकायुषोः कथनार्थं मनोयोगवदतिदेशः, अत्र चतुर्णामप्यायुषां जघन्यप्रदेशबन्धः परस्परं तुल्यो भवतीति । यथा मनोयोगमार्गणायां सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यैकयोगस्थाने भवति; यथा वा देवौघे आयुर्द्वयं जिननाम च विहाय शेषाणां जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यैकयोगस्थाने भवति, तथा प्रस्तुतेऽप्यायुश्चतुष्कं विहाय शेषाणामष्टाशीतेर्जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यैकयोगस्थाने भवति; एवमाऽऽयुश्चतुष्कस्याऽपि तुल्यैकयोगस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धो मनोयोगमार्गणावद्भवति; तथाऽष्टाशीतिप्रकृतिषु सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्य भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धभावेन मनोयोगमार्गणातस्तासां स्वामिनामत्यन्तासदृशत्वेऽप्युभयत्र जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्योत्तरप्रकृतिसत्कबन्धस्थानस्य समानत्वान्न भवति मनोयोगतोऽत्राऽल्पबहुत्वे विशेषः । भावनायां तु भवत्येव विशेषः । ज्योतिष्कदेवतस्तु भावनायामपि न विशेष इति । शेषप्रकृतयः पुनरिमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं मोहनीयसत्काऽष्टविंशतिर्वेदनीयद्वयं गोत्रद्वयमायुश्चतुष्कमन्तरायपञ्चकं संहननषट्कं संस्थानषट्कं खगतिद्वयं वर्णचतुष्कमगुरुलघूपघात-पराघातो-च्छ्वासाऽऽतपो-द्योत-निर्माणनामानि त्रसनाम स्थावरनाम स्थिरषट्कमस्थिरषट्कं चेति ।

अथ पराऽभिप्रायेण प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं गाथाद्वयेन दर्शयति—"परे" इत्यादि, अन्ये तु देवनारकाणामपर्याप्ताऽवस्थायां विभङ्गज्ञानं न स्वीकुर्वन्ति, तन्मते करणपर्याप्तसंज्ञिनां चातुर्गतिकानां तद् भवति । अतः सर्वमप्यल्पबहुत्वं मनोयोगवत्प्राप्यते, भावनाऽपि

तद्वदेव, केवलमाहारकद्विकस्याऽत्र बन्धाऽभावाच्छरीरनाम्नि विशेषः, तथा जिननाम्नोऽत्र बन्धाऽभावाद् मनुष्यप्रायोग्यत्रिंशद्बन्धस्थानस्याऽभावेन मनोयोगमार्गणावत्तिर्यग्मनुष्यगत्योर्जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो न प्राप्यते, अतो गतिभेदेष्वानुपूर्वीभेदेषु विशेषः, तद्यथा तिर्यग्गतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो मनुष्यगतेर्विशेषाऽधिकः, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तद्भावात् , ततो देवनरकगत्योर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, परस्परं तुल्यश्च, अष्टाविंशतौ तद्भावात् ।

औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततस्तैजसस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणस्य विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकः पूर्वोक्तपदत्रयस्य त्रिंशद्बन्धस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावाद् ; वैक्रियशरीरस्याऽष्टाविंशताविति । औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो वैक्रियस्य विशेषाऽधिकः, भावना शरीरनामवत्कार्येति । पञ्चजातिनाम्नां बादरादियुगलत्रयस्य तु पूर्वं पृथग्दर्शितत्वेऽपि प्रस्तुतमतेन तु सर्वं मनोयोगमार्गणावत्प्राप्यते, अत्र गाथाद्वये शेषप्रकृतीनां प्रागुक्ततो विशेषाभावेन पृथग्दर्शनात्प्राग्गाथागतस्य "मण०व्वऽत्थि सेसाणं" इत्यस्योभयत्र योजनं कार्यमिति । यद्वा प्राग्गाथाद्वयभणितापेक्षया मतान्तरेण यावान्मात्रो विशेषः स एव गाथाद्वयेन मतान्तरे दर्शित इति । मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमार्गणाद्वये तिरश्चीमार्गणया समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपितम् , तदेवं ज्ञानमार्गणा गता । संयमौघ-सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिमार्गणासु मनःपर्यवज्ञानवत्तत्रैव तद्दर्शितम् । सूक्ष्मसंपरायमार्गणायां पुनरपगतवेदमार्गणावत्तत्रैव तद्दर्शितमिति ॥३३७-३४०॥ अथ देशविरतौ प्राह

देसे थोवोऽत्थि दुइअमयस्स तो कोहमायलोहाणं ।
कमसो विसेसअहियो तो कुच्छाए अणंतगुणो ॥३४१॥
अप्पाबहुगं एत्तो उड्ढं आहारकायजोग०व्व ।
सेसाणं पयडीणं आहारगकायजोगव्व ॥३४२॥

(प्रे०) "देसे" इत्यादि, देशविरतिमार्गणायां पुनराहारककाययोगवद् बन्धप्रायोग्याणामल्पबहुत्वं वाच्यम्; केवलं प्रस्तुते प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बन्धसंभवात्तस्य तद् मोहनीयमत्काऽल्पबहुत्वप्रारम्भे भणनीयम्, तच्चैवम्— प्रत्याख्यानावरणमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वाऽल्पः; ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकस्ततो जुगुप्साया अनन्तगुणः, इत ऊर्ध्वं त्वतिदेशानुसारेण प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं विज्ञेयमिति । असंयममार्गणायाम् "ओघ०व" इत्यादिना तिर्यगोघादिमार्गणाभिः समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघवदतिदेशेन दर्शितम् , एवं तत्रैव चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोरपि । अवधिज्ञानेन साकमवधि-

दर्शनस्याऽपि दर्शितम् । एवं संयममार्गणाभेदेषु दर्शनमार्गणाभेदेषु च प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं समाप्तम् । अशुभलेश्यात्रये "ओघव्व"त्यादिना प्राक् प्रदर्शितम् ॥३४१-३४२॥

अथ तेजोलेश्यादिमार्गणात्रये जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं प्रदर्शयन्नाह

तेऊए अप्पबहू णिरयव्व हवेज्ज णामवज्जाणं ।
तिरिणरगईण थोवो ताउ सुरगईअ अब्भहियो ॥३४३॥
एवं अणुपुव्वीणं ओहिव्व भवे सरीरुवंगाणं ।
देवव्वऽप्पाबहुगं सेसाणं णामपयडीणं ॥३४४॥
पउमाए आउगगइसरीरुवंगाणुपुव्विपयडीणं ।
तेउव्वऽप्पाबहुगं सणंकुमारव्व सेसाणं ॥३४५॥
सुक्काए आउगगइसरीरुवंगाणुपुव्विपयडीणं ।
ओहिव्वऽप्पाबहुगं आणयदेवव्व सेसाणं ॥३४६॥

(प्रे०) "तेऊए" इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां नामवर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं नरकौघवद् भवति, तत्राऽप्योघवद् भावात्प्रस्तुतेऽप्यायुर्वर्जषट्कर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद् भवति, भावना तु देवानाश्रित्यौघवत्कार्या । अत्र नरकायुषो बन्धाऽभावात्त्रयाणामायुषां जघन्यप्रदेशबन्धो मिथस्तुल्यो भवति । तिर्यग्मनुष्यगत्योर्जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्त्रिंशद्बन्धे देवानां तद्भावाद्देवगतेर्जघन्यो विशेषाऽधिकः, एकोनत्रिंशद्बन्धे तल्लाभात् । एवं त्रयाणामानुपूर्वीनाम्नामप्यल्पबहुत्वं विभावनीयम् । शरीरनाम्नामङ्गोपाङ्गनाम्नां चाऽल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावद्विज्ञेयम्, तद्यथा औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकः, पूर्वपदत्रिकस्य त्रिंशद्बन्धे जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभाद् वैक्रियशरीरस्य पुनरेकोनत्रिंशद्बन्धे लाभाद्विशेषाऽधिकत्वम्, तत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, पूर्वपदे भवप्रथमसमयगतजघन्ययोगस्थानं प्राप्यते, प्रस्तुते तु करणपर्याप्तकस्य परावर्तमानजघन्ययोगस्थानमिति योगस्याऽसंख्येयगुणत्वात्प्रदेशबन्धोऽप्यसंख्येयगुण इति । औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकस्तत आहारकाङ्गोपाङ्गस्याऽसंख्येयगुण इति । उक्तशेषाणां बन्धप्रायोग्याणां जात्यादिनाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं देवौघमार्गणावद्विज्ञेयम्, देवानां भवप्रथमसमये तेषां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वात् ।

ताः प्रकृतयः पुनरिमाः एकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघुचतुष्कनिर्माणाऽऽतपोद्योतजिननामत्रसस्थावरस्थिरषट्काऽस्थिरषट्कनामानि द्वाचत्वारिंशदिति ।

पद्मलेश्यामार्गणायां सर्वमप्यल्पबहुत्वं तेजोलेश्यामार्गणावद् भवति, केवलं प्रस्तुत एकेन्द्रियस्थावराऽऽतपनाम्नां बन्धाऽभावात्पञ्चेन्द्रियत्रसनामोद्योतनाम्नामल्पबहुत्वं नाऽस्ति, अतश्शेषप्रकृतीनां सनत्कुमारदेवमार्गणावदतिदिष्टं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमिति ।

शुक्ललेश्यामार्गणायां तिर्यक्त्रिकोद्योतनाम्नां बन्धाऽभावात्तिर्यग्गतिप्रायोग्यं त्रिंशतो बन्धस्थानं न प्राप्यते; किन्तु मनुष्यगतिप्रायोग्यं जिननामसहितं त्रिंशद्बन्धस्थानं प्राप्यते, अतः केवलमिथ्यादृष्टीनां बन्धप्रायोग्याणां द्वितीयादिसंहननपञ्चक-द्वितीयादिसंस्थानपञ्चक-कुखगति-दुर्भगत्रिकाणां तत्प्रतिपक्षप्रकृतिभ्यो विशेषाऽधिको जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, अतः शुक्ललेश्यायां सनत्कुमारवदनतिदिश्याऽऽनतदेववदतिदेशः कृतः। तथा तिर्यक्त्रिकस्य बन्धाऽभावाद् देवत्रिकस्य मनुष्यत्रिकस्य चैव बन्धभावादायुष्कगत्यानुपूर्वीनाम्नां तेजोलेश्यावदनतिदेशप्रयोजनम् । शरीराङ्गोपाङ्गयोस्तेजोलेश्यायामप्यवधिज्ञानवदतिदेशादत्र साक्षादवधिज्ञानवदतिदेशः, इत्यतिदेशाऽनुसारेण स्वयमल्पबहुत्वं परिभावनीयं सुगमं चेति । एवं लेश्यामार्गणास्वल्पबहुत्वं गतम् । भव्यमार्गणायामोघवदभव्यमार्गणायां तिरश्चीमार्गणया समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं दर्शितम् । सम्यक्त्वौघ-क्षायिकसम्यक्त्व-क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु मतिज्ञानादिमार्गणाभिस्समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं प्रदर्शितम् ॥३४३-३४६॥

अथोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

देवगईए णेयो णरगइओ उवसमे असंखगुणो ।
एवं अणुपुव्वीणं उरलसरीरस्स सव्वप्पो ॥३४७॥
तत्तो विसेसअहियो तेअसकम्माण होअए कमसो ।
ताउ असंखेज्जगुणो विउव्वस्स तओ विसेसहियो ॥३४८॥
आहारतणुस्सेवं तिउवंगाण इयराण ओहिव्व ।

(प्रे०) "देवगईए" इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोकः, देवानां भवप्रथमसमये त्रिंशद्बन्धतस्तद्भावात् , ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, मनुष्याणां करणपर्याप्तानां तद्भावेनाऽसंख्येयगुणयोगात् , एवमानुपूर्व्योरपि भावनीयम् ।

औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाधिकस्ततः कार्मणस्य विशेषाधिकः, देवानां तद्भावात्, ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, भावना देवगतिप्रकृतिवत्कार्या, तत आहारकशरीरस्य विशेषाधिको जघन्यप्रदेशबन्धः, स्वामिनामेकत्वेऽपि प्रकृतिविशेषात्। औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोको वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्याऽसंख्येयगुणस्तत आहारकाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाधिकः, भावना शरीरनामवत्कार्या। शेषाणां मार्गणाप्रायोग्याणां पञ्चषष्टेरपि प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावदनुत्तरसुरमार्गणावद्वा भवति, अनुत्तरदेवानां तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावात्। ३४७-३४८॥

एतर्हि सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणायां तद्दर्शयन्नाह

मीसे मगणामाणं सेमाण अणुत्तरव्व भवे ॥३४९॥

(प्रे०) "मीसे" इत्यादि, मिश्रदृष्टिमार्गणायां नामायुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्योत्तरप्रकृतीनां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमनुत्तरसुरमार्गणावद्विज्ञेयम्, अल्पबहुत्वस्यैवमुभयत्र भावेऽपि बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां समानत्वात्तदतिदेशः। गोत्रस्य तद्वदत्राप्यल्पबहुत्वमेव नाऽस्ति, एकस्यैव बन्धात्। आयुषामप्यल्पबहुत्वं नाऽस्ति, बन्धाभावात्। बन्धप्रायोग्यनाम्नामल्पबहुत्वं त्ववधिज्ञानमार्गणावद्विज्ञेयम् 'ओहिव्व' इति पदस्य अत्राऽपि सम्बन्धात्। तद्यथा मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोकः, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तज्जघन्यप्रदेशबन्धभावात्, ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, अष्टाविंशतौ तल्लाभात्। एवमानुपूर्वीनाम्नोरपि भावनीयम्। औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाधिकः, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने त्रयाणामपि जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभात् विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद्विचार्यम्, ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाधिकः, अष्टाविंशतिबन्धे तल्लाभात्। औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य स्तोकः, वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाधिकः, शरीरनामवद्भावना कार्येति। स्थिराऽस्थिरयोर्जघन्यप्रदेशबन्धः परस्परं तुल्यो भवति। एवं शुभाऽशुभयोर्यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योश्च विभावनीयमिति। पञ्चेन्द्रियजाति-वज्रर्षभनाराच-समचतुरस्र-सुखगति-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघुचतुष्क-निर्माणनाम-त्रसचतुष्क-सुभगत्रिकनामानि, तासां विंशतेरल्पबहुत्वं नाऽस्ति, सजातीयप्रकृतीनां प्रतिपक्षप्रकृतीनां वा बन्धाऽभावादिति ॥३४९॥

अथ सास्वादनमार्गणायां जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

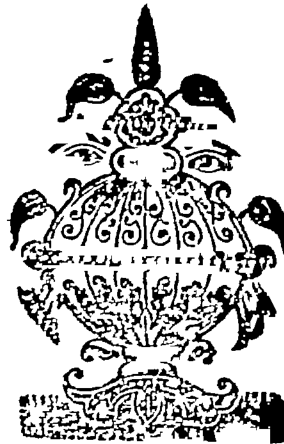
सासाणे सव्वप्पो तिरियगईए तओ विसेसहियो।
मणुयगईए तत्तो देवगईए असंखगुणो ॥३५०॥

एवं अणुपुव्वीणं ओरालतणुस्स अत्थि सव्वप्पो ।
तत्तो विसेसअहियो कमा भवे तेअकम्माणं ॥३५१॥
ताउ असंखेज्जगुणो विउव्वतणुस्सेवमेवुवंगाणं ।
पम्हव्व ऽप्पाबहुगं सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥३५२॥

(प्रे०) ''सासाणे'' इत्यादि. सास्वादनमार्गणायां तिर्यग्गतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, त्रिंशद्बन्धस्थाने तल्लाभात् । ततो मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, एकोनत्रिंशति लाभात् । ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, पर्याप्ताऽवस्थायामेव देवद्विकस्य बन्धभावेन पूर्वोक्तबन्धकयोगेभ्यः प्रस्तुतबन्धकयोगस्याऽसंख्येयगुणत्वात् । एवमानुपूर्वीनाम्नामपि जघन्यप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं विभावनीयमिति । औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः. भवप्रथमसमये तल्लाभात्, ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषात्. ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः पर्याप्ताऽवस्थायामेव तद्बन्धभावेन योगस्याऽसंख्येयगुणत्वात् । औदारिकाऽङ्गोपाङ्गस्य स्तोकः, ततो वैक्रियाऽङ्गोपाङ्गस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, भावना शरीरनामवत्कार्येति । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामेकोननवतेः प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं पद्मलेश्यामार्गणावद् भवति । आयुस्त्रयं विहाय शेषाणामुभयत्र जघन्यप्रदेशबन्धस्य भवप्रथमसमये लाभान्नामप्रकृतिषु शेषसर्वासामुभयत्र त्रिंशद्बन्धस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धकत्वात्, आयुस्त्रिकस्य तूभयत्र करणपर्याप्तस्य परावर्तमानयोगे जघन्यप्रदेशबन्धकत्वाच्चेति, तेजोलेश्यायामेकेन्द्रियस्थावराऽऽतपनाम्नां बन्धभावेन पञ्चेन्द्रियत्रसनामोद्योतनाम्नामल्पबहुत्वं दर्शितं प्रस्तुते त्वेकेन्द्रियस्थावराऽऽतपनाम्नां बन्धाऽभावेन पञ्चेन्द्रियजातित्रसनामोद्योतनाम्नां बन्धभावेऽपि तेषामल्पबहुत्वं नाऽस्ति, प्रतिपक्षप्रकृत्यभावात्, इत्यतस्तेजोलेश्यावदनतिदिश्य पद्मलेश्यावदतिदेशः । तथा पद्मलेश्यामार्गणायां मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुण्डकसंस्थान-सेवार्तसंहननप्रमुखानां बन्धस्य सद्भावेऽपि प्रस्तुते तद्बन्धाभावात्तद्वर्जप्रकृतीनामल्पबहुत्वं भणनीयमिति । सर्वस्याप्यल्पबहुत्वस्य पद्मलेश्यावदनतिदेशस्तु प्रस्तुते मनुष्यप्रायोग्यत्रिंशद्बन्धस्थानस्याऽभावेन पद्मलेश्यावत्तिर्यग्गतिजघन्यप्रदेशबन्धतुल्यो मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो न भवति; किन्तु विशेषाऽधिक इति । तथा प्रस्तुते देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धस्यैवाऽपर्याप्तावस्थायामभावाद् भवप्रथमसमये बन्धप्रायोग्यप्रकृतित आसां जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणो भवति, पद्मलेश्यायां तु भवप्रथमसमय एव तयोः सम्यग्दृष्टिमधिकृत्य बन्धसंभवेन मनुष्यद्विकतो देवद्विकस्य विशेषाऽधिक एव प्रदेशबन्धो भवति, एवं वैक्रियद्विकस्याऽपि, अतः पद्मलेश्यावत्तासां गत्यादीनामतिदेशं विमुच्य

स्पष्टमेव तद्दर्शितमिति । शेषैकोननवतिप्रकृतयः पुनरिमाः- ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं मिथ्यात्वं नपुंसकवेदं च द्वे प्रकृती विहाय मोहनीयचतुर्विंशतिकं वेदनीयद्वयं गोत्रद्वयं नरकायुर्विहायाऽऽयुस्त्रिकमन्तरायपञ्चकं च, तथा पञ्चेन्द्रियजातिसंहननपञ्चकसंस्थानपञ्चकखगतिद्वयवर्णचतुष्काऽगुरुलघुचतुष्कोद्योतनिर्माणत्रसदशकाऽस्थिरषट्कनामानि । मिथ्यात्वमार्गणायामभव्ये च तिरश्चीमार्गणावदतिदेशेन दर्शितम्, भव्यमार्गणायामाहारकाऽनाहारकयोश्च "ओघव्व" इत्यादिना तिर्यग्गत्योघादिमार्गणाभिस्समं जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वं दर्शितमिति । ॥३५०-३५२॥

तदेवं समाप्तं मार्गणासूत्तरप्रकृतिसत्कं जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वस्थानाऽल्पबहुत्वम् ।



॥ ज्येष्ठपदे परस्थानाल्पबहुत्वम् ॥

अथ ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपणीयम् , तच्च द्विधा-ओघत आदेशतश्च, तत्रौघतः परस्थानाऽल्पबहुत्वं प्रदर्शयन्नाह

थोवो जेट्ठपएसो दुइअस्स भयस्स तो विसेसहियो ।
दुइआण कोहमायालोहाण कमा मुणेयव्वो ॥३५३॥
तत्तो उत्तकमेणं तइआण तओ तहेव पढमाणं ।
ताओ य मिच्छकेवलणाणावरणाण होइ कमा ॥३५४॥
तत्तो कमसो पयलानिद्दपयलपयलणिद्दणिद्दाणं ।
तो थीणद्धीअ भवे तो केवलदंसणावरणगस्स ॥३५५॥(गीतिः)
तत्तो अणंतगुणिओ आहारतणुस्स तो विसेसहियो ।
विउव्वोरालियतेअसकम्मतणूणं कमा णेयो ॥३५६॥
तो णरयसुरगईणं संखगुणो तो कमा विसेसहियो ।
णरतिरिगइअजसाणं तत्तो कुच्छाअ संखगुणो ॥३५७॥
तत्तो विसेसअहियो भयस्स ताओऽत्थि हस्ससोगाणं ।
ताओ रइअरईणं तत्तो इत्थीणपुंसाणं ॥३५८॥
तत्तो संखेज्जगुणो विण्णेयो दाणअंतरायस्स ।
ताओ विसेसअहियो कमसो लाहाइविग्घाणं ॥३५९॥
ताउ चरमकोहमणावहिमइसुअणाणआवरणगाणं ।
कमसो ताउ कमांतिममाणोहिअचक्खुचक्खूणं ॥३६०॥
ताउ कमा पुरिसचरममायाउगणीअचरमलोहाणं ।
ताउ असायस्स तओ जसउच्चाणऽत्थि ताउ सायस्स ॥३६१॥(गीतिः)

(प्रे०) "थोवो" इत्यादि, गाथानवकम्, ओघतोऽप्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततोऽप्रत्याख्यानावरणमायाया विशेषाधिकस्ततोऽप्रत्याख्यानावरणलोभस्य विशेषाऽधिकः, ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य विशेषाऽधिकः, ततः प्रत्याख्यानावरणक्रोधस्य विशेषाऽधिकः, ततः प्रत्याख्यानावरणमायाया विशेषाऽधिकः, ततः प्रत्याख्यानावरणलोभस्य विशेषाऽधिकः, ततोऽनन्तानुबन्धिमानस्य विशेषाऽधिकः, ततोऽनन्तानुबन्धिक्रोधस्य विशेषाऽधिकः, ततोऽनन्तानुबन्धिमायाया विशेषाऽधिकः, ततोऽनन्तानुबन्धिलोभस्य विशेषाऽधिकः, ततो मिथ्यात्वस्य विशेषाधिकः। एतास्त्रयोदशप्रकृतयो मोहनीयसत्काः सर्वघातिन्यश्च; एतासु प्रकृतिविशेषाद्यथोत्तरं विशेषाधिकत्वं प्रस्तुते विज्ञेयम्, स्वस्थानेऽप्यासामनेनैव क्रमेण ज्येष्ठाऽल्पबहुत्वं दर्शितमिति। ततः केवलज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकः; अस्या अपि सर्वघातित्वात्। ततः प्रचलाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, ततो निद्राया विशेषाऽधिकः, ततः प्रचलाप्रचलाया विशेषाऽधिकः, ततो निद्रानिद्राया विशेषाऽधिकः, ततः स्त्यानगृद्धेर्विशेषाऽधिकः, ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः। दर्शनावरणसत्का एताः षट् प्रकृतयः सर्वघातिन्यः, एतासु षट्प्रकृतिषु यथोत्तरं विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद् भवति। स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वेऽपि षट्प्रकृतीनामनेनैव क्रमेणाऽल्पबहुत्वं दर्शितम्। एतावत्पर्यन्तं सर्वघातिविंशतिप्रकृतीनामल्पबहुत्वं दर्शितम्। एतासु प्रत्येकं ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतदलिकानामनन्ततमो भाग एव प्राप्यते। एतावत्पर्यन्तमल्पबहुत्वं सर्वमार्गणासु बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां समानमित्यवधारणीयमिति।

केवलदर्शनावरणज्येष्ठप्रदेशबन्धत आहारकशरीरज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, समयप्रबद्धसप्तमभागस्य नामकर्मदलस्य षड्विंशतितमो यः शरीरनामकर्मसत्को विभागस्तदीयाऽऽसन्नचतुर्थांशत्वात्, ज्येष्ठयोगबद्धस्य त्वष्टाविंशत्युत्तरसप्तशततमांशाऽऽसन्नत्वादिति, ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकः, अयमपि प्राग्वत्, केवलं शरीरनामसत्को यो विभागस्तस्याऽऽसन्नतृतीयांशप्रमाणत्वं विज्ञेयम्, उत्कृष्टसंख्यबद्धदलिकानां तु षट्चत्वारिंशदुत्तरपञ्चशततमांशाऽऽसन्नत्वात्। तत औदारिकशरीरस्य विशेषाऽधिकः, नाम्नस्त्रयोविंशतेर्बन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावेन ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतदलिकानां सप्तमभागस्य नामकर्मलब्धस्यैकविंशतितमो यः शरीरनामकर्मसत्को विभागः, तदीयाऽऽसन्नतृतीयांशप्रमाणत्वात्, गृहीतसकलदलाऽपेक्षया त्वासन्नैकचत्वारिंशदुत्तरचतुःशततमांशमितत्वात्। ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः, अत्र पदद्वये विभागस्त्वौदारिकशरीरवदेव, केवलं प्रकृतिविशेषाद् विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयमिति। ततो नरकगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः साऽधिकद्विगुणः, नामकर्मसत्कषड्विंशतितमभागप्रत्यासन्नत्वात्, ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकलदलिकानां द्व्यशीत्युत्तरशततमभागप्रत्यासन्नत्वात्। देवगते-

ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यः, मूलकर्मणामुत्तरकर्मणां च तुल्यबन्धस्थानेषु सत्सु देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जायमानत्वात् सप्रतिपक्षत्वाच्च । ततो मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, नाम्नः पञ्चविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन नाम्नस्त्रयोविंशतितमभागप्रमाणाऽऽसन्नत्वात्, तत्क्षणगृहीतसकलदलापेक्षया त्वाऽऽसन्नैकषष्ट्युत्तरशततमांशत्वात् । ततस्तिर्यग्गतेर्विशेषाऽधिकः, नाम्नस्त्रयोविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन नाम्न एकविंशतितमभागप्रमाणत्वात् सकलद्रव्याऽपेक्षया सप्तचत्वारिंशदुत्तरशततमभागाऽऽसन्नत्वात् । ततोऽयशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अत्राऽपि पूर्वपदवदेव भागो लभ्यते, तथाऽपि नाम्नस्त्रयोविंशतिबन्धस्थाने शरीरत्रयस्य बन्धभावेन त्रयाणामप्येकपिण्डप्रकृतित्वात् एकविंशतिर्विभागा भवन्ति, तेषु च गत्यादिक्रमेण विशेषाऽधिकदलिकानां लाभात्, अयशःकीर्तेर्विशेषाऽधिकत्वम् ।

ततो जुगुप्सायाः संख्येयगुणः, गृहीतदलस्य सप्तमभागप्रमाणमोहनीयद्रव्यस्य देशोनार्धभागप्रमाणस्य नोकषायमोहनीयद्रव्यस्य देशोनपञ्चमभागप्रमाणत्वात्, सकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नसप्ततितमभागप्रमाणत्वात, अत्र संख्येयगुणत्वं सातिरेकद्विगुणप्रमाणमवसेयम् । ततो भयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकः, ततो रत्यरत्योर्विशेषाऽधिकः, ततः स्त्रीनपुंसकवेदयोर्विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषादत्र विशेषाऽधिकत्वं भयमोहनीयादीनां विज्ञेयम्, भावना तु स्वस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धवत्कार्येति । ततः स्त्रीनपुंसकवेदतो दानान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, मूलपट्प्रकृतिबन्धकस्य तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभात् । सकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नत्रिंशत्तमभागप्रमाणत्वात्; साऽतिरेकद्विगुण इत्यर्थः । ततो लाभान्तरायस्य ततो भोगान्तरायस्य तत उपभोगान्तरायस्य ततो वीर्यान्तरायस्य क्रमेण ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति, अत्र विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद् विज्ञेयम् । दलिकप्रमाणं तु दानान्तरायवत्सकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नत्रिंशत्तमांशो भवति । ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य मूलसप्तप्रकृतिबन्धकस्य भावेऽपि तदुत्तरविभागाश्चत्वार एव भवन्ति, अतः सकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नाऽष्टाविंशतितमांशोऽत्र बन्धे भवति, अतो घटते पूर्वपदतो विशेषाऽधिकत्वम् । ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकः, अत्र ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकलदलिकापेक्षयाऽऽसन्नचतुर्विंशतितमभागप्रमाणत्वात् । ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकः । अत्राऽवधिज्ञानावरणादिपदत्रये विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद् विज्ञेयम् ।

मतिज्ञानावरणज्येष्ठप्रदेशबन्धतः सञ्ज्वलनमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, मोह-

नीयमत्कप्रकृतित्रयबन्धकस्य तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन तत्समयगृहीतसकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नैकविंशतितमभागप्रमाणत्वादिति। ततोऽवधिदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, षड्मूलप्रकृतिबन्धकत्वात् विशेषाऽधिकत्वम्, सकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नाऽष्टादशांशमितमत्र बन्धे भवति। ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषादत्र पदद्वये विशेषाऽधिकत्वमवसेयम्। ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धतः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, मोहनीयद्रव्यदेशोनार्धभागप्रमाणत्वात्, सकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नचतुर्दशभागप्रमाणत्वात्। ततः सञ्ज्वलनमायाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, पूर्वपदे तु सकलनोकषायद्रव्यस्य लाभात् तस्य च देशोनाऽर्धभागप्रमाणत्वात्; नोकषायभागतः कषायमोहनीयस्य भागो विशेषाऽधिकः, प्रस्तुते तु नोकषायस्य बन्धाऽभावेन सकलद्रव्यस्य देशोनाऽर्धभागस्य लाभेन नोकषायद्रव्यतः कषायद्रव्यस्य विशेषाऽधिकत्वादत्र विशेषाऽधिकत्वमसंख्येयभागेन विज्ञेयम्। अत्राऽपि सकलद्रव्यस्याऽऽसन्नचतुर्दशांशमितं द्रव्यं बध्यते। ततश्चतुर्णामप्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, अत्र मूलप्रकृतीनामवान्तरविभागाऽभावात्, ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकलद्रव्यस्य देशोनाऽष्टमभागप्रमाणत्वात्। ततो नीचैर्गोत्रस्य विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धः; सप्तविधबन्धकस्य तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन समयप्रबद्धस्य देशोनसप्तमभागप्रमाणत्वात्। ततः संज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अत्राऽपि मोहनीयमूलप्रकृतिसत्कसकलद्रव्यस्य लाभेऽपि पूर्वपदवत्सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्यैव ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावेन मूलप्रकृतिदलविभाजनोक्तेन भागविधिना प्रकृतिविशेषादेव विशेषाऽधिकत्वं विभावनीयम्। ततोऽसातवेदनीयस्य विशेषाऽधिकत्वं सप्तविधबन्धकत्वेन तुल्यत्वेऽपि प्रकृतिविशेषादधिकत्वम्, ततो यशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, षड्मूलप्रकृतिबन्धकस्यैव तद्भावेन सकलद्रव्यस्याऽऽसन्नषष्ठांशमितत्वात्। नीचैर्गोत्राद्यसातवेदनीयपर्यवसानेषु त्रिषु पदेषु सकलद्रव्यस्याऽऽसन्नसप्तमभागप्रमाणानि दलिकानि बध्ये भवन्तीति। उच्चैर्गोत्रस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तु यशःकीर्तिनाम्नः प्रदेशबन्धेन तुल्यो भवति, अत्राऽपि षड्विधबन्धकस्यैव ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामित्वात् स्थित्या च तुल्यत्वात्। ततः सातवेदनीयस्य विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषेण मूलप्रकृतिदलविभाजने वेदनीयद्रव्यस्याऽऽधिक्यादिति। भावना तु सुगमा, काचिद्दर्शिता, शेषा तु स्वयमवधारणीयेति।

तदेवमोघतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं मूलोक्ताऽनुसारेण निरूपितम्। अत्र चाऽल्पबहुत्वे चतुःषष्टिः प्रकृतयो मूलकारेण संगृहीताः। शेषाः षट्पञ्चाशन्नामप्रकृतयो गत्यादिक्रमेण दलविभाजनस्य भावेन बन्धस्थानादिना तदवगमस्य सुगमत्वादिकारणान्नाऽधिकृताः, एवं मार्गणास्थानेष्वपि। अत्र च तासामल्पबहुत्वस्य सुगमत्वेऽपि मुग्धशिष्याऽवबोधार्थमोघतो वयं दर्शयामः, एतेन मार्गणासु स्वयमेव पाठकवृन्दैर्विमर्शनीयमिति।

मूलेऽनुक्तशेषप्रकृतिसत्काल्पबहुत्वनिरूपणायां कार्मणशरीरं यावदोघवदल्पबहुत्वं प्रदर्श्य ततः कार्मणशरीरत आहारकाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः सप्तविधबन्धकस्य नाम्नो यो भागस्तस्य षड्विंशतितमो भागोऽङ्गोपाङ्गनामसत्कः, तस्याऽऽसन्नाऽर्धभागप्रमाणत्वात्, ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकलदलिकान्यपेक्ष्य चतुःपञ्चाशदुत्तरत्रिशतांशप्रमाणत्वात्, कार्मणशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य त्वासन्नैकचत्वारिंशदुत्तरचतुःशततमांशमितत्वात्। ततो मध्यमसंस्थानचतुष्कस्य विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धः, नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धे तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभेन नामप्रकृतितया लब्धदलिकानां सप्तविंशतितमांशमितत्वात्, सकलद्रव्याऽपेक्षया, त्वेकोननवत्युत्तरशततमभागप्रमाणत्वात्। तत आद्यसंहननपञ्चकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, दलविभागस्तु पूर्वस्थानवदेव; केवलं गत्यादिक्रमेण संस्थानतः संहनननाम्नो दलिकस्य प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्वं भवति। ततो जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः। अस्याऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यैकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने भावेऽपि प्रकृतिविशेषाद् विशेषाऽधिकत्वं भवति, ततो मूलोक्तदेवनरकगतिद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः। यद्यपि कार्मणशरीरतो नरकगतेर्देवगतेश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य साऽतिरेकद्विगुणतया मूलकृता संख्येयगुणता दर्शिता, तथाऽपि प्रस्तुतेऽवान्तरपदानां प्रक्षेपाज्जिननामतो विशेषाऽधिकत्वमेव विज्ञेयम्। पूर्वपदे सकलद्रव्यस्यासन्नैकोननवत्यधिकशततमभागप्रमाणं द्रव्यं भवति, प्रस्तुते तु सकलद्रव्यस्य द्व्यशीत्युत्तरशततमांशाऽऽसन्नत्वात्। ततः समचतुरस्रसंस्थानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः; प्रकृतिविशेषात्। ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषात्, ततो देवानुपूर्वीनरकानुपूर्व्योर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः परस्परतुल्यश्च, विशेषाधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद् विज्ञेयम्। ततः प्रशस्तविहायोगतेरप्रशस्तविहायोगतेश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च; विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद् भवति। ततः सुभगनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषात्। ततः सुस्वरदुःस्वरनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च; तत्र विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषात्। तत आदेयनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषात्। अत्र नरकदेवगतिद्वयादारभ्यादेयनाम यावद् द्वादशप्रकृतीनां नाम्नोऽष्टाविंशतिबन्धे ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावेऽपि गत्यादिक्रमेण दलविभाजनस्य विशेषाऽधिकक्रमेण लाभेन प्रकृतिविशेषात्प्रस्तुते विशेषाऽधिकत्वं भावनीयम्। द्वादशप्रकृतिषु प्रत्येकं ज्येष्ठप्रदेशबन्धे ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतदलिकानामासन्नद्व्यशीत्युत्तरशततमांशमितानि दलिकानि प्राप्यन्ते। तत आदेयनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धत आतपोद्योतनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च; षड्विंशतिबन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात्, अत्र नामकर्मसत्कद्रव्यस्याऽऽसन्नचतुर्विंशतितमभागः प्राप्यते, सकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नाऽष्टपञ्चाशदुत्तरशततमभागमात्राणि दलिकानि भवन्ति। उभयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य षड्विंशतौ

भावात् सप्रतिपक्षत्वाच्च तुल्यत्वमिति । ततो मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, पञ्चविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावाज्ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नैक-पष्ट्युत्तरशततमभागप्रमाणत्वात् । ततो द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्पर तुल्यश्च; तुल्यबन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेऽपि प्रकृतिविशेषादधिकत्वं भवति । तत औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाऽधिकः, ततः सेवार्तसंहननस्य विशेषाऽधिकः ततो मनुष्यानुपूर्व्या विशेषाऽधिकः । ततः पराघातस्य विशेषाऽधिकः, तत उच्छ्वासस्य विशेषाऽधिकः, ततस्त्रस-नाम्नो विशेषाऽधिकः ततः पर्याप्तनाम्नो विशेषाऽधिकः, ततः स्थिरनाम्नो विशेषाऽधिकः, ततः शुभनाम्नो विशेषाऽधिकः । द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कादारभ्य शुभनाम यावत् त्रयोदश-प्रकृतीनां क्रमेण विशेषाऽधिकत्वं यद्दर्शितं तत्प्रकृतिविशेषाद् विज्ञेयम् , पञ्चविंशतौ एव तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जायमानत्वात् । एतासु प्रत्येकं ज्येष्ठप्रदेशबन्धो ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकल-दलिकानामासन्नैकषष्ट्युत्तरशततमभागप्रमाणो भवति । ततस्तिर्यग्गतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽ-धिकः, त्रयोविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जायमानत्वेन नाम्नि लब्धभागस्यासन्नैकविंशतितमां-शस्य प्रस्तुते लाभात् सकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नसप्तचत्वारिंशदुत्तरशततमभागप्रमाणानां दलिकानां लाभात् । तत एकेन्द्रियजातेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, ततो हुण्डकसंस्थानस्य विशेषाऽ-धिकः, ततो वर्णनाम्नो विशेषाऽधिकः, ततो गन्धनाम्नो विशेषाऽधिकः, ततो रसनाम्नो विशे-षाऽधिकः, ततः स्पर्शनाम्नो विशेषाऽधिकः ततस्तिर्यगानुपूर्व्या विशेषाऽधिकः, ततोऽगुरुलघु-नाम्नो विशेषाऽधिकः, तत उपघातनाम्नो विशेषाऽधिकः, ततः स्थावरनाम्नो विशेषाऽधिकः, ततो बादरसूक्ष्मनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततोऽपर्याप्तनाम्नो ज्येष्ठप्रदेश-बन्धो विशेषाऽधिकः । ततः प्रत्येकसाधारणनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततोऽस्थिरनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, ततोऽशुभनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषा-धिकः, ततो दुर्भगनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, ततोऽनादेयनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अत्रैकेन्द्रियाद्येकोनविंशतिप्रकृतिषु ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषा-ऽधिकः प्रकृतिविशेषाद् भवति, त्रयोविंशतिबन्धस्थान आसां सर्वासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य संभवात् । एतासु प्रत्येकं नाम्नि लब्धभागस्याऽऽसन्नैकविंशतितमांशो लभ्यते, ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकल-दलिकानामासन्नसप्तचत्वारिंशदुत्तरशततमभागः प्राप्यत इति । ततो मूलोक्ततोऽयशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, ततो निर्माणनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, अत्राऽपि पदद्वये दलविभागस्तु तिर्यग्गतिवदेवाऽऽधिक्यं तु प्रकृतिविशेषाद्विज्ञेयमिति । इत ऊर्ध्वं जुगुप्सादीनां पदानां मूलोक्तमेवाऽल्पबहुत्वमवसेयम् , नामप्रकृत्यतिरिक्तानां तु

सर्वासां मूलकारेण साक्षाद्दर्शितत्वादिति । तदेवमोघतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं समाप्तमिति ॥३५३-३६१॥

अथ मार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नादौ यासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति तासु तत्तथैवाऽतिदिशन्नाह—

अप्पबहू ओघव्व तिणरदुपणिंदितसपणमणवयेसुं ।
कायउरललोहणयणअणयणभविसण्णिगेसु आहारे ॥३६२॥ (गीतिः)

(प्रे०) "अप्पबहू" इत्यादि, मनुष्यौघ-तत्पर्याप्त-मानुषी-पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसकायौघ-पर्याप्तत्रसकाय-मनोयोगसामान्य--तदुत्तरभेदचतुष्क--वचनयोगसामान्य--तदुत्तरभेद-चतुष्क--काययोगौघौ—दारिककाययोग--लोभ-चक्षुर्दर्शना-ऽचक्षुर्दर्शन--भव्य--संज्ञाऽऽहारकमार्गणासु पञ्चविंशतौ विंशत्युत्तरशतस्य बन्धो भवति, आसां सर्वासामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, ओघोक्तज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामेतासु प्रत्येकं लाभात् । भावनाऽप्योघवदेव कार्येति ॥३६२॥

अथ नरकौघादिषु प्रस्तुतं निरूपयन्नाह

सव्वणिरयभेएसुं तइआइगअट्ठमंतदेवेसुं ।
ओघव्व बीअमाणा जा केवलदंसणावरणं ॥३६३॥
तत्तो अणंतगुणिओ उरलस्स तओ कमा विसेसहियो ।
तेअसकम्माण तओ संखगुणा तिरिणरगईणं ॥३६४॥
तत्तो विसेसअहियो जसअजसाणं तओ जुगुच्छाए ।
संखेज्जगुणो तत्तो विसेसअहिओ भयस्स भवे ॥३६५॥
तत्तो हस्सियराणं तो रइ-अरईण तो दुवेआणं ।
ताउ कमा होइ पुरिसअंतिमभयकोहमायलोहाणं ॥३६६॥ (गीतिः)
तत्तो दाणाईणं विग्घाण तओ कमा मुणेयव्वो ।
मणऽवहिसुअमइणाणावरणाणं ताउ ओहिस्स ॥३६७॥
ताउ अणयणियराणं कमा तओ आउगाण संखगुणो ।
तत्तो विसेसअहिओ होइ कमा गोअवेआणं ॥३६८॥

(प्रे०) "सव्वणिरये" त्यादि, नरकौघे सप्ततदुत्तरभेदेषु तृतीयाद्यष्टमान्तपर्यन्तवैमानिकदेवभेदेषु चेति चतुर्दशमार्गणासु परस्थानज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं पुनरप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य केवलदर्शनावरणं यावदोघवद् भवति। यथौघेऽप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य केवलदर्शनावरणं यावदाद्यानि विंशत्यल्पबहुत्वपदानि सर्वघातिसम्बन्धीनि भवन्ति, तथैवाऽत्रापि; विंशत्युत्तरशतप्रकृतिषु आसामेव विंशतेः सर्वघातिप्रकृतित्वेन शेषप्रकृतितः सर्वाऽल्पदलिकलाभात्, एवं सप्तत्युत्तरशतमार्गणासु प्रत्येकमेताभ्यो विंशतिसर्वघातिप्रकृतिभ्यो यत्र यावत्यो बध्यन्ते तत्र तावतीनां प्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद् भवति, अतः सर्वमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वे चाऽऽद्यमेव तासां स्थानमित्यवधारणीयम्। प्रस्तुतचतुर्दशमार्गणासु केवलदर्शनावरणज्येष्ठप्रदेशबन्धत औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, सप्तविधबन्धकस्य नामसत्कदलिकस्यानन्तकाऽंशप्रमाणत्वात्। ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाधिकः, प्रकृतिविशेषाद् विशेषाऽधिकत्वम्, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः, ततस्तिर्यग्गतेर्मनुष्यगतेश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्यातगुणः परस्परं तुल्यश्च, नाम्नः सप्तविंशतिभागप्रमाणत्वात्, ततो यशःकीर्त्य-यशःकीर्त्योर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, गत्यादिक्रमेण दलविभाजनस्य भावेन तयोरेकोनत्रिंशतो बन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेऽपि प्रकृतिविशेषादधिकत्वमवसेयमिति। ततो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, पूर्वपदे समयप्रबद्धस्याऽऽसन्ननवाशीत्युत्तरशततमभागप्रमाणत्वात्प्रस्तुते त्वासन्नसप्ततितमभागप्रमाणत्वात्। अत्र सातिरेकसार्धद्विगुण द्रव्यं संख्येयगुणत्वेन बोध्यम्। ततो भयमोहनीयस्य विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषादत्र विशेषाऽधिकत्वं प्राप्यत इति। ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततो रत्यरत्योर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च। ततः स्त्रीवेदनपुंसकवेदयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्वम्। ततः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अत्र चतुर्थगुणस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावेनाऽनन्तभागाऽधिको भवति। ततः संज्वलनमानस्य विशेषाऽधिकः संख्येयभागेनाऽधिकः, नोकषायमोहनीयद्रव्यतः कषायमोहनीयद्रव्यस्य विशेषाऽधिकत्वे सति देशघातिकषायाणामत्र चतुर्णामेव युगपद्भावात्, नोकषायाणां तु पञ्चानां भावात् भाजकराशेन्यूनत्वेन संख्यातभागाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति। पूर्वपदे समयप्रबद्धस्याऽऽसन्नसप्ततितमांशमितं द्रव्यं भवति, प्रस्तुत आसन्नपञ्चाशद्भागप्रमितं बध्नातीति भावः। ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य विशेषाऽधिकः, ततः सञ्ज्वलनमायाया विशेषाधिकः, ततः सञ्ज्वलनलोभस्य विशेषाऽधिकः, अत्र पदत्रये भाजकराशेः समानत्वेऽपि प्रकृतिविशेषादसंख्येयभागेन विशेषाऽधिकत्वं विभावनीयमिति। ततः सञ्ज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धतो दानान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, उभयत्र मूलसप्तप्रकृतिबन्धकत्वेऽपि मोहनीयसत्कसकलद्रव्यस्य अष्टमभागप्रमाणं सञ्ज्वलनलोभे भवति, अन्तरायसत्कसकलद्रव्यस्याऽऽसन्नपञ्चमभागप्रमाणं दाना-

न्तरायादिषु प्रत्येकं प्राप्यते । प्रस्तुते ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकलदलिकानां पञ्चत्रिंशत्तमांशप्रमाणत्वात् संख्यातभागेनाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवतीति । ततो लाभान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, ततो भोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, तत उपभोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, अत्र पदचतुष्के विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद्विभावनीयमिति । ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकः, कुतः ? ज्ञानावरणसत्काऽनन्तबहुभागप्रमाणदेशघातिद्रव्यस्य चतुर्भाग इति । सकलद्रव्याऽपेक्षया त्वासन्नाऽष्टाविंशतितमभागप्रमाणं प्रस्तुते लभ्यते इत्यत्र संख्यातभागाऽधिकत्वं पूर्वपदतो विज्ञेयमिति । ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकः ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकः, अत्र पदत्रये प्रकृतिविशेषादसंख्येयभागेनाऽधिकत्वं प्राप्यत इति । ततोऽवधिदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, दर्शनावरणसत्काऽनन्तबहुभागप्रमितं यद्देशघातिद्रव्यं तत् त्रिभागप्रमाणत्वेन सकलद्रव्याऽपेक्षयाऽऽसन्नैकविंशतितमभागप्रमाणद्रव्यस्य प्रस्तुते लाभात् पूर्वपदतः संख्यातभागेनाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषादत्र पदद्वयेऽप्यसंख्येयभागेन विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयम् । ततस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणत्वात् सकलदलसम्बन्धिनो देशोनाऽष्टमांशस्य प्रस्तुते लाभात् । अत्र देवनरकायुषोर्बन्धाभावाच्छेषाऽऽयुर्द्वयस्य ग्रहणमिति । ततो गोत्रद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्यातभागेन विशेषाऽधिको भवति परस्परं तुल्यश्च, आयुष्कतो गोत्रभागस्याऽधिकत्वे सति सप्तमूलप्रकृतिबन्धकाले ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावेन समयप्रबद्धस्याऽऽसन्नसप्तमांशमितत्वादिति। वेदनीयद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, परस्परं तुल्यश्च, गोत्रभागतो वेदनीयभागस्याऽऽधिक्यात् । एवं चतुर्दशमार्गणासु मूलोक्तमल्पबहुत्वं समाप्तम् । अत्र यासु नामप्रकृतिषु तन्नोक्तं तासु तासां प्रत्येकं ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्थानं दलविभाजनद्वारोक्ततद्विभागान् गत्यादिक्रमञ्च परिभाव्य निपुणबुद्ध्याऽल्पबहुत्वं विमर्षणीयं सुगमत्वादिकारणाद् मूले नोक्तम् । एवं सर्वमार्गणासु विभावनीयमिति ॥३६३-३६८॥

अथ तिर्यग्गत्योघादिमार्गणासु तं प्राऽऽह

तिरिये पणिंदियतिरियतिगे असंजमतिअसुहलेसासुं ।
ओघव्व बीअमाणा जा केवलदंसणावरणं ॥३६९॥
तत्तो अणंतगुणिओ विउव्वस्स भवे-तओ विसेसहियो ।
उरलस्स ताउ तेजसकम्माण कमा मुणेयव्वो ॥३७०॥

तो णिरयसुरगईणं संखगुणो तो कमा विसेसहियो ।
णरगइजसातिरियगइअजसाण णिरयव्व उड्ढमओ ॥ ३७१ ॥

(प्रे०) "तिरिये" इत्यादि, तिर्यग्गत्योघे पञ्चेन्द्रियतिर्यक्-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्तिरश्चीरूपे तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणात्रयेऽसंयमे कृष्णनीलकापोतलेश्यात्रये चेत्यष्टमार्गणासु अप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य केवलदर्शनावरणं यावद् विंशतिपदानां सर्वघातिप्रकृतिमत्कानामत्र शेषप्रकृतिषु आद्ये स्थितानामल्पबहुत्वमोघवद् भवति । भावना त्वोघाऽनुसारेण नरकगतिमनुसृत्य च यथासंभवं कार्येति । केवलदर्शनावरणतो वैक्रियशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, नामसत्कदलिकानामासन्नाऽष्टसप्ततितमांशस्य लाभात् । तत औदारिकशरीरस्य विशेषाऽधिकः, नामसत्कदलिकानां त्रिषष्टितमांशस्य प्राप्यमाणत्वात्, ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषात् । ततो नरकगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो देशोनत्रिगुणरूपः संख्येयगुणः, नामसत्कद्रव्यस्याऽऽसन्नषड्विंशतितमांशस्य प्रस्तुते लाभात्, देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो नरकगत्या तुल्यो भवति । ततो मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, नामसत्कविभागस्याऽऽसन्नत्रयोविंशतितमांशमितत्वात् । ततो यशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अस्या अपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य पञ्चविंशतिबन्धस्थाने लाभेन नामसत्कविभागस्याऽऽसन्नत्रयोविंशतितमांशस्य लाभः, तथाऽपि प्रकृतिविशेषादत्र विशेषाऽधिकत्वं विभावनीयम् । ततस्तिर्यग्गतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, त्रयोविंशतौ तल्लाभेन नामप्रकृतिसत्कदलिकानामेकविंशतितमांशाऽऽसन्नत्वात् । ततोऽयशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, तुल्यबन्धस्थानेऽपि प्रकृतिविशेषादत्र विशेषाऽधिकत्वं विभावनीयम् । अत्र ज्येष्ठयोगस्थानबद्धसकलदलिकानाम सप्तसप्तचत्वारिंशदुत्तरशततमप्रविभागमितानि दलिकानि बन्धे भवन्ति । इत ऊर्ध्वं जुगुप्सादिवेदनीयद्वयान्तानां पञ्चविंशतिपदानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धाऽल्पबहुत्वं नरकमार्गणावद् भवति । यत्र प्रथमगुणस्थानकस्य तथा यथासंभवं चतुर्थादिगुणस्थानानां च सद्भावः, श्रेणेरसंभवश्च, तत्र जुगुप्सादीनां वेदनीयान्तानां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं नरकौघवद् भवति । नवमादिगुणस्थानानामसंभवेनोक्तपदेषु प्रविष्टानां बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां च दलविभाजनस्य समानप्रायस्त्वादल्पबहुत्वमपि समानमिति । उक्तपञ्चविंशतिपदेषु निर्दिष्टाः प्रकृतयः पुनरिमाः जुगुप्सा भयं हास्यशोकौ रत्यरती स्त्रीनपुंसकवेदौ पुरुषवेदः सञ्ज्वलनमानः क्रोधो माया लोभो दानान्तरायं लाभान्तरायं भोगान्तरायं परिभोगान्तरायं वीर्यान्तरायं मनःपर्यवज्ञानावरणमवधिज्ञानावरणं श्रुतज्ञानावरणं मतिज्ञानावरणमवधिदर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरणं चक्षुर्दर्शनावरणं बन्धप्रायोग्याऽऽयूंषि गोत्रद्वयं वेदनीयद्वयं चेति, एताः क्रमेण पूर्वपूर्वपदत उत्तरोत्तरपदे विशेषाऽधिकानि ज्येष्ठप्रदेशबन्धे भवन्ति । भावना तु नरकौघवद्यथासंभवं कार्येति ॥३६९-३७१॥

अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य परस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

अपमत्तपणिंदितिरियमणुअपणिंदियतसेसु सव्वेसुं ।
एगिंदियविगलिंदियभूदगवणकायभेएसुं ॥३७२॥
णिरयव्व बीअमाणा विण्णेया जाव कम्मणसरीरं ।
तत्तो संखेज्जगुणो मणुअगईए मुणेयव्वो ॥३७३॥
ताउ कमा जसतिरिगइअजसाण भवे विसेसअहियो तो ।
कुच्छाए संखगुणो ताउ भयस्स य विसेसहियो ॥३७४॥
तत्तो हासरयाणं ताओऽत्थि रइअरईण ताउ भवे ।
तिण्ह वेआणेत्तो उड्ढं णिरयव्व विण्णेयो ॥३७५॥

(प्रे०) "असमत्त"त्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिपञ्चचत्वारिंशद्मार्गणाः, एतासु प्रत्येकं प्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य कार्मणशरीरं यावत् त्रयोविंशतिप्रकृतिसत्कत्रयोविंशतिपदेषु नरकगतिमार्गणावदल्पबहुत्वं भवति; भावनाऽपि तद्वद्यथासंभवं कार्या। विंशतिसर्वघातिप्रकृतय औदारिकतैजसकार्मणशरीराणि चेति त्रयोविंशतिप्रकृतयः। अत्र वैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विकयोर्बन्धाऽभावादोघवदनतिदिश्य नरकवदतिदिष्टमिति। ततो मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, नाम्नः पञ्चविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन नामसत्कविभागस्याऽऽसन्नत्रयोविंशतितमांशदलिकानां लाभात्। पूर्वपदे नाम्नो यो लब्धविभागस्तस्याऽऽसन्नत्रिषष्टितमांशत्वात्। ततो यशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषाद्विशेषाधिकत्वम्, अत्राऽपि पञ्चविंशतिबन्ध एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभेन त्रयोविंशतितमांशत्वात्। ततस्तिर्यग्गतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, ततोऽयशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः भावना त्वोघवत् तिर्यग्गतिवद्वा कार्या। ततो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणस्ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततो रत्यरत्योर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परतुल्यश्च। भावना त्वोघवन्नरकगतिवद्वा कार्या, केवलं प्रथमगुणस्थान एवाऽऽसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवतीति विशेषः। भयादीनां प्रकृतिविशेषादत्र विशेषाऽधिकत्वं विभावनीयमिति। ततो रत्यरतिभ्यां सकाशाद् वेदत्रयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, प्रस्तुतसर्वमार्गणासु चतुर्थादिगुणस्थानकानामभावेन स्त्रीनपुंसकवेदतः पुरुषवेदस्य न विशेषाऽधिकत्वं किन्तु प्रथमगुणस्थानकदलविभाजनोक्तप्रकारेण वेदत्रये तुल्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः प्राप्यते इति

नरकौघतो विशेषः। "उड्ढं णिरयव्वे"त्यादि, वेदत्रयादूर्ध्वं सञ्ज्वलनमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धादारभ्य वेदनीयद्वयं यावद् द्वाविंशतिप्रकृतीनामेकोनविंशतिपदानामल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावद्विज्ञेयम्। नरकमार्गणावदत्राऽपि श्रेण्याद्यभावेन प्रथमगुणस्थानके चतुर्थगुणस्थानकगताऽल्पबहुत्वतो न कश्चिद्भेदः, अल्पबहुत्वं तत एवाऽवधारणीयम्, तद्वदत्राऽपि तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयस्यैव बन्धो विज्ञेय इति। द्वाविंशतिः प्रकृतयः पुनरिमाः—सञ्ज्वलनमानक्रोधमायालोभा दानान्तरायो लाभान्तरायो भोगान्तराय उपभोगान्तरायो वीर्यान्तरायो मनःपर्यवज्ञानावरणमवधिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरणं मतिज्ञानावरणमवधिदर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरणं चक्षुर्दर्शनावरणं तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयं गोत्रद्वयं वेदनीयद्वयं चेति ॥३७२-३७५॥ मनुष्यमार्गणात्रय ओघवदतिदिष्टत्वात्तदनुक्रमप्राप्तदेवौघादिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं साऽतिदेशं साऽपवादं च निरूपयन्नाह-

सुरईमाणंतविउवजोगेसु णारगव्व अप्पबहू ।
परमत्थि णरगइत्तो तिरियगईए विसेसहियो ॥३७६॥

(प्रे०) "सुरे"त्यादि, देवौघ-भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क-सौधर्मे-शानदेवलोकमार्गणाषट्के वैक्रियकाययोगे च बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धमत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावद् भवति, नामकर्मवर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां समानत्वात् नामप्रकृतिष्वेकेन्द्रियस्थावरातपनाम्नां बन्धभावेऽपि गतिद्वयस्य यशःकीर्त्य-यशःकीर्त्योश्च मूलकारेण स्पष्टतया दर्शितत्वात् न तासां प्रस्तुतेऽपवादभणनम्, केवलं तत्र तिर्यग्गतेर्मनुष्यगतेश्चैकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन तुल्यज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावेऽपि प्रस्तुते तिर्यग्गतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य पञ्चविंशत्यां भावेन मनुष्यगतिनामतस्तिर्यग्गतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति,ततो विशेषाधिको यशःकीर्तिनाम्नोऽयशःकीर्तेश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽतिदेशाऽनुसारेण प्राप्यते। द्वयोरपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य पञ्चविंशतौ भावात्। उक्ताऽपवादपदमेकं विहाय शेषाऽल्पबहुत्वं नरकगतिवद् भावनीयम्। उक्तशेषनामप्रकृतिसत्काऽल्पबहुत्वं तु सूक्ष्मधिया बन्धस्थानानि गत्यादिक्रमं च परिभाव्य स्वयं निरूपणीयं सुगमं चेति ॥३७६॥ सनत्कुमारादिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं नरकौघादिमार्गणाभिस्सममुक्तत्वात् क्रमप्राप्तास्वानतादिग्रैवेयकान्तासु मार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं साऽतिदेशं साऽपवादं च निरूपयन्नाह

णिरयव्वऽप्पाबहुगं गेविज्जतेसु आणताईसुं ।
णेयं णवरं हवए तिरिक्खगइआउवज्जाणं ॥३७७॥

(प्रे०) "णिरयव्वे"त्यादि, आनतप्राणतारणाऽऽच्युतमार्गणाचतुष्के नवसु ग्रैवेयकेषु चाऽतिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धाऽभावात् तिर्यग्गतिं तदायुष्कं च विहाय शेषाणां बन्धप्रायोग्य-

प्रकृतीनामल्पबहुत्वं नरकगतिमार्गणावद् भवति, भावनाऽपि नरकगतिमार्गणावत्कार्या, बन्धस्थानादीनामुभयत्र समानत्वात् । तत्र मूलेऽनुक्तानामपि प्रकृतीनां तिर्यगानुपूर्वीनामोद्योतनाम च विहाय शेषाणां नामप्रकृतीनामल्पबहुत्वं नरकमार्गणायां यादृशं भवति तादृशं प्रस्तुतेऽपि प्राप्यते, तत्र प्रस्तुते च तासामल्पबहुत्वमोघोक्तपद्धत्या बन्धस्थानानि गत्यादिक्रमं च विभाव्य निरूपणीयं तज्जिज्ञासूनां सूक्ष्मेक्षिकयेति ॥३७७॥

अथ पञ्चाऽनुत्तरमार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य परस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

पंचसु अणुत्तरेसुं दुइयस्स भयस्स होइ सव्वप्पो ।
तो दुइअकोहमायालोहाण कमा विसेसहिओ ॥३७८॥
तो तइआणुत्तकमा तो केवलणाण आवरणगस्स ।
ताओ कमसो णिद्दापयलाकेवलदरिसणाणं ॥३७९॥
तत्तो अणंतगुणिओ उरलस्स तओ कमा विसेसहियो ।
तेअसकम्माण तओ संखगुणो णरगईअ भवे ॥३८०॥
तत्तो विसेसअहियो जसअजसाणं तओ जुगुच्छाए ।
संखेज्जगुणो तत्तो भयस्स णेयो विसेसहियो ॥३८१॥
ताओ हासियराणं तत्तोऽत्थि रइ-अरईण ताहिन्तो ।
पुरिमस्सेत्तो परमाणतव्व णवरि ण भवे णीअं ॥३८२॥

(प्रे०) "पंचसु"इत्यादि, अनुत्तरमार्गणापञ्चके केवलं चतुर्थगुणस्थानकं भवति, अतः सर्वघातिप्रकृतिभ्यः स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वसंज्ञकानामष्टानां बन्धाऽभावः, ततः शेषद्वादशप्रकृतीनामल्पबहुत्वं गाथाद्वयेन दर्शितं तच्चौघवद् भवति, तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकः, ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य विशेषाऽधिकस्ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकः, ततः केवलज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, ततो निद्राया विशेषाऽधिकस्ततः प्रचलाया विशेषाऽधिकस्ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः,भावनाऽप्योघानुसारेण यथासम्भवं कार्येति । एतेषु द्वादशपदेषु समयप्रबद्धस्याऽनन्ततमो भागो प्राप्यते, ततः केवलदर्शनावरणत औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, नाऽत्र लब्धभागस्याऽऽसन्नैकाशीतितमांशत्वात् , तत

स्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः प्रकृतिविशेषात्, ततो मनुष्यगतिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुणः, आगमसप्तविंशतितमांशत्वात्, ततो यशःकीर्त्य-यशःकीर्त्योर्विशेषाऽधिकस्ततो जुगुप्सायाः प्रदेशबन्धः संख्येयगुणः साधिक-सार्धद्विगुणत्वात्, ततो भयस्य विशेषाऽधिकः, ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकस्ततो रत्यरत्यो-र्विशेषाऽधिकः, औदारिकशरीरादारभ्य रत्यरती यावदल्पबहुत्वमानतदेवमार्गणावद् भवति, ततः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, स्त्रीनपुंसकवेदयोरत्र बन्धाऽभावात् केवलं पुरुष-वेदस्यैव निर्देश इति प्रकृतिविशेषादत्राऽसंख्येयभागेन विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयमिति । एतद-प्यानतदेववदेव, इत ऊर्ध्वमपि संज्वलनमानादीनां वेदनीयद्वयपर्यवसानानामल्पबहुत्वमानत-देववद् भावनीयम्, केवलमत्र नीचैर्गोत्रस्य बन्धाऽभावेन गोत्रस्थाने केवलमुच्चैर्गोत्रस्यैव बन्धो वाच्य इति । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—पुरुषवेदज्येष्ठप्रदेशबन्धतः संज्वलनमानस्य विशेषाऽधिक-स्ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततः संज्वलनलोभस्य विशेषाऽधिकः, ततो दानान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो लाभान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो भोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततः परिभोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकः, ततोऽवधिदर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततो ऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततो मनुष्यायुषो ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, तत उच्चैर्गोत्रस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, ततो वेदनीय-द्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः । एतत्सर्वमप्यल्पबहुत्वं नरकमार्गणावद् भवति, केवलम-बन्धप्रायोग्या प्रकृतयो वर्जनीया इति । भावनाऽपि तदनुसारेण यथासंभवं कार्येति । एवं गतिमार्गणासु प्रस्तुताल्पबहुत्वं समाप्तम् ॥३७८-३८२॥

सप्तदशेन्द्रियमार्गणास्वपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणया समम्, पञ्चेन्द्रियमार्गणाद्वये त्रिमनुष्यादिमार्गणाभिस्सममल्पबहुत्वस्य निरूपितत्वात्, इन्द्रियमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं समाप्तम् । पृथ्वीकायाऽप्काय-वनस्पतिकायसत्कपञ्चविंशतिमार्गणास्वपर्याप्तत्रसकायमार्गणायां चाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणया सह प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपितम्, त्रसकायमार्गणाद्वये त्रिमनुष्यादिमार्गणाभिस्समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमपि दर्शितमतः शेषेषु कायमार्गणासत्केषु सप्त-तेजस्कायभेदेषु सप्तवायुकायभेदेषु च साऽतिदेशं साऽपवादं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

सव्वागणिवाऊसुं भवे अपज्जगपणिंदितिरियव्व ।
णवरं हवेज्ज वज्जिअ मणुस्सगइआउउच्चाणि ॥३८३॥

(प्रे०) "सव्वे"त्यादि. सप्ततेजस्कायमार्गणासु सप्तवायुकायमार्गणासु च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य परस्थानाऽल्पबहुत्वमपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायां यथा दर्शितं तथा द्रष्टव्यम्, उभयत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां बन्धस्थानादिना तुल्यत्वात् । तत्रैव पृथ्वीकायादिमार्गणानां संगृहीतत्वेऽप्यासामसंग्रहस्तु प्रस्तुतमार्गणासु मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीनामबध्यमानत्वात्, अत एव "णवर"मित्यादिना मनुष्यगति-तदायुष्को-च्चैर्गोत्राणां वर्जनीयत्वेनाऽपवादो दर्शितः । अत्र मनुष्यानुपूर्व्या अबध्यमानत्वेऽपि आनुपूर्वीनामामल्पबहुत्वं मूलकारेण प्रस्तुतेऽसंगृहीतत्वात्तद्वर्जनं न कृतम्, अर्थतस्तु तद्वर्जनमपि बोद्धव्यमेवेति । मूलेऽनुक्तप्रकृतीनामल्पबहुत्वं तत्रात्र च समानमेव, तच्चाल्पबहुत्वं बन्धस्थानानि परिभाव्य सावधानतया निरूपणीयम्, सुगमं चेति ॥३८३॥ गतं कायमार्गणास्वल्पबहुत्वम् । अथ योगमार्गणासु तन्निरूपयन्नाहौदारिकमिश्रे—

ओघव्व उरलमीसे जा केवलदंसणावरणं ।
तत्तो अणंतगुणिओ दोण्हं आऊण बोद्धव्वो ॥३८४॥ (उपगीतिः)
ताउ असंखेज्जगुणो विउवस्स तओ कमा विसेसहियो ।
ओरालतेअकम्माण तओ संखियगुणो सुरगईए ॥३८५॥(गीतिः)
तत्तो णरगइजसतिरिगइअजसाणं कमा विसेसहियो ।
तो कुच्छाए संखियगुणोऽत्थि णिरयव्व तेण परं ॥३८६॥

(प्रे०) "उरलमीसे"त्ति, औदारिकमिश्रे प्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य केवलदर्शनावरणं यावद् विंशतिसर्वघातिप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद् भवति, अत्र समयप्रबद्धस्याऽनन्ततमो भागः प्रत्येकं प्राप्यत इति । ततस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः परस्परं तुल्यश्च भवति, यतः प्रस्तुतमार्गणायामायुर्द्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिनां भवति, मार्गणाप्रायोग्यज्येष्ठयोगस्थानं तु करणाऽपर्याप्तानां भवति, तच्च लब्ध्यपर्याप्तज्येष्ठयोगस्थानतोऽसंख्येयगुणं भवति, आयुर्भिन्नप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धः करणाऽपर्याप्तानां भवति, तत्राऽपि सर्वघातिप्रकृतीर्विहाय शेषाणां ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसमयप्रबद्धस्य संख्येयतमभागो भवति, अतः सर्वघातिप्रकृत्यनन्तरमायुषोऽल्पबहुत्वस्य भणनम् । ततो वैक्रियशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, असंख्यगुणयोगवर्ता तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात्, तत औदारिकशरीरस्य विशेषाऽधिको नाम्नस्त्रयोविंशतिबन्धस्थाने तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, ततस्तैजसशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकः; प्रकृतिविशेषाद् विशेषाऽधिकत्वम्, ततो देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनसार्धद्विगुणः, ततो मनुष्य-

गतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, पञ्चविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, देवगतेस्त्वष्टाविंशता इति । ततो यशःकीर्तिनाम्नो विशेषाऽधिकः प्रकृतिविशेषात्, ततस्तिर्यग्गतेर्विशेषाऽधिकस्ततोऽयशःकीर्तिनाम्नो विशेषाधिकः, भावना तु पदद्वये तिर्यग्गत्योघवत्कार्या सुगमा च । ततो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, पूर्वस्थाने नामसत्कभागस्याऽऽसन्नैकविंशतितमांशप्रमितदलिकानि लभ्यन्ते, प्रस्तुतपदे तु मोहनीयसत्कदलिकानामासन्नदशमभागगतदलिकानि भवन्तीत्यतः सातिरेकद्विगुणत्वम् । इत ऊर्ध्वं तु भयादीनां वेदनीयद्वयपर्यन्तानामायुर्द्वयवर्जानामष्टाविंशतिप्रकृतीनां त्रयोविंशतिपदेषु ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावद् भवति, भावनाऽपि तदनुसारेण यथासंभवं कार्येति । अष्टाविंशतिप्रकृतयस्त्रयोविंशतिपदेष्वेवम्— भयमोहनीयं हास्यशोकौ रत्यरती स्त्रीनपुंसकवेदौ पुरुषवेदः सञ्ज्वलनमानः क्रोधो माया लोभो दानान्तरायो लाभान्तरायो भोगान्तराय उपभोगान्तरायो वीर्यान्तरायो मनःपर्यवज्ञानावरणमवधिज्ञानावरणं श्रुतज्ञानावरणं मतिज्ञानावरणमवधिदर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरणं चक्षुर्दर्शनावरणं गोत्रद्वयं वेदनीयद्वयं चेत्येतेषु पदेषु क्रमेण विशेषाऽधिकज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, केवलं गोत्रे संख्येयगुणो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवतीति ॥३८४-३८६॥

अथ वैक्रियमिश्रे कार्मणाऽनाहारकमार्गणाद्वये च साऽतिदेशं साऽपवादं ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

देवव्व विउवमीसे परमाऊ णत्थि उरलमीसव्व ।
कम्माणाहारेसुं णाऊ ताउ विउवस्सऽणतगुणो ।३८७॥ (गीतिः)

(प्रे०) "देवव्व" इत्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां देवौघवत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं भवति, तत्र यासां यासां यस्मिन् बन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, प्रस्तुते तासां तस्मिन्नेव बन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, अतो मार्गणाद्वये ज्येष्ठयोगस्थानस्य भिन्नत्वेऽपि नाल्पबहुत्वे भेदः, केवलं प्रस्तुत आयुर्द्वयस्य बन्धाऽभावादल्पबहुत्वे तत्पदं न वाच्यम्, अत एव चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धतो गोत्रद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो देशोनत्रिगुणो भवति, अतिदिष्टस्थले तु आयुर्द्वयस्य संख्येयगुणताया दर्शितत्वात्, ततो गोत्रस्य विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो दर्शित इति विमर्शनीयं विपश्चिद्भिः । शेषं सर्वमल्पबहुत्वं तद्भावनं च देवौघवद् विभावनीयम् ।

कार्मणाऽनाहारकमार्गणाद्वये औदारिकमिश्रमार्गणावत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं भवति, बन्धस्थानादिना ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां समानत्वाद्; भावनाऽपि तद्वद् भावनीया; केवलं प्रस्तुत आयुषां बन्धाऽभावात् तत्सत्कपदं न वाच्यम्, अत एव केवलदर्शनावरणज्येष्ठप्रदेशबन्धोत्तरं वैक्रियशरीरस्य पदं भवति, "ताउ" तस्मात्कारणात्केवलदर्शनावरणप्रकृतिभ्यो वैक्रियशरीरस्यो ज्येष्ठप्रदेश-

दन्धोऽनन्तगुणो भवति। एतच्चाऽऽयुषो बन्धस्य निषेधेन गम्यमानत्वेऽपि मूलकृता स्पष्टार्थं दर्शितमिति ॥३८७॥

अथाऽऽहारकतन्मिश्रयोगमार्गणाद्वये प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

आहारदुगे केवलणाणावरणस्स होइ सव्वप्पो ।
ताउ विसेसहिया पयलाणिद्दाकेवलाण कमा ॥३८८॥
तत्तोऽत्थि अणंतगुणो विउवस्स तओ कमा विसेसहियो ।
तेअसकम्माण तओ संखगुणो सुरगईअ भवे ॥३८९॥
ताओ विसेसअहियो जस-अजसाणं तओ जुगुच्छाए ।
संखगुणो तेण परं अणुत्तरसुरव्व विण्णेयं ॥३९०॥

(प्रे०) "आहारदुगे" इत्यादि, आहारककाययोग-तन्मिश्रकाययोगमार्गणाद्वये केवलज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकस्ततः प्रचलाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततो निद्राया ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततः केवलदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, सर्वघातिविंशतिप्रकृतिभ्य एताश्चतस्र एव प्रस्तुतमार्गणाद्वये बध्यन्ते, तासां चौघवदेव प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं प्राप्यत इति। ततः केवलदर्शनावरणतो वैक्रियशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः; नाम्नि लब्धभागस्याऽऽसन्नाऽष्टसप्ततितमभागप्रमाणत्वात्। अत्राऽऽहारकद्विकस्य बन्धाऽभावान्न तन्निरूपणम्, ओघे तु आहारकशरीरनिरूपणाऽनन्तरं वैक्रियस्येति। ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततो देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, आसन्नषड्विंशतितमांशत्वेन देशोनत्रिगुणत्वात्; भावना त्वोघवत्कार्या। ततो यशःकीर्तिनाम्नोऽयशः-कीर्तिनाम्नश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, देवगतिप्रकृतिवदेतयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य मूलसप्तविधबन्धकस्य नाम्नोऽष्टाविंशतिबन्धस्थाने भावेन प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्वं विभावनीयमिति। ततो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, पूर्वपदे समयप्रबद्धस्याऽऽसन्नसप्तमभागस्य षड्विंशतितमांशाऽऽसन्नत्वात्; प्रस्तुते तु समयप्रबद्धसत्काऽऽसन्नसप्तमभागस्याऽऽसन्नदशांशमितत्वात् साधिकसार्धद्विगुणो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, इत ऊर्ध्वं भयादीनां वेदनीयद्वयपर्यवसानानां षड्विंशतिप्रकृतीनां त्रयोविंशतिपदेषु ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्काऽल्पबहुत्वमनुत्तरसुरमार्गणावद्विज्ञेयम्। शेषाणां षड्विंशतेर्बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कस्वामिनां बन्धस्थानादिना समानत्वात्। भावनाऽपि तद्वद्यथासंभवं कार्येति, केवलं तत्र मनुष्यायुषो बन्धो दर्शितः। प्रस्तुते तु देवायुषो बन्धो द्रष्टव्य इति। शेषाणां पञ्चेन्द्रियजात्यादिबन्धप्रायोग्यनामप्रकृतीनाम-

ल्पबहुत्वं प्रकृतिविशेषं बन्धस्थानानि च परिभाव्याऽन्तराले यथासंभवं स्वयं विभावनीयं सुगमं चेति ॥३८८-३९०॥ मनोयोगभेदेषु वचनयोगभेदेषु काययोगौदारिकौदारिकमिश्रकाययोगयोश्च मनुष्यादिमार्गणाभिरसमओघवदतिदेशेन दर्शितम् । एवं योगमार्गणाभेदेषु ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपितम् ।

अथ क्रमप्राप्तवेदमार्गणात्रये तन्निरूपयन्नाह

ओघव्व तिवेएसुं थीणपुमं जा तओ विसेसहियो ।
चरमभयकोहमायालोहाण कमा मुणेयव्वो ॥३९१॥
ताहिन्तो विग्घाणं दाणाईणं कमा मुणेयव्वो ।
तत्तो कमा मणावहिसुअमइणाणाण बोद्धव्वो ॥३९२॥
ताओ कमोहिअणयणणयणपुमाणऽत्थि ताउ आऊणं ।
ताउ दुगोअजसाणं तो दोण्हं वेअणीयाणं ॥३९३॥

(प्रे०) "ओघव्व" इत्यादि, स्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंसकवेदमार्गणात्रये अप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं यावत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम्, नवमगुणस्थाने बन्धप्रायोग्या द्वाविंशतिप्रकृतीर्विहाय शेषाणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वमोघवत्प्राप्यते, अतस्तासामल्पबहुत्वमप्योघवद् भवति । केवलज्ञानावरणस्य केवलदर्शनावरणस्य च सर्वघातित्वात् तयोरप्यल्पबहुत्वमोघवद् भवति, अतः स्त्रीनपुंसकवेदद्वयं यावदोघवदतिदिष्टम् । वेदद्वये समयप्रबद्धस्याऽऽसन्नसप्तमभागप्रमितस्य मोहनीयदलिकस्याऽऽसन्नदशमांशमितं द्रव्यं भवति । ततः सञ्ज्वलनमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, संख्येयभागेनाऽत्र विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयम्, मोहनीयद्रव्यस्याष्टमांशमितमत्र द्रव्यं भवति । ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकः, विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद्विज्ञेयम् । ततो दानान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, विशेषाऽधिकत्वं संख्येयभागेन विज्ञेयम्, अन्तरायसत्कदलिकस्य पञ्चमांशमितत्वात् । ततो लाभान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो भोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततः परिभोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, विशेषाऽधिकत्वं पदचतुष्के प्रकृतिविशेषाद्विज्ञेयम् । ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयभागेन विशेषाऽधिकः, ज्ञानावरणदलिकस्य चतुर्थांशमितत्वात्, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततोऽवधिदर्शनावरणस्य संख्येयभागेन विशेषाऽधिकः, दर्शनावरणदलिकस्य तृतीयांशमितत्वात्, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः । एतत् संज्वलनमानादारभ्य चक्षुर्दर्शनं यावत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं नरकौघवद्विभावनीयमिति । ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धतः पुरुष-

वेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयभागेन विशेषाऽधिकः, ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतस्य समयप्रबद्धस्याऽऽसन्नैकविंशतितमांशप्रमाणश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, पुरुषवेदज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तु ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतस्य समयप्रबद्धस्याऽऽसन्नचतुर्दशभागप्रमाणः, कुतः? उच्यते, नवमगुणस्थाने मोहनीयसत्कपञ्चविधबन्धकस्य पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन नोकषायसत्कसकलद्रव्यस्य तस्मिन्नेव लाभाद् मोहनीयस्य देशोनाऽर्धभागप्रमितदलिकानि पुरुषवेदे लभ्यन्त इति । ततः पुरुषवेदतश्चतुर्णामायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, गृहीतसकलद्रव्यस्याऽऽसन्नाऽष्टमभागप्रमाणत्वात् । ततो गोत्रद्वयस्य संख्येयभागेन विशेषाऽधिकः; परस्परं तुल्यश्च, समयप्रबद्धस्य सप्तमभागप्रमाणत्वात् । यशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽपि गोत्रद्वयतुल्यो भवति, मूलप्रकृतिसत्कभागस्य समानत्वात्, उत्तरप्रकृतौ गोत्रवत्प्रस्तुते यशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाले एकस्या एव बध्यमानत्वेन अष्टमगुणस्थानषष्ठभागादूर्ध्वमेवोक्तमार्गणात्रये आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवतीति । ततो वेदनीयद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽसंख्येयभागेन विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च; मूलप्रकृतिदलविभाजने वेदनीयस्य भागोऽधिको लभ्यत इति ॥३९१-३९३॥

अथाऽपगतवेदमार्गणायां ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

> अवगयवेए केवलणाणावरणस्स होइ सव्वप्पो ।
> तत्तो केवलदंसणआवरणस्स उ विसेसहियो ॥३९४॥
> तत्तोऽत्थि दाणविग्घस्स अणंतगुणो तओऽत्थि ओघव्व ।
> चक्खुं जा ताउ चरममायाअ भवे विसेसहियो ।।३९५॥
> तत्तो संखेज्जगुणो अंतिमलोहस्स तो विसेसहियो ।
> णेयो जसउच्चाणं ताओ सायस्स विण्णेयो ॥३९६॥

(प्रे०) "अवगयवेए" इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणप्रकृतिद्वयं प्रस्तुते सर्वघाति, तत्र केवलज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽल्पः, ततः केवलदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषादत्र विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयम् । ततो दानान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः; प्रस्तुतप्रकृतीनां देशघातित्वात्, गृहीतसकलदलिकानामासन्नत्रिंशत्तमांशप्रमितानां दलिकानां प्रस्तुते लाभात्, तत आरभ्य चक्षुर्दर्शनावरणं यावत् त्रयोदशप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम्, आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामोघवद् भावात् । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—ततो दानान्तरायतो लाभान्तरायस्य ततो भोगान्तरायस्य ततः परिभोगान्तरायस्य ततो वीर्यान्तरायस्य ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य ततोऽव-

धिज्ञानावरणस्य ततश्श्रुतज्ञानावरणस्य ततो मतिज्ञानावरणस्य ततः सञ्ज्वलनमानस्य ततोऽव-धिदर्शनावरणस्य ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषा-ऽधिको विशेषाऽधिको भवति, चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकल-दलिकानामासन्नाऽष्टादशभागप्रमितो भवति, ततः सञ्ज्वलनमायाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषा-ऽधिकः; समयप्रबद्धस्य देशोनचतुर्दशांशप्रमाणत्वात् , ततः सञ्ज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः; द्विगुणः, समयप्रबद्धस्य देशोनसप्तमभागप्रमाणत्वात् , ततो यशःकीर्तिनाम्नो ज्ये-ष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः षड्विधबन्धकस्य तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन देशोनषष्ठभागप्रमाणत्वात्। उच्चैर्गोत्रस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तुल्यः दलविभाजने नामगोत्रयोस्तुल्यप्रदेशानां लाभात् । ततः सातवेदनीयस्य विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषाद् विशेषाऽधिकत्वम् । एवं प्रस्तुतमार्गणायामेकविंश-तिप्रकृतयो बन्धप्रायोग्यास्तासामल्पबहुत्वं दर्शितमिति ॥३९४-३९६॥

एतर्हि क्रोधमार्गणायां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

ओघव्व जाव कोहे थीणपुमं तो कमा विसेसहियो ।
दाणाइगविग्घाणं तो मणणाणाइगाण कमा ॥३९७॥
तत्तो हवेज्ज कमसो अतिमसयकोहमायलोहाणं ।
ताओ ओहिस्स भवे णपुमव्व हवेज्ज तेण परं ॥३९८॥
मइणाणावरणा जा माणो कोहव्व तो विसेसहियो ।
कमसो णेयो अंतिमकोहोहिअचक्खुचक्खूणं ॥३९९॥
ताउ चरमसयमायालोहपुमाणं कमाऽत्थि ताऽऽऊणं ।
ताउ दुगोअजसाणं ताओऽत्थि दुवेअणीयाणं ॥४००॥
मायाअ सयव्व चरममाणं जा तो कमा विसेसहियो ।
होइ पुम चरममायालोहाऽऽऊणं सयव्व तेण परं ॥४०१॥(गीतिः)

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, क्रोधमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य स्त्रीनपुंसकवेद-योर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धं यावज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, केवलज्ञानावरणं केवलदर्शनावरणं च विहायौघोक्तज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामत्र लाभात् , भावना त्वोघानुसारेण कार्या। केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणयोः सर्वघातित्वेन तयोरल्पबहुत्वमोघवत्प्राप्यत इति । ततः स्त्रीनपुंसकवेदयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धतो दानान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाधिको भवति,पूर्व-

पदे ज्येष्ठसमयप्रबद्धस्याऽऽसन्नसप्ततितमांशत्वात्, प्रस्तुते तु तत्सप्तमभागस्याऽऽसन्नपञ्चमांशत्वाच्च देशोनद्विगुणं दलिकं विशेषाऽधिकत्वेन विज्ञेयमिति । ततो लाभान्तरायस्य ततो भोगान्तरायस्य तत उपभोगान्तरायस्य ततो वीर्यान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, अत्र प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्वमिति ।

ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, गृहीतसकलदलसत्कसप्तमांशस्याऽऽसन्नचतुर्थांशप्रमाणत्वात्, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततो श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषाद् विशेषाऽधिकत्वम्, ततः सञ्ज्वलनमानस्य विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, अत्राऽपि समयप्रबद्धस्याऽऽसन्नसप्तमभागस्या-ऽऽसन्नचतुर्थांशप्रमाणत्वं भवति, मूलप्रकृतौ दलविभाजनस्य ज्ञानावरणतो मोहनीयभागस्य विशेषाऽधिकत्वात्प्रस्तुते विशेषाऽधिकत्वमिति । ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततः सञ्ज्वलनमायाया विशेषाऽधिकस्ततः संज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, चतुर्णां सञ्ज्वलनानां नवमगुणस्थाने मोहनीयचतुर्विधबन्धकस्य युगपज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयमिति ।

ततोऽवधिदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः; ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकलदलिकसत्काऽऽसन्नसप्तमभागस्य देशोनतृतीयभागप्रमाणत्वात्, अत्र संख्यातभागेन विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयमिति, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः प्रकृतिविशेषाद् विशेषाऽधिकत्वं भवति, ततः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, गृहीतसकलदलसत्काऽऽसन्नसप्तमभागस्य देशोनाऽर्धभागप्रमाणत्वात्, तत आयुष्कचतुष्कस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, देशोनाऽष्टमभागप्रमाणत्वात्, ततो गोत्रद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, आसन्नसप्तमभागप्रमाणत्वेन नामगोत्रयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य विशेषाऽधिकत्वात् । यशःकीर्तिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धो गोत्रद्वयेन तुल्यो भवति, नामगोत्रयोस्तुल्यदलिकानां लाभात् । ततो वेदनीयद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अत्र विशेषाऽधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद् भवति । उदतशेषाणां नाम्नामल्पबहुत्वमोधिकवृत्तौ यथा दर्शितं तथाऽत्राऽपि भावनीयमिति । एवं क्रोधमार्गणायां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं दर्शितम् । मानमार्गणायां संज्वलनचतुष्कं पुरुषवेदं च मायामार्गणायां तु सञ्ज्वलनमानमायालोभरूपं प्रकृतित्रयं पुरुषवेदं च विहाय शेषं सर्वमप्यल्पबहुत्वं क्रोधमार्गणावद् भवति ।

मानमार्गणायां मतिज्ञानावरणं यावत्क्रोधमार्गणावदल्पबहुत्वं प्रदर्श्य तदनु मतिज्ञानावरणतः सञ्ज्वलनक्रोधस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततोऽवधिदर्शनावरणस्य ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ततः संज्वलनमानस्य, ततः संज्वलनमायायास्ततः संज्वलन-

लोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, ततः पुरुषवेदस्य विशेषाऽधिकः द्रष्टव्यः, इत ऊर्ध्वं पुनः क्रोधमार्गणावत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं भवति ।

मायामार्गणायां संज्वलनमानं यावद् मानमार्गणावद् भवति; ततः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततः संज्वलनमायाया विशेषाऽधिकस्ततः संज्वलनलोभस्य विशेषाऽधिको ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, तत आयुश्चतुष्कस्य विशेषाऽधिकस्ततः पदद्वयस्य प्रकृतिपञ्चकस्य क्रोधमार्गणावत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं विज्ञेयमिति । भावना तु संज्वलनमानादित्रिकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामित्वं दलविभाजनं च परामृश्य कार्या सुगमा च । शेषा भावना तु क्रोधमार्गणावद्विज्ञेयेति ॥३९७-४०१॥

अथ मतिज्ञानादिमार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य परस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह--

केवलदंसणआवरणं णाणतिगोहिसणखइएसुं ।
जाऽणुत्तरव्व तत्तो आहारतणुस्सऽणंतगुणो ॥४०२॥
ताओ विसेसअहियो कमा उरलविउव्वतेअकम्माणं ।
तत्तो संखेज्जगुणो मणुयगईए मुणेयव्वो ॥४०३॥
तत्तो विसेसअहियो कमा सुरगइअजसाण ताहितो ।
कुच्छाए संखगुणो ताउ भयस्स य विसेसहियो ॥४०४॥
तत्तो हस्सियराणं तो रइअरईण ताउ संखगुणो ।
दाणंतरायगस्स उ एत्तो ओघव्व जा चरममायं ॥४०५॥
ताउ कमा आउचरमलोहअसायाण खलु विसेसहियो ।
तत्तो जसउच्चाणं तो साअस्सुवसमे एवं ॥४०६॥

(प्रे०) 'केवले'त्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानाऽवधिज्ञानाऽवधिदर्शनसम्यक्त्वौघक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणासु षट्सु प्रत्येकमप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य केवलदर्शनावरणं यावद् बन्धप्रायोग्यद्वादशप्रकृतीनामल्पबहुत्वमनुत्तरसुरमार्गणावद् भवति, तत्राऽप्यासामल्पबहुत्वस्यौघवद् भावेऽप्यऽनन्तानुबन्धिकषायचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वरूपाणामष्टानामनुत्तरे प्रस्तुते च बन्धाऽभावात् ओघवदनतिदिश्याऽनुत्तरसुरमार्गणावदतिदेश इति ।

अनन्तानुबन्ध्यादिप्रकृत्यष्टकं विहाय शेषसर्वघातिप्रकृतीनामोघवदल्पबहुत्वं भवति, तद्यथा-अप्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकः, ततः क्रोधस्य ततो मायायाः ततो

लोभस्य, ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य, ततः क्रोधस्य, ततो मायायास्ततो लोभस्य, ततः केवलज्ञानावरणस्य, ततः प्रचलायास्ततो निद्रायास्ततः केवलदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति, तत आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः; यतः पूर्वपदस्य सर्वघातित्वेन समयप्रबद्धस्याऽनन्ततमो भागः, आहारकशरीरे तु गृहीतसकलदलिकानामासन्नसप्तमभागस्य नाम्नि लब्धस्य चतुरधिकशततमभागप्रमाणत्वात् पूर्वतोऽनन्तगुणत्वम्। तत औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः; एकोनत्रिंशति तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन नाम्नि लब्धभागस्यासन्नैकाशीतितमांशमितत्वात् , ततो वैक्रियशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः; अष्टाविंशतौ तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन नाम्नि लब्धभागस्याऽऽसन्नाऽष्टसप्ततितमांशप्रमाणत्वात् , ततस्तैजसशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, पदद्वये प्रकृतिविशेषाद् विशेषाऽधिकत्वं भवति, ततो मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः, नाम्नि लब्धभागस्याऽऽसन्नसप्तविंशतितमांशप्रमाणत्वात् , ततो देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः,नामसत्कविभागस्याऽऽसन्नषड्विंशतितमभागप्रमाणत्वात् , ततोऽयशःकीर्तेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, पूर्वपदेन, तुल्यस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभेन भाजकराशेस्तुल्यप्रायत्वेऽपि प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयमिति ।

इत ऊर्ध्वं जुगुप्सादीनां सर्वमल्पबहुत्वमोघवद् भावनीयम् , केवलं बन्धेऽनर्हाः प्रकृतयो वर्जनीयास्ताश्च प्रकृतयः पुनरिमाः-स्त्रीवेदनपुंसकवेदनरकायुष्कतिर्यगायुष्कनीचैर्गोत्राणि । अल्पबहुत्वं पुनरेवम् अयशःकीर्तिनामतो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणस्ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकः, ततो रत्यरत्योर्विशेषाऽधिकः । ततो दानान्तरायस्य संख्येयगुणः साऽतिरेकद्विगुणस्ततो लाभान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो भोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्तत उपभोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाऽधिकः । ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य विशेषाधिकस्ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य, ततश्श्रुतज्ञानावरणस्य, ततो मतिज्ञानावरणस्य, ततः संज्वलनमानस्य, ततोऽवधिदर्शनावरणस्य, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य, ततः पुरुषवेदस्य, ततः संज्वलनमायाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति, ततो मनुष्यदेवायुष्कद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततः सञ्ज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततोऽसातवेदनीयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततो यशःकीर्तिनाम्न उच्चैर्गोत्रस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च ततः सातवेदनीयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिक इति ।

उक्तशेषाणां नामप्रकृतीनामल्पबहुत्वं तु ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्याणि बन्धस्थानानि गत्यादिप्रकृतिक्रमश्च परिभाव्योक्ताऽल्पबहुत्वपदानामन्तराले स्वयं वक्तव्यं सुगमं चैतदिति ।

एवमुपशमसम्यक्त्वमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां सप्तसप्ततिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य परस्थानाऽल्पबहुत्वं विज्ञेयम्, ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वादायुर्वर्जबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां समानत्वाच्चेति ॥४०२-४०६॥

अथ मनःपर्यवज्ञानादिमार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

मणणाणसंजमेसुं केवलणाणस्स होइ सव्वप्पो ।
ताउ विसेसहियो पयला-णिद्दा-केवलाण कमा ॥४०७॥
तत्तो अणंतगुणिओ आहारतणुस्स होइ ताहिन्तो ।
कमसो विसेसअहियो वेउव्वियतेअकम्माणं ॥४०८॥
तत्तो संखगुणो सुरगइअ ताउ अजसस्स अब्महिओ ।
तो कुच्छाए संखियगुणो तओ उड्ढमोहिव्व ॥४०९॥

(प्रे०) "मणणाणे"त्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघे च बन्धप्रायोग्याणां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं सर्वं मतिज्ञानादिमार्गणावद् भवति, ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामुभयत्र तुल्यत्वात्, जुगुप्सां यावत्स्पष्टतयाऽल्पबहुत्वस्य निरूपणं त्वप्रत्याख्यानावरणादिकपायाऽष्टकस्य मनुष्यगते-रौदारिकशरीरस्य च प्रस्तुते बन्धाऽभावात् तद्वर्जनार्थम्; तथा प्रस्तुते मनुष्यगतेर्बन्धाऽभावात् कार्मणशरीरतो देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो भवतीति दर्शनार्थं च । अतः प्रस्तुते बन्ध-प्रायोग्याणां पञ्चषष्टेरल्पबहुत्वं मतिज्ञानादिमार्गणावद् भवति, भावनाऽपि तदनुसारेण कार्येति । जुगुप्सामोहनीयं यावदल्पबहुत्वं पुनरेवम्—केवलज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोक-स्ततः प्रचलायास्ततो निद्रायास्ततः केवलदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषा-ऽधिकः, तत आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणस्ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकस्तत-स्तैजसस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणस्य विशेषाऽधिकस्ततो देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुण-स्ततोऽयशःकीर्तिनाम्नो विशेषाऽधिकस्ततो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, इत ऊर्ध्वं तु मतिज्ञानादिमार्गणावद् विभावनीयम् ॥४०७-४०९॥

अथाऽज्ञानत्रयादिमार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं साऽतिदेशं साऽपवादं निरूपयन्नाह-

तिरियव्वऽप्पाबहुगं तिअणाणअभवियमिच्छअमणेसुं ।
णवरं णेयो तिण्हं वेआण परोप्परो तुल्लो ॥४१०॥

(प्रे०) "तिरियव्व" इत्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानाऽभव्यमिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं तिर्यगोघमार्गणावद् भवति, बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धस्थानादीनां च तुल्यत्वात् , अत्र चतुर्थादिगुणस्थानाऽभावेऽपि पुरुषवेदप्रकृतिं विहाय मोहनीयप्रकृतीनां दर्शनावरणप्रकृतीनां च प्रथमगुणस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वे यादृशमल्पबहुत्वं भवति, तादृशं प्रथमादिपञ्चमान्तगुणस्थानानां सद्भावेऽपि विज्ञेयम् , अतः प्रस्तुतमार्गणासु चतुर्थादिगुणस्थानकाऽभावेऽपि नाऽल्पबहुत्वे भेद इति तद्वदतिदेशः संगच्छते,केवलं तत्र पुरुषवेदज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य चतुर्थपञ्चमगुणस्थानद्वये भावात्तस्य च प्रथमगुणस्थाने वक्ष्यमाणवेदसत्कप्रदेशतोऽनन्तभागाऽधिकत्वेन स्त्रीनपुंसकवेदज्येष्ठप्रदेशबन्धतोऽनन्तभागाऽधिकज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, प्रस्तुते तु त्रयाणामपि वेदानां प्रथमगुणस्थाने एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावेन त्रयाणामपि वेदानां तुल्य एव ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति इत्यतिदेशतो विशेषः । शेषं सर्वं तद्वद्विभावनीयम् , विशेषाऽभावादिति ॥४१०॥

अथ सामायिकच्छेदोपस्थापनीयमार्गणयोरुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य परस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

मणपज्जवव्व समइअछेएसु रइअरइं भवे जाव ।
तत्तो विसेसअहियो कमसो दाणाइविग्घाणं ॥४११॥
तो मणणाणाईणं कमा भवे ताउ चरमकोहस्स ।
ताओ कमोहिअणयणाणयणचरममाणपुरिसाणं ॥४१२॥
ताउ कमांतिममायासुराउगाणं तओ जसुच्चाणं ।
ताउ चरमलोहस्स तओ दोण्हं वेअणीयाणं ॥४१३॥

(प्रे०) "मणपज्जवव्व" इत्यादि, सामायिकसंयमे छेदोपस्थापनीयसंयमे च केवलज्ञानावरणादारभ्य रत्यरतिमोहनीयद्वयं यावत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं मनःपर्यवज्ञानमार्गणावद् भवति । केवलज्ञानावरणं केवलदर्शनावरणं च विहाय रत्यरती यावज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां समानत्वात् केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणद्विकस्य तु सर्ववातित्वेनानन्ततमभागस्यैव लाभात् स्वामिनां भिन्नत्वेऽपि नाऽल्पबहुत्वे कश्चिद्विशेषः । अल्पबहुत्वं पुनरेवम् केवलज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्सर्वस्तोकस्ततः प्रचलाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततो निद्राया विशेषाऽधिकस्ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः, तत आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणस्ततो वैक्रियशरीरस्य ततस्तैजसशरीरस्य ततः कार्मणशरीरस्य क्रमेण विशेषाऽधिकः, ततो देवगतिनाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः देशोनत्रिगुणः, ततोऽयशःकीर्तिनाम्नो विशेषाऽधिकस्ततो-

जुगुप्सायाः ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणस्ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकस्ततो रत्यरतिमोहनीययोर्विशेषाऽधिकः, एतावद्यावद् भावना मनःपर्यवज्ञानमार्गणावत्कार्या ।

इत ऊर्ध्वं त्वल्पबहुत्वे विशेषः, यतो मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां दानान्तरायादीनां पञ्चानां षड्मूलप्रकृतिबन्धकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन ज्येष्ठयोगस्थानगृहीतसकलदलिकरूपस्य ज्येष्ठसमयप्रबद्धस्याऽऽसन्नत्रिंशत्तमांशप्रमितं दलं भवति, एवं मनःपर्यवज्ञानावरणादीनां चतुर्णामासन्नचतुर्विंशतितमांशप्रमाणं भवति, एवमवधिदर्शनावरणादीनामासन्नाऽष्टादशांशभागो भवति, प्रस्तुते तु सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानाऽभावेन सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्यैव दानान्तरायादीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् दानान्तरायादिपञ्चानां तु ज्येष्ठसमयप्रबद्धस्याऽऽसन्नपञ्चत्रिंशत्तमभागो बन्धे भवति, एवं मनःपर्यवज्ञानावरणादीनां चतुर्णां तु ज्येष्ठसमयप्रबद्धस्याऽऽसन्नाऽष्टाविंशतितमभागप्रमितं ज्येष्ठप्रदेशबन्धतया बध्नाति, एवमवधिदर्शनावरणादीनां त्रयाणां समयप्रबद्धस्यैकविंशतितमांशमितं बध्नाति । सञ्ज्वलनचतुष्कस्य मनःपर्यवज्ञानमार्गणावदेव दलविभाजनेन दलिकानि लभ्यन्ते । तत्र क्रोधे समयप्रबद्धस्याऽऽसन्नाऽष्टाविंशतितमांशप्रमितानि दलिकानि लभ्यन्ते, मान आसन्नैकविंशतितमांशप्रमितानि, मायायां त्वासन्नचतुर्दशांशप्रमितानि, लोभ आसन्नसप्तमांशप्रमितानि दलिकानि बन्धे भवन्ति, पुरुषवेदस्य त्वासन्नचतुर्दशांशो भवति, अतोऽल्पबहुत्वे विशेषः ।

तच्चैवम्–रत्यरतितो दानान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, स च देशोनद्विगुणप्रमाणो ज्ञातव्यः, ततो लाभान्तरायस्य, ततो भोगान्तरायस्य, तत उपभोगान्तरायस्य, ततो वीर्यान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको भवति । ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः संख्येयभागेन, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाऽधिकः । ततः संज्वलनक्रोधस्य विशेषाऽधिकः, अत्र विशेषाऽधिकत्वमसंख्यातभागेन विज्ञेयम् , उभयत्र समयप्रबद्धस्याऽऽसन्नाऽष्टाविंशतितमांशप्रमाणत्वेऽपि ज्ञानावरणदलिकतो मोहनीयदलिकानामसंख्यातभागेनाऽधिकत्वात् , ततोऽवधिदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, संख्यातभागेन विशेषाऽधिकत्वमिति, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकस्ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, ततः संज्वलनमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अत्राऽपि विशेषाऽधिकत्वमसंख्यातभागेन विज्ञेयम्, उभयत्र गृहीतसकलदलिकानामासन्नैकविंशतितमांशप्रमाणत्वात्, भावना तु सञ्ज्वलनक्रोधवत्कार्या । ततः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, संख्यातभागाऽधिक इत्यर्थः, गृहीतसकलदलिकानामासन्नचतुर्दशांशमितानि दलिकान्यत्र बन्धे भवन्ति, ततः संज्वलनमायाया ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, विशेषाऽधिकत्वं चाऽत्राऽसंख्येयभागेन विज्ञेयम् , उभयत्र

समयप्रबद्धस्याऽनन्तचतुर्दशांशमितत्वेऽपि नोकषायमोहनीयद्रव्यतः कषायमोहनीयद्रव्यस्य स्थितेराधिक्याद् प्रकृतिविशेषाद् वाऽसंख्यातभागेन विशेषाऽधिकत्वमिति । ततो देवायुष्कस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, समयप्रबद्धस्य देशोनाऽष्टमांशप्रमाणत्वात् , शेषायुस्त्रयस्याऽत्र बन्धाऽभावाद्देवायुष्कस्यैव ग्रहणमिति । ततो यशःकीर्तेरुच्चैर्गोत्रस्य च विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, समयप्रबद्धस्य सप्तमांशत्वात् परस्परं तुल्यत्वाच्च, ततः सञ्ज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, नामगोत्रतो मोहनीयभागस्य विशेषाऽधिकत्वात् , ततो वेदनीयद्वयस्य ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च मोहनीयतो वेदनीयभागस्य मूलप्रकृतौ अधिकत्वादिति । अत्राऽनुक्तानां बन्धप्रायोग्यनामप्रकृतीनामल्पबहुत्वं तु ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यबन्ध-स्थानान्यवगम्य जुगुप्सायाः प्राग् नामप्रकृतिसत्कापदानामन्तरालेषूपयुज्य स्वयं वाच्यं सुगमं चेति ॥४११-४१३॥

अथ परिहारविशुद्धिमार्गणायां सातिदेशं साऽपवादं परस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

परिहारे अप्पबहू आहारदुगव्व परमणंतगुणो ।
आहारगस्स केवलदरिसणओ ताउ विक्कियस्सऽहियो ॥२१४॥(गीतिः)

(प्रे०) "**परिहारे**" इत्यादि, परिहारविशुद्धिमार्गणायां षष्ठसप्तमगुणस्थानद्वयं भवति । आहारककाययोगे तन्मिश्रे च षष्ठमिति । तथा बन्धप्रायोग्यप्रकृतयोऽपि मार्गणात्रय आहारकं तदङ्गोपाङ्गं च विहाय त्रिषष्टिः समाना एव तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनोऽपि बन्धस्थानैस्समाना एव, अतोऽतिदेशो युक्तः, केवलं प्रस्तुत आहारकशरीरतदङ्गोपाङ्गयोर्बन्धभावात् , तदल्प-बहुत्वं वक्तव्यं भवति, तथाऽपि मूलकृताऽङ्गोपाङ्गनाम्नोऽल्पबहुत्वस्य मूले परस्थानाऽल्पबहुत्वे सर्वत्राऽदर्शितत्वात् प्रस्तुतेऽपि न दर्शितम् ,अतः केवलमाहारकशरीरस्याऽपवादं प्ररूपयति, तद्यथा—केवलदर्शनावरणाऽनन्तरमाहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणो भवति, ततो वैक्रियशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, इत ऊर्ध्वं केवलज्ञानावरणतः प्राक् पदत्रयस्याऽल्पबहु-त्वमतिदेशवत्सहेतुकं भावनीयमिति । एवमाहारकाङ्गोपाङ्गस्याऽल्पबहुत्वं यथास्थानं वाच्यम् , अल्पबहुत्वं तु तत एव सविशेषमवधारणीयमिति ॥४१४॥

अथ देशविरतिमार्गणायां ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं प्राह

देसम्मि तइअमाणा कमाऽहियो कोहमायलोहाणं ।
तत्तो केवलणाणस्साहारदुगव्व तेण परं ॥२१५॥

(प्रे०) "**देसम्मि**"इत्यादि, देशविरतिमार्गणायां प्रत्याख्यानमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकः; ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिक-

स्ततः केवलज्ञानावरणस्य विशेपाऽधिकः, इत ऊर्ध्वं त्वाहारककायोगमार्गणावत्सर्वमप्यल्प-बहुत्वं भवति, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं विहायोभयत्र बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां तुल्यत्वाद् बन्ध-स्थानानां समानत्वाद् मोहनीयसत्कबन्धस्थानस्य भिन्नत्वेऽप्येकैकबन्धस्थानस्य भावाच्च । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्-केवलज्ञानावरणतः प्रचलाया विशेपाऽधिकस्ततो निद्राया विशेपाऽधिकस्ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेपाऽधिकस्ततो वैक्रियशरीरस्याऽनन्तगुणस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेपाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेपाऽधिकस्ततो देवगतेः संख्येयगुणस्ततो यशःकीर्तेरयशःकीर्तेश्च विशेपाऽधिकस्ततो जुगुप्सायाः संख्येयगुणस्ततो भयस्य विशेपाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोर्विशेपा-ऽधिकस्ततो रत्यरत्योर्विशेपाऽधिकस्ततः पुरुषवेदस्य विशेपाऽधिकः, ततस्संज्वलनस्य मानस्य विशेपाऽधिकस्ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततो दानान्तरायस्य ततो लाभान्त-रायस्य ततो भोगान्तरायस्य तत उपभोगान्तरायस्य ततो वीर्यान्तरायस्य ततो मनःपर्यवज्ञाना-वरणस्य ततोऽवधिज्ञानावरणस्य ततश्श्रुतज्ञानावरणस्य ततो मतिज्ञानावरणस्य ततोऽवधिदर्शना-वरणस्य ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेणोत्तरोत्तरं विशेपा-ऽधिकः, ततो देवायुषः संख्यातगुणस्तत उच्चैर्गोत्रस्य विशेपाऽधिकस्ततः साताऽसातवेद-नीयद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेपाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, भावना पुनराहारककाययोग-वद्यथासंभवं कार्येति ॥४१५॥

अथ सूक्ष्मसंपरायमार्गणायां प्राह

सुहमे वीरियविग्घं जाव अवेअव्व तो विसेसहियो ।
कमसो मणोहिसुअमइणाणावरणाण विसेसाऽयो ॥४१६॥
ताउ कमाऽवहिअणयणणयणदरिसणाण तो जसुच्चाणं ।
संखेज्जगुणो ताओ सायस्स भवे विसेसहियो ॥४१७॥

(प्रे०) "सुहमे" इत्यादि, सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां केवलज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेश-बन्धः सर्वस्तोकस्ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेपाऽधिकस्ततो दानान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो-ऽनन्तगुणस्ततो लाभान्तरायस्य विशेपाऽधिकस्ततो भोगान्तरायस्य विशेपाऽधिकस्ततः परिभोगा-ऽन्तरायस्य विशेपाऽधिकस्ततो वीर्यान्तरायस्य विशेपाऽधिकः । एतावत्पर्यन्तं प्रस्तुताऽल्प-बहुत्वं गतवेदमार्गणावद् भवति, ततो वीर्यान्तरायतो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेपाऽधिकस्ततोऽवधिज्ञानावरणस्य, ततः श्रुतज्ञानावरणस्य, ततो मतिज्ञानावरणस्य, ततोऽवधि-दर्शनावरणस्य, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेपाऽधिको विशेपाऽधिकः क्रमेण भवति, भावना तु सुगमा, षड्विधबन्धकानाश्रित्य यथासंभवं कार्येति । तत-

श्चक्षुर्दर्शनावरणज्येष्ठप्रदेशबन्धतो यशःकीर्तेरुच्चैर्गोत्रस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्च। पूर्वपदे समयप्रबद्धस्याऽऽसन्नाऽष्टादशभागप्रमाणत्वात्, प्रस्तुते त्वासन्नषष्ठांशमितत्वादिति। ततः सातवेदनीयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, मूलप्रकृतिदलविभाजने प्रकृतिविशेषेण वेदनीयभागस्याऽधिकत्वात्, अत्रोत्तरप्रकृतयः सप्तदश एव बध्यन्त इति। असंयममार्गणायां प्रस्तुताल्पबहुत्वं तिर्यग्गोघादिमार्गणाभिस्समं निरूपितम्। तदनु क्रमप्राप्तेषु त्रिषु दर्शनमार्गणाभेदेषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं वक्तव्यं भवति, तत्र च चक्षुरचक्षुर्दर्शनमार्गणाद्वये मनुष्यादिमार्गणाभिस्सहौघवदतिदिष्टम्। अवधिदर्शनमार्गणायां तु मतिज्ञानादिमार्गणाभिस्समं निरूपितम्। ततः क्रमप्राप्तलेश्यामार्गणासु वक्तव्यम्, तत्राऽशुभलेश्यात्रये तिर्यग्गोघादिमार्गणाभिस्सह प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपितम् ॥४१६-४१७॥

अथ क्रमप्राप्तायां तेजोलेश्यामार्गणायां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य परस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

तेऊअ जाव कम्मं ओघव्व तओ भवे णरगईए।
संखेज्जगुणो तत्तो विसेसअहियो सुरगईए ॥४१८॥
तत्तो तिरियगईए ताओ होइ जसअजसणामाणं।
णिरयव्वेत्तो उड्ढं अप्पाबहुगं मुणेयव्वं ॥४१९॥

(प्रे०) "तेऊअ" इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य केवलदर्शनावरणं यावद्विंशतिसर्वघातिप्रकृतिसत्केषु विंशतिपदेषु शरीरपञ्चकसम्बन्धिषु पञ्चसु पदेषु चेति पञ्चविंशतिप्रकृतीनां पञ्चविंशतिपदेषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, सर्वघातिप्रकृतीनां सर्वमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वस्यौघवल्लाभात्, वैक्रियाऽऽहारकशरीरद्वयस्यौघवज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामत्र लाभात्, तथा प्रस्तुते त्रयोविंशतेर्बन्धस्थानस्याऽभावेऽपि पञ्चविंशतिबन्धस्थाने औदारिकतैजसकार्मणशरीरत्रयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभेन वैक्रियशरीरस्य त्वष्टाविंशतिबन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धलाभाद् वैक्रियशरीरत औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, अतः पञ्चशरीरनाम्नामल्पबहुत्वमोघवद् भवति तत ऊर्ध्वं पुनरल्पबहुत्वमेवम्—कार्मणशरीरज्येष्ठप्रदेशबन्धतो मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, ओघे मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य पञ्चविंशतिबन्धस्थाने भावात्, देवगतेस्त्वष्टाविंशतौ ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावाच्च, देवगतिनामाऽनन्तरं मनुष्यगतेः पठनम्, प्रस्तुते त्वपर्याप्तप्रायोग्यस्य बन्धाऽभावेन मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यैकोनत्रिंशतः स्थाने भावेन मनुष्यगतेरनन्तरं देवगतेर्भणनम्। अत्र मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुण इति पठितम्, तत्र संख्येयगुणत्वं देशोनत्रिगुणं विज्ञेयम्। ततो देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततस्तिर्यग्गतेर्विशेषाऽधिकः, ततोऽयशः-

कीर्त्यशःकीर्त्योश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धः विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च, द्वयोरपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य नाम्नः पञ्चविंशतिबन्धस्थाने भावात् , इत ऊर्ध्वं नरकमार्गणावत् प्रस्तुताल्पबहुत्वं विज्ञेयम् , तद्यथा—यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनामतो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोर्विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततो रत्यरत्योर्विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततः स्त्रीनपुंसकवेदयोर्विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततः पुरुषवेदस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततः संज्वलनमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततो दानान्तरायस्य ततो लाभान्तरायस्य ततो भोगान्तरायस्य ततः परिभोगान्तरायस्य ततो वीर्यान्तरायस्य ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य ततोऽवधिज्ञानावरणस्य ततश्श्रुतज्ञानावरणस्य ततो मतिज्ञानावरणस्य ततोऽवधिदर्शनावरणस्य ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाधिको भवति, ततस्त्रयाणामायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुणः, परस्परं तुल्यश्च, ततो गोत्रद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततो वेदनीयद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्च । भावना तु यथासंभवं नरकवत्कार्या सुगमा चेति ॥४१८-४१९॥

अथ पद्मलेश्यामार्गणायां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य परस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

ओघव्वाहारतणु जा पउमाए तओ विसेसहिओ ।
ओरालियवेउव्वियतेजसकम्माण होइ कमा ॥४२०॥
तत्तो संखगुणो णरतिरियगईण तओ विसेसहिओ ।
देवगईअ तओ जसअजसाणऽरिथ णिरयव्व तेण परं ॥४२१॥(गीतिः)

(प्रे०) "ओघव्वे" इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्याऽऽहारकशरीरं यावदेकविंशतिप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्भवति । भावना तु तेजोलेश्यामार्गणावत्कार्या । तत आहारकशरीरत औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, संख्यातभागेनाऽत्राऽधिकत्वम् , एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् , ततो वैक्रियशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतिबन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात् , ततस्तैजसस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणस्य विशेषाऽधिकस्तुल्यबन्धस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेऽपि प्रकृतिविशेषाद्विशेषाऽधिकत्वं पदद्वये विज्ञेयम् , ततो मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः, ततस्तिर्यग्गतेर्विशेषाऽधिकः, द्वयोरप्येकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तद्भावात् , ततो देवगतेर्विशेषाऽधिकः, ततो यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं

तुल्यश्च । इत ऊर्ध्वं शेषाऽल्पबहुत्वं नरकगतिमार्गणावद्विज्ञेयम्, तदनन्तरदर्शिततेजोलेश्यायां यथा निरूपितं तथैवाऽत्राऽपि वक्तव्यमिति ॥४२०-४२१॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायां ज्येष्ठप्रदेशबन्धपरस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

सुक्काअ जाव क पम्हव्व तओ भवे णरगईए ।
संखेज्जगुणो तत्तो विसेसअहियो सुरगईए ॥४२२॥
तत्तो अजसस्स तओ संखेज्जगुणो भवे जुगुच्छाए ।
ओघव्वऽप्पाबहुगं एत्तो उड्ढं मुणेयव्वं ॥४२३॥

(प्रे०) "सुक्काअ" इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य कार्मणशरीरं यावत्पञ्चविंशतिपदानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां चाऽल्पबहुत्वं पद्मलेश्यामार्गणावद् भवति, भावनाऽपि तद्वत्कार्या, ततः कार्मणशरीरतो मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुण इत्यर्थः, ततो देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, मनुष्यगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्यैकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने भावात्, देवगतेस्त्वष्टाविंशता इति । ततोऽयशःकीर्तिनाम्नो विशेषाऽधिकः, प्रकृतिविशेषात्, इत ऊर्ध्वं जुगुप्सादीनां सातवेदनीयपर्यवसानानां प्रस्तुते ज्येष्ठप्रदेशबन्धमत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, ओघोक्तानां तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां प्रस्तुतेऽपि लाभात्, भावनाऽपि ओघवत्कार्या सुगमा च । शेषाऽल्पबहुत्वं पुनरेवम्—अयशःकीर्तितो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, साधिकसार्धद्विगुण इत्यर्थः, ततो भयस्य ततो हास्यशोकयोस्ततो रत्यरत्योस्ततः स्त्रीनपुंसकवेदयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति, अत्र सह पठितयोः परस्परतुल्यत्वमवसेयम्, ततो दानान्तरायस्य संख्येयगुणः सातिरेकद्विगुणः, ततो लाभान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो भोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्तत उपभोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाऽधिकः, ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य ततोऽवधिज्ञानावरणस्य ततश्श्रुतज्ञानावरणस्य ततो मतिज्ञानावरणस्य ततः सञ्ज्वलनमानस्य ततोऽवधिदर्शनावरणस्य ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ततः पुरुषवेदस्य ततः संज्वलनमायायास्तत आयुर्द्वयस्य ततो नीचैर्गोत्रस्य ततः सञ्ज्वलनलोभस्य ततोऽसातवेदनीयस्य ततो यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रयोस्ततः सातवेदनीयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेणोत्तरोत्तरपदेषु विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति, अत्र भावनाऽप्योघवद् भवतीति । एवं लेश्यामार्गणायां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं समाप्तम् ॥४२२-४२३॥

अथ क्रमप्राप्तसम्यक्त्वमार्गणाभेदेषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वस्य निरूपणाया अवसरस्तत्र सम्यक्त्वौघे क्षायिकसम्यक्त्वे च मतिज्ञानादिमार्गणाभिस्समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपितम्,

उपशमसम्यक्त्वमार्गणायामप्यल्पबहुत्वं तदनन्तरं तत्रैवातिदेशेन उक्तम् ॥२२२-२२३॥

अथ क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं प्रतिपादयन्नाह–

ओहिव्व वेअगे जा देवगई तो भवे विसेसहियो ।
जसअजसाणं थोवो अणुत्तरसुरव्व सेसा परं ॥४२४॥

(प्रे०) "ओहिव्वे"त्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां देवगतिप्रकृतिं यावत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावद्विज्ञेयम्, केवलज्ञानदर्शनावरणद्वयं विहाय शेषाणां देवगतिं यावद्वन्धे संभाव्यमानप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां च तुल्यत्वात् । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्–अप्रत्याख्यानावरणस्य मानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः स्तोकस्ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषाऽधिकस्ततो लोभस्य ततः प्रत्याख्यानावरणस्य मानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततः केवलज्ञानावरणस्य ततः प्रचलायास्ततो निद्रायास्ततः केवलदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति, तत आहारकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणस्तत औदारिकशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततो मनुष्यगतेरुत्कृष्टप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुण इत्यर्थः, ततो देवगतेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततो यशःकीर्तेरयशःकीर्तेश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः । इत ऊर्ध्वं जुगुप्सादीनां वेदनीयद्वयपर्यवसानानामल्पबहुत्वमनुत्तरसुरमार्गणावद्विज्ञेयम्, उभयत्र श्रेण्यभावत्वेन आद्यगुणस्थानत्रयाभावेन च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वात् । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्-यशःकीर्त्यरयशःकीर्तिभ्यां जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः साधिकद्विगुणः, ततो भयस्य विशेषाऽधिकस्ततो हास्यशोकयोस्ततः रत्यरत्योस्ततः पुरुषवेदस्य ततः सञ्ज्वलनमानस्य ततः सञ्ज्वलनक्रोधस्य ततो सञ्ज्वलनमायायास्ततो संज्वलनलोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति, ततो दानान्तरायस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्यातभागेन विशेषाधिकः, ततो लाभान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो भोगान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्तत उपभोगान्तरायस्य ततो वीर्यान्तरायस्य ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य ततोऽवधिज्ञानावरणस्य ततश्श्रुतज्ञानावरणस्य ततो मतिज्ञानावरणस्य ततोऽवधिदर्शनावरणस्य ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति, ततो देवमनुष्यायुषोरुत्कृष्टप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः परस्परं तुल्यश्च । अनुत्तरदेववदतिदेशेऽपि व्याख्यानतो देवायुषोऽप्यत्र ग्रहणमवसातव्यम्, आयुर्द्वयस्याऽत्र बन्धभावात् । यद्वा मूलकृता तत्राऽऽयुषः सामान्यपदस्य ग्रहणात्; बन्धप्रायोग्यतदुत्तरप्रकृतीनां ग्रहणं कार्यमिति । तत

उच्चैर्गोत्रस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततो वेदनीयद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिको भवति, भावना त्वतिदेशाऽनुसारेण कार्या, सुगमा चेति ॥४२४॥

अथ सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणायां प्रस्तुतं निरूपयन्नाह

मीसे एमेव णवरि णाहाराऊ तओ अणंतगुणो ।
केवलदंसिणाओ खलु ओरालतणुस्स विणणेयो ॥४२५॥

(प्रे०) "मीसे" इत्यादि, सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणामल्पबहुत्वं क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणावद्विज्ञेयम् । आहारकद्विकमायुर्द्वयं जिननाम च विहाय बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां समानत्वात् ; मोहनीयवर्जानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्थानानां समानत्वात् , मोहनीयप्रकृतीनां तु श्रेणेरभावात् तुल्यप्रकृतीनां भावाच्च समानमेवाऽल्पबहुत्वं भवति । अत्राऽऽहारकद्विकस्य बन्धाऽभावात् केवलदर्शनावरणज्येष्ठप्रदेशबन्धत औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणो भवति, भावना त्ववधिज्ञानमार्गणावद्विज्ञेया इति, अत्र मूलकृता जिननाम्नोऽग्रहणं तु शृङ्गग्राहिनीत्या सर्वत्राऽसर्वनामप्रकृतीनामेव मूलगाथायां ग्रथनात् , भावना तु सुगमा स्वयं कार्या चेति ॥४२५॥

अथ सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

ओघव्व सासणे जा आइमलोहं तओ विसेसहियो ।
कमसो केवलणाण-पयल-णिद्दा-पयलपयलाणं ॥४२६॥
तत्तो णिद्दाणिद्दा-थीणद्धिय-केवलाण होइ कमा ।
ताओ अणंतगुणिओ ओरालतणुस्स बोद्धव्वो ॥४२७॥
तत्तो विसेसअहियो कमसो वेउव्वतेउकम्माणं ।
ताउ तिरिणरगईणं संखेज्जगुणो मुणेयव्वो ॥४२८॥
ताओ विसेसअहियो देवगईए तओ मुणेयव्वो ।
जसअजसाणं तत्तो संखेज्जगुणो जुगुच्छाए ॥४२९॥
तत्तो विसेसअहियोऽत्थि हस्ससोगपयडीण ताउ भवे ।
रइअरईणं तो थीपुमाण णिरयव्व तेण परं ॥४३०॥

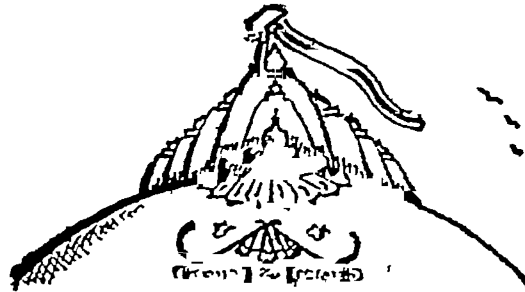
(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्याऽनन्तानुबन्धिलोभं यावद् द्वादशकषायाणामल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम् , तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततः क्रोधस्य विशेषाऽधिकस्ततो मायाया विशेषा-

ऽधिकस्ततो लोभस्य विशेषाऽधिकस्ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायाया-स्ततो लोभस्य ततोऽनन्तानुबन्धिमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ज्येष्ठप्रदेश-बन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको विशेषाऽधिको भवति, प्रकृतिविशेषादत्राऽऽसां विशेषाऽधिकत्वं विज्ञेयमिति । ततः केवलज्ञानावरणस्य ततः प्रचलायास्ततो निद्रायास्ततः प्रचलाप्रचलायास्ततो निद्रानिद्रायास्ततः स्त्यानर्द्धिनिद्रायास्ततः केवलदर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषा-धिको विशेषाधिको भवति, एवं मिथ्यात्ववर्जानां सर्वघात्येकोनविंशतिप्रकृतीनामल्पबहुत्व-मोघवद् भवति, मिथ्यात्वस्य बन्धाऽभावात्तद्वर्जनम् । ततः केवलदर्शनावरणत औदारिकशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धे तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जायमानत्वात् ; नाम्नि लब्धभागस्याऽऽसन्नैकाशीतितमांशप्रमाणत्वात् ; पूर्वपदे तु दर्शनावरणलब्धदलिकाना-मनन्ततमभागप्रमाणत्वात् । ततो वैक्रियशरीरस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्यातभागेन विशेषाऽधिकः, अष्टाविंशतिबन्धे जायमानत्वात् , ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाऽधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाधिकः प्रकृतिविशेषात् । ततो मनुष्यगतेस्तिर्यग्गतेश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः, प्रस्तुतमार्गणायामेकेन्द्रियविकलेन्द्रियप्रायोग्याणामपर्याप्तप्रायोग्याणां च बन्धा-ऽभावेनैतत्प्रकृतिद्वयस्यैकोनत्रिंशतो बन्धे ज्येष्ठप्रदेशस्य जायमानत्वात् । ततो देवगतेरुत्कृष्ट-प्रदेशबन्धो विशेषाधिको भवति, अष्टाविंशतिबन्धे तस्य जायमानत्वात् । ततो यशःकीर्तेरयशः-कीर्तेश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः, तुल्यबन्धस्थाने तज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जायमानत्वेऽपि प्रकृतिविशेषात् । ततो जुगुप्साया ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः साधिकसार्धद्विगुणस्ततो हास्यशो-कयोर्विशेषाधिकस्ततो रत्यरत्योर्विशेषाधिकस्ततः स्त्रीपुरुषवेदयोर्विशेषाऽधिकः, नपुंसकवेदस्य बन्धाऽभावात् वेदद्वयस्य निर्देशः । अत्र पदत्रयेऽपि प्रागिव सहपठितप्रकृत्योः परस्परं तुल्य ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धो भवतीति ज्ञेयम् । इत ऊर्ध्वं संज्वलनमानादीनां वेदनीयद्वयपर्यवसानानां ज्येष्ठप्रदेश-बन्धाऽल्पबहुत्वं नरकगतिमार्गणावद् भवति । उभयत्र निर्दिष्टपदेषु बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां समान-त्वात् ; श्रेणेरभावाच्च भाजकराशेर्भागफलस्य च समानप्रायस्त्वात् ; कुत्रचिद् भागफलस्य तत्राऽन-न्तभागाऽधिकत्वेऽपि न अल्पबहुत्वे भेदः, एवं भावनायां यः कश्चिद्विशेषः स स्वयं बुद्ध्या परि-भावनीयः सुगमश्च । अल्पबहुत्वं पुनरित्थम्—स्त्रीपुरुषवेदद्वयतः सञ्ज्वलनमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाधिकस्ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाऽधिको भवति, ततो दानान्तरायस्य संख्येयभागेन विशेषाधिकः । ततो लाभान्तरायस्य विशेषाऽधिकस्ततो भोगान्तरायस्य तत उपभोगान्तरायस्य ततो वीर्यान्तरायस्य ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य ततोऽवधिज्ञानावरणस्य ततश्श्रुतज्ञानावरणस्य ततो मतिज्ञानावरणस्य ततोऽवधिदर्शनावरणस्य ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्ध उत्तरोत्तरं विशेषाऽधिकस्ततस्त्रया-

णामायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः परस्परं तुल्यश्चेत्यर्थः ततो गोत्रद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाधिको मिथस्तुल्यश्च, ततः साताऽसातवेदनीयद्वयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकः परस्परं तुल्यश्चेति। भावना तु नरकमार्गणावत्कार्या सुगमा च, केवलमत्र त्रयाणामायुषां बन्धभावादायुषः पदे त्रयाणामायुषां तुल्यः प्रदेशबन्धो वाच्य इति ।

मिथ्यात्वमार्गणायां मत्यज्ञानादिमार्गणाभिस्समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं प्रकटितम्। तदेवं सम्यक्त्वमार्गणाभेदेष्वल्पबहुत्वं निरूपितम् । संज्ञिमार्गणायामाहारकमार्गणायां च त्रिमनुष्यादि-मार्गणाभिस्सहौघवदतिदेशेनाऽल्पबहुत्वमुक्तम् । असंज्ञिमार्गणायां मत्यज्ञानादिमार्गणाभिस्समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं कथितम् । अनाहारकमार्गणायां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं कार्मणमार्गणया सह प्रदर्शितमिति ।

तदेवं ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाऽल्पबहुत्वमोघत आदेशतश्च समाप्तमिति ।।४२६-४३०।।



॥ जघन्यपदे प्रदेशबन्धपरस्थानाल्पबहुत्वम् ॥

अथ क्रमप्राप्तस्योत्तरप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य परस्थानाल्पबहुत्वं निरूपयिषुरादौ तावदोघतः प्राह—

दुइअमयकमायत्तो जा केवलदंसणावरणपयडि ।
जेट्ठपएसव्व भवे हस्सपएसस्स अप्पबहू ॥४३१॥
तत्तो अणंतगुणिओ उरलस्स तओ कमा विसेसहियो ।
तेअसकम्माण तओ संखगुणो तिरिगईअ भवे ॥४३२॥
ताओ विसेसअहियो जसअजसाणं तओ मुणेयव्वो ।
मणुयगईए तत्तो कुच्छाए होइ संखगुणो ॥४३३॥
तत्तो विसेसअहियो भयस्स ताओऽत्थि हस्ससोगाणं ।
ताओ रइअरईणं तत्तो वेआण तिण्ह भवे ॥४३४॥
ताओ कमसो णेयो अंतिमसयकोहमायलोहाणं ।
ताहिंतो होइ कमा दाणाइगअंतरायाणं ॥४३५॥
तो मणणाणाईणं कमा तओऽवहिअचक्खुचक्खूणं ।
कमसो हवेज्ज तत्तो संखगुणो दोण्ह गोआणं ॥४३६॥
तत्तो विसेसअहियो विणेयो दोण्ह वेअणीयाणं ।
ताउ असंखेज्जगुणो हवेज्ज वेउव्वियतणुस्स ॥४३७॥
तत्तो संखेज्जगुणो देवगईए तओ असंखगुणो ।
तिरियमणुस्साऊणं ताहिंतो णारगगईए ॥४३८॥
तत्तो संखेज्जगुणो णारगदेवाउगाण विणेयो ।
ताउ असंखेज्जगुणो आहारसरीरणामस्स ॥४३९॥

(प्रे०) "दुइअमय" इत्यादि गाथानवकम्, ओघतो जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वे विंशतेः सर्वघातिप्रकृतीनां पदानि प्रारम्भे भवन्ति, तेषां सर्वघातित्वेन तेषु समयप्रबद्धस्यानन्ततमभागप्रमाणदलिकानां लाभात्, शेषासु शतप्रकृतिषु तु समयप्रबद्धस्य संख्येयतमभागस्य लाभेन सर्वघातिभ्योऽनन्तगुणप्रमाणदलिकानां लाभाच्च । तासां विंशतेः परस्परं विशेषस्तु प्रकृति-

विशेषेणैव। अयम्भावः-आसां सर्वघातिप्रकृतीनां बन्धे न्यूनाधिक्ये पुनरनन्ततमभागमात्रस्य वृद्धि-हानिभावः, प्रकृतिविशेषे त्वसंख्येयभागस्य वृद्धिहान्योर्लाभात् तस्य प्राधान्यम्। किञ्च ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धे मूलोत्तरप्रकृतीनां यथासंभवं न्यूनत्वस्य; जघन्यप्रदेशबन्धे च यथासंभवं मूलोत्तरप्रकृ-तीनामाधिक्यस्य भावेऽपि न तद्धेतुकः सर्वघातिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वे ज्येष्ठप्रदेश-बन्धाल्पबहुत्वे वा भेदः, अत एव तासां विंशतेर्जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वं ज्येष्ठप्रदेशबन्धाल्प-बहुत्ववदतिदेशेन दर्शितम्। अतिदेशानुसारेण प्राप्तमल्पबहुत्वं पुनरेवम्-

अप्रत्याख्यानावरणमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकस्ततोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधस्य विशेषाधिकः, ततोऽप्रत्याख्यानावरणमायायाः, ततोऽप्रत्याख्यानावरणलोभस्य, ततः प्रत्याख्या-नावरणस्य मानस्य, ततः क्रोधस्य, ततो मायायाः, ततो लोभस्य; ततोऽनन्तानुबन्धिनो मानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततो मिथ्यात्वस्य ततः केवलज्ञानावरणस्य ततः प्रचलायास्ततो निद्रायास्ततः प्रचलाप्रचलायास्ततो निद्रानिद्रायास्ततः स्त्यानर्द्धेः, ततः केवल-दर्शनावरणस्य जघन्यप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाधिको विशेषाधिको भवति। भावना तु जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनमवलम्ब्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वोक्तप्रकारेण यथासंभवं कार्या इति।

अत्रेदमवधारणीयम्-यथा विंशतिसर्वघातिप्रकृतिभ्यो बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेश-बन्धाल्पबहुत्वं सप्तत्युत्तरशतमार्गणास्वोघवद् भवति तथैव जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वमपि सप्तत्युत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यसर्वघातिप्रकृतीनामोघवद् भवतीति।

केवलदर्शनावरणजघन्यप्रदेशबन्धत औदारिकशरीरजघन्यप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, सप्तविधबन्ध-कस्य नाम्नस्त्रिंशद्बन्धे तज्जघन्यप्रदेशबन्धलाभेन सर्वजघन्ययोगगृहीतकर्मदलिकानामासन्नाष्टा-शीत्युत्तरपञ्चशततमांशप्रमाणत्वादिति। ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाधिकः प्रकृतिविशेषात्। ततस्तिर्यग्गतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुण इत्यर्थः; जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वेऽपि शरीरनामलब्धभागस्यासन्नतृतीयांशः कार्मणशरीरे लभ्य-ते, अतो नाम्नि लब्धभागस्यासन्नचतुरशीतितमांशमितः सः, गतिनाम्नि पुनर्नामसत्क-भागस्याष्टाविंशतितमांशप्रमाण इति संख्येयगुणः; तत्समये जघन्ययोगेन गृहीतसकलद्रव्या-पेक्षया त्वासन्नपण्णवत्युत्तरशततमांशप्रमाणस्तिर्यग्गतिनाम्नो भागो भवति, पूर्वपदस्य भागस्तु औदारिकशरीरप्रमाणोक्तमिति इति। ततो यशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम्नोर्विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च, तुल्ययोगेन तुल्यबन्धस्थाने च पूर्वपदवद् बन्धभावाद् गत्यादिक्रमेणोत्तरोत्तरविशेषा-धिकदलविभाजनस्य भावाच्च प्रकृतिविशेषहेतुकमेवात्र विशेषाधिकत्वं पूर्वपदतः, सप्रतिपक्षत्वात् तुल्यस्थानगतत्वाच्च तुल्यप्रदेशबन्धः, जघन्ययोगगृहीतसकलदलिकानामासन्नपण्णवत्युत्तरशत-

तमांशप्रमाणः स विज्ञेय इति । ततो मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेपाधिक एकोनत्रिंशद्बन्धे तस्य जायमानत्वेन जघन्ययोगगृहीतद्रव्यस्यासन्नैकोननवतिशततमांशप्रमाणत्वात् । अतो विशेपाधिकत्वं संख्येयभागेन बोध्यम् ।

ततो जुगुप्साया जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वेन तुल्ययोगगृहीतद्रव्यस्यासन्नसप्तमभागप्रमाणं मोहनीयस्य दलम्, तत्रापि तस्य देशोनार्धभागमितं नोकपायसत्कं द्रव्यम्, तस्माच्च देशोनपञ्चमांशप्रमाणं जुगुप्सायां लभ्यते, ततो गृहीतसकलद्रव्याणामासन्नसप्ततितमांशमितं द्रव्यं जुगुप्सायां लभ्यत इति, पूर्वपदतस्त्वत्र सातिरेकसार्धद्विगुणं द्रव्यं भवति । ततो भयस्य विशेपाधिकः, प्रकृतिविशेपात् । ततो हास्यशोकयोर्विशेपाधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततो रत्यरत्योर्विशेपाधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततस्त्रयाणां वेदानामन्यतमवेदस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेपाधिकः, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामेकरूपत्वेन पूर्वपदतश्चतुर्ष्वुत्तरोत्तरपदेषु विशेपाधिकत्वं प्रकृतिविशेपाद्विभावनीयमिति । ततः संज्वलनमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेपाधिकः, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां पूर्वपदैस्सह तुल्यत्वाज्जघन्ययोगगृहीतसकलदलिकानामासन्नसप्तमभागप्रमाणमोहनीयद्रव्यस्य सातिरेकार्धभागं कपायमोहनीयेपु यल्लभ्यते तस्यासन्नचतुर्थांशप्रमाणत्वेन गृहीतसकलद्रव्यस्यासन्नपट्पञ्चाशत्तमांशमितं द्रव्यं प्रस्तुते भवति, अतः पूर्वपदतः संख्येयभागाधिकत्वरूपं विशेपाधिकत्वं विज्ञेयमिति । ततः संज्वलनक्रोधस्य विशेपाधिकस्ततः संज्वलनमायाया विशेपाधिकस्ततः संज्वलनलोभस्य विशेपाधिकः, पदत्रये प्रकृतिविशेपाद् विशेपाधिकत्वमिति ।

ततो दानान्तरायस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेपाधिकः, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वेन जघन्ययोगगृहीतसकलद्रव्यस्यासन्नपञ्चत्रिंशदंशप्रमाणत्वात्, अत्र विशेपाधिकत्वं संख्यातभागेन विज्ञेयमिति । ततो लाभान्तरायस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेपाधिकः, ततो भोगान्तरायस्य विशेपाधिकस्तत उपभोगान्तरायस्य विशेपाधिकस्ततो वीर्यान्तरायस्य विशेपाधिकोऽत्र पदचतुष्केऽप्युत्तरोत्तरविशेपाधिकत्वं प्रकृतिविशेपाद्विज्ञेयमिति । ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेपाधिकः, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वेन जघन्ययोगगृहीतकर्मदलिकानां सप्तमभागप्रमाणस्य ज्ञानावरणलब्धभागस्यासन्नचतुर्थभागरूपत्वेन सकलदलिकानामासन्नाष्टाविंशतितमभागगतत्वात् । अत्र विशेपाधिकत्वं संख्यातभागेन बोध्यम् । ततोऽवधिज्ञानावरणस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेपाधिकस्ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेपाधिकस्ततो मतिज्ञानावरणस्य जघन्यपदे बन्धे प्रदेशाग्रं विशेपाधिकं भवति, प्रकृतिविशेपात् । ततोऽवधिदर्शनावरणस्य जघन्यपदे प्रदेशाग्रं विशेपाधिकम्, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वे सति दर्शनावरणलब्धभागादासन्नतृतीयभागस्य लाभात् । गृहीतसकलद्रव्यापेक्षया त्वासन्नैकविंशतितमभागप्रमाणत्वात् । अत्र संख्यात-

भागेन विशेषाधिकत्वं विज्ञेयमिति। ततोऽचक्षुदर्शनावरणस्य प्रदेशाग्रं विशेषाधिकं ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकं प्रकृतिविशेषादसंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वमिति।

ततो गोत्रद्वयादन्यतरगोत्रस्य जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुण इत्यर्थः, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वे सति जघन्ययोगस्थानगृहीतसकलद्रव्यस्यासन्नसप्तमभागप्रमाणत्वात्, परस्परं तु गोत्रद्वयस्य तुल्यः प्रदेशबन्धो भवतीति। ततः सातवेदनीयाऽसातवेदनीययोर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च भवति, दलविभाजने मूलप्रकृतौ गोत्रेभ्यो वेदनीयभागस्याधिकत्वादत्रासंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वमिति।

ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः वेदनीयद्वयपर्यन्तानां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां योगतो वैक्रियशरीरजघन्यप्रदेशबन्धस्वामिगतयोगस्यैवासंख्येयगुणत्वात् तज्जघन्यप्रदेशबन्धोऽप्यसंख्येयगुणः। ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, यो वैक्रियशरीरजघन्यप्रदेशबन्धस्य स्वामी स एव देवगतेरपि जघन्यप्रदेशबन्धको भवति, अतो जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वेऽपि तद्योगे गृहीतद्रव्यस्य यो नाम्नि लब्धभागः, तस्य सप्तविंशतिर्विभागो भवन्ति, तत्र यः शरीरनाम्नि भागो लभ्यते तस्यासन्नतृतीयांशो वैक्रियशरीरस्य भवति, गतिनाम्नि लब्धसर्वभागो देवगतेरिति पूर्वपदतो देशोनत्रिगुणं द्रव्यं प्रस्तुते भवतीति।

ततस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्च, संज्ञिनो भवप्रथमसमयगतजघन्ययोगस्थानत आयुर्बन्धप्रायोग्यस्य सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तैकेन्द्रियसत्कयोगस्थानस्यासंख्येयगुणत्वाद् भवत्येव तयोरसंख्येयगुणो जघन्यप्रदेशबन्ध इति। परस्परं तुल्यत्वं तु बन्धप्रायोग्यजघन्ययोगस्य द्वयोरपि तुल्यत्वे सत्यायुर्भागलब्धदलिकानामवान्तरविभागाभावात्। ततो नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य करणपर्याप्तस्य भवति, एकेन्द्रियज्येष्ठयोगस्थानतोऽपि तद्योग्यजघन्ययोगस्थानस्यासंख्येयगुणत्वेन तस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणो भवति। ततो देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, एतयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां नरकगतिजघन्यप्रदेशबन्धस्वामिना सह तुल्यत्वेऽपि नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धे नाम्नि लब्धभागस्यासन्नषड्विंशतितमभागो लभ्यते, आयुषि लब्धः भागः सर्वोऽपि देवायुषो नरकायुषो वा भवति, इति पूर्वपदतो देशोनषड्विंशतिगुणत्वमस्य विभावनीयमिति। तत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्यगुणो भवति, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्घोलमानजघन्ययोगस्थानतः संज्ञिपर्याप्तकसत्कघोलमानयोगस्यासंख्येयगुणत्वादसंख्यगुण आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो भवतीति।

तदेवं मूलकृता चतुःषष्टिप्रकृतिष्वल्पबहुत्वं दर्शितम्। अत्र नाम्नः षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनामल्पबहुत्वं मूले न संगृहीतम्, तासां तस्य सुगमत्वेन बन्धस्थानादिना जघन्यप्रदेशबन्धस्वाम्यादिना

च गम्यमानत्वात् । विनेयजनानुग्रहार्थमोघतस्ताः षट्पञ्चाशत्प्रकृतीरपि संगृह्य विंशत्युत्तरशतस्य तद्दर्शयामः । मार्गणासु पुनः स्वधिया एतदनुसारेण स्वयं परिभावनीयमिति न पुनर्मार्गणास्थानेषु प्रादुष्करिष्यामः ।

अथ जघन्यपदे सर्वोत्तरप्रकृतिसत्कं परस्थानप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वं पुनरोघत एवम्

अप्रत्याख्यानावरणमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धसत्कं द्रव्यं स्तोकम् , सप्तोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य भवप्रथमसमये जघन्ययोगे वर्तमानस्य भवति, तत्र मोहनीयलब्धभागस्यानन्ततमभागमात्रमेव सर्वघातिप्रकृतिषु प्राप्यते, तत्राप्यप्रत्याख्यानावरणमानस्य सर्वस्तोकत्वं प्रकृतिविशेषात् स्वस्थानवद् विज्ञेयम् , ततोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, ततोऽप्रत्याख्यानावरणमायाया विशेषाधिकः, ततोऽप्रत्याख्यानावरणलोभस्य विशेषाधिकः, ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततोऽनन्तानुबन्धिमानस्य ततः क्रोधस्य ततो मायायास्ततो लोभस्य ततो मिथ्यात्वस्य क्रमेण विशेषाधिको विशेषाधिकः जघन्यप्रदेशबन्धः प्रकृतिविशेषाद् भवति । भावना स्वस्थानजघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्ववद् कार्या । ततः केवलज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, भावना तु परस्थानज्येष्ठप्रदेशाल्पबहुत्ववत्कार्या, ततः प्रचलाया विशेषाधिकस्ततो निद्राया विशेषाधिकः, ततः प्रचलाप्रचलाया विशेषाधिकः, ततो निद्रानिद्राया विशेषाधिकस्ततः स्त्यानर्द्धेर्विशेषाधिकः, प्रकृतिविशेषात् । पञ्चस्वपि पदेषु विशेषाधिकत्वं स्वस्थानजघन्यपदवद्विज्ञेयम् । ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, परस्थानज्येष्ठपदसत्कप्रदेशाल्पबहुत्ववद् भावना विज्ञेया ।

तत औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, जघन्ययोगसत्कसमयबद्धस्यासन्नमसमभागस्य नामकर्मणि लब्धस्याष्टाविंशतिधाविभक्तस्य य एको भागः शरीरनाम्ना लब्धस्तदीयासन्नतृतीयभागप्रमाणत्वान्नाम्नि लब्धभागस्यासन्नचतुरशीतितमभागत्वाज्जघन्ययोगगृहीतदलिकानामासन्नाष्टाशीत्युत्तरपञ्चशततमभागमात्रत्वाच्च, पूर्वपदेषु त्वनन्तभागमात्रत्वादनन्तगुणतैव प्राप्यत इति । ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाधिकः । ततस्तिर्यग्गतेः संख्येयगुणः, नाम्नि लब्धभागस्याष्टाविंशतितमभागप्रमाणत्वाज्जघन्ययोगगृहीतदलिकानामासन्नषण्णवत्युत्तरशततमभागप्रमाणत्वात् । ततो द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्कस्य जघन्यप्रदेशाग्रं विशेषाधिकं परस्परं तुल्यं च, गतिनामतो जातिनाम्नो भागस्यासंख्येयभागेनाधिकत्वेन मूलोत्तरप्रकृतिरूपभाजकराशेः समानत्वेऽपि विशेषाधिकत्वम् , नाम्नस्त्रिंशद्बन्धे जातिनामलब्धसर्वप्रदेशाग्रं द्वीन्द्रियादिचतुर्णामन्यतमबध्यमानजातितया परिणमनाच्चतुर्णां तुल्यं जघन्यप्रदेशाग्रमिति । ततः षण्णां संहनननाम्नां जघन्यप्रदेशाग्रं विशेषाधिकं परस्परं तुल्यं च, जातिनामविभागतः शरीरनाम्नो विभागस्य, ततोऽपि संहनन-

नाम्नो विभागस्याधिकत्वाद्विशेषाधिकत्वमसंख्येयभागेन, पण्णामपि तुल्यैकबन्धस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धभावात् परस्परं तुल्यत्वमिति । तत औदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नो विशेषाधिकम्, संहनननामविभागतोऽङ्गोपाङ्गनामविभागस्याधिक्यात् । ततः पण्णां संस्थाननाम्नां जघन्यप्रदेशाग्रं विशेषाधिकं परस्परं तुल्यं च, भावना तु संहनननामवत् कार्या सुगमा चेति । ततो वर्णनाम्नःप्रदेशाग्रं विशेषाधिकम्, ततो गन्धनाम्नस्ततो रसनाम्नस्ततः स्पर्शनाम्नस्ततस्तिर्यग्गत्यानुपूर्विनाम्नस्ततोऽगुरुलघुनाम्नस्तत उपघातनाम्नस्ततः पराघातनाम्नः, तत उच्छ्वासनाम्नस्तत उद्योतनाम्नस्ततोऽन्यतरविहायोगतेस्ततस्त्रसनाम्नस्ततो बादरनाम्नस्ततः पर्याप्तनाम्नस्ततः प्रत्येकनाम्नस्ततः स्थिरास्थिरयोरन्यतरस्य, ततः शुभाशुभयोरन्यतरस्य, ततः सुभगदुर्भगयोरन्यतरस्य, ततः सुस्वरदुःस्वरयोरन्यतरस्य, तत आदेयानादेययोरन्यतरस्य, ततो यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरस्य ततो निर्माणनाम्नः क्रमशो बन्धे जघन्यप्रदेशाग्रमसंख्येयभागेन विशेषाधिकं विशेषाधिकं प्रकृतिविशेषेण भवति, अत्र विहायोगत्यादियुगलेषु सप्रतिपक्षयोः परस्परं तुल्यत्वमवसेयमिति ।

ततो मनुष्यगतेर्विशेषाधिकः, सूक्ष्मेषु मनुष्यगतिप्रायोग्यत्रिंशद्बन्धस्थानस्यैवाभावात्; मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्ध एकोनत्रिंशद्बन्धकस्य लभ्यते, अतो नाम्नि लब्धभागस्यासन्नसप्तविंशतितमभागप्रमितं मनुष्यगतौ लभ्यते, अतः संख्यातभागेन विशेषाधिकत्वं प्रस्तुते विज्ञेयम् । ततो मनुष्यानुपूर्व्या विशेषाधिकः; प्रकृतिविशेषेणासंख्यभागेन विशेषाधिकत्वम् ।

तत एकेन्द्रियजातेर्विशेषाधिको जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयतमभागेन, अस्या जघन्यप्रदेशबन्धस्य नाम्नः षड्विंशतिबन्धकस्य भावेन नाम्नि लब्धभागस्यासन्नचतुर्विंशतितमभागमात्रस्यैकेन्द्रियजातौ लाभात् । तत आतपनाम्नस्ततः स्थावरनाम्नः प्रकृतिविशेषेण विशेषाधिकत्वमसंख्यैकभागेन विज्ञेयमिति, एतयोरपि नाम्नः षड्विंशतिबन्धे एव जघन्यप्रदेशबन्धभावात् ।

ततः सूक्ष्मनाम्नो बन्धे जघन्यपदे प्रदेशाग्रं संख्येयतमैकभागेन विशेषाधिकम्; नाम्नः पञ्चविंशतिबन्धे तज्जघन्यप्रदेशबन्धभावेन नामलब्धभागस्यासन्नत्रयोविंशतितमैकभागप्रमितत्वात् । ततोऽपर्याप्तनाम्नो विशेषाधिकमस्यापि पञ्चविंशतिबन्ध एव जघन्यप्रदेशबन्धभावेन प्रकृतिविशेषेणासंख्यभागेनैव विशेषाधिकत्वम् । ततः साधारणनाम्नो विशेषाधिकत्वमेवमेव विभावनीयम्, जघन्ययोगगृहीतदलिकानामासन्नैकपञ्चाशत्तरशततमभागप्रमाणत्वं साधारणनाम्नि लभ्यते ।

ततो जुगुप्सामोहस्य प्रदेशाग्रं बन्धे जघन्यपदे संख्येयगुणं, मोहनीयलब्धभागस्यासन्नदशमभागप्रमाणत्वाज्जघन्ययोगगृहीतसकलदलिकानामासन्नसप्ततितमभागप्रमाणत्वेन साधिकद्विगुणत्वात् । ततो भयस्य विशेषाधिकम्, ततो हास्यशोकयोर्विशेषाधिकं परस्परं तुल्यम्, ततो रत्यरत्योर्विशेषाधिकं परस्परं तुल्यं च, ततोऽन्यतमवेदस्य विशेषाधिकं परस्परं त्रयाणां

तुल्यं च, चतुर्षु पदेषु विशेषाधिकत्वं प्रकृतिविशेषेणासंख्येयतमभागेन विज्ञेयम् । ततः संज्वलनमानस्य बन्धे जघन्यपदे प्रदेशाग्रं विशेषाधिकम्, मोहनीयसत्कदलिकानामासन्नाष्टमभागप्रमाणत्वात्, जघन्ययोगगृहीतदलिकानामासन्नपञ्चपञ्चाशत्तमभागप्रमाणत्वात् संख्येयतमैकभागेन विशेषाधिकत्वं विज्ञेयम् । ततः संज्वलनक्रोधस्य प्रदेशाग्रं विशेषाधिकम्, ततः संज्वलनमायाया विशेषाधिकम्, ततः संज्वलनलोभस्य विशेषाधिकम्, प्रकृतिविशेषेणासंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वम् ।

ततो दानान्तरायस्य विशेषाधिकम्, अन्तरायकर्मणि लब्धभागस्यासन्नपञ्चमभागप्रमाणत्वाज्जघन्ययोगगृहीतसकलदलिकानामासन्नपञ्चत्रिंशद्भागप्रमाणत्वात् । ततो लाभान्तरायस्य विशेषाधिकम्, ततो भोगान्तरायस्य विशेषाधिकम्, तत उपभोगान्तरायस्य विशेषाधिकम्, ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाधिकम्, पदचतुष्केऽपि क्रमशो विशेषाधिकत्वं प्रकृतिविशेषेणासंख्येयभागेनाधिकत्वमिति ।

ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य प्रदेशाग्रं विशेषाधिकम्, ज्ञानावरणलब्धभागस्यासन्नचतुर्भागप्रमाणत्वात्, गृहीतसकलदलिकानामासन्नाष्टाविंशतितमभागप्रमाणत्वादत्र विशेषाधिकत्वं संख्येयतमभागेन भवति । ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकं ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाधिकं ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकम्, पदत्रयेऽपि प्रकृतिविशेषेणासंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वं विज्ञेयमिति ।

ततोऽवधिदर्शनावरणस्य जघन्यपदे बन्धे प्रदेशाग्रं विशेषाधिकं संख्येयतमभागेन भवति दर्शनावरणलब्धभागस्यासन्नतृतीयभागप्रमाणत्वाज्जघन्ययोगगृहीतसकलदलिकानामासन्नैकविंशतितमभागप्रमाणत्वात्, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकं प्रदेशाग्रम्, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकं पदद्वयेऽपि असंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वमवबोध्यमिति ।

ततो गोत्रद्वयस्य प्रदेशाग्रं संख्येयगुणम्; देशोनत्रिगुणमित्यर्थः, गोत्रकर्मलब्धसम्पूर्णभागस्य बध्यमानान्यतरगोत्रस्यैव लाभेन जघन्ययोगगृहीतसकलदलिकानामासन्नसप्तमभागप्रमाणत्वात् । गोत्रद्वये च परस्परं तुल्यं जघन्यपदे प्रदेशाग्रं बन्धे भवतीति । ततः सातासातवेदनीययोर्विशेषाधिकम्, प्रकृतिविशेषादसंख्येयतमैकभागेन, परस्परं तुल्यं च ।

एतावत्पर्यन्तो जघन्यप्रदेशबन्धो तुल्यैकयोगेन भवतीति कृत्वा सर्वघात्यादिभेदेन उत्तरप्रकृतिरूपभाजकराशिभेदेन प्रकृतिविशेषेण च जघन्यप्रदेशबन्धे न्यूनाधिकत्वं भवति । इत ऊर्ध्वं तु याः प्रकृतीर्वक्ष्यामः न ता औघिकजघन्ययोगेन बन्धप्रायोग्याः, किन्तु ततोऽसंख्यगुणाधिकयोगेनैव, अत्र वेदनीयद्वयसत्कभाजकराशितोऽधिकभाजकराशेर्भावेऽपि प्रदेशाग्रमसंख्येयगुणमेव,

भाजकराशेः संख्येयगुणाधिकत्वेऽपि योगस्यासंख्येयगुणाधिकत्वात् प्रदेशाग्रमसंख्येयगुणाधिकमेव प्राप्यते ।

तत्र वेदनीयद्वयतो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशाग्रमसंख्येयगुणम्, संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य करणाऽपर्याप्तस्य सम्यग्दृष्टिमनुष्यस्य भवप्रथमसमये तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभात्, एकेन्द्रियजघन्ययोगतः संज्ञिसत्कजघन्ययोगस्यासंख्येयगुणत्वात् । ततो जिननाम्नो जघन्यप्रदेशाग्रं संख्येयगुणं देशोनत्रिगुणं, तुल्यैकयोगेन एतयोर्जघन्यप्रदेशबन्धभावेऽप्युभययोः सप्तविधबन्धकत्वेऽपि नाम्नि लब्धभागस्य वैक्रियशरीर आसन्नैकाशीतितमभागस्य लाभात्, जिननाम्नि त्वासन्नाष्टाविंशतितमभागस्य भावाद् देशोनत्रिगुणत्वं भवति। ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशाग्रं विशेषाधिकम्, अस्या अपि वैक्रियशरीरतुल्ययोगेन जघन्यप्रदेशबन्धभावेन नाम्नि लब्धभागस्यासन्नसप्तविंशतितमभागप्रमाणत्वात् संख्येयतमभागेन विशेषाधिकत्वं भवतीति । ततो वैक्रियाङ्गोपाङ्गस्य विशेषाधिकं प्रदेशाग्रम्, ततो देवानुपूर्व्या विशेषाधिकम्, उक्तपदद्वयस्य पूर्वपदेन सह तुल्यैकस्वामिकत्वेऽपि प्रकृतिविशेषेणासंख्यैकभागेन विशेषाधिकं भवतीति ।

ततस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्बन्धे जघन्यप्रदेशाग्रमसंख्येयगुणं परस्परं तुल्यं च, संज्ञिसत्कभवप्रथमसमयगतयोगतः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तभवचरमतृतीयभागसत्कजघन्ययोगस्यासंख्येयगुणत्वात् । उपपादयोगतः परिणामयोगस्यासंख्येयगुणत्वादित्यन्ये । परस्परं तुल्यत्वं च तुल्यैकयोगे बध्यमाने सति तदासन्नाष्टमभागप्रमाणत्वात् ।

ततो नरकगतेर्बन्धे जघन्यप्रदेशाग्रमसंख्येयगुणम्, आयुर्बन्धप्रायोग्यसूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तसत्कजघन्ययोगतोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियकरणपर्याप्तसत्कपरावर्तमानजघन्ययोगस्यासंख्येयगुणत्वात्, प्रस्तुते तस्मिन्नेव नरकगतेर्बन्धप्रायोग्यत्वात् । नरकत्रिकस्य जघन्यप्रदेशबन्ध एकस्मिन्नेव योगस्थाने युगपदेव च भवति, तथापि तद्योगगृहीतसकलप्रदेशानामासन्नाष्टमभागप्रमितानि दलिकानि नरकायुषि प्राप्यते, नरकगतौ तु तद्योगगृहीतसकलप्रदेशानामासन्नाष्टमभागप्रमितं नामकर्मणि लभ्यते तस्यापि आसन्नषड्विंशतितमभागप्रमाणं नरकगतौ प्राप्यत इति तद्योगगृहीतदलिकानामासन्नाष्टोत्तरद्विशततमभागप्रमाणत्वान्नरकायुष्कतो नरकद्विकस्य संख्येयगुणहीनं भवति । ततो नरकगतितो नरकानुपूर्व्या जघन्यपदे प्रदेशाग्रं विशेषाधिकं भवति, प्रकृतिविशेषादत्र विशेषाधिकत्वम् । ततो नरकायुषो देवायुष्कस्य च बन्धे जघन्यपदे प्रदेशाग्रं संख्येयगुणं देशोनषड्विंशतिगुणं भवति, परस्परं तुल्यं च, तुल्यैकयोगस्थाने द्वयोरप्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धभावेन लब्धभागस्य समानत्वात् । तत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, असंज्ञिपर्याप्तसत्कघोलमानजघन्ययोगस्थानतः संज्ञिपर्याप्तसत्कघोलमानजघन्ययोगस्यासंख्येय-

गुणत्वात् । तत आहारकाङ्गोपाङ्गस्य जघन्यपदे प्रदेशाग्रं संख्येयगुणं सातिरेकद्विगुणं भवति ।

तदेवं विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनां परस्थानगतं जघन्यपदे प्रदेशाग्रस्याल्पबहुत्वं दर्शितम् । एतेन मार्गणास्वपि यथासम्भवं परस्थानाल्पबहुत्वस्य निरूपणावसरे शेषप्रकृतीनां तत् स्वयं निरूपणीयम् । सुगमं चेति ॥४३१-४३९॥

तदेवं समाप्तमोघतो विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य परस्थानाल्पबहुत्वम् ।

अथ मार्गणासु तन्निरूपयितुकाम आदौ तावद् यासु मार्गणासु तदोघवद्भवति तास्वतिदेशेन दर्शयन्नाह

हस्सपएसस्सोघव्वऽप्पाबहुगं पणिंदितसेसुं ।
कायचउकसायणयणअणयणभवियेसु आहारे ॥४४०॥

(प्रे०) "हस्से"त्यादि, पञ्चेन्द्रियौघादिद्वादशमार्गणाः एतासु प्रत्येकं सर्वमपि जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम् । काययोगौघादिनवमार्गणासु सर्वप्रकृतीनां स्वामिन ओघवद्भावेन तासां जघन्यप्रदेशबन्धोऽप्योघवद्भवति, अतोऽल्पबहुत्वमप्योघवत् प्राप्यत इति । पञ्चेन्द्रियौघ-त्रसकायौघ-पर्याप्तत्रसकायमार्गणास्वेकेन्द्रियाणां प्रवेशाभावेन नवोत्तरशतस्य स्वामिन यद्यप्योघतो विसदृशा भवन्ति, तथापि पञ्चेन्द्रियौघे त्रसकायौघे चैकेन्द्रियस्य स्थाने स्वामितया लब्ध्यपर्याप्तद्वीन्द्रियस्य भावेनाल्पबहुत्वमोघानुसारेण लभ्यत इति । पर्याप्तत्रसकायमार्गणायां सप्तोत्तरशतस्य भवप्रथमसमयद्वीन्द्रियस्य तथाऽऽयुर्द्वयस्य करणपर्याप्तद्वीन्द्रियस्य जघन्यप्रदेशबन्धभावेन शेषप्रकृतीनां तु ततोऽसंख्येयगुणयोगवतामोघवज्जघन्यप्रदेशबन्धभावेन चाल्पबहुत्वमोघवद्भवति । बन्धस्थानादीनां तूभयत्र तुल्यत्वान्न तत्कृतो भेदः संपद्यत इति । विशेषभावना तु स्वामित्वानुसारेणौघोक्ताल्पबहुत्वानुसारेण च स्वयं कार्या इति ॥४४०॥

अथ नरकौघादिमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धस्य परस्थानाल्पबहुत्वं प्रदर्शयन्नाह—

णिरयपढमाइछणिरयअपज्जतिरिणरपणिंदियतसेसुं ।
सुरभवणतिगेसु सयलएगिंदियविगलभूदगवणेसुं ॥४४१॥ (गीतिः)
ओघव्व दुइअमाणा अप्पबहू जाव वेअणीअदुगं ।
ताउ असंखेज्जगुणा विण्णेयो तिरिणराऊण ॥४४२॥

(प्रे०) "णिरये"त्यादि, नरकौघे प्रथमादिनरकषट्केऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तमनुष्याऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियापर्याप्तत्रसकायमार्गणाचतुष्के देवौघे भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कमार्गणात्रये सप्तैकेन्द्रियभेदेषु नवविकलाक्षभेदेषु सप्तपृथ्वीकायमार्गणासु सप्ताप्कायमार्गणास्वेकादश-

वनस्पतिकायमार्गणासु सर्वसंख्यया षट्पञ्चाशन्मार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावत् षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वमोघवद्भवति, ओघवदत्रापि तत्तन्मार्गणासु भवप्रथमसमय आसां जघन्यप्रदेशबन्धभावाज्जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यबन्धस्थानानामोघवल्लाभाच्च । ततो वेदनीयद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धतः तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, वैक्रियशरीरादिप्रकृतीनामत्र बन्धाभावात् तत्सत्कपदद्वयमत्रान्तराले न भवति, अत एतत्पदद्वयस्यात्रानवकाशः, आयुर्बन्धस्य तु पर्याप्तावस्थायामेव भावेन तथाऽपर्याप्तादिमार्गणासु भवतृतीयभागे तल्लाभेन च भवप्रथमसमयगतयोगत आयुर्बन्धप्रायोग्यजघन्ययोगस्यासंख्येयगुणत्वमेव भवतीति । नरकद्विकादिप्रकृतीनामत्र बन्धाभावान्न तत्सत्कपदानि दर्शितानीति । अत्र नामप्रकृतिषु जात्यादीनामल्पबहुत्वस्य स्वयमेव जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थानान्यवगम्य निरूपणा कार्या सुगमा चेति । किञ्च नरकौघ आद्यनरके देवौघे चासंज्ञित आगतानां जघन्यप्रदेशबन्धभावेन मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्ध एकोनत्रिंशद्बन्धस्थान एव भवति, अत ओघवद् यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां विशेषाधिकजघन्यप्रदेशबन्धो भवति । द्वितीयतृतीयनरकयोः पुनर्मिथ्यादृशामेवोत्पाद इति मतेनोघातिदेशो घटते, अन्यथा तु क्षायिकसम्यग्दृशां तत्रोत्पादे भवप्रथमसमये जिननाम्नो बन्धस्य संभवेन त्रिंशद्बन्धस्थानस्य मनुष्यप्रायोग्यस्यापि लाभात् तिर्यग्गतेर्मनुष्यगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यः प्राप्यत इत्यादिविशेषस्तु स्वयं परिभावनीयः सुधिया ॥४४१-४४२॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायां प्राह—

ओघव्व तमतमाए चक्खुं जाव हवए दुइअमाणा ।
णवरं जसअजमत्तो णेयो कुच्छाअ संखगुणो ॥४४३॥
तत्तो संखेज्जगुणो हवेज्ज कम्मस्स णीअगोअस्स ।
ताओ विसेसअहियो दुवेअणीआण विण्णेयो ॥४४४॥
ताउ असंखेज्जगुणो मणुयगईएऽत्थि ताउ संखगुणो ।
तिरियाउगस्स तत्तो विसेसअहियोऽत्थि उच्चस्स ॥४४५॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, सप्तमनरकमार्गणायां मनुष्यगतिनामोच्चैर्गोत्रयोः सम्यग्दृष्टीनां तथा मिश्रदृष्टीनामेव बन्धकत्वेन करणपर्याप्तावस्थायामेव बन्धभावाद् मनुष्यायुषश्च बन्धाभावादेतत्प्रकृतित्रयं विहाय शेषं वेदनीयद्वयं यावत् प्रस्तुताल्पबहुत्वमोघवद्भवति, ओघवत् तासां भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभाज्जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यबन्धस्थानानां तुल्यत्वाच्च ।

अत्र प्रथमगाथाया उत्तरार्धे यशःकीर्तेर्यशःकीर्तिनामानन्तरमोघे तु मनुष्यगतेः पदस्य भावादत्र तु तस्य पश्चाद्वक्ष्यमाणत्वात् तदनन्तरभाविजुगुप्सायाः पदं विज्ञेयमित्यपवादभणनम्, अस्य संख्येयगुणत्वं तु तद्भावेऽपि स्पष्टार्थं आशङ्कानिरासार्थं च। प्रथमगाथायां चक्षुर्दर्शनावरणं यावदेवाल्पबहुत्वस्यौघवदेवातिदिष्टत्वात् तदनन्तरं चौघे गोत्रद्वयस्य संख्येयगुणो जघन्यप्रदेशबन्धो दर्शितः, प्रस्तुते तु नीचैर्गोत्रस्यैवेति द्वितीयगाथायाः पूर्वार्धे स दर्शितः, अत्र "कम्मस्स" इति पदेन कार्मणशरीरं न ग्राह्यम्, किन्तु नीचैर्गोत्रकर्म इति विशेषणविशेष्यभावो विज्ञेयः। द्वितीयगाथाया उत्तरार्धे तु नीचैर्गोत्रतो विशेषाधिको वेदनीयद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, स चौघवदेवेति। ततो वेदनीयद्वयतो मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, करणपर्याप्तानां घोलमानयोगिनामेव प्रस्तुते तद्बन्धभावेन भवप्रथमसमयगतयोगत एतेषां योगस्यासंख्येयगुणत्वादसंख्येयगुणप्रदेशबन्धो भवतीति। ततस्तिर्यगायुषो जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थान एव तिर्यगायुषो जघन्यप्रदेशबन्धभावेऽपि नाम्नः सप्तविंशतिविभागा भवन्ति, आयुषस्तु न विभागान्तरमिति भवत्यासन्नसप्तविंशतिगुणः तिर्यगायुषो जघन्यप्रदेशबन्धः प्रस्तुत इति। तत उच्चैर्गोत्रस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, यद्यपि तुल्यैकयोगस्थाने द्वयोरपि जघन्यप्रदेशबन्धः, तथाप्युच्चैर्गोत्रबन्धेऽत्राऽऽयुषो बन्धाभावात् सप्तविधबन्धे एव उच्चैर्गोत्रस्य जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, अतः संख्येयभागेन विशेषाधिकत्वमत्र विज्ञेयमिति। एवं चतुःषष्टिप्रकृतिभ्यो बन्धप्रायोग्याणां षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनामल्पबहुत्वं दर्शितम्। शेषं तु बन्धस्थानानुसारेण स्वयं परिभावनीयम्। एव सर्वमार्गणास्वपि, न भूयो भूयः स्मार्यत इति ॥४४३ ४४४-४४५॥

अथ तिर्यग्गत्योघादिमार्गणासु प्रस्तुतमाह

तिरिये पणिंदितिरिये असंजमे तिअपसत्थलेसासुं।
ओघव्वऽप्पाबहुगं परमाहारगतणू णत्थि ॥४४६॥

(प्रे०) "तिरिये" इत्यादि, तिर्यगोघादिमार्गणाषट्कं, एतासु षट्स्वप्याहारकशरीरं विहाय चतुःषष्टिभ्यः शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामल्पबहुत्वं सर्वमप्योघवद्भवति, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिना मोघवल्लाभात्। केवलं तिर्यगोघादिषु कासुचिन्मार्गणासु देवगतिवैक्रियशरीरनाम्नोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामोघतः कथञ्चिद्भेदेऽपि तत्स्वामित्वानुसारेणाल्पबहुत्वमोघवदेव विज्ञेयमिति, यतस्तयोः पूर्वपद उत्तरपदे च योगस्यासंख्येयगुणतारतम्याभावाल्पबहुत्वे क्रमभेद इति नीलकृष्णयोरल्पबहुत्वे जिननाम्नो विशेषः स्वयं ज्ञेयः ॥४४६॥

अथ पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणासु प्रस्तुताल्पबहुत्वमाह

पज्जपणिंदियतिरिये जोघव्व हवेज्ज सुरगई तत्तो ।
णिरयस्स असंखगुणा तत्तो आऊण संखगुणा ॥४४७॥

(प्रे०) 'पज्जे'त्यादि, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावदसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिरश्चां भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वेन तुल्यैकयोगस्थान आसां जघन्यप्रदेशबन्धभावेनासां जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यबन्धस्थानानामोघवल्लाभेन चौघवदल्पबहुत्वस्य लाभात् तथैवातिदिष्टमिति । वेदनीयद्विकानन्तरं वैक्रियशरीरस्य तदनन्तरं देवगतेश्चाप्यल्पबहुत्वमोघवद्भवति, संज्ञिनो भवप्रथमसमये द्वयोरपि युगपज्जघन्यप्रदेशबन्धलाभात्, पूर्वपदगतयोगत प्रस्तुते योगस्यासंख्येयगुणत्वाच्च तयोरप्योघवदतिदेश इति । देवगत्यनन्तरमोघे तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धो दर्शितः, ततो नरकगतेस्ततो देवनरकायुषोरिति तत्र चतुर्णामायुषां भिन्नभिन्नस्वामित्वेनाल्पबहुत्वमपि द्वयोर्द्वयोः पृथग् दर्शितम्, अत्र तु चतुर्णामायुषां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वात् तुल्य एव जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, अतो देवगतितो नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, संज्ञिनो भवप्रथमसमयगतजघन्ययोगतो असंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तस्य घोलमानयोगस्यासंख्येयगुणत्वात् । ततश्चतुर्णामप्यायुषां जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्च । येन योगेन नरकगतिजघन्यप्रदेशबन्धो भवति एषां तेनैव योगेन जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावेऽप्यायुर्भागे लब्धसर्वदलिकानां बध्यमानायुष्कतया परिणमनात् संख्यातगुणत्वमिति । एवं त्रिषष्टिप्रकृतीनामल्पबहुत्वं दर्शितम् । आहारकशरीरस्यात्र बन्धाभावात् तद्वर्जनम् । शेषबन्धप्रायोग्याणां तत् स्वयं बन्धस्थानादिना परिभावनीयमिति ॥४४७॥ अथ तिरश्चीमार्गणायां प्राह प्रस्तुतम्

तिरिजोणिमईए जा ओघव्व विउवतणु भवे तत्तो ।
संखगुणो देवणिरयगईण ताउ चउआऊणं ॥४४८॥

(प्रे०) "तिरी"त्यादि, तिरश्चीमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावदोघवदल्पबहुत्वं भवति, भवप्रथमसमये मार्गणाप्रायोग्यजघन्ययोगे ओघवद्बन्धस्थानेष्वासां जघन्यप्रदेशबन्धभावात् । ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, भवाद्यान्तर्मुहूर्ते सम्यग्देशामत्रालाभेन पर्याप्तकस्यैव तद्बन्धलाभेन पूर्वोक्तप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगतो वैक्रियशरीरजघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्यासंख्येयगुणत्वाज्जघन्यप्रदेशबन्धस्यासंख्येयगुणत्वमिति । ततो देवगतेर्नरकगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः देशोनत्रिगुणः, वैक्रियशरीरनाम्ना सह तुल्यजघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वेऽपि शरीरलब्धभागस्य त्रयो विभागा भवन्ति, गतिनाम्नि लब्धभागस्तु सर्वो देवगतेर्नरकगतेर्वा लभ्यत इति देशोनत्रिगुणत्वम् । तत आयुष्क-

चतुष्कस्य जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः; प्रस्तुतमार्गणायां पर्याप्तस्यैवायुर्बन्धस्य लाभेन देवगतिनरकगतिनाम्नोर्यस्मिन् योगस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धो भवति तस्मिन्नेव योगस्थाने आयुष्कचतुष्कस्यापि जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, तथा नाम्नि लब्धभागस्य षड्विंशतिविभागा भवन्ति; आयुषि तु न विभागान्तरमतः संख्यातगुणो जघन्यप्रदेशबन्धो दर्शित इति । एवं त्रिषष्टिप्रकृतीनां दर्शितम्, आहारकशरीरस्य बन्धाभावात् तद्वर्जनमिति ॥४४८॥

अथ मनुष्यौघमार्गणायां संज्ञिमार्गणायां चाल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

ओघव्व तिरिणराऊ जा णरसण्णीसु तो असंखगुणो ।
आहारस्स तओ संखगुणो णारगगईअ ताऊणं ॥४४९॥ (गीतिः)

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, मनुष्यौघे संज्ञिमार्गणायां चाप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावत् षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वमोघवद् विज्ञेयम्, भवप्रथमसमये मार्गणाप्रायोग्यजघन्ययोगे ओघवद्बन्धस्थानेष्वासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावात् । ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यपदे प्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियसत्कजघन्ययोगतः संज्ञिभ्यः संज्ञिपूत्पद्यमानस्य जघन्ययोगस्थानस्यासंख्येयगुणत्वात् । ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः; देशोनत्रिगुणः, भावना त्वोघानुसारेण कार्या; पदद्वयसत्कजघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामोघतुल्यत्वात् । ततस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, भवप्रथमसमयसत्कयोगतो लब्ध्यपर्याप्तानामायुर्बन्धप्रायोग्यजघन्ययोगस्थानस्याप्यसंख्येयगुणत्वात् । तत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, करणपर्याप्तानां तल्लाभेन, पूर्वपदसत्कयोगतः प्रस्तुतपदसत्कजघन्ययोगस्यासंख्येयगुणत्वात् । ततो नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः सातिरेकचतुर्गुणः; आहारकशरीरनाम्नो नरकगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धकाले योगस्थानस्य तुल्यत्वमष्टमूलप्रकृतिबन्धकत्वं च, किञ्च नाम्नि लब्धभागस्याहारकशरीरबन्धकाले सप्तविंशतिविभागा भवन्ति; तस्मिन्नपि शरीरनाम्नि लब्धभागश्चतुर्धा विभज्यन्ते, नरकगतिबन्धकाले तु नाम्नि लब्धभागाः षड्विंशतिधा भज्यन्ते तत्रैकभागो गतिनाम्नि भवति; अतः सातिरेकचतुर्गुणत्वमिति । ततो देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां पूर्वपदद्वयेन तुल्यत्वेऽपि युगपदनेकप्रकृतिबन्धाभावेनायुष्कर्मणि लब्धसर्वभागस्य बध्यमानायुषि लाभात् संख्येयगुणत्वमिति ॥४४९॥ अथ पर्याप्तमनुष्यमार्गणायां प्राह

ओघव्व सुरगइं जा पज्जणरे तो भवे असंखगुणो ।
आहारस्स तओ संखगुणो णारगगईअ ताऊणं ॥४५०॥(गीतिः)

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, पर्याप्तमनुष्यमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावत् षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वमोघवद्भवति; असंज्ञिपश्चात्कृतस्य भवप्रथमसमये मार्गणाप्रायोग्यजघन्ययोगस्थाने ओघवत्तद्बन्धस्थान आसां जघन्यप्रदेशबन्धलाभात् , भावनाप्यत्र यथासंभवं तदनुसारेण कार्या इति। ततो वैक्रियशरीरस्य देवगतेश्चाप्यल्पबहुत्वमोघवद्भवति, ओघवत्तयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामत्र लाभात्। असंज्ञिपश्चात्कृतसत्कजघन्ययोगस्थानतः संज्ञिभ्यः संज्ञिषूत्पद्यमानस्य जघन्ययोगस्यासंख्येयगुणत्वेन प्रस्तुते वेदनीयद्वयतो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणो भवति; ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुण इति। तत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, करणपर्याप्तकस्यैव तद्बन्धभावेन भवप्रथमसमयगतयोगतः प्रस्तुतबन्धकयोगस्यासंख्येयगुणत्वाद् भवत्यसंख्येयगुणो जघन्यप्रदेशबन्ध इति। ततो नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, प्रस्तुते पूर्वपदेन सह तुल्ययोगस्थानस्य लाभेऽपि पूर्वपदे शरीरनामलब्धभागस्य चत्वारो विभागा भवन्ति; प्रस्तुते गतिनामलब्धः सर्वभागो बध्यमानगतौ लभ्यत इति सातिरेकचतुर्गुणत्वं भवति; अत्र सातिरेकत्वं प्राग्वद्भावनीयम्। ततो नरकगतितश्चतुर्णामप्यायुषां जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्चेति। अत्रापि पूर्वपदेन सह तुल्यैकयोगस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धभावेऽपि नाम्नि लब्धभागस्य नानाविभागा भवन्ति, आयुष्कर्मणि तु बध्यमानैकस्मिन्नेवायुषि तत्सत्कसकलदलिकानां लाभात् पूर्वपदतो देशोनषड्विंशतिगुणानि दलिकानि प्रस्तुते भवन्तीति। एवं चतुष्पष्टेर्दर्शितम् , शेषाणां षट्पञ्चाशतस्तत्स्वयं बन्धस्थानादिना विमर्शनीयमिति ॥४५०॥

अथ मानुष्यां तन्निरूपयन्नाह

एमेव मणुस्सीए अहवोघव्वऽत्थि जाव विउवतणु ।
तत्तो विसेसअहियो आहारतणुस्स बोद्धव्वो ॥४५१॥
ताओ संखेज्जगुणो देवगईए तओ विसेसहियो ।
णिरयगईए एत्तो चउण्ह आऊण संखगुणो ॥४५२॥

(प्रे०) "एमेव" इत्यादि, मानुषीमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावज्जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वमोघवद्भवति। भावना त्वनन्तरदर्शितपर्याप्तमनुष्यमार्गणावत् कार्या इति। ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, प्रस्तुताल्पबहुत्वं प्राचुर्यमधिकृत्य स्त्रीषु सम्यग्दृशामुत्पादो नास्तीति स्वीकृत्योक्तम्, एतच्च "अहवोघव्व" इत्यादिना दर्शितम्। अतः प्रस्तुते वैक्रियशरीरस्य बन्धोऽपर्याप्तावस्थायां नास्ति; सम्यग्दृष्टीन् विहाय शेषाणामपर्याप्तावस्थायां देवप्रायोग्यबन्धाभावात्। अतः करणपर्याप्तानां मूलाष्टप्रकृतीर्बध्नतां

नाम्नो देवप्रायोग्यैकत्रिंशतं बध्नतामप्रमत्तसंयतानां वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, भवप्रथमसमयगतजघन्ययोगतः करणपर्याप्तसत्कघोलमानयोगस्यासंख्येयगुणत्वाद् वेदनीयद्वयजघन्यप्रदेशबन्धतो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः । तत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, जघन्यप्रदेशबन्धस्य तुल्यस्वामित्वेन प्रकृतिविशेषाद्विशेषाधिकत्वं विज्ञेयमिति । ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनचतुर्गुणः पूर्ववत् । ततो नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्ध एकोनत्रिंशति एकत्रिंशति च भवति; नरकगतेस्त्वष्टाविंशतौ, इत्यत्र भाजकराशेरल्पत्वेन भागफलस्याधिक्यम् । ततश्चतुर्णामायुषां प्रत्येकं जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्च, भावना तु पर्याप्तमनुष्यमार्गणावत् कार्या इति ।

सम्यग्दृशां मानुपीपूत्पादस्य कादाचित्कस्य भावेन तद्विवक्षायां सर्वमप्यल्पबहुत्वं पर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्विज्ञेयमिति । एतच्च "एमेव" इत्यादिना गाथाप्रारम्भे प्रकटितम् । शेषाणां षट्पञ्चाशतः स्वयं तद्वक्तव्यमिति ॥४५१-४५२॥

देवौघे भवनपतित्रिके च प्रस्तुताल्पबहुत्वस्य निरूपितत्वात् क्रमप्राप्तसौधर्मादिमार्गणासु प्रस्तुताल्पबहुत्वं प्राह—

अडसोहम्माईसुं कम्मं जोघव्व ताउ संखगुणो ।
तिरिणरगईण तो जसअजसाणऽहियोऽत्थि ताउ णिरयव्व॥४५३॥(गीतिः)

(प्रे०) "अड" इत्यादि, सौधर्मादिषु सहस्रारान्तासु वैमानिकदेवलोकसत्काष्टमार्गणास्वप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य सातासातवेदनीयद्वयं यावत् षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रस्तुताल्पबहुत्वमोघवद्भवति, भवप्रथमसमये मार्गणाप्रायोग्यजघन्ययोगस्थाने ओघवद्बन्धस्थानेष्वासां जघन्यप्रदेशबन्धभावात् । केवलं प्रस्तुते भवप्रथमसमये मार्गणाप्रायोग्यजघन्ययोगस्थाने च जिननाम्नो बन्धभावेन मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धस्त्रिंशद्बन्धस्थाने भवति; एवं तिर्यग्गतेरपि जघन्यप्रदेशबन्धस्त्रिंशद्बन्धस्थाने लभ्यते; अतस्तिर्यग्गतेर्मनुष्यगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति, ओघे तु तिर्यग्गतिजघन्यप्रदेशबन्धतो यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योर्जघन्यप्रदेशबन्धस्यासंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वमभिधाय तदनन्तरं मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयभागेन विशेषाधिको भवतीति दर्शितम् , प्रस्तुते तु तिर्यग्गत्या समं मनुष्यगतेस्तुल्यत्वं जघन्यप्रदेशबन्धस्याभिधाय तदनन्तरं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिको भवतीति । वेदनीयद्वयानन्तरं वैक्रियशरीरादीनां षण्णां बन्धाभावेन तद्वर्जनार्थं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरनन्तरं जुगुप्सादीनां प्रस्तुताल्पबहुत्वमोघवदनतिदिश्य नरकवद् दर्शितमिति, भावना तु नरकवद् यथासंभवं कार्या । सौधर्मेशानमार्गणाद्वये शेषाणां षट्चत्वारिंशतः, सनत्कुमारादिमार्गणाषट्के शेषाणां त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां प्रस्तुताल्पबहुत्वं बन्धस्थानानि विभाव्य स्वयं निरूपणीयमिति ॥४५३॥

अथ आनतादिमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं प्राह

एमेवऽप्पाबहुगं गेविज्जंतेसु आणताईसु ।
णेयं णवरं हवए तिरिक्खगइआउवज्जाणं ॥४५४॥

(प्रे०) "एमेव" इत्यादि, आनतकल्पादारभ्य नवमग्रैवेयकान्तासु त्रयोदशमार्गणासु प्रस्तुतं सर्वमप्यल्पबहुत्वमनन्तरदर्शितसौधर्ममार्गणावद् विज्ञेयम् ; भावनापि तद्वत्कार्या, केवलं प्रस्तुते तिर्यग्गतेस्तिर्यगायुष्कस्य च बन्धाभावात् तद्वर्जनं कार्यमिति ॥४५४॥

अथ अनुत्तरमार्गणापञ्चके प्रस्तुताल्पबहुत्वं प्रदर्शयन्नाह

पंचसु अणुत्तरेसुं जेट्ठपएमव्व होइ चक्खुं जा ।
तत्तो संखेज्जगुणो विण्णेयो उच्चगोअस्स ॥४५५॥
तत्तो विसेसअहियो बोद्धव्वो दोण्ह वेअणीयाणं ।
ताउ असंखेज्जगुणो मणुआउस्स खलु णायव्वो ॥४५६॥

(प्रे०) "पंचसु" इत्यादि, पञ्चस्वनुत्तरमार्गणासु यथा ज्येष्ठप्रदेशबन्धे परस्थानाल्पबहुत्वं दर्शितं तथा प्रस्तुते जघन्यप्रदेशबन्धस्य परस्थानाल्पबहुत्वे चक्षुर्दर्शनावरणं यावद्वक्तव्यम् । तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणस्य मानस्य जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोकः, ततः क्रोधस्य विशेषाधिकः, ततो मायाया विशेषाधिकः, ततो लोभस्य विशेषाधिकः, ततः प्रत्याख्यानावरणस्य मानस्य विशेषाधिकः, ततः क्रोधस्य विशेषाधिकः, ततो मायाया विशेषाधिकः, ततो लोभस्य विशेषाधिकः, ततः केवलज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततो निद्राया विशेषाधिकः, ततः प्रचलाया विशेषाधिकः ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, तत औदारिकशरीरस्यानन्तगुणस्ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाधिकः, ततो मनुष्यगतेः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुणः, ततो यशः-कीर्तेरयशःकीर्तेश्च जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततो जुगुप्साया जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः सातिरेकसार्धद्विगुणः, ततो भयस्य विशेषाधिकः, ततो हास्यशोकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, ततो रत्यरत्योर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, ततः पुरुषवेदस्य विशेषाधिकः, ततः संज्वलनमानस्य विशेषाधिकः, ततः क्रोधस्य विशेषाधिकः, ततो मायाया विशेषाधिकः, ततः संज्वलनलोभस्य विशेषाधिकः, ततो दानान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो लाभान्तरायस्य ततो भोगान्तरायस्य ततः परिभोगान्तरायस्य ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततःश्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽवधिदर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिक इति ।

तत उच्चैर्गोत्रस्य जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुणः, ततः सातासातवेदनीयद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च, ततो मनुष्यायुषो जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, वेदनीयद्वयपर्यन्तानां जघन्यप्रदेशबन्धस्य भवप्रथमसमये भावेन ततोऽसंख्येयगुणयोगवतां करणपर्याप्तानामेवायुषो बन्धभावात् तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्यासंख्येयगुणत्वम् । अत्र मनुष्यायुर्विहाय सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वं ज्येष्ठप्रदेशबन्धाल्पबहुत्ववद्भवति, उच्चैर्गोत्रादीनां तद्वदनतिदेशस्तु चक्षुर्दर्शनावरणानन्तरं तत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वे मनुष्यायुषः पदस्य लाभात् । प्रस्तुते तस्य चरमस्थानगतत्वेन पृथग् दर्शयिष्यमाणत्वादिति । अत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धवदतिदेशे इदं तात्पर्यम्—

यथा तत्रायुर्वर्जानां सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्य तुल्यैकयोगस्थाने स्थितस्य नामवर्जानामेकैवबन्धस्थानस्यैव भावेन नामप्रकृतिष्वपि जिननामवर्जानामेकोनत्रिंशति एकस्मिन्नेव बन्धस्थाने वर्तमानस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, तथाऽत्रापि जघन्यप्रदेशबन्धस्य भवप्रथमसमये भावेन सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्य तुल्यैकयोगस्थाने स्थितस्य नामवर्जानां तदेव बन्धस्थाने वर्तमानस्य नाम्न्यपि एकस्मिन् त्रिंशद्बन्धस्थाने वर्तमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धभावादल्पबहुत्वं तुल्यं भवति, नाम विहाय ज्ञानावरणादिषड्मूलकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां जघन्यपद उत्कृष्टपदे चात्र भाजकराशेः समानत्वम्, नामप्रकृतिषु ज्येष्ठप्रदेशबन्धतो जघन्यप्रदेशबन्धे एकस्यैव नामसत्कभाजकस्याधिक्येऽपि नाल्पबहुत्वे क्रमभेद इति तद्वदतिदिष्टम् । आयुषि पुनर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वे यस्मिन् योगस्थाने ज्ञानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तस्मिन्नेव योगस्थान आयुषोऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभाद् भाजकराशिकृत एव विशेषो भवति; किन्तु जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वे ज्ञानावरणादिजघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थानत आयुर्जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थानस्यैवासंख्येयगुणत्वाद् बन्धप्रायोग्यजघन्ययोगस्थानकृतविशेषो भवतीति । अत्रानुत्तरमार्गणापञ्चके चतुःषष्टिप्रकृतिभ्यो या बन्धप्रायोग्याः प्रकृतयो भवन्ति; तासां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं यथौघे जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं भवति; तथैवात्रापि भवति; केवलं तत्र यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योर्जघन्यप्रदेशबन्धगणनानन्तरं मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो दर्शितः सोऽत्र यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां प्राक् कार्मणशरीरनामानन्तरं तिर्यग्गतिस्थाने वाच्यमिति। ग्रन्थकृता ओघवदनतिदेशस्तु स्त्यानर्द्धित्रिकादीनां बन्धस्याप्रायोग्यत्वेन तद्वर्जनस्यावश्यकत्वेन तथावगमतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धवदल्पबहुत्वावगमस्य सुगमत्वादिति । अत्रोक्तशेषाणां नामप्रकृतीनामल्पबहुत्वं तु बन्धस्थानान्यवगम्य स्वयं भावनीयमिति ॥४५५-४५६॥

अथेन्द्रियमार्गणासत्काष्टादशभेदेषु प्रस्तुताल्पबहुत्वस्य निरूपितत्वाच्छेषस्य पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां तथा तद्गताल्पबहुत्वसाम्यात् पुरुषवेदे च निरूपयन्नाह -

पज्जपणिंदिपुमेसुं ओघव्व हवेज्ज जाव देवगइं ।
ताउ असंखेज्जगुणो णिरयगईए मुणेयव्वो ॥४५७॥
तत्तो संखेज्जगुणो णिरयतिरियणरसुराउगाण भवे ।
ताउ असंखेज्जगुणो आहारतणुस्स बोद्धव्वो ॥४५८॥

(प्रे०) "पज्जे"त्यादि, पर्याप्तपञ्चेन्द्रिये पुरुषवेदे चाप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावद्भवप्रथमसमयेऽसंज्ञिनो जघन्यप्रदेशबन्धो भवति; अतोऽत्र स्वामिनामेकविधत्वादोघवदासां जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यबन्धस्थानानां लाभाच्चौघवदल्पबहुत्वं प्राप्यते, भावनाऽपि स्वामित्वमवगम्यौघानुसारेण विधेया । शेषाणां तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयं विहाय वैक्रियशरीरदेवगतिनरकगतिदेवनरकायुराहारकशरीरनाम्नां षण्णां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामोघवल्लाभादल्पबहुत्वमप्योघवद्भवति । तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनोऽसंज्ञिपर्याप्तपञ्चेन्द्रिया भवन्ति, तेन देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिना सह तुल्यस्वामित्वेन तयोर्जघन्यप्रदेशबन्धो देवनरकायुर्भ्यां सह तुल्यो भवति, एवं चतुर्णामप्यायुषां जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवति; अतो देवगतित ऊर्ध्वमोघवदतिदेशं विमुच्य नरकगत्यादीनां तत् व्यक्तं दर्शितम् । भावना तु स्वामित्वानुसारेणौघवद् यथासंभवं कार्येति ॥४५७-४५८॥

अथ कायमार्गणासत्काष्टाविंशतिभेदेषु प्रस्तुताल्पबहुत्वस्य दर्शितत्वाच्छेषेषु तेजस्कायभेदेषु वायुकायभेदेषु चेति चतुर्दशसु मार्गणाभेदेषु जघन्यप्रदेशबन्धस्य परस्थानाल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

णिरयव्वऽप्पाबहुगं सव्वेसिं सव्वतेउवाऊसुं ।
णवरं अप्पाबहुगं मणुयदुगुच्चाण णेव भवे ॥४५९॥

(प्रे०) "णिरयव्वे"त्यादि, सर्वतेजस्कायमार्गणासु सर्ववायुकायमार्गणासु च जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावद् विज्ञेयम्, पृथ्वीकायादिमार्गणासु तत्रैव तेन सह भणितत्वादुक्तचतुःषष्टिप्रकृतिभ्यो बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां समानप्रायस्त्वात् । केवलं प्रस्तुते मनुष्यगतिनाम्न उच्चैर्गोत्रस्य च बन्धाभावात् तत्सत्कमल्पबहुत्वं न वाच्यमिति । भावनापि तद्वद् यथासंभवं कार्येति ॥४५९॥ अथ मनोयोगौघादिमार्गणासु प्राह—

पणमणतिवयेसु भवे जा केवलदंसणावरणपयडिं ।
ओघव्वऽप्पाबहुगं तत्तो विउवस्सऽणंतगुणो ॥४६०॥

तत्तो विसेसअहियो आहारगतेअकम्मउरलाणं ।
कमसो तत्तो णेयो संखगुणो तिरिणरगईणं ॥४६१॥
तत्तो विसेसअहियो जसअजसाणं तओ कमा णेया ।
सुरणिरयगईण तओ कुच्छाए होइ संखगुणो ॥४६२॥
तो ओघव्व भवे जा णयणपओ आउगाण संखगुणो ।
तत्तो विसेसअहियो गोआणं ताउ वेअणीयाणं ॥४६३॥ (गीतिः)

(प्रे०) "वणे" त्यादि, मनोयोगसामान्यः सत्यादितदुत्तरभेदाश्चत्वारः, सत्या-ऽसत्य-सत्यासत्यरूपास्त्रयो वचनयोगभेदाश्चेत्यष्टमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां जघन्य-प्रदेशबन्धो मूलाष्टप्रकृतीर्बध्नतां पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामेव भवति । अतः सर्वप्रकृतीनां जघ-न्यप्रदेशबन्धे योगस्थानमेकमेव भवति । ततो योगस्थानप्रयुक्तो नाल्पबहुत्वे विशेषः । प्रकृतीनां न्यूनाधिकता प्रकृतिविशेषता च प्रस्तुताल्पबहुत्वे हेतुतया विज्ञेयः । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—

अप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य केवलदर्शनावरणं यावद् विंशतिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धा-ल्पबहुत्वमोघवद् भवति; सर्वमार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वघातिप्रकृतीनां प्रस्तुताल्पबहुत्वस्यौघ-वल्लाभात् , तदपि कुतः ? उच्यते-बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां सर्वघातिप्रकृतीनां युगपज्जघन्य-प्रदेशबन्धभावेन न योगस्थानस्य हेतुत्वं न वा प्रकृतीनां न्यूनाधिकत्वस्य हेतुत्वं केवलं प्रकृति-विशेषस्य हेतुत्वेनाल्पबहुत्वस्य सर्वत्र समानत्वादिति । ततः केवलदर्शनावरणतो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, जघन्ययोगस्थानगृहीतसमयप्रबद्धस्यासन्नाष्टमभागस्य नाम्नि लब्ध-स्यासन्नाष्टोत्तरशततमभागप्रमाणत्वात् , पूर्वपदेषु तु समयप्रबद्धस्यानन्ततमभाग इति । तत आहा-रकशरीरस्य ततस्तैजसशरीरस्य ततः कार्मणशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः प्रकृतिविशेषात् क्रमेणासंख्ये-यभागेन विशेषाधिको विशेषाधिको भवति; चतुर्णां शरीरनाम्नां युगपज्जघन्यप्रदेशबन्धलाभात् । तत औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः; त्रिंशद्बन्ध आसां जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावेन संख्यातभागेन विशेषाधिकत्वं ततस्तिर्यग्गतेर्मनुष्यगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धः संख्यातगुणः परस्परं तुल्यश्च, अत्र संख्यातगुणत्वं तु नाम्नि लब्धभागस्याष्टाविंशतितमभागत्वादिति । ततो यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च; प्रकृतिविशेषाद्विशेषाधि-कत्वमिति । ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्यातभागेन विशेषाधिकः; नाम्नि लब्धभागस्य सप्तविंशतितमभागरूपत्वामिति । ततो नरकगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, अष्टाविंशतावेत-स्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभेन नाम्नि लब्धभागस्य षड्विंशतितमभागत्वात् । ततो जुगुप्साया जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः सातिरेकसार्धद्विगुणः, नाम्नि लब्धभागस्यासन्नषड्विंशतित-

मभागो नरकगतौ लभ्यते; मोहनीतया लब्धद्रव्यदासन्नदशमभागप्रमाणं जुगुप्सायां प्राप्यत इति सातिरेकसार्धद्विगुणत्वमिति । इत ऊर्ध्वं तु चक्षुर्दर्शनं यावज्जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वमोघवद्भवति । तद्यथा–जुगुप्सातो भयस्य विशेषाधिकः, ततो हास्यशोकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च । ततो रत्यरत्योर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च । ततस्त्रयाणां वेदानां जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च । ततः संज्वलनमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, ततः क्रोधस्य विशेषाधिकः, ततो मायाया विशेषाधिकः, ततो लोभस्य विशेषाधिकः, ततो दानान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो लाभान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो भोगान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततः परिभोगान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽवधिदर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, भावना त्वोघवदष्टमूलप्रकृतिबन्धकानाश्रित्य यथासंभवं कार्येति । तत आयुषां चतुर्णां जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुण इत्यर्थः, परस्परं तुल्यश्च । ततो गोत्रद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, परस्परं तुल्यश्च; आयुर्भागतो गोत्रभागस्य मूलप्रकृतावेव विशेषाधिकतया दर्शितत्वात् । ततो वेदनीयद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिक इति । शेषपट्पञ्चाशत्प्रकृतीनामल्पबहुत्वं तु बन्धस्थानानुसारेण स्वयं परिभावनीयमिति ॥४६०-४६३॥

अथ वचनयोगौघ-व्यवहारवचनयोगयोः प्रस्तुताल्पबहुत्वं निरूरूपयिषुराह

दुवयेसु चक्खु जा ओघव्व तओ हवेज्ज संखगुणो ।
आउदुगस्स कमा तो अब्महियो गोअवेअणीयाणं ॥४६४॥(गीतिः)
ताउ असखेज्जगुणो विउवसरीरस्स ताउ संखगुणो ।
सुरणिरयगईणत्तो उड्ढं ओघव्व अप्पबहू ॥४६५॥

(प्रे०) "दुवयेसु" मित्यादि, वचनयोगमार्गणाद्वयेऽप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य चक्षुर्दर्शनावरणं यावद्द्विपञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वमोघवद्भवति; भावना तु पर्याप्तद्वीन्द्रियं मूलाष्टप्रकृतीर्बध्नन्तमधिकृत्यौघानुसारेण कार्येति, आयुर्विहाय बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धस्थानानां च समानत्वात् । ततश्चक्षुर्दर्शनावरणतस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः, परस्परं तुल्यश्च, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वे सति दर्शनावरणे लब्धभागस्यासन्नतृतीयभागं चक्षुर्दर्शनावरणे लभ्यते आयुषि लब्धदलिकानि सर्वाणि बध्यमानायुष्कतया परिणमन्ति, अतो देशोनत्रिगुणत्वम्, अत्र देशोनत्वं त्वायुषि शेषसप्तमूलकर्मतोऽल्पदलिकानां

लाभात् । द्वीन्द्रियाणामायुष्कद्वयस्यैव बन्धभावात् तयोर्ग्रहणमिति । ततस्तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयतो गोत्रद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः; परस्परं तुल्यश्च, तुल्यस्वामिकत्वेऽपि आयुष्कभागतो गोत्रभागस्याधिक्यात् । ततो वेदनीयद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, गोत्रतो वेदनीयभागस्याधिक्यात् । ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, तस्य पर्याप्ताऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियजघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वेन द्वीन्द्रियजघन्ययोगतः प्रस्तुतबन्धकयोगस्यासंख्येयगुणत्वात् प्रदेशबन्धोऽप्यसंख्येयगुणः । ततो देवगतिनरकगत्योर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः । ततो देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः; देशोनषड्विंशतिगुणः, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वे सति नाम्नि लब्धभागस्यासन्नषड्विंशतितमभागो देवनरकगत्योर्लभ्यते, आयुषि लब्धभागस्तु सर्वोऽपि बध्यमानायुष्कप्रकृतौ प्राप्यत इति कृत्वा । तत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः; संज्ञिपर्याप्तानां संयतानां तज्जघन्यप्रदेशबन्धभावेन पूर्वपदगतबन्धकयोगतोऽसंख्येयगुणयोगजन्यत्वात् । शेषाणां षट्पञ्चाशतः प्रस्तुताल्पबहुत्वं स्वयं परिभावनीयमिति ॥४६४-४६५॥ अथौदारिककाययोगे जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

उरले दुवेअणीअं जा ओघव्व उ तओ असंखगुणो ।
तिरियणराऊण तओ हवेज्ज वेउव्वियतणुस्स ॥४६६॥
तत्तो देवगईए संखेज्जगुणो तओ असंखगुणो ।
णिरयगईए एत्तो उड्ढं ओघव्व विण्णेयो ॥४६७॥

(प्रे०) "उरले" इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावच्चतुःषष्टिप्रकृतिभ्यः षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वमोघवद्भवति; सूक्ष्मपर्याप्तैकेन्द्रियाणां शरीरपर्याप्तिनिष्ठापनप्रथमसमये तुल्यैकयोगस्थाने षट्पञ्चाशत जघन्यप्रदेशबन्धभावात् , जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यबन्धस्थानानामोघवल्लाभाच्च । ततस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, पूर्वबन्धकयोगतः प्रस्तुतबन्धकयोगस्यासंख्येयगुणत्वात् । ततो वैक्रियशरीरस्यासंख्येयगुणः, बन्धकयोगस्यासंख्येयगुणत्वात् । ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः; देशोनत्रिगुणः, ततो नरकगतेरसंख्येयगुणः; योगस्यासंख्येयगुणत्वात्, ततो देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, तत आहारकशरीरस्यासंख्येयगुणः, भावना तु नरकगत्यादिपदत्रयस्यौघवत् कार्येति । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनामप्यल्पबहुत्वमेतदनुसारेण विधेयमिति ॥४६६-४६७॥

अथौदारिकमिश्रे प्राह

ओघव्व उरलमीसे दुइअमया होइ जा तिरिणराऊ ।
कम्माणाहारेसुं देवगइं जा मुणेयव्वो ॥४६८॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, औदारिकमिश्रयोगमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य मनुष्यतिर्यगायुष्कद्वयं यावज्जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वमोघवद्भवति । बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामोघतुल्यप्रायो लाभादल्पबहुत्वमपि तद्वदेवेति । अत्र तुल्यप्रायस्त्वकथनं त्वायुर्द्वयं विहाय शेषाणामृजुगत्योत्पन्नस्य भवप्रथमसमय आहारकस्य जघन्यप्रदेशबन्धलाभात् , ओघे तु भवप्रथमसमयस्थस्य कार्मणकाययोगे वर्तमानस्यानाहारकस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वमिति, ओघतो विशेषः । भावना तु तद्वत्कार्या सुगमा चेति ।

अथ कार्मणानाहारकमार्गणयोः प्राह–"कम्म" इत्यादि, कार्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां चाप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य देवगतिं यावदष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं सर्वथैवौघवद्विज्ञेयम् , एतासां सर्वासां प्रकृतीनामोघोक्तजघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामत्र मार्गणाद्वये लाभात् । सर्वथैव तद्वदतिदेशः, न पुनः कश्चिदपवादो विशेषो वा । तथाऽऽयुष्कचतुष्कनरकगतिनामाहारकशरीरनामानि नरकानुपूर्वीमाहारकाङ्गोपाङ्गं च विहाय शेषाणां चतुष्पञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रस्तुताल्पबहुत्वे जिज्ञासायां यथा तासामोघेऽल्पबहुत्वं प्राप्यते तथा प्रस्तुतेऽपि सर्वमेव प्राप्यते, अतस्तद्वद् विज्ञेयं भावनीयं चेति ॥४६८॥

अथ वैक्रियकाययोगमार्गणायां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं निरूपयिषुराह–

ओघव्व जा विउव्वे दुवेअणीयाणि तो असंखगुणो ।
दोण्हाऊणऽत्थि णवरि तिरियगइसमो णरगईए ॥४६९॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, "विउव्वे"त्ति, वैक्रियकाययोगेऽप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य चक्षुर्दर्शनावरणं यावच्चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्भवति । शरीरपर्याप्तिनिष्ठापनसमये मार्गणाप्रायोग्यजघन्ययोगस्थाने वर्तमानस्यौघे यद्यद्बन्धस्थाने यासां यासां जघन्यप्रदेशबन्धो भवति; प्रस्तुतेऽपि तत्तद्बन्धस्थाने तासां तासां जघन्यप्रदेशबन्धो भवतीत्योघवदतिदेशः ।

केवलमत्र मनुष्यद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धो जिननामसहितं नाम्नस्त्रिंशतं बध्नतो भवति; तिर्यग्द्विकस्यापि तथा लभ्यते, अतो मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धस्तिर्यग्गतिजघन्यप्रदेशबन्धेन सह तुल्यो भवति । ततो यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योर्जघन्यप्रदेशबन्धः विशेषाधिकः, ततः जुगुप्सायाः संख्येयगुणः; इत ऊर्ध्वं चक्षुर्दर्शनावरणं यावदोघवत्क्रमेणाल्पबहुत्वं ज्ञेयम् । ततश्चक्षुर्दर्शनावरणतो गोत्रद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, ततो वेदनीयद्वयस्य विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च । वेदनीयद्वयजघन्यप्रदेशबन्धतस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, शरीरपर्याप्तिनिष्ठापन-

समयगतयोगतः सर्वपर्याप्तिपर्याप्तसत्कजघन्ययोगस्थानस्यासंख्येयगुणत्वात् ।

येषां मतेन तु सर्वपर्याप्तिपर्याप्तकस्य वैक्रियकाययोगो भवति; तन्मते मनुष्यगतेरपवादेन युक्तं चक्षुर्दर्शनं यावदोघवदल्पबहुत्वं भवति, केवलमष्टमूलप्रकृतिबन्धकापेक्षया भावना कार्येति। ततश्चक्षुर्दर्शनावरणतस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणस्तुल्यैकयोगस्थाने सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धाङ्गीकरणात् । भावना तु मनोयोगवत् कार्येति । ततो गोत्रयोस्ततो वेदनीयद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, मूलप्रकृतिषु दलविभाजन आयुष्कतो गोत्रे ततो वेदनीयस्य विशेषाधिकदलिकस्य लाभात् प्रस्तुतेऽपि तथात्वमिति ॥४६९॥

अथ वैक्रियमिश्रकाययोगे जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं प्रदर्शयन्नाह

विक्कियमीसे चक्खुं जाऽऽजसुरव्वऽत्थि ताउ संखगुणो ।
गोआण तओ णेयो दुवेअणीआण अब्भहियो ॥४७०॥

(प्रे०) "विक्किय" इत्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोगे तिर्यग्मनुष्यायुषोर्बन्धाभावात्ते विहाय शेषाणां प्रस्तुताल्पबहुत्वं प्रथमकल्पदेवमार्गणावद्भवति; मार्गणाप्रथमसमयस्थसौधर्मादिदेवानां मार्गणाप्रायोग्यजघन्ययोगस्थाने स्थितानां सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वात् । प्रस्तुते असंज्ञिपश्चात्कृतानां स्वामित्वाभावाद् मनुष्यद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धो जिननामसहितं त्रिशतं बध्नतो भवति, अतस्तिर्यग्गतिनाम्ना सह मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धस्तुल्यो भवतीति देवौघतो विशेषस्य सद्भावाद् वैक्रियमिश्रे स्वप्रायोग्याणां सौधर्मदेववद्भवतीत्यतिदिष्टमिति ॥४७०॥

अथाऽऽहारककाययोगे तन्मिश्रे च प्राह

आहारदुगे णेयं जेट्ठपएसव्व सुरगई जाव ।
तत्तो विसेसअहियो जसअजसाणं कमा णेयो ॥४७१॥
तत्तो संखेज्जगुणो कुच्छाअ तओ कमा विसेसहियो ।
अत्थि भयहासरइपुमसोगअरइचरममाणाणं ॥४७२॥
तो चक्खुं जा जेट्ठपएसव्वा-ऽऽउस्स ताउ संखगुणो ।
ताओ कमुच्चसायअसायाण भवे विसेसहियो ॥४७३॥

(प्रे०) "आहारदुगे" इत्यादि, आहारकतन्मिश्रकाययोगद्वये केवलदर्शनावरणादारभ्य देवगतिं यावज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धवत्प्रस्तुताल्पबहुत्वं भवति; तद्यथा--केवलज्ञानावरणस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, ततः प्रचलाया विशेषाधिकः, ततो निद्राया विशेषाधिकः, ततः केवलदर्शना-

वरणस्य विशेषाधिकः, ततो वैक्रियशरीरस्यानन्तगुणः, देशघातित्वात् , ततस्तैजसशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकस्ततः कार्मणशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः प्रकृतिविशेषादत्र पदद्वये विशेषाधिकत्वमिति। अत्र शरीरत्रये प्रत्येकं नाम्नि तत्समयप्राप्तदलिकानामासन्नैकाशीतितमांशमितानि दलिकानि विद्यन्ते । ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वेन नाम्नि लब्धभागस्यासन्नसप्तविंशतितमभागप्रमाणत्वात्। जघन्ययोगगृहीतसमयप्रबद्धस्य पुनः षोडशोत्तरद्विशततमभागप्रमाणः प्राप्यत इति ।

ततो यशःकीर्तेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, प्रकृतिविशेषात् । ततोऽयशःकीर्तेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः संख्येयभागेन, उत्कृष्टपदे तु यशःकीर्तेरयशःकीर्तेश्च मूलसप्तप्रकृतीर्बध्नतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावेन द्वयोरपि तुल्यप्रदेशबन्धो भवति प्रस्तुते तु जघन्यपदस्याधिकृतत्वेन यशःकीर्तेर्जघन्यप्रदेशबन्धो मूलाष्टप्रकृतीर्बन्धकस्य भवति। अत्र मार्गणाद्वये केवलस्य देवायुष एव बन्धभावेन तेन सहायशःकीर्तेर्बन्धाभावात् तस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्य भवति, अतोऽयशःकीर्तिनाम्नो जघन्यपदे प्रदेशबन्धो जघन्ययोगगृहीतसमयप्रबद्धस्यैकोननवत्युत्तरशततमो भागो भवति अतः संख्यातभागेन विशेषाधिकत्वमिति ।अयमेव हेतुः पुनः शोकारत्योरपि पुरुषवेदानन्तरपठने विज्ञेय इति । ततो जुगुप्साया जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः देशोनसार्धद्विगुणः, समयप्रबद्धस्यासन्नाशीतितमभागप्रमाणं द्रव्यं प्राप्यत इति। ततो भयस्य विशेषाधिकः, ततो हास्यमोहस्य विशेषाधिकः, ततो रतिमोहस्य विशेषाधिकः, ततः पुरुषवेदस्य विशेषाधिकः, पदचतुष्केऽपि विशेषाधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद्विभावनीयमल्पबहुत्वं तु ज्येष्ठप्रदेशबन्धतुल्यं भवति, केवलं हास्येन सह शोकस्य रतिमोहनीयेन सहारतेस्तत्र ग्रहणेऽपि प्रस्तुते शोकारत्योः वर्जनमिति । ततः पुरुषवेदतः शोकमोहनीयस्य विशेषाधिकः, आयुषोऽत्र बन्धाभावेन समयप्रबद्धस्यासन्नसप्ततितमभागप्रमाणत्वात् । ततोऽरतिमोहनीयस्य विशेषाधिकः प्रकृतिविशेषात् । ततः संज्वलनमानस्य विशेषाधिक आयुष्कस्यात्र बन्धभावेऽपि मोहनीयलब्धद्रव्यस्यासन्नाष्टमभागप्रमाणत्वेन समयप्रबद्धस्यासन्नचतुःषष्टिभागः प्राप्यत इति । ततः संज्वलनक्रोधस्य विशेषाधिकः, ततः संज्वलनमायाया विशेषाधिकः, ततः संज्वलनलोभस्य विशेषाधिकः ।

ततो दानान्तरायस्य विशेषाधिकः ततो लाभान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो भोगान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततः परिभोगान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽवधिदर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, संज्वलनमानादीनां चक्षुर्दर्शनपर्यन्तानामष्टमूलप्रकृतिबन्धकानाश्रित्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धानुसारेण भावना

कार्येति । ततो देवायुषो जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः, तत उच्चैर्गोत्रस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, ततः सातवेदनीयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, समयप्रबद्धस्य साधिकाष्टमांशमितत्वात्, ततोऽसातवेदनीयस्य विशेषाधिकः, समयप्रबद्धस्य साधिकसप्तमांशमितत्वादिति । पञ्चेन्द्रियजात्यादीनामष्टाविंशतिनामप्रकृतीनां प्रस्तुताल्पबहुत्वं तु स्वयं बन्धस्थानानुसारेण दलविभाजनोक्तप्रक्रियातो भावनीयमिति ॥४७१-४७३॥

तदेवं योगमार्गणासु प्रस्तुताल्पबहुत्वं निरूपितम् । अथ क्रमप्राप्तासु वेदमार्गणासु वक्तव्यम् । तत्र पुरुषवेदे पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणया समं जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वस्य दर्शितत्वात् स्त्रीवेदमार्गणायां तदाह—

पुरिसव्व होइ थीए अप्पाबहुगमहवा तिरिच्छिव्व ।
परमाहारतणुस्स उ सव्वुवरि भवे असखगुणो ॥४७४॥

(प्रे०) "पुरिसव्व" इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां चतुःषष्टिप्रकृतीनां सर्वमल्पबहुत्वं पुरुषवेदवद्भवति । एतच्च मानुषीषु सम्यग्दृशामुत्पादः कादाचित्को मल्लिकुमारीवद्भवति, तदपेक्षया बोध्यम् । प्राचुर्यापेक्षया तु स्त्रीवेदमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य देवनरकायुषी यावत् त्रिषष्टिप्रकृतीनां प्रस्तुताल्पबहुत्वं तिरश्चीमार्गणावद्विज्ञेयम्, अत्रासां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियतिरश्चयो भवन्ति, अतोऽल्पबहुत्वमपि तद्वद् भवति । तिरश्चीमार्गणायामाहारकशरीरस्य बन्धाभावादत्र तु बन्धस्य सद्भावाद्, शेषं दर्शयति—"पर" मित्यादिना, देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणो भवति; असंज्ञिगतयोगतः संज्ञिपर्याप्तसत्कयोगस्यासंख्येयगुणत्वात् । भावना त्वोघवत् कार्या सुगमा चेति ॥४७४॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायां प्रस्तुताल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

ओघव्व णपुंसे जा दुवेअणीयं तओ असंखगुणो ।
तिरियणराऊण तओ हवेज्ज वेउव्वियतणुस्स ॥४७५॥
तत्तो संखगुणो सुरणिरयगईणं तओ दुआऊणं ।
ताउ असंखेज्जगुणो आहारतणुस्स बोद्धव्वो ॥४७६॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावच्चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धपरस्थानाल्पबहुत्वमोघवद्भवति; आसां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामितया सूक्ष्मापर्याप्तभवप्रथमसमयस्थानामत्र लाभात् । ततो वेदनीयद्वयजघन्यप्रदेश-

बन्धस्ततस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, प्रस्तुतमार्गणायां देवगतिवैक्रियशरीरयोर्जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकस्य भावेनौघतः स्वामिनां भिन्नत्वेन नौघवदतिदेशः। अत्रासंख्येयगुणत्वं तु लब्ध्यपर्याप्तानां भवचरमतृतीयभागप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धभावेन पूर्वपदगतयोगतः प्रस्तुतबन्धकयोगस्यासंख्येयगुणत्वादिति। ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तानां तज्जघन्यप्रदेशबन्धभावेन पूर्वतोऽसंख्येयगुणयोगजन्यत्वात्। ततो देवगतेर्नरकगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः; देशोनत्रिगुणः परस्परं तुल्यश्च, भावना तु तिरश्चीमार्गणावत् कार्या। ततो देवनरकायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः; आसन्नपड्विंशतिगुणः, समयप्रबद्धसत्कासन्नाष्टमभागस्याऽऽयुषि लाभात्। अत्रापि भावना तिरश्चीमार्गणावत् कार्या। तत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, असंज्ञिपर्याप्तजघन्ययोगस्थानतः संज्ञिपर्याप्तसत्कजघन्ययोगस्थानस्यासंख्येयगुणत्वात्। भावना त्वोघवत्कार्या, पदद्वयेऽपि जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामोघवल्लाभात् ॥४७५-४७६॥

अथापगतवेदे जघन्यप्रदेशबन्धस्य परस्थानाल्पबहुत्वं निरूपयिषुराह

केवलणाणावरणा गयवेए होइ लहुपएसस्स ।
जा वीरियंतरायं जेट्ठपएसत्थ अप्पबहू ॥४७७॥
तत्तो विसेसअहियो मणणाणावरणआइगाण कमा ।
णेयो ताओ कमसो अंतिमसयकोहमायलोहाणं ॥४७८॥ (गीतिः)
ताओ कमोहिअणयणणयणाण भवे तओ जसुच्चाणं ।
संखेज्जगुणो तत्तो विसेसअहियोऽत्थि सायस्स ॥४७९॥

(प्रे०) "गयवेए" इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां केवलज्ञानावरणस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततो दानान्तरायस्यानन्तगुणः पूर्वपदद्वये समयप्रबद्धस्यानन्ततमभागः प्राप्यते; प्रस्तुते तु समयप्रबद्धस्य पञ्चत्रिंशत्तमांशमितानि दलिकानि लभ्यन्त इति। ततो लाभान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो भोगान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततः परिभोगान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाधिकः, पदचतुष्के प्रकृतिविशेषादसंख्येयभागेन विशेषाधिकत्वमिति। ततो वीर्यान्तरायतो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः; समयप्रबद्धस्यासन्नाष्टाविंशतितमांशप्रमाणत्वात्, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकस्ततः श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, पदत्रये विशेषाधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद्विज्ञेयमिति। ततः संज्वलनमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः,

अत्रापि समयप्रबद्धस्यासन्नाद्याविंशतितमांशप्रमाणत्वेऽपि मूलप्रकृतौ ज्ञानावरणतो मोहनीयदलिकानामधिकत्वादत्राधिकत्वमिति । ततः संज्वलनक्रोधस्य विशेषाधिकः, ततः संज्वलनमायाया विशेषाधिकः, ततः संज्वलनलोभस्य विशेषाधिकः, अत्र पदत्रये प्रकृतिविशेषाद्विशेषाधिकत्वमिति । ततोऽवधिदर्शनावरणस्य विशेषाधिकः संख्यातभागेन; समयप्रबद्धस्यैकविंशतितमभागप्रमाणत्वात्, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततो यशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रयोर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुणः, समयप्रबद्धस्यासन्नसप्तमभागप्रमाणत्वात्, परस्परं तुल्यश्च भवति, नामगोत्रयोस्तुल्यप्रदेशबन्धस्य लाभात् । ततः सातवेदनीयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः; प्रकृतिविशेषादिति । तदेव वेदमार्गणासु प्रस्तुताल्पबहुत्वं दर्शितम् । कषायमार्गणाचतुष्के तु ओघवदतिदेशेन दर्शितम् ॥४७७-४७९॥

अथ ज्ञानादिमार्गणाभेदेषु तन्निरूपयन्नाह

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मत्ते खइअवेअगेसु च ।
कम्मं जाऽप्पाबहुगं अणुत्तरसुरव्व विण्णेयं ॥४८०॥
तत्तो विसेसअहियो विउव्वस्स भवे तओ णरगईए ।
संखगुणो ताउ भवे जसअजसाणं विसेसहियो ॥४८१॥
ताउ सुरगईअ तओ संखेज्जगुणो हवेज्ज कुच्छाए ।
ताओ अणुत्तरव्व उ णेयो जा वेअणीयदुगं ॥४८२॥
ताउ असंखेज्जगुणो आहारसरीरणामकम्मस्स ।
तत्तो संखेज्जगुणो दोण्हं आऊण विण्णेयो ॥४८३॥

(प्रे०) "णाणतिगे" इत्यादि, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानावधिदर्शनसम्यक्त्वौघ-क्षायिकसम्यक्त्व-क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणासु सप्तसु देवत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकानि विहाय शेषाणां द्वासप्ततेर्जघन्यप्रदेशबन्धस्यानुत्तरदेवानां भावेन तद्वदतिदेशः, केवलं मध्ये यथास्थाने वैक्रियशरीरस्य देवगतेराहारकशरीरस्य देवायुषश्चाल्पबहुत्वं दर्शितम्, शेषाणां त्रयाणां तथाऽनुत्तरमार्गणायामप्यनुक्तानां पञ्चेन्द्रियजात्यादीनां प्रस्तुताल्पबहुत्वं बन्धस्थानानुसारेण यथास्थानं भावनीयमिति ।

अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—अप्रत्याख्यानावरणमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, ततः क्रोधस्य विशेषाधिकः, ततो मायाया विशेषाधिकः, ततो लोभस्य विशेषाधिकः, ततः

प्रत्याख्यानावरणमानस्य विशेषाधिकः, ततः क्रोधस्य ततो मायायाः ततो लोभस्य ततः केवलज्ञानावरणस्य ततो निद्रायाः ततः प्रचलायाः, ततः केवलदर्शनावरणस्य क्रमेण जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिको विशेषाधिको भवति, तत औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणस्ततस्तैजसस्य, ततः कार्मणस्य विशेषाधिकः, एतावत्पर्यन्तमनुत्तरदेववत् प्रस्तुताल्पबहुत्वम् , ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, कार्मणशरीरे जघन्ययोगगृहीतसमयप्रबद्धासन्नाष्टाशीत्युत्तरपञ्चशततमभागप्रमाणत्वात् , वैक्रियशरीरे तु सप्तषष्ट्युत्तरपञ्चशततमभागासन्नत्वात् । ततो मनुष्यगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुणः, समयप्रबद्धार नपण्णवत्युत्तरशततमभागप्रमाणत्वात् , ततो यशःकीर्तेरयशःकीर्तेश्च जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्चैतत् पदद्वयमनुत्तरसुरवद् भवति । ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, समयप्रबद्धस्यैकोननवत्युत्तरशततमभागप्रमाणत्वात् ।

इत ऊर्ध्वं वेदनीयद्वयं यावत्प्रस्तुताल्पबहुत्वमनुत्तरसुरमार्गणावद् भवति, तद्यथा—ततो देवगतितो जुगुप्सायाः संख्येयगुणः, साधिकसार्धद्विगुण इत्यर्थः समयप्रबद्धसत्कासन्नसप्ततितमभागप्रमाणत्वात् । ततो भयस्य, ततो हास्यशोकयोः, ततो रत्यरत्योः, ततः पुरुषवेदस्य, ततः संज्वलनमानस्य, ततः क्रोधस्य, ततो मायायाः, ततो लोभस्य, ततो दानान्तरायस्य, ततो लाभान्तरायस्य, ततो भोगान्तरायस्य, ततः परिभोगान्तरायस्य, ततो वीर्यान्तरायस्य, ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य, ततः श्रुतज्ञानावरणस्य, ततो मतिज्ञानावरणस्य, ततोऽवधिदर्शनावरणस्य, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य जघन्यप्रदेशबन्धः क्रमेण विशेषाधिको विशेषाधिको भवति । इह यत्र प्रकृतिविशेषेण विशेषाधिकत्वं तत्रासंख्येयभागेनाधिकत्वम् । यत्र पुनरुत्तरप्रकृतीनामल्पत्वेन भाजकराशेरल्पत्वाद् विशेषाधिकत्वं तत्र संख्यातभागेनाधिकत्वं विज्ञेयमिति । तत उच्चैर्गोत्रस्य संख्येयगुणः देशोनत्रिगुणः, ततो वेदनीयद्वयस्य विशेषाधिकः, ततः आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणो भवप्रथमसमयगतजघन्ययोगस्थानतः संज्ञिपर्याप्तसत्कपरावर्तमानजघन्ययोगस्यासंख्येयगुणत्वात् । ततो देवमनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्च, पूर्वपदेन सह तुल्यैकयोगस्थानजत्वेऽपि तत्र समयप्रबद्धसत्काष्टमभागस्य नामि लब्धस्य नानाविभागसंभवेऽपि आयुषि लब्धभागस्य तु सर्वस्याऽपि बध्यमानायुषि लाभात् संख्यातगुणत्वमासन्नाष्टोत्तरशतगुणत्वं विभावनीयं सूक्ष्मगणितानुसारेणेति ॥४८०-४८३॥

अथ मनःपर्यवज्ञानादिमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धस्य परस्थानाल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

मणणाणसंजमेसुं समइअछेएसु परिहारे ।
आहारदुगव्व णवरि विउवा कमसो विसेसहियो ॥४८४॥ (उपगीतिः)

आहारतेअकम्माण ....

(प्रे०) "मणे"त्यादि, मनःपर्यवज्ञान-संयमौघ-सामायिक-च्छेदोपस्थापनीय परिहारविशुद्ध-मार्गणासु पञ्चस्वसातादीन् विहाय बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धो मूलाष्टप्रकृतिबन्धकस्य भवति, अतः षष्ठसप्तमगुणस्थानयोरेवासां यथासंभवं जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावादाहारककाययोग-मार्गणावत् सर्वमप्यल्पबहुत्वं भवति, केवलं तत्राहारकशरीरं न बध्यते प्रस्तुते तु तद्बध्यते। अतो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धं केवलदर्शनावरणतोऽनन्तगुणं निरूप्य तत आहारकशरीरस्य जघन्य-प्रदेशबन्धो विशेषाधिको वक्तव्यस्ततस्तु तैजसशरीरस्य विशेषाधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाधिको जघन्यप्रदेशबन्धो भवति। चतुर्णां शरीरनाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामेकरूपत्वेन युगपदेव जघन्यप्रदेशबन्धलाभात् विशेषाधिकत्वं प्रकृतिविशेषाद्विज्ञेयमिति । शेषाल्पबहुत्वं त्वाहारककाय-योगवद् विज्ञेयमिति ॥४८४॥

अथ मत्यज्ञानादिमार्गणासु जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वमतिदेशेन निरूपय-न्नाह

..................ऽणाणदुगअभविमिच्छअमणेसु ।

णपुमव्वऽप्पाबहुगं परमाहारगतणू णत्थि ॥४८५॥

(प्रे०) "ऽणाणदुगे"त्यादि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानाभव्यमिथ्यात्वासंज्ञिरूपासु पञ्चमार्गणा-स्वाहारकशरीरस्य बन्धाभावात् तद्विहाय शेषाणां त्रिषष्टिप्रकृतीनामल्पबहुत्वं नपुंसकवेदमार्ग-णावद्भवति, उभयत्र जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वात् । अत्र मार्गणापञ्चके नपुंसकवेदमार्ग-णायां च देवगतिं वैक्रियशरीरं च विहाय शेषाणां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामोघवद्भावेन तासा-मल्पबहुत्वमोघवत्प्राप्यते, तथाऽपि देवगतिवैक्रियशरीरयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनामोघतो भिन्नत्वान्नपुंसकवेदमार्गणया सह तयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यैकरूपत्वाच्चौघवदित्यतिदेशं विमुच्य नपुंसकवेदवद्दर्शितमिति ॥४८५॥

अथ विभङ्गज्ञानमार्गणायां तन्निरूपयन्नाह

ओघव्व विभंगे जा विउवं ताउ सुरणारगगईणं ।
संखेज्जगुणो तत्तो चउण्ह आऊण विण्णेयो ॥४८६॥
अण्णे उ बिंति कम्मं जा ओघव्व य तओ विसेसहियो ।
विउवस्स तओ संखियगुणा तिरिगईअ तो विसेसहियो ॥४८७॥(गीतिः)
जसअजसाण तओ णरगईअ ताउ सुरणारगगईणं ।
तत्तो संखेज्जगुणो कुच्छाअ मणव्व तेण परं ॥४८८॥

(प्रे०) "विभंगे" इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावत् षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य देवनारकाणां भवप्रथमसमये भावेन तासामल्पबहुत्वमोघवद्भवति, भावनाऽपि यथासंभवं तद्वत्कार्येति । सातासातवेदनीयद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धतो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, पर्याप्तमनुष्यतिरश्चां वैक्रियशरीरादीनां जघन्यप्रदेशबन्धलाभात् , भवप्रथमसमयगतयोगतस्तेषां योगस्यासंख्येयगुणत्वाद्वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणो भवति, ततो देवगतेर्नरकगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुणः परस्परं तुल्यश्च, जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां वैक्रियशरीरेण सह तुल्यत्वे सति शरीरनामावान्तरप्रकृतिवद् गतिनाम्नि द्वयाद्यवान्तरप्रकृतिबन्धाभावात् । ततश्चतुर्णामायुषां जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्च, आयुःसत्कसर्वभागस्य लाभाज्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तुल्यत्वाच्च । उक्तशेषाणां तु पञ्चेन्द्रियजात्यादीनां स्वामित्वादिकं परिभाव्याल्पबहुत्वं प्ररूपणीयमिति ।

अथ मतान्तरेण महाबन्धकाराभिप्रायेण प्रस्तुतं दर्शयति—"अण्णे" इत्यादि, तेषां मतेऽपर्याप्तावस्थायां विभङ्गज्ञानस्याभावात् करणपर्याप्तस्याष्टविधबन्धकस्य सर्वप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, अतस्तदपेक्षयैतदल्पबहुत्वं भावनीयमिति । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—अप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य केवलदर्शनावरणं यावद् विंशतिसर्वघातिप्रकृतीनां प्रस्तुताल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम्। ततः केवलदर्शनावरणात औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणः, ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाधिकः, भावना तु यथासम्भवमोघानुसारेण कार्या । ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः संख्यातभागेन विशेषाधिकः, नाम्नोऽष्टाविंशतिबन्धे तज्जघन्यप्रदेशबन्धभावात् । ततस्तिर्यग्गतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुणः । ततो यशःकीर्तेरयशःकीर्तेश्च जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकस्तुल्यबन्धस्थाने तयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्य जायमानत्वात् । ततो मनुष्यगतेर्विशेषाधिकः, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य जायमानत्वात् । ततो देवगतेर्नरकगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः परस्परं तुल्यश्च, अष्टाविंशतिबन्धे तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य जायमानत्वात् । ततो जुगुप्साया जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः साधिकसार्धद्विगुणः । इतऊर्ध्वं शेषाल्पबहुत्वं मनोयोगमार्गणावद्विज्ञेयमिति । सामान्यतो विभङ्गज्ञानमार्गणायां प्रस्तुतमते मनोयोगमार्गणावदल्पबहुत्वं भवति, तथापि आहारकशरीरस्य बन्धाभावादौदारिकवैक्रियशरीरद्वयस्य मनुष्यगतेश्च विशेषस्वामित्वेन तासामल्पबहुत्वस्य मनोयोगमार्गणागताल्पबहुत्वतो विलक्षणत्वात् तत् पृथक् प्रदर्श्य शेषं जुगुप्सादीनां तद्वदतिदिष्टमिति ॥४८६-४८८॥

तदेवं ज्ञानमार्गणाभेदेषु निरूपितम् । संयममार्गणासत्केषु देशविरति-सूक्ष्मसंपरायमार्गणाद्वयं विहाय शेषमार्गणाभेदेषु प्रस्तुताल्पबहुत्वस्य निरूपितत्वाच्छेषयोर्देशविरतिसूक्ष्मसंपरायमार्गणयोः प्राह

देसे सव्वत्थोवो तइअस्स मयस्स होइ ताहिन्तो ।
कमसो विसेसअहियो विण्णेयो कोहमायलोहाणं ॥४८९॥ (गीतिः)

तत्तो केवलणाणस्साहारदुगव्व परमओ होइ ।
अप्पाबहुगं णेयं सुहमे जेट्ठप्पएसव्व ॥४९०॥

(प्रे०) "देसे" इत्यादि, देशविरतिमार्गणायां प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं विहाय शेषा बन्धप्रायोग्याः प्रकृतय आहारककाययोगमार्गणया समानाः, बन्धस्थानानि च समानानि, केवलं मोहनीयस्य प्रत्याख्यानावरणनन्वेन सह नव इति, अतः प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याल्पबहुत्वं दर्शयित्वा शेषमाहारककाययोगतन्मिश्रकाययोगवदतिदिष्टम् । प्रत्याख्यानावरणस्याल्पबहुत्वं तु शेषसर्वप्रकृतिभ्योऽल्पदलिकवत्त्वेन प्रारम्भे भवति, तद्यथा-प्रत्याख्यानावरणमानस्य जघन्यप्रदेशबन्धः सर्वस्तोकः, ततः क्रोधस्य विशेषाधिकः, ततो मायाया विशेषाधिकः, ततः लोभस्य विशेषाधिकः, ततः केवलज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः । इत ऊर्ध्वं शेषं सर्वमल्पबहुत्वं यथाऽऽहारककाययोगे जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वे दर्शितं भावितं च तथैव द्रष्टव्यं यथासंभवं भावनीयं चेति ।

सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां यथा सप्तदशानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धसत्कं परस्थानाल्पबहुत्वं भवति तथैव जघन्यपरस्थानाल्पबहुत्वमपि विज्ञेयम्, उभयत्र करणपर्याप्तावस्थाया मूलोत्तरबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां च समानत्वात्, अल्पबहुत्वं पुनरेवम् केवलज्ञानावरणस्य जघन्यप्रदेशबन्धः स्तोकः, ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततो दानान्तरायस्यानन्तगुणः, ततो लाभान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो भोगान्तरायस्य विशेषाधिकः, तत उपभोगान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाधिकः, ततो मनःपर्यवज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽवधिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततश्श्रुतज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततो मतिज्ञानावरणस्य विशेषाधिकः, ततोऽवधिदर्शनावरणस्य विशेषाऽधिकः, ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य विशेषाधिकः, ततो यशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्रयोर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुण इत्यर्थः, ततः सातवेदनीयस्य विशेषाधिक इति ॥४८९-४९०॥

तदेवं संयममार्गणाभेदेषु प्रस्तुताल्पबहुत्वं निरूपितम् । ततः क्रमप्राप्ता दर्शनमार्गणा, तस्या भेदत्रयेऽपि अन्यान्यमार्गणाभिस्सममल्पबहुत्वं प्रदर्शितम्, ततः क्रमप्राप्ताः लेश्यामार्गणा, तत्राशुभलेश्यात्रये तिर्यग्गत्योघादिभिस्समं प्रस्तुताल्पबहुत्वस्य निरूपितत्वात् तदनु क्रमप्राप्तासु शुभलेश्यासु तन्निरूपयिषुस्तेजःपद्मलेश्यामार्गणयोः प्राह

तेउपउमासु कम्मं जा ओघव्व उ तओ विसेसहियो ।
विउव्वस्स तओ णेयो संखगुणो तिरिणरगईणं ॥४९१॥
ताउ विसेसहियो जसअजसाणं ताउ सुरगईअ तओ ।
कुच्छाए संखगुणो एत्तो जोघव्व वेअणीअदुगं ॥४९२॥(गीतिः)
ताउ असंखेज्जगुणो आहारस्स य तओ तिआऊणं ।
संखगुणो सुक्काए एमेव परं ण तिरियगइआऊ ॥४९३॥ (गीतिः)

(प्रे०) "तेउ"इत्यादि, तेजोलेश्यायां पद्मलेश्यायां च देवत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकनामानि विहाय शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां चतुरुत्तरशतस्य तेजोलेश्यायामेकोत्तरशतस्य च पद्मलेश्यायां जघन्यप्रदेशबन्धस्य देवानां भावेन तेजोलेश्यायां तासां सौधर्मदेववत्पद्मलेश्यायां सनत्कुमारदेवमार्गणावत्प्रस्तुताल्पबहुत्वं विज्ञेयम् । एतदल्पबहुत्वमध्ये यत्र देवगतेर्देवायुषो वैक्रियशरीरस्याहारकशरीरस्य च जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपदानि तानि तत्र वाच्यानि । तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य विंशतिसर्वघातिप्रकृतीनामौदारिकतैजसकार्मणशरीरनाम्नां च त्रयोविंशतिपदानां प्रस्तुताल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम्, सौधर्मादिदेवेऽप्यासामल्पबहुत्वस्यौघवद्भावात्तद्वदतिदिष्टमिति । ततः कार्मणशरीरजघन्यप्रदेशबन्धतो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धः संख्यातभागेन विशेषाधिको भवति; औदारिकशरीरस्य त्रिंशद्बन्धस्थाने जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावादस्य त्वेकोनत्रिंशतीति । ततस्तिर्यग्गतेर्मनुष्यगतेश्च जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुणो भवति, पूर्वपदे तु शरीरनाम्ना लब्धभागस्य त्रयो विभागा भवन्ति, प्रस्तुते त्रिंशद्बन्धे गतिद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावेऽपि गतिनाम्ना लब्धदलिकानां न विभागान्तरं भवतीति कृत्वा देशोनत्रिगुणत्वम् । ततो यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योर्जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिको भवति, तिर्यग्मनुष्यगतिभ्यां सह तुल्यबन्धस्थाने एतयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावेन प्रकृतिविशेषाद्विशेषाधिकत्वमिति । एतत्पदद्वयसत्काल्पबहुत्वं सौधर्मादिदेवमार्गणावद्भवति । ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्यातभागेन विशेषाधिकः, एकोनत्रिंशद्बन्धस्थाने तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावात् । ततो जुगुप्साया जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः । सातिरेकसार्धद्विगुणः । इदमपि पदं सौधर्मादिदेववद्भवति । इत ऊर्ध्वं तु वेदनीयद्वयं यावत् सौधर्मादिदेवभेदेष्वपि प्रस्तुताल्पबहुत्वस्यौघवद्भावात् तेजःपद्मलेश्ययोरपि तासां तदोघवद् दर्शितमिति । ततः सातासातवेदनीयद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धत आहारकशरीरजघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, भवप्रथमसमयगतयोगतः करणपर्याप्तसत्कयोगस्यासंख्येयगुणत्वात् । ततस्तिर्यग्मनुष्यदेवायुषां जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्च, आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थाने त्रयाणामप्यायुषां

जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावेऽपि नाम्नि लब्धभागस्य नानाविभागभावात्, आयुषि विभागान्तराभावाच्च संख्यातगुणत्वम्। अत्र नरकगतेस्तदायुषश्च बन्धाभावेन क्वापष्टिप्रकृतीनां तद्दर्शितम्। शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामेतदनुसारेण स्वयं मार्गणीयमिति।

शुक्ललेश्यामार्गणायामपि प्रस्तुताल्पबहुत्वमेवमेव भावनीयम्, आनतादिदेवानामप्यासामल्पबहुत्वस्य सौधर्मदेवलोकगतस्काल्पबहुत्वेन तुल्यत्वात्। केवलं प्रस्तुतमार्गणायां तिर्यग्गतेस्तदायुषश्च बन्धाभावात् तयोरल्पबहुत्वं नास्तीति, भावना तु सौधर्मादिदेवानुसारेण यथासंभवं कार्येति। तदेवं लेश्यामार्गणायां प्रस्तुताल्पबहुत्वं दर्शितम् ॥४६१-४६३॥

भव्याभव्ययोः प्राक् सप्रसङ्गमतिदेशेन दर्शितम्। ततः सम्यक्त्वमार्गणाभेदेषु तद्दर्शनीयम्, तत्र सम्यक्त्वौघ-क्षायिक-क्षायोपशमिकसम्यक्त्व-मिथ्यात्वेषु प्रागेव तत्तन्मार्गणाभिः साकमतिदेशेनोक्तम्। अथ क्रमप्राप्तायामुपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सम्यग्मिथ्यात्वे च निरूपयति—

विण्णेयमुवसमे जा दुवेअणीअं अणुत्तरव्व तओ।
विउवतणुस्स असंखियगुणोऽत्थि तत्तो विसेसहियो ॥४९४॥
आहारतणुस्स तओ संखगुणो सुरगईअ विण्णेयो।
मीसे ओहिव्व णवरि णाहाराउदुगतित्थाणं ॥४९५॥

(प्रे०) "उवसमे" इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावदल्पबहुत्वमनुत्तरसुरमार्गणावद्विज्ञेयम्, प्रस्तुतमार्गणायां सम्यग्दृष्टिदेवानां भवप्रथमसमय एव जघन्यप्रदेशबन्धभावात्, भावनाऽपि तद्वदेव कार्येति। ततः सातासातवेदनीयद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धतो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, उपशमश्रेणितः कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नान् विहाय शेषाणामपर्याप्तावस्थायामुपशमसम्यक्त्वाभावाद्, वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो मनुष्यस्य संयमिन आहारकद्विकबन्धकस्य भवति, भवप्रथमसमयगतयोगतस्तद्गतयोगस्यासंख्येयगुणत्वादसंख्यगुणप्रदेशबन्धो भवतीति। तत आहारकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाधिकः, असंख्येयभागेन प्रकृतिविशेषात्। ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनचतुर्गुणः, अत्रायुषो बन्धाभावान्न तत्सत्काल्पबहुत्वं वक्तव्यमिति। उक्तशेषाणां नामप्रकृतीनामल्पबहुत्वं तु स्वामित्वाद्यनुसारेण स्वयं परिभावनीयमिति।

सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं सम्यक्त्वौघवद्भवति; तत्राहारकशरीरमायुर्द्वयं च विहाय शेषाणां सर्वासां भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धो भवति; प्रस्तुते तु करणपर्याप्तस्य तथाप्याहारकद्विकं जिननामायुर्द्वयं च विहाय जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिसत्कयोगस्थानस्य यथा तत्रैकत्वं तथाऽत्रापि अतोऽल्पबहुत्वमपि तत्तुल्यं भवति, भावना तु तदनुसारेण कार्येति ॥४९४-४९५॥

अथ सास्वादनमार्गणायां परस्थानजघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

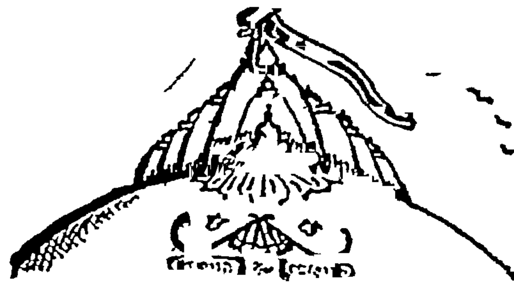
सासाणे उरलं जा जेट्ठपएसव्व तो विसेसहियो ।
तेअसकम्माण कमा तओ तिरिगईअ संखगुणो ॥४९६॥
ताउ विसेसहियो जसअजसाणं ताउ णरगईअ तओ ।
संखगुणो कुच्छाए तो चक्खुं जाव गुरुपएसव्व ॥४९७॥(गीतिः)
तत्तो संखेज्जगुणो विण्णेयो उच्चणीअगोआणं ।
ताओ विसेसअहियो सायेयरवेअणीआणं ॥४९८॥
ताउ असंखेज्जगुणो वेउव्वतणुस्स ताउ संखगुणो ।
देवगईए तत्तो तिण्हं आऊण णायव्वो ॥४९९॥

(प्रे०) "सासाणे" इत्यादि, सास्वादनमार्गणायामप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य वेदनीयद्वयं यावत् षट्पञ्चाशत्प्रकृतिभ्यो मिथ्यात्वनपुंसकवेदरूपं प्रकृतिद्वयं विहाय शेषाणां चतुष्पञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वमोघवद्भवति । ग्रन्थकृता तु ज्येष्ठप्रदेशवदतिदेशेन किञ्चित् सविशेषं वेदनीयद्वयं यावत्तद्दर्शितम् । तत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वस्य जघन्यप्रदेशबन्धाल्पबहुत्वस्य च नामप्रकृतीर्विहाय वेदनीयद्वयं यावत् प्रस्तुतमार्गणायां तुल्यत्वख्यापनार्थमिति । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—अप्रत्याख्यानावरणमानादारभ्य केवलदर्शनावरणं यावद् मिथ्यात्वं विहायैकोनविंशतिप्रकृतिसत्कैकोनविंशतिपदानां ज्येष्ठप्रदेशसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं सास्वादनमार्गणायां यथा दर्शितं तथा विज्ञेयम् । केवलदर्शनावरणत औदारिकशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽनन्तगुणो ज्येष्ठप्रदेशबन्धाल्पबहुत्ववदेवेति । ततस्तैजसशरीरस्य विशेषाधिकः, ततः कार्मणशरीरस्य विशेषाधिकः, त्रिशद्बन्धस्थान औदारिकादित्रयाणां जघन्यप्रदेशबन्धभावात्, ज्येष्ठपदे त्वौदारिकशरीरानन्तरं वैक्रियं निरूप्य ततस्तैजसकार्मणयोः प्रदर्शनम्, प्रस्तुते तु वैक्रियशरीरस्य प्रदेशाग्रं त्रिचरमपदे दर्शितमिति । कार्मणशरीरतस्तिर्यग्गतेः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः, ततो यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योर्विशेषाधिकः प्रकृतिविशेषात् ; ततो मनुष्यगतेर्विशेषाधिकः संख्यातभागेनाधिकस्ततो जुगुप्सायाः संख्येयगुणः साधिकसार्धद्विगुणः । इत ऊर्ध्वं भयादीनां चक्षुर्दर्शनपर्यन्तानां प्रस्तुताल्पबहुत्वं ज्येष्ठपदवद् वाच्यम् । ततश्चक्षुर्दर्शनावरणतो गोत्रद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः, देशोनत्रिगुणः । ज्येष्ठपदे तु चक्षुर्दर्शनानन्तरं त्रयाणामायुषां पदस्य तदनन्तरं च गोत्रद्वयसत्कपदस्य भावाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धवदनतिदेशः । अत्र वेदनीयद्वयं यावच्चतुष्पञ्चाशत्प्रकृतीनां भवप्रथमसमय एव जघन्यप्रदेशबन्धभावेनायुषस्तु सास्वादनमार्गणायां करणपर्याप्तानामेव बन्धभावेन च चरमपदे तासां त्रयाणामायुषां कथनस्योचितत्वात् ।

ततो गोत्रद्वयतो वेदनीयद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो विशेषाऽधिकस्ततो वैक्रियशरीरस्य जघन्यप्रदेशबन्धोऽसंख्येयगुणः, भवप्रथमसमयगतयोगतः करणपर्याप्तसत्कयोगस्यासंख्येयगुणत्वात् । ततो देवगतेर्जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणो देशोनत्रिगुणः, ततो देवमनुष्यतिर्यगायुषां जघन्यप्रदेशबन्धः संख्येयगुणः परस्परं तुल्यश्च, हेतुस्तु सुगमः । शेषाणां पञ्चेन्द्रियजात्यादीनां नाम्नां तु जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यबन्धस्थानानुसारेण गत्यादिक्रमानुसारेण च दलविभाजनद्वारमनुभाव्याल्पबहुत्वं स्वयं पूरणीयं सुगमं चेति । तदेवं सम्यक्त्वमार्गणाभेदेषु प्रस्तुतं निरूपितम् ।

संज्यसंज्ञिनोराहारकानाहारकयोश्च तत्तन्मार्गणाभिः समं जघन्यप्रदेशबन्धसत्कपरस्थानाल्पबहुत्वं निरूपितम् । तदेवं मार्गणास्तूत्तरप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य परस्थानाल्पबहुत्वं समाप्तम् ॥४९६-४९६॥

प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधाने उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे
प्रथमाधिकारे पञ्चदशेऽल्पबहुत्वद्वारे
प्रदेशबन्धसत्काल्पबहुत्व समाप्तम् ।



॥ अथ बन्धकाल्पबहुत्वम् ॥

अथ बन्धकानामल्पबहुत्वस्य निरूपणस्याऽवसरस्तत्राऽऽदौ ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽनुत्कृष्ट-प्रदेशबन्धस्य च बन्धकानामल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

जाणोहाएसेहिं अगुरुपएसस्स जत्तिअपमाणा ।
जेट्ठपएसा तत्तिअगुणाऽत्थि सिमगुरुपएसस्स ॥५००॥
णवरि असंखेज्जगुणा अमेसपयडीण बंधगा णेया ।
सव्वेसुं एगिंदियणिगोअभेएसु वणकाये ॥५०१॥

(प्रे०) "जाणो"त्यादि, ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यमेकं योगस्थानमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धप्रायोग्याण्यसंख्येयानि योगस्थानानि भवन्ति, ततो यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयास्तत्र तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्योऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणा भवन्ति, यथा–आहारकद्विकस्य । यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धका असंख्येयास्तत्र तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्योऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति । यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धका अनन्तास्तत्राऽपि यदि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येया असंख्येया वा तर्हि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्योऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अनन्तगुणा भवन्ति, यदि पुनर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अप्यनन्तास्तदा तु ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्योऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्तीति ।

अथ गाथार्थो भाव्यते–ओघत आदेशतश्च वक्ष्यमाणा एकेन्द्रियौघादिपञ्चदशमार्गणा विहाय शेषासु पञ्चपञ्चाशदुत्तरशतमार्गणासु यासां प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका यावत्प्रमाणा भवन्ति, संख्येया असंख्येया अनन्ता वा तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्योऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकास्तावद्गुणा भवन्ति । यत्र यासां प्रकृतीनां संख्येया असंख्येया अनन्ता वा जीवा बन्धकतया प्राप्यन्ते तत्रैव तासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकतया संख्येया असंख्येया अनन्ता वा जीवा प्राप्यन्त इति कृत्वा ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यः संख्येयादिगुणत्वं प्रकृतिबन्धकानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकानां च प्राप्यत इति । एकेन्द्रियादिमार्गणासु पुनरयं विशेषः–एकेन्द्रियसत्कसप्तभेदेषु निगोदसत्कसप्तभेदेषु वनस्पतिकायौघे चेति पञ्चदशमार्गणासु मनुष्यायुर्विहाय बन्धप्रायोग्याणामष्टोत्तरशतस्य बन्धकजीवा अनन्तास्तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अप्यनन्ता भवन्ति, अतस्तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकतोऽनुत्कृष्ट-प्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्तीति ।

एतदेव प्रकारान्तरेण दर्शयामः, तद्यथा-अत्र ग्रन्थे भागद्वारे यत्राऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येय-बहुभागास्तत्रोत्कृष्टप्रदेशबन्धकेभ्योऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, यत्राऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका

असंख्येयबहुभागमात्रास्तत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्योऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, यत्रा-नुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अनन्तबहुभागमात्रास्तत्रोत्कृष्टप्रदेशबन्धकेभ्योऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अनन्त-गुणा भवन्तीति भागद्वारेणाऽप्यस्याऽर्थस्य स्पष्टतयाऽवगमान्न पुनर्विविच्यते, इति उत्कृष्टानु-त्कृष्टप्रदेशबन्धकाल्पबहुत्वम् ॥५०० ५०१॥

अथ जघन्याऽजघन्यप्रदेशबन्धकानामल्पबहुत्वमेकगाथयौघादेशाभ्यां निरूपयन्नाह

जाणोहाएसेहिं अप्पबहुपएसस्स संखिया तेसिं ।
हस्सपएसा संखियगुणा असंखियगुणाऽण्णंमि ॥५०२॥

(प्रे०) "जाणे"त्यादि, जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यं योगस्थानमेकं भवति, अजघन्य-प्रदेशबन्धप्रायोग्याणि तु योगस्थानान्यसंख्येयानि भवन्ति, अत एव सामान्यतो जघन्यप्रदेश-बन्धकेभ्योऽजघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति, अत्र सर्वास्वनन्तजीवराशिकासु मार्ग-णासु यासां प्रकृतीनां बन्धका अनन्तास्तासामष्टोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका अप्यनन्ता अतस्तासां जघन्यप्रदेशबन्धकेभ्योऽजघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति । तथा तास्वेवा-ऽनन्तजीवराशिकासु मार्गणासु यथासंभवं वैक्रियद्विकादिषोडशप्रकृतिभ्यो यासां प्रकृतीनां बन्धका असंख्येयास्तासां जघन्यप्रदेशबन्धकेभ्योऽजघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः । एव-मेवाऽसंख्येयजीवराशिकासु मार्गणासु यासां बन्धकपरिमाणमसंख्येयं तत्राऽपि तासां जघन्याऽजघन्य-प्रदेशबन्धकसत्काऽल्पबहुत्वं तथैव भावनीयमिति । अनन्तजीवास्वसंख्यजीवयुक्तासु वा मार्गणासु यासां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयास्तत्र तासां जघन्याजघन्यप्रदेशबन्धका अपि संख्येया एव, तथा संख्यातजीवयुक्तासु मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणां सर्वासां बन्धकाः संख्येया एव, अत एतासु मार्ग-णासु यासां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येया भवन्ति तत्र च तासाम् जघन्यप्रदेशबन्धका अपि संख्याता एव ते च जघन्यप्रदेशबन्धकेभ्यः संख्येयगुणा भवन्तीति । गतं जघन्याऽजघन्यप्रदेशबन्धकाऽल्पबहु-त्वम् ॥५०२॥ अथोत्कृष्टप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धका अजघन्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाश्चेति पदत्रयम्, तेन समुदीतेन पदत्रयेणौघतो विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनां प्रत्येकमल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

णिरयदुगतिआऊण असंखगुणा बंधगा गुरुपएसा ।
हस्सपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५०३॥
देवविउव्वदुगाणं जेट्ठपएसस्स लहुपएसत्तो ।
हुन्ति असंखेज्जगुणा तओ अगुरुलहुपएसस्स ॥५०४॥
णेया संखेज्जगुणा आहारदुगस्स लहुपएसत्तो ।
जेट्ठपएसस्स तओ हुन्ति अगुरुलहुपएसस्स ॥५०५॥

तित्थस्स संखियगुणा जेट्ठपएसस्स लहुपएसत्तो ।
ताउ असंखेज्जगुणा हुन्ति अगुरुलहुपएसस्स ॥५०६॥
सेसाण अणंतगुणा हस्सपएसस्स गुरुपएसत्तो ।
ताउ असंखेज्जगुणा अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५०७॥

(प्रे०) "णिरये"त्यादि, उत्कृष्टप्रदेशबन्धप्रायोग्यं जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यं च योगस्थानमेकैकं भवति, जघन्योत्कृष्टाभ्यामितरप्रदेशबन्धप्रायोग्ययोगस्थानान्यसंख्येयानि भवन्ति, अतः सर्वत्राऽजघन्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्यैव चरमपदं स्यात् । तथा यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येयास्तत्र तासां पदद्वयतश्चरमपदस्य संख्येयगुणत्वम्, यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धका असंख्येया अनन्ता वा तत्र तासां द्वितीयपदतो अजघन्यानुत्कृष्टलक्षणस्य चरमपदस्याऽसंख्येयगुणत्वमेव वाच्यम्, न पुनः कुत्रचिदपि द्वितीयपदतस्तस्याऽनन्तगुणत्वम्; यतोऽनन्तगुणत्वं तु तदा स्याद् यदा प्रकृतिबन्धका अनन्ता जघन्यप्रदेशबन्धकास्तु नाऽनन्ताः किन्त्वेवं कुत्रचिदपि नैव भवति, यतो यत्र यासां प्रकृतीनां बन्धका अनन्ताः, तत्र तासामऽनन्तजीवा जघन्यप्रदेशबन्धकतया सर्वदा प्राप्यन्ते । अजघन्यानुत्कृष्टलक्षणस्य चरमपदस्य द्वितीयपदतः संख्येयगुणत्वमसंख्येयगुणत्वं वेति मूले कथिते सति भावना तु कथितार्थपदेन भागद्वारप्ररूपणातश्च सर्वत्र कार्येत्यतोऽग्रे पदद्वयस्यैव विवरणं करिष्यत इति ।

ओघतो नरकद्विकस्य देवनरकायुषोश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धः संज्ञिनो भवति; जघन्यप्रदेशबन्धस्त्वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकस्य, संज्ञिपर्याप्ततिर्यग्भ्योऽसंज्ञिपर्याप्ततिरश्चां संख्येयगुणत्वेऽपि संज्ञिनां योगस्थानतोऽसंज्ञिसत्कयोगस्थानानामसंख्येयभागमात्रत्वेन प्रत्येकयोगस्थाने उत्कृष्टपदे संज्ञिषु यावन्तो जीवाः प्राप्यन्ते; ततोऽसंज्ञिष्वसंख्येयगुणा जीवाः प्राप्यन्ते, अत उक्तप्रकृतिचतुष्कस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति, ततः शेषा असंख्येयगुणाः ।

एवं मनुष्यायुषोऽपि, केवलं तस्य जघन्यप्रदेशबन्धकतया सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तजीवानाश्रित्य भावना कार्या, अत्र बन्धार्हजीवानामानन्त्येऽप्युक्तप्रकृतेर्बन्धकानामेव श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणत्वान्नाऽनन्तगुणत्वमिति ।

देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, सम्यग्दृष्टिमनुष्याणां भवप्रथमसमये देवप्रायोग्यमेकोनत्रिंशतं बध्नतामेव तल्लाभेनोत्कृष्टपदेऽपि तेषां संख्यातत्वात्, ततस्तयोरुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, असंख्येयानां तिरश्चां तयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकत्वेन लाभात्, ततः शेषा असंख्येयगुणाः ।

आहारकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, जिननामदेवायुषोर्बन्धसहितत्वात्, तत उत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, जिननामदेवायुषोरबन्धकानां तल्लाभात् । ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः, आहारकद्विकप्रकृतिबन्धकानामेव संख्येयत्वात् ।

जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, पर्याप्तमनुष्येभ्य उद्धृत्य भवप्रथमसमयस्थितानां कासाञ्चिद्देवानां नैरयिकाणां च तज्जघन्यप्रदेशबन्धभावात्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, पर्याप्तमनुष्याणामेव तद्भावेन नाऽसंख्येयगुणत्वम् तत्प्रायोग्यजीवानामपि संख्येयगुणत्वात् संख्येयगुणत्वमिति, ततस्तृतीयपदस्याऽसंख्येयगुणाः, देवनैरयिकेषु जिननामबन्धकानामसंख्येयानां सदैव लाभात् ।

शेषाणामष्टोत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, संज्ञिपर्याप्तानामेव तल्लाभात्, ततस्तासामष्टोत्तरशतस्य जघन्यप्रदेशबन्धका अनन्तगुणाः, सूक्ष्मनिगोदजीवानामपि भावात्, ततस्तृतीयपदस्याऽसंख्येयगुणा इति । तदेवमोघतो विंशत्युत्तरशतस्य पदत्रयसत्कबन्धकाऽल्पबहुत्वं निरूपितम् ॥५०३-५०७॥

अथ मार्गणासु निरूपयिषुरायुर्वर्जानां नरकौघादिमार्गणासु प्राह

णिरयपढमाइछणिरयदेवसहस्सारअंतविउवेसुं ।
छदरिसणावरणाणं बारकसायसगणोकसायाणं ॥५०८॥ (गीतिः)
होअन्ति बंधगाऽप्पा जेट्ठपएसस्स तो असंखगुणा ।
हस्सपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५०९॥
सेसाउगवज्जाणं जेट्ठपएसस्स लहुपएसत्तो ।
हुन्ति असंखेज्जगुणा तओ अगुरुलहुपएसस्स ॥५१०॥

(प्रे०) "णिरये"त्यादि, नरकौघ-प्रथमादिनरकभेदषट्क-देवौघ भवनपति--व्यन्तर-ज्योतिष्कदेव-सौधर्मादिसहस्रारान्ताऽष्टवैमानिकदेवभेदवैक्रियकाययोगमार्गणासु विंशतौ दर्शनावरणचतुष्कं निद्राद्विकमाऽऽद्यवर्जद्वादशकषाया हास्यषट्कं पुरुषवेदं चेति पञ्चविंशतिः प्रकृतयः, तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः सम्यग्दृशामेव तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धभावात्, तत आसां पञ्चविंशतेरेव जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, यथासंभवमसंख्येयश्रेणिप्रमाणानां श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणानां वा जीवानां भवप्रथमसमये वैक्रियकाययोगे शरीरपर्याप्तिनिष्ठापनसमये च लाभेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धयोग्यजीवेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धयोग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वात्, उत्कृष्टपदे ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति । ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति ।

उक्तशेषप्रकृतीनां देवौघभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानमार्गणाषट्के वैक्रियकाययोगे च सप्तसप्ततिप्रकृतीनां, नरकौघाऽऽद्यनरकत्रयसनत्कुमारादिसहस्रारान्तषड्देवभेदेषु दशसु मार्गणासु चतुस्सप्ततिप्रकृतीनां, चतुर्थादिनरकमार्गणात्रये जिननाम्नो बन्धाऽभावेन त्रिसप्ततिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, भवप्रथमसमय आसां जघन्यप्रदेशबन्धस्य प्रायोग्यत्वात् । जिननाम्नः पुनर्द्वितीयतृतीयनरकभेदद्वय आयुर्बन्धकाले जघन्यप्रदेशबन्धलाभेन संख्येयानामेव लाभात् स्तोकाः । ततस्तासामुक्तशेषाणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, पर्याप्ताऽवस्थायां तल्लाभेन भवप्रथमसमयगतजीवेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वात्, द्वितीयतृतीयनरकमार्गणाद्वये जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य सप्तमूलप्रकृतिबन्धकानामेव लाभेनाऽसंख्येयानां लाभाद् भवत्यसंख्येयगुणत्वं जघन्यप्रदेशबन्धकतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानाम् । तृतीयपदे पुनरसंख्येयगुणत्वं सुगममिति । शेषप्रकृतयः पुनर्नामत इमाः-ज्ञानावरणपञ्चकं स्त्यानर्द्धित्रिकमनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्रीवेदनपुंसकवेदमिथ्यात्वानि साताऽसातवेदनीयद्वयमुच्चैर्नीचैर्गोत्रद्वयं मनुष्यद्विकतिर्यग्द्विकपञ्चेन्द्रियजातिनामौदारिकद्विकतैजसकार्मणशरीरसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्वयवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कोद्योतनामनिर्माणनामत्रसदशकाऽस्थिरषट्कनामान्यन्तरायपञ्चकं चेति त्रिसप्ततिः, एता एव जिननामसहिताश्चतुःसप्ततिः, एता एव जिननामैकेन्द्रियस्थावराऽऽतपनाममियुताः सप्तसप्ततिरिति ॥५०८-५१०॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायां प्राह

णिरयव्व तमतमाए सव्वेसिं णवरि णरदुगुच्चाण ।
हुन्ति लहुपएसस्स असंखगुणा गुरुपएसत्तो ॥५११॥

(प्रे०) "णिरयव्वे"त्यादि, सप्तमनरकमार्गणायां मनुष्यद्विकमुच्चैर्गोत्रं च विहाय शेषाणां पञ्चनवतिप्रकृतीनां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं नरकौघवद् भवति, भावनाऽपि यथासंभवं तद्वत्कार्येति । मनुष्यद्विकस्योच्चैर्गोत्रस्य च प्रस्तुते तृतीयचतुर्थगुणस्थान एव बन्धो भवति, अत उक्तप्रकृतित्रयस्य जघन्यप्रदेशबन्धो ज्येष्ठप्रदेशबन्धश्च करणपर्याप्तकानां मूलसप्तप्रकृतिबन्धकानां नाम्न एकोनत्रिंशद्बन्धकानां भवति, अतो योगस्थानेषु जीवानां द्विगुणवृद्धिहान्योर्यवमध्यस्य च स्थापने यवमध्याऽधस्तनद्विगुणवृद्धिहानित उपरितनद्विगुणवृद्धिहानीनामसंख्येयानामधिकत्वेनोत्कृष्टयोगस्थानतो जघन्ययोगस्थानेऽसंख्येयगुणा जीवा भवन्ति । अतोऽत्रोक्तप्रकृतित्रयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्तीति, योगस्थानेषु जीवानां यवमध्यादिप्ररूपणा वृद्धिहानिप्ररूपणा च मूलप्रकृतिप्रदेशबन्धे **मुनिश्रीराजशेखरविजयै**र्विवेचितेति ततोऽवधार्येति, सामान्यतः पुनरिदमवधेयम्-यत्र यासां जघन्य॰

प्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य च स्वामिनोऽसंख्येयत्वे सति संज्ञिपर्याप्तत्वादिजीवभेदाऽपेक्षया करणपर्याप्तत्वाद्यवस्थाऽपेक्षया मूलप्रकृतिबन्धकाऽपेक्षया यथासंभवमुत्तरप्रकृत्यपेक्षया गुणस्थानमपेक्ष्य च तुल्यप्राया भवन्ति; तत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति, योगस्थानेषु जीवयवमध्यत उपरिवर्तिद्विगुणवृद्धिहानिसंख्यातस्तदधस्तनवर्तिद्विगुणवृद्धिहानीनामसंख्यभागन्यूनत्वादिति । अत्र तृतीयपदस्याऽसंख्येयगुणत्वं तु सुगममिति ॥५११॥

अथ यासु तिर्यग्गत्योघादिमार्गणासु स्वप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघवद्भवति तासु तथैवाऽतिदेशेन दर्शयन्नाह

तिरिकायचउकसायअविरयाचक्खूसु काउभवियेसुं ।
आहारे अप्पबहू सप्पाउग्गाण ओघव्व ॥५१२॥

(प्रे०) "तिरि" इत्यादि, तिर्यग्गत्योघ-काययोगौघ-कषायचतुष्का-ऽसंयमा-ऽचक्षुर्दर्शन-कापोतलेश्या-भव्या-ऽऽहारकमार्गणास्वेकादशसु बन्धप्रायोग्याणां प्रत्येकं पदत्रयस्या ऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति । तिर्यग्गत्योघं विहाय शेषासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां तथा ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनामोघोक्तानां लाभाद् मार्गणासु जीवानामानन्त्याच्च । भावना त्वोघानुसारेण यथासंभवं कार्येति । तिर्यग्गत्योघेऽप्योघवदेव, केवलं देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां भिन्नत्वेन भावनायां यो विशेषः स स्वयं परिभावनीयः ॥५१२॥

अथ पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघे प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

दुपणिंदियतिरियेसुं सुरविउवदुगाण लहुपएसत्तो ।
कमसो असंखियगुणा जेट्ठअगुरुलहुपएसाणं ॥५१३॥
सेसाण बंधगाऽप्पा जेट्ठपएसस्स तो असंखगुणा ।
हस्सपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसाणं ॥५१४॥

(प्रे०) "दुपणिंदिय" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघे पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायाञ्च देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, भवप्रथमसमयस्थसम्यग्दृष्टीनां तल्लाभेन संख्येयत्वादिति । ततस्तयोर्ज्येष्ठप्रदेशस्य बन्धका असंख्येयगुणाः, संज्ञिपर्याप्ततिरश्चामसंख्येयानां तद्बन्धकत्वात् । ततस्तृतीयपदेऽसंख्येयगुणाः, भावना त्वोघवत्कार्येति ।

शेषाणामायुर्वर्जानां नवोत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, संज्ञिपर्याप्तानां तद्बन्धकत्वात् । ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, अत्र नरकद्विकस्य भावनौघवत्कार्या । शेषाणां

सप्तोत्तरशतस्य लब्ध्यपर्याप्तानामसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावेऽपि संज्ञिपर्याप्ततिर्यग्भ्योऽसंज्ञ्यपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिरश्चामसंख्येयगुणत्वेन जघन्यप्रदेशबन्धकजीवानाम-मंख्येयगुणत्वस्य भावात् । उत्कृष्टपदाऽपेक्षयैतत् , उत्कृष्टपदापेक्षां विहाय उभयपदद्वये जीवानाम-भावोऽपि स्यात् , एकादिजीवलाभाद् वा नोक्ताल्पबहुत्वं संगच्छेत् । अत एककाले भिन्नकाले वा स्थानद्वये उत्कृष्टपदे जीवा भवन्ति तानधिकृत्य निरूक्ताल्पबहुत्वं विज्ञेयमिति । ततस्तृतीयपदे-ऽसंख्येयगुणत्वं विज्ञेयमिति । पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायां पुनश्शेषप्रकृतीनां भावनौघोक्त-नरकद्विकवद् योगस्थानागतजीवानवलम्ब्य यथासंभवं कार्या सुगमा चेति ।।५१३-५१४।।

अथ तिरश्चीमार्गणायां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं प्राह

सव्वाण तिरिञ्छीए थोवा अत्थि गुरुलहुपएसाणं ।
तत्तो असंखियगुणा हुन्ति अगुरुलहुपएसस्स ।।५१५।।

(प्रे०) "सव्वाणे"त्यादि, तिरश्चीमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां त्रयोदशोत्तर-शतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धका जघन्यप्रदेशबन्धकाश्च स्तोकाः, परस्परं विशेषस्तु स्वयं परिभाव-नीयः, यतः कार्मग्रन्थिकाऽभिप्रायेण तिरश्चीमार्गणायामसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां भावेऽपि संज्ञितिरश्ची-भ्योऽसंज्ञितिरश्चयः कियत्प्रमाणा अधिका हीना वेति निर्णेतुं न शक्यते, अतो ज्येष्ठजघन्यप्रदेश-बन्धकानामल्पबहुत्वं पृथग्निर्णेतुं नाऽस्माभिः शक्यमिति । अन्ये पुनः संज्ञितिरश्च्योऽसंख्येय-बहुभागप्रमाणाः, असंख्येकभागप्रमाणास्त्वसंज्ञितिरश्च्य इत्याहुः, तत्राऽपि युगलधार्मिकतिरश्चा-मसंख्येयबहुभागप्रमाणत्वं ते प्रतिपादयन्ति, तन्मतं श्रीप्रज्ञापनादिना सह विरोधभाक् , यतस्तत्र जलचरतिरश्च्य एव संख्येयबहुभागप्रमाणास्तासां स्थितेश्चोत्कृष्टतोऽपि पूर्वकोटेरुक्तत्वेन युगलधार्मिकत्वाऽभावात् न तन्मतं संगृहीतमिति । एवमाद्यपदद्वयं समुदितं निरूपितम् । तत-स्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः, असंख्येययोगस्थानगतजीवानां लाभादिति ।।५१५।।

अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणासु प्राहाऽल्पबहुत्वम्

असमत्तपणिंदितिरियएगिंदिणिगोअपंचकायेसु ।
बायरएगिंदियचउकायणिगोएसु पत्तेए ।।५१६।।
विगलअपज्जपणिंदियतसमीसेसुं कमा गुरुपएसा ।
सव्वाण असंखगुणा हस्सअगुरुलहुपएसाणं ।।५१७।।

(प्रे०) "असमत्त" इत्यादि, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगेकेन्द्रियौघ-निगोदौघ-पृथ्वीकायौघा-ऽप्कायौघ-तेजस्कायौघ-वायुकायौघ-वनस्पतिकायौघ-बादरैकेन्द्रियौघ-बादरपृथ्वीकायौघ-बादरा-प्कायौघ-बादरतेजस्कायौघ बादरवायुकायौघ-बादरनिगोदौघ-प्रत्येकवनस्पतिकायौघ-द्वीन्द्रियौघ-त्रीन्द्रियौघ-चतुरिन्द्रियौघा-ऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रिया-ऽपर्याप्तत्रसकायमार्गणासु सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणा-यां च बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जप्रकृतीनां सप्तोत्तरशतस्य, परं तेजस्कायवायुकायसत्कमार्गणाचतुष्के मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रवर्जानां चतुरुत्तरशतप्रकृतीनाम् , मिश्रे चतुस्सप्ततेर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, अपर्याप्तमार्गणात्रयवर्जशेषासु बादरकरणपर्याप्तानामासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात् , ततो जघ-न्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, लब्ध्यपर्याप्तानां भवप्रथमसमये तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावात् बादरपर्याप्तेभ्योऽपर्याप्तानामसंख्येयगुणत्वादसंख्येयगुणत्वं जघन्यप्रदेशबन्धकानामिति । तत-स्तृतीयपदस्याऽसंख्येयगुणत्वं सुगममिति ।

अपर्याप्तमार्गणात्रये ज्येष्ठप्रदेशबन्धका लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिनो भवन्ति, तेभ्यो यद्यपर्याप्ता-संज्ञिपञ्चेन्द्रिया असंख्येयगुणा भवन्ति, तर्हि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धका असं-ख्येयगुणा भवन्ति, यदि पुनरन्यथाऽल्पबहुत्वं तयोस्तर्हि तदनुसारेण यथासंभवं ज्येष्ठजघन्यपद-योरल्पबहुत्वं स्वयं परिभावनीयमिति । ततस्तृतीयपदे बन्धकानामसंख्येयगुणत्वं तु सुगममिति ।

सम्यग्मिथ्यात्वे तु स्वस्थानाऽपेक्षयैव भावना कार्या, तद्यथा मिश्रे नामवर्जानां बन्धप्रायोग्याणां ज्ञानावरणादिषट्कर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनामष्टात्रिंशतो देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्मनु-ष्यद्विकौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचानां च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, जीवगुणवृद्धिहानिषु यवमध्योपरिवर्तिद्विगुणहानितस्तदधस्तनद्विगुणवृद्धिहानि-स्थानानां पल्यासंख्यभागेन न्यूनत्वात् । शेषाणां पञ्चेन्द्रियजात्यादीनां सप्तविंशतेर्नामप्रकृतीनां चतुर्गतिषु बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, नाम्नोऽष्टाविंशतिस्थानबन्धकतया तिर्यग्मनुष्याणां भावेन तेषामेव तत्स्वामित्वात् । ततस्तासां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येय-गुणाः, प्रस्तुतमार्गणासु देवानामसंख्येयबहुभागप्रमाणत्वेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वात् , ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति । शेषाः सप्तविंशतिः प्रकृतयो नामत इमाः—पञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसुखगतितैजस-कार्मणशरीरवर्णचतुष्काऽगुरुलघुचतुष्कनिर्माणत्रसदशकाऽस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामानीति । ॥५१६-५१७॥

अथ मनुष्यौघे पदत्रयेण बन्धकानामल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

तित्थाहारदुगविउवछक्काण णरगि लहुपएसत्तो ।
हुन्ति कमा संखगुणा जेट्ठयगुरुलहुपएसाणं ॥५१८॥

सेसाण बंधगाऽप्पा जेट्ठपएसस्स तो असंखगुणा ।
हस्सपएसस्स तओ हुंति अगुरुलहुपएसाणं ॥५१९॥

(प्रे०) "नित्थे"त्यादि, मनुष्यौघमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, सम्यग्दृष्टीनां भवप्रथमसमय आसां जघन्यप्रदेशबन्धकत्वात्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, भवप्रथमसमयगतसम्यग्दृष्टिमनुष्येभ्यः पर्याप्तमनुष्याणां पर्याप्तसम्यग्दृष्टिमनुष्याणां च संख्येयगुणत्वेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यमनुष्याणां संख्येयगुणत्वात् । ततस्तृतीयपदे बन्धकाः संख्येयगुणाः, मनुष्येषु तत्प्रकृतिबन्धकानामेव संख्येयत्वात् । आहारकद्विकस्याऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, तद्यथा—आहारकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, जिननामदेवायुर्बन्धसहितत्वात्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, आयुर्बन्धविरहात्, ततस्तृतीयपदस्य संख्येयगुणाः, नानायोगस्थानगतानां लाभात् । नरकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, आयुर्बन्धसहितत्वात्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः; सप्तमूलप्रकृतिबन्धकानां तल्लाभात्, ततस्तृतीयपदे संख्येयगुणाः करणपर्याप्तमनुष्याणामेव तद्बन्धकत्वेन संख्येयत्वात् । शेषाणामायुर्वर्जानां सप्तोत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, पर्याप्तमनुष्येष्वेव तद्बन्धस्य लाभात्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां तद्बन्धकत्वात्, तेषां चाऽसंख्येयत्वात्, ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः, असंख्येययोगस्थानस्थितानां लाभात् ॥५१८-५१९॥

अथ पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणयोः प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

पज्जणरमणुसीसुं णावावरणाणिदुजुगलसायाणं ।
बारसकसायसगणोकसायजसउच्चविग्घाणं ॥ ५२० ॥
थोवाऽत्थि बंधगा खलु जेट्ठपएसस्स ताउ संखगुणा ।
हस्सपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५२१॥
सेसाण बंधगाऽप्पा हस्सपएसस्स ताउ संखगुणा ।
जेट्ठपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५२२॥

(प्रे०) "पज्जणरे"त्यादि, पर्याप्तमनुष्यमार्गणायां मानुषीमार्गणायां च जीवाः संख्येया एव भवन्ति, उक्तमार्गणाद्वये यासां प्रकृतीनां बन्धस्य सम्यग्दृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां च भावेऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य केवलं केषाञ्चित्सम्यग्दृष्टीनामेव सद्भावस्तासां ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्का-ऽन्तरायपञ्चक-सातवेदनीय-यशःकीर्तिनामो-च्चैर्गोत्र-सञ्ज्वलनचतुष्क पुरुषवेद-हास्यषट्क-

निद्राद्विकप्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपाणामष्टाविंशतिप्रकृतीनां ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, सम्यग्दृष्टिभ्यो मिथ्यादृष्टीनां संख्येयगुणत्वात्, तत्र केषाञ्चिद् भवप्रथमसमये तज्जघन्यप्रदेशबन्धसम्भवात् । ततस्तृतीयपदे संख्येयगुणा इति । उक्तशेषाणां स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कमिथ्यात्वस्त्रीवेदनपुंसक-वेदाऽसातवेदनीयनीचैर्गोत्राणां यशःकीर्तिनामवर्जानां नाम्नां षट्षष्टिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेश-बन्धकाः स्तोकाः, भवप्रथमसमये तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य संभवात्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, पर्याप्तमनुष्याणां श्रेणिविरहितानामपि तद्बन्धसंभवेन जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्य-जीवेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानां संख्येयगुणत्वात्, ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येय-गुणाः, अत्र वैक्रियषट्काऽऽहारकद्विकयोर्जिननाम्नश्च भावना मनुष्यौघमार्गणायां यथाऽनन्तरं कृता तथा यथासंभवं कार्येति ॥५२०-५२२॥

अपर्याप्तमनुष्यमार्गणायामानतादिष्वपराजितपर्यन्तमानसप्तदशदेवमार्गणासु च प्रान्ते "सेसासु" इत्यादिना बन्धप्रायोग्यायुर्वर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेश बन्धका असंख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्याऽसंख्येयगुणा इत्येवमल्पबहुत्वं दर्शयिष्यति, अतस्ता विमुच्य क्रमप्राप्तसर्वार्थसिद्धदेवे आहारकतन्मिश्रयोश्च प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

सव्वत्थ संखगुणा आहारदुगे य गुरुपएसस्स ।
सव्वाण लहुपएसा तओ अगुरुलहुपएसस्स ॥५२३॥
परमाहारगमीसे दोण्ह पयाण गुरुलहुपएसाणं ।
सव्वत्थोवाऽत्थि सयं परोप्परं पुण मुणेयव्वा ॥५२४॥

(प्रे०) "सव्वत्थे" इत्यादि, सर्वार्थसिद्धदेवमार्गणायामाहारककाययोगे तन्मिश्रे च जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, भवप्रथमसमये शरीरपर्याप्तिनिष्ठापनप्रथमसमये यथासम्भवं जघन्य-प्रदेशबन्धभावेन नियतैकयोगस्थानजन्यत्वात्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, करणपर्या-प्तानां तद्बन्धप्रायोग्यत्वेन जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानां संख्येय-गुणत्वात्, ततस्तृतीयपदे संख्येयगुणाः, मार्गणागतजीवानामेव संख्येयत्वात् । आहारकमिश्रे जघन्यप्रदेशबन्धकानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां च परस्परं तारतम्ये हेतुस्तु स्वयमागमानुसारेण भाव-नीयः, यतो जघन्यप्रदेशबन्ध आयुर्बन्धसापेक्षत्वं ज्येष्ठप्रदेशबन्धे चायुष्कस्याबन्धकत्वेऽप्युत्कृष्टा-द्धायाः सापेक्षत्वमिति उभयोरपि सामान्यतो दुर्लभत्वमिति । शेषं तु सुगमम् । बन्धप्रायोग्याः प्रकृतयस्तु सर्वार्थसिद्ध आयुर्वर्जा एकसप्ततिः, आहारकद्विक आयुर्वर्जा द्वाषष्टिरिति । तदेवं गति-मार्गणाभेदेषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं समाप्तम् ॥५२३-५२४॥

इन्द्रियमार्गणा-कायमार्गणा-सत्कभेदेभ्यः सूक्ष्मैकेन्द्रियभेदत्रये सूक्ष्मपृथ्वीकायभेदत्रये सूक्ष्माऽप्कायभेदत्रये सूक्ष्मतेजस्कायभेदत्रये सूक्ष्मवायुकायभेदत्रये सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायभेदत्रये पर्याप्ताऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियभेदद्वये पर्याप्ताऽपर्याप्तबादरपृथ्वीकाया-प्काय तेजस्कायवायुकाय-साधारणवनस्पतिकायभेदेषु दशसु पर्याप्ताऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायद्वय एवं द्वीन्द्रियभेदद्वये त्रीन्द्रियभेदद्वये चतुरिन्द्रियभेदद्वये चेति समुदितास्वष्टात्रिंशन्मार्गणासु **सेसासु'** इत्यादिना प्रान्ते प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं दर्शयिष्यते, अतस्ता विमुच्य तथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणया सहेन्द्रियमार्गणासत्कभेदषट्के कायमार्गणासत्कत्रयोदशभेदेषु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वस्य दर्शितत्वात् पञ्चेन्द्रियौघ-त्रसौघयोस्तत्पर्याप्तयोश्चेति । इन्द्रियकायमार्गणासत्कमार्गणाचतुष्के अल्पबहुत्वं वक्तव्यं तत्र मार्गणाद्वये दर्शयन्नाह

तित्थाहारदुगाणं पणिंदियतसेसु अत्थि ओघव्व ।
सेसाणऽप्पाबहुगं पणिंदितिरियव्व विण्णेयं ॥५२५॥

(प्रे०) "तित्थे"त्यादि, तीर्थकरनामाऽऽहारकद्विकरूपप्रकृतित्रयसत्कनिरुक्तपदत्रयस्याऽल्पबहुत्वमोघवद् विज्ञेयम्, तद्बन्धकानां सर्वेषां प्रस्तुतमार्गणासु प्रवेशात्, शेषाऽल्पबहुत्वस्य पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वद्भावेन तद्वदतिदेशः । उक्तप्रकृतित्रयस्य तत्र बन्धाऽभावात्पृथगतिदेशः । शेषाणां त्रयोदशोत्तरशतस्य पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणावत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं भवति । तत्र वैक्रियषट्कस्य भावनौघवत्कार्या । शेषाणां सप्तोत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य संज्ञिपर्याप्तानां यथासंभवं श्रेण्यादिगतानां लाभेनाऽल्पत्वात् । जघन्यप्रदेशबन्धस्य लब्ध्यपर्याप्तानां पञ्चेन्द्रियमार्गणायां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां त्रसकायमार्गणायां द्वीन्द्रियाणां भावेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धतो जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽसंख्येयगुणत्वस्यैव लाभेन तद्वदल्पबहुत्वं भवति । तृतीयपदस्याऽसंख्येयगुणत्वं तु सुगममिति ॥५२५॥

अथ पर्याप्तपञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह -

तित्थाहारदुगाणं पज्जपणिंदितसदुवयचक्खूसुं ।
ओघव्वऽण्णाण भवे असमत्तपणिंदितिरियव्व ॥५२६॥
णवरं पज्जपणिंदियतसचक्खूसुं हवेज्ज ओघव्व ।
वेउव्वियछक्कस्स दुवयेसु ओघणिरयदुगव्व ॥ ५२७ ॥

(प्रे०) "तित्थ" इत्यादि, पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-पर्याप्तत्रसकाय चक्षुर्दर्शनमार्गणात्रये तथा वचनयोगौघ-व्यवहारवचनयोगयोश्चैवं पञ्चसु मार्गणास्वाहारकद्विकजिननाम्नां बन्धकानां पदत्रय-

सत्काऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, तत्र मार्गणात्रय आहारकद्विकजिननामप्रकृतीनामोघे ये बन्धकास्ते सर्वे लभ्यन्ते, अतस्तत्राऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, तथा वचनयोगद्वये यद्यप्यपर्याप्ताऽवस्थाया अभावस्तथाऽप्युक्तमार्गणाद्वय आयुर्बन्धसहितानामेव जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धकत्वेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यः स्तोकत्वात्, अल्पबहुत्वमोघवत्प्राप्यत इति । आहारकद्विकस्य त्वत्र वचनयोगद्वये ओघोक्तानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां च लाभादोघवदल्पबहुत्वं प्राप्यत इति ।

शेषाणां त्रयोदशोत्तरशतप्रकृतीनां तु यथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायां पदत्रयसत्कप्रदेशबन्धकानामल्पबहुत्वं प्राप्यते, तथा प्रस्तुतमार्गणापञ्चकेऽप्यल्पबहुत्वं विज्ञेयम् । शेषाः प्रकृतयोऽत्र सप्तोत्तरशतरूपा ग्राह्याः, अतिदिष्टमार्गणायां तदतिरिक्तानां बन्धाऽभावात् । अत एव च द्वितीयगाथया मार्गणापञ्चके वैक्रियषट्कस्य विशेषेणाल्पबहुत्वं दर्शितम् । शेषप्रकृतयो नामतः सुगमाः । निरुक्तमार्गणापञ्चके सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानां संख्येयगुणत्वेऽप्युत्कृष्टयोगस्थानयोग्यजीवेषु यावतां योगस्थानानां संभवस्तेभ्यो जघन्ययोगस्थानयोग्यजीवेष्वसंख्येयभागप्रमितानामेव योगस्थानानां संभवाज्ज्येष्ठयोगस्थानगतजीवेभ्यो जघन्ययोगस्थानगतजीवा असंख्येयगुणा भवन्ति ततोऽल्पबहुत्वमेवं प्राप्यते—ज्येष्ठप्रदेशबन्धका जीवाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदबन्धका असंख्येयगुणा इति ।

उक्तमार्गणापञ्चकात् पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-पर्याप्तत्रसकायचक्षुर्दर्शनमार्गणात्रये देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदे बन्धका असंख्येयगुणाः ।

नरकद्विकस्य पुनरुक्तमार्गणात्रये ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः, मार्गणात्रयेऽपि वैक्रियषट्कस्याऽल्पबहुत्वस्यौघवद् भावाद् भावनाऽप्योघवद्विधेया, ओघोक्तबन्धकानां सर्वेषामत्र बन्धकतया लाभात् । वचनयोगद्वये वैक्रियषट्कस्याऽल्पबहुत्वमेवम्-ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदबन्धका असंख्येयगुणा इति ॥५२६-५२७॥

अथ मनोयोगेषु वचोयोगेषु च बन्धकाऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

तित्थाहारदुगाणं पणमणतिवयेसु अत्थि ओघव्व ।
जाण ण मिच्छो सामी सेसाणं सिमडतीसाए ॥५२८॥
होअन्ति बंधगाऽप्पा जेट्ठपएसस्स तो असंखगुणा ।

हस्सपएसस्स तओ हुन्ति अगुरुलहुपएसस्स ॥५२९॥
सेसाण बंधगाऽप्पा हस्सपएसस्स तो असंखगुणा ।
जेट्ठपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५३०॥

(प्रे०) "तित्थे"त्यादि, मनोयोगौघे सत्यादितदुत्तरभेदचतुष्के सत्या-ऽसत्य-सत्यासत्य-वचनयोगत्रये चेत्यष्टमार्गणास्वाहारकद्विकजिननामरूपप्रकृतित्रयस्याऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, तद्यथा—जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, आयुर्बन्धसहितत्वात् , ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, आयुर्बन्धविरहात् , ततस्तृतीयपदे वन्धका असंख्येयगुणाः, देवनैरयिकाणामपि तद्बन्धकत्वेनाऽसंख्येयानां लाभात् , पूर्वोक्तपदद्वये तु संख्येयबन्धकानां लाभात् । आहारकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः, भावना त्वोघवत्कार्येति ।

"जाणे"त्यादि, अत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्येति गम्यते, यासां प्रकृतीनां चतुर्थादिगुणस्थानेष्वेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति, तासां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कनिद्राद्विकाऽप्रत्याख्यानावरणादिद्वादशकषायहास्यषट्कपुरुषवेदसातवेदनीययशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्राऽन्तरायपञ्चकरूपाणामष्टात्रिंशत्प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, सम्यग्दृशामेव तद्बन्धकत्वात् , ततस्तासां जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽऽयुर्बन्धसहितत्वेऽपि मिथ्यादृशां त्रिगतिकानां चतुर्गतिकानां वा यथासंभवं तल्लाभात् , सम्यग्दृष्टिभ्यस्तेषामसंख्येयगुणत्वात् , ततस्तृतीयपदेऽसंख्येयगुणाः, बन्धप्रायोग्ययोगस्थानानामसंख्येयत्वात् । शेषाणामायुर्वर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, प्रस्तुतमार्गणास्वायुर्बन्धकाल एव तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभात् , ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, आयुषोऽबन्धकाले तस्य जायमानत्वात् ततस्तृतीयपदेऽसंख्येयगुणा इति ।

मनुष्यद्विकादीनामल्पबहुत्वमेवमेव, किन्तु भावनायां विशेषः, तद्यथा-मनुष्यद्विकदेवद्विकवैक्रियद्विकतैजसकार्मणशरीरनामनामष्टानां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, जिननाम्न आयुषश्च बन्धभाव एवैतासां जघन्यप्रदेशबन्धभावेन संख्येयानामेव तल्लाभात् , यतः पर्याप्तमनुष्याणां पर्याप्तमनुष्यप्रायोग्यं वा सायुषं बध्नतां तज्जघन्यप्रदेशबन्धलाभ इति । ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, मिथ्यादृशां तद्बन्धकतया लभ्यमानत्वादायुर्बन्धविरहे तल्लाभाच्च । ततस्तृतीयपदस्याऽसंख्येयगुणा इति ।

शेषप्रकृतयो नामत इमाः-स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्व-स्त्रीवेद-नपुंसकवेदा-ऽसातवेदनीय-नीचैर्गोत्र-नरकद्विक-तिर्यग्द्विक-जातिपञ्चकौ-दारिकद्विक-संहननषट्क-संस्थान-

षट्क-खगतिद्वय-वर्णचतुष्का--ऽगुरुलघुचतुष्क--निर्माणाऽऽतपो--द्योत-त्रसनवक-स्थावरदशक-रूपाः सप्तषष्टिः प्रकृतयस्तथा मनुष्यद्विक-देवद्विक-वैक्रियद्विक-तैजसकार्मणशरीरनामानीति ॥५२८-५३०॥

काययोगौघमार्गणायां प्रस्तुतबन्धकाल्पबहुत्वस्य तिर्यग्गत्योघादिना सह निरूपितत्वात्क्रमप्राप्तायामौदारिककाययोगमार्गणायां तथा तत्समानप्रायोवक्तव्यत्वात्कृष्णनीललेश्यामार्गणाद्वये तत्सममेव प्राह-

ओघव्वऽप्पाबहुगं　　उरलजोगम्मि किण्हणीलासु ।
णवरं　तित्थस्स　अगुरुलहुपएसस्स　संखगुणा ॥५३१॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि. औदारिककाययोगे कृष्णनीललेश्ययोश्च जिननामवर्जानां बन्धप्रायोग्याणां प्रकृतीनां त्रिविधप्रदेशबन्धकानामल्पबहुत्वमोघवद् भवति, ओघसत्काल्पबहुत्वे प्रधानतया हेतुभूतो यो यो राशिर्भवति सोऽत्राऽपि प्राप्यते, अत ओघतोऽल्पबहुत्वं नाऽतिरिच्यते । अल्पबहुत्वं पुनरेवम् देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः । नरकद्विकस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः । एकेन्द्रियेष्वपि बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां सप्तोत्तरशतस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका अनन्तगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः । औदारिके आहारकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य संख्येयगुणाः । जिननाम्न औदारिककाययोगे जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, शरीरपर्याप्तिनिष्ठापनसमये तल्लाभेन तत्प्रायोग्यजीवानां स्तोकत्वात्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, तत्प्रायोग्यजीवानां संख्येयगुणत्वात, ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः, प्रस्तुतमार्गणायां केवलं केषाञ्चित्पर्याप्तमनुष्याणामेव जिननामबन्धकत्वेन प्रकृतिबन्धकानां संख्येयत्वात् नाऽसंख्येयगुणादिसंभवः ।

कृष्णनीललेश्याद्वयेऽपर्याप्तावस्थायां जिननामबन्धाऽभावे पर्याप्ताऽवस्थायां तद्बन्धसंभवे तज्जघन्यप्रदेशबन्धकाल देवायुषो बन्धस्य भावात्स्तोकत्वम्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य संख्येयगुणत्वं ततस्तृतीयपदस्य बन्धकानां संख्येयगुणत्वं भवति । यदि पुनः श्रीभगवतीसूत्राद्यभिप्रायेणाऽशुभलेश्यासु सम्यग्दृष्टितिर्यग्मनुष्याणामायुर्बन्ध एव न भवति, अतस्तन्मतमधिकृत्य विचार्यमाणे जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः प्राप्यन्त इति मतद्वयं भवति । प्रस्तुते मूले वृत्तौ च कार्मग्रन्थिकमतं संगृहीतमिति ॥५३१॥

अथौदारिकमिश्रयोगे कार्मणाऽनाहारकयोश्च प्रसङ्गतो बन्धकानामल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह-

तित्थस्स उरलमीसे कम्मेऽणाहारगे य संखगुणा ।
जेट्ठपएसा कमसो हस्सअगुरुलहुपएसाणं ॥५३२॥
सुरविउवदुगाणाऽप्पा हस्सपएसस्स ताउ संखगुणा ।
जेट्ठपएसस्स तओ हुन्ति अगुरुलहुपएसस्स ॥५३३॥
सेसाण बंधगाऽप्पा जेट्ठपएसस्स तो अणंतगुणा ।
हस्सपएसस्स तओ अगुरुलहुस्स य असंखगुणा ॥५३४॥

(प्रे०) "तित्थस्से"त्यादि, औदारिकमिश्रे कार्मणमार्गणायामनाहारकमार्गणायाञ्चेति मार्गणात्रये जिननाम्नो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, औदारिकमिश्रे दीर्घाद्धां व्यतिक्रामतां कार्मणाऽनाहारकयोर्द्वितीयविग्रहे वर्तमानानां तथा देवनरकाभ्यां जिनतयोत्पद्यमानानामेव तल्लाभात्स्तोकत्वम्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, औदारिकमिश्रे जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां संख्येयगुणत्वात्, कार्मणा-ऽनाहारकयोस्तु मनुष्येभ्यो जिननामसत्ताकानां देवनारकतयोत्पद्यमानानां सर्वेषां तज्जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वेन संख्येयगुणत्वादिति । ततस्तृतीयपदे बन्धकाः संख्येयगुणाः, जीवानामेव संख्येयत्वात् ।

देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, जिननामबन्धकानामेव तयोर्जघन्यप्रदेशबन्धभावेनाऽल्पत्वात्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, जिननाम्नोऽबन्धकानां तल्लाभात्, संख्येयानामेव बन्धप्रायोग्यत्वात् नाऽसंख्येयगुणत्वमिति । ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणा इति । मार्गणात्रये नरकद्विकस्याऽऽहारकद्विकस्य च बन्धाऽभावाच्छेषाणां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, संज्ञिनां तल्लाभात्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धका अनन्तगुणाः सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां तल्लाभात्, ततस्तृतीयपदे बन्धका असंख्येयगुणा इति ॥५३२-५३४॥

वैक्रिययोगे नरकौघादिभिस्समं दर्शितत्वाद् वैक्रियमिश्रे बन्धकानां पदत्रयसत्काऽल्पबहुत्वं प्राह

तित्थस्स विउवमीसे उरालमीसव्व णरदुगस्सऽत्थि ।
मणजोगव्वियरेसिं असमत्तपणिंदितिरियव्व ॥५३५॥

(प्रे०) "तित्थस्से"त्यादि, वैक्रियमिश्रयोगे जिननाम्नोऽल्पबहुत्वमनन्तरदर्शितौदारिकमिश्रकाययोगवद् भवति, भावनाऽपि तदनुसारेण मनुष्येभ्य उत्पन्नदेवनारकाऽपेक्षया यथा-

संभवं कार्येति। मनुष्यद्विकस्य प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं यथा मनोयोगमार्गणायां दर्शितं तथा-द्रष्टव्यम्, केवलमत्रा-ऽऽयुषो बन्धाऽभावाद्भावनायां विशेष इति। अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—मनुष्य-द्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, जिननामबन्धकानामेव तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽत्र भावेन संख्येयत्वात्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, जिननामाबन्धकानां ज्येष्ठप्रदेश-बन्धभावेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयत्वात्। ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येय-गुणा इति।

शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां नवनवतिप्रकृतीनामल्पबहुत्वमपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणा-वद् विज्ञेयम्। तद्यथा—ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा-स्ततस्तृतीयपदे बन्धका असंख्येयगुणा इति।

अथ ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धकानामसंख्येयगुणत्वं तु ऋजुगत्योत्पन्नानां प्रायः सर्वेषां जघन्यप्रदेशबन्धस्य प्रायोग्यत्वात्, ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वं तु न सर्वेषां किन्तु दीर्घाद्धां व्यतिक्रामतां यदि वा योगवृद्धिप्रकर्षं प्राप्तानामिति। शेषं सुगमम्। अत्राऽल्पबहुत्व-साम्यादतिदेशः, न पुनर्हेतुसाम्यात्प्रकृतिसाम्याद् वेत्यादि स्वयं परिभावनीयमिति ॥५३५॥

एवं योगमार्गणाभेदेष्वल्पबहुत्वं निरूपितम्। अथ क्रमप्राप्तेषु वेदभेदेषु तन्निरूपयिषुः स्त्रीपुरुषवेदद्वये प्राह—

तित्थाहारदुगाणं होइ मणुसीव्व थीअ ओघव्व।
पुरिसे दोसु वि णेयं तिरिजोणिमइव्व सेसाणं ॥५३६॥

(प्रे०) "तित्थाहारे"त्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां जिननामाऽऽहारकद्विकयोर्जघन्यादि-पदत्रयबन्धकानामल्पबहुत्वं मानुषीमार्गणावद् विज्ञेयम्, उक्तप्रकृतित्रयस्य प्रस्तुतमार्गणायां मानुषीणामेव बन्धकत्वात्। अल्पबहुत्वं पुनरेवम् अत्राऽऽहारकद्विकस्याऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, तद्यथा--आहारकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येय-गुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः। जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, भव-प्रथमसमये बन्धकत्वात् स्तोकत्वम्, एतच्च कादाचित्काऽपेक्षया, प्राचुर्याऽपेक्षयाऽप्यायुर्बन्ध-सहितत्वात् स्तोकत्वमवसेयम्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणा इति।

पुरुषवेदमार्गणायामाहारकद्विकजिननाम्नोरल्पबहुत्वमोघवद् भवति, ओघोक्तस्वामिना-मत्र प्रवेशादल्पबहुत्वं पुनराहारकद्विकस्य त्वनन्तरदर्शितवदेव भवति। जिननाम्नः पुनरेवम्—जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, भवप्रथमसमय एव तस्य जायमानत्वेन अल्पत्वात्, ततो ज्येष्ठ-

प्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, पर्याप्तमनुष्याणां तल्लाभात्, ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः, असंख्येयानां देवानां तद्बन्धकतया प्राप्यमाणत्वात् । उक्तमार्गणाद्वये शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां त्रयोदशोत्तरशतप्रकृतीनां पदत्रयसत्कबन्धकानामल्पबहुत्वं तिरश्चीमार्गणावद् विज्ञेयम्, असंज्ञिजीवानां मार्गणाद्वयप्रवेशेऽपि । मार्गणागतजीवाऽपेक्षया तेऽसंख्येयभागप्रमाणाः संख्येयभागप्रमाणा वेति निर्णयाऽभावात् स्पष्टमनुक्त्वा तिरश्चीवदतिदेशो विहित इति ॥५३६॥

अथ नपुंसकवेदे तत्समानप्रायोवक्तव्यत्वाद् मत्यज्ञानादिमार्गणासु च प्रस्तुतं प्राह

सप्पाउग्गाण णपुमदुअणाणाभवियमिच्छअमणेसुं ।
ओघव्वऽत्थि परं सुरविउवदुगाण णिरयदुगव्व ॥५३७॥

(प्रे०) "सप्पाउग्गाण" इत्यादि, नपुंसकवेदे तथा मत्यज्ञान-श्रुताज्ञाना-ऽभव्य-मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञिमार्गणासु देवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकनाम्नां षण्णां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, संज्ञिपर्याप्तानां तद्भावात्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, असंज्ञिपर्याप्तानां तद्भावात्, ततस्तृतीयपदे बन्धका असंख्येयगुणाः, योगस्थानानामसंख्येयगुणत्वेन तत्र स्थितजीवानामसंख्येयगुणत्वात् । विशेषभावना तु यथौघे नरकद्विकस्य कृता तथैव कार्या, ओघोक्तनरकद्विकस्य ज्येष्ठादिचतुर्विधप्रदेशबन्धकानां स्वामित्वपरिमाणादिवत् प्रस्तुते देवद्विकादिषट्प्रकृतीनां ज्येष्ठादिप्रदेशबन्धकानां स्वामित्वपरिमाणादीनां लाभात् । शेषाणामायुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्याणां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका अनन्तगुणास्ततस्तृतीयपदस्याऽसंख्येयगुणाः; आसां भावनौघवत्कार्या, ओघोक्ताऽल्पबहुत्वस्यैवाऽत्र लाभादिति ।

तथा नपुंसकवेदमार्गणायामाहारकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः, भावना त्वोघवत्कार्या । तथाऽस्यामेव नपुंसकवेदमार्गणायां यद्यपि जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धो नैरयिकाणां भवप्रथमसमये भवति, ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्तु पर्याप्तमनुष्याणाम्, तथाऽपि तादृशनैरयिकाणामतिस्तोकत्वादोघोक्तमेवाऽल्पबहुत्वं भवति, तच्चैवम्- जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, सम्यग्दृष्टिमनुष्याणां तद्भावात्, ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः असंख्येयनैरयिकाणामपि तद्बन्धकत्वात् ॥५३७॥

अथाऽपगतवेदसूक्ष्मसंपरायमार्गणाद्वये प्राह

सव्वेसिं विसेसोया संखेज्जगुणा अवेअसुहमेसुं ।
जेट्ठपएसा कमसो हस्सअणुक्कलहुपएसाणं ॥५३८॥

(६०) "सव्वेसि"मित्यादि अपगतवेदमार्गणायां बन्धप्रायोग्याणामेकविंशतेः प्रकृतीनां सूक्ष्मसंपरायमार्गणायाञ्च सप्तदशप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, नवमदशमगुणस्थानगतजीवानां ज्येष्ठपदे तुल्यत्वेऽपि योगस्थानेषु जीवानां जघन्ययोगस्थानत उत्कृष्टयोगस्थानं यावद् द्विगुणवृद्धिहानीनां सद्भावे सति यवमध्यतोऽधस्तनद्विगुणहानिस्थानेभ्य उपरितनद्विगुणहानिस्थानानामधिकत्वाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्तोकत्वम्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धकानां संख्येयगुणत्वं च भवति, अत्र जीवानां संख्येयत्वादेव संख्येयगुणत्वमन्यथाऽसंख्येयगुणत्वं भवितुमर्हतीति। ततस्तृतीयपदबन्धकाः संख्येयगुणा इति सुगमम् ॥५३८॥

कषायमार्गणाचतुष्के बन्धकानामल्पबहुत्वस्य तिर्यग्गत्योघादिना समं दर्शितत्वात् क्रमप्राप्तेषु ज्ञानमार्गणाभेदेषु तन्निरूपयन्नाह

तित्थाहारदुगाणं अत्थि तिणाणोहिसम्मखइएसु ।
ओघव्व दुवीसाए सव्वप्पा खवगपयडीणं ॥५३९॥
होअन्ति बंधगा खलु जेट्ठपएसस्स तो असंखगुणा ।
हस्सपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५४०॥
तइयकसायाणऽप्पा सयमुज्झा गुरुलहूण अणाणाणं ।
ताउ असंखेज्जगुणा अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५४१॥
सेसाण बंधगाऽप्पा हस्सपएसस्स तो असंखगुणा ।
जेट्ठपएसस्स तओ हुन्ति अगुरुलहुपएसस्स ॥५४२॥
णवरं संखेज्जगुणा खइए बावीसखवगपयडीणं ।
तह तइयकसायाणं अत्थि जहण्णपएसस्स ॥५४३॥

जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयत्वादुत्कृष्टपदे जघन्यप्रदेशबन्धका अप्यसंख्येयाः प्राप्यन्ते। षट्स्वपि मार्गणासु प्रत्याख्यानावरणस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाश्च जघन्यप्रदेशबन्धकाश्च तृतीयपदबन्धकाऽपेक्षया स्तोकाः, पदद्वयेऽसंख्येयबन्धकत्वात्, परस्परं न्यूनाऽधिकत्वं तु यथासंभवं विज्ञेयम्, यत एकत्र देशविरतानां तत्स्वामित्वम्, अन्यत्र चतुर्थपञ्चमगुणस्थानेभ्यः कालं कृत्वा देवेषूत्पद्यमानानां परिमाणप्राधान्येन तत्स्वामित्वात्।

अत्र चतुर्थगाथोक्ताऽपवादपदेन क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां द्वाविंशतेरपि क्षपकप्रकृतीनां तथा तृतीयकषायचतुष्कस्य जघन्यप्रदेशबन्धकानां संख्येयत्वाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यः संख्यातगुणा जघन्यप्रदेशबन्धका भवन्ति। ततः षट्स्वपि मार्गणासु षड्विंशतेः प्रकृतीनां तृतीयपदबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति।

शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामष्टाचत्वारिंशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वात्, ततस्तृतीयपदे बन्धका असंख्येयगुणा इति। अत्र क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां नाम्नो देवप्रायोग्याणां शेषप्रकृत्यन्तर्गतानां त्रिंशतो द्वितीयपदेऽसंख्येयगुणत्वं संख्येयगुणत्वं वा मतविशेषाऽनुसारेण विभावनीयम्, तृतीयपदे देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्मतविशेषेणाऽसंख्येयगुणत्वं संख्येयगुणत्वं च विभावनीयम्, षड्विंशतेः पञ्चेन्द्रियजात्यादिप्रकृतीनां तु तृतीयपदेऽसंख्येयगुणत्वमेवेति। शेषाः प्रकृतयो नामतः पुनरिमाः—निद्राद्विक-हास्यषट्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्का-ऽसातवेदनीय-देवद्विक-मनुष्यद्विक-पञ्चेन्द्रियजातिनामौ-दारिकद्विक-वैक्रियद्विक-तैजसकार्मणशरीर-वज्रर्षभनाराच-समचतुरस्र-सुखगति-वर्णचतुष्का--ऽगुरुलघुचतुष्क-निर्माण-त्रसनवका-ऽस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्तिनामानीति ॥५३९-५४३॥

अथ मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणयोरल्पबहुत्वं प्राह

मणणाणसंजमेसुं हवेज्ज बावीसखवगपयडीणं ।
तिण्ह असायाईण य संखगुणा गुरुपएसत्तो ॥५४४॥
लहुअगुरुलहुपएसाण कमा सेसाण लहुपएसत्तो ।
संखेज्जगुणा कमसो जेट्ठअगुरुलहुपएसाणं ॥५४५॥

(प्रे०) "मणणाणे"त्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघे च ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्का-ऽन्तरायपञ्चक--सातवेदनीय-यशःकीर्तिनामो-च्चैर्गोत्र-सञ्ज्वलनचतुष्क-पुरुषवेदरूपाणां द्वाविंशतिप्रकृतीनां श्रेणावेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वात् श्रेणिगतजीवानां चाऽल्प-

त्वात्तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, असातवेदनीय-शोका-ऽरतिरूपप्रकृतित्रयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य च तुल्यमूलसप्तविधबन्धकस्यैव स्वामित्वेन यत्र स्वस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य च सद्भावस्तत्र ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धका मार्गणागततत्प्रकृतिबन्धकजीवानां संख्यातत्वे संख्येयगुणा भवन्ति, मार्गणागतजीवानामसंख्येयत्वे पुनरसंख्येयगुणा भवन्ति, अतोऽसातवेदनीयादितिसृणां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, एवं द्वाविंशतेस्तिसृणां च जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, श्रेणिगतजीवेभ्य आयुर्बन्धकजीवानां संख्येयगुणत्वेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानां प्रस्तुते संख्येयगुणत्वात् तद्बन्धका अपि ज्येष्ठपदे संख्येयगुणा इति । असातादितिसृणां तु भावितमेवेति । ततस्तृतीयपदे बन्धकाः संख्येयगुणाः, मार्गणागतजीवानां संख्येयत्वान्नाऽसंख्येयगुणत्वमिति ।

शेषाणामेकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, अस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिवर्जानां षट्त्रिंशतो जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽऽयुर्बन्धसहितत्वात्, अस्थिरादितिसृणां जघन्यप्रदेशबन्ध आयुषां बन्धाऽभावेऽपि जिननामबन्धसहितत्वादल्पत्वमिति । ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, आयुर्बन्धरहितत्वेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानां जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवेभ्यः संख्येयगुणत्वात्, ततस्तृतीयपदे बन्धकाः संख्येयगुणाः, मार्गणागतजीवानां संख्येयत्वात् । एकोनचत्वारिंशत्प्रकृतयः पुनरिमाः—निद्राद्विक-हास्य-रति-भय-जुगुप्सा-देवद्विक पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विक-तैजसकार्मणशरीर-समचतुरस्र-सुखगति-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघुचतुष्क-निर्माण-जिननाम-त्रसनवका-ऽस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्तिनामानीति ॥५४४-५४५॥

अथ सामायिक-च्छेदोपस्थापनीयमार्गणयोः प्राह

सामाइअछेएसुं हवेज्ज संजलणपुमजसाण तहा ।
तिण्ह असायाईणं संखगुणा गुरुपएसत्तो ॥५४६॥
लहुअगुरुलहुपएसाण कमा सेसाण लहुपएसत्तो ।
संखेज्जगुणा कमसो जेट्ठअगुरुलहुपएसाणं ॥५४७॥

(प्रे०) "सामाइअ" इत्यादि, सामायिकसंयमे छेदोपस्थापनीयसंयमे च बन्धप्रायोग्या आयुर्वर्जाः प्रकृतयश्चतुष्षष्टिः, ताभ्यो ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्का-ऽन्तरायपञ्चको-च्चैर्गोत्र-सातवेदनीयरूपाः षोडशप्रकृतीर्विहाय शेषाणामष्टाचत्वारिंशत्प्रकृतीनामल्पबहुत्वं संयमौघमार्गणावद् विज्ञेयम्, जघन्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य च स्वामिनां समानत्वात्; केवलं यशःकीर्तिनाम्नस्तत्र दशमगुणस्थाने ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवति प्रस्तुते त्वष्टमगुणस्थानसप्तम-

भागादिषु तस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धो भवतीति तदनुसारेण भावना कार्या । ज्ञानावरणपञ्चकादिषोडशप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्याऽत्र षष्ठादिगुणस्थाने भावेन यथा तत्र निद्राद्विकादीनां शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं दर्शितं तथाऽत्र द्रष्टव्यम्, तद्यथा-जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणा इति ॥५४६-५४७॥

अथ परिहारविशुद्धिमार्गणायां देशविरतौ च त्रिविधबन्धकाऽल्पबहुत्वं प्राह

एवं परिहारे परमणाण्व जसपुमचउकसायाणं ।
एवं देसे णवरं असंखियगुणा विणा तित्थं ॥५४८॥

(प्रे०) "परिहारे" इत्यादि, परिहारविशुद्धिमार्गणायां सामायिकसंयममार्गणावत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं विज्ञेयम्, केवलमयमेकोऽपवादः, तद्यथा- यशःकीर्तिनाम-पुरुषवेद-संज्वलनचतुष्काणां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं तत्स्वामिनां भिन्नत्वेन सामायिकसंयमवन्न प्राप्यते, किन्तु "अण्णव्व" त्ति यथा अन्यासां ज्ञानावरणादिप्रकृतीनां तत्र सामायिकसंयममार्गणायां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं प्राप्यते; तथा प्रस्तुते यशःकीर्त्यादीनां षण्णामपि विज्ञेयमिति ।

उक्ताऽतिदेशेन प्राप्ताऽल्पबहुत्वं त्वेवम्-शोका-ऽरतिमोहनीया-ऽसातवेदनीयानामल्पबहुत्वं संयमौघवत्, तद्यथा-ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणाः ।

शेषाणामेकषष्टेर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, अस्थिरादित्रयस्याऽऽयुर्बन्धाऽभावेऽपि जिननामबन्धसहितानामेव जघन्यप्रदेशबन्धभावात्स्तोकत्वम् । शेषाणामष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां तु जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽऽयुर्बन्धसहितत्वात्स्तोकत्वम् । ततस्तासामेकषष्टेरपि प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, यथासंभवमायुर्बन्धस्य जिननामबन्धस्य च विरहात्, ततस्तृतीयपदे बन्धकाः संख्येयगुणा इति । शेषप्रकृतयः पुनरिमाः ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्क-निद्राद्विक हास्य-रति-भयजुगुप्सा-संज्वलनचतुष्क पुरुषवेद-सातवेदनीयो च्चैर्गोत्र-देवद्विक पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विक तैजसकार्मणशरीर-समचतुरस्र-सुखगति-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघुचतुष्क-निर्माण-जिननाम त्रसदशका-ऽन्तरायपञ्चकप्रकृतय इति ।

"एवं देसे" इत्यादि, देशविरतिमार्गणायामनन्तरदर्शितपरिहारविशुद्धिमार्गणावदल्पबहुत्वं भवति, केवलं जिननाम विहाय शेषप्रकृतिसत्काऽल्पबहुत्वे द्वितीयपदे तृतीयपदे चाऽसंख्येयगुणत्वं वाच्यम्, तथा प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽत्र बन्धाऽऽधिक्यात्तत्सत्काऽल्पबहुत्वमपि संज्वलनचतुष्कवद् वाच्यमित्यतः शेषप्रकृतिषु बन्धप्रायोग्याऽऽयुर्वर्जोक्तशेषप्रकृतीनां ग्रहणाभाऽपवादकथनप्रसङ्ग इति ।

अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—असातवेदनीयशोका-ऽरतिमोहनीयानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, हेतुस्तु संयममार्गणावत्, केवलं मार्गणागतजीवानामसंख्येयत्वेन त्रयाणां पदानां प्रत्येकं बन्धका असंख्येया भवन्ति, अतो द्वितीयतृतीयपदयोरसंख्येयगुणत्वं भवति, अतः प्रस्तुत उत्तर-प्रकृतित्रयस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्ततस्तृतीय-पदेऽसंख्येयगुणा इति ।

जिननाम्नो बन्धकानामल्पबहुत्वं संयमवत्, तद्यथा—जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठस्य संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य संख्येयगुणा इति । शेषाणां बन्धप्रायोग्याणां द्वाषष्टिप्रकृति-भ्योऽस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्तिवर्जानामेकोनषष्टिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽऽयुर्बन्धसहितत्वे-नाऽस्थिरादित्रयाणां जघन्यप्रदेशबन्धस्य जिननामसहितत्वेन तासां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, तत्र नाम्नामेकत्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयाः, शेषाणामेकत्रिंशतो जघन्यप्रदेशबन्धका-स्त्वसंख्येयाः । द्वाषष्टेरपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः । आयुर्बन्धविरहदशायामसंख्येय-जीवानां तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वात् । ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति ॥५४८॥

असंयममार्गणायां तिर्यग्गत्योघादिमार्गणाभिस्समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपितम्, एवं तत्रैवाऽचक्षुर्दर्शनमार्गणायाम् । पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणया सह चक्षुर्दर्शने, मतिज्ञानादिमार्गणा-भिस्सहाऽवधिदर्शनमार्गणायां चाऽल्पबहुत्वं निरूपितमिति ।

गता दर्शनमार्गणा । अथ लेश्यामार्गणाया अवसरः, तत्राऽपि त्र्यशुभलेश्यासु पूर्वमुक्ता-मतः क्रमप्राप्तयोस्तेजःपद्मलेश्ययोः प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं प्ररूपयन्नाह

ओघव्वाहारगदुगजिणाण अप्पबहु तेउपम्हासुं ।
छदंसणावरणाणं बारकसायसणोकसायाणं ॥५४९॥ (गीतिः)
होअन्ति बंधगाऽप्पा जेट्ठपएसस्स तो असंखगुणा ।
हस्सपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५५०॥
सेसाण बंधगाऽप्पा हस्सपएसस्स तो असंखगुणा ।
जेट्ठपएसस्स तओ हुन्ति अगुरुलहुपएसाणं ॥५५१॥

(प्रे०) "ओघव्वे"त्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां पद्मलेश्यामार्गणायाञ्च जिननाम्न आहारकद्विकस्य च पदत्रयसत्कमल्पबहुत्वमोघवद् भवति, ओघोक्तानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनाञ्चात्राऽपि लाभात् । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—जिननाम्नो जघन्यप्रदेश-बन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयस्य बन्धका असंख्येयगुणा

इति । आहारकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्तत उत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदे बन्धकाः संख्येयगुणाः । भावना पुनरोघवत्कार्येति ।

दर्शनावरणचतुष्कनिद्राद्विकाऽऽद्यवर्जद्वादशकषाय-हास्यषट्क-पुरुषवेदरूपाणां पञ्चविंशतेः प्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, आसां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य यथासंभवं चतुर्थादिगुणस्थानेष्वेव भावेन प्रथमगुणस्थाने तदलाभात् , ततस्तासां पञ्चविंशतेर्जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, भवप्रथमसमये तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभेऽपि मिथ्यादृष्टीनां तल्लाभात् तेषाञ्चाऽतिप्रभूतत्वादसंख्येयगुणत्वम् , ततस्तृतीयपदे बन्धका असंख्येयगुणाः, मार्गणागतजीवानामसंख्येयत्वात् । उक्तशेषाणां तेजोलेश्यामार्गणायामशीतेः पद्मलेश्यायां च सप्तसप्ततेर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, भवप्रथमसमये तासां जघन्यप्रदेशबन्धलाभात् , ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, भवप्रथमसमयगतजीवेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वात् , ततस्तृतीयपदे बन्धका जीवा असंख्येयगुणाः, योगस्थानानामसंख्येयगुणत्वात् ।

शेषाः प्रकृतयो नामतः पुनरिमाः—ज्ञानावरणपञ्चक-स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-स्त्रीवेदनपुंसकवेद-मिथ्यात्व-साता-ऽसातवेदनीय-गोत्रद्वय देवद्विक मनुष्यद्विक-तिर्यग्द्विक-पञ्चेन्द्रियजातिनामौ-दारिकद्विक-वैक्रियद्विक-तैजसकार्मणशरीर--संहननषट्क-संस्थानषट्क-खगतिद्वय-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघुचतुष्क-निर्माणो-द्योत-त्रसदशका-ऽस्थिरषट्कनामा-ऽन्तरायपञ्चकानीति पद्मलेश्यायां सप्तसप्ततिः, तेजोलेश्यायामेता एवैकेन्द्रिय-स्थावरा-ऽऽतपनामभिस्सहिता अशीतिः। अत्र देवद्विक-वैक्रियद्विकप्रकृतीनां भावनौघवत्कार्येति ॥५४९-५५१॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायां प्राह

जेट्ठपएसाउ कमा सुक्काअ दुवीसखवगपयडीणं ।
संखियअसंखियगुणा हस्सअगुरुलहुपएसाणं ॥५५२॥
तित्थाहारदुगाणं ओघव्वऽणाण लहुपएसत्तो ।
कमसो असंखियगुणा जेट्ठअगुरुलहुपएसाणं ॥५५३॥

(प्रे०) "जेट्ठपएसाउ" इत्यादि, गाथाद्वयम् , शुक्ललेश्यामार्गणायां क्षपकप्रायोग्यज्येष्ठप्रदेशबन्धानां ज्ञानावरणादिद्वाविंशतिप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, नवमदशमगुणस्थानस्थितानामेव तत्प्रायोग्यत्वात् , ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, भवप्रथमसमये तल्लाभेन प्रस्तुतमार्गणायां च्यवमानानामुत्पद्यमानानां च जीवानां संख्येयत्वात् संख्येयगुणत्वम् , ततस्तृतीयपदे बन्धका असंख्येयगुणाः, मार्गणागतजीवानामसंख्येयत्वात् ।

आहारकद्विकस्य जिननाम्नश्चाऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति, ओघोक्तानां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां च प्रस्तुते लाभात् । अल्पबहुत्वं तेजोलेश्यातोऽवसेयम् । शेषप्रकृतीनां सप्तसप्ततेर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, भवप्रथमसमये तासां जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभेन संख्येयत्वात्, ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवेभ्योऽसंख्येयगुणत्वाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानामसंख्येयत्वमिति, ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः, प्रकृतिबन्धकानामसंख्येयगुणत्वादसंख्येययोगस्थानानां लाभाच्चेति ।

सप्तसप्ततिः प्रकृतयः पुनर्नामत इमाः—निद्रापञ्चका-ऽऽद्यद्वादशकषायहास्यषट्कस्त्रीनपुंसकवेदमिथ्यात्वाऽसातवेदनीय-नीचैर्गोत्राणि देवद्विक-मनुष्यद्विक पञ्चेन्द्रियजातिनामौ-दारिकद्विक-वैक्रियद्विक-तैजसकार्मणशरीर-संहननषट्क -संस्थानषट्क- खगतिद्वय-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघुचतुष्क-निर्माण-त्रसनवका-ऽस्थिरषट्कनामानीति ॥५५२-५५३॥

गतं लेश्यामार्गणाभेदेऽल्पबहुत्वम् ।

भव्यमार्गणायां तिर्यग्गत्योघादिभिस्समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं दर्शितम् । अभव्यमार्गणायां मत्यज्ञानादिभिस्समं दर्शितम् । सम्यक्त्वौघे क्षायिकसम्यक्त्वे च त्रिज्ञानादिमार्गणाभिस्समं प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपितम् ।

अथोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां तन्निरूपयन्नाह

खवगपयडीणुवसमे संखअसंखियगुणा लहुपएसा ।
गुरुअगुरुलहूणा कमा उरलोहिव्व उ कमा जिणाऽऽरोसिं ॥५५४॥(गीतिः)

(प्रे०) "खवगे"त्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां देवद्विक-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विकानां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, पर्याप्ताऽवस्थायामेव तद्बन्धभावेऽपि जिननामबन्धसहितत्वाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यः स्तोकत्वम्, शेषाणामप्येकसप्ततेर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, श्रेणौ कालं कृत्वा दिवि समुत्पन्नस्य भवप्रथमसमये तज्जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभात् । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्काऽन्तरायपञ्चकसातवेदनीययशःकीर्तिनामोच्चैर्गोत्राणां सञ्ज्वलनचतुष्कपुरुषवेदजिननाम्नाञ्चेति त्रयोविंशतेराहारकद्विकस्य च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः पर्याप्तमनुष्याणां श्रेणिगतानां च ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य भावात्; तेषाञ्च संख्येयत्वाज्जघन्यप्रदेशबन्धकेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणा भवन्ति । शेषाणां द्विपञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति, ततस्सर्वासां तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति, किन्तु जिननाम्नः संख्येयगुणा बोद्धव्याः, प्रस्तुतमार्गणायां तद्बन्धकानामेव संख्येयत्वात्, अत

एव गाथायां जिननाम्नोऽल्पबहुत्वमौदारिकमार्गणावदतिदिष्टम् । गाथाया अन्वयार्थस्तु सुगमः ।

शेषा द्विपञ्चाशत्प्रकृतयः पुनर्नामत इमाः-निद्राद्विक-हास्यषट्क-प्रत्याख्यानावरणचतुष्का-ऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्का-ऽसातवेदनीय-देवद्विक-मनुष्यद्विकौ-दारिकद्विक-वैक्रियद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति-तैजसकार्मणशरीर-वज्रर्षभनाराच-समचतुरस्र-सुखगति-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघुचतुष्क-निर्माण-त्रसनवका-ऽस्थिरत्रिकनामानीति ॥५५४॥ अथ क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां निरूपयन्नाह

ओहिव्व वेयगे खलु सप्पाउग्गाण णवरि सेसव्व ।
चउसंजलणाणं अट्ठारसखवगपयडीणं ॥५५५॥

(प्रे०) "ओहिव्वे"त्यादि, क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामवधिज्ञानवत्प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं भवति, केवलं सञ्ज्वलनचतुष्कन्यूनानामष्टादशक्षपकप्रकृतीनामल्पबहुत्वं प्रस्तुते तत्रोक्तशेष-निद्राद्विकादिप्रकृतिवज्ज्ञेयम् । अल्पबहुत्वं पुनरेवम्—आहारकद्विकस्याऽल्पबहुत्वमोघवद् भवति जघन्योत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामिनामोघवल्लाभात्, जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेश-बन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणा इति । संज्वलनचतुष्कस्य ज्येष्ठ-प्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, संयमिनस्तद्भावात्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, तिर्य-ग्भ्यो देवेषूत्पद्यमानानां तल्लाभात्, ततस्तृतीयपदेऽसंख्येयगुणा इति। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य जघन्यप्रदेशबन्धकानां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां च परस्परं विशेषो निर्दिष्टातिदेशवत् स्वयं परिभाव-नीयः, ताभ्यां तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति। जिननाम्नोऽपि प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमोघ-वद् भवति, तद्यथा—जिननाम्नो जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संख्येय-गुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति । उक्तैकादश प्रकृतीर्विहाय शेषाणां षट्षष्टे-र्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः, भावना तु मतिज्ञानमार्गणोक्तशेषप्रकृतिवत्कार्येति ।

शेषाः षट्षष्टिः प्रकृतयः पुनरिमाः-ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणषट्कं वेदनीयद्वयं हास्यषट्कं पुरुषवेदोऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कोच्चैर्गोत्र--देवद्विक--मनुष्यद्विक--पञ्चेन्द्रियजातिनामौदारिक-द्विक-वैक्रियद्विक-तैजसकार्मणशरीर-समचतुरस्र--वज्रर्षभनाराच--सुखगति वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघु--चतुष्क-निर्माणनाम-त्रसदशका-ऽस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्तिनामान्यन्तरायपञ्चकञ्चेति ॥५५५॥

अथ संज्ञिमार्गणायां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

बावीसखवगपयडिदुणिद्दअडकसायहस्सछक्काणं ।
सण्णिम्मि गुरुपएसा लहुइयराणं कमा असंखगुणा ॥५५६॥(गीतिः)
तित्थाहारदुगाणं ओघव्वियराण लहुपएसत्तो ।
कमसो असंखियगुणा जेट्ठअगुरुलहुपएसाणं ॥५५७॥

(प्रे०) "सन्नीस" इत्यादि, संज्ञिमार्गणायां मतिज्ञानावरणादिद्वाविंशतेः क्षपकप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, संख्येयानामेव तत्प्रायोग्यत्वात्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, असंख्येयानां तल्लाभात्, ततस्तृतीयपदे बन्धका असंख्येयगुणाः, योगस्थानानामसंख्येयत्वादिति । जिननाम्न आहारकद्विकस्य च तदोघवद्विज्ञेयम्; संज्ञिनामेव तद्बन्धकत्वेनौघोक्तसर्वबन्धकानामत्र लाभात् । निद्राद्विकप्रत्याख्यानावरणचतुष्का-ऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-हास्यषट्करूपाणां षोडशप्रकृतीनामपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, सम्यग्दृष्टीनामेव तल्लाभेन तत्प्रायोग्यजीवानां पल्योपमाऽसंख्येयभागमात्रत्वात्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्तत्प्रायोग्यजीवानां लब्ध्यपर्याप्तत्वेनाऽसंख्येयगुणत्वात्, ततस्तृतीयपदेऽसंख्येयगुणा इति ।

शेषाणां पञ्चसप्ततेरायुर्वर्जबन्धप्रायोग्याणां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, भवप्रथमसमये तासां नरकद्विकवर्जानां जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभात्, नरकद्विकस्य जघन्यप्रदेशबन्धकानां स्तोकत्वं तेषामायुर्बन्धसहितत्वात् । तासां ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, संज्ञिषु लब्ध्यपर्याप्तजीवानां स्तोकत्वेन जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वान्नरकद्विकस्य त्वायुर्बन्धविरहे ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य लाभेनाऽसंख्येयगुणत्वमिति, ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः ।

शेषाः पञ्चसप्ततिः प्रकृतयो नामत इमाः स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्व-स्त्रीवेद-नपुंसकवेदा--ऽसातवेदनीय--नीचैर्गोत्राणि देवद्विक-नरकद्विक-तिर्यग्द्विक--मनुष्यद्विक-जातिपञ्चकौ--दारिकद्विक--वैक्रियद्विक--तैजसकार्मणशरीर-संहननषट्क--संस्थानषट्क-खगतिद्वय-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघुचतुष्का-ऽऽतपो-द्योत निर्माण-त्रसनवक-स्थावरदशकनामानीति ॥५५६-५५७॥

अथ शेषमार्गणासु निरूपयन्नाह—

सेसासुं सव्वेसिं जेट्ठपएसस्स लहुपएसत्तो ।
हुन्ति असंखेज्जगुणा ताउ अगुरुलहुपएसस्स ॥५५८॥

(प्रे०) "सेसासु"मित्यादि, शेषास्वुक्तातिरिक्तास्वानतादिष्वपराजितपर्यवसानासु सप्तदशदेवमार्गणास्वपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां सूक्ष्मैकेन्द्रियभेदत्रये बादरपर्याप्ताऽपर्याप्तैकेन्द्रियभेदद्वये पर्याप्तापर्याप्तद्वीन्द्रियभेदद्वये तादृशि त्रीन्द्रियभेदद्वये चतुरिन्द्रियभेदद्वये सूक्ष्मपृथ्व्यादिपञ्चकायसत्केषु पञ्चदशभेदेषु पर्याप्ताऽपर्याप्तबादरपृथ्वीकायभेदद्वये एवमप्कायभेदद्वये तेजस्कायभेदद्वये वायुकायभेदद्वये प्रत्येकवनस्पतिकायभेदद्वये बादरनिगोदभेदद्वये विभङ्गज्ञानमार्गणायां सास्वादने चेत्यष्टपञ्चाशन्मार्गणासु बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, सामान्यतो भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वेनाऽल्पत्वात्, ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वस्य तु नानासमयेषु भावेन तद्योग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वाज्जघन्यप्रदेशबन्धकेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येय-

गुणा भवन्ति, अत्र कासुचिन्मार्गणासु केवलं लब्ध्यपर्याप्तजीवानां कासुचिच्च केवलं लब्धिपर्याप्तजीवानामेव भावेन तथा सूक्ष्मौघभेदेषु द्विविधजीवानां प्रवेशेऽपि पर्याप्तजीवानां संख्येयबहुभागमितानां भावेन पर्याप्तकजीवेभ्योऽपर्याप्तजीवानामसंख्येयगुणत्वप्रयुक्तं यद् ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यो यद् जघन्यप्रदेशबन्धकानामसंख्येयगुणत्वं तदिह न प्राप्यत इति ।

विभङ्गज्ञानमार्गणायां संज्ञिजीवानामेव भावेन देवद्विकवैक्रियद्विकनरकद्विकविकलत्रिकसूक्ष्मत्रिकाणां भवप्रथमसमये बन्धाऽभावेऽप्यासां जघन्यप्रदेशबन्धस्याऽऽयुर्बन्धसहितत्वेनाऽल्पत्वं विज्ञेयम् . शेषाणां भवप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धभावादिति । अन्यमते तु त्रयोदशोत्तरशतस्याऽपि आयुर्बन्धसहितस्य जघन्यप्रदेशबन्धो भवति, अतस्तन्मतेऽपि जघन्यप्रदेशबन्धस्य स्तोकत्वम् ।

सास्वादनमार्गणायां देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्बन्धस्य पर्याप्ताऽवस्थायामेव भावेऽपि तयोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्य देवायुर्बन्धसहितत्वेनाऽल्पत्वम्, ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां पुनरायुर्बन्धस्याऽभावाद्बहुत्वसंख्येयगुणत्वम्, शेषाणां बन्धप्रायोग्याणामायुर्वर्जानां चतुर्नवतिप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धस्य भवप्रथमसमये भावेन जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामल्पत्वम्, ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्याणां जीवानां पर्याप्ताऽवस्थायामेव भावेन तेषां चाऽपर्याप्ताऽवस्थागतजीवेभ्योऽसंख्येयगुणत्वाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वमतो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका अपि जघन्यप्रदेशबन्धकेभ्योऽसंख्येयगुणा इति । अष्टपञ्चाशन्मार्गणासु तृतीयपदस्य बन्धकानामसंख्येयगुणत्वं तु योगस्थानानामसंख्येयगुणत्वादिति ॥५५८॥

तदेवं मार्गणास्वायुर्वर्जानां बन्धप्रायोग्याणां ज्येष्ठादिचतुर्विधप्रदेशबन्धकानामल्पबहुत्वं समाप्तम् । अथ मार्गणास्वायुषां ज्येष्ठादिप्रदेशबन्धकानामल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

तिरिकायुरलदुगणपुमकसायचउगदुअणाणअजएसुं ।
अणयणतिअसुहलेसाभवियरमिच्छामणेसु आहारे ॥५५९॥ (गीतिः)
ओघव्वऽप्पाबहुगं सप्पाउग्गाण होइ आऊणं ।

(प्रे०) "तिरि" इत्यादि, तिर्यग्गत्योघ-काययोगौघौ-दारिकौ-दारिकमिश्र-नपुंसकवेद कषायचतुष्क-मत्यज्ञान-श्रुताज्ञाना-संयमा-ऽचक्षुर्दर्शना-ऽशुभलेश्यात्रय-भव्या ऽभव्य-मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञ्याऽऽहारकमार्गणास्वेकविंशतौ बन्धप्रायोग्यायुषां ज्येष्ठादिप्रदेशबन्धकसत्कपदत्रयस्याऽल्पबहुत्वमोघवद्विज्ञेयम्, तद्यथा–औदारिकमिश्रं विहाय विंशतिमार्गणासु देवनरकमनुष्यायुषां प्रत्येकं ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, संज्ञिनामेव तद्भावात्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, असंज्ञिनां तद्भावात्, केवलमसंज्ञिमार्गणायां स्वामित्वापेक्षया योगस्थानेषु जीवद्विगुणवृद्धिहानी अपेक्ष्य च भावना कार्या सुगमा च । ततस्तृतीयपदस्याऽसंख्येयगुणाः, प्रकृतिबन्धकानामेवाऽसंख्येयत्वात् । एवमौदारिकमिश्रेऽपि केवलं मनुष्यायुरधिकृत्य भावना कार्या । एकविंशतावपि मार्गणासु

तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोका स्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका अनन्तगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति । एतच्चौघवद्भावनीयमिति ॥५५९॥ अथ नरकौघादिमार्गणास्वाह–

णिरयपढमाइछणिरयदेवसहस्सारअंतविउव्वेसुं　॥ ५६० ॥ (गीतिः)
मणुसाउगस्स थोया संखगुणा बंधगा गुरुपएसा ।
हस्सपएसस्स तओ हुन्ति अगुरुलहुपएसस्स ॥५६१॥
तिरियाउगस्स थोवा जेट्ठपएसस्स तो असंखगुणा ।
हस्सपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५६२॥

(प्रे०) "णिरये"त्यादि, नरकौघ-प्रथमादिषष्ठान्तनरकमार्गणा-देवौघ-भवनपति व्यन्तर-ज्योतिष्क-सौधर्माद्यष्टमान्तदेवभेद-वैक्रियकाययोगेषु विंशतिमार्गणासु मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामिनां जघन्यप्रदेशबन्धस्वामिनां च तुल्यत्वेऽप्युत्कृष्टपदे जीवानां योगस्थानेषु निरूपणायां जीवयवमध्यमत उपरितनद्विगुणहानितोऽधस्तनद्विगुणवृद्धिहानीनामल्पत्वात्प्रस्तुतमार्गणासु मनुष्यायुर्बन्धस्य पर्याप्तमनुष्यप्रायोग्यत्वेन मनुष्यायुर्बन्धकानां संख्येयत्वाच्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुण इति । ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणा भवन्ति । एतासु विंशतिमार्गणासु तिर्यगायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, भावना तु मनुष्यायुर्बन्धकाऽल्पबहुत्ववद्विज्ञेयम् , केवलं बन्धकजीवानामसंख्येयत्वादसंख्येयगुणत्वमिति । ततस्तृतीयपदस्याऽनुत्कृष्टाजघन्यप्रदेशबन्धरूपस्य बन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति, हेतुस्तु सुगमः ॥५६०-५६२॥ अथ मनुष्यौघमार्गणायामायुर्बन्धकानामल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह-

णिरयसुराऊण णरे हस्सपएसस्स गुरुपएसत्तो ।
संखेज्जगुणा थोया तओ अगुरुलहुपएसस्स ॥५६३॥
तिरियणराऊणऽप्पा जेट्ठपएसस्स तो असंखगुणा ।
हस्सपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५६४॥

(प्रे०) "णिरये"त्यादि, मनुष्यौघमार्गणायां देवनरकायुषोर्बन्धकाः पर्याप्तमनुष्याः, ते च संख्येया भवन्ति, अतस्तयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणा इति । भावना त्वनन्तरदर्शितमनुष्यायुषो बन्धकानामल्पबहुत्ववत्कार्या । तिर्यग्मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, पर्याप्तमनुष्याणां तल्लाभात्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, अपर्याप्तमनुष्याणां जघन्यप्रदेशबन्धस्य भावात्; तेषां चाऽसंख्येयत्वात्ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति । भावना तु सुगमा ।

॥५६३-५६४॥ अथाऽपर्याप्तमनुष्यादिमार्गणासु प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं प्राह -

अपमत्तमणुस्सविगलक्खसुहुमबायरक्खसुहुमओहेसुं
पत्तेअवणअपज्जे सप्पाउग्गाण आऊणं ॥५६५॥
होअन्ति बंधगाऽप्पा हस्सपएसस्स तो असंखगुणा
जेट्ठपएसस्स तओ अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५६६॥

(प्रे०) "असमत्ते"त्यादि, असमत्तपदं बादरान्तेषु प्रत्येकं सम्बन्धनीयम्, तेनाऽपर्याप्तमनुष्येऽपर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियेष्वपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियेऽपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायेष्वपर्याप्तबादरैकेन्द्रियेऽपर्याप्तबादरपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायेषु 'क्खसुहुमओहेसु' मिति सूक्ष्मैकेन्द्रियौघे सूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायौघभेदेष्वपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकाये चेति त्रयोविंशतिमार्गणासु यथासंभवं बन्धप्रायोग्यतिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, सप्तदशाऽपर्याप्तमार्गणासु नियतैकसमयगतानामेव जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वं तास्वेव ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यत्वं पुनरसंख्येयेषु समयेषु भवति, अतो जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोका दर्शिताः, तेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, सूक्ष्मैकेन्द्रियौघादिषट्सूक्ष्मौघमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्य प्रायोग्यतया लब्ध्यपर्याप्तजीवा नियतैकसमये भवन्ति, अपर्याप्तजीवेभ्यः संख्येयगुणानां करणपर्याप्तसूक्ष्मजीवानां जीवनकालेऽसंख्येयसमयेषु ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य प्रायोग्यत्वेन जघन्यप्रदेशबन्धकेभ्यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति, तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा विज्ञेयाः, आयुर्बन्धप्रायोग्ययोगस्थानानामसंख्येयगुणत्वादिति ॥५६५ ५६६॥ अथ पर्याप्तमनुष्यादिमार्गणास्वाह प्रस्तुताऽल्पबहुत्वम्

दुणराणताइगेसुं आहारगमीसतुरिअणाणेसुं ।
संजमसामइएसुं छेए परिहारसुक्कखइएसुं ॥५६७॥
सप्पाउग्गाऊणं हस्सपएसस्स गुरुपएसत्तो ।
संखेज्जगुणा तत्तो अत्थि अगुरुलहुपएसस्स ॥५६८॥

(प्रे०) "दुणरे"त्यादि, पर्याप्तमनुष्यमानुषीमार्गणाद्वय आनतादिसर्वार्थसिद्धपर्यवसानास्वष्टादशदेवमार्गणास्वाहारकमिश्रकाययोगे मनःपर्यवज्ञान-संयमौघ-सामायिक-च्छेदोपस्थापनीय-परिहारविशुद्धिशुक्ललेश्या-क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणासु चेति समुदितास्वष्टाविंशतिमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषो प्रकृतिबन्धकाः संख्येया भवन्तिः तत्राऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः। भावना तु योगस्थानेषु जीवद्विगुणहानिमाश्रित्य कार्येति, ततस्तृतीयपदस्य संख्येयगुणा इति । अत्राऽऽहारकमिश्रे तु बन्धप्रायोग्यदेवायुषो ज्येष्ठप्रदेश-

बन्धस्य जघन्यप्रदेशबन्धस्य च नियतैकसमये प्रायोग्यत्वेऽपि ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टाऽद्धां व्यतिक्रामतः कस्यचिदेव तत्प्रायोग्यत्वादिना तद्बन्धकानां स्तोकत्वं परिभावनीयमिति । ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, आरम्भप्रथमसमये तस्य भावेन तद्बन्धप्रायोग्यजीवानामाधिक्यात्, तृतीयपदे बन्धकाः संख्येयगुणा इति ॥५६७–५६८॥ अथाऽऽहारककाययोगमार्गणायां प्राह-

देवाउस्साहारे जेट्ठपएसस्स लहुपएसत्तो ।

संखेज्जगुणा तत्तो हुन्ति अगुरुलहुपएसस्स ॥५६९॥

(प्रे०) "देवाउस्से"त्यादि, आहारककाययोगमार्गणायां देवायुषो जघन्यप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, शरीरपर्याप्तिनिष्ठापनसमयरूपे नियतैकसमये तत्प्रायोग्यत्वेनाऽल्पत्वात्, तत उत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणाः, नानासमयेषु वर्तमानस्य तत्प्रायोग्यत्वेनोत्कृष्टपदे प्रायोग्यजीवानां संख्येयगुणत्वाद् बन्धका अप्युत्कृष्टपदे संख्येयगुणाः प्राप्यन्त इति, ततस्तृतीयपदे बन्धकाः संख्येयगुणा इति । अत्रैकस्यैवाऽऽयुषो बन्धभावान्न शेषायुषां निरूपणमिति ॥५६९॥

अथ मतिज्ञानादिमार्गणाषट्क आयुर्बन्धकानामल्पबहुत्वं प्राह

णाणतिगे ओहिगि य समत्ते वेअगे णराउस्स ।

णिरयव्वऽप्पबहुगं ओघव्व भवे सुराउस्स ॥५७०॥

(प्रे०) "णाणतिगे" इत्यादि, मतिज्ञान-श्रुतज्ञाना-ऽवधिज्ञाना-ऽवधिदर्शन-सम्यक्त्वौघ-क्षायोपशमिकसम्यक्त्वरूपासु षट्सु मार्गणासु मनुष्यायुषः प्रकृतिबन्धका एव संख्येया भवन्ति, तत्र प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं नरकमार्गणावद्विज्ञेयम्, तद्यथा-मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदे बन्धकाः संख्येयगुणा इति । भावनाऽप्यतिदेशानुसारेण कार्येति । देवायुषो बन्धका असंख्येया भवन्ति, तत्राऽल्पबहुत्वं त्वेवम् देवायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, अत्राऽल्पबहुत्वस्य ओघवल्लाभेऽपि तद्भावना तु नौघतुल्या, असंज्ञिनां प्रवेशाऽभावात्, अतः संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिरश्च आश्रित्य प्रस्तुताऽल्पबहुत्वस्य मुख्यवृत्त्या लाभेन तानाश्रित्य देवायुर्बन्धप्रायोग्ययोगस्थानेषु जीवानां यवमध्यादित उक्ताऽल्पबहुत्वं भावनीयमिति, ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति ॥५७०॥ अथ तेजःपद्मलेश्याद्वये सास्वादने च बन्धप्रायोग्याणां त्रयाणामायुषामल्पबहुत्वमाह-

तिरियमणुस्साऊणं तेउपउमसासणेसु णिरयव्व ।

हवए अप्पाबहुगं ओघव्व भवे सुराउस्स ॥५७१॥

(प्रे०) "तिरी"त्यादि, तेजोलेश्यायां पद्मलेश्यायां सास्वादने च संज्ञिपर्याप्तानां पर्याप्ताऽवस्थायामायुर्बन्धो भवति, तथा पर्याप्तप्रायोग्यस्यैवाऽऽयुषो बन्धो भवति, अतो मनुष्या-

युषो बन्धकाः संख्येयाः, शेषायुर्बन्धकास्त्वसंख्येयाः, अल्पबहुत्वं तु योगस्थानेषु जीवगुणवृद्धिहानी आश्रित्य भावनीयम्, मनुष्यायुषोऽल्पबहुत्वं त्वेवम्—मनुष्यायुषो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धकाः संख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धकाः संख्येयगुणा इति । तिर्यगायुषो देवायुषश्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति ॥५७१॥

अथ शेषमार्गणासु बन्धकानामल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह

सेसासु असंखगुणा हस्सपएसस्स गुरुपएसत्तो ।
सव्वाउगाऊणं तओ अगुरुलहुपएसस्स ॥५७२॥

(प्रे०) "सेसासु" इत्यादि· "निरि" इत्यादिना नवुत्तरशतमार्गणासु बन्धप्रायोग्यायुषामुत्कृष्टपदगतानां ज्येष्ठादिचतुर्विधप्रदेशबन्धकानां पदत्रयेणाऽल्पबहुत्वं प्रदर्शितम् । अतः शेषाः षष्टिर्मार्गणा अवशिष्टाः, तास्चेमाः सप्तमनरकमार्गणा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणाचतुष्कं सूक्ष्मपर्याप्तैकेन्द्रियपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायाः, एकेन्द्रियपृथ्वीकायाऽप्कायतेजस्कायवायुकायवनस्पतिकायसाधारणवनस्पतिकायसत्कौघभेदाः, एकेन्द्रियपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायसत्कबादरौघभेदाः बादरपर्याप्तैकेन्द्रियपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायाः, प्रत्येकवनस्पतिकायौघ-पर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायौ द्वित्रिचतुरिन्द्रियौघभेदाः, द्वित्रिचतुरिन्द्रियपर्याप्तभेदाः, त्रिपञ्चेन्द्रिय-त्रसकायत्रय मनोयोगौघ-तदुत्तरभेदचतुष्क वचनयोगौघ तदुत्तरभेदचतुष्क-स्त्रीवेद-पुरुषवेद-विभङ्गज्ञान-देशविरति-चक्षुर्दर्शन-संज्ञिमार्गणाश्चेति, एतासु प्रत्येकं बन्धप्रायोग्यसर्वाऽऽयुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणास्ततोऽजघन्यानुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति ।

भावना पुनरेवम्—एकेन्द्रियौघ-पृथ्व्यादिपञ्चकायौघ--निगोदौघ बादरैकेन्द्रियौघ बादरपृथ्व्यादिचतुष्कौघ--बादरनिगोदौघ-प्रत्येकवनस्पतिकायौघद्वित्रिचतुरिन्द्रियौघरूपासु सप्तदशमार्गणासु ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानां बादरपर्याप्तादीनां भावेन स्तोकत्वम्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानां लब्ध्यपर्याप्तरूपाणां भावेन तेषाञ्च ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवेभ्योऽसंख्येयगुणत्वात् जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति । सूक्ष्मपर्याप्तैकेन्द्रिय—बादरपर्याप्तैकेन्द्रिय-सूक्ष्मपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकाय- बादरपर्याप्तपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकाय -पर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकाय--पर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रिय-सप्तमनरक-मनोयोगौघ--वचनयोगौघ--मनोयोगस्योत्तरभेदचतुष्क--वचनयोगस्योत्तरभेदचतुष्क-विभङ्गज्ञान-देशविरतिमार्गणास्वेकोनत्रिंशति बन्धप्रायोग्यायुषां जघन्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य च योगस्थानभेदं विहाय सामान्यतस्तुल्यस्वामित्वेन योगस्थानेषु

जीवानां द्विगुणवृद्धिहानिप्ररूपणायां जीवयवमध्यमतोऽधस्तनद्विगुणहानिवृद्धिस्थानत उपरिवर्तिद्विगुणवृद्धिहानिस्थानानामसंख्येयैरधिकत्वाज्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकानां स्तोकत्वं ततो जघन्यप्रदेशबन्धकानामसंख्येयगुणत्वमिति, ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति ।

पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघे पञ्चेन्द्रियौघे त्रसौघे च देवनरकायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः संज्ञिपर्याप्ता भवन्ति, जघन्यप्रदेशबन्धकास्त्वसंज्ञिपर्याप्ताः संज्ञिपर्याप्तजीवेभ्योऽसंज्ञिपर्याप्तानां संख्येयगुणत्वेऽपि संज्ञिपर्याप्तयोगस्थानेभ्योऽसंज्ञिपर्याप्तानां योगस्थानान्यसंख्येयभागमात्राणि भवन्ति, अतस्तासु प्रतियोगस्थानं जीवा असंख्येयगुणाः प्राप्यन्ते, अतस्तयोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति इति । मार्गणात्रयेऽपि तिर्यग्मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, संज्ञिपर्याप्तानां तद्भावात्, ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, अपर्याप्तानां तल्लाभेन संज्ञिपर्याप्तेभ्यस्तेषामसंख्येयगुणत्वेन ज्येष्ठप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवेभ्यो जघन्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यजीवानामसंख्येयगुणत्वाद् बन्धकानामसंख्येयगुणत्वं विज्ञेयमिति, ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति । पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणा तिरश्ची-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियपर्याप्तत्रसकाय-स्त्रीवेद-पुरुषवेद-चक्षुर्दर्शनमार्गणासु चतुर्णामप्यायुषां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणा ततस्तृतीयपदस्य संख्येयगुणाः । भावना तु पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघे देवनरकायुर्बन्धकानां यथाकृता तथैव कार्या, केवलं पर्याप्तत्रसकाये पर्याप्तद्वीन्द्रियाणां चक्षुर्दर्शनमार्गणायां पर्याप्तचतुरिन्द्रियाणां तिर्यग्मनुष्यायुषोर्जघन्यप्रदेशबन्धस्य लाभेन तदपेक्षया भावना कार्येति ।

अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तपञ्चेन्द्रियाऽपर्याप्तत्रसकायमार्गणासु तिर्यग्मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकाः, संज्ञिनां तल्लाभात, ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां द्वीन्द्रियाणां च यथासंभवं तल्लाभात्, ततस्तृतीयपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा इति । संज्ञिमार्गणायां पुनर्देवनरकायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, भावना तु मनोयोगमार्गणावत्कार्या, ततस्तृतीयपदस्यासंख्येयगुणाः । तिर्यग्मनुष्यायुषोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाः स्तोकास्ततो जघन्यप्रदेशबन्धका असंख्येयगुणाः, भावना तु द्वीन्द्रियौघवद् मनोयोगवद् वा लब्ध्यपर्याप्तजीवानां पर्याप्तजीवेभ्यो न्यूनाऽधिकत्वमवबोध्य भावना कार्येति, सर्वत्र तृतीयपदस्याऽसंख्येयगुणत्वं पूर्ववद् बोध्यम् ॥५७२॥

तदेवमायुःसत्कचतुर्विधप्रदेशबन्धकानां मार्गणास्वल्पबहुत्वं समाप्तम् । इत्येवं गतं ज्येष्ठादिप्रदेशबन्धकानामल्पबहुत्वम् । गते च तस्मिन् समर्थितमल्पबहुत्वद्वारम् । तस्मिंश्च समर्थिते निष्ठितः पञ्चदशद्वारात्मकः प्रथमोऽधिकारः ।

इति श्रीप्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते बन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे प्रथमाऽधिकारे
पञ्चदशमल्पबहुत्वद्वारम् ।
प्रथमाऽधिकारः समाप्तः ।

* पूर्वार्धटीकाकृत्-प्रशस्तिः *

ऐन्द्रश्रेण्याभिवन्द्यं हृदयहरगिरं नाभिसूनुं जिनेन्द्रं, कापोतारक्षकारं परमभयकरं शांतिदं शांतिनाथं।
श्रीशैवेयं जिनेशं दुरितशमकरं योगिवृन्दे वरेण्यं, पार्श्वेशं त्रैशलेयं चरमजिनवरं भक्तिभावेन वन्दे
॥१॥ (स्रग्धरा)

भव्येभ्यः सुखदां जिनेन्द्रमुखजां वाचं निशम्योन्नतां, प्रव्रज्यां प्रतिपद्य वीरविभवे येनाऽर्पितं जीवनम्।
यन्नामाऽपि निहन्ति पापतिमिरं मार्तण्डरश्म्योघवद् ; वन्देऽहं गुरुगौतमादिगणिनां वृन्दं सदा
तन्मुदा॥२॥ (शार्दूल०)

भव्यप्राणिसरोरुहाकरविकासार्कप्रभासंनिभा, आसन् ये व्रतिनां महाव्रतमहारक्षाविधौ तत्पराः।
पूज्यैर्यैः प्रविनिर्मितश्च विविधप्रश्नोत्तरग्रन्थको, दानाख्या वरसूरयो विदधतु श्रेयः सतां संततं
॥३॥ (शार्दूल०)

तत्पट्टे जयति प्रशस्तचरणः श्रीप्रेमसूरिप्रभुः सेव्यः सार्धशतद्वयाधिकमुनिव्रातेन वात्सल्यभूः।
कर्मव्रातविदारणैकसुभटः सर्वत्र वै सम्मतः कर्मग्रन्थविचारणेऽतिचतुरः सिद्धान्तपारङ्गतः ॥४॥
(शार्दूल०)

सद्व्याख्याने वचनविभवो न्यायविद् यस्तपस्वी, योगे शूराः सुभटसदृशाः साधवो यं श्रिताश्च।
येनापास्तं भुवजनतमो ज्ञानदानप्रवृत्त्या, नः सूरीशो जयति भुवनाग्रः स भानुर्गणीशः ॥५॥
(मन्दाक्रान्ता)

स्थवीरस्सद्गणी चापि, प्रवर्तको गुणालयः। गणावच्छेदको यश्च गच्छे श्रीप्रेमसूरिणः ॥६॥
पद्मविजय सत्संज्ञः साधुशिक्षा समर्पकः। नमामि तं त्रियोगेन सहिष्णुशेखरं सदा ॥७॥
यो वाल्येऽपि भवोदधेर्मम पिता मे चाशुनिस्तारकश्चारित्रप्रतिपालने मयि सदा यस्यामितप्रेरणा।
संसारार्तिनिवारणान्निजपदं चक्रे कृतार्थं च यो भूयान्मुक्तिपथे मदीयगुरुराट् श्रीधर्मघोषाभिधः॥८॥
(शार्दूल)

जयघोषसाधुनोत्तरकर्मप्रकृतिप्रदेशबन्धस्य, प्रेमप्रभाविवृत्ती रचिता श्रीप्रेमसूरिकरुणातः ॥९॥
(गीति)

श्रीजम्बूसूरिवरैरागमपटुभिः शमादिगुणदीप्तैः। धर्मानन्दव्रतिना जितेन्द्रविजयेन संयमिना ॥१०॥
(आर्या)

प्राज्ञविजयान्वितजगच्चन्द्रश्रीवीरशेखरमुनिभ्याम्, यत्नात् शुद्धिर्विहिता विचक्षणैः सोपयोगैश्च॥११॥

सर्वज्ञागमतो यद् किञ्चिद् वितथं तथाऽपि ग्रन्थेऽस्मिन्, स्यादुक्तं तच्छोध्यं बहुश्रुतैर्मयि-
विधाय कारुण्यम्॥१२॥ (गीति)

ग्रन्थनिर्माणमेतत्तु पाथोधिमन्थनोपमं । सहाया मुनिराजा ये तान् स्मरामोऽत्र सादरम् ॥१३॥ (अनुष्टुप्)

नीरक्षीरविवेकेन विज्ञः सारजिघृक्षवः, ग्रन्थं कृतार्थयन्त्वेनमिति विज्ञापनाऽस्ति नः ॥१४॥ („)

आगमवितथोक्तस्याऽहं मिथ्यादुष्कृतं प्रवितरामि, अस्या निर्माणे यत् कुशलं सर्वे तकेन सुखिनः स्युः ॥१५॥ (गीतिः)



उत्तरप्रकृतिबन्धे प्रथमाधिकारः समाप्तः

उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे

भूयस्काराद्यधिकाराणि

॥ ॐ ह्रीं अर्हं नमः ॥

॥ श्री शङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

सकलागमरहस्यवेदि-परमज्योतिर्विच्छ्रीमद्विजयदानसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥

प्रवचनकौशल्याधार-सुविहिताग्रणी-गच्छाधिपति-परमशासनप्रभावक-सिद्धांतमहोदधि-

कर्मशास्त्रनिष्णाता-ऽऽचार्यदेवश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरपादानां पुण्यतमनि-

श्रायां तदन्तेवासिवृन्दविनिर्मितं मुनिश्रीजयघोषविजय-

धर्मानन्दविजय-वीरशेखरविजयसंगृहीत-

पदार्थकं मुनिश्रीवीरशेखरविजयविर-

चितमूलगाथाकं प्रेमप्रभाटीका-

विभूषितम्

पंयडिपेहाणं

तत्थ

(उत्तरपयडि-)

पएसबंधो

(उत्तरप्रकृति-प्रदेशबन्धः)

तत्र

मुनिश्रीगुणिचन्द्रविजयविरचितप्रेमप्रभाटीकाऽलङ्कृते उत्तरार्धे

॥ भूयस्कराद्यधिकाराः ॥

टीकाकारमङ्गलवचनानि

(प्रेमप्रभाटीका)

त्रिलोकाधिपतिं देवं, विश्वविश्वाऽभयप्रदम् ।

सुरासुरनरैः सेव्यं, वन्दे वीरविभुं वरम् ॥ १ ॥

अनुयोगधरान् धीरान्, विशुद्धज्ञानधारिणः ।
श्रीमद्गणभृतो वन्दे, मुदाऽहं मुक्तिकाम्यया ॥ २ ॥ [अनुष्टुप्]

विशुद्धशीलवान् यश्च, वात्सल्याब्धिर्गणाधिपः ।
शील्पी सुसाधुसङ्घस्य, श्रीसिद्धांतमहोदधिः ॥ ३ ॥ [,,]

सर्वसङ्घस्य श्रद्धेयः, सर्वमङ्गलसुखावहः ।
पूजितः सर्वसङ्घेन; सर्वसङ्घस्य मार्गदः ॥ ४ ॥ [,,]

कर्मशास्त्रनदीष्ण यो, विजयप्रेमसूरिराट् ।
देवंगतोऽपि सो भूयान् मद्रत्नत्रयवर्धकः ॥ ५ ॥ [,,]

विनेया विनितास्तस्य, तपोज्ञानक्षमाऽम्बुधयः ।
भानुविजयपंन्यासा, मयि सन्तु कृपापराः ॥ ६ ॥ [,,] (त्रिभिर्विशेषकम्)

तच्छिष्यं मद्गुरुं नित्यं, ज्ञानध्यानपरायणम् ।
वन्देऽहं भक्तिभावेन, अमरेन्द्राभिधं मुनिम् ॥ ७ ॥ [,,]

जयघोषोमुनि र्जीयाद्, धर्मानन्दोमुनिस्तथा ।
प्रेमप्रभारथेन्द्रस्य धुरिणौ दक्षिणेतरौ ॥ ८ ॥ [,,]

गाथाकारं मुनिं स्मृत्वा धीरशेखरसंज्ञकम् ।
भूयस्कारादिबन्धस्तु प्रदेशस्य वितन्यते ॥ ९ ॥ [,,]

यत्प्रसादाद् भवन्त्युच्चैः विद्वद्सेव्या जडा अपि ।
प्रज्ञां मे विमलां दद्यादाशुदेवी सरस्वती ॥ १० ॥ [,,]

अज्ञोऽहं प्रेमसूरीणां, प्रकृष्टप्रेरणावशाद् ।
विवरणेऽतिदुर्गेऽस्मिन्, प्रवृत्तोऽस्म्यतिसाहसात् ॥ ११ ॥ [,,]

संग्राहकाः पदार्थानां, सन्ति तेऽत्र यशस्विनः ।
येभ्यो ज्ञानं समादाय, भाषाबद्धं मया कृतम् ॥ १२ ॥ [,,]

इह खलु नरकतिर्यङ्नराऽमररूपे चतुर्गत्यात्मके संसारेऽनन्तानन्तजीवाः इतस्ततः जन्म-जरा-मरणादिविविधदुःखदावानलज्वाला परितप्ताः बम्भ्रमन्ति ।

जीवानामेतद्भवभ्रमणकारणं मुख्यतया कर्मसाहचर्यमेव । मुक्तात्मनां तु सकलकर्मविगमात् नास्ति जन्म-मरणादिसम्भवः । आत्मनः स्वाभाविकमनन्तसुखमनुभवन्तस्ते सदाकालं मुक्ता एव तिष्ठन्ति ।

अतः सकलकर्मविमुक्त्यर्थं सुदुर्लभं मानुषं सुकुलजन्मादिमोक्षसाधनानि च सम्प्राप्य स्वहितकांक्षिभिः सुरनरेन्द्रादिपूजितचरणारविंदेन सर्वज्ञवितरागभगवता तीर्थकृता सम्यगुपदिष्टो मोक्षमार्गः समाराधनीयः । स च सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्रलक्षणः ।

सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्रत्रयं प्रति द्रव्यानुयोगः अतिशयोपकारी भवति । तथाहि–द्रव्यानुयोगे नयप्रमाणादिभिः स्याद्वादशैल्या जीवादितत्त्वानां स्वरूपं संस्थापितमस्ति । यदध्ययनादस्माकं सम्यग्दर्शनं दृढतामुपैति । एवं द्रव्यानुयोगे नवतत्त्वादीनां सत्पदाद्यनुयोगद्वारैः विचार्यमाणत्वात् तदध्ययनस्य च संवेग-वैराग्यादिवृद्धिहेतुत्वात् सः सम्यग्ज्ञानवृद्धिहेतुः भवति । तथैव सम्यग्ज्ञानप्राप्त्या जगत्स्वभावस्य सम्यगवबोधात् तेन च रागादीनां निवर्तनद्वारेण एषः द्रव्यानुयोगः चारित्रं प्रत्यपि उपकारी एव ।

अस्मिन् द्रव्यानुयोगविषये ज्ञानसामर्थ्यशालिभिः पूर्वाचार्यैः अनेकविधग्रन्थाः विरचिताः सन्ति । तेषु कर्मग्रन्थ-कर्मप्रकृत्यादिग्रन्थाध्ययनाऽध्यापन चिन्तन मनन-परिभावनपराणां स्व-परोपकारकरणलालसानां, करुणापरीतचेतसां कर्मसाहित्यनिष्णात इति ख्यातिमतां संक्रमकरणप्रमुखाऽनेकग्रन्थप्रणेतॄणां परमगुरुवर्याणां श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराणां प्रेरणया मार्गदर्शनादिना च लब्धजन्माऽयंग्रन्थः । तत्रादौ "तत्थ चउविहो बन्धो पयइट्ठिइरसपएसभेअत्तो" इत्यादिकायां बन्धभेदप्रभेदप्रतिपादनपरायां गाथायां प्रकृतिबन्धः, स्थितिबन्धः, रसबन्धः, प्रदेशबन्धश्चेति बन्धस्य चातुर्विध्यं प्रदर्शितम् । पुनः प्रकृतिबन्धादिप्रत्येकविधबन्धा मूलोत्तरप्रकृतिभेदतो द्विविधाः प्रदर्शिताः ।

अत्र पर्यन्तमनुक्रमेण मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नः प्रकृति-स्थिति रसबन्धः प्ररूपितः । प्रदेशबन्धेऽपि मूलप्रकृतिप्रदेशबन्धः तथा उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे प्रथमोऽधिकारः प्ररूपितः ।

साम्प्रतम् "भूगारा" इत्यनेन ग्रन्थप्रारम्भे उद्दिष्टस्य भूयस्कारस्यावसरः । अत्र ह्यधिकारे उत्तरप्रकृतीनां भूयस्कारस्तदुपलक्षणादल्पतरः, अवस्थितः, अवक्तव्यश्चेत्येव चतुष्प्रकाराः प्रदेशबन्धविशेषाः सत्पदस्वामित्वादिद्वारेषु चिन्तनीयाः, अत उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धप्रारम्भे प्राक्संख्यामात्रेणोक्तानां त्रयोदशद्वाराणां नामधेयान्याविष्कुर्वन्नाह गाथायुग्मम्

> बीए भूओगारे अहिगारम्मि हविरे दुआराइं ।
> तेरस संतपयं तह सामीकालंतराइं च ॥१॥
> भंगविचयो य भागो परिमाणं खेत्तफोसणाउ तहा ।
> कालो अंतरभावा अप्पाबहुगं जहाकमसो ॥२॥

(प्रे०) "बीए भूओगारे" इत्यादि, उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धमधिकृत्योद्दिष्टेष्वधिकारेषु क्रमगते द्वितीये भूयस्काराऽभिधेयेऽधिकारे त्रयोदशद्वाराणि यथाक्रमशो भवन्तीति क्रियायोगः ।

तत्र द्वारनामानि तु "संतपयं" इत्यादिनाऽभिहितानि । ततश्चाद्यं (१) सत्पदद्वारम्, ततो (२) द्वितीयं स्वामित्वद्वारम्, (३) ततस्तृतीयमेकजीवाश्रितं कालद्वारम्, तत (४) एकजीवाश्रितमन्तरद्वारम्, (५) ततो भङ्गविचयद्वारम्, (६) ततो भागद्वारम्, (७) ततः परिमाणद्वारम्, (८) ततः क्षेत्रद्वारम्, ततः (९) स्पर्शनाद्वारम्, ततः (१०) कालद्वारम्, (११) ततोऽन्तरद्वारम्, (१२) ततो भावद्वारम्, (१३) ततस्त्रयोदशमल्पबहुत्वद्वारम् । अत्रापि गताधिकारवद्भङ्गविचयादीनि पञ्चमादीनि द्वाराणि नानाजीवानाश्रित्य प्ररूपयिष्यन्त इति बोध्यम् ।

एतेषु प्रथमस्य सत्पदद्वारस्य व्याख्या त्वेवम्—सन्ति विद्यमानानि पदानि भूयस्कारादिप्रदेशबन्धलक्षणानीति सत्पदानि तानि यत्र चिन्त्यन्ते तत्सत्पदद्वारम् । ओघतः सर्वजीवानाश्रित्य विशेषतः सप्तत्युत्तरशतमार्गणास्थानेषु चोत्तरप्रकृतीनां भूयस्कारादिचतुर्विधप्रदेशबन्धेभ्यः कियन्ति पदानि सन्तीत्यस्य प्ररूपणमिति भावः ॥१-२॥

अथ प्रथमे सत्पदद्वारे ओघतः सर्वप्रकृतीनां कियन्ति भूयस्कारादिनि पदानि सन्ति तन्निरूपणायाह

सव्वेसिं पयडीणं अत्थि पएसस्स चउविहो बंधो ।
भूगारो अप्पयरो अवट्ठिओ तह अवत्तव्वो ॥३॥

(प्रे०) "सव्वेसिं" इत्यादि, सर्वासां विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनामित्यर्थः । ताश्च प्रकृतय इमाः- ज्ञानावरणस्य पञ्च, दर्शनावरणस्य नव, वेदनीयस्य द्वे, मोहनीयस्य षड्विंशतिः, आयुषश्चतस्रः, नाम्न. सप्तषष्टिः, गोत्रस्य द्वे, अन्तरायस्य च पञ्चेति जातं विंशत्युत्तरशत प्रकृतीनाम् । एतासां सर्वासां प्रकृतीनां प्रदेशस्य बन्धो 'चउविहो" त्ति चतुर्विधोऽस्ति । तत्र प्रथमः "भूगारो" त्ति भूयस्कारो बन्धः, द्वितीयो "अप्पयरो" त्ति अल्पतरो बन्धः, तृतीयो "अवट्ठिओ" त्ति अवस्थितो बन्धः, तथा चतुर्थः "अवत्तव्वो" त्ति अवक्तव्यो बन्ध इति बोध्यम् ।

एवं प्रदेशबन्धेउत्तरप्रकृतीरधिकृत्यौघतो भूयस्कारादिबन्धप्रकारान् प्रतिपाद्य, किमेतेषां भूयस्कारादिबन्धानां स्वरूपमित्याशङ्कायां तेषां स्वरूपं प्रतिपादयन्नाह–

पुव्वसमयाउ समये अणंतरे बंधए पहुत्तयरं ।
बंधो स भूअगारोऽप्पयरं बंधइ स अप्पयरो ॥४॥
तावइयं चिअ बंधइ सो णायव्वो अवट्ठिओ बंधो ।
होउं अबंधगो उण बंधइ स हवइ अवत्तव्वो ॥५॥

(प्रे०) "पुव्वसमयाउ" इत्यादि, पूर्वसमयेऽल्पतरप्रदेशबन्धं कुर्वन् कश्चिज्जीवः पूर्वसमयादनन्तरसमये यदा "पहुत्तयरं" ति प्रभूततरमसंख्यभागादिदलिकैरधिकं प्रदेशबन्धं कुर्या-

पदे। तस्य स बन्धः प्रस्तुते भूयस्कारनामा "बंधो" त्ति प्रदेशबन्धो भवतीति परेणान्वयः। एवमुत्तरत्रापि त्रिष्वल्पतरादिषु बन्धेषु बोध्यम्।

अल्पतरबन्धस्य स्वरूपमाह–"ऽप्पयरं बंधइ" इत्यादि, अत्र लुप्ताऽकारस्य दर्शनात् "पुव्वसमयाउ समये अणंतरे" इत्यस्यानुवर्तनाच्च पूर्वसमये प्रभूतप्रदेशबन्धं कुर्वन् कश्चिज्जीवः पूर्वसमयादनन्तरे समये यदा "अप्पयरं बंधइ" त्ति 'अल्पतरम्' असंख्यभागादिहीनं प्रदेशं बध्नाति तदा तस्य सोऽल्पतरनामा प्रदेशबन्धो भवतीत्यर्थः। अवस्थितबन्धस्य स्वरूपमाह–"तावइयं चिअ बंधइ" इत्यादि, पूर्ववत् पूर्वसमये स्तोकदलिकमधिकदलिकं वा बध्नन् कश्चिज्जीवः पूर्वसमयादनन्तरे समये तावत् पूर्वसमयबद्धदलिकतुल्यमेव दलिकं बध्नाति, न पुनर्हीनमधिकं वेत्यर्थः। तस्य किमित्याह–"सो पाप्पुव्वो" इत्यादि, तस्य सोऽवस्थितनामा प्रदेशबन्धो ज्ञातव्य इत्यर्थः। अवक्तव्यबन्धस्वरूपमाह–"होउं अबंधगो उण" इत्यादि, पुनः शब्दोऽनन्तरोक्तबन्धत्रयस्वरूपापेक्षयाऽवक्तव्यबन्धस्वरूपस्य वैलक्षण्यद्योतकः, यतः पूर्वप्रकारत्रये तत्तद्भूयस्कारादिबन्धानां निर्वर्तको जीवस्तत्तद्बन्धसमयादनन्तरप्राक्समयेऽधिक–स्तोक–तुल्यान्यतमप्रदेशस्य बन्धक आसीत्, अत्र चरमप्रकारे त्वसावन्यतमस्यापि प्रदेशस्य बन्धको न गृह्यते किन्तु सर्वथाऽबन्धक एव, एतदेव दर्शयन्नाह–"होउं अबन्धगो" त्ति यः कश्चिज्जीवः विवक्षितसमये "अबन्धगो" त्ति तत्तन्मतिज्ञानावरणाद्युत्तरप्रकृतीनां प्रदेशबन्धमाश्रित्याबन्धकः सन् अनन्तरे समये "बंधइ" त्ति उत्कृष्टाद्यन्यतमप्रदेशं बध्नाति, "स एवइ अवत्तव्वो" त्ति अनन्तरसमये प्रदेशबन्धं प्रारभतस्तस्य तदानीं जायमानः प्रदेशबन्धोऽवक्तव्यनामा प्रदेशबन्धो भवति।

इदमत्र हृदयम्–भूयस्कारादिबन्धाः प्रभूतस्तोकतुल्यप्रमाणप्रदेशबन्धान्तरसापेक्षाः सन्तो भूयस्कारादिपदवाच्या भवन्ति, अबन्धादुत्तरसमये जायमानबन्धस्तु पूर्वसमये प्रदेशबन्धाभावात् भूयस्कारादिपदत्रयेण वक्तुमशक्य इति कृत्वाऽवक्तव्यपदेनैव व्यपदिश्यते। उक्तं च न्यायविशारदैः श्रीमन्महोपाध्यायैर्यशोविजयपूज्यैः कर्मप्रकृतिटीकायाम्–"यदा तु सर्वथैवाबन्धको भूत्वा भूयोऽपि बन्धादिकमारभते तदा स बन्धादेश्चतुर्थो भेदोऽवक्तव्यनामा भूयस्कारादिशब्देन वक्तुमशक्यत्वात्" इति।

आदिपदेनाऽत्र पाठे किं ग्राह्यमितिचेदुच्यते, आदिपदेनात्राऽवेदकानुदीरकासंक्रामकादिग्राह्यम्।

भूयस्कारादीनां लक्षणानि कर्मप्रकृत्यादिष्वपीत्थमभिहितानि, तथा चोक्तं कर्मप्रकृतौ क्रमेण तल्लक्षणानि प्रतिपादयद्भिः शिवशर्मसूरिपुङ्गवैः

"एगादहिगे पढमो एगाई ऊणगम्मि बिइओ उ। तत्तियमेत्तो तइओ पढमे समये अवत्तव्वो॥२२॥" इति।

इत्थं हि भूयस्कारादिलक्षणानां प्रदेशबन्धविशेषाणां स्वरूपे व्यवस्थिते प्रथमगाथयोक्तसत्पदानां भावना त्वेवं कार्या–अत्र भूयस्कारादिबन्धसद्भावने द्वौ हेतू। तत्रैकस्तावद्योगस्य हीना-

धिबन्धादिकम्, अर्थात् समानप्रकृतिबन्धस्थानमधिकृत्य योगस्थानस्य वृद्धिहान्यवस्थितयो भवन्ति । अत्र योगस्य वृद्धिर्हानिश्च चतुश्चतुष्प्रकारा संजायते । तद्यथा-(१) असंख्यातभागवृद्धिः, (२) संख्यातभागवृद्धिः, (३) संख्यातगुणवृद्धिः, (४) असंख्यातगुणवृद्धिश्च । एवं हानिरपि चतुष्प्रकारा । तद्यथा-(१) असंख्यातभागहानिः, (२) संख्यातभागहानिः, (३) संख्यातगुणहानिः, (४) असंख्यातगुणहानिश्च । यथा यथा योगो वर्धते तथा तथा प्रदेशबन्धस्यापि वृद्धिर्भवति । तद्यथा-कश्चिज्जीवो विवक्षितसमये कासांचिद्विवक्षितप्रकृतीनां विवक्षित प्रदेशान् बध्नाति तदन्तरसमये योगस्यासंख्येयभागादीनामन्यतमां वृद्धिं प्राप्तस्सन् ततोऽधिकान् प्रदेशान् बध्नाति; तदा तेन बध्यमानप्रकृतीनां भूयस्काराख्यः प्रदेशबन्धः प्राप्यते । यदि पुनरनन्तरसमये तस्य जीवस्य योगस्याऽसंख्यातभागाद्यन्यतमा हानिर्भवति तदा तु बध्यमानप्रकृतीनां प्रदेशबन्धो हीनहीनतरयोगानुसारेण हीनहीनतर एव भवति; अतस्तस्मिन्समये बध्यमानप्रकृतीनां प्रदेशस्याल्पतरो बन्धः प्राप्यते । अथ पूर्वसमयादुत्तरसमये यदा योगस्य तादवस्थ्यं भवेत्-वृद्धिर्हानिर्वा न भवेदित्यर्थः, तदा तु प्रदेशबन्धस्यापि वृद्धिर्हानिर्वा न संभवतः, अर्थात् पूर्वसमयेन तुल्य एव प्रदेशबन्धो भवति ।

एवं प्रदेशबन्धस्य तादवस्थ्येन तत्समये बध्यमानप्रकृतीनामवस्थितनामा प्रदेशबन्धः प्राप्यते इत्थं प्रदेशस्य भूयस्कारादिबन्धसमुद्भवने योगस्य वृद्धिहान्यवस्थानानां कारणत्वं निर्दिष्टम् ।

अथ प्रदेशस्य भूयस्कारादिबन्धसमुद्भवने यद् द्वितीयं कारणमन्यतमस्थिरैकयोगस्थानसत्त्वेऽपि बध्यमानप्रकृतीनां वृद्धिहानिरूपमस्ति तद्भाव्यते । तद्यथा-अवस्थितयोगेनाऽपि जीवेन पूर्वसमयबध्यमानप्रकृतिभ्यो यद्यनन्तरसमयेऽधिकाः प्रकृतयो बध्यन्ते तदा तासां पूर्वसमयापेक्षयाल्पः प्रदेशबन्धो भवति, प्रकृतिसंख्याधीनाया भाजकसंख्याया बृहत्वे भागफलस्य ह्रस्वत्वप्राप्तेः, भागफलाधीनो हि प्रदेशबन्ध इत्यसावपि ह्रस्वो भवतीति तु सुगमः । यदि पुनस्तेन पूर्वसमयबध्यमानप्रकृतिभ्य उत्तरसमयेऽल्पाः प्रकृतयो बध्यन्ते, तर्हि तासां प्रदेशबन्धः पूर्वसमयादधिको भवति, प्रकृतिसंख्याधीनाया भाजकसंख्याया ह्रस्वत्वभावात् । तथाच तासां तत्समये भूयस्कारो बन्धः प्राप्यते । इयमत्र भावना-कश्चिदवस्थितयोगी जीवो विवक्षितसमये आयुर्वर्जसप्तमूलप्रकृतीनां पञ्चपञ्चाशदाद्युत्तरप्रकृतीर्बध्नाति, पश्चादनन्तरसमये सप्तकर्मणस्तावतीरेव प्रकृतीर्बध्नन्नमावायुःकर्मणोऽपि बन्धं प्रारभते, अतस्तासां सप्तकर्मणामुत्तरप्रकृतीनां प्रदेशबन्धः पूर्वसमयादल्पो जायते । यतः पूर्वसमये बद्धदलिकाः सप्तमूलप्रकृतिषु विभक्ता आसन्, तेषां चोत्तरसमयेऽष्टमूलप्रकृतिषु विभजनात् पूर्वसमयादुत्तरसमये सप्तमूलप्रकृतीनां प्रत्येकं उत्तरप्रकृतितयाऽवाप्तदलिकान्यल्पल्पानि भवन्ति, तेनोत्तरसमये सप्तमूलकर्मण उत्तरप्रकृतीनामल्पतरः प्रदेशबन्धः प्राप्यते । आयुषस्त्वत्र पूर्वसमयेऽबन्धादुत्तरसमये च बन्धप्रारम्भात् तस्यावक्तव्यनामा प्रदेशबन्धः प्राप्यते । यदि चाऽऽयुःसहिता इति षट्पञ्चाशदादीः प्रकृतीर्बध्नन् आयुर्बन्धचरम-

समयप्रभृत्यवस्थितयोगी भूत्वाऽनन्तरसमये आयुषोऽबन्धको भवति, तदा पुनरायुर्वर्जसप्तमूलकर्मणामुत्तरप्रकृतितयाऽवाप्तदलिकभागस्य वर्धनात् तासां भूयस्कारो बन्धः प्राप्यते । पश्चात्तासां स बन्धो यावत्कालं तादवस्थ्येन-अहीनाधिक्येन तिष्ठति, तावत्कालं तासामवस्थितनामा प्रदेशबन्धः प्राप्यते इति ।

इदं भूयस्कारादिप्रदेशबन्धेष्ववस्थितयोगे सति प्रकृतीनां वृद्धिहान्योः कारणं यद् दर्शितम् , तदेवाऽधुनेतरथा दर्श्यते, तद्यथा-कश्चिज्जीवः पूर्वसमयादनन्तरसमये दर्शनावरणीय-मोहनीय-नामकर्मसत्कोत्तरप्रकृतिमध्याद् यदि स्वस्वाल्पप्रकृतीर्बध्नाति तदा तासां प्रकृतीनां प्रत्येकमधिकदलिकबन्धो भवति, भागहारप्रकृतीनामल्पत्वात् , तस्माच्च तत्समये तासां भूयस्कारो बन्धः प्राप्यते । एवं यदि सोऽनन्तरसमयेऽधिकाः प्रकृतीर्बध्नाति, तर्हि तासां पूर्वसमयबद्धप्रकृतीनामुत्तरसमयेऽल्पदलिकबन्धप्रभवनात्तासां तत्समयेऽल्पतरो बन्धः प्राप्यते भागहारप्रकृतीनामाधिक्यात् । अत्र मूलप्रकृत्यभिन्नोत्तरप्रकृतीनां वृद्धिहानिभ्यां भूयस्कारादयस्तु दर्शनावरणीयकर्मणो मोहनीयकर्मणस्तथा नामकर्मण उत्तरप्रकृतिष्वेव भवतः । शेषज्ञानावरणीयादिकर्मणामुत्तरप्रकृतिषु तु न, बन्धविच्छेदात्पूर्वं सर्वा समसंख्याका एव बध्यन्ते, इत्यतस्तासां वृद्धिहान्योरभवनात्तासां प्रदेशस्य भूयस्कारादिबन्धा स्वोत्तरप्रकृतिवृद्धिहानिभ्यां न भवन्ति किन्तु योगवृद्धिहानिभ्यां मूलप्रकृतीनां वृद्धिहानिभ्यां च भवन्तीति । मोहनीयादिषु त्वेवम्-यथाकश्चिन्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्ती जीवो मोहनीयकर्मणो द्वाविंशत्युत्तरप्रकृतीर्बध्नाति, तत्पश्चादनन्तरसमये यदा चतुर्थमविरतसम्यग्दृष्टिसंज्ञकं गुणस्थानकं स प्राप्नोति, तदा मिथ्यात्वमोहनीयमनन्तानुबन्धिचतुष्कं च विवर्ज्य शेषसप्तदशप्रकृती बध्नाति, एवं प्रकृतीनामल्पीभवनेन तत्र बध्यमानप्रकृतीनां स मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकापेक्षयाधिकदलिकान् बध्नाति, तदा तस्य तासां प्रकृतीनां भूयस्कारबन्धः जायते भागहारप्रकृतीनामल्पत्वात् । एवं यदा यदा स मोहनीयकर्मणोऽल्पाल्पप्रकृत्यात्मकानि बन्धस्थानानि बध्नाति तदा तदा तस्य शेषबध्यमानप्रकृतीनां प्रदेशबन्धवृद्धया भूयस्कारो बन्धः प्राप्यते भागहारप्रकृतीनामल्पाल्पतरादिभावात् । अथ वैपरीत्येनोपरितनगुणस्थानकेभ्यो यदा यदाऽधस्तनगुणस्थानकेषु स आगच्छति तदा तदा तस्याऽधिकाधिकप्रकृतीनां बन्धभवनाद्बध्यमानप्रकृतीनां प्रदेशबन्धोऽल्पाल्पतरो भवति भागहारप्रकृतीनामधिकाधिकतरभावात् । एवमवस्थितयोगे सत्येव यदा स पूर्वसमयबद्धप्रकृतीरुत्तरोत्तरसमयेष्वप्यव्यवच्छेदभावेन तावतीरेव बध्नाति तदा तस्या ऽवस्थितनामा बन्धो जायते इति । एवं यदा तस्याऽबन्धोत्तरं यासां प्रकृतीनां बन्धः पुनः प्रारभ्यते, तासां प्रकृतीनां बन्धप्रारम्भप्रथमसमयेऽवक्तव्यनामा प्रदेशबन्धो भवति ।

एवं नामकर्मणोऽपर्याप्तैकेन्द्रियजीवभेदप्रायोग्यत्रयोविंशतिं प्रकृतीः कश्चिज्जीवः पूर्वसमये बध्नाति, तत्पश्चादुत्तरसमये सोऽपर्याप्तत्रसप्रायोग्यपञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धं करोति तदा पूर्वसमयात्तासां प्रदेशबन्धोऽल्पो भवति, तस्मात्तदा तासामल्पतरो बन्धः प्राप्यते । इत्थं नामकर्मणोऽल्पा-

न्यबन्धस्थानेषु तथा दर्शनावरणीयकर्मणो बन्धस्थानेष्वनयैव रीत्या सर्वाऽपि भावना कार्येति । एवं प्रदेशस्य भूयस्कारादिबन्धसमुद्भवने इदं द्वितीयं कारणमपि प्रदर्शितम् ।

तदेवं प्रदेशस्यभूयस्कारादिबन्धसमुद्भवने एकं कारणं योगस्थानस्य वृद्धिहानी द्वितीयं चावस्थितयोगे सत्यपि बध्यमानप्रकृतीनां वृद्धिहानी इमे द्वेऽपि कारणे पार्थक्येन भूयस्कारादिहेतुतया वर्तेते इति चिन्तितम्, एवं समुदितेनाऽपि तद्धेतुतया वर्तेते, तद् भावना तु स्वयं विधेया ॥४॥५॥

इत्येवमुत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे भूयस्कारादिपदानां स्वरूपं सत्पदानि चौघतः प्रदर्श्याधुनाऽऽदेशतः मार्गणास्थानेषु भूयस्कारादिबन्धसत्पदानि व्याचिख्यासुराह

सव्वाणोघव्व तिणरदुपणिंदितसपणमणवयेसु तहा ।
कायउरलणयणेयरभविसण्णीसु तह आहारे ॥६॥

(प्रे०) "सव्वाणोघव्व" इत्यादि, "सव्वाण" त्ति सर्वासां विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनां प्रदेशबन्धो "तिणर" इत्यादिनोक्तेषु मार्गणाभेदेष्वोघवत् सामान्यवद्भवतीत्यर्थः । अत्र "तिणर" इत्यनेनापर्याप्तभेदवर्जास्त्रयो मनुष्यभेदाः, ते चेमे (१) मनुष्यसामान्यः (२) पर्याप्तमनुष्यः (३) मानुषी च, एतेषु त्रिषु मनुष्यगतिमार्गणाभेदेषु तथैव "दुपणिंदि" त्ति पञ्चेन्द्रियसामान्यमार्गणायां तथा पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां, द्विशब्दस्य "तस" इत्यत्रापि योजनादपर्याप्तभेदं त्यक्त्वा त्रसौघे पर्याप्तत्रसकायभेदे च तथा "पणमणवयेसु" त्ति पञ्चमनोयोगभेदाः पञ्चवचनयोगभेदास्तेषु, तथा काययोगसामान्यौदारिककाययोगमार्गणयोः "णयणेयर" त्ति चक्षुदर्शनमार्गणायां, तदितराचक्षुदर्शनमार्गणायां, भव्यमार्गणायां, 'सण्णी' त्ति संज्ञिमार्गणायां तथाहारिमार्गणायां, एतासु चतुर्विंशतिमार्गणासु प्रत्येकं सर्वासां विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनां प्रदेशबन्ध ओघवद् भूयस्कारादिचतुर्विधो भवतीत्यनुवर्तते । चतुर्विधो बन्धः सन्नित्यर्थः, सत्पदप्ररुपणायाःप्रस्तुतत्वात्, भूधातोः सत्तार्थकत्वाच्चेति । कुतः ? प्रस्तुतमार्गणासु श्रेणिद्वयस्यापि सत्त्वात् ॥६॥

साम्प्रतमुक्तशेषमार्गणासु भूयस्कारादिसत्पदानि विभणिषुः प्रथमं तावत्तदन्तर्गतनरकमार्गणाभेदेषु तान्याह

सव्वनिरयभेएसुं धुवबंधीणं इगूणचत्ताए ।
पंचिंदियुरलदुगपरघाऊसासतसचउगाणं ॥७॥
बंधो भूओगारो अप्पयरो तह अवट्ठिओ अत्थि ।
अत्थि चउविहो बंधो सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥८॥

(प्रे०) "सव्वनिरयभेएसु" इत्यादि, सर्वनरकगतिभेदेष्वेकस्तावत्सामान्यनरकगतिमार्गणाभेदः, तथा सप्त रत्नप्रभादिनरकभेदा एवमष्टसु नरकभेदेषु, तत्र कासां प्रकृतीनामित्याह—"धुवबंधीणं इगूणचत्ताए" त्ति ध्रुवबन्धिनीनां मिथ्यात्वस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिचतुष्कवर्जानामेकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनां तथा "पंचिंदिय" त्ति पञ्चेन्द्रियजातिः "उरलदुग" त्ति, औदारिकद्विकमौदारिकशरीर—औदारिकाङ्गोपाङ्गलक्षणं "परघा" त्ति पराघातनाम 'ऊसास' रूपुच्छ्वासनाम "तसचउगाणं" इति त्रसचतुष्कं-त्रस—बादर-पर्याप्त प्रत्येकनामकर्मलक्षणमिति-नवानां प्रकृतीनां च "बन्धो" त्ति प्रदेशबन्धो भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितश्चेत्येवं त्रिविधोऽस्तीति बोध्यम् । अवक्तव्यबन्धाभावे किं कारणमिति चेत् , उच्यते

नरकमार्गणायां जीवाः प्रथमादिचतुर्गुणस्थानकेषु वर्तन्ते; ते च एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीरवश्यमेव बध्नन्ति । तथा नारका नरकादुद्वृत्य संज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकेष्वेवोत्पद्यन्ते । तस्मात् सर्वेऽपि नारकाः पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकपराघातोच्छ्वास त्रसचतुष्क-नामान्यवश्यमेव बध्नन्ति, तेषां तिर्यङमनुष्येष्वेवोत्पत्तिसंभवादिति । तथा चासामष्टचत्वारिंशतः प्रकृतीनां बन्धविच्छेदाभवनादत्र तासामबन्धोत्तरबन्धरूपोऽवक्तव्यनामा बन्धो न भवतीति । "सप्पाउग्गाण सेसाणं" इति, स्वप्रायोग्याणां शेषाणामर्थात् नारकबन्धप्रायोग्याणामुक्तशेषाणां प्रकृतीनां प्रदेशबन्धो "चउविहो" त्ति भूयस्कारादि चतुष्प्रकारोऽस्तीत्यर्थः । ताश्च इमा उक्तशेषा नरकगतौ बन्धप्रायोग्याः प्रकृतय—मिथ्यात्वं, स्त्यानर्द्धित्रिकं -निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला--स्त्यानर्द्धिलक्षण, अनन्तानुबन्धिचतुष्कं; -अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभात्मकमित्यष्टौ ध्रुवबन्धिन्यः, तथाऽध्रुवबन्धिन्यस्तु पञ्चचत्वारिंशत् तद्यथा—वेदनीयस्य द्वे साताऽसातरूपे, मोहनीयस्य हास्यचतुष्कं-हास्यरत्यरतिशोकात्मक, तथा वेदत्रिकं पुंस्त्रीनपुंसकवेदलक्षणं, आयुषो द्वे नरायुस्तिर्यगायुश्च । नामकर्मणो द्वात्रिंशत्प्रकृतयस्तत्राऽष्टादशपिण्डप्रकृतयस्तद्यथा—गतिद्विकं मनुष्यगतितिर्यग्गतिलक्षणं; संहननषट्क, संस्थानषट्कं, खगतिद्विकं शुभखगत्य शुभखगत्यात्मकं, आनुपूर्वीद्विकं-मनुष्यानुपूर्वीतिर्यगानुपूर्वीरूपम् तथा द्वे प्रत्येकप्रकृती उद्योतनाम जिननाम च । तथा त्रसदसकमध्यात् स्थिर—शुभ-सुभग- सुस्वर आदेय--यशःकीर्त्तिनामानीति षट्प्रकृतयः, एवं स्थावरदशकमध्यात् षट्प्रकृतयः-अस्थिर-अशुभ-दुर्भग—दु:स्वर-अनादेय अयशः-कीर्त्तिनामानीति । तथा गोत्रस्य द्वे नीचैर्गोत्रोच्चैर्गोत्राऽख्ये । सर्वाश्चेमा मिलिता जाता पञ्चचत्वारिंशत् प्रकृतयः । एतासां पञ्चचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथाऽष्टध्रुवबन्धिप्रकृतीनामेवं त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितः, तथावक्तव्य इति चतुष्प्रकारोऽपि भवतीति फलनीयम् । चतुर्थादिनरकभेदेषु जिननाम्नो बन्धाभावाद्द्विपञ्चा-

शतः चतुष्प्रकारो बन्धो विज्ञेयः ॥७-८॥ एवं नरकगतिभेदेषु भूयस्कारादिमत्पदानि प्रकटीकृत्याधुना तिर्यग्गतिभेदेषु तान्येव प्रचिकटयिषुराह मूलकारः

तिरिये पणिंदियतिरियतिगे य धुवबंधिपंचतीसाए ।
तिविहो हवेज्ज बंधो, चउव्विहो अत्थि सेसाणं ॥९॥

(प्रे०) "तिरिये पणिंदिये" त्यादि, "तिरिये" त्ति तिर्यग्गत्योघमार्गणायां "पणिंदियतिरियतिगे य" त्ति पञ्चेन्द्रियतिर्यगत्रिके च, अर्थात् पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघः, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ् तथा तिरश्चीत्येतेषु त्रिषु भेदेषु च । चकारोऽत्र समुच्चये, एवं चतसृषु मार्गणासु ।

"धुवबंधिपंचतीसाए" त्ति ध्रुवबन्धिनीनां पञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनां, अर्थात् सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिमध्यात् कषायाष्टकं-अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कात्मकम्, तथा स्त्यानर्द्धित्रिकं-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानर्द्धिलक्षणं तथा मिथ्यात्वमोहनीयमित्येतद् द्वादशप्रकृतिषु वर्जितासु सत्सु शेषा याः पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयस्तासां "बन्धो" त्ति प्रकरणात् प्रदेशबन्धो "तिविहो" त्ति भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितश्चैवं त्रिप्रकारो विद्यते । आसां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धाभावे को हेतुरिति चेत्, षष्ठादिगुणस्थानकाभावेन तासामविरहेण बन्धसद्भावात् । "सेसाणं" ति उक्तपञ्चत्रिंशत्प्रकृतिवर्जितमार्गणाबन्धार्हशेषप्रकृतीनां, ताश्चेमाः-दर्शनावरणीयस्य स्त्यानर्द्धित्रिकं, वेदनीयस्य द्वे, मोहनीयस्य प्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्कं, तथा संज्वलनकषायचतुष्कं, भयं, जुगुप्सा चेति दशप्रकृतीर्विना शेषा षोडश प्रकृतयः, आयुषश्चतस्रः, नाम्नो वर्णादिचतुष्क,तैजसकार्मणशरीरे, अगुरुलघूपघात निर्माणनामानि तथा तिर्यग्गतिभेदेष्वाहारकद्विकस्य तथा जिननामकर्मणः सर्वथाऽबन्धात्तद्रहिताः, एवं द्वादशप्रकृतिरहिता नाम्नः शेषाः पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतयः, तथा गोत्रस्य द्वे उच्चैर्नीचैर्गोत्ररूपे, सर्वाश्चेमा मिलिता जाता द्व्यशीतिप्रकृतयः । एतासामुक्तशेषद्व्यशीतिप्रकृतीनां तु प्रदेशबन्धो भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितस्तथाऽवक्तव्य इति चतुष्प्रकारोऽस्तीति विज्ञेयम् ।

अत्र सप्ततिप्रकृतीनामध्रुवबन्धित्वादवक्तव्यबन्धो भवत्येव । तथाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्काऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-स्त्यानर्द्धित्रिक-मिथ्यात्वरूपद्वादशप्रकृतीनां देशविरत्यादेः पतनानन्तरं मिथ्यात्वादिगुणस्थानकप्रथमसमयेऽवक्तव्यबन्धो भवति ॥९॥

अधुना क्रमप्राप्ताऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणायां भूयस्कारादिबन्धसत्पदानि प्रतिपिपादयिषुस्तत्सदृग्बन्धवतीष्वन्यमार्गणास्वपि सममेव भूयस्कारादिबन्धसत्पदानि प्रतिपादयन्नाह

असमत्तपणिंदितिरियमणुसपणिंदियतसेसु सव्वेसुं ।
एगिंदियविगलिंदियपुहविदगवणप्फईसुं च ॥१०॥
सगचत्तालीसाए धुवबंधीणं तहा उरालस्स ।
तिविहो हवेज्ज बंधो चउव्विहो अत्थि सेसाणं ॥११॥

(प्रे०) "असमत्तपणिंदि" इत्यादि, "असमत्त" त्ति अपर्याप्त असमाप्तपर्याप्तिक इत्यर्थः । "पणिंदितिरिय" त्ति पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणायां, "असमत्त" इत्यस्य पदस्य "द्वंद्वादौ द्वंद्वान्ते च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते" इति न्यायेन त्रसान्तेषु प्रत्येकं योजनादपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणा तथा "मणुस" त्ति अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा तथा "पणिंदिय" त्ति अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा "तसेसु" त्ति अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा तासु, तथा "सव्वेसु" सर्वभेदेष्वस्य पदस्योत्तरत्रैकेन्द्रियादिषु वनस्पत्यन्तासु मार्गणासु प्रत्येकमन्वयात् सर्वैकेन्द्रियमार्गणाभेदाः, सर्वविकलेन्द्रियमार्गणाभेदाः, "पुहवि" त्ति सर्वे पृथ्वीकायभेदाः, "दग" त्ति सर्वेऽप्कायभेदाः, "वणप्फईसुं च" त्ति सर्ववनस्पतिकायभेदाःतेषु; इति सर्वसङ्ख्यया पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणाभेदेषु "सगचत्तालीसाए" त्ति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां "उरालस्से" त्यौदारिकशरीरनामकर्मणश्चेत्येतदष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितश्चैवं त्रिप्रकारो भवति । उक्तशेषप्रकृतीनां तु भूयस्कारादिचतुर्विधो बन्धः सम्भवति । इदमुक्तं भवति—अत्रोक्ताऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणासु मनुष्यतिर्यक्प्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धो भवति तथैतेषु मार्गणास्थानेषु स्थितानां जीवानां जीवसमासादिग्रन्थानुसारेण प्रथममेव गुणस्थानकं वर्तते । तस्मात्तेषां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनीनामौदारिकशरीरस्य च प्रदेशबन्धो नियमेन भवत्येव, अत एतासां प्रकृतीनामुक्तमार्गणास्वबन्धोत्तरजायमानबन्धलक्षणोऽवक्तव्यबन्धो नैव प्राप्यते, अर्थाद् भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितः, इत्येवं त्रिप्रकार एव बन्धः प्राप्यत इति ।

अधुना विंशत्यधिकशतप्रकृतिमध्य उक्ताष्टचत्वारिंशत्प्रकृतिरहिता याः शेषद्विसप्ततिः प्रकृतयः सन्ति तन्मध्याद्नरकत्रिक देवत्रिक वैक्रियद्विकरूपाष्टप्रकृतीनां बन्धाभावो देवनरकेषु तेषामुत्पादाभावादाहारकद्विकस्य तथा जिननाम्नो बन्धाभावः सम्यक्त्वाद्यभावाद् द्वासप्ततिमध्यादेकादशरहिता या एकषष्टिशेषप्रकृतयः सन्ति तासां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादि चतुर्विधो भवतीति । अथ काः पुनरेता एकषष्टिः प्रकृतयः ? इति चेद् , उच्यते, वेदनीयस्य द्वे मोहनीयस्य भयजुगुप्सावर्जितसप्तनोकषायाः, तिर्यङ्मनुष्यायुषी, नाम्नोऽत्र नरकद्विकदेवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकजिननामानीति नवप्रकृतयोऽबध्यमानाः, तथा ध्रुवबन्धिनश्च नवप्रकृतय औदारिकशरीरञ्चेत्येकोनविंशति-

प्रकृतिवर्जिताः शेषाऽष्टचत्वारिंशद्नामप्रकृतयस्तथा गोत्रस्य द्वे, मीलिताश्चैता एकपष्टिप्रकृतयः एतासां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिचतुर्विधोऽस्तीति ॥१०-११॥

इदानीं क्रमप्राप्तदेवगतिमार्गणाभेदेषु भूयस्कारादिबन्धसत्पदान्यभिधित्सुः प्रथमं तावद्देवौघे-सौधर्मेशानयोश्च तान्यभिदधदाह

सुरसोहम्मदुगेसुं धुवबंधीणं इगूणचत्ताए ।
उरलपरघायऊसासतित्थबायरतिगाणं च ॥१२॥
इइ छायालीसाए वन्धो तिविहोऽत्थि भूअगाराई ।
बंधो अत्थि चउविहो सेसाणं अट्ठवण्णाए ॥१३॥

(प्रे०) '**सुरसोहम्मदुगेसु**" इत्यादि, "**सुर**" त्ति सुरौघमार्गणायां "**सोहम्मदुगेसु**" त्ति सौधर्मसुरमार्गणायामैशानसुरमार्गणायां च । एतासु तिसृषु मार्गणासु चतुर्थगुणस्थानकसम्भवा नामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथौदारिकशरीर पराघातो च्छ्वास- जिननामकर्मणां तथा बादरत्रिकस्य बादर पर्याप्त प्रत्येक-लक्षणस्येति षट्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितः, इति त्रिविधो भवति । शेषाऽष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां तु भूयस्कारादिचतुर्विधो बन्धोऽस्तीति गाथार्थः ।

इदमत्र तात्पर्यम्-सौधर्मेशानदेवा ध्रुवबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिचतुष्कं स्त्यानर्द्धित्रिकं मिथ्यात्वं चैता अष्टप्रकृतीस्तृतीयादिगुणस्थानकेषु न बध्नन्ति, यत एताः प्रकृतयो यथार्हं मिथ्यात्वसास्वादनगुणस्थानक एव बध्यन्ते, देवानां च चतुर्थाविरतसम्यक्त्वगुणस्थानकमपि भवति, अत एतदष्टप्रकृतिवर्जितशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीस्ते नियमेन बध्नन्ति । तथा तेषामनन्तरभवे पर्याप्त मनुष्येषु पर्याप्तसंज्ञितिर्यक्ष्वथवा बादरपर्याप्तप्रत्येकैकेन्द्रियेष्वेवोत्पत्तेरपर्याप्तनामकर्मादिप्रतिपक्षप्रकृतिबन्धाभावात् त औदारिकशरीरस्य, पराघातस्य तथोच्छ्वासस्य च बन्धं नियमेन कुर्वन्ति । अत एतासां प्रकृतीनामवक्तव्यो बन्धो न भवति । जिननामकर्म त्वत्राऽपि केचन पूर्वभवे निकाचितं कृत्वैव सौधर्मेशानयोरुत्पद्यन्ते । तेषां तु निरन्तरबन्धित्वात्, तथा ये केचनाबद्धजिनकर्माणः सौधर्मेशानयोरुत्पद्यन्ते तेषां तु तत्र जिननाम्नो बन्धस्या-ऽऽरम्भात्तस्यावक्तव्यो बन्धो न प्राप्यते । तथाऽनन्तरभवे सूक्ष्मा-ऽपर्याप्त-साधारणलक्षणसूक्ष्मत्रिके तेषामनुत्पादात्तत्प्रतिपक्षीभूतं बादरत्रिकं ते नियमेन बध्नन्ति, अतो बादरत्रिकस्याऽप्यवक्तव्यबन्धो न भवति । एवमेतासां षट्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितश्चेति त्रिविध एव भवति । उक्तशेषप्रकृतीनां बन्धस्तु चतुर्विधो भवति । शेषप्रकृतयश्चेमाः स्त्यानर्द्धित्रिकम्, वेदनीयस्य द्वे, मोहनीयस्य हास्यादिचतुष्कं, वेदत्रिकं, अनन्तानुबन्धिचतुष्कं मिथ्यात्वं चेति द्वादशप्रकृतयः । तथा तिर्यग्मनुष्यायुषी नामकर्मणास्तिर्य-

गद्विकमनुष्यद्विकैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्कसंस्थानषट्कखगतिद्विकातपोद्योतरूपाःतथा त्रसदशकस्य बादरत्रिकरहिताः सप्त, तथा सूक्ष्मत्रिकरहिताः स्थावरदशकस्य सप्तेति नामकर्मणः सप्तत्रिंशत् प्रकृतयस्तथा गोत्रस्य द्वे, सर्वाश्चेता अष्टपञ्चाशत्शेषप्रकृतयः । एतासु कामाश्रितप्रकृतीनां स्वस्वप्रतिपक्षप्रकृत्या सह परावर्तमानत्वेन तासां बन्धोऽव्यवच्छेदेन न प्राप्यते, अर्थात्तासां विच्छेदः पुनर्बन्धश्चापि भवति, तस्मात्तासामवक्तव्यबन्धस्यापि प्रभवनाच्चतुर्विधो बन्धः प्राप्यते । यथा कश्चिज्जीवो वर्तमानसमये मनुष्यद्विकं बध्नाति, पश्चाद्यदा तिर्यग्द्विकस्य बन्धं प्रारभते तदा मनुष्यद्विकस्य विच्छेदः तिर्यग्द्विकस्य चावक्तव्यबन्धो भवति, तदनन्तरं तिर्यग्द्विकस्य विच्छेदे यदा पुनरपि मनुष्यद्विकं बध्नाति, तदा तस्य मनुष्यद्विकस्याऽवक्तव्यबन्धो भवति । एवमत्रोक्ताध्रुवबन्धिप्रकृतिषु स्वस्वप्रतिपक्षप्रकृतिभिः परावर्तमानतयाऽवक्तव्यबन्धसम्भवात्तासां भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितस्तथावक्तव्य श्चेति चतुष्प्रकारो बन्धो भवति । तथा मिथ्यात्वादिध्रुवबन्धिप्रकृतीनां गुणस्थानकपरावर्तनेन बन्धविच्छेदानन्तरं पुनर्मिथ्यात्वादिगुणस्थानकगमनेन पुनर्बन्धसम्भवात्तदवक्तव्यबन्धसद्भावः । अतस्तासां चतुर्विधो बन्धो भवति । इत्थमत्रोक्तमार्गणासु बध्यमानचतुरधिकशतप्रकृतीनां भूयस्कारादिबन्धः प्रोक्तः । शेषषोडशप्रकृतीनां त्वत्राऽबन्ध एवेत्यालोचनीयम् ॥१२-१३॥

अथ भवनपतित्रिके तथा वैक्रियकाययोगमार्गणायां बन्धसत्पदानि प्ररूपयति—

भवणतिगविउव्वेसु गुणचत्तधुवबंधिबायरतिगाणं ।
परघूसासुरलाणं तिहाऽत्थि चउहात्थि सेसाणं ॥१४॥

(प्रे०) "भवणतिगविउव्वेसु" इत्यादि, भवनपति-व्यंतर-ज्योतिष्कमार्गणासु तथा वैक्रियकाययोगमार्गणायामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा बादरत्रिकपराघातोच्छ्वासौदारिकशरीराणां प्रदेशबन्धस्त्रिविधोऽस्ति । उक्तशेषप्रकृतीनां तु चतुर्विधो भवतीत्यर्थः । इदमत्रावधेयम् -भवनपतिसुरमार्गणायां, व्यन्तरसुरमार्गणायां, ज्योतिष्कसुरमार्गणायां तथा वैक्रियकाययोगमार्गणायां--एतासु चतसृषु मार्गणासु ध्रुवबन्धिनीनां-पूर्ववदेकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनां तथा बादरत्रिकस्य-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकलक्षणस्य तथा पराघातोच्छ्वासौदारिकशरीरनामकर्मणामत्रोक्तचतुर्मार्गणामाश्रित्य ध्रुवबन्धित्वमेवाऽस्ति । अत एतासां पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनामत्रावक्तव्यबन्धो नैव भवति, भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितश्चैवं त्रिविध एव बन्धो भवति । उक्तशेषाऽष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां बन्धस्तु भवनपति-व्यंतर-ज्योतिष्कमार्गणासु भूयस्कारादिचतुर्विधः प्राप्यते । एता अष्टपञ्चाशत्शेषप्रकृतयः पूर्वगाथा तुल्या एव, तेनाऽत्र तासां नामानि पुन र्नाभिधीयन्ते । तथाऽत्र वैक्रियकाययोगमार्गणायां तु जिननाम्नोऽपि बन्धसम्भवादत्र शेषप्रकृतय एकोनषष्टिः प्राप्यन्ते, जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धस्तु नारकापेक्षया ज्ञेयः । भवनपतित्रिके च जिननाम्नोऽबन्ध एव भवतीति ज्ञातव्यम् ॥१४॥

सम्प्रति सनत्कुमारादिसहस्रारान्तेषु षट्सुरभेदेषु बन्धसत्पदानि विवरीषुराह गाथायुग्मम्--

तइआइसुरेसुं छसु धुवबंधीणं इगूणचत्ताए।
पंचिंदियुरलदुगजिणपरघूसासतसचउगाणं ॥१५॥
इइ गुणपण्णासाए बंधो तिविहोऽत्थि भूअगाराई।
बंधो बावण्णाए सेसाण चउव्विहो अत्थि ॥१६॥

(प्रे०) "तइआइसुरेसुं छसु" इत्यादि, सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-महाशुक्र-सहस्राराख्येषु षट्सु सुरमार्गणाभेदेषु ध्रुवबन्धिनीनामेकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनां तथा पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकजिननामपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्काणामित्येकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धस्त्रिविधो भवति। शेषद्विपञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धश्चतुर्विधो भवतीति गाथार्थः।

भावार्थ पुनरयम्--अत्र तृतीयकल्पादारभ्याऽष्टमकल्पान्तेषु षट्सु सुरभेदेष्वेकोनचत्वारिंशतो ध्रुवबन्धिनीना प्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियजात्यादिदशप्रकृतीनाञ्च प्रदेशबन्धोऽव्यवच्छेदेन भवति। तस्य कारणानि तु पूर्ववदेवाऽवगन्तव्यानि। नवरमत्र सनत्कुमारादारभ्य सहस्रारपर्यंतानां देवानामनन्तरभवे पञ्चेन्द्रियेष्वेवोत्पत्तेस्तेषां पञ्चेन्द्रियजातेस्त्रसनाम्नस्तथौदारिकाङ्गोपाङ्गस्य बन्धो नियमेन भवति। तस्मादेतासां तिसृणां प्रकृतीनां पूर्वं सौधर्मसुरमार्गणोक्तत्रिविधबन्धवतीनां षट्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां चेत्येकोनपञ्चाशतः प्रकृतीनां बन्धोऽत्र त्रिविधो भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितश्चेत्येवं त्रिप्रकारो भवतीति। एवमुक्तशेषप्रकृतयोऽपि सौधर्मसुरमार्गणावद्बोध्याः। नवरमत्र पञ्चेन्द्रियजातेरौदारिकाङ्गोपाङ्गस्य तथा त्रसनाम्नो बन्धो नियमेन भवति, तस्माच्च तत्प्रतिपक्षीभूतैकेन्द्रियजातेः, आतपस्य तथा स्थावरनाम्नोऽत्र सर्वथाऽबन्ध एव, तस्माच्छेषप्रकृतिष्वेताः षट्प्रकृतयः सौधर्मापेक्षयाऽल्पाः प्राप्यन्ते। तेनाऽत्र द्विपञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिचतुर्विधो भवतीति। हेतवस्तु पूर्ववद्भावनीयाः ॥१५-१६॥

अथ आनतादिसुरभेदेषु तदाचष्टे

तेराणताइगेसुं धुवबंधीणं इगूणचत्ताए।
णरुरलदुगपंचिदियजिणपरघूसासतसचउक्काणं ॥१७॥ (गीतिः)
इइ इगपण्णासाए बधो तिविहोऽत्थि भूअगाराई।
बंधो अत्थि चउविहो छायालीसाअ सेसाणं ॥१८॥

(प्रे०) "तेराणताइगेसु" इत्यादि, त्रयोदशसंख्याकास्वानतादिमार्गणास्वर्थात्-आनत-प्राणता-ऽऽरणा-ऽच्युतनामासु चतसृषु सुरमार्गणासु प्रथमादिनवग्रैवेयकसुरमार्गणासु चेति त्रयोदश-मार्गणाभेदेषु, अत्र कासां प्रकृतीनां भूयस्कारादिबन्धः कथ्यते ? इति । अत्रोच्यते-ध्रुव-बन्धिनीनामेकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनां तथा "णरुरलदुग" त्ति, अत्र द्विकशब्दस्य णर इत्यत्राऽपि योजनात् नरद्विकस्य-मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वीरूपस्य तथौदारिकद्विकस्य औदारिकशरीरौदारिका-ङ्गोपाङ्गलक्षणस्य, पञ्चेन्द्रियजातेः, जिन पराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कप्रकृतीनामिति, एकपञ्चाशत्प्रकृ-तीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिस्त्रिविधो भवति । शेषषट्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारा-दिचतुर्विधो भवतीत्यर्थः ।

अयमत्र भावः-अत्र सर्वाऽपि भावना पूर्ववदेवावगन्तव्या । यश्चाऽत्र विशेषः स उच्यते-अत्रो-क्तास्वानतादिमार्गणासु स्थितानां देवानां मनुष्येष्वेवोत्पादात्तेषां मनुष्यद्विकस्य बन्धो नियमेन भवति, तस्मादत्र पूर्वोक्तसुरभेदोक्तासु निरन्तरबन्धिनीष्वेतयोर्द्वयोः प्रकृतयोः प्रक्षेपणान्निरन्तर-बन्धिप्रकृतय एकपञ्चाशत्प्राप्यन्ते । तासां चात्राऽबन्धोत्तरबन्धप्रारम्भाऽभवनादवक्तव्यबन्धो न भवति । भूयस्कारः, अल्पतरः; अवस्थित इति त्रिविधः प्रदेशबन्धो भवति ।

उक्तशेषप्रकृतयोऽपि पूर्वगाथावदेवाऽत्र गृहीतव्याः, नवरमत्रानतादिमार्गणास्थितदेवानां मनुष्येष्वेवोत्पादात्मनुष्यद्विकस्य नियमेन बध्यमानत्वात् , तत्प्रतिपक्षीभूततिर्यक्त्रिकस्य तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वी-तिर्यगायुर्लक्षणस्य तथोद्योतस्याऽबन्धादेताभिः षट्प्रकृतिभीरहिता, या पूर्वगाथायामुक्ताः शेषषट्चत्वारिंशत्प्रकृतयस्तासां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिचतुर्विधो भवतीति विज्ञेयम् ।।१७-१८।।

अथ पञ्चानुत्तरसुरमार्गणासु मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां च भूयस्कारादिबन्धसत्पदानि प्रकट-यन्नाह-

सायाइछजुगलाण अणुत्तरमीसेसु चउविहो बंधो ।
पणऽणुत्तरेसु मणुसाउस्स वि तिविहोऽत्थि सेसाणं ॥१९॥

(प्रे०) "सायाइ" इत्यादि "अणुत्तरमीसेसु" त्ति विजयदेवमार्गणावैजयन्तदेवमार्गणा-जयन्तदेवमार्गणाऽपराजितदेवमार्गणासर्वार्थसिद्धदेवमार्गणा चेति पञ्चसु अनुत्तरदेवमार्गणासु तथा मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायामितिषट्सु मार्गणासु, तत्र कासां प्रकृतीनां भूयस्कारादिबन्धः कथ्यते ? इत्याह-"सायाइछजुगलाण" ति सातादिषड्युगलानां-साता-ऽसात-हास्यशोक-रत्यरति-स्थिराऽस्थिर-शुभाऽशुभ-यशःकीर्त्ययशः कीर्तिरूप-षड्युगलप्रकृतीनां "चउविहो बंधो" त्ति भूयस्कारादिचतु-र्विधः प्रदेशबन्धोऽस्तीति चरमचरणेन सहाऽन्वयः । "पणऽणुत्तरेसु" त्ति पञ्चाऽनुत्तरसुरभेदेषु "मणुसाउस्सवि" त्ति मनुष्यायुषोऽपि "चउविहो बंधो" इति पदस्यात्राप्यन्वयाद्भूयस्का-

गादिचतुर्विधः प्रदेशबन्धस्तस्य भवतीति गम्यते । "सेसाणं" त्ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां तत्र "तिविहो" त्ति त्रिविधोऽवक्तव्यबन्धरहितशेषस्त्रिविधो भूयस्कारादिप्रदेशबन्धोऽस्ति ।

इदमेव भाव्यते-अत्रोक्तपश्चानुत्तरसुरमार्गणावर्तिदेवानां मात्रचतुर्थमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकमेव वर्तते । तस्मात्ते तद्गुणस्थानबध्यमाना द्विसप्ततिः प्रकृतय एव बध्नन्ति । तन्मध्याच्च साता-वेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां तथा मनुष्यायुषस्तु चतुर्विधो भूयस्कारादि बन्ध उक्तः, तासां तत्र कादाचित्कत्वेन बध्यमानत्वात् । याः पुनरुक्तशेषा एकोनषष्टिप्रकृतयो बन्धयोग्याः सन्ति, तासां प्रथमं नामग्राहं कृत्वा तद्बन्धप्रकाराः कथ्यन्ते, तद्यथा-ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणस्य स्त्यानर्द्धित्रिकरहिताः षट्, मोहनीयस्याऽनन्तानुबन्धिचतुष्क--मिथ्यात्व-हास्य--शोक रत्यऽरतिस्त्रि-नपुंसकवेदवर्जिताः शेषाः पञ्चदशप्रकृतयः, नाम्नः मनुष्यद्विक पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विक तैजस-कार्मणशरीर-प्रथमसंहनन-प्रथमसंस्थान–सुखगति-वर्णचतुष्कानि, आतपोद्योतरहिताः षट्प्रत्येकप्रकृतयः, तथा त्रसदशकमध्यात्स्थिर-शुभ-यशःकीर्तिवर्जिताः सप्तप्रकृतयः, उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकञ्चेति सर्वसङ्ख्यया जाता एकोनषष्टिरुक्तशेषप्रकृतयः । तासामेकोनषष्टिप्रकृतीनां प्रदेशबन्धः पञ्चानुत्तरसुरमार्गणासु नियमेन भवनात्तासामबन्धोत्तरजायमानबन्धलक्षणोऽवक्तव्यबन्धो नैव सम्भवति, तस्मात् शेषभूयस्कारादित्रिविधो बन्धः कथितः । मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां पुनर्जिननामवर्जितोपर्युक्तानामष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां तथा देवद्विक-वैक्रियद्विकयोश्चेति द्वाषष्टिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धरहित-शेषःत्रिप्रकारो भूयस्कारादिबन्धो भवति । यतो मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायाः चतुर्गतिकेषु जीवेषु सम्भवेन ये मिश्रसम्यक्त्ववन्तः तिर्यङ्मनुष्याः सन्ति तेषां देवप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धसम्भवात्ते देवद्विक-वैक्रियद्विकयोर्बन्धं कुर्वन्ति । अतः पञ्चानुत्तरसुरमार्गणापेक्षया-ऽधिकानां मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां आसां चतुःप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्याऽप्राप्तेः, तासां शेषत्रिविधबन्धो ज्ञेयः । नन्वेतासां चतुष्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धोऽत्र कथं न सम्भवतीति चेत् । उच्यते–अत्रैताः प्रकृतीर्ये जीवा बध्नन्ति, ते एतन्मार्गणायां वर्तमानजीवाः तत्प्रतिपक्षप्रकृतीर्नैव बध्नन्ति, अर्थात् देवद्विक वैक्रियद्विकयोः अत्रापरावर्तमानत्वेन तासामबन्धोत्तरबन्धप्रारम्भलक्षणोऽवक्तव्यप्रदेशबन्धो न प्राप्यते । शेषः त्रिप्रकारको बन्धस्तु प्राप्यते । इत्थं मिश्रसम्यक्त्वमार्गणाया त्रिविधबन्धवत्यः प्रकृतयो द्वाषष्टिसंङ्ख्याकाः प्राप्यन्ते इति ज्ञेयम् ॥१९॥

एतर्हि सर्वतेजःकाय-वायुकायभेदेषु बध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारादिसत्पदानि प्रवक्ति

धुवबंधितिरिदुगउरलणीआणं सव्वतेउवाऊसु ।
तिविहो हवेज्ज बंधो, चउव्विहो अत्थि सेसाणं ॥२०॥

(प्रे०) "धुवबंधि" इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, "तिरिदुग" त्ति तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकम्, "उरल" त्ति औदारिकशरीरम् "णीआणं" त्ति नीचैर्गो-

श्रम्-इत्येकपञ्चाशत्प्रकृतीनां सर्वतेजःकायमार्गणाभेदेषु सर्ववायुकायमार्गणाभेदेषु चेति चतुर्दश-मार्गणाभेदेष्ववक्तव्यरहितशेषभूयस्कारादित्रिविधो प्रदेशबन्धो भवितुमर्हति । उक्तशेषबध्यमानचतुष्पञ्चाशत्प्रकृतीनां तु भूयस्कारादिचतुर्विधोऽपि बन्धो जायत इति ।

इदमत्र तात्पर्यम्-तेजःकाय-वायुकायजीवानामनन्तरभवे तिर्यग्गतिष्वेवोत्पत्तेस्ते सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयस्तथा तिर्यग्गतिप्रायोग्य-तिर्यग्द्विकौदारिकशरीर-नीचैर्गोत्राण्यवश्यं बध्नन्ति तत्प्रतिपक्षाणां प्रकृतीनां तत्राऽबन्धात् । नन्वत्रौदारिकशरीरवदौदारिकाङ्गोपाङ्गस्य नियमेन बन्धः कथं नोक्तः ? उच्यते, तेजोवायुकायिकानामनन्तरभवे तिर्यग्योन्यन्तर्गतैकेन्द्रियजाताबप्युत्पत्तिसद्भावात् , एकेन्द्रियाणां चाङ्गोपाङ्गस्याऽभावाद्यदा तेजोवायुकायिका यदा एकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धं कुर्वन्ति तदा तेषामौदारिकाङ्गोपाङ्गस्य बन्धाऽसम्भवेनाऽत्र तस्य नियमेन बन्धोऽनुक्त इति । अत्रोक्तध्रुवबन्ध्याद्येकपञ्चाशत्प्रकृतीनां नियमेन बन्धभवनादत्र तासामबन्धस्याऽप्राप्तेरबन्धोत्तरजायमानबन्धस्वरूपोऽवक्तव्यबन्धो नाऽऽयाति । शेषो भूयस्कारादित्रिविधबन्धो भवितुमर्हत्येव । अत्र बध्यमानबन्धा उक्तशेषप्रकृतयः का इति चेदुच्यते, वेदनीयस्यद्वे साताऽसातरूपे, भयजुगुप्सारहितशेषसप्तनोकषायाः, तिर्यगायुः, नाम्नो जातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्गसंहननषट्क-संस्थानषट्क-खगतिद्विक-पराघातो-च्छ्वास-आतपो-द्योत-त्रसदशक-स्थावरदशकानि चेतिचतुष्पञ्चाशद्बध्यमानशेषप्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिचतुर्विधो विज्ञेयः । यत एतासां प्रकृतीनां परावर्तमानतयाऽध्रुवबन्धभवनादबन्धोत्तरबन्धरूपोऽवक्तव्यबन्धोऽप्यत्र प्राप्यते । अन्यस्त्रिविधभूयस्कारादिबन्धस्तु पूर्वोक्तस्वस्वकारणवशादेवाऽत्र भवितुमर्हति । इत्थमत्र चतुष्पञ्चाशत्प्रकृतीनां भूयस्कारादिचतुष्प्रकारः प्रदेशबन्धो भवनार्होऽस्तीति ज्ञेयम् ।

अथौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारादिसत्पदानि समादिशन्नाह

बंधोऽत्थि उरलमीसे तिहा छचत्तधुवबंधिउरलाणं ।
सुरविउवदुगजिणाणं, भूगारोऽत्थि चउहाऽण्णेसिं ॥२१॥

(प्रे०) "बंधो" इत्यादि, "उरलमीसे" त्ति औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां छचत्तधुवबंधिउरलाणं" इति षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, औदारिकशरीरञ्च तासां इति सप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धः "तिहा" त्ति त्रिधाऽस्ति । "सुरविउवदुगजिणाणं" इति सुरद्विक-वैक्रियद्विक-जिननाम्नां "भूगारोऽत्थि" त्ति एको भूयस्कारबन्ध एवाऽस्ति । "अण्णेसिं" इति अन्यासामुक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां "चउहा" त्ति चतुर्धा भूयस्कारादिप्रदेशबन्धोऽस्ति । नन्वत्रावक्तव्यरहित-भूयस्कारादित्रिविधबन्धयुक्ताः प्रकृतयो ध्रुवबन्धिनीमध्यान्मिथ्यात्वरहित

षट्चत्वारिंशदुक्ताः, तदत्र मिथ्यात्वस्याग्रहणे किं कारणमिति चेत् उच्यते, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणास्थितजीवेषु मिथ्यात्व-सास्वादना-ऽविरतसम्यग्दृष्टि-सयोगीकेवलीरूपं गुणस्थानचतुष्कं वर्तते । अत औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां ये जीवाः सास्वादनगुणस्थानकात्प्रथममिथ्यात्वगुणस्थानकं यदा गच्छन्ति तदा मिथ्यात्वस्य बन्धं प्रारभन्ते । इत्थं मिथ्यात्वस्याऽबन्धोत्तरबन्धसम्भवेन तदवक्तव्यबन्धस्याऽपि सद्भावादत्राऽवक्तव्यरहितत्रिविधबन्धवत्यो ध्रुवबन्धिप्रकृतयो मिथ्यात्वरहितशेषषट्चत्वारिंशदेवोक्ताः ।

नन्वध्रुवबन्धिनीमध्यादौदारिकशरीरस्य त्रिविधो बन्ध उक्तः, तत्रौदारिकशरीरस्यावक्तव्यबन्धाऽकथने किं कारणमिति चेदुच्यते,—अत्रौदारिकमिश्रमार्गणायां ये जीवाः प्रथम-द्वितीयगुणस्थानकयो वर्तन्ते, तेषां तिर्यङ्मनुष्यप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धसद्भावात्ते औदारिकशरीरस्य बन्धं नियमेन कुर्वन्ति । सम्यग्दृष्टिनां तु औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां औदारिकशरीरस्य बन्ध एव नास्ति तेषां देवप्रायोग्यबन्धकत्वात् अत एवाऽत्रौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनीनां तथा औदारिकशरीरस्यापरावर्तमानबन्धभवनेन तासां बन्धविच्छेदानन्तरबन्धस्वरूपावक्तव्यबन्धाऽसंभवात्शेषत्रिविधो भूयस्कारादिप्रदेशबन्धो जायते । एतत्त्रिविधबन्धसमुद्भवने तु पूर्वोक्तस्वरूपाणि योगस्य वृद्धि-हान्यवस्थित्यादीनि कारणान्यत्रोत्तरत्राऽपि चाभ्यूह्यानि । सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नामिति पञ्चप्रकृतीनां भूयस्कार बन्धस्यैव सद्भावः । निरूढमार्गणायां करणापर्याप्तावस्थायां सम्यग्दृष्टिभिरेव सुरद्विकादीनां बध्यमानत्वादपर्याप्तावस्थायां च योगस्य प्रतिसमयमसंख्येयगुणवृद्धेः । यद्यपि लब्ध्यपर्याप्तस्य यदा स्वीयाऽऽयुषस्तृतीयभागोऽवशिष्यते, तदनन्तरं तस्य परावर्तमानयोगस्य प्राप्ति र्भवति तथापि नोक्तप्रकृतीनामल्पतरा-ऽवस्थितबन्धौ लब्ध्यपर्याप्तजीवेन निर्वर्त्येते, तेषां लब्ध्यपर्याप्तजीवानां मनुष्यतिर्यग्प्रायोग्याणामेव बन्धादत्र सुरद्विकादिप्रकृतीनां मात्र भूयस्कारप्रदेशबन्ध एव भवितुमर्हति, नत्वल्पतरादिप्रदेशबन्धः । तथा चाऽत्रौदारिकमिश्रमार्गणायां या उक्तशेषद्विषष्टिप्रकृतयो बन्धयोग्याः सन्ति, तासां प्रदेशबन्धस्तु भूयस्कारादिचतुष्प्रकारोऽपि भवितुमर्हति । उक्तशेषप्रकृतयश्चेमाः—वेदनीयद्विकम् , मोहनीयस्य भयजुगुप्सारहितशेषसप्तनोकषायाः मिथ्यात्वमोहनीयं च, तिर्यग्मनुष्यायुषी, नाम्नो मनुष्यद्विक-तिर्यग्द्विक-जातिपञ्चकौदारिकाङ्गोपाङ्ग-संहननषट्क—संस्थानषट्कखगतिद्विकपराघातोच्छ्वासातपो-द्योत-त्रसदशकस्थावरदशकानि तथा गोत्रद्विकम् चेति । आसां सर्वसंख्यया द्विषष्टेरुक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां परावर्तमानत्वेन तासां बन्धविच्छेदः पुनर्बन्धश्च संभवति; तस्मात्तासामवक्तव्यबन्धो भवितुमर्हति । शेषाः भूयस्कारादित्रिबन्धा अपि स्वस्वकारणवशादत्र भवनयोग्या एव । अतः चतुर्विधोऽपि प्रदेशबन्ध उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां संजायत इति कलनीयम् ।

एतर्हि क्रमप्राप्तवैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारादिसत्पदान्याह–

विक्कियमीसम्मि उरलछचत्तधुवबंधिबायरतिगाणं ।
परघूसाससजिणाणं भूओगारो दुहाऽत्थि सेसाणं ॥२२॥ (गीतिः)

(प्रे०) "विक्किय" इत्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां "उरल" त्ति औदारिकशरीरम् "छचत्तधुवबंधि" त्ति मिथ्यात्वरहितषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, "बायरतिगाणं" त्ति बादरपर्याप्तप्रत्येकभेदभिन्नं बादरत्रिकं-तेषां "परघूसाससजिणाणं" त्ति पराघातोच्छ्वासजिननाम्नां चेति त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धमाश्रित्य एको भूयस्कारबन्ध एव भवनार्हो विद्यते । "सेसाणं" ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां "दुहाऽत्थि" त्ति द्विधाऽस्ति, भूयस्कारोऽवक्तव्यश्चेति द्विप्रकारकःप्रदेशबन्धो विद्यत इत्यर्थः ।

इदमत्रावधेयम्–वैक्रियमिश्रमार्गणा देवनारकाणां एवापर्याप्तावस्थायां भवितुमर्हति; तत्र च तेषां योगस्य प्रतिसमयमसङ्ख्यगुणवृद्धेरेव सद्भावादत्रोक्तमिथ्यात्वरहितषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्ध्यादिप्रकृतीनां भूयस्कारबन्ध एव प्राप्यते ।

अत्रोक्तप्रकृतिवर्जिता याः शेषबध्यमानप्रकृतयः सन्ति तासां तु प्रदेशबन्धो भूयस्कारोऽवक्तव्यश्चेति द्विविधो भवितुमर्हति । उक्तशेषप्रकृतयश्चेमाः–वेदनीयद्विकम् , मिथ्यात्वं, भयजुगुप्सावर्जितसप्तनोकषायाः; नाम्नो मनुष्यद्विक-तिर्यग्द्विकै-केन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्ग-संहननषट्क-संस्थानषट्क-विहायोगतिद्विका-तपोद्योतनामानि, त्रसदशकस्य बादरत्रिकरहिताः सप्त, स्थावरदशकस्य सूक्ष्मत्रिकरहिताःसप्त, गोत्रस्य च द्वे । आसां सर्वसंख्यया एकोनपञ्चाशदुक्तशेषप्रकृतीनामेकः पूर्वोक्तकारणमनुसृत्य भूयस्कारबन्धः प्रवर्तते, अन्यश्चैतासां मिथ्यात्वव्यतिरिक्तप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धप्रवर्तनान्मिथ्यात्वस्य तु सास्वादनान्मिथ्यात्वगमनेनाऽबन्धोत्तरबन्धलक्षणोऽवक्तव्यबन्धोऽप्यत्र प्राप्यते । इत्युक्तशेषप्रकृतीनामत्र भूयस्कारावक्तव्याख्यौ द्वौ बन्धौ भवनार्हौ स्त इति ज्ञेयम् ॥२२॥

सम्प्रति आहारककाययोगमार्गणायां देशविरतसंयममार्गणायां च भूयस्कारादिसत्पदानि समर्थयन्नाह–

आहारगदेसेसुं सायाइछजुगलजिणसुराऊणं ।
बंधो अत्थि चउद्धा, सेसाण तिहा मुणेयव्वो ॥२३॥

"आहारगदेसेसु" इत्यादि, आहारककाययोगमार्गणायां, देशविरतसंयममार्गणायां च "सायाइछजुगलजिणसुराऊणं" ति साताऽसात-स्थिराऽस्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्त्यऽयशःकीर्तिहास्यरत्यरतिशोकात्मकषड्युगलानि, जिननाम, सुरायुश्चे-त्येतेषां "बन्धो" त्ति प्रकृतत्वात्प्रदेश-

बन्धो "चउद्धा" त्ति चतुर्धा-भूयस्कारादिचतुष्प्रकारो विद्यते । "सेसाण" त्ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां तु "तिहा" त्ति अवक्तव्यरहितस्त्रिविधः प्रदेशबन्धो ज्ञातव्य इति ।

अयमत्राऽऽशयः—उक्तसातादिषड्युगलानां परावर्तमानप्रकृतित्वादत्र तेषां बन्धोऽनियमेन प्रभवति, अतस्तेषामबन्धोत्तरबन्धरूपो-ऽवक्तव्यबन्धोऽपि भवितुमर्हति । तथा जिननामसुरायुषो-रत्रोक्तमार्गणयोर्मध्यकालेऽपि बन्धप्रारम्भसद्भावात्तयोरप्यऽबन्धोत्तरबन्धसम्भवेनाऽवक्तव्यप्रदेशबन्धः प्राप्यते । तथैवैतासां षड्युगलादिचतुर्दशप्रकृतीनां शेषत्रिविधो भूयस्कारादिप्रदेशबन्धोऽपि स्वस्वकारणवशादत्र भवितुं युज्यते, तस्मात्तासां चतुर्विधः प्रदेशबन्धोऽस्ति ।

उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां प्रदेशबन्धोऽत्र नियमेन जायते । अतस्तासामबन्धोत्तरबन्धाऽसंभवेनाऽवक्तव्यप्रदेशबन्धो नाऽऽयाति । किन्तु शेषत्रिविधभूयस्कारादिबन्ध एव भवितुमर्हति । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतयश्चैताः—ज्ञानावरणपञ्चकम् , दर्शनावरणस्य स्त्यानर्द्धित्रिकरहिताः-षट्प्रकृतयः, मोहनीयस्य संज्वलनचतुष्कपुरुषवेदभयजुगुप्साः, नाम्नो देवद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति वैक्रियद्विक-तैजसकार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान- वर्णादिचतुष्क -शुभखगतिनामानि, प्रत्येकप्रकृतिभ्य आतपोद्योतजिनरहिताः पञ्च, त्रसदशकस्य स्थिर-शुभ-यशःकीर्तिवर्जिताः सप्त, उच्चैर्गोत्रमन्तरायपञ्चकञ्चेति । एतासामेकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनामाहारककाययोगमार्गणायामवक्तव्यरहितः शेषत्रिविधो भूयस्कारादिबन्धो विज्ञेयः । देशविरतसंयममार्गणायां चोपयुक्तानामेकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रत्याख्यानचतुष्कस्य चेति त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनामवक्तव्यरहितस्त्रिविधप्रदेशबन्धो भवितुमर्हति तासां तत्र नियमेन बध्यमानत्वादिति ॥२३॥

अधुनाऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां भूयस्कारादिसत्पदानि निगदन्नाह—

आहारमीसजोगे भूओगारो तहा अवत्तव्वो ।
चउदससायाईणं सेसाणं अत्थि भूगारो ॥२४॥

(प्रे०) "**आहारमीस**" इत्यादि, आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां "**चउदससायाईणं**" ति पूर्वगाथोक्तसातादिचतुर्दशप्रकृतीनां भूयस्कारबन्धस्तथाऽवक्तव्यबन्ध इति द्विप्रकारक एव प्रदेशबन्धोऽस्ति । उक्तशेषसम्भाव्यमानबन्धानां प्रकृतीनां त्वेको भूयस्कारो बन्ध एव भवनयोग्योऽस्ति ।

इदमत्र हृदयम् -अत्राऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणायामपर्याप्ताऽवस्थायामिव योगस्य प्रतिसमयमसङ्ख्यगुणवृद्धेरेव भवनादेतन्मार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनां प्रतिसमयं भूयस्कारबन्धो जायते, अल्पतरावस्थितबन्धौ तु तद्धेत्वऽभावादत्र नैव जायेते । अवक्तव्यबन्धश्चात्रोक्तचतुर्दशप्रकृतीनामेव भवति । कथमेतदवसीयते ? कथ्यते, अत्रोक्तसातासातहास्यशोक-रत्यऽरतिस्थिराऽस्थिर शुभाऽ-

शुभ-यशःकीर्त्यऽयशकीर्तिरूपद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धभवनात्तासामवक्तव्यबन्धः संभवति, जिननामसुरायुषोरत्र नूतनबन्धसम्भवादवक्तव्यबन्धः संभवः, एवमेतासां चतुर्दशप्रकृतीनां भूयस्काराऽवक्तव्यबन्धाविति द्विप्रकारकः प्रदेशबन्धः संजायते ।

- उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां त्वत्र नियमेन बन्धभवनेनाऽवक्तव्यबन्धासंभवात्तासामेको भूयस्कारबन्ध एव जायते ।

ताश्चोक्तशेषबध्यमानप्रकृतयोऽत्र आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां काः इति चेत्, उच्यते—या अनन्तरपूर्वगाथायामाहारककाययोगमार्गणायां त्रिविधबन्धवत्य एकोनपञ्चाशदुक्तशेषप्रकृतयः कथिताः ता एवोक्तशेषप्रकृतयोऽत्राऽपि ग्रहणीयाः । किन्त्वत्र तासामेकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां भूयस्कारनामा एक एव प्रदेशबन्धः सम्भवतीति विशेषः । तत्कारणानि तु पूर्वमेवोक्तानीति ॥२४॥

अथ कार्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां च भूयस्कारादिबन्धसत्पदानि व्याचष्टे -

कम्माणाहारेसुं छायालीसधुवबंधि उरलाणं ।
सुरविउवदुगजिणाणं, भूओगारो दुहाऽत्थि सेसाणं ॥२५॥ (गीतिः)

(प्रे०) "कम्माणाहारेसुं" इत्यादि, कार्मणकाययोगमार्गणायां, अनाहारकमार्गणायाञ्च, मिथ्यात्वरहितषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीर-सुरद्विकवैक्रियद्विक-जिननाम्नां चेति द्विपञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्काराभिधो एकविध एवाऽस्ति । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां त्वत्र भूयस्कारोऽवक्तव्यश्चेति द्विप्रकारको भवति ।

इदमत्र हृदयम्-अत्र कार्मणकाययोगमार्गणायां तथाऽनाहारकमार्गणायां उक्तषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्ध्यादिप्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्काराभिधो एक एव संभवति यत तद्बन्धकानां त्रिसमयस्थितिके एते द्वे मार्गणे अपर्याप्तावस्थायां संभवतः । तत्र च प्रतिसमयं योगस्याऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिभवनादुक्तद्विपञ्चाशत्प्रकृतीनां भूयस्कारबन्ध एव प्राप्यते । योगस्य हान्यवस्थित्योरत्राऽसंभवादल्पतराऽवस्थितबन्धयोरत्रानुद्भव एव । अवक्तव्यबन्धस्याऽप्यऽसंभव एव, उक्तप्रकृतीनामत्र नियमेन बध्यमानत्वात् । अत्र सुरद्विकादीनामवक्तव्यबन्धाभावे घटना त्वौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणावत्कार्या तथा ध्रुवबन्धिप्रकृतिषु मिथ्यात्वस्य वर्जने भावनादिकमपि तत्रत्यवत्कार्यम् ।

उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारः, अवक्तव्यश्चेति द्विप्रकारको भवितुमर्हति । ता उक्तशेषबध्यमानप्रकृतयोऽत्र का इति चेत्, उच्यते—वेदनीयद्विकम्, मोहनीयस्य भय-जुगुप्सावर्जितशेषसप्तनोकषायाः मिथ्यात्वं च, नाम्नः मनुष्यद्विक-तिर्यग्द्विकैकेन्द्रियादिपञ्चजात्यौदारिकोपाङ्ग- संहननषट्क-संस्थानषट्क खगतिद्विक-पराघातो च्छ्वासाऽऽतपो-द्योत त्रसदशक-स्थावर-

दशकानि, गोत्रद्विकञ्चेति उक्तशेषषष्टिप्रकृतीनां भूयस्कारबन्धस्तु पूर्वोक्तकारणवशाद्भवत्येव, नवरमेतासां परावर्तमानबन्धप्रभवत्वेन मिथ्यात्वस्य तु नूतनबन्धसद्भावादऽबन्धोत्तरबन्धस्याऽपि प्राप्तेस्तदवक्तव्यप्रदेशबन्धोऽपि भवनार्होऽस्तीति द्विधा प्रदेशबन्धो तासां विज्ञेयः ॥२५॥

अथ पुरुषवेदादित्रिवेदमार्गणासु क्रोधमार्गणायां च भूयस्कारादिसत्पदानि दर्शयन्नाह

बंधो आवरणणवगचउसंजलणपणअंतरायाणं ।
वेअतिगे तह कोहे तिहाऽत्थि चउहाऽत्थि सेसाणं ॥२६॥

(प्रे०) "बंधो" इत्यादि, 'बंधो' त्ति प्रदेशबन्धो कासां प्रकृतीनामित्याह "आवरणणवग" त्ति आवरणनवकम् तद्यथा-मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलज्ञानावरणानि चतुर्दर्शनावरणानि, "चउसंजलण" त्ति सञ्ज्वलनक्रोध-मान माया लोभाऽऽख्याःचतुस्सञ्ज्वलनकषायाः "पण अतरायाणं" ति दान-लाभ-भोगो-पभोग-वीर्यान्तरायरूपाणि पञ्चान्तरायाणि इत्यष्टादशप्रकृतीनां "वेअतिगे तह कोहे" त्ति स्त्रीवेद-पुरुषवेद नपुंसकवेदात्मकत्रिवेदमार्गणासु क्रोधमार्गणायां च" "तिहाऽत्थि" त्ति अवक्तव्यरहितशेषभूयस्कारादित्रिविधः प्रदेशबन्धोऽस्ति ।

उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां त्वत्र भूयस्कारादिचतुर्विधः प्रदेशबन्धो जायते ।

इदमुक्तं भवति-उक्ताष्टादशप्रकृतीनां प्रदेशबन्धोऽत्रोक्तमार्गणानामन्तकालपर्यन्तं भवत्येव अतस्तासामबन्धोत्तरबन्धलक्षणावक्तव्यबन्धाऽसंभवात् शेषो भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितश्चेति त्रिप्रकारो प्रदेशबन्धोऽत्र भवितुं युज्यते ।

नन्वत्रोक्तमार्गणासु बध्यमानोक्तशेषप्रकृतयः काः ? कथं च तासां चतुर्विधप्रदेशबन्धः संघटते ? इति चेदुच्यते, अत्रोक्तशेषबध्यमानप्रकृतय इमाः—निद्रापञ्चकम् , वेदनीयद्विकं, मोहनीयस्य सञ्ज्वलनचतुष्करहिता द्वाविंशतिप्रकृतयः, चत्वार्यायूंषि, नाम्नः सर्वा सप्तषष्टिप्रकृतयः तथा गोत्रद्विकमिति । एतासामुक्तशेषद्व्यधिकशतप्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिचतुर्धा जायते,तस्मिन्नऽवक्तव्यरहितशेषत्रिविधप्रदेशबन्धस्तु पूर्वोक्तस्वस्वकारणवशादत्र भवति । अवक्तव्यप्रदेशबन्धश्चात्रोक्तशेषप्रकृतिमध्ये या अध्रुवबन्धिप्रकृतयः सन्ति, तासां परावर्त्तमानत्वादेव संभवति । ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तु यदा तद्बन्धकः पूर्वमुपरितनगुणस्थाने तद्बन्धविच्छेदं कृत्वा पश्चादधस्तन गुणस्थाने तासां पुनर्बन्धमारभते तदा तदवक्तव्यप्रदेशबन्धः प्राप्यते । तत्राऽपि भय-जुगुप्सामोहनीययोः तथा नाम्नो नवसंख्याकध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धं क्रमेण श्रेणेर्निपतन् कश्चिज्जीव उक्तमार्गणाप्रारम्भानन्तरमष्टमगुणस्थानकं तस्य षष्ठं च भागमागच्छति तदैव कर्तुं प्रभवति । यदा चाऽष्टमगुणस्थानस्य प्रथमे भागे समायाति तदा निद्राद्विकस्याऽवक्तव्यबन्धं करोति । उक्तशेषा या श्चतुर्विधबन्धवत्यो ध्रुवबन्धिप्रकृतयोऽत्र सन्ति, तासामवक्तव्यबन्धस्तु षष्ठगुणस्थानका-

निपत्य मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानकगमनकाले आयाति यथा षष्ठगुणस्थानकात्कश्चिज्जीवः पञ्चमगुणस्थानं याति तदा प्रत्याख्यानचतुष्कस्याऽवक्तव्यप्रदेशबन्धं स करोति। अनयारीत्या तत्तद्गुणस्थानबध्यमानप्रकृतीनां तत्र तत्रावक्तव्यप्रदेशबन्धः प्राप्यते। इत्थमत्र उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारादिचतुर्विधः प्रदेशबन्धो भवितुमर्हतीति ॥२६॥

अथाऽपगतवेदाद्येकादशसु मार्गणास्थानेषु भूयस्कारादिसत्पदानि प्रदर्शयति–

बंधो अवगयवेए णाणचउगसंजमोहिसुक्कासुं।
सम्मखइउवसमेसुं सप्पाउग्गाण चउहाऽत्थि ॥२७॥

(प्रे०) "बंधो" इत्यादि, "अवगयवेए" त्ति अपगतवेदमार्गणायां, 'णाणचउग' त्ति मतिज्ञान-श्रुतज्ञानाऽवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञानाऽऽख्याः चतुर्ज्ञानमार्गणाः "संजम" त्ति संयमौघमार्गणा 'ओहि' त्ति अवधिदर्शनमार्गणा 'सुक्कासु' ति शुक्ललेश्यामार्गणा-तासु 'सम्म' त्ति सम्यक्त्वौघमार्गणा 'खइ' त्ति क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणा 'उवसमेसु' ति उपशमसम्यक्त्वमार्गणा-तासु, इति सर्वसंख्ययैकादशसु मार्गणासु प्रत्येकं स्वस्वप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिचतुर्धाऽस्ति। इदमत्र तात्पर्यम्–अत्रोक्तमार्गणासु प्रत्येकं स्वस्वप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां बन्धविच्छेद एकादशमगुणस्थानके सम्पद्यते काषायिक प्रदेशबंधस्य विवक्षितत्वात्। तत्पश्चाद्यदा तत्तद्प्रकृतीनां स्वस्वप्रायोग्यगुणस्थानं समागच्छति तदा तत्तत्प्रकृतीनां तत्र पुनर्बन्धो भवति। अन्या रीत्या अक्तोक्तमार्गणाप्रायोग्यप्रकृतीनां स्वस्वप्रायोग्यगुणस्थानके पुनर्बन्धसम्भवात्तासां सर्वासामवक्तव्यप्रदेशबन्धो भवितुमर्हति। तथैवाऽऽसां शेषभूयस्कारादित्रिविधो प्रदेशबन्धोऽपि स्वस्वकारणयोगादत्र भवितुं युज्यते, अतस्तासामत्र चतुर्विधोऽपि प्रदेशबन्धो भवनार्होऽस्ति।

नवरमत्राऽपगतवेद मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणावर्जशेषासु मनुष्यद्विकौ-दारिकद्विक वज्रर्षभनाराचसंहननात्मकपञ्चप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धो मनुष्यगतेः कालं कृत्वा देवगत्यादिषूत्पन्नस्य जीवस्य तदुत्पत्तिप्रथमसमये भवितुमर्हति। तत्रापि शुक्ललेश्यामार्गणायां वज्रर्षभनाराचसंहननस्यावक्तव्यबन्धो मिथ्यादृष्टिदेवेषु परावर्तमानप्रकृतिबन्धत्वेनाऽपि संप्राप्यते।

अत्रोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां श्रेणिगतोपशमसम्यक्त्वाऽपेक्षया सर्वप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धः प्राप्यते। अन्यथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वापेक्षया श्रेणेरभावात्मरणाभावाच्च न सर्वप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धो भवितुमर्हति, किन्तु कासाञ्चित् प्रकृतीनामेव।

नन्वत्रोक्ततत्तन्मार्गणासम्भाव्यमानबन्धाः प्रकृतयो का इति चेदुच्यते–अत्रोक्तापगतवेदमार्गणायां बध्यमानाः प्रकृतयो इमाः–ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणस्य निद्रापञ्चकरहिताः चतुष्प्रकृ-

तयः, सातवेदनीय, सञ्ज्वलनचतुष्कम् , यशःकीर्तिनाम, उच्चैर्गोत्रम् , अन्तरायपञ्चकं चेति एकविंशतिः प्रकृतयः ।

मति-श्रुता ऽवधिज्ञाना-वधिदर्शन-सम्यक्त्वौघ-क्षायिकसम्यक्त्वरूपासु षट्सु मार्गणासु प्रत्येकं सम्भाव्यमानबन्धाः प्रकृतय एकोनाशीतिप्रमिताः सन्ति, तद्यथा-ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणस्य स्त्यानर्द्धित्रिकरहिताः षट् प्रकृतयः, वेदनीयद्विकम् , मोहनीयसत्का मिथ्यात्वाऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-स्त्रीवेद-नपुंसकवेदरहिताः शेषैकोनविंशतिप्रकृतयः, देवमनुष्यायुषी, नाम्नो देवद्विकमनुष्यद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति-शरीरपञ्चका-ङ्गोपाङ्गत्रिक-प्रथमसंहनन-प्रथमसंस्थान-शुभखगति-वर्णादिचतुष्कानि, आतपो-द्योतरहिताः शेषाः षट्प्रत्येकप्रकृतयः, त्रसदशकं, अस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्त्तिनामानि, उच्चैर्गोत्रम् , अन्तरायपञ्चकं चेति ।

उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां चोपर्युक्ता देवमनुष्यायुषी रहिताः शेषसप्तसप्ततिः प्रकृतयो बन्धयोग्या विज्ञेयाः ।

मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां तथा संयमौघमार्गणायां ज्ञानावरणपञ्चकम् , दर्शनावरणस्य स्त्यानर्द्धित्रिकरहिताः षट् प्रकृतयः, वेदनीयद्विकं, एकादशप्रकृतयः मोहनीयसत्काः-तत्र सञ्ज्वलन चतुष्कं, स्त्रीनपुंसकवेदवर्जिताः शेषसप्तनोकषायाश्च, देवायुः, नाम्नो देवद्विक-पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विक-तैजसकार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान वर्णचतुष्क शुभखगतिनामानि, आतपोद्योतरहिताः षट्प्रत्येकप्रकृतयः, त्रसदशकं, अस्थिराऽशुभा ऽयशःकीर्त्तिनामानि च । उच्चैर्गोत्रं, अन्तरायपञ्चकं चेति पञ्चषष्टिप्रकृतयो बन्धप्रायोग्या विद्यन्ते ।

शुक्ललेश्यामार्गणायां तु तिर्यक्त्रिक-नरकत्रिक-जातिचतुष्क-स्थावरचतुष्का-तपोद्योतनामेतिषोडशप्रकृतिरहिताः शेषाश्चतुरधिकशतप्रकृतयः बन्धयोग्याः सन्ति ।

इत्थमत्रैकादशमार्गणासु प्रत्येकं स्वबन्धयोग्याः प्रकृतयो दर्शिताः । तासां सम्भाव्यमानबन्धानां प्रकृतीनामुक्तमार्गणासु भूयस्कारादिचतुर्विधः प्रदेशबन्धः संजायत इति कलनीयम् ॥२७॥

अथ तिसृषु मानमायालोभमार्गणासु भूयस्कारादिसत्पदानि व्याजिहीर्षुराह

कोहव्वमाणमायालोहेसु णवरि भवे अवत्तव्वो ।
कमसो संजलणाणं एगस्स य दोण्ह य चउण्हं ॥२८॥

(प्रे०) "कोहव्वे" त्यादि, क्रोधमार्गणावत् , "माणमायालोहेसु" त्ति मानमार्गणामायामार्गणा लोभमार्गणा च तासु, उक्ततिसृषु मार्गणासु सर्वोऽपि वक्तव्यता क्रोधमार्गणावदेवावगन्तव्या । "णवरि" त्ति नवरम् , अत्रोक्तत्रिमार्गणाभेदेषु क्रमश एक-द्वि-चतुःसञ्ज्वलनकषायाणामवक्तव्यबन्धः संभवति । अथोत मानमार्गणायां एकस्य सञ्ज्वलनक्रोधस्य, मायामार्गणायां द्वयोः-

सञ्ज्वलनक्रोधमानयोः, तथा लोभमार्गणायां चतुर्णां सञ्ज्वलनक्रोध मान माया लोभाणामवक्तव्यप्रदेशबन्धो संजायते ।

इदमेव भाव्यते–अत्र मानमार्गणायां मानकषायोदयावस्थायां श्रेणिप्रारम्भो जीव उपशान्तमोहगुणस्थानकं गत्वा पश्चादधस्तनगुणस्थानेष्वागच्छति तत्र च तस्य मानकषायस्योदयो जायते, तथा तत्सहैव सञ्ज्वलनमानस्य बन्धोऽपि प्रवर्तते । तदा च क्रोधमार्गणावज्ज्ञानादिचतुर्दशप्रकृतीनां सञ्ज्वलनमायालोभयोरपि बन्धः प्रवर्तते । अत्र यद्यपि सातावेदनीय यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणामपि बन्धो भवति, किन्तु तेषामधस्तनगुणस्थानेषु परावर्तमानत्वेनावक्तव्यबन्धस्य लाभाद् , एवमुत्तरत्राऽपि विज्ञेयम् । तत्पश्चात्मानकषायोदयस्यैकान्तमुहूर्त्तकालो यदा गच्छति तदा स सञ्ज्वलनक्रोधस्य बन्धं प्रारभते । इत्थमत्र मानकषायमार्गणायां सञ्ज्वलनक्रोधस्य पुनर्बन्धसद्भावात्तस्याऽवक्तव्यप्रदेशबन्धो भवितुमर्हति ।

मायाकषायोदये श्रेणिप्रारम्भको जीवोऽप्युपशान्तमोहगुणस्थानकं प्राप्य पश्चादधस्तनगुणस्थानेषु समागच्छति, तत्र तस्य मायाकषायस्योदयो भवति तत्सहैव च सञ्ज्वलनमायाया बन्धोऽपि प्रवर्तते । तथैव ज्ञानादिचतुर्दशप्रकृतीनां तथा सञ्ज्वलनलोभस्याऽपि बन्धो तदा जायते तथा मायाकषायोदयस्यान्तर्मुहूर्त्तकालो यदा गच्छति तदा तस्य संञ्ज्वलनमानस्य बन्धः प्रवर्तते । तत्पश्चाद् द्वितीयाऽन्तर्मुहूर्त्तकालगमनानन्तरं सञ्ज्वलनक्रोधस्य बन्धो भवति । इत्थं मायामार्गणामाश्रित्य सञ्ज्वलनक्रोध-मानयोः पुनर्बन्धभवनात्तयोरवक्तव्यप्रदेशबन्धः सम्भवति ।

लोभकषायोदये श्रेण्यारम्भकजीवस्तूपशान्तमोहगुणस्थानकं गत्वा यदा दशमं सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकं समागच्छति तदा लोभस्योदयोजायते, तत्सहैव च मतिज्ञानावरणादिचतुर्दशप्रकृतीनां बन्धो जायते, तत्पश्चाद्यदा नवमानिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानकं स प्राप्नोति तदा सञ्ज्वलनलोभस्य बन्धो जायते तत्पश्चादन्तर्मुहूर्तकालानन्तरं मायाया बन्धो भवति, पश्चाद्द्वितीयान्तर्मुहूर्त्तानन्तरं मानस्य बन्धो भवति, तदनन्तरं तृतीयाऽन्तर्मुहूर्तकालानन्तरं क्रोधस्य बन्धो जायते । इत्थमत्र लोभमार्गणायां चतुस्सञ्ज्वलनकषायाणामबन्धोत्तरबन्धप्रारम्भसंभवात्तेषां चतुर्णामवक्तव्यप्रदेशबन्धः प्राप्यते । शेषा सर्वाऽपि वक्तव्यता क्रोधमार्गणातुल्यैवावबोध्या इति ॥२८॥

अथ त्रिष्वज्ञानमार्गणाभेदेषु बध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारादिसत्पदानि निर्वक्ति

तीसुं अण्णाणेसुं छायालीसधुवबंधिपयडीणं ।
तिविहो हवेज्ज बंधो चउव्विहो अत्थि सेसाण ॥२९॥

(प्रे०) "तीसु" इत्यादि, मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभङ्गज्ञानाख्यासु तिसृष्वऽज्ञानमार्गणासु मिथ्यात्वरहितपट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादित्रिविधो भवति । उक्तशेषसम्भाव्यमानबन्धानां प्रकृतीनां च चतुर्विधो भूयस्कारादिप्रदेशबन्धो भवतीति ।

अत्रेदमवधेयम्–मिथ्यात्वस्य ध्रुवबन्धित्वेऽप्यत्रोक्ताऽज्ञानमार्गणासु ये सास्वादनगुणस्थानवर्तिनो जीवाः सन्ति ते मिथ्यात्वं नैव बध्नन्ति, पश्चाद् यदा ते मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकं प्राप्नुवन्ति तदा तेषां मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽबन्धोत्तरबन्धप्रारम्भलक्षणोऽवक्तव्यबन्धोऽपि सम्भवति, अतो मिथ्यात्वं विवर्ज्य शेषषट्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितश्चेति त्रिधा प्रदेशबन्धो निरूपितः ।

तथाऽत्रोक्तशेषसम्भाव्यमानबन्धानां प्रकृतीनां भूयस्कारादिचतुर्विधः प्रदेशबन्धो जायते । ताश्चोक्तशेषप्रकृतयोऽत्राऽऽहारकद्विक-जिननामवर्जिताः सप्ततिरध्रुवबन्धिप्रकृतयः तथा मिथ्यात्वमोहनीयमित्येकसप्ततिः प्रकृतयो विज्ञेया इति ॥२९॥ अधुना सामायिकछेदोपस्थानसंयममार्गणयोर्बध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारादिसत्पदानि व्याजिहीर्षुराह

सामाइअछेएसुं णवावरणतुरिअलोहविग्घाणं ।
उच्चस्स अत्थि तिविहो बंधो चउहाऽत्थि सेसाणं ॥३०॥

(प्रे०) "सामाइअछेएसुं" इत्यादि, सामायिकसंयमच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोः "णवावरण" त्ति नवावरणानि-पञ्चज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरणरूपाणि, "तुरिअलोह" त्ति तुर्यलोभः–सञ्ज्वलनलोभः "विग्घाणं" ति विघ्नाः–पञ्चान्तरायाणि "उच्चस्स" त्ति उच्चैर्गोत्रस्य इत्येतासां षोडशप्रकृतीनां प्रदेशबन्धस्त्रिविधोऽस्ति । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां पुनश्चतुर्धा विद्यते ।

अयमत्राऽऽशयः–उक्तपञ्चज्ञानावरणादिषोडशप्रकृतीनामुक्तमार्गणाद्वयप्रारम्भकालात्तन्मार्गणान्तकालपर्यन्तं नियमेन बध्यमानत्वेन तासामबन्धोत्तरबन्धस्वरूपावक्तव्यबन्धस्याऽजायमानत्वात्तद्रहितशेषत्रिविधो भूयस्कारादिप्रदेशबन्धो भवनार्होऽस्ति ।

उक्तशेषबध्यमानैकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां तु प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिचतुर्विधो भवितुमर्हति । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतयश्चेमाः-साता-ऽसात-हास्य शोक-रत्य-रति-स्थिरास्थिर-शुभाऽशुभ-यशःकीर्त्य-ऽयशःकीर्तिरूपषड्युगलानि, निद्राद्विकं, सञ्ज्वलनक्रोध मान-मायाकषायाः, भयजुगुप्सापुरुषवेदाः, देवायुः, नाम्नो देवद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विक-तैजसकार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान–सुखगति-वर्णचतुष्का-गुरुलघू-पघात--पराघातो-च्छ्वास-निर्माण-जिन त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक सुभग-सुस्वरा-ऽऽदेयनामानि, इत्येतासामेकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्याऽपि प्राप्तेस्तासां भूयस्कारादिचतुर्विधः प्रदेशबन्धः संभवति । नन्वासां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धः कथं संघटते इति चेदुच्यते–अत्रोक्तसाता-ऽसातादिषड्युगलानां परावर्तमानबन्धसद्भावात्तदवक्तव्यबन्धः संघटते । निद्राद्विक सञ्ज्वलनत्रिक-पुरुषवेदानां तथा नाम्न आहारकद्विक-जिननामरहिताऽत्रोक्तदेवद्विकादिपञ्चविंशतिप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्ध उपशमश्रेणेः पतदवस्थायां भवति ।

आहारकद्विकस्य तु षष्ठगुणस्थानात्सप्तमगुणस्थानकगमनकाले तथा सप्तमगुणस्थानवर्तिनां नूतनबन्धप्रारम्भवेलायां तथोपशमश्रेणेः पतदवस्थायाश्चावक्तव्यबन्धो भवितुमर्हति ।

जिननाम्न उपशमश्रेणेः प्रपतदवस्थायां तथा तन्नूतनबन्धप्रारम्भकालेऽवक्तव्यबन्धो भवति। तथैवाऽऽसामेकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रदेशस्य भूयस्कारः-अल्पतरः अवस्थितश्चेति त्रयो बन्धा अप्यत्र भवितुमर्हन्ति । तत्कारणानि तु सुगमानि । इत्थमेतासामुक्तशेषैकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां भूयस्कारादिचतुर्विधः प्रदेशबन्धः सन्नित्यर्थः ।।३०।।

साम्प्रतं परिहारविशुद्धिकसंयममार्गणायां सम्भाव्यमानबन्धानां प्रकृतीनां भूयस्कारादिबन्धसत्पदानि प्ररूपयति

परिहारम्मि चउविहो बारससायाइणिज्जराऊणं।
आहारदुगजिणाणं, अत्थि तिहा सेसपयडीणं ।।३१।।

(प्रे०) 'परिहारम्मि" इत्यादि, परिहारविशुद्धिकसंयममार्गणायां, 'चउविहो'त्ति चतुर्विधः प्रदेशबन्धोऽस्ति । कासां प्रकृतीनां ? इत्यत आह-"बारससायाइणिज्जराऊणं"ति साताऽसात स्थिरा-ऽस्थिर-शुभा-ऽशुभ-यशःकीर्त्य-ऽयशःकीर्ति-हास्य- शोक रत्यरति- स्वरूपद्वादशप्रकृतीनां तथा निर्जरायुषो देवायुष इत्यर्थः, "आहारदुगजिणाणं"ति आहारकद्विकजिननाम्नोश्चेति षोडशप्रकृतीनामिति । "अत्थि तिहा सेसपयडीणं" ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां प्रदेशस्यावक्तव्यबन्धवर्जितभूयस्कारादित्रिविधो बन्धोऽस्ति । अयमत्रभावः—सातादिद्वादशप्रकृतीनामत्र परावर्तमानबन्धभवनात् तथा सुरायुषो नूतनबन्धसद्भावादवक्तव्यबन्धसद्भावः, जिननाम्नश्च नूतनबन्धप्रारम्भसमये अवक्तव्यबन्धः सम्भवति तथाऽऽहारकद्विकस्य षष्ठगुणस्थानकात्सप्तमगुणस्थानकगमनेन पुनर्बन्धसंभवादवक्तव्यबन्धसम्भवः । तथैतासां सातादिषोडशप्रकृतीनामन्यो भूयस्कारादित्रिविधो बन्धोऽपि भवति । तस्माच्चतुर्विधोऽपि बन्धोऽत्र विज्ञेयः । उक्तशेषबध्यमानैकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां त्वपरावर्तमानबन्धभवनात्तासामत्राऽवक्तव्यरहितशेषभूयस्कार-ऽल्पतरा-ऽवस्थितरूपो त्रिविधो बन्धो भवितुमर्हति । ता एकोनपञ्चाशत्शेषप्रकृतय इमाः-ज्ञानावरणपञ्चकं, स्त्यानर्द्धित्रिकवर्जितशेषाः षड्दर्शनावरणप्रकृतयः, मोहनीयसत्कभय-जुगुप्सा-पुरुषवेद-सञ्ज्वलनचतुष्काणि, देवद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विक-तैजसकार्मणशरीर—वर्णचतुष्क—शुभखगति-समचतुरस्रसंस्थान-अगुरुलघू-पघात-पराघातो-च्छ्वास-निर्माणनामकर्माणि, त्रसदशकस्य स्थिर-शुभ-यशःकीर्तिरहिताः सप्तप्रकृतयः, उच्चैर्गोत्रम् , तथाऽन्तरायपञ्चकमिति ।।३१।।

अथ सूक्ष्मसम्परायसंयममार्गणायां, अविरतमार्गणायां तथा कापोतलेश्यामार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारादिप्रदेशबन्धसत्पदान्याचष्टे

सुहमे तिहाऽत्थि बंधो सप्पाउग्गाण अजयकाऊसुं ।
तिविहो धुवबंधीणं गुणचत्ताअ चउहाऽत्थि सेसाणं ॥३२॥ (गीतिः)

(प्रे०) "सुहमे" इत्यादि, सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां "सप्पाउग्गाण" त्ति स्वप्रायोग्याणां-प्रस्तुतमार्गणायां बन्धार्हाणां मतिज्ञानावरणादिसप्तदशप्रकृतीनां प्रदेशबन्धस्त्रिविधोऽस्ति । "अजयकाऊसुं" ति असंयममार्गणायां तथा कापोतलेश्यामार्गणायामेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रदेशबन्धोऽवक्तव्यरहितत्रिविधो भवति । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां तु भूयस्कारादिचतुष्प्रकारो भवतीति । इदमत्राऽवगन्तव्यम्—सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणाप्रारम्भकालादन्तकालपर्यन्तं तत्प्रायोग्यप्रकृतीनां ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणचतुष्कम्, सातवेदनीयम्, यशःकीर्तिनाम, उच्चैर्गोत्रं, अन्तरायपञ्चकं चेति सप्तदशप्रकृतीनां तत्र नियमेन बन्ध उपलभ्यते, तस्मादबन्धोत्तरबन्धप्रारम्भलक्षणाऽवक्तव्यबन्धस्य तत्राऽभवनात्शेषत्रिविधो भूयस्कारादिप्रदेशबन्धः प्राप्यते । असंयममार्गणायां तथा कापोतलेश्यामार्गणायां तु स्त्यानर्द्धित्रिकम्, अनन्तानुबन्धिचतुष्कम्, मिथ्यात्वमोहनीयमित्यष्टप्रकृतिरहिता याः शेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः सन्ति, तासां त्रिविधो बन्ध आयाति । यत एतयोर्द्वयोर्मार्गणयोरविरतसम्यग्दृष्ट्यन्तान्याद्यचत्वारि गुणस्थानानि विद्यन्ते । चतुर्थगुणस्थानके चैता एकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयो नियमेन बध्यन्ते । अत एव तासामबन्धोत्तरबन्धप्रारम्भलक्षणाऽवक्तव्यबन्धस्याऽसम्भवत्वेन शेषत्रिविधो भूयस्कारादिप्रदेशबन्धः प्राप्यते । उक्तशेषा याः स्त्यानर्द्धित्रिकाद्यष्टध्रुवबन्धिप्रकृतयस्तथाऽऽहारकद्विकवर्जितशेषा एकसप्ततिरध्रुवबन्धिन्यः प्रकृतयः—इत्येकोनाशीतिप्रकृतीनां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिचतुर्धाऽस्ति, यतः शेषाऽष्टध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धश्चतुर्थगुणस्थानकात्प्रथमगुणस्थानकागमनकाले आयाति । जिनस्य तु नारकः पुनर्बन्धापेक्षया, मनुष्योऽपि नूतनबन्धापेक्षयाऽवक्तव्यबन्धं केवलमयते करोति, शेषसप्ततेरध्रुवबन्धिप्रकृतीनां च परावर्तमानत्वेनाऽध्रुवबन्धित्वेन वाऽवक्तव्यबन्धसद्भावः । शेषत्रिविधो भूयस्कारादिबन्धोऽपि भवत्येव । तस्मादुक्तशेषैकोनाशीतिप्रकृतीनां चतुर्विधोऽपि प्रदेशबन्धो भवितुमर्हतीति ॥३२॥

एतर्हि कृष्णलेश्यामार्गणायां तथा नीललेश्यामार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारादिप्रदेशबन्धसत्पदानि प्रदर्शयन्नाह

किण्हाए णीलाए, इगूणचत्तधुवबंधितित्थाणं ।
तिविहो हवेज्ज बंधो, चउव्विहो अत्थि सेसाणं ॥३३॥

(प्रे०) "किण्हाए" इत्यादि, कृष्णलेश्यामार्गणायां तथा नीललेश्यामार्गणायां "इगूणचत्तधुवबंधितित्थाणं" ति स्त्यानर्द्धित्रिकम्, मिथ्यात्वं चेत्यष्टप्रकृतिवर्जिताः शेषा एकोनचत्वा-

रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयः, तथा जिननामेति चत्वारिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धरहितशेषभूयस्कारादित्रिविधबन्धो जायते ।

अयमर्थः—उक्तमार्गणाद्वये एकोनचत्वारिंशदध्रुवबन्धिनीनां नियमेन बन्धभवनात्तासामवक्तव्यबन्धरहितस्त्रिविधः प्रदेशबन्ध उक्तः । तथा जिननाम्नोऽपि एतयोर्मार्गणयोरवक्तव्यबन्धो न भवति । यतोऽशुभलेश्यावतः जीवस्य यदि जिननाम सत्तायां भवेत् तदैव सो जिननाम्नो बन्धं कुर्यात् । अत्र जिननाम्नो नूतनबन्धाऽसंभवात्तस्याऽप्यवक्तव्यबन्धनिषेधो दर्शितः । एवमत्रावक्तव्यरहितत्रिविधबन्धवत्यः प्रकृतयः चत्वारिंशत्प्राप्ताः ।

अथोक्तशेषबन्धार्हाणां प्रकृतीनां नामग्राहं भूयस्कारादिसत्पदानि दर्श्यन्ते, तद्यथा—ध्रुवबन्धिनीमध्यात् स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्वरूपाऽष्टप्रकृतयः, तथाऽऽहारकद्विक-जिननामवर्जिताः सर्वाः-सप्ततिरध्रुवबन्धिप्रकृतयः । सर्वाश्चैता अष्टसप्ततिरुक्तशेषप्रकृतयः, एतासां मध्यात्स्त्यानर्द्ध्याद्यष्टकस्यावक्तव्यबन्धोऽत्र तदा-ऽऽयाति, यदोक्तमार्गणावर्ती कश्चिज्जीवः चतुर्थगुणस्थानात्प्रथमगुणस्थानं समायाति, यतस्तत्र स्त्यानर्द्ध्याद्यष्टकस्य पुनर्बन्धसद्भावात्तस्या-ऽवक्तव्यबन्धो भवनार्ह एव । अत्रोक्तसप्ततेरध्रुवबन्धिनीनां तु परावर्तमानत्वादिना बन्धसद्भावादेवाऽवक्तव्यबन्धसद्भावः । अन्ये भूयस्कारादित्रयो बन्धाऽप्यत्र भवन्ति । तत्कारणानि तु सुप्रतीतानि । इत्थमुक्तशेषाष्टसप्ततिप्रकृतीनां प्रदेशस्य भूयस्कारादिचतुर्धा बन्धो जायत इति ॥२३॥

अथ तेजोलेश्यामार्गणायां भूयस्कारादिबन्धसत्पदान्यभिधित्सुराह

धुवबंधिगतीसाए परघाऊसासबायरतिगाणं ।
तेऊए अत्थि तिहा बंधो चउहाऽत्थि सेसाणं ॥२४॥

(प्रे०) "धुवबंधि०" इत्यादि, 'धुवबंधिगतीसाए' त्ति स्त्यानर्द्ध्याद्यष्टकम् , अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कम् , प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं चेति षोडशप्रकृतिवर्जितशेषैकत्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम् , तथा पराघातनाम, उच्छ्वासनाम, बादरत्रिकम्—बादर-पर्याप्त-प्रत्येकलक्षणम् तेषामिति षट्त्रिंशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धस्त्रिधा भवति । उक्तशेषप्रकृतीनां तु चतुर्विधः प्रदेशबन्धोऽस्ति ।

एतदुक्तं भवति—एकत्रिंशदध्रुवबन्धिनीनां तथा पराघातादीनामत्र नियमेन बन्धसत्त्वेन तासामवक्तव्यबन्धस्याजायमानत्वात् शेषभूयस्कारादित्रिविधप्रदेशबन्ध एव जायते ।

उक्तशेषबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां पुनश्चतुर्विधो बन्धोऽवगन्तव्यः । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतयश्चेमाः, ध्रुवबन्धिमध्यात्स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्वाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-प्रत्याख्यानावरणचतुष्काणीति षोडशप्रकृतयः, तथाऽध्रुवबन्धिमध्यात् पराघातनाम, उच्छ्वासनाम, बादरपर्याप्तप्रत्येकरूपं बादरत्रिकम् , सूक्ष्मा-पर्याप्त-साधारणलक्षणं सूक्ष्मत्रिकम् , नरकगति-नरकानुपूर्वी-नर-

कायुरूपं नरकत्रिकम् , द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजातिभेदभिन्नं विकलत्रिकम् चेति चतुर्दशप्रकृतिवर्जिताः शेषैकोनषष्टिप्रकृतयो ग्राह्याः । सर्वाश्चैता जाता पञ्चसप्ततिरुक्तशेषप्रकृतयः । तन्मध्ये स्त्यानर्द्धित्रिकादिषोडशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धः षष्ठगुणस्थानकाद् देशविरत्याद्यधस्तनगुणस्थानकागमने सति सम्भवति । शेषैकोनषष्ट्यध्रुवबन्धिनिषु जिननाम्नो नूतनबन्धसद्भावेन, शेषाणां तु परावर्तमानतयाऽध्रुवबन्धितया वाऽवक्तव्यबन्धसद्भावः। शेषभूयस्कारादि त्रिविधबन्धस्तु पूर्ववदत्राऽपि भवति । इत्थं तेजोलेश्यामार्गणामधिकृत्य अमीषामुक्तशेषपञ्चसप्ततिप्रकृतीनां भूयस्कारादिचतुष्प्रकारकः प्रदेशबन्धो विज्ञेयो धीधनैरिति ॥३४॥

इदानीं पद्मलेश्यामार्गणायां बन्धार्हप्रकृतीनां भूयस्कारादिबन्धसत्पदानि निजिगदिषुराह

इगतीसधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणं ।
पउमाअ अत्थि तिविहो बंधो चउहात्थि सेसाणं ॥३५॥

(प्रे०) इगतीसे०' त्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिका ऽनन्तानुबन्धिचतुष्क मिथ्यात्वा ऽप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणचतुष्कानीतिषोडशप्रकृतिरहिताः शेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, तथा पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासनामानि, त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकलक्षणं त्रसचतुष्कं चेत्यष्टात्रिंशत्प्रकृतीनां प्रदेशबन्धः "पउमाअ"त्ति पद्मलेश्यामार्गणायामवक्तव्यबन्धवर्जितत्रिविधोऽस्ति । 'सेसाणं' ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीना च भूयस्कारादिबन्धश्चतुर्धाऽस्ति ।

अयम्भावः-पद्मलेश्यावन्तो जीवाः पञ्चेन्द्रियेष्वेवोत्पद्यन्ते, अतस्तेषा पञ्चेन्द्रियजातेस्तथा त्रसनाम्नोऽपि नियमेन बन्धभवनात्तयोरप्यवक्तव्यरहितत्रिविधप्रदेशबन्धः प्रोक्तः । अतस्तेजोलेश्यामार्गणापेक्षयाऽत्र त्रिविधबन्धवतीप्रकृतिषु एते द्वे प्रकृतीरधिके प्राप्येते । तस्मादत्र पद्मलेश्यामार्गणायामष्टत्रिंशत्प्रकृतीनां त्रिविधप्रदेशबन्धः कथितः । उक्तशेषप्रकृतयो यास्तेजोलेश्यामार्गणायां पञ्चसप्ततिर्दर्शिताः तन्मध्यादेकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजाती-त्रस-स्थावरा-ऽऽतपनामानीत्येताभिः पञ्चभी रहिताः शेषाः सप्ततिः प्रकृतयोऽत्रपद्मलेश्यामार्गणायां ग्राह्याः । तासां च बन्धोऽत्र भूयस्कारादिचतुर्धा जायते । तद्भावना तु तत्रतोऽवसेया, विस्तरभयादत्र पुनर्न प्रपञ्च्यते इति ॥३५॥

अधुनाऽभव्यमार्गणायां, मिथ्यात्वमार्गणायां च बन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां भूयस्कारादिप्रदेशबन्धसत्पदानि प्ररूपयन्नाह

सगयालीसाए धुवबंधीण अभवियमिच्छअमणेसुं ।
तिविहो हवेज्ज बंधो चउव्विहो अत्थि सेसाणं ॥३६॥

(प्रे०) "सगयालीसाए" इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां "अभवियमिच्छअमणेसु" ति तिसृष्वभव्य-मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञिमार्गणासु "तिविहो" त्ति त्रिप्रकारप्रदेशबन्धो भवति । उक्तशेषप्रकृतीनां च चतुष्प्रकारो भवति ।

अयमर्थः—अत्रोक्तासु तिसृषु मार्गणासु मिथ्यात्वगुणस्थानकमेव विद्यते, तस्मादत्र सर्वासां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां नियमेन बध्यमानत्वादवक्तव्यरहितशेषत्रिविधो बन्धस्तासां प्राप्यते । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतयस्त्वाहारकद्विकजिननामवर्जितशेषाः सर्वाः सप्ततिसंख्यका अध्रुवबन्धिन्यः सन्ति, तासां प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिचतुर्विधो भवतीति । इदं त्ववधेयम्-अत्र पूर्वत्रो-त्तरत्र चाऽसंज्ञ्यन्तानां सर्वेषां जीवानां जीवसमासादिग्रन्थाऽभिप्रायेण प्रथममेव गुणस्थानकं विवक्षितम् । तेन मिथ्यात्वस्याऽवक्तव्यबन्धोऽसंज्ञिमार्गणायां कथं न भवतीति नाऽऽशङ्कनीयम्॥३६॥

अथ वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां भूयस्कारादिसत्पदान्याह

वेअगसम्मत्ते खलु सायाहस्सरइथिरसुहजसाणं ।
ताण य पडिवक्खाणं मज्झकसायाण अट्ठण्हं ॥३७॥
तह णरसुरतिगुरालियविउवाहारदुगवइरतित्थाणं ।
अत्थि चउविहो बंधो, अत्थि तिहा सेसपयडीणं ॥३८॥

(प्रे०) "वेअग०" इत्यादि, वेदकसम्यक्त्वमार्गणायामर्थात्क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां, 'खलु' वाक्यविभूषायां, "**सायाहस्सरइथिरसुहजसाणं**" ति सातावेदनीय-हास्यमोहनीय-रतिमोहनीय-स्थिरनाम-शुभनाम-यशःकीर्तिनाम्नाम् "**ताण य पडिवक्खाणं**" ति तासां प्रति-पक्षभूतानां चासातवेदनीय-शोका-ऽरतिमोहनीया-ऽस्थिरनामा-ऽशुभनामा-ऽयशःकीर्तिनामप्रकृतीनाम् "**मज्झकसायाण अट्ठण्ह**" ति मध्यकषायाष्टकम्-अप्रत्याख्यानचतुष्कप्रत्याख्यानचतुष्करूपम् तस्य, '**तह**' ति तथा "**णरसुरतिग**" ति नरसुरत्रिकम्, त्रिकशब्दस्य च पूर्वत्राऽप्यन्वयान्नरत्रिकम्-नरगतिनरानुपूर्वीनरायूरूपम्, देवत्रिकम्-देवगति-देवानुपूर्वी-देवायुर्लक्षणम्, "**उरालियविउवा-हारदुग**" त्ति अत्र द्विकशब्दस्य प्रत्येकमन्वयात्, औदारिकद्विकम्-औदारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-स्वरूपम्, वैक्रियद्विकम्-वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गाऽऽत्मकम्, आहारकद्विकम्-आहारकशरीरा ऽऽ-हारकाङ्गोपाङ्गलक्षणम्, "**वइरतित्थाणं**" ति वज्रर्षभनाराचसंहननम् तीर्थकरनाम च तासामिति चतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनां "**बंधो**" त्ति प्रदेशबन्धो भूयस्कारादिचतुर्धाऽस्ति । शेषबध्यमानप्रकृतीनां पुनस्त्रिधा प्रदेशबन्धो जायते ।

इदमत्र तात्पर्यम्-ननूक्तचतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनां चतुर्विधबन्धः कथितः, तस्मिन्नवक्तव्य-बन्धस्तासां कथं संघटते ? उच्यते, अत्र सातादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानत्वेनाबन्धोत्तरबन्ध-सम्भवात्तासामवक्तव्यबन्धः सम्भवति । मध्यमकषायाष्टकस्यावक्तव्यबन्धभवने तु गुणस्थानपरा-वर्तनरूपो हेतुर्विज्ञेयः । देवद्विक-वैक्रियद्विकयोरवक्तव्यबन्धो यदा कश्चिज्जीवो देवगतेर्नरक-गतेर्वा मनुष्यगत्याऽऽगमनानन्तरं तयोर्नूतनबन्धमारचयति तदा प्राप्यते । मनुष्यद्विकौदारिक-

द्विक-वज्रर्षभनाराचसंहननात्मकप्रकृतिपञ्चकस्य पुनस्तिर्यङ्मनुष्यगतिभ्यां देवगतावागतानां जीवानां तन्नूतनबन्धप्रारम्भकालेऽवक्तव्यबन्ध आयाति । आहारकद्विकस्य तु यदा कश्चित्षष्ठगुणस्थानवर्ती सप्तमगुणस्थानं समासादयति तदा तस्य पुनर्बन्धसद्भावात्तथा तत्रैव नूतनबन्धसद्भावादवक्तव्यबन्धसद्भावः । जिननाम्नश्चावक्तव्यबन्धो नूतनबन्धप्रारम्भकाले संजायते, तच्च मनुष्यस्यैव भवति, देवादीनां जिननाम्नो नूतनबन्धाऽयोगात् । देवमनुष्यायुषी तु यदा बध्नाति तदा तयोर्बन्धप्रथमसमयेऽवक्तव्यबंधो जायते; इत्थमेतासां चतुस्त्रिंशदुक्तप्रकृतीनां भूयस्कारादित्रयो बन्धा अपि तत्कारणवशात् भवन्त्येव, तस्मादेतासां प्रकृतीनां चतुर्विधबन्धः प्रोक्तः ।

या पुनरत्रोक्तशेषबन्धप्रायोग्याः पञ्चचत्वारिंशत् प्रकृतयः सन्ति, तासां प्रकृतमार्गणामाश्रित्य ध्रुवबन्धित्वेनाबन्धोत्तरबन्धलक्षणोऽवक्तव्यबन्धो न सम्भवति, तस्माच्छेषा भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितश्चेति त्रयो बन्धा जायन्ते । शेषपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतयश्चेमाः–ज्ञानावरणपञ्चकम् , दर्शनावरणस्य स्त्यानर्द्धित्रिकरहिताः षट्प्रकृतयः, मोहनीयस्य संज्वलनचतुष्क-भय जुगुप्सा-पुरूषवेदाः, नाम्नः–पञ्चेन्द्रियजाति-समचतुरस्रसंस्थान तैजसकार्मणशरीर–सुखगति-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघू-पघात-पराघातो-च्छ्वास-निर्माण-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक-सुभग सुस्वराऽऽदेयनामानि, उच्चैर्गोत्रम् , अन्तरायपञ्चकञ्चेति ॥३७-३८॥

अथ सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां प्रस्तुतमाह--

छायालधुवपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणं ।
सासाणे अत्थि तिहा बंधो चउहाऽत्थि सेसाणं ॥३९॥

(प्रे०) "छायाले" त्यादि, मिथ्यात्वरहितशेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, पराघातनाम, उच्छ्वासनाम तथा त्रस-बादर-पर्याप्त प्रत्येकलक्षणं त्रसचतुष्कम् , इत्येतासां त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनां, "सासाणे" त्ति सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामवक्तव्यवर्जितशेषस्त्रिविधः प्रदेशबन्धोऽस्ति, यतस्तासां नियमेन बध्यमानत्वादवक्तव्यबन्धो न सम्भवति । उक्तशेषसम्भाव्यमानबन्धानामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनामत्र भूयस्कारादिचतुष्प्रकारो प्रदेशबन्धो विद्यते, यतस्तासां परावर्त्तमानबन्धस्योत्पत्तेरबन्धस्यपश्चात्पुनर्बन्धात्मकोऽवक्तव्यबन्धोऽपि सम्भवति, शेषत्रिविधबन्धभवनं तु सुगमम् , तस्माच्चतुर्विधोऽपि बन्धः सन्तीत्यर्थः ॥३९॥

तदेवमवसितमादेशतः सत्पदद्वारम् । तदवसाने चौघाऽऽदेशाभ्यां सत्पदद्वारं समर्थितम् । तत्समर्थने च गतं 'संतपयं' इत्यनेनोद्दिष्टं प्रथमं द्वारम् ।

इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधानोत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे द्वितीये भूयस्कारबन्धाऽधिकारे प्रथमं सत्पदद्वारं समाप्तम् ॥

गाथाङ्कः	मार्गणासंख्या	मार्गणानामानि	प्रदेशबन्धप्रकाराः	प्रकृतयः	प्रकृतिसंख्या	मार्ग० बध्य० सर्वाः
३	--	ओघवन्धः	४	सर्वाः-विंशत्युत्तरशतम्	१२०	१२०
६	२४	(१) मनु-ओघ (२) पर्या-मनु० (३) मनुयोनि०, (४, पञ्चे०सामा० (५) पर्या० पञ्चे (६) त्रसौघ, (७ पर्या०त्रस (८/१२) पञ्चमनोयोगाः, (१३/१७) पञ्चवचनयोगाः (१८) कायौघः (१९) औदा०काय० (२०-२१) चक्षु-रचक्षुदर्शने (२२) भव्य० (२३) संज्ञी (२४) आहारी।	४	सर्वाः- विंशत्युत्तरशतम्।	१२०	१२०
७-८	८	अष्टनरकभेदाः	३*	स्त्यानर्द्धि३,-मिथ्या०-अनन्ता.४-रहिताः शेषाः३९ ध्रुवबन्धि०, तथा पञ्चे०जाति., औदा०२, पराघात. उच्छ्व०, त्रस-४	४८	१०१
,,	,,	,,	४	स्त्यानर्द्धि-८, उपर्युक्तपञ्चे० जात्यादिनवप्रकृतिरहिता नरकप्रायोग्यवैक्रियद्विकादि १९ प्रकृतिरहिताश्च शेषाः ४५-अध्रुवबन्धिन्यः। जिनमनुष्यायुषोः यथायोगं विज्ञेयम्।	५३	
९	४	ति०गति सामान्यः, पञ्चे०ति० सामा०, पर्या०पञ्चे०ति०, पञ्चे०ति० योनि०,	३	अनन्ता०४ अप्रत्या०४स्त्या०३, मिथ्या०, इति १२ वर्जितशेषाः ३५ ध्रुवबन्धिन्यः।	३५	११७
,,	,,	,,	४	अनन्ता.१२, आहार.२जिननामरहिता७०अध्रुवब.	८२	
१०-११	४५	अपर्या० पञ्चे० ति०, सर्व एके० ,, मनु० ,, विकले० ,, पञ्चे० ,, पृथ्वी० ,, त्रसकायः ,, अप्काय० ,, वनस्पति०	३	ध्रुवबन्धिन्यः सर्वाः (४७), औदा०शरीर०,	४८	
,,	,,	,, ,,	४	नरक-३-देव-३-वै०२-आहा०-२, जिन-औदा०श० इति१२प्रकृतिरहिताःशेषाः ६१ अध्रुवबन्धिन्यः।	६१	१०९
१२-१३	३	सुरौघ०, सौधर्मसुर०, ईशानसुरः,	३	स्त्या० ८ रहिता ३९ ध्रुवब०, औदा०श०, परा उच्छ्व०, जिन, बादर ३ स्त्या०३। वेदनीय-२	४६	१०४
,,	,,	,, ,, ,,	४	मोहनीयस्य १२, आयुषः २ नाम्न३७, गोत्र-२	५८	
१४	४	भवन०सुर०, व्यं०सुर०, ज्यो.सुर., वै०काय०	३	स्त्या०८वर्जिताः३९ ध्रुव ब०, औदा०श०, परा. उच्छ्व०, बादर-३।	४५	१०३
,,	,,	,,	,,	पूर्वगाथातुल्याः चतुर्विधबन्धवत्योऽत्र ग्राह्याः। (नवरम्-वै०काय०५८+जिन=५९बध्यन्ते)	५८	
१५-१६	६	सनत्कुमारादारभ्य सहस्रारसुरान्तासु षट्सु	३	स्त्या०८वर्जिताः३९ ध्रुवब०, पञ्चे०जा०औदा० २, जिन० परा० उच्छ्व०, त्रस-४।	४९	१०१
,,	,,	,,	४	एके०-पञ्चे०जाती, औ०अङ्गो०, आतप, त्रस, स्था० इति षड्रहिताःशेषाः सौधर्मसुरमार्गणोक्ताः२५ चतुर्विधबन्धवत्यः।	५२	

* अवक्तव्यरहितास्त्रिविधबन्धाः। एवमुत्तरत्राऽपि ज्ञेयम्।

सत्पदद्वारयन्त्रम्

गाथाङ्कः	मार्गणासंख्या	मार्गणानामानि	प्रदेशबन्धप्रकाराः	प्रकृतयः	प्रकृतिसंख्या	मार्गं० घ्रुव० सर्वाः
१७-१८	१३	आनतादिचतुष्कं, नवग्रैवेयकसुरेषु,	३	स्त्या०८रहिता ३९ ध्रुवब०,पञ्चे०जा०,मनु०२, औदा०२, जिन०, परा०, उच्छ्व०, त्रस-४, मनु-२,तिर्यक् ३, उद्योत-इति षट्प्र० रहिताः	५१ ४६	९७
"	"	"	४	शेषाः पूर्वगाथातुल्याः षट्चत्वा० प्र० ।	१२	—
१९	६	पञ्चानुत्तरसुर०, मिश्र-सम्य०	४	सातं हास्य-रति-स्थिर-शुभ-यशःकीर्त्तिनामानीति षट्प्र०, तत्प्रतिपक्षभूताश्च षट् प्र० ।	६०	७२
"	"	"	३	ज्ञाना०५, दर्शना० ६, मोहनीय-१५, मनु- ष्यायुः, नाम्नः २६ उच्चैर्गोत्रम् , अन्तराय ५	६३	७५
"	"	मिश्रे	"	मनुष्यायुर्वर्जाऽनन्तरोक्त६९ तथा देव २ वै० २	५१	—
२०	१४	सर्वतेजःकायवायुभेदाः	३	४७ ध्रुवब०,तिर्यग्०२, औदा० श०,नीचैर्गो- मनु०३ ति०२, वै०८, औदा० श, आहा०२, जिन, गोत्र-२, इति एकोनविंशति-	५४	१०५
"	"	"	४	प्र०रहिता शेष५४ अध्रुवब० प्र० ।	४७	—
२१	१	औदा० मिश्रकाय०	३ १	मिथ्या०रहित४६ ध्रुव ब०, औदा० श०, सुर०२ वै०२, जिन०, वै०८, आहा०२ जिन, औ० श० इति द्वादश-	५ ६२	११०
"	"	"	४	प्र०वर्जिता शेषा६१अध्रुवब०,तथा मिथ्यात्वम् ।	५३	—
२२	१	वै० मिश्रकाय०	१❀	मिथ्या० रहित ४६ ध्रुव ब०, औदा० श० परा०, उच्छ्व०, जिन, बाद०२	४९	१०२
"	"	"	२❋	मनु०ति०आयुषी,वै०८ ,औदा.श० आहा.२,परा० जिन०,उच्छ्व०, बादर-२,सूक्ष्म३,जाति३,इति२५ प्र०रहिताःशेषा ४८अध्रुवब०प्र०तथा मिथ्यात्वम्	१४	—
२३	२	आहा० काय०, देशवि० संय०	४	सातादिषड्युगल०, जिन० सुरायुः	४९	६३
"	"	"	३	ज्ञाना०५, दर्शना०६, मोह०७, नाम्नः २५, उच्चैर्गोत्रम् , अन्त० ५ । (४९+प्रत्या०४)	-५३	६७
"	"	देशविरतौ			१४	—
२४	१	आहा० मिश्रकाय०	२	सातादिषड्युगल०, जिन०, सुरायुः ।	४९	६३
"	"	"	१	पूर्वगाथोक्ताः ज्ञाना०५ आदि४९ प्रकृतयः ।		—
२५	२	कार्मणकाय०, अनाहा०	१ २	मिथ्या०रहित४६ध्रुवब०, औदा०श०; सुर २ वै०२,जिन०, औदा०मि०का-वत् तिर्यङ्मनु०आयुर्व- र्जिताः ६० प्रकृतयः	५२ ६०	११२
"	"	"				

❀ एको भूयस्कारबन्ध एव । उत्तत्राऽपि इत्थं ज्ञेयम् । ❋ भूयस्काराऽवक्तव्यबन्धौ । उत्तत्राऽप्येवम् ।

गाथाङ्कः	मार्गणासंख्या	मार्गणानामानि	प्रदेशबन्धप्रकाराः	प्रकृतयः	प्रकृतिसंख्य	मार्गणा. बध्य० सर्वाः
२६	४	वेदत्रिक०, क्रोध०	३	पञ्चज्ञाना०, चतुर्दर्शना०, संज्व०४, अन्त०५	१८	—
,,	,,	,,	४	त्रिविधबन्धयोग्यज्ञाना०दि१८प्र०रहिताः शेषसर्वाः	१०२	१२०
२७	१	अपगतवेद०	४	ज्ञाना० ५, निद्रा-५ रहित ४ दर्शना०, सात०, संज्व०४, यश० नाम, उच्चैर्गोत्रम् , अन्त०५ ।	२१	२१
,,	६	मति-श्रुता-वधिज्ञान०, अवधिदर्शन०, सम्य० ओघ०, क्षायि० सम्य०,	४	ज्ञाना०५, दर्शना.स्य स्त्या०३रहिताः६, वेदनीय०२ मोहनीयस्य १९, आयु०२, नाम्नः ३९, उच्चैर्गोत्रम् , अन्तरा० ५	७९	७९
,,	१	उपश० सम्य०,	४	देवमनुष्यायु०रहिताः शेषा उपर्युक्ताः७७प्र०	७७	७७
,,	२	मनःप०ज्ञान०, संयमौघ०,	४	ज्ञाना०५, दर्शना०६, वेदनी० २, मोह० ११ देवायुः, नाम्नः ३४, उ०गोत्रम् , अन्त० ५	६५	६५
,,	१	शुक्लले०,	४	नरक० ३, ति० ३, जाति-४, स्था० ४, आतपोद्यते इति १६ प्र०वर्जिताःशेषसर्वाः१०४प्र०	१०४	१०४
२८	३	मान-माया-लोभमा०	३	मान मा० / मायामा० / लोभ० मा० — सं. क्रोध० / सं०क्रोध-मान० / सं० ४ इति क्रमशः १-२ ४ संज्व०-रहिताः शेषसर्वाः क्रोधमा० प्रोक्ताः ।	मान-१७ मा०-१६ लोभ १४	—
,,	,,	,,	४	क्रमशः १-२-४ सज्व० अधिकाः क्रोधमा० प्रोक्ताः ।	१०३-१०४-१०६	१२०-१२०-१२०
२९	३	३ अज्ञानमा०	३	मिथ्या०रहिताः ४६ ध्रुवब०	४६	११७
,,	,,	,,	४	आहा०२-जिन० रहिताः शेषसर्वाः ७० अध्रुवब० मिथ्या०च ।	७१	
३०	२	सामा०, छेदोप०,	३	६ आवरणानि, संज्व०लो०, ५ अन्त०, उच्चैर्गोत्रम् ।	१६	६५
,,	,,	,,	४	निद्रा० २, वेदनी०२, मोह० १०, देवायुः, नाम्नः ३४ प्र०	४९	
३१	१	परिहारवि०	४	सातादिषड्युगल०, आहा०२, जिन० ।	१५	६५
,,	,,	,,	३	ज्ञाना०५, दर्शना०६, मोह०७, देवायुः, नाम्नः २५, उ० गो०, अन्त०५	५०	

गाथाङ्कः	मार्गणासंख्याः	मार्गणानामानि	प्रदेशबन्धप्रकाराः	प्रकृतयः	प्रकृतिसंख्या	मार्ग० बध्य० पर्वाः
३२	१	सूक्ष्मसं०	३	ज्ञाना०५, दर्शना०४, सातवेद०, यशः०नाम, उच्चैर्गो०, अन्त० ५	१७	१७
,,	२	असंयम०, कापोतले०,..	३	स्त्या० ८ रहितशेषाः ३९ ध्रुवबं० ।	३६	११८
,,	,,	,,	४	आहा० २ वर्जितशेषाः ७१ अध्रुव०, स्त्या०८	७९	
३३	२	कृष्ण-नीलले०,	३	३९ ध्रुवब०; जिन० ।	४०	११८
			४	आहा०२-जिन०वर्जिताः शेषाः ७० अध्रुव०, स्त्या०८	७८	
३४	१	तेजोले०,	३	अप्रत्या० ४-प्रत्या० ४ , स्त्या०८ इति १६ प्र० वर्जिताः शेषाः ३१ ध्रुबब०, तथा परा० उच्छ्०, बादर ३ ।	३६	१११
			४	ध्रुवबन्धिन्यः १६, अध्रुवब० मध्यात् पराघा० उच्छ्०बादर-३-सूक्ष्म-३-नरक-३-विकल-३ इति १४ प्र० रहिताःशेषाः ५९ प्र०,	७५	
३५	१	पद्मले०,	३	तेजोले० उक्ताः ३६ प्र०, तथा पञ्चे० जा०, त्रसनाम ।	३८	१०८
,,	,,	,,	४	तेजोले० मा० उक्ताः एके० पञ्चे०जाति-त्रस-स्थावर-आतपरहिताः ७० प्र०	७०	
३६	३	अभव्य०; मिथ्यात्व०, असंज्ञी,	३	४७ ध्रुवबन्धि०	४७	११७
,,	,,	,,	४	आहा०२ जिन० वर्जिताः शेषाः ७० अध्रुव० ।	७०	
३७-३८	१	वेदकसम्य०	४	सातादि ६ युगल०, मध्यकषाय ८, मनु०२, देव०-२, औदा०२, वै०२, आहा०२, वज्रर्ष०, जिन० ।	३२	७९
,,	,,	,,	३	ज्ञाना०५, दर्शना०६, मोह०७, दे० म०आयुषी, नाम्नः २१, उच्चैर्गोत्रं, अन्त०५ ।	४७	
३९	१	सास्वा० स०,	३	मि०रहित४६ध्रुवब०, पञ्चे०जा०, परा०, उच्छ्०, त्रस०४ ।	५३	१०१
,,	,,	,,	४	वेदनी०२, मोह०६, आयु०३, नाम्नः ३५, गोत्र-२ ।	४८	

॥ द्वितीयं स्वामित्वद्वारम् ॥

प्ररूपितं सत्पदद्वारम् । सम्प्रति द्वितीयं स्वामित्वद्वारं प्रतिपिपादयिषुर्मूलकारः प्रथममोघतः आदेशतश्च सर्वमार्गणास्थानेष्ववक्तव्यवर्जितत्रिविधप्रदेशबन्धस्य स्वामिनः प्रतिपादयति—

सव्वेसिं पयडीणं अण्णयरो कुणइ भूअगारं च ।
अप्पयरमवट्ठाणं सव्वह एमेव सपयाणं ॥४०॥

(प्रे०) "सव्वेसिं" इत्यादि, सर्वासां विंशत्यधिकशतप्रकृतीनां भूयस्कारोऽल्पतरोऽवस्थितश्चेति त्रिविधप्रदेशबन्धं "अण्णयरो" त्ति अन्यतमः देवादिचतुर्विधगतिषु यः कोऽपि यासां प्रकृतीनां बन्धकः स तासां प्रकृतीनां भूयस्कारादित्रिविधप्रदेशबन्धं 'कुणइ' त्ति करोति । 'सव्वह' त्ति सर्वत्र-सप्तत्यधिकशतमार्गणास्थानेषु 'सपयाणं' ति स्वप्रायोग्यपदानां-तत्तन्मार्गणाबन्धार्हप्रकृतिप्रायोग्यभूयस्कारादित्रिविधबन्धानां "एमेव" त्ति एवमेवौघवदन्यतमस्तन्मार्गणाप्रायोग्यः कोऽपि जीवः स्वाम्यस्ति ।

इदं तु बोध्यम्–सर्वासु मार्गणास्ववक्तव्यबन्धस्य स्वामिनोऽग्रे वक्ष्यामः । अत्र तु तत्तद्मार्गणासु शेषभूयस्कारादित्रिविधबन्धमध्याद् ये बन्धाः सम्भवन्ति तेषां स्वामिनः प्रोक्ताः । अथ सप्ततिशतमार्गणानामानि तथा तत्तन्मार्गणायां भूयस्कारादित्रिविधप्रदेशबन्धमध्यात्कतिविधप्रदेशबन्धः सम्भवति तद् दर्श्यते–अत्र सप्ततिशतमार्गणामध्याद्वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणा-ऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणा-कार्मणकाययोगमार्गणा-ऽनाहारकमार्गणा चेति चतुर्मार्गणासु त्रिविधबन्धमध्यादेको भूयस्कारबन्ध एव सम्भवति । शेषषट्षष्ट्यधिकशतमार्गणासु च भूयस्कारादित्रिविधोऽपि बन्धः सम्भवति । ताश्चेमाः षट्षष्टिशतमार्गणाः, सप्तचत्वारिंशद्गतिमार्गणाभेदाः, एकोनविंशतीन्द्रियमार्गणाभेदाः, द्वाचत्वारिंशत्कायमार्गणाभेदाः । वैक्रियमिश्रा-ऽऽहारकमिश्र-कार्मणकाययोगरहिताः शेषपञ्चदशयोगभेदाः, चत्वारो वेदमार्गणाभेदाः, चत्वारः कषायभेदाः, सप्तज्ञानमार्गणाभेदाः, सप्त संयमभेदाः, त्रयो दर्शनभेदाः, षड्लेश्याभेदाः, द्वे भव्या-भव्यमार्गणे, सप्त सम्यक्त्वभेदाः, संज्ञ्यसंज्ञिमार्गणे, आहारकमार्गणा चेति । एतास्वन्यतममार्गणायां वर्तमानस्य कस्यचिज्जीवस्य पूर्वस्मादुत्तरसमये यदि योगस्य वृद्धिरथवा बध्यमानप्रकृतीनां हानिः संजायते तर्हि स तासां भूयस्कारबन्धस्य स्वामी भवति, यदि च योगस्य हानिर्बध्यमानप्रकृतीनां वृद्धिर्वा भवति तदा सोऽल्पतरबन्धस्य स्वामी भवति, यदि पुनरुत्तरसमये तस्य योगे बध्यमानप्रकृतिषु च वृद्धिहानी न भवतः, तदा तु सोऽवस्थितबन्धस्य स्वामी भवति । अत्र भूयस्कारादिबन्धानां विस्तरेण स्वरूपं 'सत्पद'द्वारादवलोकनीयम् । एवं एते त्रयोऽपि बन्धा उक्तषट्षष्टिशतमार्गणासु बध्यमानप्रकृतीनां सम्भवन्ति, परमौदारिकमिश्रे देवद्विक-वैक्रियद्विक-जिननाम्नां भूयस्कारपदस्यैवान्यतमाऽविरतसम्यग्दृष्टयः शेषपदद्वयस्याभावश्च । तथा वैक्रियमिश्रयोगादिचतुर्मार्गणास्वेको

भूयस्कार एव बन्धो सम्भवति, तासु मार्गणासु योगस्य प्रतिसमयमसङ्ख्येयगुणवर्धमानत्वादल्पतरा-ऽवस्थितबन्धौ न प्राप्येते इति । तद्बन्धस्वामी तु तत्तद्मार्गणाप्रायोग्यः कोऽपि जीवो विज्ञेय इति ॥ ।४०॥

इत्थमोघत आदेशतश्च भूयस्कारादित्रिविधबन्धस्य स्वामिन उक्ताः, अथौघतोऽवशिष्टस्या-वक्तव्यबन्धस्य स्वामिनस्समादिशति—

मिच्छस्स अवत्तव्वं पढमखणे कुणइ संयमाइचुओ ।
मिच्छो स य सासाणो थीणद्धितिगाणचउगाणं ॥४१॥

(प्रे०) "**मिच्छस्से**" त्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्यावक्तव्यबन्धस्वामी "**संयमाइचुओ मिच्छो**" त्ति सर्वसंयमादिच्युतो मिथ्यात्वी, अत्र संयमपदेन प्रमत्तगुणस्थानवर्ती ग्राह्यः, आदि-शब्दाच्च देशविरता विरतसम्यग्दृष्टि-मिश्रदृष्टि-सास्वादनगुणस्थानकानि ग्राह्याणि, तस्मादेतेभ्यः-सर्व-विरतादिपञ्चगुणस्थानकेभ्यः "च्युतः" पतितः "मिथ्यात्वी" मिथ्यात्वगुणस्थानकागतो जीवः प्रथमक्षणे मिथ्यात्वस्याबन्धोत्तरबन्धप्रारम्भरूपमवक्तव्यप्रदेशबन्धं करोति, तस्मात् तद्बन्धस्य सः स्वाम्युच्यते ।

"**थीणद्धितिगाणचउगाणं**" ति स्त्यानर्द्धित्रिकस्य तथाऽनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य तु "**स य सासाणो**" त्ति अत्र तत्शब्देन 'मिच्छो' इति पदं परामृश्यते, तस्मात् मिथ्यात्वी सास्वादनी चावक्तव्यबन्धस्वामिनौ भवतः । अयमर्थः-कश्चिज्जीवः षष्ठ-पञ्चम-चतुर्थगुणस्थानके-भ्यश्च्युत्वा द्वितीयसास्वादनगुणस्थानकं समायाति, तदा स स्त्यानर्द्धित्रिकस्यानन्तानुबन्धिचतुष्कस्य चेति सप्तप्रकृतीनां बन्धं प्रारभते, तथा कश्चिज्जीवः षष्ठ-पञ्चम-चतुर्थ-तृतीयगुणस्थानकेभ्यः प्रपत्य मिथ्यात्वगुणस्थानकं याति, तदा सोऽप्युक्तसप्तप्रकृतीनां बन्धमारभते, इत्थमत्र सप्तप्रकृतीनाम-बन्धोत्तरबन्धभवनात् तौ द्वौ मिथ्यात्वी सास्वादनी च तासामबन्धोत्तरबन्धलक्षणावक्तव्यबन्धस्य स्वामिनौ भवत इति ॥४१॥

इदानीमोघतोऽप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरणकषायाणामवक्तव्यबन्धस्य स्वामिनो व्या-जिहीर्षुराह—

बीअकसायाणं खलु परिभट्ठो कुणइ सेणिआइत्तो ।
सम्मादिट्ठीयाई तइअकसायाण देसाई ॥४२॥

(प्रे०) "**बीअकसायाणं**" इत्यादि, द्वितीयाप्रत्याख्यानकषायचतुष्कस्य, "**सेणिआइत्तो परिभट्ठो कुणइ**" त्ति श्रेण्यादितः परिभ्रष्टः-"**सम्मादिट्ठीयाई**" त्ति सम्यग्दृष्ट्यादिर्जीवः करोति, किं करोति ? प्रस्तुतत्वादवक्तव्यप्रदेशबन्धं करोतीति अत्र—उत्तरत्राऽप्यनुवर्तनीयम् । "**तइअकसा-याणं**" ति तृतीयप्रत्याख्यानकषायाणामवक्तव्यबन्धं तु 'सेणिआइत्तो परिभट्ठो' त्ति पदद्वय-

स्येहाप्यनुवर्तनात् श्रेण्यादितः परिभ्रष्टो देशविरत्यादिगुणस्थानवर्तिजीवः करोतीति त्वन्वयार्थः ।

भावार्थः पुनरयम्—अप्रत्याख्यानचतुष्कस्यावक्तव्यबन्धस्वामिनः सम्यग्दृष्ट्यादिजीवा उक्ताः, अत्राऽऽदिशब्देन मिश्रदृष्टि-सास्वादनि-मिथ्यात्विनोऽपि जीवा ग्राह्याः, ते च श्रेण्यादितः परिभ्रष्टाः कथिताः, अत्राऽपि आदिशब्देन सर्वविरति-देशविरतितः परिभ्रष्टा अपि ग्राह्याः, श्रेणिश्चाष्टमगुणस्थानादारभ्य एकादशमगुणस्थानकं यावद् भवति, तत्राष्टमादिषु कस्मिंश्चिदपि गुणस्थानके कालं कृत्वा चतुर्थगुणस्थानकं प्राप्तो प्रथमसमयवर्त्तिदेवः प्रकृतबन्धस्वामी भवति, तथैवात्राऽऽदिशब्दात् सप्तमगुणस्थानात्कालं कृत्वा चतुर्थं गुणस्थानकं प्राप्तस्तथा पञ्चमषष्ठगुणस्थानतः कालं कृत्वा पतित्वा वा चतुर्थगुणस्थानं प्राप्तः, पञ्चमषष्ठगुणस्थानकतश्च्युत्वा तृतीय-द्वितीय–प्रथमगुणस्थानकं वाऽऽगतो जीवोऽपि प्रकृतबन्धस्वामी भवति । तथाऽत्र षष्ठगुणस्थानाच्च्युत्वा चतुर्थादिगुणस्थानकं प्राप्ताः प्रकृतबन्धस्वामिनो मनुष्या एव सन्ति, तथा पञ्चमगुणस्थानात्पतित्वा चतुर्थादिगुणस्थानकमवाप्ताः प्रकृतबन्धस्वामिनस्तिर्यग्मनुष्येष्वन्यतरजीवाः सम्भवन्ति ।

प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्यावक्तव्यबन्धस्वामी तु श्रेणावष्टमादिगुणस्थानकतः कालं कृत्वा तथैव सप्तमषष्ठगुणस्थानकतः कालं कृत्वा चतुर्थगुणस्थानवर्तिप्रथमसमयस्थो देवस्तथा षष्ठगुणस्थानकाच्च्युत्वा पञ्चमचतुर्थतृतीयद्वितीयप्रथमगुणस्थानप्राप्तो जीवो ज्ञेयः । अत्रोक्ता जीवाः तत्तदुक्तगुणस्थानकं प्राप्य तत्प्रथमक्षण एवोक्तप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धं कुर्वन्ति, यतोऽवक्तव्यबन्धस्य लक्षणमबन्धोत्तरबन्धप्रारम्भरूपमस्ति, तच्चात्र प्रथमक्षणे एव संभवति । तथाऽत्र षष्ठगुणस्थानाच्च्युत्वा पञ्चमादिगुणस्थानकं प्राप्ता ये प्रकृतबन्धस्वामिन उक्तास्ते मनुष्या एव सन्तीति ज्ञेयम् । ॥४२॥

अथाहारकद्विकजिनवर्जोक्तशेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वामिनः प्रकटयन्नाह—

सेसधुवबंधिणीणं पडिओ सेढीउ कुणइ उवसमगो ।
पढमसमये सुरो वा सेसाणं कुणइ अण्णयरो ॥४३॥

(प्रे०) "**सेसधुव०**" इत्यादि, उक्तशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम्, प्रकृतत्वादवक्तव्यप्रदेशबन्धं "**पडिओ सेढीउ कुणइ उवसमगो**" त्ति श्रेणितः पतितः उपशमकः अथवा "**पढमसमये सुरो**" त्ति प्रथमसमयवर्तिदेवः करोति । "**सेसाण**" ति आहारकद्विकजिननामरहितशेषसर्वाऽध्रुवबन्धिनीनामिति यतः आहारकद्विक-जिननामावक्तव्यबन्धस्वामिनिरूपणमनन्तरगाथया मूलकारो वक्ष्यति, तस्मादत्र तत्प्रकृतित्रयरहिताः शेषसप्ततिरध्रुवबन्धिन्यो ग्राह्याः; तासां चावक्तव्यबन्धम् "**अण्णयरो**" त्ति अन्यतमो जीवः करोति । इदमेव भाव्यते—स्त्यानर्द्धित्रिकमध्यमकषायाष्टकरहितशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वाम्येकस्तु श्रेणितः पतितोपश-

मकः कथितः, स त्वित्थम्—यदैकादशगुणस्थानाच्च्युत्वा दशमगुणस्थानमायाति, तदा स ज्ञानावरणपञ्चक–चक्षुरादिचतुर्दर्शनावरणा-न्तरायपञ्चकानीति चतुर्दशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धं करोति पश्चाद्दशमगुणस्थानान्नवमगुणस्थानमागच्छति तदा सः संज्वलनलोभस्यावक्तव्यबन्धं करोति, तत्पश्चान्निम्न-निम्नतरभागेषु यदाऽऽगच्छति तदा क्रमशः संज्वलनमाया-मान-क्रोधानामवक्तव्य-बन्धं करोति, पश्चादष्टमगुणस्थानागमने सति तत्प्रथमसमये भयजुगुप्सयोः, पश्चान्नाम्नः नवध्रुव-बन्धिनीनाम् पश्चान्निद्राद्विकस्य चावक्तव्यबन्धं कुरुते । अन्यरीत्या च यदा कश्चिज्जीव एकादशादि-गुणस्थानके कालं कृत्वा देवत्वेनोत्पद्यते तदा तत्प्रथमसमये स एतासां शेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धि-नीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धमारचयति ।

आहारकद्विक-जिननामरहितशेषसप्तत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वाम्यन्यतमो जीव उक्तः, तत्र सूक्ष्मत्रिक-विकलत्रिक-वैक्रियाष्टकानामिति चतुर्दशप्रकृतीनां देवनारकेष्ववध्यमान-त्वादवक्तव्यबन्धं ते देवनारका नैव कुर्वन्ति, अर्थात् तिर्यङ्मनुष्या एव कुर्वन्ति । ननु देवेषु बादर-त्रिकादीनां नियमेन बन्धे सत्यपि श्रेणौ कालगतस्य देवेषूत्पन्नस्य बादरत्रिकादीनामवक्तव्यबन्धो भवति, तथापि देवगतिमार्गणायां कस्मान्न वक्ष्यत इति चेद् , उच्यते, देवभवमध्ये यासां प्रकृतीनाम-बन्धकालोऽस्ति तासामेव प्रकृतीनां तत्राऽबन्धोत्तरबन्धसद्भावादवक्तव्यो घटते । श्रेणौ कालगत-स्य तु बादरत्रिकादीनां देवगतौ प्रथमसमयादारभ्यैव बन्धसद्भावात् तत्र चाऽबन्धस्य समयमात्र-स्याऽलाभात् , देवगतिमार्गणामाश्रित्य बादरत्रिकादीनामवक्तव्यबन्धो न घटते एव । एवमन्यत्राप्य-भ्यूह्यम् । तथा नारकेष्वेकेन्द्रियजाति-स्थावरा-ऽऽतपनाम्नामबन्धात् , पञ्चेन्द्रियजाति-त्रसचतुष्क-पराघातो-च्छ्वासनाम्नां च नियमेन बन्धनिष्पत्तेस्ते तासां दशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धं नैव कुर्वन्ति, तस्मान्नरकगतिं विवर्ज्य शेषत्रिविधगतिस्थिता जीवा एवैतासामवक्तव्यबन्धं प्रकुर्वन्ति । या उक्तशेषाश्चतुश्चत्वारिंशदध्रुवबन्धिन्योऽवशिष्टाः सन्ति, तासामवक्तव्यबन्धस्य स्वामिनः देवादि-चतुर्गतिका अपि जीवाः सम्भवन्तीति विज्ञेयम् ॥४३॥

अथ जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धस्वामिनश्चिन्तयन्नाह—

तहवि जिणस्स पडंतो अपुव्वकरणो उअज्जसमयसुरो ।
सम्मपढमखणणिरयो, सम्माइणरो पढमबंधे ॥४४॥

(प्रे०) "तहवि" इत्यादि, तत्रापि-अध्रुवबन्धिनीषु याः तिस्रः प्रकृतयोऽवशिष्टाः तन्मध्या-दाहारकद्विकस्यावक्तव्यबन्धस्वामी तूत्तरगाथया वक्ष्यते । जिननाम्नस्त्ववक्तव्यबन्धस्वामिन इमे—"पडंतो अपुव्वकरणो" त्ति श्रेणेः पतन्नष्टमाऽपूर्वकरणगुणस्थानकं प्राप्तो जीवः, "उअ-ज्जसमयसुरो" त्ति 'उत' इति निपातो विकल्पार्थद्योतकः, स च विकल्पं द्योतयति, 'उत'—अथवा

भाग्रसमयसुरोऽर्थात्श्रेणौ कालं कृत्वा देवत्वेनोत्पन्नः, अथवा "**सम्मपढमखणनिरयो**"त्ति कश्चिद् बद्धनरकायुष्को जिननामसत्ताभाग् जीवोऽन्तकाले मिथ्यात्वसहितो नरकगतावुत्पद्य तत्र पर्याप्तः सन्स-म्यक्त्वप्राप्तिप्रथमसमये, अथवा "**सम्माइणरो पढमबंधे**" त्ति अविरतसम्यग्दृष्टिः, आदिशब्दात् देशविरतः सर्वविरतो वा मनुष्यो यदा जिननाम्नो नूतनबन्धं प्रारभते तदा तत्प्रथमसमये स जिननाम्नोऽबन्धोत्तरबन्धलक्षणस्यावक्तव्यप्रदेशबन्धस्य स्वामी भवितुमर्हति । इत्थं चतुर्धा जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धः प्राप्यते ॥४४॥

अथ शेषाहारकद्विकस्यावक्तव्यबन्धस्वामिनो वक्ति—

आहारदुगस्स कुणइ सेणीअ चुओ अपुव्वकरणो वा ।
पढमखणे अपमत्तो अपमत्तजई पढमबंधे ॥४५॥

(प्रे०) "**आहारदुगस्से**" त्यादि, आहारकद्विकस्यावक्तव्यप्रदेशबन्धं "**सेणीअ चुओ**" इत्यादि, उपशमश्रेणितश्च्युतः कश्चिज्जीवो यदाऽष्टमगुणस्थानकस्य षष्ठं भागं प्राप्तः तदा करोति, '**वा**' इति अथवा "**पढमखणे अपमत्तो**" इत्यादि, आहारकद्विकस्य सत्ताभाक् कश्चन जीवः सप्तमगुणस्थानं प्राप्तः सन् तत्र प्रथमक्षणादेव, यद्वाऽऽहारकद्विकस्य नूतनबन्धं प्रारभमाणोऽप्रमत्तयति-राहारकद्विकस्यावक्तव्यबन्धस्वामी भवति ॥४५॥

एवं सर्वप्रकृतीनामोघेनावक्तव्यप्रदेशबन्धस्वामिनः प्रोच्याऽऽदेशतस्तानेव विभणिषुः प्रथमं यासु मार्गणास्वोघवदेवावक्तव्यबन्धस्वामिनः सन्ति तासु तान्प्रतिपादयन्नाह—

जाणऽत्थि सिमोघव्व दुपणिंदितसकायपुमकसायेसु ।
चक्खुअचक्खूसु तहा भविये सण्णिम्मि आहारे ॥४६॥

(प्रे०) "**जाणऽत्थि**" इत्यादि, यासां बध्यमानप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धोऽस्ति "**सिं**" ति तासां तद्बन्धस्वामी ओघवदस्ति, कासु मार्गणासु ? "**दुपणिंदितस**" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियसामान्य-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणे द्विशब्दस्याऽत्राऽप्यन्वयात् त्रसकायौघ-पर्याप्तत्रसकाय-मार्गणे, काययोगसामान्यमार्गणा–पुरुषवेदमार्गणा-क्रोधादिचतुष्कषायमार्गणाः-तासु, तथा "**चक्खु-अचक्खूसु तहा**" त्ति चक्षुर्दर्शनमार्गणाऽचक्षुर्दर्शनमार्गणा तयोः, "**भविये**" त्ति भव्यमार्ग-णायां "**सण्णिम्मि**" त्ति संज्ञिमार्गणायां, "**आहारे**" त्ति आहारकमार्गणायां चेति पञ्चदशमार्ग-णास्वित्यर्थः ।

इदमुक्तं भवति-एतासूक्तपञ्चदशमार्गणासु श्रेणिः सम्भवत्येव । पुनरेतासु मार्गणासु श्रेण्यादितः कालं कृत्वा जीवोऽन्यत्र गच्छति तदा तत्राऽप्येता मार्गणा न परावर्तन्ते, एतेनैवकारणेन एतासु प्रत्येकं प्रकृतबन्धयोग्यप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य स्वाम्योघवत्

कथितः । नन्वत्रोक्तमार्गणासु सम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धाः प्रकृतयः का इति चेदुच्यते, अत्रोक्त-पुरुषवेदमार्गणायां तथा क्रोधमार्गणायां पञ्चज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण संज्वलनचतुष्का-ऽन्तरायपञ्चक-रहितशेषद्व्यधिकशतप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धः सम्भवति, मानमार्गणायां क्रोधमार्गणोक्तप्रकृतीनां तथा संज्वलनक्रोधस्येति त्र्यधिकशतप्रकृतीनाम् , मायामार्गणायां संज्वलनमानस्याऽपि तत्संभवात् चतुरधिकशतप्रकृतीनाम् , लोभमार्गणायां संज्वलनमाया-लोभयोरपि तत्संभवात् षडधिकशतप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धो भवितुमर्हति । पुरुषवेदे जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धस्वामी नारको न कथनीयस्तस्य मार्गणाबहिस्त्वादित्यवधेयम् ।

एताभिः पुरुषवेदादिपञ्चमार्गणाभी रहिता याः शेषपञ्चेन्द्रियसामान्यादिदशमार्गणा एतद्गाथायां प्रोक्ताः सन्ति, तासु प्रत्येकं सर्वासां-विंशतिशतप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धः संघटते । इत्थमेतासु पञ्चदशमार्गणास्ववक्तव्यबन्धवतीनां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य स्वाम्योघवत्कथितः, तत्कारणमपि निर्दिष्टं, विशेषभावना त्वोघवदेव ज्ञातव्या विबुधजनैरिति ॥४६॥

साम्प्रतं मनुष्यगत्यादिमार्गणास्थानेष्ववक्तव्यबन्धस्वामिनो निर्वक्ति—

एमेव जाण हवए सिं तिणरपणमणवयणउरलेसुं ।
थीणपुमअवेएसुं णवरं णो चेव होइ सुरो ॥४७॥

(प्रे०) "एमेव" इत्यादि, "एमेव" त्ति सर्वथौघवदेव भवति, **'जाण हवए सिं'** ति यासां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धः सम्भवति तासां, कासु मार्गणासु ? इत्याह "**तिणरपणमणवयणउरलेसु**" ति अपर्याप्तमनुष्यभेदवर्जिताः शेषत्रयो मनुष्यभेदाः, पञ्चमनोयोगमार्गणाः पञ्चवचनयोगमार्गणाः, औदारिककाययोगमार्गणा च तासु, तथा "**थीणपुमअवेएसु**" ति स्त्रीवेदमार्गणा, नपुंसकवेदमार्गणा, अपगतवेदमार्गणा च तासु, एतासु सप्तदशमार्गणास्ववक्तव्यबन्धस्वामिन ओघवदेव विज्ञेयाः, अत्र "**नवरं**" इत्यादिना अपवादं दर्शयति "**णवरं णो चेव होइ सुरो**" त्ति किन्तु श्रेणौ कालं कृत्वा देवगतावुत्पन्नः प्रथमसमयवर्तिदेवोऽत्रावक्तव्यबन्धस्वामी न भवतीति । त्रिमनुष्यौ-दारिककाययोग स्त्रीवेदरूपपञ्चमार्गणासु जिननामावक्तव्यबन्धकतया नारको न वक्तव्यस्तस्य मार्गणाबहिस्त्वात् ।

एतदुक्तं भवति—अत्रोक्तास्त्रयो मनुष्यभेदाः, पञ्चमनोयोगभेदाः, पञ्चवचनयोगभेदाः, औदारिककाययोगभेदश्चेति चतुर्दशमार्गणाभेदेषु श्रेणिगतैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जिनस्य चावक्तव्यप्रदेशबन्धस्य स्वामी श्रेणेरवतरज्जीव एव भवति, ओघवक्तव्यतायां त्वेतासां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वामी श्रेणौ कालं कृत्वा तथैव कषायाष्टकस्याऽपि संयमादितः कालं कृत्वा देवगतावुत्पन्नः प्रथमसमयवर्ती देवोऽपि कथितोऽस्ति, किन्त्वत्रोक्तमार्गणासु स स्वामी नैव भवति, यतो देवगतावुत्पन्न-

स्योक्तमनुष्यादिमार्गणानां विच्छेदात् । शेषबध्यमानप्रकृतीनां तु स्वामिन ओघवदेव विज्ञेयाः ।

तथाऽत्रोक्तस्त्रीवेद-नपुंसकवेदमार्गणयोः पुनर्ध्रुवबन्धिमध्यात् सञ्ज्वलनचतुष्कस्य ज्ञानावरणादिचतुर्दशप्रकृतीनां चावक्तव्यबन्धो नैव भवति ।

निद्राद्विकं, नाम्नो नवध्रुवबन्धिन्यः भयजुगुप्से चेति त्रयोदशप्रकृतीनां जिनस्य चावक्तव्यबन्धः केनचित्श्रेणेरवतरता बन्धस्थानं प्राप्तेन जीवेन क्रियते । तथा कषायाष्टकस्यावक्तव्यबन्धः संयमाच्च्युत्वा चतुर्थादिगुणस्थानकं प्राप्तेन जीवेन यदा तद्बन्धः प्रारभ्यते तदा प्राप्यते, तस्मात्स एव तासां प्रकृतबन्धस्वामी कथ्यते, अत्राऽपि क्रमेण श्रेणेः संयमाच्च कालं कृत्वा देवगतावुत्पन्नः प्रथमसमयवर्तिदेवः स्वामी न संभवति तत्र उक्तमार्गणानां विच्छेदभवनात् । शेषबध्यमानध्रुवबन्धिनीनां तथा जिनवर्जद्वासप्ततरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वामिनो भावना स्वोघवज्ज्ञेया ।

अपगतवेदमार्गणायां पुनर्ज्ञानावरणपञ्चकम् , दर्शनावरणचतुष्कम् , सातवेदनीयं, सञ्ज्वलनचतुष्कम् , यशःकीर्तिनाम, उच्चैर्गोत्रम् , अन्तरायपञ्चकं चेत्येकविंशतिप्रकृतयो बध्यन्ते, तासामवक्तव्यबन्धः श्रेणेर्निपतन्कश्चिज्जीवो यदा तत्तत्प्रकृतीनां बन्धमुपरचयति तदा प्राप्यते । अतः स एव तद्बन्धस्वामी निगद्यते ।।४७।।

सम्प्रति नरकगत्यादिमार्गणाभेदेषु मिथ्यात्वस्याऽवक्तव्यबन्धस्वामिनं प्रचिकटयिषुराह—

णिरयपढमाइछणिरयसुरगेविज्जंतदेवविउवेसुं ।
मिच्छस्स अवत्तव्वं सम्माइचुओ कुणइ मिच्छो ।।४८।।

(प्रे०) '**णिरय०**' इत्यादि, नरकगत्योघमार्गणा, प्रथमादिषड्नरकगतिभेदाः, "**सुर**" त्ति सुरौघमार्गणा "**गेविज्जंतदेव**" त्ति ग्रैवेयकपर्यन्ता देवमार्गणाः, अर्थात् त्रयो भवनपतिव्यंतरज्योतिष्कमार्गणाभेदाः, द्वादशवैमानिकसुरमार्गणाभेदाः, नवग्रैवेयकसुरमार्गणाभेदाः, "**विउवेसु**" त्ति वैक्रियकाययोगमार्गणा एतेषु त्रयस्त्रिंशन्मार्गणाभेदेषु "**मिच्छस्स अवत्तव्वं**" ति मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवक्तव्यप्रदेशबन्धं "**सम्माइचुओ कुणइ मिच्छो**" त्ति सम्यक्त्वादिच्युतः मिथ्यात्वी करोति, अर्थात् सम्यक्त्वगुणस्थानात् , आदिशब्दात् मिश्रदृष्टिगुणस्थानात् सास्वादनसम्यक्त्वगुणस्थानाच्च च्युत्वा प्रथमगुणस्थानकागतो मिथ्यादृष्टिः प्रथमसमय एव मिथ्यात्वस्यावक्तव्यप्रदेशबन्धस्वामी भवतीति ।।४८।।

अधुना तास्वेव त्रयस्त्रिंशद्मार्गणास्वनन्तानुबन्धिचतुष्कादीनां तथा सम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धानां शेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य स्वामिनः प्ररूपयन्नाह गाथायुग्मम्—

अणथीणद्धितिगाणं सम्माइचुओ उ मिच्छसासाणो ।
कुणए अण्णयरो खलु सप्पाउग्गाण सेसाणं ।।४९।।

तहिंवि णिरयपढमाइतिणिरयविउव्वेसु कुणइ णेरइयो ।
सम्मस्साइमसमये वट्टंतो तित्थणामस्स ॥५०॥

(प्रे०) "अणथीण०" इत्यादि, अनन्तानुबन्धिचतुष्कम्-अनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया-लोभाख्यम्, तथा स्त्यानर्द्धित्रिकम् निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला स्त्यानर्द्धिलक्षणम्, एतासां सप्तप्रकृतीनां, पूर्वगाथोक्तासु त्रयस्त्रिंशन्मार्गणासु प्रकृतत्वादवक्तव्यबन्धस्वामी "सम्माइचुओ उ मिच्छसासाणो" त्ति सम्यक्त्वगुणस्थानात्पतित्वा सास्वादनगुणस्थानकं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकं वा प्राप्तोऽथवाऽऽदिशब्दान्मिश्रगुणस्थानाच्च्युत्वा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं प्राप्तो जीवोऽस्ति । "सप्पाउग्गाण सेसाणं"ति अत्रोक्तमार्गणासु स्वप्रायोग्यशेषसम्भाव्यमानाऽवक्तव्यबन्धवतीनां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धः "कुणए अण्णयरो" त्ति तत्तन्मार्गणावर्ती कोऽपि जीवः करोति ।

"तहिंवि" त्ति तत्रापि 'णिरयपढमाइतिणिरयविउव्वेसु" त्ति नरकौघ-प्रथमादित्रिनरक--वैक्रियकाययोगरूपासु पञ्चमार्गणासु "तित्थणामस्स" त्ति तीर्थकरनामकर्मणोऽवक्तव्यबन्धं "सम्मस्साइमसमये वट्टंतो णेरइयो कुणइ" त्ति सम्यक्त्वगुणस्थानकस्य प्रथमसमये वर्तमानो नारक-जीवः करोति; अर्थाज्जिननामसत्ताको वान्तसम्यक्त्वः कश्चिज्जीवो यदा नरकगतावुत्पद्य पर्याप्ता-वस्थां प्राप्यान्तर्मुहूर्तकालात्पश्चात्सम्यक्त्वं प्राप्नोति तत्प्रथमसमये स जिननाम्नोऽबन्धोत्तरबन्ध-प्रारम्भलक्षणावक्तव्यबन्धं करोति, अतः स तद्बन्धस्वामी ज्ञातव्यः ।

अत्रोक्तत्रयस्त्रिंशन्मार्गणासु याः सम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धवत्य उक्तशेषप्रकृतयः सन्ति, तासाम-वक्तव्यप्रदेशबन्धस्वामी तत्तद्मार्गणावर्तिनामन्यतमजीवो अवगन्तव्यः । अत्रोक्तशेषप्रकृतयः का इति चेदुच्यते, ध्रुवबन्धिनीभ्यः स्त्यानर्द्ध्यष्टकस्य प्रकृतबन्धस्वामिनः पूर्वमुक्ताः । तद्रहितशेषध्रुव-बन्धिनीनां त्वत्रोक्तमार्गणास्ववक्तव्यबन्धो न भवति, तथाऽध्रुवबन्धिप्रकृतिमध्यादपि यास्तत्त-मार्गणाप्रायोग्यनिरन्तरबन्धिन्यो भवन्ति, तासामप्यवक्तव्यबन्धो नैव सम्भवति, तस्मादव-शिष्टा या अवक्तव्यबन्धवत्योऽत्रोक्ततत्तद्मार्गणासु सम्भवन्ति, ता उच्यन्ते—नरकौघमार्गणायां तथा प्रथमादिषड्नरकभेदेषु वेदनीयद्विक-हास्यचतुष्क-वेदत्रिक-तिर्यङ्मनुष्यायुष्क-मनुष्यद्विक-तिर्यग्द्विक-संहननषट्क-संस्थानषट्क-खगतिद्विको-द्योत-स्थिरषट्का-ऽस्थिरषट्क गोत्रद्विकानीति चतुश्चत्वारिंशद-ध्रुवबन्धिनीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्वामी तन्मार्गणावर्तिनामन्यतमो जीवोऽस्ति । अत्रेदं तात्पर्यम्-नर-कौघे तथा प्रथमादित्रिनरकमार्गणास्वेकोनशतप्रकृतीनां बन्धोऽस्ति; तन्मध्यात्स्त्यानर्द्ध्यष्टकरहितै-कोनचत्वारिंशद्ध्रुवप्रकृतयस्तथा पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विक-पराघातो-च्छ्वास-त्रसचतुष्करूपा नव-प्रकृतय इति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतयो नियमेन बध्यन्ते । अतस्तद्रहिताः शेषत्रिपञ्चाशत्प्रकृ-तयोऽवक्तव्यबन्धयोग्याः । तत्राऽपि स्त्यानर्द्ध्याद्यष्टक-जिननाम्नोरवक्तव्यबन्धः पृथक्प्रतिपादितः ।

शेषचतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीनामनन्तरमेवावक्तव्यबन्धः **"सेसाण अण्णयरो"** इत्यनेन प्रतिपादित इति । पङ्कप्रभादित्रिनरकमार्गणाया वक्तव्यता जिननामकर्म विना सर्वाऽपीत्थमेवावगन्तव्या । देवौघ-भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क-सौधर्मे-शानसुरमार्गणारूपषड्मार्गणासु देवत्रिक-नरकत्रिक-विकलत्रिकौ-दारिकशरीर- वैक्रियद्विकाऽऽहारकद्विक-पराघातो-च्छ्वास-जिननाम-बादरत्रिक--सूक्ष्मत्रिकाणीति त्रयो-विंशतिप्रकृतिरहितानां शेषपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य स्वाम्युक्तमार्गणावर्त्तिनामन्य-तमजीवो भवति । अत्राऽपीदमवगन्तव्यम्–त्र्युत्तरशतप्रकृतिबन्धयोग्या भवनत्रिके, चतुरुत्तरशत-प्रकृतय उक्तशेषत्रिमार्गणासु बन्धयोग्याः; तन्मध्यात् स्त्यानर्द्ध्याद्यष्टकरहितैकोनचत्वारिंशदध्रुव-बन्धिन्यस्तथौदारिकशरीर--पराघातो--च्छ्वास-बादरत्रिकरूपषट्प्रकृतयस्तत्र निरन्तरबन्धिन्यस्तथा जिननाम्नोऽपि तत्र नूतनबन्धाऽभाव इति सर्वसङ्ख्यया षट्चत्वारिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धो न सम्भवति, शेषाणां तु सम्भवति । एवं वैक्रियकाययोगेऽपि, किन्तु जिननाम्नो यो विशेषः कथि-तस्स न विस्मर्तव्यः । सनत्कुमारादारभ्य सहस्राराऽन्तेषु षट्सुरभेदेष्वेकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजात्यौ-दारिकाङ्गोपाङ्गा- -ऽऽतप--त्रस---स्थावरनामवर्जितशेषसुरौघमार्गणातुल्यचतुश्चत्वारिंशदध्रुवबन्धिनीनां तथा आनत प्राणता-ऽऽरणा-ऽच्युतसुरभेदेषु नवग्रैवेयकसुरभेदेषु चैकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजाति-तिर्य-क्त्रिक-मनुष्यद्विकौदारिकाङ्गोपाङ्गा-ऽऽतपो-द्योत-त्रस-स्थावरनामानीति द्वादशप्रकृतिरहितशेषसुरौघ-मार्गणोक्तानामष्टात्रिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य स्वाम्युक्तमार्गणावर्तिनामन्यतमो जीवो भवितुमर्हतीति ॥४९-५०॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायां तिर्यग्द्विक-नीचैर्गोत्रयोरवक्तव्यबन्धस्वामिनं प्रदर्शयन्नाह—

सत्तमणिरये कुणए तिरिदुगणीआण सम्ममीसचुओ ।
मिच्छो व सासणो वा वट्टंतो पढमसमयम्मि ॥५१॥

(प्रे०) **"सत्तमणिरये"** इत्यादि, सप्तमतमस्तमःप्रभानरकमार्गणायां **"तिरिदुगणी-आण"** त्ति तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकं,तथा नीचैर्गोत्रमिति त्रिप्रकृतीनाम् , प्रकृतत्वाद-वक्तव्यप्रदेशबन्धं कः करोति ? इत्याह–**"मिच्छो वा सासणो वा"** त्ति मिथ्यात्वी सास्वादनी वा जीवः, स पुनःकथंभूतः ? **"सम्ममीसचुओ"** त्ति अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानाद् मिश्रसम्यक्त्व-गुणस्थानाद् वा च्युतः, अर्थात् सम्यक्त्वगुणस्थानाच्च्युत्वा मिथ्यात्वगुणस्थानकं सास्वादनगुणस्था-नकं वा प्राप्तो जीवस्तथा मिश्रसम्यक्त्वगुणस्थानाच्च्युत्वा मिथ्यात्वगुणस्थानकमेव प्राप्तो तत्प्रथम-समये वर्तमानो जीव उक्तप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धं करोति ॥५१॥

अथ तस्यामेव सप्तमनरकमार्गणायां नरद्विकादीनां तथा शेषबध्यमानप्रकृतीनामवक्तव्य-बन्धस्वामिनो वक्ति—

मिच्छाउ आगओ खलु सम्मो मीसो व पढमसमयत्थो ।
कुणइ णरदुगुच्चाणं णिरयव्व हवेज्ज सेसाणं ॥५२॥

(प्रे०) "मिच्छाउ" इत्यादि, पूर्वोक्तसप्तमनरकमार्गणायां 'णरदुगुच्चाणं" ति मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वीस्वरूपं मनुष्यद्विकं, तथा उच्चैर्गोत्रमिति त्रिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धं "मिच्छाउ आगओ खलु सम्मो मीसो व पढमसमयत्थो कुणइ" त्ति मिथ्यात्वगुणस्थानादागतः प्रथमसमयस्थः सम्यग्दृष्टिर्मिश्रदृष्टिर्वा जीवः करोति। "णिरयव्व हवेज्ज सेसाण"ति उक्तशेष-सम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धानां प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्वामिनो नरकौघमार्गणावद् भवन्ति ।

एतदुक्तं भवति—सप्तमनरकभेदे नवनवतिप्रकृतयो बन्धयोग्याः सन्ति, तन्मध्यान्मिथ्यात्व-स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्करहितैकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवश्यं बन्धसद्भावात् तथा तन्मार्गणास्थितजीवानामवश्यंभावेन पञ्चेन्द्रियमध्य उत्पादात्पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विक-परा-घातो-च्छ्वास-त्रसचतुष्करूपनवप्रकृतीनां नियमेन बन्धाच्च सर्वसङ्ख्यया ऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनाम-वश्यं बध्यमानत्वात्तासामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्याऽसम्भवः । तस्माच्छेषैकपञ्चाशत्प्रकृतयोऽवक्तव्य-बन्धयोग्या इति विवेकोऽन्यत्राऽपि यथायोग्यं धीधनैः कर्तव्यः । तन्मध्यात्तिर्यग्द्विकादिषट्-प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वामिन उक्ताः, तद्रहिता याः शेषाः प्रकृतयः सन्ति तासामवक्तव्यबन्ध-स्वामिनो नरकौघमार्गणावद् भवन्ति, तद्यथा—अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य स्त्यानर्द्धित्रिकस्य च प्रकृत-बन्धस्वामी नरकौघवत्सम्यक्त्वगुणस्थानाच्च्युतः सास्वादनी मिथ्यादृष्टिर्वा, तथा मिश्रगुणस्थाना-च्च्युतो मिथ्यादृष्टिर्जीवोऽस्ति । मिथ्यात्वमोहनीयस्य च चतुर्थ-तृतीय-द्वितीयगुणस्थानकेभ्यः पतित्वा प्रथमगुणस्थानकमागतो मिथ्यादृष्टिरस्ति । तथा शेषवेदनीयद्विक-तिर्यगायु-र्हास्यचतुष्क-वेदत्रिक-संहननषट्क-संस्थानषट्क-खगतिद्विको-द्योत-स्थिरषट्कास्थिरषट्कानीति सप्तत्रिंशत्सम्भाव्य-मानावक्तव्यप्रदेशबन्धानां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वामी नरकौघमार्गणावदत्र मार्गणावर्तिनामन्य-तमो जीवः सम्भवतीति कलनीयम् ॥५२॥

एतर्हि तिर्यग्गत्योघमार्गणायां पञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्रिके च मिथ्यात्वस्यावक्तव्यबन्धस्वामिनं व्याचिख्यासुराह—

तिरिये पणिंदियतिरियतिगे य पढमसमये कुणइ मिच्छो ।
मिच्छस्स अवत्तव्वं पडिओ देसजइआइत्तो ॥५३॥

(प्रे०) "तिरिये" इत्यादि, तिर्यग्गत्योघमार्गणायां "पणिंदियतिरियतिगे य"त्ति पञ्चे-न्द्रियतिर्यङ्मार्गणा-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमार्गणा-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणाऽऽत्मकपञ्चेन्द्रि-यतिर्यक्त्रिके चेति चतुर्मार्गणासु मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवक्तव्यप्रदेशबन्धः "देसजइआइत्तो पडिओ मिच्छो" त्ति देशविरति-सम्यग्दृष्टि-मिश्रदृष्टि-सास्वादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकेभ्यः पतितो मिथ्यादृष्टिर्जीवः प्रथमसमये करोतीत्यर्थः ॥५३॥

अथ तास्वेव चतुर्षु मार्गणाभेदेषु स्त्यानर्द्धित्रिकादीनामवक्तव्यबन्धस्वामिनो निगदन्नाह —

अणथीणद्धितिगाणं देसाइचुओ उ मिच्छसासाणो ।
देसचुओ सम्माई दुइअकसायाण कोवि सेसाणं ॥५४॥ (गीतिः)

(प्रे॰) "अण॰" इत्यादि, पूर्वोक्तासु तिर्यग्गत्योघ-पञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्रिकरूपासु चतुर्मार्गणास्वनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य स्त्यानर्द्धित्रिकस्य चेति सप्तप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य स्वामी **"देसाइचुओ मिच्छ सासाणो"** त्ति देशविरत्यादिच्युतो मिथ्यादृष्टिः सास्वादनी वा जीवो भवति, अर्थाद्देशविरतिगुणस्थानादादिशब्दादविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानाच्च च्युत्वा प्रथमं वा द्वितीयं गुणस्थानकमागतो जीवोऽथवा तृतीयगुणस्थानाच्च्युत्वा प्रथमगुणस्थानमागतो जीवः प्रथमसमये प्रकृतबन्धस्वामी भवितुमर्हति । **"दुइअकसायाण"** त्ति द्वितीयाऽप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्यावक्तव्यबन्धस्वामी **"देसचुओ सम्माई"** त्ति देशविरतिगुणस्थानाच्च्युतः सम्यग्दृष्टिः, आदिशब्दान्मिश्रदृष्टिः, सास्वादनी, मिथ्यादृष्टिर्वा जीवः प्रथमसमयेऽस्ति ।

"सेसाणं" ति उक्तव्यतिरिक्तशेषसम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धानामाहारकद्विक-जिननामरहितशेषसप्ततेरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य स्वामी **"को वि"** त्ति कोऽप्युक्तमार्गणावर्ती जीवो भवति ॥५४॥

अधुनौदारिकमिश्रादिमार्गणासु सम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धानां प्रकृतीनां तद्बन्धस्वामिनः प्ररूपणायाऽऽह—

उरलविउवमीसेसुं कम्मेऽणाहारगे अणाणतिगे ।
मिच्छस्स सासणचुओ मिच्छो सेसाण अण्णयरो ॥५५॥

(प्रे॰) **"उरल॰"** इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणा, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणा च तयोः, **"कम्मे"** त्ति कार्मणकाययोगमार्गणायां, **"अणाहारगे"** त्ति अनाहारकमार्गणायां, **"अणाणतिगे"** त्ति मत्यज्ञान-श्रुताऽज्ञान-विभङ्गज्ञानलक्षणाऽज्ञानत्रिके, एतासु सप्तमार्गणासु **"मिच्छस्स"** त्ति मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवक्तव्यप्रदेशबन्धः **"सासणचुओ मिच्छो"** त्ति सास्वादनगुणस्थानाच्च्युतो मिथ्यादृष्टिजीवः करोति । नन्वन्यमार्गणावदनन्तानुबन्धिचतुष्कस्त्यानर्द्धित्रिकयोरवक्तव्यबन्धः कथं नोक्तः ? उच्यते, अज्ञानमार्गणासु प्रथमगुणस्थानकद्वयस्यैव सत्त्वेन सप्तप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धाभावः तथाऽत्रोक्ताद्यचतुर्मार्गणास्थिता जीवाः प्रथमगुणस्थानकाच्चतुर्थगुणस्थानकं चतुर्थगुणस्थानाच्च प्रथमगुणस्थानं गन्तुं नैव प्रभवन्ति, अत एव तेषामनन्तानुबन्ध्यादीनामवक्तव्यबन्धस्याप्राप्यमाणत्वादत्र स नोक्तः । शेषसम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धानां प्रकृती-

नामवक्तव्यबन्धस्वामी तत्तदुक्तमार्गणावर्तिनामन्यतमो जीवः सम्भवति । अत्र प्रकृतबन्धयोग्याः शेषप्रकृतयस्त्विमाः—औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां सुरत्रिक-नरकत्रिकौ-दारिकशरीर-वैक्रियद्विकाहारकद्विक-जिननामरूपद्वादशप्रकृतिवर्जिताः शेषैकषष्टिप्रमिताऽध्रुवबन्धिप्रकृतयः । वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां पुनर्मनुष्यतिर्यगायुषी, वैक्रियाऽष्टकौ-दारिकशरीरा-ऽऽहारकद्विक-पराघातो-च्छ्वास-जिननाम-बादरत्रिक-सूक्ष्मत्रिक-जातित्रिकाणीति पञ्चविंशतिप्रकृतिरहिताः शेषाऽष्टचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयः । कार्मणकाययोगा-नाहारकमार्गणयोस्तिर्यङ्मनुष्यायूरहिता औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणोक्ताः शेषा एकोनषष्टिप्रकृतयः । तथा त्र्यज्ञानमार्गणास्वाहारकद्विक-जिननामरहिताः शेषसप्ततिरध्रुवबन्धिप्रकृतयः । एतासामुक्तशेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वाम्युक्ततत्तद्मार्गणास्थितोऽन्यतमो जीवः समधिगम्यः शेमुषीशालिशेखरैरिति ॥५५॥

अथ मतिज्ञानादिमार्गणाभेदेष्ववक्तव्यबन्धयोग्यप्रकृतीनां तद्बन्धस्वामिनं निगदन्नाह—

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मे खइए कुणेइ अण्णयरो ।
बारससायाईणं आहाराउदुगतित्थाणं ॥५६॥

(प्रे०) "णाणतिगे" इत्यादि, मतिज्ञान-श्रुतज्ञाना ऽवधिज्ञानरूपे ज्ञानमार्गणात्रिके "ओहिम्मि य" त्ति अवधिदर्शनमार्गणायां च "सम्मे" त्ति सम्यक्त्वसामान्यमार्गणायां तथा "खइए" त्ति क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायाम्, एतासु षट्सु मार्गणासु 'बारससायाईणं'' ति साताऽसात-हास्यशोक-रत्यरति-स्थिराऽस्थिर-शुभाऽशुभ-यशःकीर्त्यऽयशःकीर्तिस्वरूपसातादिद्वादशप्रकृतीनाम्, "आहाराउदुग" त्ति आहारकशरीर-आहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणं आहारकद्विकं, तथा देवमनुष्यायूरूपमायुर्द्विकं "तित्थाण" त्ति तीर्थकरनामकर्मेत्येतासां सप्तदशप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धं "अण्णयरो" त्ति उक्ततत्तन्मार्गणावर्तिनामऽन्यतमो जीवः करोति । अयमर्थः-उक्तमार्गणासु आहारकद्विकस्यावक्तव्यबन्धस्वामिविषयिका भावना ओघवद्विज्ञेयाः । देवमनुष्यायुषोः कादाचित्कबन्धसम्भवेनाऽबन्धोत्तरबन्धसद्भावादवक्तव्यबन्धो भवति, सातादिद्वादशप्रकृतीनां तु परावर्तमानबन्धसम्भवात्तदवक्तव्यबन्धस्वाम्यन्यतमजीवः कथितः । जिननाम्नः प्रकृतबन्धस्वामी तु सम्यग्दृष्टि-देशविरत्यादीनामन्यतमजीवः समस्ति । नवरमत्र नारको जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धस्वामी न भवतीति ॥५६॥

अथ तास्वेव षण्मार्गणास्वप्रत्याख्यानचतुष्कादीनामवक्तव्यबन्धस्वामिनं आचष्टे—

दुइअतिअकसायाणं सम्मो देसो य सेढिआइचुओ ।
णरुरलदुगवइराणं दुगइट्ठो भवपढमसमये ॥५७॥

(प्रे०) "दुइअतिअ०" इत्यादि, पूर्वोक्तासु मतिज्ञानादिषट्सु मार्गणासु द्वितीयाप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कं, तृतीयप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कं च तयोः, प्रक्रमादवक्तव्यप्रदेशबन्धस्वामी

"सम्मो देसो य सेढिआइचुओ" त्ति श्रेण्यादिच्युतः क्रमेण सम्यग्दृष्टिः, देशविरतिः चकारेण सम्यग्दृष्टिर्वा जीवः सम्भवति । अत्र घटना त्वियम्–उक्तमार्गणासु मध्यमकषायाऽष्टकस्याऽवक्तव्यप्रदेशबन्धं श्रेण्यादिच्युतोऽर्थात् षष्ठ-सप्तमा ऽष्टम नवम-दशमै-कादशरूपषड्गुणस्थानकमध्यादन्यतमगुणस्थानकात् कालं कृत्वा चतुर्थगुणस्थानकं प्राप्तो जीवः, तथा षष्ठगुणस्थानात्पतित्वा चतुर्थगुणस्थानकं यातो जीवः करोति, तथा पञ्चमगुणस्थानाच्चतुर्थगुणस्थानकं प्राप्तो जीवोऽप्यऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्यावक्तव्यबन्धं करोति । प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य तु षष्ठगुणस्थानाच्च्युत्वा पञ्चमगुणस्थानकमायातोऽपि जीवः करोति ।

"णरुरलदुगवइराणं" ति नरगति-नरानुपूर्वीरूपं नरद्विकम्, औदारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्गलक्षणमौदारिकद्विकम् , वज्रर्षभनाराचसंहननं चेति पञ्चप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धं **"दुगइट्ठो भवपढमसमये"** त्ति देवनरकाऽन्यतरगतिस्थो जीवो भवप्रथमसमये करोतीति ।।५७।।

अथ तास्वेव षण्मार्गणास्ववक्तव्यबन्धार्हाणां देवद्विकादीनां प्रकृतबन्धस्वामिनो विभणिषुराह–

देवविउव्वदुगाणं कुणए उवसामगो णिवडमाणो ।
भवपढमखणे व णरो सेसाणुवसामगो पडिओ ।।५८।।

(प्रे०) **"देव०"** इत्यादि, पूर्वोक्तासु षड्मार्गणासु **"देवविउव्वदुगाणं"** ति देवगति-देवानुपूर्वीस्वरूपं देवद्विकं, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गरूपं वैक्रियद्विकं तयोः, अवक्तव्यप्रदेशबन्धं **"उवसामगो णिवडमाणो"** त्ति श्रेणितो निपतन्नुपशमको जीवः, **"भवपढमखणे व णरो"** त्ति अथवा देवनरकगतिमध्यात्कालं कृत्वा मनुष्यत्वेनोत्पन्नो जीवो भवप्रथमसमये करोति **"सेसाणुवसामगो पडिओ"** त्ति उक्तशेषसम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धानां प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धं श्रेणितः पतित उपशमकः करोति । स त्वत्र द्विधा ग्राह्यः, तद्यथा,–उपशमश्रेणितः क्रमशो निम्नगुणस्थानेष्ववतरञ्जीवः, उपशमश्रेणौ कालं कृत्वा देवभवं गतो जीवो वा । नन्वेता अवक्तव्यबन्धयोग्या उक्तशेषप्रकृतयोऽत्रोक्तमार्गणासु काः प्राप्यन्ते? उच्यते–ज्ञानावरणपञ्चकम् , दर्शनावरणस्य स्त्यानर्द्धित्रिकरहिताः षट् प्रकृतयः, मोहनीयस्य सञ्ज्वलनचतुष्क-भय-जुगुप्सा-पुरुषवेदाः, नाम्नः पञ्चेन्द्रियजाति-तैजस–कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-सुखगति-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघू-पघात-पराघातो-च्छ्वास-निर्माणनामानि, त्रसदशकमध्यात्स्थिर-शुभ-यशःकीर्तिरहिताः सप्तप्रकृतयः, उच्चैर्गोत्र-पञ्चान्तरायप्रकृतयश्चेति सर्वसंख्यया पञ्चचत्वारिंशदुक्तशेषाऽवक्तव्यबन्धवत्यः प्रकृतयोऽत्रोक्तमार्गणासु प्राप्यन्ते इति ज्ञेयम् ।।५८।।

सम्प्रति मनःपर्यवज्ञानादिचतुर्मार्गणास्ववक्तव्यप्रदेशबन्धयोग्यप्रकृतीनां बन्धस्वामिनः समादिशन्नाह––

मणणाणसंजमेसुं समइअछेएसु कुणइ अण्णयरो ।
सोलससायाईणं सेसाणुवसामगो पडिओ ॥५९॥

(प्रे०) "मणणाण०" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणा-संयमसामान्यमार्गणा च-तयोः, प्राकृतत्वाद् बहुवचनान्तप्रयोगः, "समइअछेएसु" त्ति सामायिकसंयम-छेदोपस्थानसंयममार्गणयोः, एतासु चतसृषु मार्गणासु "सोलससायाईणं" ति साता-ऽसात-हास्य शोक-रत्यऽरति-स्थिरा ऽस्थिर-शुभा ऽशुभ-यशःकीर्त्ययशःकीर्त्या-ऽऽहारकद्विक-जिननाम-देवायूंषीति षोडशप्रकृतीनां प्रस्तुतत्वादवक्तव्यप्रदेशबन्धमुक्ततत्तन्मार्गणावर्त्यन्यतमजीवः कर्तुं शक्नोति । "सेसाण" त्ति उक्तशेषसम्भाव्यमानाऽवक्तव्यप्रदेशबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां प्रकृतबन्धस्वामी "उवसामगो पडिओ" त्ति श्रेणितः पतित उपशमको भवितुमर्हति ।

अत्र घटना त्वियम्—सातादिद्वादशप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धभवनात्तदवक्तव्यबन्धकर्ताऽन्यतमजीवो ज्ञेयः । आहारकद्विकस्य जिननाम्नस्तथा देवायुषः स्वामी मनुष्यमार्गणावज्ज्ञेयः । अत्रोक्तमार्गणासूक्तशेषावक्तव्यबन्धयोग्यप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य स्वाम्युपशमश्रेणेः पतदुपशमको बन्धप्रथमसमये वर्तमानो ज्ञेयः ।

अत्रोक्तमनःपर्यवज्ञानमार्गणायां तथा संयमसामान्यमार्गणायां ता एकोनपञ्चाशत्प्रकृतयः सन्ति, तद्यथा—ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणस्य स्त्यानर्द्धित्रिकरहिताः षट् प्रकृतयः, मोहनीयसत्कसञ्ज्वलनचतुष्क-पुरुषवेद-भय-जुगुप्साः, नाम्नो देवद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्णचतुष्क -शुभखगत्य- गुरुलघू-पघात पराघातो—च्छ्वास-निर्माणनामानि, तथा त्रसदशकमध्यात्स्थिर-शुभ-यशःकीर्तिरहिताः सप्तप्रकृतयः, उच्चैर्गोत्रम् , अन्तरायपञ्चकं चेति । तथा अत्रोक्तसामायिकसंयम-छेदोपस्थापनसंयममार्गणयोस्तु त्रयस्त्रिंशदुक्तशेषप्रकृतयः प्राप्यन्ते, ताश्चेमाः-निद्राद्विकं, संज्वलनक्रोध-मान माया-भय-जुगुप्सा-पुरुषवेदाः, नाम्नो देवद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विक तैजसकार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान--शुभखगति-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघू-पघात-पराघातो-च्छ्वास-निर्माण-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक-सुभग-सुस्वरा-ऽऽदेयनामानीति ॥५९॥

अथ असंयममार्गणायामशुभलेश्यामार्गणासु च मिथ्यात्वादीनामवक्तव्यबन्धस्वामिनमाह—

अजयासुहलेसासुं सम्माइच्चुओ कुणेइ मिच्छस्स ।
मिच्छो स य सासाणो थीणद्धितिगाणचउगाणं ॥६०॥

(प्रे०) "अजया०" इत्यादि, असंयममार्गणायां, कृष्णलेश्या-नीललेश्या-कापोतलेश्या-ऽऽख्यासु तिसृष्वशुभलेश्यामार्गणासु चेति चतसृषु मार्गणासु "मिच्छस्स" त्ति मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवक्तव्यप्रदेशबन्धं "सम्माइच्चुओ" त्ति सम्यक्त्वादिगुणस्थानेभ्यश्च्युतः, चतुर्थतृतीयद्वितीयगुणस्थाने-

च्यश्च्युत इत्यर्थः, स चाऽसौ "मिच्छो" त्ति मिथ्यादृष्टिर्जीवः करोति । "थीणद्धितिगाणच-उगाणं" ति स्त्यानर्द्धित्रिकस्यानन्तानुबन्धिचतुष्कस्य च प्रकृतत्वादवक्तव्यप्रदेशबन्धम् ,कः करोति ? इत्याह-"स य सासाणो" त्ति अत्र 'स' शब्दो पूर्वप्रक्रान्तपरामर्शदर्शी, तस्मान्मिथ्यादृष्टिः सास्वादनी वा जीवः, स पुनः कथम्भूतो विवक्षितः ? उच्यते, चतुर्थसम्यक्त्वगुणस्थानाच्च्युतो मिथ्यादृष्टिः सास्वादनी वा जीवः, अथवा तृतीयगुणस्थानाच्च्युतो मिथ्यादृष्टिर्जीव उक्तप्रकृतीनाम-वक्तव्यप्रदेशबन्धमुपरचयतीति ॥६०॥

अथ तास्वेव मार्गणासूक्तशेषावक्तव्यबन्धार्हाणां प्रकृतीनां तद्बन्धस्वामिनमाह—

सेसाणं अण्णयरो णवरं तित्थस्स अजयकाउसु ।
सम्मपढमखणणिरयो सम्मणरो वि हवए अजए ॥६१॥

(प्रे०) "सेसाणं" इत्यादि, पूर्वोक्तास्वसंयमा-ऽशुभलेश्यामार्गणासु उक्तशेषसम्भाव्यमा-नाऽवक्तव्यबन्धानां प्रकृतीनां प्रकृतबन्धस्वामी "अण्णयरो" त्ति उक्ततत्तद्मार्गणावर्तिनामन्यतम-जीवो बोध्यः ।

ताश्चोक्तशेषप्रकृतयोऽत्रोक्तचतसृषु मार्गणास्वाहारकद्विक-जिननामरहितशेषसप्ततिरध्रुवबन्धि-प्रकृतयो विज्ञेयाः । नन्वत्रासंयम-कापोतलेश्यामार्गणयोस्तु जिननाम्नोऽप्यवक्तव्यबन्धः सम्भवति, सोऽत्र कथं नोक्त इति चेत्, सत्यम्, जिननाम्नः 'णवरं' इत्यादिना प्रकृतबन्धस्वामि-वक्तव्यतायाः पार्थक्येनोक्तत्वात्, तद्यथा "णवरं" ति किन्तु "तित्थस्स अजयकाऊसु" ति असंयमकापोतलेश्यामार्गणयोस्तीर्थकरनामकर्मणोऽवक्तव्यबन्धस्वामी "सम्मपढमखण-णिरयो" त्ति सम्यक्त्वगुणस्थानस्य प्रथमक्षणवर्त्तिनारकोऽस्ति, अर्थाज्जिननामसत्ताकः कश्चिज्जीवो नरकगतावुत्पद्य यदा सम्यक्त्वस्य प्रथमसमये पुनर्बन्धमुपरचयति, तदा स जिननाम्नः प्रकृतबन्ध-स्वामी भवति । तथा "सम्मणरो वि हवए अजए" त्तिअसंयममार्गणायां पुनस्सम्यक्त्वगुण-स्थानकस्थो मनुष्योऽपि यदा जिननाम्नो नूतनबन्धं करोति तदा तदवक्तव्यबन्धस्वामी भवतीति । ॥६१॥

एतर्हि तेजःपद्मलेश्यामार्गणयोरवक्तव्यप्रदेशबन्धस्वामिनं प्रतिपादयितुकामः प्रथमं तत्र मध्य-मकषायाऽष्टकस्य प्रकृतबन्धस्वामिनो निर्वक्ति—

तेउपउमलेसासु सम्माई कुणइ संजमाइचुओ ।
दुइआण कसायाणं तइआणं देसजइआई ॥६२॥

(प्रे०) "तेउपउम०" इत्यादि, तेजोलेश्या–पद्मलेश्यामार्गणयोः "दुइआण कसायाणं" ति द्वितीयाऽप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्यावक्तव्यप्रदेशबन्धं "संयमाइचुओ" त्ति सर्वविरत-

गुणस्थानात् आदिशब्दाद् देशविरतगुणस्थानाद्वा च्युतः, पुनः कथम्भूतः स "सम्माई" त्ति सम्यग्दृष्टिः, आदिशब्दान्मिश्रदृष्टिः-सास्वादनो-मिथ्यादृष्टिर्वा करोति । "तइआण" ति तृतीयप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्याऽवक्तव्यबन्धं "देसजइआई" त्ति देशविरतः, आदिशब्दात्सम्यग्दृष्टि-मिश्रदृष्टिः-सास्वादनसम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टिर्वा करोति । सोऽपि संयमगुणस्थानकाच्च्युत एव । तथाऽत्र आदिशब्दात्षष्ठसप्तमगुणस्थानात्कालं कृत्वा तथैव पञ्चमगुणस्थानादपि कालं कृत्वा चतुर्थगुणस्थानकं प्राप्तो जीवोऽपि क्रमेण प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्य तथाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्यावक्तव्यबन्धस्वामी विज्ञेय इति ॥६२॥

अथ तयोरेव मार्गणयोराहारकद्विकादिप्रकृतीनां प्रकृतबन्धस्वामिनः प्रतिपादयति--

आहारदुगस्स कुणइ अपमत्तजई जिणस्स सम्माई ।
मणुओ खलु विण्णेयो सेसाणोघव्व जाणऽत्थि ॥६३॥

(प्रे०) "आहारदुगस्से" त्यादि, पूर्वोक्ततेजः-पद्मलेश्यामार्गणयोराहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गरूपस्याऽऽहारकद्विकस्यावक्तव्यप्रदेशबन्धं, कः करोति? इत्याह "अपमत्तजई" त्ति अप्रमत्तयतिः, सोऽपि षष्ठगुणस्थानात्सप्तमगुणस्थानकमागत्य अथवा स्वस्थान एव यदाऽऽहारकद्विकस्य नूतनबन्धं करोति तदा प्रथमसमये तदवक्तव्यबन्धस्य स्वामी भवितुमर्हति । "जिणस्स" त्ति जिननामकर्मणोऽवक्तव्यबन्धं तूक्तमार्गणयोः "सम्माई मणुओ" त्ति चतुर्थगुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टिः, आदिशब्दात्पञ्चम-षष्ठ-सप्तमगुणस्थानस्थितमनुष्यो जिननाम्नो नूतनबन्धप्रारम्भप्रथमसमये करोति । उक्तशेषसम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धानां प्रकृतीनां प्रकृतबन्धस्वामिनोऽत्रौघवद्विज्ञेयाः ।

ताश्चोक्तशेषप्रकृतयोऽत्र तेजःपद्मलेश्यामार्गणयोः काः सन्तीति चेदुच्यते-तेजोलेश्यामार्गणायामध्रुवबन्धिनीमध्यात् पराघातो-च्छ्वास-बादरत्रिक-सूक्ष्मत्रिक-नरकत्रिक-विकलत्रिका-ऽऽहारकद्विक-जिननामानीति सप्तदशप्रकृतिवर्जितशेषषट्पञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतयस्तथा स्त्यानद्धर्याद्यष्टकमिति सर्वाश्चतुःषष्टिर्मिता उक्तशेषप्रकृतयः प्रकृतबन्धयोग्या लभ्यन्ते ।

पद्मलेश्यामार्गणायां चैकेन्द्रिय--पञ्चेन्द्रियजाति-त्रस-स्थावरा-ऽऽतपनामरहितास्तेजोलेश्यामार्गणोक्ता एकोनषष्टिरुक्तशेषप्रकृतयः प्रकृतबन्धयोग्याः प्राप्यन्ते, तासामवक्तव्यबन्धस्वामिनस्तद्भावना चौघवक्तव्यतानुसारेणावगन्तव्याः ।

तत्राऽपि यद्विशेषः, स तूच्यते-तेजोलेश्यामार्गणायां नपुंसकवेद-तिर्यक्त्रिक-मनुष्यत्रिकै-केन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजात्यौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-संहननषट्क-संस्थानषट्क--खगतिद्विका--ऽऽतपो-द्योत-त्रस-स्थावर--सुभगत्रिक-दुर्भगत्रिक-नीचैर्गोत्राणीति पञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वामी देव एव कथयितव्यः ।

तथा देवायुषोऽवक्तव्यप्रदेशबन्धं तिर्यङ्मनुष्या एव कर्तुं शक्नुवन्ति। स्त्यानर्द्ध्याद्यष्टकस्य सातादि-द्वादशप्रकृतीनां स्त्री-पुरुषवेदयोश्च प्रकृतबन्धकर्त्तारो नरकवर्जितशेषत्रिगतिका जीवा विज्ञेयाः। तथा-ऽत्र तेजोलेश्यामार्गणायां देवद्विक-वैक्रियद्विकयोरवक्तव्यबन्धस्वामी भवप्रथमसमयवर्तिमनुष्यस्त-थौदारिकशरीरस्य भवप्रथमसमयवर्तिसुर एव भवितुमर्हति

एवं पद्मलेश्यामार्गणायामपि तेजोलेश्यामार्गणावदेव सर्वं कथनीयम्। किन्त्वत्रैकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजाति-त्रस-स्थावरा-तपनाम्नामवक्तव्यबन्धो न वक्तव्योऽत्र तदसंभवात्, तथा स्त्रीपुरुष-वेदयोः प्रकृतबन्धस्वामी देव एव भवति, तथाऽत्रौदारिकाङ्गोपाङ्गस्य प्रकृतबन्धस्वामी भवप्रथम-समयवर्ती देव एव संभवतीति विशेषः ॥६३॥

सम्प्रति शुक्ललेश्यामार्गणायां ध्रुवबन्धिन्यादिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वामिनो वक्ति—

सुक्काए ओघव्वो सगयालीसधुवबंधिणीण तहा।
बारससायाईणं आहारदुगस्स ओघव्व ॥६४॥

(प्रे०)"सुक्काए" इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा '**बारससायाईणं**' ति साता-ऽसात-हास्य-शोक-रत्यऽरति-स्थिरा ऽस्थिर-शुभाऽशुभ-यशःकीर्त्यय-शःकीर्तिरूपद्वादशसातादिप्रकृतीनां;"**आहारदुगस्स**"त्ति आहारकशरीराऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणस्या-ऽऽहारकद्विकस्य चेति सर्वसङ्ख्ययैकषष्टिप्रकृतीनां, प्रस्तुतत्वादवक्तव्यबन्धस्वामिनस्तद्भावना चौघवद् द्रष्टव्या इति ॥६४॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायामेव पञ्चेन्द्रियजात्यादिप्रकृतीनां प्रकृतबन्धस्वामिनं प्रकटयति—

धुवणामव्व पणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणं।
सुरविउवदुगाण णरो सेणिचुओ उअ भवज्जखणे ॥६५॥

(प्रे०)"**धुवणामव्व**" इत्यादि, प्रस्तुतशुक्ललेश्यामार्गणायां "**पणिंदिय०**" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियजाति-पराघातो-च्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वामिनः "**धुव-णामव्व**" त्ति नामकर्मणो नवध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वामिभिस्तुल्या एव सन्ति, अर्थात् कश्चिज्जीवः श्रेणेरवतरन्नष्टमगुणस्थानस्य षष्ठभागे उक्तप्रकृतीनां पुनर्बन्धमुपरचयति तदा प्रथम-समये स तासामवक्तव्यबन्धस्वामी भवति, अथवा श्रेणौ कालं कृत्वा देवगतावुत्पन्नो जीव उक्तप्रकृ-तीनां बन्धप्रथमसमयेऽवक्तव्यबन्धकारको भवति। "**सुरविउवदुगाण**" त्ति द्विकशब्दस्य पूर्वत्राऽप्यऽन्वयात्सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकं, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकं च तयोः प्रकृतबन्धस्वामी "**णरो सेणिचुओ उअ भवज्जखणे**" त्ति 'णर' शब्दस्योभयत्रापि सम्बन्धात्श्रेणेश्च्युतो नरोऽथवा देवभवाच्च्युतो भवाऽऽद्यक्षणवर्तिनरो भवतीत्यर्थः ॥६५॥

अथ तत्रैव नरद्विकादीनां प्रकृतबन्धस्वामिन आह—

पढमखणसुरो णरुरलदुगाण देवाउगस्स मिच्छाई ।
कुणए सेणिचुअसुरो सम्माइणरो व तित्थस्स ॥६६॥

(प्रे)"**पढम०**" इत्यादि, पूर्वोक्तायां शुक्ललेश्यामार्गणायां "**णरुरलदुगाण**" त्ति नरगतिनरानुपूर्वीरूपं नरद्विकं, औदारिकशरीरौदारिकाङ्गोपाङ्गलक्षणमौदारिकद्विकं च तयोरवक्तव्यबन्धस्वामी "**पढमखणसुरो**" त्ति भवप्रथमसमयवर्तमानो देवो भवितुमर्हति । "**देवाउगस्स**" त्ति देवायुषः "**मिच्छाई**" त्ति प्रथममिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती, आदिशब्दाद् द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम षष्ठान्यतमगुणस्थानवर्तिजीवः प्रकृतबन्धस्वामी ज्ञातव्यः । "**तित्थस्स**"त्ति तीर्थकरनामकर्मणः पुनरवक्तव्यबन्धं "**कुणए सेणिचुअसुरो**" त्ति श्रेणिच्युतः सुरः करोति, अर्थात् श्रेणेश्च्युत्वा जातसुरः भवप्रथमसमये, यद्वा श्रेणेरवतरन्मनुष्योऽपूर्वकरणगुणस्थाने यदा जिननाम्नोऽबन्धोत्तरबन्धं प्रारभते तत्समये स जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धस्वामी भवति "**सम्माइणरो व**" त्ति अथवा सम्यग्दृष्ट्यादिनरो जिननाम्नः प्रकृतबन्धस्वामी भवति, अर्थाच्चतुर्थाविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानस्थ आदिशब्दाद् देशविरतः, संयमस्थो वा जीवो जिननाम्नो नूतनबन्धप्रथमसमये तदवक्तव्यप्रदेशबन्धकारको भवतीत्यर्थः ॥६६॥

अथ तस्यामेव मार्गणायां पुरुषवेदादिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्वामिनः प्रदर्शयति—

पुमपढमागिइसुखगइसुहगतिगुच्चाण कुणइ सेणिचुओ ।
उवसमगो उअ देवो सेसाण सुरो चिअ कुणेइ ॥६७॥

(प्रे०)'**पुम०**" इत्यादि, प्रकृतशुक्लेश्यामार्गणायां"**पुम**" त्ति पुरुषवेदः, "**पढमागिइ**" त्ति प्रथमाकृतिः-प्रथमसंस्थानम्, "**सुखगइ**" त्ति शुभखगतिः, "**सुहगतिग**" त्ति सुभग-सुस्वरा-देयलक्षणं सुभगत्रिकम्, "**उच्चाण**" त्ति उच्चैर्गोत्रमिति सप्तप्रकृतीनां प्रस्तावादवक्तव्यप्रदेशबन्धं"**सेणिचुओ उवसमगो उअ देवो**" त्ति श्रेणितश्च्युत उपशमक उत देवः कुरुते, अर्थात् श्रेणेश्च्युत उपशमको मनुष्यो यदोक्तप्रकृतीनां पुनर्बन्धमुपरचयति तदा स तासामवक्तव्यबन्धस्वामी भवति; अथवा मिथ्यादृष्टिदेवस्योक्तप्रकृतीनां परावर्त्तमानबन्धप्रवर्त्तनात्सोऽपि तासां प्रकृतबन्धस्वामी भवति, तथा कश्चिज्जीव उक्तप्रकृतीनां श्रेणावबन्धं कृत्वा श्रेणावेवकालं कृत्वा सम्यग्दृष्टिदेवो जायते, तदा तस्य तासां प्रकृतीनां पुनर्बन्धभवनात्सोऽपि तदवक्तव्यबन्धस्वामी भवितुमर्हति । "**सेसाण**" त्ति उक्तशेषाऽवक्तव्यबन्धार्हाणां प्रकृतीनां प्रकृतबन्धं "**सुरो चिअ कुणेइ**" त्ति सुर एव करोति । शुक्लेश्यावर्तमानमनुष्यतिरश्चामेतासां प्रकृतीनां बन्धाभावात् । उक्तशेषावक्तव्यबन्धयोग्याः प्रकृतयश्चेमाः,-स्त्रीनपुंसकवेदौ,मनुष्यायुः, संहननषट्क-प्रथमवर्जपञ्चसंस्थाना-ऽशुभविहायोगति-दुर्भगत्रिकाणि, नीचैर्गोत्रञ्चेत्येकोनविंशतिः प्रकृतय इति ॥६७॥

इदानीमुपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सम्भाव्यमानाऽवक्तव्यबन्धानां प्रकृतीनां प्रकृतबन्धस्वामिनः प्ररूपयति —

ओहिव्व उवसमे परममरो णरउरलजुगलवइराणं ।
कुणइ णरो सेणिचुओ देवविउव्वियदुगाणं तु ॥६८॥

(प्रे०)"ओहिव्व" इत्यादि, उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां सम्भाव्यमानाऽवक्तव्यबन्धानां प्रकृतीनां प्रकृतबन्धस्वामिनस्तद्भावना चावधिज्ञानमार्गणावदवगन्तव्याः । अत्राऽवधिज्ञानमार्गणापेक्षया यो विशेषस्तं"परम०" इत्यादिना दर्शयति, "परम" त्ति किन्त्वत्रोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां "णरउरलजुगलवइराणं"ति नरद्विकं नरगति-नरानुपूर्वीरूपं, औदारिकद्विकमौदारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्गलक्षणं, तथा वज्रर्षभनाराचसंहननमिति पञ्चप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्वामी "अमरो" त्ति 'सेणिचुओ' इत्युत्तरार्धस्थपदमत्रापि सम्बन्धनीयम् ; तेन श्रेणिच्युतो देव एव भवति । कथमेतदवसीयते ? उच्यते, उपशमसम्यक्त्वमार्गणास्थितजीव उपशमश्रेणौ कालं कृत्वा देवेष्वेवोत्पद्यते । स च तत्रोक्तप्रकृतीनां नूतनबन्धमुपरचयति, एतेनैव कारणेनाऽत्र श्रेणिच्युतभवप्रथमसमयवर्तिदेव एवोक्तप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धकारकः कथितः ।

तथैवाऽत्र"देवविउव्वियदुगाणं" ति द्विकशब्दस्य पूर्वत्राऽप्यन्वयाद्देवद्विकं देवगति-देवानुपूर्वीरूपं,वैक्रियद्विकं वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गात्मकं च तयोः प्रकृतत्वादवक्तव्यप्रदेशबन्धं "सेणिचुओ णरो"त्ति श्रेणेश्च्युतो नर एव करोति। शेषसम्यग्दृष्टितिर्यङ्मनुष्याणां प्रकृतिचतुष्कस्य निरन्तरबन्धसद्भावात् ।

उक्तशेषाऽष्टपष्टिप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्वामिनस्त्ववधिज्ञानमार्गणावद्विज्ञेयाः ॥६८॥

अथ क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां तत्प्रदर्शयति —

ओहिव्व वेअगे खलु मणुसोरालदुगवइररिसहाणं ।
सायाइछजुगलाणं आउगआहारजुगलाणं ॥६९॥

(प्रे०)"ओहिव्व"इत्यादि, अवधिज्ञानमार्गणावदेवात्र "वेअगे" त्ति क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां प्रकृतबन्धस्वामिनो वक्तव्याः । कासां प्रकृतीनामिति चेत्, उच्यते, "मणुसोरालदुगवइररिसहाणं"ति मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वीरूपं मनुष्यद्विकं,औदारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्गलक्षणमौदारिकद्विकं, वज्रर्षभनाराचसंहननं च तेषां"सायाइछजुगलाणं"ति साता-ऽसात-हास्यशोक-रत्य-रति-स्थिरा ऽस्थिर-शुभाऽशुभा-यशःकीर्त्यऽयशःकीर्तिस्वरूपसातादिषड्युगलानां तथा"आउगआहारजुगलाणं" ति देव-मनुष्याऽऽयूरूपमायुर्युगलं, आहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गरूपमा-

हारकयुगलं च तयोरिति सर्वसङ्ख्ययैकविंशतिप्रकृतबन्धयोग्यप्रकृतीनामिति । तासामवक्तव्यबन्ध-स्वामिनस्तद्भावना चाऽत्रावधिज्ञानमार्गणावदेव द्रष्टव्या इति ॥६९॥

अथ क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायामेव मध्यमकषायाऽष्टकादीनां प्रकृतबन्धस्वामिन आह—

दुइअतिअकसायाणं सम्मो देसो वि संजमाइचुओ ।
देवविउव्वदुगाणं कुणइ णरो भवपढमसमये ॥७०॥

(प्रे०) "दुइअतिअ०" इत्यादि, अत्र द्वितीयाऽप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्य, तृतीयप्रत्या-ख्यानावरणकषायचतुष्कस्य चावक्तव्यप्रदेशबन्धं कः करोति ? इत्याह, "**सम्मो देसो वि संजमाइ-चुओ**"त्ति संयमादिच्युतोऽविरतसम्यग्दृष्टिर्देशविरतिरपि करोति, अर्थाद् द्वितीयाऽप्रत्याख्यानावरण-चतुष्कस्य प्रकृतबन्धं षष्ठ-पञ्चमगुणस्थानयोरन्यतरगुणस्थानात्पतित्वा चतुर्थगुणस्थानं प्राप्तो जीवः कुरुते । तृतीयप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य च षष्ठगुणस्थानकाच्च्युत्वा पञ्चमगुणस्थानं चतुर्थगुणस्थानं वा प्राप्तो जीवस्तं कर्तुं शक्नोति, तथा सप्तम-षष्ठ-पञ्चमगुणस्थानेषु कालकरणेनाप्यासामवक्तव्यबन्धः प्राप्यते । "**देवविउव्वदुगाणं**" ति देवगति-देवानुपूर्वीरूपं देवद्विकम् , वैक्रियशरीर-वैक्रियाऽङ्गो-पाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकं च तयोरवक्तव्यप्रदेशबन्धं "**कुणइ णरो भवपढमसमये**" त्ति भवप्रथम-समये नरः करोतीति ॥७०॥

सम्प्रति प्रस्तुतमार्गणायां जिननाम्नस्तथा कथितशेषमार्गणासु प्रकृतबन्धयोग्यप्रकृतीनाम-वक्तव्यबन्धस्वामिनो निर्वक्ति—

अण्णयरो खलु मणुयो कुणए तित्थयरणामकम्मस्स ।
सेसासु मग्गणासुं सप्पाउग्गाण अण्णयरो ॥७१॥

(प्रे०) "**अण्णयरो**" इत्यादि, प्रस्तुतक्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां तीर्थकरनामकर्मणः प्रस्तावादवक्तव्यप्रदेशबन्धं "**अण्णयरो खलु मणुयो**" त्ति अत्र 'खलु' एवकारार्थे, अतोऽन्यतरो मनुष्य एव करोति, अर्थादेतन्मार्गणायां चतुर्थगुणस्थानात्सप्तमगुणस्थानकं गता ये मनुष्याः सन्ति, तन्मध्यादन्यतरो मनुष्यो जिननाम्नो नूतनबन्धप्रथमसमये प्रकृतबन्धस्वामी भवितुमर्हति । "**सेसासु मग्गणासु**"ति उक्तशेषमार्गणासु "**सप्पाउग्गाण**"त्ति स्वप्रायोग्यप्रकृतबन्धवतीनां प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धं "**अण्णयरो**" त्ति तत्तन्मार्गणावर्त्यन्यतरो जीवः करोति । नन्वत्रो-क्तशेषमार्गणाः काः सन्ति ? तासु प्रत्येकं पुनः काः सम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धाः प्रकृतयः ? इति जिज्ञासायां सर्वं प्रतिपाद्यते, तद्यथा-अत्रोक्तव्यतिरिक्तमार्गणाभेदाः चतुःसप्ततिप्रमिताः सन्ति, तन्मध्याद्या अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणा, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, अप-

यास्त्रसकायमार्गणा, सप्तैकेन्द्रियमार्गणाभेदाः, त्रयो द्वीन्द्रियभेदाः, त्रयस्त्रीन्द्रियभेदाः, त्रयश्चतुरिन्द्रियमार्गणाभेदाः, सप्तपृथ्वीकायमार्गणाभेदाः, सप्ताऽप्कायमार्गणाभेदाः,एकादशवनस्पतिकायमार्गणाभेदा इति पञ्चचत्वारिंशत्प्रमिता मार्गणाः सन्ति,तासु सम्भाव्यमानाऽवक्तव्यबन्धाः प्रकृतयो नरकत्रिक-देवत्रिक-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विकौ-दारिकशरीर-जिननामानीति द्वादशप्रकृतिवर्जिताः शेषैकषष्टयध्रुवबन्धिन्यः प्राप्यन्ते, तासां च प्रकृतबन्धस्वाम्यत्रोक्ततत्तन्मार्गणावर्त्यन्यतरो जीवो ज्ञेयः । तथोक्तशेषमार्गणाऽन्तर्गतासु पञ्चानुत्तरसुरमार्गणामिश्रसम्यक्त्वमार्गणारूपासु षण्मार्गणासु साताऽसात-हास्य-शोक-रत्य-ऽरति-स्थिरा--ऽस्थिर-शुभा-ऽशुभ--यशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपसातादिषड्युगलानामवक्तव्यबन्धो भवितुमर्हति, तत्स्वामी च पूर्ववदन्यतरो जीवः संभवति । पञ्चाऽनुत्तरेषु मनुष्यायुषोऽपि प्रकृतबन्धस्वाम्यन्यतरो जीवो वक्तव्यः । तथाऽत्र सप्ततेजःकायभेदेषु,सप्तवायुकायभेदेषु च मनुष्यत्रिक-तिर्यग्द्विक-वैक्रियाऽष्टकौ-दारिकशरीरा-ऽऽहारकद्विक--जिननाम--गोत्रद्विकरूपैकोनविंशतिप्रकृतिरहितशेषचतुष्पञ्चाशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामेवाऽवक्तव्यबन्धो भवति, आहारककाययोगा-ऽऽहारक-मिश्रकाययोग-देशविरतसंयमाऽऽख्यमार्गणात्रिकेऽवक्तव्यबन्धयोग्याः सातादिषड्युगल-सुरायु-जिननामरूपाश्चतुर्दशप्रकृतयो विद्यन्ते ।

परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां च सातादिषड्युगल-देवायु-राहारकद्विक-जिननामरूपषोडशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धः संजायते । सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां तु कस्या अपि प्रकृतेरवक्तव्यबन्धो न भवति । तथा तिसृष्वभव्य-मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञिमार्गणास्वाहारकद्विक-जिननामवर्जितशेषसप्तत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धसद्भावोऽस्ति ।

सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां पुनः प्रकृतबन्धप्रायोग्याः प्रकृतय इमाः-वेदनीयद्विकम्, हास्य-शोक-रत्य-ऽरति-स्त्री–पुम्वेदाः, नरकायुर्वर्जितानि त्रीण्यायूंषि, देवद्विक-मनुष्यद्विक-तिर्यग्द्विकौ-दारिकद्विक--वैक्रियद्विक--सेवार्त्तरहितशेषपञ्चसंहनन--हुंडकवर्जितशेषपञ्चसंस्थान--खगतिद्विको--द्योत-नाम-स्थिरषट्का-ऽस्थिरषट्कानि गोत्रद्विकञ्चेत्यष्टचत्वारिंशत्प्रकृतयः ।

इत्थमुक्तशेषचतुःसप्ततिमार्गणानामानि दर्शितानि, तत्तन्मार्गणायां चावक्तव्यबन्धयोग्याः प्रकृतयोऽपि दर्शिताः । तासां च प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्वामी तत्तद्मार्गणावर्त्यन्यतरो जीवो वेदितव्य इति ।

एवमत्रोक्तशेषचतुःसप्ततिमार्गणाभेदेषु, तत्पूर्वं चोक्तषण्णवतिमार्गणाभेदेषु प्रकृतबन्धस्वामिनः प्ररूपिता इति ॥७१॥

तदेवं सप्रपञ्चमुक्तमादेशतः स्वामित्वद्वारम् । तस्मिन्नुक्ते च समर्थितमोघादेशाभ्यां स्वामित्वद्वारम् । तत्समर्थने च '**सामी**' इत्यनेनोद्दिष्टं द्वितीयं स्वामित्वद्वारं व्याख्यातम् ।

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे द्वितीये-भूयस्काराऽभिधेऽधिकारे द्वितीयं स्वामित्वद्वारं समाप्तम् ॥

॥ तृतीयं कालद्वारम् ॥

निरूपितं द्वितीयं स्वामित्वद्वारम्, इदानीमोघतोऽष्टमूलकर्मसत्कसर्वासामुत्तरप्रकृतीनां तथाऽऽदेशतो मार्गणास्थानेषु बन्धार्हाणां प्रकृतीनामेकजीवमधिकृत्य भूयस्कारादिचतुर्विधप्रदेशबन्धो जघन्यत उत्कृष्टतश्च कियत्कालं यावद् भवतीति प्रश्नावकाशमाशङ्क्य तन्निराकरणाय क्रमायातं कालद्वारं प्रचिकटयिषुरादौ तावदोघतः सर्वप्रकृतीनां भूयस्कारादिचतुर्विधप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालमवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य चोत्कृष्टकालं प्रकटयन्नाह—

समयो भवे चउण्हं भूगाराईण सव्वपयडीणं ।
हस्सो कालो जेट्ठो वि अवत्तव्वस्स बोद्धव्वो ॥७२॥

(प्रे०) "**समयो**" इत्यादि, सर्वप्रकृतीनामिति त्रिंशत्युत्तरशतप्रकृतीनां भूयस्कारः, अल्पतरः, अवक्तव्यः, अवस्थितश्चेति चतुर्विधप्रदेशबन्धानां प्रत्येकं "**हस्सो कालो**" त्ति जघन्यकालः, एकसमयप्रमाणो भवति । तथाऽवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठः कालोऽप्येकसमयप्रमाण एव बोद्धव्य इति ।

इदमत्र हृदयम् — तत्तत्कार्योत्पत्तौ स्वस्वकारणकूटस्य सत्ता आवश्यक्येव, अतोऽत्रापि भूयस्कारादिबन्धानां कारणानि यावत्कालं सम्भवन्ति तावत्कालं भूयस्कारादिबन्धरूपं कार्यं भवति । तथाच भूयस्कारादिबन्धानां कालस्य निर्णयार्थं तेषां कारणानां कालोऽन्वेषणीयः ।

तद्यथा— अत्र भूयस्कारबन्धे एकं तावद्योगाधिक्यं कारणम्, तच्च जघन्यत एकसमयं भवति, उत्कृष्टाद्यन्यतमयोगस्थानस्य जघन्यत एकसमयमवस्थानात् । द्वितीयमल्पप्रकृतिबन्धः कारणम्, तदपि जघन्यत एकमेव समयं यावदवतिष्ठते । तृतीयं कारणं योगाधिक्यमल्पप्रकृतिबन्धश्चेति उभयप्रयुक्तम्, तज्जघन्यत एकसमयमेवावतिष्ठते । अल्पतरबन्धे योगहानिः, अधिकप्रकृतिबन्धः, तदुभयं चेति त्रीणि कारणानि; तानि त्रीण्यपि प्रत्येकं जघन्यत एकसमयं यावदवतिष्ठन्ते इति । अवस्थितबन्धे प्रथमं तावत्तुल्यप्रकृतिबन्धतुल्ययोगलक्षणं कारणम् । द्वितीयं कारणमधिकप्रकृतियोगाधिक्यलक्षणम् । तृतीयं कारणं योगहान्यल्पप्रकृतिबन्धोभयलक्षणमिति । अत्र त्रिष्वपि कारणेषु योगस्य समावेशात् तुल्यादियोगस्य जघन्यत एकसामयिकत्वाच्च त्रीण्यपि कारणानि प्रत्येकं जघन्यत एकसमयमेवावतिष्ठन्ते । अवक्तव्यबन्धस्तु स्वलक्षणाधीन एव जघन्यत उत्कृष्टतो वैकसमयमेवावतिष्ठते; यतो यदा प्रकृतेर्बन्धविच्छेदादिनाऽबन्धो भूत्वा पुनर्बन्धोऽभिनवबन्धो वा भवति तदा पुनर्बन्धस्याभिनवबन्धस्य वा प्रथमसमये एवावक्तव्यबन्धो भवतीति तल्लक्षणमस्ति । इत्येवं भूयस्कारादिबन्धानां जघन्यकालोऽवक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टकालश्चौघतः प्रदर्शितः ॥७२॥

सम्प्रति भूयस्काराऽल्पतराऽवस्थितबन्धानामोघत उत्कृष्टकालमानस्य प्ररूपणायाऽऽह—

भूगारप्पयराणं अंतमुहुत्तं अवट्ठिअस्स भवे ।
आऊण सत्त समया एगारस पंचदस व सेसाणं ॥७३॥(गीतिः)

(प्रे०) 'भूगार०" इत्यादि, भूयस्काराऽल्पतरबन्धयोः, अत्र पूर्वगाथास्थितस्य "सव्वपयडीणं" ति पदस्य "जेट्ठो" इति पदस्य चाऽनुवृत्तेर्ग्रहणात्, सर्वासां प्रकृतीनां ज्येष्ठः-उत्कृष्टः काल ओघतः "अंतमुहुत्तं" ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति । "आऊण" त्ति चतसृणामायुःप्रकृतीनां "अवट्ठिअस्स" त्ति, अवस्थितप्रदेशबन्धस्य "सत्तसमया" त्ति सप्तसमयप्रमाण उत्कृष्टकालो भवति । "सेसाणं" ति चतुरायुर्वर्जितशेषषोडशाधिकशत-प्रकृतीनामुत्कृष्टकालः "एगारस पंचदस व" त्ति एकादशसमयप्रमाणो पञ्चदशसमयप्रमाणो वा भवति । इदमत्र हृदयम्—एकस्मिन्नेव योगस्थाने जीव उत्कृष्टतोऽष्टौ समयान् यावदवतिष्ठते, ततोऽवश्यं योगस्थानान्तरं यातीत्यतोऽष्टसमयप्रमाणस्य योगावस्थानस्य प्रथमे समये भूयस्कारोऽल्पतरो वा प्रदेशबन्धो भवति । अव्यवहितपूर्वसमयापेक्षया तस्योत्तरसमये योगस्याधिकत्वादल्पत्वाद् वा । ततो द्वितीयसमयादारभ्याष्टमसमयपर्यन्तेषु सप्तसमयेष्ववस्थितप्रदेशबन्धो भवति । ततो नवमे समये यदा सङ्ख्येयभागवृद्धमन्यद् योगस्थानं प्राप्यते । तदा तस्मिन्योगस्थानेऽष्टौ समयान् यावज्जीवोऽवस्थितो भवति । तत्रापि नवमसमयादारभ्य षोडशसमयपर्यन्तेष्वष्टसमयेषु चतुरायुर्वर्जितशेषप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धो भवति । इति प्रथमयोगावस्थानभाविनोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य सप्तसमयाः सङ्ख्यातभागवृद्धिसहितद्वितीययोगावस्थानभाविनोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य चाष्टौ समया मीलिताः पञ्चदशसमया भवन्ति, अर्थाच्चतुरायूरहितशेषप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः पञ्चदशसमय-प्रमाणः संभवति ।

ननु यथाऽष्टसमयप्रमाणप्रथमयोगावस्थानस्य प्रथमे समयेऽव्यवहितपूर्वसमयापेक्षया योगस्याधिकत्वाद् भूयस्कारप्रदेशबन्धो भवति तथैव द्वितीययोगावस्थानप्रथमसमयेऽपि प्रथम-योगावस्थानाऽन्तिमसमयापेक्षया योगस्याधिकत्वाद् भूयस्कारप्रदेशबन्धेन भाव्यमिति तत्त-दानीमपि कथमवस्थितप्रदेशबन्ध उच्यते? इति चेद्, सत्यम्, अत एव तदानीमायुर्बन्धप्रारम्भोऽपि कथनीयः । एतदुक्तं भवति–यथा नवमे समये जीवेनान्यत्संख्येयभागवृद्धं योगस्थानं प्राप्यते, तथैवायुर्बन्धमपि प्रक्रम्यते तथा तत्तद्मूलकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां तु तावानेव प्रकृतीनां बन्धो विज्ञेयः ततो यद्यपि योगाधिक्यापेक्षया पूर्वसमयात् कर्मदलिकानां बन्धोऽधिको भवति तथापि पूर्वसमयाद् भागाहारसंख्याया अधिकत्वात्प्रत्येकं कर्मणः स्वतया परिणतानि कर्मदलिकानि तु पूर्वसमयदलिकप्रमाणान्येव संभवन्ति । यावन्ति कर्मदलिकान्यधिकानि बध्यन्ते तावन्त्यायुष्कतया परिणमन्तीति सप्तकर्मतया परिणतानि कर्मदलिकानि तु पूर्वसमयबद्धदलिकतुल्यान्येव भवन्ति ।

एवं हानिमाश्रित्यापि वक्तव्यम् । अयं भावः—नवमे समये यथा संख्येयभागवृद्धमन्यद् योगस्थानं प्राप्यते तथा कदाचित् संख्येयभागहीनमपि योगस्थानं प्राप्यते । अतो यदि संख्यातभागहीनं योगस्थानमाश्रित्य प्रकृतकाल उपपाद्यते तर्हि तदानीमायुर्बन्धविरामोऽपि वक्तव्यः । अर्थात् पूर्वसमयेऽष्टमूलप्रकृतीर्बध्नन् सप्तप्रकृतीर्बध्नातीति वक्तव्यम् । तदसत्कल्पनया प्रदर्श्यते, तद्यथा—सप्तकर्माणि बध्नता जीवेन प्रथमयोगावस्थानान्तिमसमये पञ्चसहस्राणि कर्मदलिकानि बद्धानि । तेषु नवशतानि वेदनीयतया परिणतानि, अष्टशतानि मोहनीयतया परिणतानि, ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां प्रत्येकं स्वतया सप्तशतानि परिणतानि, नामगोत्रकर्मणोः प्रत्येकं स्वतया षट्शतानि परिणतानि । अथ तदनन्तरसमयेऽष्टकर्माणि बध्नता तेन पञ्चशताधिकपञ्चसहस्राणि कर्मदलिकानि बद्धानि । अत्र यानि पञ्चशतानि कर्मदलिकानि बद्धानि तान्यायुष्कतया परिणतानि । शेषकर्मसु कर्मदलिकपरिणतिः पूर्ववद् । एवं हानिमाश्रित्याप्यसत्कल्पना विधेया । इत्येवं द्वितीययोगावस्थानप्रथमसमये स्वाव्यवहितपूर्वसमयापेक्षया योगस्याधिक्ये हानौ वाऽऽयुर्वर्जितसप्तकर्मणामवस्थितप्रदेशबन्ध एव भवति, न भूयस्कारप्रदेशबन्धो नाप्यल्पतरो बन्धः । अथवा मतान्तरेण एकादशसमयान् यावत् सप्तकर्मणामवस्थितप्रदेशबन्धो भवति । अत्र सर्वविचारसरणिः पूर्ववज्ज्ञातव्या । नवरमयं विशेषः—अन्ये तु यदाऽष्टसामयिकयोगस्थानेभ्यः संख्यातभागवृद्धिर्हानिर्वा जायते तदा चतुःसामयिकस्यैव योगस्थानस्य प्राप्तिर्भवतीति कथयन्ति, तेन यदि कश्चिज्जीवः तस्मिन् योगस्थानेऽवस्थानं करोति तर्हि चतुरः समयान् यावदेव भवति, न ततोऽधिककालमिति । ततः सप्तसमयाः प्रथमावस्थानभाविनोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य चत्वारः समयाश्च मीलिता एकादशसमया भवन्ति । ननु द्वितीयावस्थाने जीवस्य चतुरः समयान् यावदेवावस्थानं भवतीति कथं ज्ञायते ? इति चेद् , उच्यते, यवमध्यमादधस्तनसप्तसामयिक-षट्सामयिक-पञ्चसामयिकावस्थानप्रायोग्ययोगस्थानेष्वसङ्ख्यातभागहानेस्तथा तदुपरितनपञ्चषट्सप्तसामयिकावस्थानप्रायोग्ययोगस्थानेष्वसंख्यातभागवृद्धेरेव स्वीकारात् संख्यातभागवृद्धया प्राप्तयोगस्थानस्यावस्थानकालस्योत्कृष्टतोऽपि चतुःसमयप्रमाणत्वादित्यन्यैः स्वीकृतत्वात् । एतदपि कुतः ? मतान्तरे योगस्थानेषु योगस्पर्धकद्विगुणवृद्धिनिष्पादकान्तरं यथोत्तरं द्विगुणं द्विगुणमभिमतमिति कृत्वा, विस्तरार्थिना तु मूलप्रकृतिप्रदेशबन्धे योगस्थानप्ररूपणाऽवलोकनीया ।

आयुषोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः सप्त समयाः भवति । यतः प्राग्वदष्टसमयप्रमाणे प्रथमावस्थाने प्रथमसमये भूयस्काराल्पतरान्यतरप्रदेशबन्धो भवतीति प्रथमैकसमयमन्तरा शेषेषु सप्तसमयेष्ववस्थितबन्धो भवति । आयुर्बन्धकाले मूलाष्टकर्मणां बन्ध एव, अतोऽधिकप्रकृत्यल्पप्रकृतिप्रयुक्तावस्थितप्रदेशबन्धस्यालाभः ॥७३॥

अथादेशतो मार्गणास्थानेषु बध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारादिप्रदेशबन्धानां कालमानं प्ररूपयति—

सव्वह सगपयडीणं ओघव्व णवरि लहू मुहुत्तंतो ।
सुरविउवदुगजिणाणं, भूओगारस्सुरलमीसे ॥७४॥

(प्रे०) "सव्वह" इत्यादि, सर्वत्र–सर्वमार्गणास्थानेषु "सगपयडीणं" ति स्वप्रायोग्य-प्रकृतीनां प्रकृतत्वात् प्रदेशबन्धमधिकृत्य तत्तन्मार्गणासु तत्तत्प्रकृतीनां संभवतां पदानां भूयस्कारादिचतुर्विधबन्धानां कालमानं 'ओघव्व' त्ति ओघवद् द्रष्टव्यम् । तत्राऽपि 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादं दर्शयति, 'णवरि' त्ति नवरम् 'उरलमीसे' त्ति औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां 'सुरविउवदुगजिणाणं' ति सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकम्, वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकम् जिननामकर्म चेति पञ्चप्रकृतीनां 'भूओगारस्स' त्ति भूयस्कारप्रदेशबन्धस्य 'लहू' त्ति लघुकालो 'मुहुत्तंतो' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणोऽस्ति ।

अयमत्राऽऽशयः–औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायामुक्तपञ्चप्रकृतीनां बन्धं सम्यग्दृष्टिजीव एव करोति । तस्य च तदौदारिकमिश्रयोगकाले करणाऽपर्याप्तावस्था भवति, तस्यामवस्थायां च योगस्य प्रतिसमयमसंख्यगुणवृद्धिर्भवति तस्माद् भूयस्कारबन्धस्य जघन्यकालोऽप्यत्रान्तर्मुहूर्तप्रमाण आयाति । अथ चाऽस्यां मार्गणायामन्यप्रकृतीनां बन्धकास्तु लब्ध्यपर्याप्तजीवा अपि सम्भवन्ति, तेषां च भवपर्यंतमौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणा विद्यते, तत्र पुनर्योगस्य वृद्धिहान्यवस्थानानि भवद्वित्रिभागादूर्ध्वं भवितुमर्हन्ति, तस्मात्तत्र भूयस्काराऽल्पतरावस्थानानां जघन्यकाल ओघवदेकसमयप्रमाण आगच्छतीति ज्ञेयम् ॥७४॥

अथ वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां ओघवक्तव्यतापेक्षया यो विशेषोऽस्ति तं दर्शयति–

धुववंधितित्थयरुरलपरघाऊसासबायरतिगाणं ।
भूगारस्स जहण्णो विउव्वमीसे मुहुत्तंतो ॥७५॥

(प्रे०) "धुवबंधि" इत्यादि, "विउव्वमीसे" त्ति वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां "धुवबंधि" इत्यादि, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयस्तथा तीर्थकरनामौ-दारिकशरीर-पराघातोच्छ्वास-बादरत्रिकाणि चेति चतुष्पञ्चाशत्प्रकृतीनां "भूगारस्स" त्ति भूयस्कारप्रदेशबन्धस्य "जहण्णो" त्ति जघन्यकालः "मुहुत्तंतो" त्ति अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणो विद्यते ।

अयमर्थः–– वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां जिननामरहिता उक्तसर्वप्रकृतयो ध्रुवबन्धिन्यः सन्ति । जिननामप्रकृतिमपि यो बध्नाति तस्य तु सा निरन्तरबन्धिन्येव । तथा च तत्र करणाऽपर्याप्ताऽवस्थायाः सत्त्वाद्योगस्य प्रतिसमयमसङ्ख्येयगुणवृद्धिर्भवति । एवमुक्तमार्गणाया जघन्यकालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणोऽस्ति, तस्मादुक्तप्रकृतीनां भूयस्कारबन्धस्य जघन्यकालोऽत्राऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणः समाख्यात इति । शेषप्रकृतीनां भूयस्कारप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालः समयोऽध्रुवबन्धित्वाद् विज्ञेयः ॥७५॥

अथाऽऽहारकमिश्रे यो विशेषस्तमाह—

आहारमीसजोगे भिन्नमुहुत्तं जहण्णगो कालो ।
विण्णेयो सायाइछजुगलसुराउजिणवज्जाणं ॥७६॥

(प्रे०) "आहार०" इत्यादि, आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां "**सायाइछजुगलसुराउजिणवज्जाणं**" त्ति सातादिषड्युगलसुरायुर्जिननामवर्जानामेतन्मार्गणासम्भाव्यमानबन्धानां शेषप्रकृतीनां "**जहण्णगो कालो**" त्ति जघन्यकालः "**भिन्नमुहुत्तं**" अन्तर्मुहूर्त्तं "**विण्णेयो**" त्ति विज्ञेयः ।

कथमेतदवसीयते इति चेदुच्यते— अत्राऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां सातादिषड्युगलसुरायुर्जिननामवर्जिताः शेषबध्यमानप्रकृतयो ध्रुवबन्धिन्यो मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धिन्यो वा सन्ति । तथाऽत्र मार्गणायाश्चरमसमयपर्यन्तं योगस्याऽसङ्ख्यगुणवृद्धिरेव भवति । मार्गणावस्थानकालोऽपि जघन्यतयाऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणोऽस्ति, तस्मादुक्तप्रकृतीनां भूयस्कारप्रदेशबन्धस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाण उक्तः । जिननामसुरायुषोस्तु प्रस्तुतमार्गणाद्विचरमसमये नूतनबन्धप्रारम्भे तदवक्तव्यबन्धो जायते, पश्चात्तदनन्तरसमये तयोर्भूयस्कारबन्धः संजायते, तत्पश्चान्मार्गणायाः समाप्तिः, इत्येवं जिननामसुरायुषोर्जघन्यकाल एकसमयः सूपपद्यते । सातादिषड्युगलप्रकृतीनां बन्धस्य तु परावर्तमानत्वादेव तासां जघन्यकाल एकसमयप्रमाण इति सुगमम् ॥७६॥

अथ कार्मणकाययोगमार्गणायामनाहारकमार्गणायां च यो विशेषस्तमाह—

कम्माणाहारेसु देवविउव्वदुगजिणाण विण्णेयो ।
भूओगारस्स गुरू समयो सेसाण दो समया ॥७७॥

(प्रे०) "**कम्माणाहारेसु**" इत्यादि, कार्मणकाययोगमार्गणा, अनाहारकमार्गणा च तयोः, अत्र प्राकृतत्वाद् बहुवचनान्तप्रयोगः । तत्र कासां प्रकृतीनामित्याह, "**देवविउव्वदुगजिणाण**" त्ति द्विकशब्दस्योभयत्रान्वयाद् देवद्विकं देवगति-देवानुपूर्वीरूपं, वैक्रियद्विकं वैक्रियशरीर वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणम्, जिननाम चेति पञ्चप्रकृतीनां "**भूओगारस्स**" त्ति भूयस्कारबन्धस्य "**गुरू**" त्ति उत्कृष्टकालः "**समयो**" त्ति एकसमयप्रमाणो "**विण्णेयो**" त्ति विज्ञेयः । '**सेसाण**' त्ति उक्तशेषाणामत्र बध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारबन्धस्योत्कृष्टकालः "**दो समया**" त्ति द्वौ समयावस्ति ।

अत्रावधेयमिदम्— एते द्वे मार्गणे छद्मस्थजीवापेक्षया त्रिसमयस्थितिके एव । तत्राऽपि उक्तसुरद्विकादिपञ्चप्रकृतीनां बन्धं तु संज्ञिजीव एव करोति । तस्य च एते द्वे मार्गणे समयद्वयं यावत्तिष्ठतः । अत एतत्पञ्चप्रकृतीनां भूयस्कारस्योत्कृष्टकालमानमेकसमयमेव कथितम् । उक्तशेषबध्य-

मानप्रकृतीनां भूयस्कारबन्धस्य स्थावरजीवस्वामिकत्वेन तदीयज्येष्ठकालो द्विसमयप्रमाणोऽवगन्तव्यः, तेषां स्थावराणां प्रस्तुतमार्गणायां समयत्रयमवस्थानसम्भवादिति ॥७७॥

अत्रान्यमतं प्रदर्शयन्नाह—

उअ भूगारस्स गुरू तसपाउग्गाण चेव पयडीणं ।
समयो हवेज्ज थावरपाउग्गाणं दुवे समया ॥७८॥

(प्रे०) "उअ" इत्यादि ,उत–अथवा मतान्तरेण पूर्वोक्तकार्मणकाययोगा-ऽनाहारकमार्गणयोः "**तसपाउग्गाण चेव पयडीणं**" ति त्रसप्रायोग्याणामेव प्रकृतीनां, "**भूगारस्स**" भूयस्कारप्रदेशबन्धस्य "**गुरू**" त्ति, उत्कृष्टकालः "**समयो हवेज्ज**" त्ति एकसमयप्रमाणो भवति । "**थावरपाउग्गाणं**" ति स्थावरप्रायोग्याणां प्रकृतीनां भूयस्कारबन्धस्योत्कृष्टकालः "**दुवे समया**" त्ति द्वौ समयौ भवति ।

कथमेतदवसीयते इति चेदुच्यते,–एतन्मतेन ये जीवाः त्रसप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नन्ति; तेषामुक्तमार्गणे द्विसमयं यावदेवावतिष्ठेते । तस्मात्तासां प्रकृतीनां भूयस्कारबन्धस्योत्कृष्टकालस्तत्र एकसामयिक एव । ये पुनरत्र स्थावरप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धं कुर्वन्ति, तेषां तु ते त्रिसमयं यावदवतिष्ठेते, अतः स्थावरप्रायोग्यप्रकृतीनां भूयस्कारस्य ज्येष्ठः कालोऽत्र पक्षे द्विसमयप्रमाण आयातीति ।

त्रसप्रायोग्यप्रकृतय इमाः –स्त्रीवेद-पुरुषवेदो-च्चैर्गोत्र-मनुष्यदेवगति-द्वीन्द्रियादिजातिचतुष्क-वैक्रियद्विकौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-संहननषट्क-संस्थानपञ्चक-खगतिद्वया-ऽऽनुपूर्वीद्वय-जिन-त्रस-सुभगत्रिक-दुःस्वरनामरूपास्त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतयः । मार्गणाप्रायोग्यशेषप्रकृतयःस्थावरप्रायोग्या ज्ञातव्याः॥७८।

अथापगतवेदमार्गणायां प्रकृतविषये ओघवक्तव्यतापेक्षया यो विशेषोऽस्ति तमाचष्टे —

अवगयवेए अंतिमकोहस्स अवट्ठिअस्स उक्कोसो ।
सत्त समया हवेज्जा सव्वेसिं सुहुममीसेसु ॥७९॥

(प्रे०) "**अवगयवेए**" इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां "**अंतिमकोहस्स अवट्ठिअस्स**" त्ति अन्तिम-सञ्ज्वलनक्रोधस्याऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य "**उक्कोसो**" त्ति उत्कृष्टः कालः "**सत्तसमया हवेज्जा**" त्ति सप्तसमया भवति । "**सुहुममीसेसु**" ति सूक्ष्मसंपरायसंयमसम्यग्मिथ्यात्वमार्गणयोः "**सव्वेसिं**" ति सर्वासां-बध्यमानसर्वप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य प्रकृष्टकालः सप्तसमया भवतीत्यन्वयः कार्यः ।

नन्वत्रापगतवेदमार्गणायां सञ्ज्वलनक्रोधस्याऽवस्थितबन्धस्योत्कृष्टकालः सप्तसमयप्रमाणः

कथमुक्तः ? तस्याऽप्यन्यप्रकृतीनामिवैकादश पञ्चदश वा समयाः प्रकृतकालो भवतु इति चेन्न; यतोऽत्र सञ्ज्वलनक्रोधस्य योऽष्टसामयिकोऽवस्थितयोगो भणितः, तन्निमित्तकसप्तसमयप्रमाणः कालः प्राप्यते, यस्तु प्रकृतिनिमित्तकोऽर्थात् प्रकृतिवृद्धि-हानिरूपो योऽष्टसमयाधिको मतान्तरेण चतुःसमयाधिकः कालोऽन्यप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य प्राग्भणित आसीत्, स त्वत्र सञ्ज्वलनक्रोधस्य नैव प्राप्यते,यतोऽत्र सञ्ज्वलनक्रोधस्य यदा बन्धो जायते तदा मूलप्रकृतयो बन्धप्रायोग्यसर्वाधिकसङ्ख्यायां बध्यन्ते, एवं तत्तन्मूलकर्मण उत्तरप्रकृतयोऽपि तथैव बध्यन्ते, तथा च न सम्भवति यथोक्तयोगनिमित्तकसप्तसमयादूर्ध्वमन्यप्रकृतिबन्धः, तथा च योगान्तरप्राप्तावबस्थितबन्धस्याप्यभाव एव, योगवृद्ध्याः समं प्रकृतिबन्धवृद्ध्या एव पूर्वप्रवृत्तावस्थितबन्धस्य नैरन्तर्येणाष्टमादिसमयेष्वपि सम्भवात्, इत्येवं प्रकृतिनिमित्तकोऽष्टसमयाधिको चतुःसमयाधिको वा कालोऽत्र प्राप्तुमर्हः। तस्मात् केवलाऽवस्थितयोगनिमित्तकसप्तसमयप्रमाणः कालः कथितः।

अनयैव रीत्या सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां मिश्रमार्गणायां च सर्वबध्यमानप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठः कालः केवलयोगनिमित्तकसप्तसमयप्रमाण एवेति विज्ञेयम् ॥७९॥

अथाऽऽहारककाययोगादिमार्गणास्थानान्यधिकृत्याह कालमानम्--

छअसायाईण खणा सत्ताहारम्मि तुरिअणाणम्मि।
संजमसामइएसु छेए परिहारदेसेसु ॥८०॥

(प्रे०) '**छअसायाईण**' इत्यादि, आहारककाययोगमार्गणायां '**तुर्यज्ञाने**' इति, चतुर्थमनःपर्यवज्ञानमार्गणायां तथा संयमौघ-सामायिकसंयम-च्छेदोपस्थापनीयसंयम-परिहारविशुद्धिसंयम-देशविरतमार्गणास्विति सर्वसङ्ख्यया सप्तमार्गणासु '**छअसायाईण**' त्ति असात-शोकाऽरत्य-स्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्तिरूपाणां षट्प्रकृतीनां प्रक्रमादवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालमानं '**खणा सत्त**' त्ति सप्तसमयप्रमाणं ज्ञातव्यम्।

यद्यपि मार्गणास्वासु देवायुषो बन्धो जायते तथापि तद्बन्धकालेऽसातवेदनीयादिषट्प्रकृतीनां बन्धासम्भवादवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकाल ओघवत्तदानीं न प्राप्यते, तथैव जिननाम्नो नूतनबन्धकालेऽस्थिराशुभायशःकीर्तिनाम्नां बन्धोऽपि न सम्भाव्यते अतस्तदानीमपि प्रकृतित्रयस्यावस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकाल ओघवत् नावाप्यते किन्त्वायुर्वर्जप्रकृतिषट्कस्याप्यवस्थितबन्धस्योत्कृष्टकालः सप्तसमयप्रमाणः प्राप्यते, अतः सुष्ठूक्तं '**खणा सत्त**' इति। शेषप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्योत्कृष्टकाल ओघवज्ज्ञातव्य इति ॥८०॥

अथोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां यासां प्रकृतीनामवस्थितबन्धस्योत्कृष्टकाल ओघवन्न प्राप्यते तासां प्रकृतीनां कालमानं दर्शयन्नाह--

सत्तसमया दुणिद्दाअसायहस्सछगअडकसायाणं ।
णरुरलदुगवइरअथिरदुगाजसजिणाणुवसमम्मि ॥८१॥

(प्रे०) 'सत्त' इत्यादि, अथोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां द्विनिद्रादिजिनान्तानां प्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य प्रकरणवशादुत्कृष्टकालः सप्तसमयप्रमाणो भवति । कुत ओघवद् न भवतीति चेदुच्यते, तद्यथा–अस्यां मार्गणायामायुर्बन्धाभावः, उक्तप्रकृतीनां बन्धकाले मूलसप्तप्रकृतयो बध्यन्त न तु न्यूनाधिकप्रकृतयः । अतो मूलप्रकृतीराश्रित्याधिककालो न प्राप्यते । तथैव मूलप्रकृत्यभिन्नोत्तरप्रकृतीराश्रित्याऽधिककालो निद्राद्विका-ऽसातवेदनीया--ऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-मनुष्यद्विकौदारिकद्विक-प्रथमसंहनना ऽस्थिरा-शुभा--ऽयशःकीर्तिबन्धसमये न प्राप्यते, तस्मात्तासां सप्तसमयप्रमाणकालः सूपपद्यते ।

हास्यषट्क-प्रत्याख्यानावरणचतुष्कबन्धसमये यद्यप्यप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बन्धविच्छेदः पञ्चमादिगुणस्थानावाप्तिकाले प्राप्यते, तथापि तस्य सर्वघातित्वेन स्वविच्छेदात् शेषप्रकृतीनामधिकदलिकस्य प्राप्तिरनन्तभागमात्रा, योगस्य जघन्यहानिवृद्धितो दलिकस्य जघन्या हानिर्वृद्धिर्वाऽसंख्यभागमात्रा, तेन साऽनन्तभागवृद्धिरवस्थितबन्धस्याधिककालेऽकिञ्चित्करा जिननामबन्धकाल आहारकद्विकस्य पुनर्बन्धाबन्धयोः सद्भावेऽपि न तत्प्रयुक्तदलिकस्य हानिवृद्धी जिननाम्नि, तस्मात् जिननामावस्थितबन्धकालः सप्तसमयप्रमाणो न त्वोघवदिति ।

शेषप्रकृतीनां बन्धकालोऽवस्थितप्रदेशस्य पञ्चदशसमया एकादशसमया वा । तत्र ज्ञानावरणपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्का-ऽन्तरायपञ्चक-सातवेदनीय-यशःकीर्त्यु-च्चैर्गोत्रप्रकृतीनामवस्थितबन्धकालस्य पञ्चदशसमयप्रमाणत्वे यद्वा एकादशसमयप्रमाणत्वे मोहनीयमूलप्रकृतेर्बन्धविच्छेदः पुनर्बन्धो वा हेतुतया प्राप्यते तथा संज्वलनलोभ-माया-मान-क्रोध-पुरुषवेदप्रकृतीनामवस्थितबन्धकालस्य तथात्वे माया-मान-क्रोध-पुरुषवेदहास्यादिचतुष्काणां बन्धविच्छेदः पुनर्बन्धो वा हेतुतयाऽवाप्यते, तथा सुदेवप्रायोग्याष्टाविंशतिप्रकृतीनामाहारकद्विकस्य चावस्थितबन्धकालस्य तथात्वे जिननाम्नो नूतनबन्धस्य कारणत्वं ज्ञेयम् ॥८१॥

तदेवमुक्तमादेशतः कालद्वारम् । तदुक्ते च समर्थितमोघादेशाभ्यां कालद्वारम् । तत्समर्थने च गतं 'कालं' इत्यनेनोद्दिष्टं तृतीयं कालद्वारम् ।

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधाने उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे द्वितीये भूयस्कारबन्धाऽधिकारे तृतीयं कालद्वारं समाप्तम् ॥



॥ चतुर्थ–मन्तरद्वारम् ॥

गतं कालद्वारम् । सम्प्रति क्रमप्राप्तं चतुर्थमन्तरद्वारं प्ररूपयिषुः प्रथमं तावद् ग्रन्थलाघवार्थं प्रकृतिसङ्ग्रहं गाथाचतुष्केण दर्शयति--

मिच्छं थीणद्धितिगं अणचउगं णीअगोअथीणपुमा ।
संघयणागिइपणगं कुखगइ-दुहगसुहगतिगाणि ॥८२॥
सुखगइ-सुहागिइ-पुरिसउच्चणरुरलदुगवइरतित्थाणि ।
सुरविउवणिरयजुगलं सुहमतिगं तह विगलजाई ॥८३॥
आयवि-गिंदिय-थावर-पणिंदिय-तस-परघाय-ऊसासा ।
बायरतिगं च सायं हस्सरई तह थिरसुहजसा ॥८४॥
सोगारई असायं अथिरासुहअजसणामपयडीओ ।
आहारदुगमिओ इह जा वोच्छं ता कमा गेज्झा ॥८५॥

(प्रे०) "**मिच्छं**" इत्यादि, "**मिच्छं**" ति मिथ्यात्वमोहनीयम् , "**थीणद्धितिगं**"ति निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला स्त्यानर्द्धिलक्षणम् ""**अणचउगं**"ति अनन्तानुबन्धिचतुष्कम् "**णीअगोअ**" त्ति नीचैर्गोत्रम् , "**थीणपुमा**" ति स्त्री-नपुंसकवेदौ "**संघयणागिइपणगं**" ति प्रथमवर्जितसंहननपञ्चकं, तथा आकृतिपञ्चकं–प्रथमवर्जितसंस्थानपञ्चकमित्यर्थः "**कुखगइ**" त्ति कुखगतिनाम, "**दुहगसुहगतिगाणि**" त्ति दुर्भग-दुःस्वराऽ-नादेयरूपं दुर्भगत्रिकं तथा सुभग-सुस्वरा-ऽऽदेयरूपं सुभगत्रिकम् । "**सुखगइ**" त्ति सुखगतिः, "**सुहागिइ**" त्ति शुभाकृतिः–समचतुरस्रसंस्थानम् , "**पुरिस**" त्ति पुरुषवेदः, "**उच्च**" त्ति उच्चैर्गोत्रम् , "**णरुरलदुग**" त्ति नरगति–नरानुपूर्वीरूपं नरद्विकं, औदारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्गलक्षणमौदारिकद्विकम् , "**वइरतित्थाणि**"त्ति वज्रर्षभनाराचसंहनन-जिननामकर्मणी, "**सुरविउवणिरयजुगलं**" ति अत्र जुगलशब्दस्य प्रत्येकमन्वयात्सुरद्विकं सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपम् वैक्रियद्विकं वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणम् , नरकद्विकं नरकगति-नरकानुपूर्वीस्वरूपम् , "**सुहुमतिगं**" ति सूक्ष्मा-ऽपर्याप्तसाधारणभेदभिन्नम् तथा "**विगलजाई**" त्ति द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजातिरूपास्तिस्रो जातयः । "**आयवि-गिंदिय-थावर-पणिंदिय-तस-परघाय-ऊसासा**" त्ति आतपै-केन्द्रियजाति-स्थावर-पञ्चेन्द्रियजाति-त्रस पराघातो-च्छ्वासनामानि, "**बायरतिगं**" ति बादर-पर्याप्त प्रत्येकात्मकं बादरत्रिकम् , "**सायं**" ति सातवेदनीयम् , "**हस्सरई**"त्ति हास्यमोहनीयं, रतिमोहनीयं च, तथा "**थिरसुहजसा**" त्ति स्थिरशुभ-यशःकीर्तिनामानि, "**सोगारइ**" त्ति शोका-ऽरति-

मोहनीयौ, "**असायं**" ति असातवेदनीयं, "**अथिरासुहअजसणामपयडीओ**" त्ति अस्थिराऽशुभाऽयशःकीर्तिनामप्रकृतयः, "**आहारदुगं**" ति आहारकशरीराऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणम् । "**अओ**" त्ति अतः—अस्मात् प्रकृतिसङ्ग्रहात् "**इह**" त्ति अस्मिन्नन्तरद्वारे "**जा वोच्छ**" ति याः प्रकृतयो वक्ष्यामः "**ता कमा गेज्झा**" त्ति ताः प्रकृतयः क्रमशो ग्राह्याः ।

अयमर्थः—प्रकृताऽन्तरद्वारोपयोगिन्य एताश्चतस्रः प्रकृतिसंग्रहगाथा ग्रन्थलाघवार्थमादौ निरूपिताः, तन्मध्यादग्रे ग्रन्थकारेण याः प्रकृतयः मिथ्यात्वाद्यष्टादिलक्षणा अस्मिन्द्वारे यत्र कुत्रचिद् वक्ष्यन्ते, तत्र धीधनैरेतत्प्रकृतिसंग्रहमध्यात् क्रमशस्तासां मिथ्यात्वाद्यष्टादिप्रकृतीनां ग्रहणं कर्त्तव्यम् । यथाऽग्रे कुत्रचिन्मिथ्यात्वाद्यष्टकं वक्ष्यते तदा तत्रोक्तक्रमानुसारेण मिथ्यात्वं, स्त्यानर्द्धित्रिकं, अनन्तानुबन्धिचतुष्कं चेत्यष्टप्रकृतयो ग्रहणीयाः । एवं द्वादशसातवेदनीयादयः षोडशसूक्ष्मादय इत्यादि प्रकृतिसंग्रहगाथाक्रमगताः प्रकृतयो ग्राह्या इति ॥८२-८३-८४-८५॥

साम्प्रतमोघतः सर्वप्रकृतीनां भूयस्कारादिप्रदेशबन्धभेदानां प्रत्येकं जघन्याऽन्तरमानस्य प्ररूपणायाऽऽह—

भूओगाराईणं तिण्ह लहु अंतरं मुणेयव्वं ।
सव्वपयडीण समयो अंतमुहुत्तं अवत्तव्वे ॥८६॥

(प्रे०) "**भूओ०**" इत्यादि, सर्वासां—विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनां "**अवत्तव्वे**" त्ति प्राकृतत्वात् षष्ठ्यर्थे सप्तमीविभक्तिस्ततोऽवक्तव्यबन्धस्य "**लहु अंतरं**" ति लघु जघन्यमन्तरं "**अंतमुहुत्तं**" ति, अन्तर्मुहूर्त्तमस्ति । "**भूओगाराईणं तिण्ह**" त्ति भूयस्कारादीनां त्रिपदानामर्थाद् भूयस्कारा-ऽल्पतरा-ऽवस्थितप्रदेशबन्धानाम् , "**सव्वपयडीण लहु अंतरं**" ति पदस्यात्राप्यन्वयात्सर्वप्रकृतीनां जघन्यमन्तरं "**समयो**" त्ति समयप्रमाणमस्ति ।

घटनात्वियम्—सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिमध्यान्मिथ्यात्वाद्यष्टकस्य तथा मध्यमकषायाष्टकस्य चेति षोडशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य जघन्यान्तरं तदा प्राप्यते यदा कश्चिज्जीवः प्रमत्तादिगुणस्थानान्मिथ्यात्वगुणस्थानं समागत्योक्तषोडशप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धं करोति, तदनन्तरश्चाऽन्तर्मुहूर्त्तकालं तत्रैव स्थित्वा पुनरप्रमत्तादिगुणस्थानमायाति तत्राऽप्यन्तर्मुहूर्तकालं स्थित्वा पुनर्मिथ्यात्वगुणस्थानकमागच्छति, तदा तस्योक्तषोडशप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य जघन्याऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं सम्प्राप्यते । एवमेव चतुर्थगुणस्थानकान्मिथ्यात्वं गत्वा मिथ्यात्व-स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाणामष्टप्रकृतीनां तथा पञ्चमगुणस्थानकान्मिथ्यात्वं गत्वाऽप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कयुक्तानां तासामथवा पञ्चमगुणस्थानकाच्चतुर्थगुणस्थानकं गत्वाऽप्रत्याख्यानावरणकषायाणां षष्ठगुणस्थानकाच्च पञ्चमगुणस्थानकं गत्वा प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य चतुर्थगुणस्थानकं गत्वा मध्यमाष्ट-

कषायाणां चाऽवक्तव्यप्रदेशबन्धं करोति । तत्र चाल्पकालं स्थित्वा तत उपरितनगुणस्थानं प्राप्य यथायोगं शीघ्रमवतीर्य यदा पुनरप्यवक्तव्यबन्धं करोति । तदाऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं जघन्यान्तरं भवति ।

उक्तशेषैकत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तु कश्चिज्जीवः श्रेणौ तदबन्धं कृत्वोपशान्तमोहगुणस्थानकं प्राप्य तत्र चाऽन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा क्रमेण श्रेणेरवरोहन् यथायोगं दशमगुणस्थानादारभ्याष्टमगुणस्थानकं यावद् यथास्थानं तासामेकत्रिंशतः प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धं कृत्वा प्रमत्तगुणस्थानकं यावदवतरति पुनरप्यन्तर्मुहूर्तेनैव कालेनोपशमश्रेणिमारुह्य तत्तत्प्रकृतीनां यथाकालं समयमेकमबन्धं करोति,तदनन्तरं च कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नस्य चतुर्थगुणस्थानकगतस्य तस्य प्रथमसमये तासामेकत्रिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धो भवति । तदैतासां प्रकृतीनामन्तर्मुहूर्त्तमानं जघन्यान्तरं प्राप्यते ।

अध्रुवबन्धिप्रकृतिष्वायुश्चतुष्कस्यावक्तव्यबन्धस्य जघन्यान्तरमाकर्षद्वयजघन्यान्तरकालेन साध्यम् , तथा जिननाम्नोऽष्टमगुणस्थाने नूतनबन्धरूपमवक्तव्यबन्धं कृत्वाऽन्तर्मुहूर्त्तानन्तरमबन्धं कृत्वा कालं च कृत्वा देवभवप्रथमसमये पुनर्बन्धं करोति तदाऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं जघन्यान्तरमायाति यद्वा नामध्रुवबन्धिवत्प्रस्तुताऽन्तरं ज्ञातव्यम् , शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनां परावर्तमानभावे बध्यमानत्वादन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमन्तरमायाति ।

ननु शेषाध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यस्य बन्धान्तरं जघन्यतः समयप्रमाणं वक्तव्यम् , परावर्तमानत्वात्तासामिति चेद् , उच्यते, अध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य जघन्यान्तरमेकसमयप्रमाणं तदैव स्याद् यदा विवक्षितप्रकृतेर्नूतनबन्धभवनादनन्तरद्वितीयसमये तत्प्रतिपक्षप्रकृतेर्बन्धः, तदनन्तरं च पुनर्विवक्षितप्रकृतेः पुनर्बन्धप्रारम्भः स्यात् । तद्यथा–केनचित् सातवेदनीयस्य बन्धकेन सातबन्धादुत्तीर्याऽसातस्य बन्धः प्रारब्धः, तत्र तस्याऽवक्तव्यबन्धः, तदनन्तरसमय एव सातवेदनीयस्य बन्धः, तमप्येकसमयं कृत्वा पुनरसातवेदनीयस्य बन्धो यदि क्रियेत, तर्ह्येकसमयोऽसातवेदनीयावक्तव्यबन्धस्यान्तरं घटते किन्तु परावर्तमानप्रकृतिषु द्वयोः प्रतिपक्षप्रकृत्योरुपर्युपरि समयप्रमाणो बन्धो नैव भवति । अयम्भावः–सातबन्धकः सातबन्धानन्तरमेकसमयमसातं बद्ध्वाऽन्तर्मुहूर्त्तमेव सातं बध्नाति, तत्पश्चादेवाऽसातं बन्द्धुं शक्नोति, इत्यनेन कारणेन जघन्यतोऽप्यसातवेदनीयादीनामऽवक्तव्यबन्धस्याऽन्तरमन्तर्मुहूर्तं, न तु समयः ।

अथ सर्वप्रकृतीनां भूयस्कारा-ऽल्पतरा-ऽवस्थितबन्धानां प्रत्येकमन्तरं समयप्रमाणं निरूपितम् । यतो भूयस्कारादिबन्धकारणभूतानां योगवृद्धि-हान्य-वस्थितीनामन्तरमेकसमयप्रमाणमेवाऽस्ति, अतस्तत्कार्यरूपभूयस्कारादिबन्धस्यान्तरमप्येकसमयप्रमाणमेव ॥८६॥

एतर्हि सर्वप्रकृतीनां भूयस्कारादिबन्धानां ज्येष्ठमन्तरं निर्वक्ति—

भूगारप्पयराणं अणुरुपएसव्व जेट्ठमखिलाणं ।
आउतिग-विउवछक्काणऽवट्ठिअस्स य असंखपरिअट्टा ॥८७॥ (गीतिः)

(प्र०) "भूगार०" इत्यादि, "अखिलाणं" ति अखिलप्रकृतीनां "भूगारप्पयराणं" ति भूयस्काराल्पतरप्रदेशबन्धयोः प्रक्रमाज्ज्येष्ठमन्तरं "अणुरुपएसव्व" त्ति अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धान्तरवद्विज्ञेयम् । अथौघतोऽवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठान्तरं दर्शयति,–तिर्यगायूरहितशेषाऽऽयुस्त्रिकस्य वैक्रियद्विक-देवद्विक-नरकद्विकरूपस्य वैक्रियपट्कस्य चेति सर्वसंख्यया नवप्रकृतीनां, किमित्याह–"अवट्ठिअस्स य" त्ति अवस्थितप्रदेशबन्धस्य च "जेट्ठ" मिति पदस्यात्राप्यन्वयात् ज्येष्ठान्तरं "असंखपरिअट्टा" त्ति असङ्ख्यपुद्गलपरावर्तप्रमाणं भवति ।

इदमत्र हृदयम्–तत्तत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्यान्तमुहूर्तादिप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं तत्तत्प्रकृतिबन्धस्योत्कृष्टान्तरकालाधीनम् यतः प्रदेशबन्धः तदैव जायते यदा प्रकृतीनां बन्धो भवेत्, तस्मात्प्रकृतिबन्धस्योत्कृष्टान्तरतुल्यं ततः किञ्चिदधिकं वा तत्तत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टान्तरमागच्छति । अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टान्तरतुल्यं किञ्चित् साधिकं वाऽत्र तत्तत्प्रकृतीनां भूयस्कारबन्धस्य अल्पतरबन्धस्य च ज्येष्ठमन्तरमायाति यतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धवद्भूयस्काराल्पतरबन्धयोः प्रत्येकं सर्वजीवानां सुलभत्वात् । प्रकृत्यन्तरतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धान्तरस्य, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धान्तरतो भूयस्काराल्पतरबन्धयोरन्तरस्य यत् किञ्चिदधिकत्वं तद् यथायोगं विभावनीयम् ।

अथ भूयस्काराल्पतरयोरन्तरं प्रदर्श्यते,–मतिज्ञानावरणादिचतुर्दशप्रकृतयः सञ्ज्वलनचतुष्कम्, नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः, भयजुगुप्से, निद्राद्विकं चेत्येकत्रिंशत्प्रकृतीनामुपशमश्रेणिमाश्रित्योत्कृष्टतोऽन्तरमन्तमुहूर्तप्रमाणं ज्ञेयम् । अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरणचतुष्कयोः संयमावस्थायामबन्धभवनात् तयोरुत्कृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटिप्रमाणं वक्तव्यम् । मिथ्यात्वाद्यष्टकस्य पुनर्ज्येष्ठमन्तरं साधिकद्वात्रिंशदधिकशतसागरोपमप्रमाणमस्ति बन्धप्रायोग्यमिथ्यात्वगुणस्थानान्तरस्य तावन्मात्रत्वात् । आहारकद्विकस्य च देशोनार्धपुद्गलपरावर्तमन्तरम् । जिननाम्नोऽन्तमुहूर्तप्रमाणमन्तरमस्ति । यतो जिननामसत्तावन्तो जीवा मिथ्यात्वगुणस्थाने उत्कृष्टतोऽप्यन्तमुहूर्तमेव तिष्ठन्ति, तत्र च जिननाम्नोऽबन्धसत्त्वात्तदन्तरमन्तमुहूर्तप्रमाणमेव यद्वोपशमश्रेणावप्यन्तमुहूर्तादधिकमन्तरं नैवायाति, अबन्धकालस्यान्तमुहूर्तप्रमाणत्वात्, अत्र बृहत्तरमन्तरं तु मिथ्यात्वापेक्षया विज्ञेयं न तूपशमश्रेण्यपेक्षया । मनुष्यद्विको-च्चैर्गोत्रयोर्ज्येष्ठमन्तरमसङ्ख्यातलोकाकाशप्रदेशप्रमाणमस्ति । औदारिकद्विकप्रथमसंहननयोः साधिकपल्योपमत्रयमस्ति । वैक्रियाष्टकस्य मनुष्यायुषश्च तदसङ्ख्यातपुद्गलपरावर्तप्रमाणम् । तथा जातिचतुष्क-स्थावरचतुष्का-ऽऽतपनाम्नां पञ्चाशीत्युत्तरशतसागरोपमप्रमाणं साधिकम्, आद्यवर्जितपञ्चसंहनन-पञ्चसंस्थाना-ऽशुभविहा-

योगति–दुर्भगत्रिक-स्त्रीनपुंसकवेद–नीचैर्गोत्राणां द्वात्रिंशत्शतसागरोपमं साधिकम्, तिर्यगायुषः सागरोपमशतपृथक्त्वं, पुरुषवेदस्य, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां तथा पञ्चेन्द्रियजाति-समचतुरस्र-संस्थान-शुभखगति--पराघातोच्छ्वास-·त्रसचतुष्क–सुभगत्रिकाणामन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमुत्कृष्टमन्तरमवसातव्यम्। आसां सर्वासां भावना तु उत्तरप्रकृतिबन्धस्याऽन्तरद्वारतोऽवसेया।

यस्तस्मादत्र विशेषोऽस्ति स कथ्यते–प्रकृतिबन्धस्यान्तरतोऽत्र भूयस्काराल्पतरप्रदेशबन्धयोरन्तरं यत् साधिकं तच्चेत्थम्–प्रकृतिबन्धस्याऽन्तरं यदा प्रारभ्यते तस्मादेकान्तर्मुहूर्त्तकालात्पूर्वं विवक्षितभूयस्कारबन्धस्य विरुद्धोऽल्पतरबन्धः, अथवा अल्पतरबन्धस्य विरुद्धो भूयस्कारबन्धः कथितव्यः, तथैव प्रकृत्यन्तरपूर्णभवनाऽनन्तरमप्येकान्तर्मुहूर्त्तपर्यंतमित्थमेव विरुद्धबन्धः कथनीयः, एवं भूयस्कारादीनामुत्कृष्टमन्तरं प्राप्तं भवेत्।

तिर्यगायूरहितशेषतिसृणामायुष्कर्मप्रकृतीनां वैक्रियषट्कस्य चावस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमसङ्ख्यपुद्गलपरावर्तप्रमाणं तत्प्रकृतिबन्धान्तरेण साधनीयम् ॥८७॥

अथ नरद्विकादिप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं प्रचिकटयिषुराह—

लोगा असंखिया खलु विण्णेयं णरदुगुच्चगोआणं।
आहारदुगस्स भवे देसूणो अद्धपरिअट्टो ॥८८॥
जलहीणं तेत्तीसा अब्भहिया तित्थणामकम्मस्स।
सेढिअसंखियभागो णेयं सेसाण पयडीणं ॥८९॥

(प्रे०) "लोगा" इत्यादि, नरगति-नरानुपूर्वीरूपं नरद्विकमुच्चैर्गोत्रं चेति तिसृणां प्रकृतीनाम्, अवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमित्यस्य पदत्रयस्य पूर्वगाथातोऽत्र उत्तरत्राऽप्यनुवृत्तिर्ग्राह्या, तच्चान्तरमत्र "असंखिया लोगा" त्ति असङ्ख्याता लोका अर्थादसङ्ख्यलोकानां यावन्त आकाशप्रदेशाः तावत्सङ्ख्यकसमयप्रमाणं "विण्णेयं" ति विज्ञेयम्। "आहारदुगस्स" त्ति आहारकशरीराऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणस्याहारकद्विकस्यावस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं "भवे देसूणो अद्धपरिअट्टो" त्ति देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणं भवेत्।

"तित्थणामकम्मस्स" त्ति तीर्थकरनामकर्मणः प्रकृतान्तरं "जलहीणं तेत्तीसा अब्भहिया" त्ति अभ्यधिकास्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा अस्ति। "सेसाण पयडीणं" ति उक्तशेषप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं "सेढिअसंखियभागो णेयं" ति श्रेणेरसङ्ख्याततमभागो ज्ञेयम्।

इदमत्रावधेयम्–अवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमवस्थितयोगमाश्रित्याऽऽयाति, तच्चावस्थितयोगस्योत्कृष्टमन्तरं श्रेणेरसङ्ख्याततमभागोऽस्ति, तस्मात् सामान्यतया सर्वप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमपि श्रेणेरसङ्ख्याततमभागो भवति, किन्तु यद्यत्प्रकृतीनां प्रकृतिबन्धस्यान्तरमधिकं स्यात्, तत्तत्प्रकृतीनां तदन्तरमत्राप्यधिकमेवाऽऽगच्छेत् । तथा चाऽत्राऽऽहारकद्विकस्य प्रकृतान्तरं देशोनार्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणं कथितं प्रकृतिबन्धान्तरस्य तावन्मात्रत्वात् । ननु जिननाम्नः प्रकृतान्तरकालः कथमल्पः कथित इति चेद्, उच्यते–जिननामसत्ताभाग्जीवानां तावदुक्तकालादधिककालं संसारावस्थितेरभावात् । तथा नरद्विकोच्चैर्गोत्रयोः प्रकृतान्तरमसङ्ख्यलोकप्रमाणं कथितं, प्रकृतिबन्धान्तरस्याऽपि तावन्मात्रत्वादिति ज्ञेयम् ॥८८-८९॥

अधुना ओघतोऽवक्तव्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टान्तरं दिदर्शयिषुरादौ तावदाऽऽहारकद्विकादिप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं निर्वक्ति—

आहारदुगस्स तहा धुवबंधीण सगचत्तपयडीणं ।
देसूणऽद्धपरट्टोऽवत्तव्वस्संतरं जेट्ठं ॥९०॥

(प्रे०) "आहार" इत्यादि, आहारकशरीराऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणस्य आहारकद्विकस्य तथा सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य "जेट्ठं" ति ज्येष्ठमन्तरं "**देसूणाऽद्धपरट्टो**" त्ति देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणमस्ति । कथमेतदवसीयते इति चेदुच्यते–अत्रोक्तसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनीनां तथाऽऽहारकद्विकस्येत्येकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य स्वामिनः श्रेण्यादितः पतन्तो जीवाः सन्ति, श्रेण्यादीनामुत्कृष्टमन्तरं देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणं विद्यते; तस्मात्प्रकृतान्तरमपि देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणं कथितमिति ॥९०॥

अथ सातवेदनीयादिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमाह—

णेयं भिन्नमुहुत्तं बारससायाइगाण पयडीणं ।
बत्तीससागरसयं थीआईणं दुवीसाए ॥९१॥

(प्रे०) "**णेयं**" इत्यादि, "**बारससायाइगाण पयडीणं**" ति साताऽसात-हास्य-शोक-रत्यऽरति-स्थिराऽस्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपद्वादशप्रकृतीनां, किमित्याह–प्रकृतत्वादवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं "**भिन्नमुहुत्तं**" ति अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं ज्ञेयम् । "**थीआईणं**" ति स्त्रीवेदादिद्वाविंशतिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं "**बत्तीससागरसयं**" ति साधिकद्वात्रिंशदधिकशतसागरोपमप्रमाणं विज्ञेयम् ।

इदमत्राऽवगन्तव्यम्–कस्याश्चिदपि प्रकृतेरवक्तव्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं तत्प्रकृतिबन्धस्योत्कृष्टविरहकालेन तथोक्तप्रकृतेर्निरन्तरोत्कृष्टबन्धकालेन तदुभयकालेन वा साधनीयम् ।

उक्तरीत्या चात्रोक्तसातादिद्वादशप्रकृतीनां समुदितयोः प्रकृतिबन्धोत्कृष्टविरहकाल–निरन्तर-प्रकृतिबन्धकालयोस्तावन्मात्रत्वादेव तामामन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं प्रकृतान्तरमवसेयम् । तथा स्त्रीवेदादि-द्वाविंशतिप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं साधिकद्वात्रिंशदधिकशतसागरोपमप्रमाणं यत्कथितम्, तस्मिन् स्त्रीनपुंसकवेदौ, आद्यरहितसंहनन-संस्थानपञ्चके, कुखगतिः, दुर्भगत्रिकञ्चेति षोडशप्रकृतीनां प्रकृतिबन्धान्तरस्य तावन्मात्रत्वादेव प्रकृतान्तरं ज्ञेयं । तथा सुभगत्रिक–सुखगति-समचतुरस्रसंस्थान–पुरुषवेदरूपषट्प्रकृतीनां निरन्तरबन्धकालमाश्रित्य प्रकृतान्तरमागच्छति, तच्चै-वम्–यदा कश्चिद् मिथ्यादृष्टिर्जीवः प्रथमं सुभगत्रिकादिप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धं विधाय सम्यक्त्वं प्राप्य तासां निरुक्तकालं यावन्निरन्तरबन्धं विदधाति पुनरपि मिथ्यात्वमासाद्य तद्बन्धान्ते च तत्प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धं कृत्वा तदबन्धकाले पुनः सुभगादिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धं विद-धाति तदा तासां प्रकृतान्तरं समाप्तिमायातीति ॥९१॥

अथ आयुस्त्रिकादिप्रकृतीनां तदाह—

होइ असंखपरट्टा आउतिगोरालविउवछक्काणं ।
तिरियाउस्स पुहुत्तं जलहिसयाणं मुणेयव्वं ॥९२॥

(प्रे०) "होइ" इत्यादि, देव-मनुष्य-नरकायूरूपमायुस्त्रिकं, औदारिकशरीरम्, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्ग-देवगति-देवानुपूर्वी-नरकगति-नरकानुपूर्वीरूपं वैक्रियषट्कञ्चेति दशप्रकृतीनां किमि-त्याह-प्रक्रमादवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं "**असंखपरट्टा**" त्ति असङ्ख्यपुद्गलपरावर्त्ताः "**होइ**" त्ति भवति । तथा"**तिरियाउस्स**" त्ति तिर्यगायुषोऽवक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं "**जलहिसयाणं पुहुत्तं**" ति जलधिशतानां पृथक्त्वं-सागरोपमशतपृथक्त्वमिति यावत् । "**मुणेयव्वं**" ति ज्ञातव्यमिति ।

अयमर्थः—अत्र तिर्यगायुर्वर्जितशेषाऽऽयुस्त्रिकस्य तथा वैक्रियषट्कस्यावक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमसङ्ख्यपुद्गलपरावर्त्तप्रमाणं यदुक्तं–तत्र तत्प्रकृतिबन्धान्तरस्य तावन्मात्रत्वमेव कार-णम् । तथैव तिर्यगायुषः सागरोपमशतपृथक्त्वं प्रकृतान्तरं तत्प्रकृतिबन्धान्तरस्य तावन्मात्रत्वा-देव। तथौदारिकशरीरस्य तु निरन्तरबन्धापेक्षयाऽसङ्ख्यपुद्गलपरावर्त्तप्रमाणं प्रकृतान्तरमुक्तं; तच्चै-वम्–एकेन्द्रियावस्थायामौदारिकशरीरस्य बन्ध उत्कृष्टतोऽसङ्ख्यपुद्गलपरावर्त्तकालं यावन्निरन्तरं भवितुमर्हति। अतः कश्चिज्जीवः पञ्चेन्द्रियमार्गणायामौदारिकशरीरस्यावक्तव्यप्रदेशबन्धं कृत्वैकेन्द्रि-येषूत्पद्यते; तत्र चोत्कृष्टकायस्थितिं यावत्स्थित्वा पश्चात् पञ्चेन्द्रियत्वं प्राप्यौदारिकशरीरस्याऽबन्धं कृत्वा तस्य पुनर्बन्धमुपरचयति । एवं चौदारिकशरीरस्याऽवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमसङ्ख्ये-यपुद्गलपरावर्त्तप्रमाणमागच्छतीति ॥९२॥

अथ तिर्यग्द्विकादिप्रकृतीनां तदेवाह—

णेयं असंखलोगा तिरियणरदुगुच्चणीअगोआणं ।
सोलससुहुमाईणं हवए पणसीइजलहिसयं ॥९३॥

(प्रे०) "णेयं" इत्यादि, 'तिर्यङ्नरद्विके' द्विकशब्दस्य पूर्वत्राप्यन्वयात् तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकम्, नरगति-नरानुपूर्वीरूपं नरद्विकम् तथा उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रञ्चेति सर्वसङ्ख्यया षट्प्रकृतीनां प्रकृतमवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं "असंखलोगा" त्ति असङ्ख्य-लोकाकाशप्रदेशप्रमाणं "णेयं" त्ति ज्ञेयम् । "सोलससुहुमाईणं" ति सूक्ष्मनामकर्मादिषोड-शप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं "पणसीइजलहिसयं" ति पञ्चाशीत्यधिकशतसा-गरोपमप्रमाणं "हवए" त्ति भवतीत्यर्थः ।

एतदुक्तं भवति–नरद्विकोच्चैर्गोत्रयोः प्रकृतिबन्धान्तरस्य तावन्मात्रत्वादेव प्रकृतान्तरमसङ्ख्य-लोकाकाशप्रदेशप्रमाणं प्रोक्तम् । तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रयोर्निरन्तरबन्धकालापेक्षया प्रकृतान्तरं प्राप्यते । तथैव सूक्ष्मनामादिषोडशप्रकृतिमध्यात्सूक्ष्मत्रिक-विकलत्रिका-ऽऽतपै-केन्द्रिय-स्थावरनामानीति नव-सङ्ख्याकप्रकृतीनां बन्धान्तरापेक्षया तथा पञ्चेन्द्रियजाति-त्रस-पराघातो-च्छ्वास बादरत्रिकाणीति सप्तप्रकृतीनां निरन्तरबन्धकालापेक्षयाऽवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं पञ्चाशीत्यधिकशतसागरोपम-प्रमाणमायातीति ॥९३॥

अथौदारिकाङ्गोपाङ्गादीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं प्रवक्ति––

साहियतेत्तीसुदही उरालुवंगजिणवइररिसहाणं ।
तेवट्ठिसागरसयं होअइ उज्जोअणामस्स ॥९४॥

(प्रे०)"साहिय०" इत्यादि, औदारिकाङ्गोपाङ्गम्, जिननामकर्म, वज्रर्षभनाराचसंहनन-ञ्चेति तिसृणां प्रकृतीनां प्रस्तुतमवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं "साहियतेत्तीसुदही" त्ति साधिकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं "होअइ" त्ति भवतीति परेणान्वयः । "उज्जोअणा-मस्स" त्ति उद्योतनामकर्मणस्तदेवावक्तव्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं "तेवट्ठिसागरसयं" ति त्रिषष्ट्यधिकशतसागरोपमप्रमाणं भवतीति ।

इदमेव भाव्यते— औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य वज्रर्षभनाराचसंहननस्य च पूर्वकोटयभ्य-धिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं प्रकृतान्तरं निरन्तरबन्धकालाबन्धकालोभयसमुदितकालापेक्षया वेदितव्यम् । जिननाम्नश्च साधिकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं प्रकृतान्तरं निरन्तरबन्धकाला-पेक्षया भवति । तच्चैवम्-कश्चित्पूर्वकोटिवर्षायुष्को जीवः प्रथमभवे शीघ्रातिशीघ्रं जिननामकर्म बध्नाति, तत्र तस्यावक्तव्यबन्ध आयाति ततो निरन्तरं बध्नन् पश्चादनुत्तरविमाने गत्वा

तत्र जिननाम्नो निरन्तरबन्धं कुरुते, ततश्च्युत्वा मनुष्यगतावुत्पद्य तत्राऽपि सततं बन्धं कुर्वन् यथाशक्यं चरमे भागे उपशमश्रेणावबन्धं कृत्वा जिननाम्नः श्रेणेरवरोहन्नपूर्वकरणगुणस्थानकस्य षष्ठभागे पुनरवक्तव्यबन्धं करोति तदा प्रकृतान्तरमायाति । तथोद्योतनामकर्मणस्त्रिषष्ट्यधिकशत-सागरोपमप्रमाणं प्रकृतान्तरं, तत्प्रकृतिबन्धान्तरस्य तावन्मात्रत्वादेवाऽऽयातीति॥९४॥

एवमोघतः सर्वप्रकृतिसत्कभूयस्कारादिचतुर्विधबन्धानां जघन्यमुत्कृष्टञ्चाऽन्तरमभिधाय सम्प्रत्यादेशतो मार्गणास्थानेषु तत्प्रतिपिपादयिषुरादौ तावत्सर्वासु मार्गणासु आयुष्कर्मप्रकृतीनां भूयस्कारादिप्रदेशबन्धानां जघन्यमन्तरं प्रतिपादयति—

आहारमीसजोगे सुराउगस्स दुपयाण णेव भवे ।
सेसासु चउपयाणं आऊणोघव्व होइ लहुं ॥९५॥

(प्रे०) "आहारमीस०" इत्यादि, आहारकमिश्रकाययोगे "सुराउगस्स" त्ति सुरायुषः "दुपयाण" त्ति द्वयोः पदयोः सम्भाव्यमानयोर्भूयस्कारावक्तव्यप्रदेशबन्धयोरिति यावत्; तयोः प्रक्रमादन्तरमत्र "णेव भवे" त्ति नैव भवति । "सेसासु" त्ति आहारकमिश्रकाय-योगवर्जितशेषासु यासु मार्गणास्वायुषो बन्धः सम्भवति तासु मार्गणासु "आऊण" त्ति आयुष्क-र्मप्रकृतीनां "चउपयाणं" ति चतुर्णां पदानां तत्तन्मार्गणासम्भाव्यमानभूयस्काराद्यन्यतम-पदानां "लहुं" ति लघ्वन्तरं "ओघव्व होइ" त्ति ओघवद्भवति ।

भावार्थः पुनरयम्—आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां सुरायुर्वर्जितशेषाऽऽयुष्कर्मणां तु बन्धो न भवति । सुरायुषोऽपि भूयस्कारोऽवक्तव्यश्चेति द्विविध एव प्रदेशबन्धः सम्भवति, तयोश्च भूयस्काराऽवक्तव्यबन्धयोरत्रान्तरं नाऽऽगच्छति, यत एतन्मार्गणायां द्विरायुर्बन्धो न जायते, आयुर्बन्धान्तरकालापेक्षया मार्गणाकालस्याऽत्राल्पत्वादिति । तथाऽऽहारकमिश्रकाययोग-वर्जितशेषमार्गणासु बध्यमानाऽऽयुष्कर्मप्रकृतीनां सम्भाव्यमानभूयस्कारादिपदानां जघन्यमन्तर-मोघवत्कथितम्, तत्र भूयस्काराल्पतराऽवस्थितप्रदेशबन्धानां प्रत्येकं जघन्यमन्तरमोघवदेकसमय-प्रमाणं विज्ञेयम् । तच्चेत्थं-विवक्षितमार्गणायां कश्चिज्जीवो विवक्षितसमये विवक्षिताऽऽयुष्कर्मप्रकृते-र्भूयस्कारबन्धं कुरुते, तदनन्तरं द्वितीयसमये तस्याऽल्पतरबन्धं विदधाति, तृतीयसमये च पुनस्तस्य भूयस्कारबन्धमुपरचयति । इत्येवमेकसमयप्रमाणं जघन्यान्तरं विपक्षबन्धजघन्यकालेन भूयस्कारबन्धस्य प्राप्यते । तथैवाऽल्पतरबन्धस्य तथाऽवस्थितबन्धस्याऽपि जघन्यान्तरमेकसमय-प्रमाणं प्राप्यते । तद्घटनाऽपि पूर्वोक्तरीत्या कर्त्तव्या । तथा तदवक्तव्यबन्धस्य प्रकृताऽन्तरमोघव-दन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं विद्यते, यत आयुर्बन्धः प्रारम्भानन्तरमेकान्तर्मुहूर्त्तकालपर्यंतं निरन्तरमेव भवति, तदन्तरं चैकान्तर्मुहूर्त्तपर्यंतं तस्य नियमेनाऽबन्धो जायते, तत्पश्चादायुषो द्वितीयाकर्षरूपः पुनर्बन्धो

भवितुमर्हति, तस्मात् शेषमार्गणास्वायुषोऽवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमभिहितमित्यर्थः ॥९५॥

अथ तत्रैवाऽपवादं दर्शयति—

णवरि जहि होइ जेट्ठं अगुरुपएसस्स दुसमया जेसिं ।
तहि सिमवत्तव्वस्स ण दुपयाण गुरुं मुहुत्तंतो ॥९६॥

(प्रे०) "**णवरि**" इत्यादि, पूर्वोक्तगाथायां शेषमार्गणास्वायुषां भूयस्कारादिपदानां यज्जघन्यमन्तरमोघवत्प्रतिपादितं तासु '**णवरि**'इत्यादिनाऽपवादं प्रदर्शयति–'**णवरि**' किन्तु'**जहि**' त्ति,यासु मार्गणासु '**जेसिं**'ति येषामायुषां '**अगुरुपएसस्स**' त्ति, अगुरुप्रदेशबन्धस्य '**जेट्ठं**'ति ज्येष्ठमन्तरं '**दुसमया होइ**'त्ति द्वौ समयौ भवति । '**तहि**'त्ति तासु मार्गणासु'**सिमवत्तव्वस्स**' त्ति तेषामायुषामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य, प्रकृतमन्तरं '**ण**' त्ति न भवति । एवमपवादं प्रदर्श्याऽथ तत्रैव भूयस्कारादीनां ज्येष्ठमन्तरं वक्ति, अत्रापि "**जहि होइ जेट्ठं अगुरुपएसस्स दुसमया जेसिं तहि सिम्**'इति पदानि सम्बन्धनीयानि,ततश्चायमर्थः—यासु मार्गणासु यद्यदायुषामगुरुप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं द्विसमयप्रमाणं जायते; तासु तासु मार्गणासु तत्तदायुषां; किम् ? इत्याह—'**दुपयाणं**'ति द्वयोः पदयोः-भूयस्काराऽल्पतरप्रदेशबन्धयोरिति यावत् , तयोश्च "**गुरु**" उत्कृष्टमन्तरं '**मुहुत्तंतो**' त्ति मुहुर्त्तान्तः-अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं विद्यते इत्यर्थः ।

इदमेव भाव्यते—अत्र येषु मार्गणास्थानेषु यद्यदायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं द्विसमयप्रमाणं विद्यते तेषु तद्दर्श्यते, तद्यथा-पञ्चमनोयोगमार्गणाभेदेषु पञ्चवचनयोगमार्गणाभेदेषु च चतुर्णामप्यायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं द्विसमयप्रमाणं प्राप्यते । तथैव वैक्रियकाययोगमार्गणायां तिर्यङ्मनुष्यायुषोः, आहारककाययोगमार्गणायां देवायुषः, काययोगसामान्ये औदारिककाययोगे च देवनारकायुषोः, एवं क्रोधादिचतुष्कषायमार्गणासु चतुर्णामायुषां, तिसृष्वशुभलेश्यामार्गणासु देवनरकायुषोः; शुभलेश्यात्रिके च देवायुषस्तथा सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां नरकायुर्वर्जिताऽऽयुस्त्रिकस्याऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं द्विसमयप्रमाणमस्ति । एतासूक्तपञ्चविंशतिमार्गणासु दर्शितायुःप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं न प्राप्यते, आयुषः सकृदेव बन्धसद्भावादिति । तथैवैतासूक्तपञ्चविंशतिमार्गणासु दर्शिताऽऽयुष्कर्मप्रकृतीनां भूयस्काराऽल्पतरप्रदेशबन्धयोरुत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवधेयमिति ॥९६॥

अथ तत्रैव शेषाऽऽयुषामुक्तशेषमार्गणासु च स्वप्रायोग्याऽऽयुषां भूयस्काराल्पतरावक्तव्यपदानां ज्येष्ठमन्तरमाचष्टे—

सेसाऊणं णेयं अगुरुपएसव्व अंतरं जेट्ठं ।
तिपयाणं सेसासुं सप्पाउग्गाण आऊणं ॥९७॥

(प्रे०) "सेसाऊणं" इत्यादि, शेषाऽऽयुषाम् , अर्थादनन्तरगाथावृत्त्युक्तपञ्चविंशतिमार्गणाभ्योऽष्टस्वेव मार्गणासु शेषाऽऽयुषामन्तरस्य भावात् तत्रोक्तव्यतिरिक्तयोर्वध्यमानाऽऽयुःप्रकृत्योः "तिपयाणं" ति त्रिपदानां भूयस्काराऽल्पतरा-ऽवक्तव्यप्रदेशबन्धानामित्यर्थः, तेषां किमित्याह– "अगुरुपएसव्व अंतरं जेट्ठं" ति स्वस्वाऽगुरुप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठान्तरतुल्यमेव भूयस्कारादित्रिपदानां ज्येष्ठान्तरं ज्ञेयमित्यर्थः । "सेसासुं" ति उक्तशेषमार्गणासु "सप्पाउग्गाण आऊणं" ति तत्तन्मार्गणायां बन्धप्रायोग्याणामायुषाम्, अत्र पुनर्देहलीदीपकन्यायेन "अगुरुपएसव्व अंतरं जेट्ठं तिपयाणं" इत्येतानि पदानि सम्बध्यन्ते । अतस्तेषामायुषां त्रिपदानां भूयस्कारा-ऽल्पतरा-ऽवक्तव्यप्रदेशबन्धानां ज्येष्ठमन्तरं स्वस्वा-ऽगुरुप्रदेशबन्धान्तरवज्ज्ञेयमिति गाथार्थः ।

अथ–पूर्वगाथोक्तपञ्चविंशतिमार्गणासु बन्धप्रायोग्योक्तशेषाऽऽयुषां तथा शेषमार्गणासु बन्धप्रायोग्यसर्वाऽऽयुषामवस्थितबन्धवर्जितशेषत्रिविधभूयस्कारादिबन्धानां ज्येष्ठमन्तरमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धवत्कथमिति चेद् , उच्यते,–यदा यदा-ऽऽयुषो बन्धो जायते तदा तदाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धो जायते, तथा प्रथमसमये तस्याऽवक्तव्यबन्धो भवति, तथैव तद्बन्धाऽद्धामध्ये भूयस्काराऽल्पतरबन्धावपि नियमतो जायेते । तस्माच्चाऽत्र तस्य प्रकृतान्तरं तावत्प्रमाणमायाति,अर्थादनुत्कृष्टप्रदेशबन्धतुल्यं तद् भवतीति । अथवा प्रकृतिबन्धाऽन्तरतुल्यं प्रकृतान्तरं भवतीति कथनमपि समानमेव । किन्तु योऽत्र विशेषः स कथ्यते–अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धापेक्षयाऽत्रैकाऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमन्तरमधिकमायाति । तद्यथा–अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्याऽन्तरकाले प्रथमसमयवर्जितबन्धाऽद्धाकालोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धान्तरतोऽधिको लभ्यते । तथा भूयस्काराऽल्पतरबन्धयोस्त्वन्योन्यस्वविरुद्धबन्धस्य करणादनुत्कृष्टप्रदेशबन्धतोऽधिकमन्तरमागच्छतीति ॥ ९७ ॥

उक्तं मार्गणासु बन्धार्हाणामायुषां भूयस्काराल्पतरावक्तव्यबन्धानामन्तरम् । अवशिष्टावस्थितबन्धस्यान्तरं मार्गणासु कथनीयम् । तत्रादौ तावत् सर्वनरकभेदेषु सर्वदेवभेदेषु च स्वयोग्यतिर्यङ्मनुष्यायुषोरवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं प्रकटयति—

सव्वणिरयदेवेसुं सप्पाउग्गाण तिरिणराऊणं ।
देसूणा छम्मासा अवट्ठिअस्स हवए जेट्ठं ॥९८॥

(प्रे०) 'सव्व०' इत्यादि, सर्वनरकमार्गणासु तथा सर्वदेवमार्गणाभेदेषु 'सप्पाउग्गाण तिरिणराऊणं' ति स्वप्रायोग्यतिर्यङ्नरायुषोरर्थादुक्ततत्तन्मार्गणायां तिर्यङ्नरायुर्भ्यां यद्यदायु-

बन्धः सम्भवति तस्य **'अवट्ठिअस्स'** त्ति अवस्थितप्रदेशबन्धस्य **'जेट्ठ'** ति प्रक्रमाज्ज्येष्ठमन्तरं **'देसूणा छम्मासा हवए'** त्ति देशोना षण्मासा भवतीति गाथार्थः ।

अथाह--अत्र प्रकृतान्तरं देशोनषण्मासप्रमाणं कथमायाति ? इति, अत्र दर्श्यते—देवनारकाणां यदा स्वाऽऽयुषः षण्मासा अवशिष्टाः सन्ति तदा त आयुषो बन्धमुपरचयन्ति । तदा चाऽऽयुर्बन्धप्रथमसमये तेषामा-ऽऽयुषो-ऽवक्तव्यप्रदेशबन्धो जायते द्वितीयसमये च ये तदवस्थितबन्धं कृत्वा तृतीयसमयादारभ्य बन्धकालाऽन्तिमसमयं यावत्तद्भूयस्कारबन्धमल्पतरबन्धं वा कुर्वन्ति त एवाऽत्र ग्राह्याः, यतोऽत्रा-ऽऽयुषोऽवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं प्रस्तुतम् । पश्चाच्च किं भवति ? उच्यते,-पश्चात्तेषां देवनारकाणां यदा स्वाऽऽयुषो जघन्यबन्धकालाबाधाकालात्मकश्चैकाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः कालोऽवशिष्यते, तदा ते स्वयोग्याऽऽयुषः पुनर्द्वितीयवारं बन्धं विदधति, तदा च प्रथमसमये तदाऽऽयुषोऽवक्तव्यबन्धो द्वितीयादिसमयाद् बन्धकालस्योपान्त्यसमयं यावद् भूयस्कारादिबन्धः, तथा बन्धकालाऽन्तिमसमयेऽवस्थितप्रदेशबन्धं ये कुर्वन्ति तदपेक्षया एवाऽत्राऽऽयुषोऽवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमागच्छति । एवं च दर्शितरीत्याऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणः शेषजीवितकालोऽवस्थितबन्धकालस्य द्वौ समयौ तथा एकसमयोऽवक्तव्यबन्धस्येति त्रिसमयाऽधिकैकाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः कालः षण्मासेभ्यो हीयते । तस्माच्चाऽत्राऽऽयुषोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं देशोनषण्मासप्रमाणमर्थात् त्रिसमयाधिकान्तर्मुहूर्तकालेन न्यूनं षण्मासप्रमाणमायातीति फलितोऽर्थः । अग्रेऽपि यथासम्भवमुक्तपद्धत्या तच्चिन्तनीयमिति ॥९८॥

अथ तिर्यग्गतिसामान्यमार्गणायामायुषामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं वक्ति—

तिरियम्मि असण्णिम्मि य णेयं तिरियाउगस्स ओघव्व ।
सेसाऊण तिभागो देसूणो पुव्वकोडीए ॥९९॥

(प्रे०) **'तिरियम्मि'** इत्यादि, तिर्यग्गतिसामान्ये तथाऽसंज्ञिमार्गणायां **'तिरियाउगस्स'** त्ति तिर्यगायुषोऽत्र पूर्वगाथातो **"अवट्ठिअस्स जेट्ठं"** इत्यनुवर्तनीयम् । तस्माच्च प्रक्रमादवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति गम्यते, तत्पुनः कियद् भवति ? इत्याह-**"ओघव्व णेयं"** ति ओघवच्छ्रेणेरसङ्ख्येयभागप्रमाणं ज्ञेयम् । तथा तत्रैव **"सेसाऊण"** त्ति शेषदेव-मनुष्य-नरकायुषामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमित्यनुवर्तनीयम्, तच्चाऽन्तरमत्र **"पुव्वकोडीए देसूणो तिभागो"** त्ति पूर्वकोटेर्देशोनत्रिभागप्रमाणं विज्ञेयम् ।

अयमर्थः—तिर्यगोघमार्गणायामेकेन्द्रियजीवोऽपि सम्भवति । तत्र च तिर्यगायुषोऽवस्थितबन्धसद्भावादोघवत्तिर्यगायुषोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं श्रेणेरसङ्ख्यातभाग आगच्छति, शेषाणां त्रयाणामायुषां तु प्रकृतान्तरं पूर्वकोटीत्रिभागप्रमाणमायाति । एकभवसत्कायुर्बन्धा-

कर्षद्वयान्तरालस्यैव प्रकृतान्तरप्रयोजकतया प्राप्यमाणत्वादाकर्षद्वयान्तरालस्योत्कृष्टतोऽपि ताव-न्मितत्वाच्च । तदित्थं विभावनीयम्-पूर्वकोटिवर्षायुष्काणां जीवानां स्वायुष्कस्य तृतीयभागे शेषे आसां तिसृणामायुःप्रकृतीनां बन्धस्य द्वितीयसमयेऽवस्थितबन्धस्तथा. चरमान्तर्मुहूर्तकाले शेषे द्वितीयाकर्षस्य चरमसमयेऽवस्थितबन्धो यदा भवति तदोत्कृष्टान्तरं समायाति । तदनन्तरं चाऽवश्यं मार्गणान्तरं भवति । इत्थमुक्तमार्गणयोः प्रकृतान्तरं पूर्वकोटीदेशोनतृतीयभागप्रमाण-मायातमिति ।।९९।।

अधुना पञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्रिके मनुष्यत्रिके च वध्यमानाऽऽयुषां प्रकृतान्तरमाह--

पूव्वा कोडिपुहुत्तं साउस्स पणिंदितिरिणरतिगेसु ।
सेसाऊण तिभागो देसूणो पुव्वकोडीए ॥१००॥

(प्रे०) "**पूव्वा**" इत्यादि, "**पणिंदितिरिणरतिगेसु**" ति प्राकृतत्वाद् बहुवचनान्त-प्रयोगः, पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्नरत्रिकयोरर्थात् पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमार्ग-णा-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणाऽऽत्मकपञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्रिके तथा मनुष्यगत्योघ-मनुष्ययोनिमती-पर्याप्तमनुष्यमार्गणास्वरूपे मनुष्यत्रिके "**साउस्स**" त्ति स्वायुषोऽवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमिति प्रकरणाद् गम्यते । तच्चाऽत्र "**पूव्वा कोडिपुहुत्तं**" ति पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाणं भवति, "**सेसा-ऊण**" त्ति त्रयाणां शेषायुषां त्वत्र प्रकृतान्तरं पूर्वकोटेर्देशोनत्रिभागप्रमाणं भवतीति गाथार्थः ।

इदमुक्तं भवति-- यद्यपि तिर्यङ्मनुष्याणां स्वोत्कृष्टकायस्थितिः पूर्वकोटिपृथक्त्वाऽधिक-त्रिपल्योपमप्रमाणा विद्यते । किन्तु तत्कायस्थितिं पूरयितुं तस्य युगलिकभवाऽवाप्तिरावश्यिकी । तत्र चरमयुगलिकभवे तु स्वायुषो बन्ध एव न सम्भवति । अत एव चरमभवन्यूनस्वकायस्थिति-प्रमाणमत्र प्रकृतान्तरमायातम्, अर्थादत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्यत्रिकयोः स्वायुषोऽवस्थितप्रदेश-बन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं त्रिपल्योपमन्यूनदेशोनस्वकायस्थितिप्रमाणमर्थात् पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाणं समायातम् ।

तथोक्तमार्गणासु शेषत्रयाणामायुषां यः कश्चिज्जीवो बन्धमुपरचयति स तु ततः कालं कृत्वाऽवश्यं मार्गणान्तरं प्राप्नोति, तस्मादेकभवमध्य एवोक्ताऽऽयुषामाकर्षद्वयस्योत्कृष्टान्तरं यावद् भवेत् , पूर्वदर्शितनीत्याऽन्तर्मुहूर्तेनाधिकं तावदेव प्रकृतान्तरं भवति । तच्चान्तरमत्र पूर्वकोटेर्देशोन-त्रिभागप्रमाणमस्तीति विज्ञेयम् ।।१००।।

अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्यभेदयोस्तथा सर्वैकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय-पञ्चकायभेदेष्वायुः-प्रकृतीनां प्रकृतान्तरं गाथात्रिकेण प्रतिपादयन्नाह--

असमत्तपणिंदितिरियमणुस्सएगिंदिसव्वभेएसुं ।
सव्वविगलिंदियेसुं सव्वेसुं पंचकायेसुं ॥१०१॥

साउस्स होइ जेट्ठा सगसगकायट्ठिई उ देसूणा ।
इयराउस्स तिभागो सगुरुभवठिईअ देसूणो ॥१०२॥
णवरेगिंदियपुहवीदगतेउअणिलणिगोअकायेसु ।
सिं सुहमेसु तह वणे तिरियाउस्स खलु ओघव्व ॥१०३॥

(प्रे०) "असमत्त०" इत्यादि, "**असमत्तपणिंदितिरियमणुस्सएगिंदिसव्वभेएसु**" ति अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणा, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा तथा एकेन्द्रियस्य सर्वे भेदाः ते च सप्त-तेषु, तथा "**सव्वविगलिंदियेसु**" ति सर्वविकलेन्द्रियेषु-विकलेन्द्रियसत्कनवभेदेषु तथा "**सव्वेसु पंचकायेसु**" ति सर्वेषु पञ्चकायेष्वर्थात् सप्तपृथ्वीकायभेदाः, सप्ताऽप्कायभेदाः, सप्ततेजस्कायभेदाः, सप्तवायुकायभेदाः, तथा एकादशवनस्पतिकायभेदाः—तेषु, किमित्याह-"**साउस्स**"इत्यादि, उक्तमार्गणाभेदेषु स्वायुषः-स्ववेद्यमानायुस्तुल्यायुःप्रकृतेरवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं "**जेट्ठा सगसगकायट्ठिई उ देसूणा**"त्ति स्वस्वदेशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं भवति । तथोक्तमार्गणासु "**इयराउस्स**" त्ति स्ववेद्यमानेतरायुषः स्वगुरुभवस्थितेर्देशोनत्रिभागप्रमाणं भवति । तेजस्कायवायुकायमार्गणासत्कसर्वभेदेषु केवलं तिर्यगायुष एव बध्यमानत्वात् तद्वर्जास्वेवेतरायुषः प्रकृतान्तरं ज्ञेयमिति ।

अत्र पुनस्तृतीयगाथया "**नवरं**" इत्यादिनाऽपवादं दर्शयति, नवरं तत्राऽपि "**एगिंदियपुहवीदगतेउअणिलणिगोअकायेसु**" ति एकेन्द्रियौघ-पृथ्वीकायौघ-अप्कायौघ-तेजस्कायौघ-वायुकायौघ-साधारणवनस्पतिकायौघमार्गणासु तथा "**सिं सुहमेसु**" त्ति तासां सूक्ष्मभेदेष्वर्थात् सूक्ष्मैकेन्द्रियौघ-सूक्ष्मपृथ्वीकायौघ-सूक्ष्माऽप्कायौघ--सूक्ष्मतेजस्कायौघ-सूक्ष्मवायुकायौघ--सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिकायौघमार्गणासु "**तह वणे**" त्ति तथा वनस्पतिकायौघमार्गणायां चेति समुदितेषु त्रयोदशमार्गणाभेदेषु "**तिरियाउस्स**" त्ति तिर्यगायुषः प्रस्तुताऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं "**ओघव्व**" त्ति ओघवत्-ओघवक्तव्यतातुल्यं बोद्धव्यम् ।

अयम्भावः—अत्र प्रथमगाथोक्तमार्गणामध्याद् यद्यद्मार्गणानां स्वकायस्थितिः श्रेणेरसङ्ख्याततभागतो हीना विद्यते तास्वेवमार्गणासु दर्शिताऽऽयुषः प्रकृतान्तरं देशोनस्वकायस्थितितुल्यं भवति । अत एव उक्तमार्गणामध्यात् यासां मार्गणानां स्वकायस्थितिः श्रेणेरसङ्ख्यातभागादधिकप्रमाणा विद्यते, तासां नामान्यत्रोक्ततृतीयाऽपवादगाथया दर्शयित्वा तासु तिर्यगायुषः प्रकृतान्तरमोघवद्भवतीति प्रोक्तमिति ॥१०१-१०२-१०३॥

अथ पञ्चमनोयोगादिमार्गणासु तदाह—

सव्वाण मुहुत्तंतो पणमणवयउरलमीसजोगेसुं ।
वेउव्वाहारेसुं कसायचउगम्मि सासाणे ॥१०४॥

(प्रे०) "सव्वाण" इत्यादि "पणमणवयउरलमीसजोगेसुं" ति पञ्चमनोयोगमार्गणाः, पञ्चवचनयोगमार्गणाः,औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणा च तासु, तथा "वेउव्वाहारेसु" ति वैक्रियकाययोगा-ऽऽहारककाययोगमार्गणयोः "कसायचउगम्मि" त्ति क्रोधादिचतुष्कषायमार्गणासु तथा "सासाणे" त्ति सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायामिति सर्वसङ्ख्यया-ऽष्टादशमार्गणाभेदेषु "सव्वाण" त्ति उक्तमार्गणासम्भाव्यमानसर्वाऽऽयुषामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति प्रक्रमाल्लभ्यते । तदत्र कियद् भवतीत्याह—"मुहुत्तंतो" त्ति अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं भवति । कथमेतदवसीयते इति चेत्, कथ्यते, अत्रोक्तमार्गणानां कायस्थितिरन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणा विद्यते, तत्र चैकस्मिन्नायुर्बन्धाकर्ष एव प्रस्तुतान्तरं प्राप्यते, तद्यथा–कश्चिज्जीवो यदाऽऽयुषो बन्धं प्रारभते, स च बन्धाऽद्धायाः द्वितीयसमये तथा चरमसमयेऽवस्थितप्रदेशबन्धं करोति तदा तस्याऽवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं प्राप्यत इति ॥१०४॥

अथ काययोगसामान्यमार्गणायां तदाह—

तिरियाउगस्स काये ओघव्व णराउगस्स देसूणा ।
गुरुकायठिई दोण्हं सेसाऊणं मुहुत्तंतो ॥१०५॥

(प्रे०) "तिरिया०" इत्यादि, "काये" त्ति काययोगसामान्यमार्गणायां "तिरियाउगस्स" त्ति तिर्यगायुषः प्रकृतत्वादवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं "ओघव्व" त्ति ओघवद् भवति । तथा तत्रैव "णराउगस्स" त्ति नरायुषः "देसूणा गुरुकायठिई" त्ति देशोना गुरुकायस्थितिः प्रकृतान्तरं ज्ञेयम् । तथा तत्रैव "दोण्हं सेसाऊणं" ति द्वयोः शेषायुषोरर्थाद् देवनरकायुषोः प्रकृतान्तरं "मुहुत्तंतो" त्ति अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं विज्ञेयम् ।

घटना त्वियम्–अत्र काययोगमार्गणायां तिर्यगायुषः प्रकृतान्तरमोघवद् श्रेणेरसङ्ख्यातभागप्रमाणमायाति । तच्चैकेन्द्रियाऽपेक्षया विज्ञेयम् । तथाऽत्र नरायुषस्तु काययोगे स्थितः कश्चिदेकेन्द्रियादिजीवोऽपर्याप्तमनुष्यप्रायोग्याऽऽयुर्बध्नन्नवस्थितप्रदेशबन्धं विदधाति, तत्पश्चादपर्याप्तमनुष्यत्वेनोत्पद्यते, तत्राऽपि काययोगमार्गणा तु तदवस्था एव, ततश्च सोऽपर्याप्तमनुष्यः पुनरेकेन्द्रियेषूत्पद्य तत्रोत्कृष्टकायस्थितिकालं यावत्तिष्ठति । तदन्ते च तत्र पुनर्मनुष्यायुर्बन्धकाले पुनस्तदवस्थितबन्धं विदधाति । इत्थं च तत्र मनुष्यायुषोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमसङ्ख्यातपुद्गलपरावर्ता अर्थाद् देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणमागच्छति । नरकसुरायुषोर्बन्धन्तु पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक् पर्याप्तमनुष्यो वा करोति, तस्य च काययोगस्याऽन्तर्मुहूर्तादधिकानवस्थानाद् मनोयोगादिमार्गणावदवस्थितबन्धस्याऽन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं यथोक्तं सूपपद्यत इति ॥१०५॥

अथौदारिककाययोगमार्गणायां तद्दर्शयति—

ओरालिये तिभागो देसूणो जेट्ठभूभवठिईए ।
तिरियणराऊण भवे सेसाऊणं मुहुत्तंतो ॥१०६॥

(प्रे०) "**ओरालिये**" इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां '**तिरियणराऊण**' त्ति तिर्यङ्नरायुषोः प्रस्तुतत्वादवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरम्, कियद्भवति ? इत्याह "**तिभागो देसूणो जेट्ठभूभवठिईए**" त्ति पृथ्वीकायस्य ज्येष्ठभवस्थितेर्देशोनत्रिभागप्रमाणं भवति । तथा "**सेसाऊणं**" ति उक्तशेषाऽऽयुषोर्देवनरकायुषोरित्यर्थः, तयोरवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं "**मुहुत्तंतो**" त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति ।

घटना त्वित्थम्—अत्रौदारिककाययोगमार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितिः पृथ्वीकायस्याऽस्ति । अतोऽत्र तिर्यङ्नराऽऽयुषोः प्रकृतान्तरानयनार्थमेकभवमाश्रित्यैव तयोराकर्षद्वयमध्यकालो ग्रहीतव्यः । तच्चाऽन्तरकालोऽत्र पृथ्वीकायभवस्थितेर्देशोनतृतीयभागप्रमाण आगच्छति ।

अथाऽत्र देव-नरकायुषोः प्रकृतान्तरमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं कथमायाति ? अत्रोच्यते—देव-नरकायुषोर्बन्धं तु पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्या एव कुर्वन्ति । तेषां चौदारिककाययोगस्योत्कृष्टकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एवाऽस्ति, तस्मात्तस्यामेव मार्गणायामाऽऽयुर्बन्धो द्विर्भवितुं नाऽर्हति । अत एकाऽऽकर्षमध्ये तदन्तरमानेतव्यमर्थादाकर्षस्य द्वितीयसमये तथाऽन्तिमसमये देवनरकायुषोरवस्थितबन्धो भवितुमर्हति, अतो द्वितीयाऽन्तिमसमयमध्यवर्तिकालप्रमाणमत्राऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं प्राप्यत इति बोध्यम् ॥१०६॥

अथ स्त्री-पुरुषवेदमार्गणयोस्तदाचष्टे—

थीपुरिसेसु तिभागो देसूणो होइ पुव्वकोडीए ।
णिरियाउस्सियराणं देसूणा सगुरुकायठिई ॥१०७॥

(प्रे०) "**थीपुरिसेसु**" इत्यादि, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणयोः "**णिरियाउस्स**" त्ति नरकायुषः प्रकृतावस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं "**तिभागो देसूणो होइ पुव्वकोडीए**" त्ति पूर्वकोटेर्देशोनत्रिभागप्रमाणं भवति । "**इयराणं**" ति नरकायुर्वर्जितस्य आयुस्त्रयस्याऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति गम्यते । तच्चाऽत्र '**देसूणा सगुरुकायठिई**" त्ति देशोनस्वगुरुकायस्थितिप्रमाणं भवतीति गाथार्थः ।

एतदुक्तं भवति—स्त्री-पुरुषवेदमार्गणयोः कश्चिज्जीवो नरकायुषो बन्धं कृत्वा पश्चान्नरकगतावुत्पद्यते; तत्र च मार्गणाया विच्छेदात् प्रकृतान्तरतयैकभवसत्काकर्षद्वयमध्यगतकाल एव प्राप्यते । स चान्तरकालोऽत्र पूर्वकोटेर्देशोनत्रिभागो भवति । शेषत्रयाणामायुषामत्र प्रकृतान्तरं

स्वगुरुकायस्थितिप्रमाणं विद्यते । तत्तु यथासंभवं स्वकायस्थितिप्रारम्भकाले तथाऽन्तकाले उक्ता-ऽऽयुषामवस्थितबन्धस्य भवनात्प्राप्यत इति ज्ञेयम् ॥१०७॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायां तत्प्रतिपादयन्नाह—

तिरियाउस्स णपुंसे ओघव्व सुराउगस्स तिरियव्व ।
दोण्हं सेसाऊणं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥१०८॥

(प्रे०) "तिरि०" इत्यादि, "णपुंसे" त्ति नपुंसकवेदमार्गणायां "तिरियाउस्स" त्ति तिर्यगायुषः, तस्य किम्? इति । प्रक्रमादवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरम् "ओघव्व" त्ति ओघवद् भवति । तथा 'सुराउगस्स' त्ति सुरायुषः प्रकृतान्तरमत्र 'तिरियव्व' त्ति तिर्यगोघ-मार्गणावद् विज्ञेयम् । 'दोण्हं सेसाऊणं' ति द्वयोः शेषाऽऽयुषोर्मनुष्य-नरकायुषोरित्यर्थः, तयोः प्रकृतान्तरं 'देसूणा जेट्ठकायठिई' त्ति देशोना ज्येष्ठकायस्थितिरस्ति ।

अयमर्थः—नपुंसकवेदमार्गणायां तिर्यगायुषोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमोघवत्—श्रेणे-रसङ्ख्यातभागप्रमाणं भवति; तद्घटना तु ओघवदवसेया । सुरायुषस्त्वऽत्र प्रकृतान्तरं तिर्य-गोघमार्गणातुल्यमर्थात् पूर्वकोटेर्देशोनतृतीयभागप्रमाणं प्राप्यते । तद्घटना चेत्थम्- नपुंसक-वेदमार्गणास्थितः कश्चिज्जीवस्तत्र सुरायुषो बन्धं कृत्वा पश्चाद् देवभव उत्पद्यते, तत्र च पुं-स्त्री-वेदयोरन्यतरवेदोदयस्य सम्भवात्प्रकृतनपुंसकवेदमार्गणा नैव तिष्ठति, तस्मादेकभवस्यैव द्व्याकर्ष-मध्यकालः प्रकृतान्तरत्वेन प्राप्यते, स चाकर्षद्वयमध्यकालोऽत्र पूर्वकोटेर्देशोनतृतीयभागप्रमाणो-ऽस्ति तथा द्वयोर्मनुष्यनरकायुषोः प्रकृतान्तरमत्र मार्गणाया उत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणमसङ्ख्यातपुद्गल-परावर्त्तप्रमाणं विद्यते, तच्च यदा कश्चिन्मार्गणास्थो जीवो नरकायुर्बद्ध्वा ततश्च्युत्वा नारको भवति, पश्चात्ततः कालं कृत्वा नपुंसकवेदिपञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्वेन तत एकेन्द्रियत्वेनोत्पद्य तत्रोत्कृष्टकाय-स्थितिं यावत्स्थित्वा पश्चान्नपुंसकवेदिपञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्वेनोत्पद्यते तत्र च नरकायुषो बन्धमुपरचयति तदा नरकायुषोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य प्रकृष्टान्तरं प्राप्यत इति । एवं मनुष्यायुषोऽपि यथायोगं भावना कार्या ॥१०८॥

अथ मनःपर्यवज्ञानादिमार्गणास्थानेषु देवायुषः प्रकृतान्तरस्य प्ररूपणामाह—

मणणाणसंजमेसुं समइअछेअपरिहारदेसेसुं ।
देवाउस्स तिभागो देसूणो पुव्वकोडीए ॥१०९॥

(प्रे०) "मण०" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञान-संयमौघमार्गणयोस्तथा "समइअछेअ-परिहारदेसेसु" ति सामायिकसंयम-छेदोपस्थापनीयसंयम परिहारविशुद्धिसंयम-देशविरतसंयम-

मार्गणासु चेति षट्सु मार्गणास्थानेषु "देवाउस्स" त्ति देवायुषः प्रस्तुतत्वादवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमिति गम्यते, तच्चाऽन्तरमत्र 'तिभागो देसूणो पुव्वकोडीए' त्ति पूर्वकोटेर्देशोनस्त्रिभागो भवति ।

कथमेतदवसीयत इति चेदुच्यते—एकभवस्याकर्षद्वयमध्यकालोऽत्र पूर्वकोटेर्देशोनत्रिभागप्रमाणो विद्यते, स एवाऽत्र प्रकृताऽन्तरत्वेन प्राप्यते, परभवे उक्तमार्गणानां गमनाऽसम्भवादिति ॥१०९॥

अथ मत्यज्ञानादिमार्गणास्थानेषु वक्ष्यमाणाऽऽयुषां प्रकृताऽन्तरमाह—

अण्णाणदुगे अजए अचक्खुभवियेयरेसु मिच्छत्ते ।
ओघव्व जाणियव्वं होइ चउण्हं पि आऊणं ॥११०॥

(प्रे०) 'अण्णाण०' इत्यादि, अज्ञानद्विके मत्यज्ञान-श्रुताऽज्ञानरूपे 'अजए' त्ति असंयममार्गणायां 'अचक्खुभवियेयरेसु' ति अचक्षुर्दर्शनमार्गणा, भव्यमार्गणा, तदितराऽभव्यमार्गणा च तासु 'मिच्छत्ते' त्ति मिथ्यात्वमार्गणायाम् , इत्यासु सप्तमार्गणासु 'चउण्हं पि आऊणं' ति चतुर्णामप्यायुषां, प्रक्रान्तत्वादवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'ओघव्व होइ' त्ति ओघवद्भवति, अर्थात् तिर्यगायुर्वर्जतिसृणामायुष्प्रकृतीनां प्रकृताऽन्तरमसङ्ख्यपुद्गलपरावर्तप्रमाणमस्ति, तिर्यगायुषस्तु तच्छ्रेणेरसङ्ख्यातभागप्रमाणं विद्यत इति ज्ञातव्यम् । अत्र घटना त्वोघवक्तव्यतानुसारेणावबोध्येति ॥११०॥

अधुना विभङ्गज्ञानमार्गणायां चतुर्णामायुषां प्रकृताऽन्तरं प्रकटयति—

विब्भंगम्मि चउण्हं आऊणं पुव्वकोडितंसंतो ।
केइ उ ऊणछमासा दोण्हं दोण्हं मुहुत्तंतो ॥१११॥

(प्रे०) 'विब्भंगम्मि' इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां 'चउण्हं आऊणं' ति चतुर्णामायुषामवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं 'पुव्वकोडितंसंतो' त्ति पूर्वकोटेस्तृतीयांशस्यान्तोऽर्थात् पूर्वकोटेर्देशोनतृतीयभागप्रमाणं भवति। कथमेतदवसीयत इति चेदुच्यते, उक्तमार्गणायां मनुष्यास्तिर्यञ्चो वैकभवे पूर्वकोटितृतीयभागे तत्तदायुषामवस्थितप्रदेशबन्धं कुर्वन्ति, पश्चाच्चरमान्तर्मुहूर्तकाले द्वितीयवारं तद्बन्धं विदधति, अत एव तत्तदायुषामत्र प्रकृतान्तरमागच्छतीति । अत्र 'केइ उ' त्ति केचिन् महाबन्धकारादयोऽत्र विभङ्गज्ञानमार्गणायां 'दोण्हं' ति द्वयोः तिर्यङ्-मनुष्याऽऽयुषोः प्रकृताऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'ऊणछमासा' त्ति देशोनषण्मासा भवतीत्याचक्षते । तथा 'दोण्हं' ति द्वयोः-देव-नरकाऽऽयुषोः प्रकृतान्तरं 'मुहुत्तंतो' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं विद्यत इति वदन्ति । तन्मतेन विभङ्गज्ञानमार्गणा तिर्यङ्मनुष्येष्वेकान्तर्मुहूर्तकालादधिकं नाऽवतिष्ठते, अतस्तिर्यङ्मनुष्याऽऽयुषोः प्रकृतान्तरं देवाऽपेक्षया नरकाऽपेक्षया वा देशोनषण्मासप्रमाणमायाति ।

तथा देवनरकायुषोरितिर्यङ्मनुष्यापेक्षया प्रकृतान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति, तच्च बन्धाऽद्धाया द्वितीयसमये तथाऽन्तिमसमये तयोः प्रकृतबन्धकरणादागच्छतीति ।।१११।।

अथ सर्वलेश्यामार्गणासु बध्यमानाऽऽयुषां प्रकृतान्तरं वक्ति—

सव्वासु लेसासु सप्पाउग्गाण तिरिणराऊणं ।
देसूणा छम्मासा सेसाऊणं मुहुत्तंतो ॥११२॥

(प्रे०) 'सव्वासु' इत्यादि, सर्वलेश्यामार्गणासु "सप्पाउग्गाण तिरिणराऊणं"ति उक्तमार्गणाबन्धप्रायोग्ययोस्तिर्यङ्नरायुषोरर्थात् शुक्ललेश्यायां मनुष्यायुषस्तथा शेषपञ्चलेश्यासु तिर्यङ्मनुष्यायुषोः, प्रक्रमादवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं "देसूणा छम्मासा" त्ति देशोनाः षण्मासा भवति । तथोक्तमार्गणासु "सप्पाउग्गाण सेसाऊणं"ति स्वप्रायोग्ययोः शेषदेवनरकाऽऽयुषोः प्रकृताऽन्तरं "मुहुत्तंतो" त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति ।।

इदमुक्तं भवति—शुक्ललेश्यामार्गणायां मनुष्यायुषस्तथा तेजःपद्मलेश्यामार्गणयोस्तिर्यङ्मनुष्यायुषोः प्रकृताऽन्तरं देवाऽपेक्षयाऽऽगच्छति । तथा तिसृष्वऽशुभलेश्यामार्गणासु स्वमते देवनारकजीवाऽपेक्षया परमते नारकापेक्षयैव प्रकृताऽन्तरं समायाति । तथा तिसृषु शुभलेश्यामार्गणासु देवायुषस्तथा तिसृष्वशुभलेश्यामार्गणासु देवनरकायुषोः प्रकृताऽन्तरमेकाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमस्ति । तच्चायुर्बन्धकालरूपस्यान्तर्मुहूर्तस्य द्वितीयसमये तथाऽन्तिमसमये बन्धकरणात्प्राप्यत इति ज्ञेयम् ।।११२।।

अथ क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां देवमनुष्यायुषोः प्रकृताऽन्तरमाह—

देसूणा छम्मासा खइए मणुसाउगस्स विण्णेयं ।
देवाउस्स तिभागो देसूणो पुव्वकोडीए ॥११३॥

(प्रे०) "देसूणा" इत्यादि, "खइए" त्ति क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां मनुष्यायुषो देशोनषण्मासप्रमाणं प्रस्तुतत्वादवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं विज्ञेयम् । तथा देवायुषस्तत्र प्रकृताऽन्तरं "तिभागो देसूणो पुव्वकोडीए" त्ति पूर्वकोटेर्देशोनस्त्रिभागो भवति ।

अयमर्थः—क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां मनुष्यायुषो देशोनषण्मासप्रमाणं प्रकृताऽन्तरं देवनारकाऽपेक्षया भवति । तद्घटना त्वस्मिन्द्वारे पूर्वं देवनरकमार्गणासु यथा दर्शिता तथैवाऽत्राऽपि भावनीया । देवायुश्चाऽत्र तिर्यङ्मनुष्या एव बध्नन्ति तथापि प्रकृतान्तरं मनुष्यापेक्षयैवायाति, अतस्तस्यैव प्रकृताऽन्तरमेकभवस्याकर्षद्वयमध्यगतं-पूर्वकोटेर्देशोनतृतीयभागप्रमाणमायाति । तिर्यगायुषस्तु तद्देशोनषण्मासादधिकं नायातीति ।

अथ शेषमार्गणासु बध्यमानाऽऽयुषामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं निरूपयिषुराह—

देसूणा उक्कोसा सगसगकायट्ठिई मुणेयव्वं ।
सेसासु मग्गणासुं सप्पाउग्गाण आऊणं ॥११४॥

(प्रे०) "**देसूणा**" इत्यादि, "**सेसासु मग्गणासु**" ति उक्तशेषासु मार्गणासु "**सप्पाउग्गाण आऊणं**" ति स्वप्रायोग्याणामायुषां प्रक्रमादवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं "**देसूणा उक्कोसा सगसगकायट्ठिई मुणेयव्वं**" ति देशोना उत्कृष्टा स्वस्वकायस्थितिर्ज्ञातव्यम् ।

उक्तव्यतिरिक्तासु यासु मार्गणासु बध्यमानाऽऽयुपामवस्थितप्रदेशबन्धः सम्भवति, तत्र बध्यमानाऽऽयुषामवस्थितप्रदेशबन्धस्यान्तरं दर्श्यते, तद्यथा–पञ्चेन्द्रियौघमार्गणायां चतुर्णामायुषां साधिकसागरोपमसहस्रप्रमाणमवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं भवति । पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां चतुर्णामायुषां सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाणं प्रकृतान्तरं विद्यते । अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायामपर्याप्तत्रसकायमार्गणायां च बध्यमानतिर्यङ्मनुष्याऽऽयुषोस्तदन्तर्मुहूर्तप्रमाणमस्ति । त्रसकायसामान्यमार्गणायां तु चतुर्णामायुषां तत्साधिकद्विसहस्रसागरोपमप्रमाणमायाति । पर्याप्तत्रसकायमार्गणायां सातिरेकसागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाणमथवा मतान्तरेण तद् द्विसहस्रसागरोपमप्रमाणं विज्ञेयम् । मति-श्रुता-ऽवधिज्ञानमार्गणासु, अवधिदर्शनमार्गणायां, सम्यक्त्वौघे, क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां च देवमनुष्याऽऽयुषोः साधिकपट्षष्टिसागरोपमप्रमाणं प्रकृतान्तरम् । चक्षुर्दर्शनमार्गणायां चतुरायुषां सातिरेकसहस्रसागरोपममानं मतान्तरेण सागरोपमद्विसहस्रप्रमाणम्, एवं संज्ञिमार्गणायां चतुर्णामायुषां सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाणं तथाऽऽहारकमार्गणायां चतुर्णामायुषामङ्गुलस्याऽसङ्ख्यातभागप्रमाणमर्थादङ्गुलाऽसङ्ख्येयभागप्रमितसूचिश्रेणीक्षेत्रगताकाशप्रदेशतुल्यसमयप्रमाणं प्रकृतान्तरमवसातव्यमिति ॥११४॥

एवमादेशतोऽप्यायुरुत्तरप्रकृतीनां भूयस्कारादिबन्धानामन्तरं प्ररूप्य सम्प्रत्यादेशतः सर्वमार्गणास्थानेष्वायुर्वर्जप्रकृतीनां भूयस्कारा-ऽल्पतरबन्धयोर्जघन्यमुत्कृष्टञ्चाऽन्तरं सापवादं प्ररूपयन्नाह गाथाचतुष्कम्–

भूओगारस्स भवे ण सुरविउवदुगजिणाणुरलमीसे ।
सेसाण लहुं समयो दुपयाणं आउवज्जाणं ॥११५॥
धुवबंधिउरलजिणपणपरघाईणं विउव्वमीसे णो ।
भूगारस्स दुसमया सेसाणं अट्ठचत्ताए ॥११६॥
बारससायाईणं दो समयाहारमीसजोगे णो ।
सेसाणं सव्वेसिं ण भवे कम्मे अणाहारे ॥११७॥

सव्वाण लहु समयो दुपयाणऽण्णह अगुरुपएसव्व ।
सव्वह गुरु णवरि जहि दुखणा जाण तहि सिं मुहुत्तंतो॥११८॥(गीतिः)

(प्रे०) "भूओगारस्स" इत्यादि, औदारिकमिश्रमार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां भूयस्कारबन्धस्यान्तरं नास्ति, कुतः ? येषामासां प्रकृतीनां बन्धः तेषामासां प्रकृतीनां निरन्तरबन्धस्तथा तेषां जीवानां योगस्यासंख्यगुणवृद्धिरेव इति कृत्वा। आयुर्वर्जशेषप्रकृतीनां 'दुपयाणं' ति भूयस्काराल्पतरपदयोर्जघन्यमन्तरमेकसमयप्रमाणमवगन्तव्यम् । अथ 'धुवबंधि' इत्यादिना वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायामाह-तद्यथा—सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरजिननामपराघातोच्छ्वासबादरपर्याप्तप्रत्येकनामकर्मणां च भूयस्कारपदस्यान्तरं नास्ति; विरुद्धबन्धस्य प्रकृत्यबन्धस्य चासत्त्वादिति । तथा शेषाष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां जघन्यान्तरं समयद्वयप्रमाणमवगन्तव्यं न तु समयप्रमाणम् । कुतः ? इति चेदुच्यते—प्रस्तुतमार्गणायां प्रतिसमयं योगस्यासंख्येयगुणवृद्धेरल्पतरावस्थितपदयोरसत्त्वम् , तेन प्रस्तुतान्तरं प्रतिपक्षप्रकृतीनां जघन्यबन्धकालेनायाति, प्रतिपक्षप्रकृतिबन्धानन्तरं विवक्षितप्रकृतीनां प्रथमसमयेऽवक्तव्यबन्धो न तु भूयस्कारबन्धस्तस्मात् प्रस्तुतान्तरं समयद्वयप्रमाणमुक्तम् । तथैवाऽऽहारकमिश्रमार्गणायामपि सातादिद्वादशप्रकृतीनां समयद्वयप्रमाणमन्तरं "**बारससायाईणं**" इत्यादिना कथितं, शेषप्रकृतीनां प्रस्तुतमार्गणायां कार्मणानाहारकयोः सर्वासां प्रकृतीनां भूयस्कारस्यान्तरं नास्ति । अथ '**भूओगा०**' इत्यादिना कथितौदारिकमिश्रादिपञ्चमार्गणावर्जासु शेषपञ्चषष्ट्यधिकशतमार्गणासु सर्वासां प्रकृतीनां भूयस्काराल्पतरपदयोर्जघन्यमन्तरं समयप्रमाणं ज्ञातव्यम् , विरुद्धबन्धजघन्यकालस्य समयप्रमाणत्वात् ।

इत्थमौदारिकमिश्रे सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां पदद्वयस्य वैक्रियमिश्रेऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां भूयस्कारपदस्यैव; आहारकमिश्रे सातादिद्वादशप्रकृतीनां भूयस्कारपदस्यैव तथा शेषपञ्चषष्ट्यधिकशतमार्गणासु सर्वासां प्रकृतीनां पदद्वयस्योत्कृष्टान्तरमवशिष्टं तत्तु "**अगुरुपएसव्व सव्वह**" इत्यादिना सापवादं कथयति । '**सव्वह**' त्ति अष्टषष्ट्यधिकशतमार्गणासु भूयस्काराल्पतरपदयोरुत्कृष्टमन्तरमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धोत्कृष्टान्तरवज्ज्ञातव्यम् किन्तु यत्र यासां प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टान्तरं समयद्वयप्रमाणं कथितं तत्र तासां भूयस्कारबन्धस्याल्पतरबन्धस्य वाऽन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं वक्तव्यमित्यक्षरार्थः ।

भावार्थस्त्वयम्—तत्तद्मार्गणासु याः प्रकृतयोऽध्रुवबन्धिन्यः परावर्त्तमानबन्धवत्यो वा भवन्ति, तासां प्रकृतबन्धयोर्ज्येष्ठमन्तरमन्तर्मुहूर्त्तादिप्रमाणमागच्छति, तथा यासां प्रकृतीनां सत्यपि ध्रुवबन्धित्वे गुणप्रत्ययिकबन्धविच्छेदो जायते, तासामपि प्रकृतान्तरमधिकमायाति । किन्तु याः प्रकृतयो मार्गणावर्तिसर्वजीवैर्नियमेन बध्यन्तेऽथवा मार्गणायाश्चरमगुणस्थानकपर्यंतमवश्यं बध्यमानाः सन्ति, तासां प्रकृतीनामबन्धेनाऽन्तरं नैव प्राप्यते, तस्मात्तासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्या-

ऽन्तरं विरुद्धबन्धप्रयुक्तं समयद्वयमागच्छति, अतः प्रस्तुते तासां भूयस्कारा-ऽल्पतरबन्धयोरन्तरं परस्परं विरुद्धबन्धप्रयुक्तमन्तमुर्हूर्तप्रमाणं प्राप्यते ।

इदमुक्तं भवति–सर्वमार्गणास्थानेषु बध्यमानानां यासां प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमन्तमुर्हूर्तमथवाऽन्तमुर्हूर्त्तादधिकं भवति, तासां प्रकृतीनां तत्र प्रकृतबन्धस्य ज्येष्ठान्तरमपि तावदेव-अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धान्तरवदेव कथनीयम् , किन्तु यासामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमन्तमुर्हूर्तादल्पप्रमाणमर्थात् द्विसमयप्रमाणमस्ति तत्र तासां प्रकृतीनां भूयस्कारा-ऽल्पतरप्रदेशबन्धयोः प्रकृतान्तरमन्तमुर्हूर्तप्रमाणमायाति । यतो भूयस्कारबन्धस्याऽन्तरप्रयोजको मुख्यवृत्त्याऽल्पतरप्रदेशबन्धस्तस्य च कालोऽन्तमुर्हूर्तप्रमाणोऽस्ति । तथैवाऽल्पतरबन्धस्याऽन्तरप्रयोजको भूयस्कारबन्धस्तस्याप्युत्कृष्टकालोऽन्तमुर्हूर्तप्रमाणोऽस्ति ।।११५-११६-११७-११८।।

अथ सर्वमार्गणास्थानेष्वायुर्वर्जप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य जघन्यमन्तरं सर्वनरकभेदेषु ज्येष्ठमन्तरं च प्रकटयन्नाह––

सव्वासु लहु समयो अवट्ठिअस्सऽत्थि आउवज्जाणं ।
सव्वणिरयेसु जेट्ठं देसूणा जेट्ठकायठिई ।।११९।।

(प्रे०) "**सव्वासु**" इत्यादि, सर्वासु मार्गणासु–यासु मार्गणासु यासामवस्थितप्रदेशबन्धो भवितुमर्हति तासु तासामिति यावत् , तासु च तासामायुर्वर्जशेषप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य '**लहु**' ति जघन्यमन्तरमेकसमयप्रमाणमस्ति । तथा सर्वनरकभेदेष्वायुर्वर्जशेषबध्यमानप्रकृतीनां "**जेट्ठं**" ति अवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं "**देसूणा जेट्ठकायठिई**" त्ति देशोना ज्येष्ठकायस्थितिर्भवतीति गाथार्थः ।

भावार्थः पुनरयम्–वैक्रियमिश्रकाययोगाऽऽहारकमिश्रकाययोगकार्मणकाययोगा–ऽनाहारकमार्गणास्थानेषु सर्वासां प्रकृतीनामौदारिकमिश्रे देवद्विकवैक्रियद्विकजिननामप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धो नैव सम्भवति, अतस्तद्रहितशेषसर्वमार्गणासु समयान्तरेऽवस्थितबन्धस्य पुनः सद्भावात्तस्य जघन्यमन्तरमेकसमयप्रमाणमुक्तम् , तथाऽवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरस्यानयनार्थं त्विदमत्र ध्येयम्-यासां मार्गणानां कायस्थितिः श्रेणेरसङ्ख्यातभागादल्पाऽस्ति, तासु मार्गणासु बध्यमानप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं बाहुल्यतस्तत्तद्मार्गणाया देशोनकायस्थितिप्रमाणमायाति । तथा यन्मार्गणायाः कायस्थितिः श्रेणेरसङ्ख्यातभागादधिका विद्यते, तत्र चैकेन्द्रियाद्यवस्थासु याः प्रकृतयो बध्यमानाः सन्ति तासां प्रकृतान्तरं श्रेणेरसङ्ख्यातभागप्रमाणं कथनीयम् । याश्च कश्चिज्जीवभेदमाश्रित्य तत्राऽबध्यमानाः प्रकृतयः सन्ति तासां तु स्वोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्यान्तरतुल्यं प्रकृतान्तरं विज्ञेयम् , यथैकेन्द्रियौघे मनुष्यद्विकस्य । यदि च कस्याश्चिद्विशेषप्रकृत्याः कश्चित्प्रतिबन्धको भवेत् तर्हि तत्र प्रकृतान्तरं देशोनकायस्थितितोऽल्पमागच्छति यथा नरकौघे जिननाम्नः, प्रस्तुते नरकमार्गणासु काय-

लपरावर्तप्रमाणं भवति । एवं स्त्यानर्ध्यादिष्टकस्याऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य चेति द्वादशध्रुवबन्धि-प्रकृतीनामोघवद् देशोनार्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणं तथा सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामोघवदन्तर्मुहूर्तप्रमाणं प्रकृतान्तरमवसातव्यम् । तद्भावनाऽप्योघवदेव द्रष्टव्येति ॥१२३॥

अथ तत्रैवान्यप्रकृतीनामन्तरमाह--

देसूणं पल्लतिगं विण्णेयं इत्थिपुरिसवेआणं ।
देसूणपुव्वकोडी अवसेसाण गुणचत्ताए ॥१२४॥

(प्रे०) "देसूणं" इत्यादि, पूर्वोक्ततिर्यगोघमार्गणायां "इत्थिपुरिसवेआणं" ति स्त्री-पुरुषवेदयोः प्रक्रमादवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं "देसूणं पल्लतिगं" ति देशोनं पल्योपम-त्रिकं तथा "अवसेसाण गुणचत्ताए" त्ति अवशेषैकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनां "देसूणपुव्व-कोडी" त्ति देशोनपूर्वकोटीप्रमाणं प्रकृतान्तरं भवतीति गाथार्थः ।

भावार्थः पुनरयम्—यदा युगलिकभवस्थः कश्चिन्मिथ्यादृष्टिर्जीवः तिर्यगोघमार्गणायां पुरुष-स्त्रीवेदयोरवक्तव्यबन्धं कृत्वा सम्यक्त्वं यदा प्राप्नोति, यदा पुरुषवेदस्यैव बन्धं विदधाति पश्चाद्यदा मिथ्यात्वगुणस्थानं याति तदा स्त्रीवेदस्य नूतनबन्धमारभते । इत्थश्च स्त्रीवेदस्य देशोनत्रिपल्यो-पमप्रमाणं प्रकृतान्तरमागच्छति । तथा तत्र मिथ्यात्वगुणस्थाने स स्त्रीवेदस्य बन्धं कृत्वा तदन-न्तरं पुरुषवेदस्य बन्धं करोति, तदा पुरुषवेदस्य देशोनत्रिपल्योपमप्रमाणं प्रकृतान्तरमायाति । तथोक्तशेषैकोनचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामत्र प्रकृतान्तरं देशोनपूर्वकोटिप्रमाणमुक्तम् यतो-ऽत्र मिथ्यात्वगुणस्थानवर्तिकरणपर्याप्तयुगलिकैरेताः काश्चित्प्रकृतयो नैव बध्यन्ते काश्चिच्च निरन्तरमेव बध्यन्ते, अतस्तासामन्तरं स्त्रीवेदादिप्रकृतिवत् त्रिपल्योपमप्रमाणं नाऽऽयातमिति । अत्रैकोनचत्वारिं-शदध्रुवबन्धिप्रकृतयस्त्विमाः-नपुंसकवेद-जातिचतुष्कौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-संहननषट्क-न्यग्रोधादिसंस्था-नपञ्चका-ऽशुभविहायोगत्या-तपो-द्योत-स्थावरचतुष्क-दुर्भगत्रिकरूपसप्तविंशतिप्रकृतयः पर्याप्तावस्थायां युगलिकैर्नैव बध्यन्ते, तेषां देवगतिप्रायोग्यबन्धकत्वात् , तथा पञ्चेन्द्रियजाति-समचतुरस्रसंस्थान-शुभविहायोगति-पराघातो-च्छ्वास-त्रसचतुष्क-सुभगत्रिकरूपद्वादशप्रकृतयस्तैर्निरन्तरं बध्यन्त इति । ॥१२४॥

अधुना तिसृषु पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणासु बन्धयोग्यप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं दर्शयितुमाह गाथाद्वयम्--

तिपणिंदियतिरियेसुं पणरसणपुमाइपणणराईणं ।
तह णवसुहमाइणिरयतिरिदुगउज्जोअणीआणं ॥१२५॥

पुव्वाकोडिपुहुत्तं अवट्ठिअस्स परमं मुणेयव्वं ।
सेसाणं पयडीणं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥१२६॥

(प्रे०) "तिपणिं०" इत्यादि, पञ्चेन्द्रियतिर्यक्सामान्य-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीस्वरूपासु तिसृषु पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणासु "पणरसणपुमाइ" त्ति पञ्चदशनपुंसकवेदादिप्रकृतयः,तद्यथा-नपुंसकवेदः, आद्यरहितसंहननपञ्चकम्, आद्यवर्जितसंस्थानपञ्चकम्, कुखगतिः, दुर्भगत्रिकञ्च । तथा "पणणराईणं" ति नरगति-नरानुपूर्व्यौदारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-वज्रर्षभनाराचसंहननात्मकपञ्चनरादिप्रकृतयस्तासाम्, तथा "णवसुहुमाई" त्ति नवसूक्ष्मादिप्रकृतयः-सूक्ष्मत्रिक-विकलत्रिका--ऽऽतपै--केन्द्रियजाति-स्थावरनामानीत्यर्थः, "णिरयतिरिदुग" त्ति द्विकशब्दस्य पूर्वत्राऽप्यन्वयान्नरकगति-नरकानुपूर्वीरूपं नरकद्विकम्, तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकम् "उज्जोअ" त्ति उद्योतनाम "णीआणं" ति नीचैर्गोत्रञ्च तेषामिति सर्वसङ्ख्यया पञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनां "अवट्ठिअस्स परमं" ति अवस्थितबन्धस्य परमं ज्येष्ठमन्तरं "पुव्वाकोडिपुहुत्तं" ति पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाणं 'मुणेयव्वं" ति ज्ञातव्यम् । 'सेसाणं पयडीणं" ति उक्तशेषप्रकृतीनां प्रकृतान्तरं 'देसूणा जेट्ठकायठिई' त्ति देशोना ज्येष्ठकायस्थितिर्भवतीति गाथाद्वयाऽर्थः ।

भावार्थस्त्वयम्—उक्तत्रिमार्गणानामुत्कृष्टकायस्थितिः पूर्वकोटिपृथक्त्वाऽधिकत्रिपल्योपमप्रमाणा । तत्र पुनरन्तिमभवस्तु युगलिकस्य भवति, युगलिकस्य चाद्यान्तर्मुहूर्तस्य पश्चादर्थात् पर्याप्तभवनानन्तरमुक्तपञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धो नैव संभवति, तस्मात् तासां त्रिपल्योपमन्यूनमार्गणाकालोऽर्थात् पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाणं तदपि देशोनं प्रकृतान्तरमवसातव्यम् । उक्तपञ्चत्रिंशत्प्रकृतयः, आहारकद्विकं, जिननाम चेत्यष्टात्रिंशत्प्रकृतिवर्जितशेषसर्वासामष्टसप्ततिप्रकृतीनां प्रकृतान्तरं देशोनस्वज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणमुक्तम्, यत उक्तमार्गणाप्रारम्भादेकान्तर्मुहूर्तकालाऽनन्तरमेव काँश्चिज्जीवानाश्रित्य तासामवस्थितबन्धो भवति, पुनरपि युगलिकभवे चरमसमयेऽवस्थितबन्धः तैरेव तासां प्रकृतीनां यदा क्रियते तदा तासां प्रकृतीनां ज्येष्ठमन्तरं देशोनकायस्थितिप्रमाणं सम्पद्यते ॥१२५-१२६॥

अथ तत्रैवाऽवक्तव्यबन्धस्य लघु गुरु चान्तरं प्रदर्शयन्नाह—

सव्वाण मुहुत्तंतोऽवत्तव्वस्स लहुगं मुणेयव्वं ।
अडमिच्छाईण गुरुं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥१२७॥

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, 'त्रिपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणासु' इत्यस्य पूर्वगाथातोऽनुवृत्तिर्ग्राह्या । ततश्चोक्तत्रिमार्गणासु 'सव्वाण' त्ति अवक्तव्यबन्धयोग्यसर्वप्रकृतीनाम्, ताश्चाऽत्राऽनन्ता-

स्थितिः श्रेणेरसङ्ख्यातभागतो हीनाऽस्ति, अतस्तत्र प्रकृतान्तरं देशोनकायस्थितिप्रमाणमायातीति ॥ ११९॥

नरकभेदेष्ववस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमुक्तम् । अथ तत्राऽपवादं दर्शयितुं तथा जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धान्तरं निषेधयन्नाह--

णवरि जिणस्स तिअयरा अब्भहिया णिरयतइअणिरयेसुं ।
जत्थऽत्थि अवत्तव्वो जिणस्स तत्थ खलु से णत्थि ॥१२०॥

(प्रे०) "णवरि" इत्यादि, नवरि-किन्तु "णिरयतइअणिरयेसु" त्ति नरकौघ-तृतीयनरकमार्गणयोः "जिणस्स" त्ति जिननाम्नः प्रक्रमादवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'तिअयरा अब्भहिया' त्ति अभ्यधिकाः त्रिसागरोपमा भवति। यत उक्तमार्गणाद्वये जिननामसत्तावन्तो जीवाः साधिकत्रिसागरोपमादधिकाऽऽयुष्केषु नैवोत्पद्यन्त इति । "जत्थ" त्ति यत्र-यासु नरकमार्गणासु "ऽत्थि अवत्तव्वो जिणस्स" त्ति जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धः सम्भवति "तत्थ खलु से नत्थि" त्ति तत्र तदवक्तव्यबन्धस्यान्तरं नास्ति, तत्र तस्य द्विर्भवनाऽयोगादिति ॥१२०॥

अधुना पूर्वोक्तसर्वनरकभेदेष्ववक्तव्यबन्धस्याऽन्तरमाह—

बारससायाईणं भिन्नमुहुत्तं दुहा मुहुत्तंतो ।
सेसाण लहुं जेट्ठं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥१२१॥

(प्रे०) "बारस०' इत्यादि, अत्राऽपि पूर्वगाथातः "सव्वणिरयेसु" इत्यनुवर्तनात् सर्वनरकभेदेषु "बारससायाईणं" ति साताऽसात-हास्य-शोक-रत्य-रति-स्थिरा ऽस्थिर-शुभाऽशुभ-यशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपद्वादशप्रकृतीनां प्रक्रमादवक्तव्यबन्धस्य "दुहा" त्ति द्विधा जघन्यमुत्कृष्टश्चाऽन्तरं "भिन्नमुहुत्त" ति अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं भवति । "सेसाणं" ति उक्तशेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य "लहुं" ति लघ्वन्तरं "मुहुत्तंतो" त्ति अन्तमुहूर्त्तप्रमाणं जायते। तथाऽऽसां शेषप्रकृतीनामत्र ज्येष्ठमन्तरं "देसूणा जेट्ठकायठिई" त्ति देशोना ज्येष्ठकायस्थितिरस्ति ।

इदमुक्तं भवति–सर्वनरकभेदेषु सातादिद्वादशप्रकृतीनां चतुर्ष्वपि गुणस्थानेषु परावर्तमानबन्धभवनात्तासां जघन्यमुत्कृष्टश्चाऽन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमायाति । याः पुनरत्राऽऽयुर्वर्जितोक्तशेषाऽवक्तव्यबन्धवत्यः प्रकृतयः सन्ति तासामवक्तव्यबन्धस्य लघ्वन्तरमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं विज्ञेयम् । तथा तासामुत्कृष्टमन्तरं तु देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणमायाति, यतः प्रथमतः कश्चिज्जीवस्तासामवक्तव्यबन्धं कृत्वा सम्यक्त्वावस्थां गच्छेत् , तत्र च मार्गणाया देशोनकायस्थितिं यावत्स्थित्वाऽन्ते मिथ्यात्वगुणस्थानकं प्राप्य तासां पुनर्बन्धं विदध्यात् तदा प्रकृतान्तरं समागच्छति। सप्तमनरके मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोर्यो विशेषो भावनायां स स्वयं परिभावनीयः ॥१२१॥

अथ तिर्यगोघमार्गणायां तदाह—

तिरिये णेयं जेट्ठं ओघव्व अवट्ठिअस्स सव्वेसिं ।
अंतरमंतमुहुत्तं लहुं अवत्तव्वगस्स भवे ॥१२२॥

(प्रे०) "तिरिये" इत्यादि, तिर्यग्गत्योघमार्गणायां '**सव्वेसिं**' ति सर्वासां सम्भाव्यमानाऽवस्थितबन्धानामाहारकद्विकजिननामरहितत्रयोदशाधिकशतप्रकृतीनाम् "**अवट्ठिअस्स**" त्ति अवस्थितबन्धस्य '**जेट्ठ**' ति ज्येष्ठमन्तरं "**ओघव्व णेयं**" ति ओघवज्ज्ञेयम्; अत्रायुश्चतुष्कं न गृहीतम्, एवमग्रेऽप्यस्मिन्नन्तरद्वारे तत्तत्सर्वमार्गणासु स्वबध्यमानप्रकृतीनां भूयस्कारादिबन्धानामन्तरं वक्ष्यते तत्राऽप्यायुर्वर्जितशेषप्रकृतीनामन्तरं विज्ञेयम् । यतः सर्वमार्गणास्वायुष्प्रकृतीनामन्तरप्ररूपणा पूर्वमेव कृताऽस्ति ।

प्रकृतमार्गणायामोघवदवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं पुनरित्थम्—वैक्रियषट्कस्यावस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठान्तरमसङ्ख्यपुद्गलपरावर्तप्रमाणं ज्ञेयम् । तथा मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनामसङ्ख्यलोकप्रमाणं प्रकृतान्तरं ज्ञेयम् । शेषचतुरधिकशतप्रकृतीनां प्रकृतान्तरमत्र श्रेणेरसङ्ख्यातभागप्रमाणं विज्ञेयम्; तद्भावना चौघवद् द्रष्टव्या । "**अवत्तव्वगस्स**' त्ति तथाऽत्र तिर्यगोघमार्गणायां सर्वसम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धानां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्येत्यन्वयः कार्यः । प्रकृतमार्गणायामनन्तानुबन्धिचतुष्का--ऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्क--स्त्यानर्द्धित्रिक--मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतीनां तथाऽऽहारकद्विक-जिननामरहितशेषपट्पञ्चध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धो भवति, ततस्तदवक्तव्यबन्धस्य "**अंतरमंतमुहुत्तं लहुं भवे**" त्ति लघ्वन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति ॥१२२॥

अथ तत्रैव तिर्यगोघे बध्यमानप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमाचष्टे—

ओघव्व भवे जेट्ठं तिरिणरगोअदुगविउवछक्काणं ।
बारससायाईणं बारसधुवबंधिउरलाणं ॥१२३॥

(प्रे०) '**ओघव्वे**' त्यादि, अत्र पूर्वगाथोक्तस्य '**तिरिये**' इति पदस्याऽनुवृत्तेर्ग्रहणात् तिर्यग्गतेः प्रकृतत्वाद्वा तिर्यगोघमार्गणायां '**तिरिणरगोअदुगविउवछक्काणं**' ति तिर्यग्द्विकं-नरद्विकं गोत्रद्विकञ्च तथा देवद्विक-नरकद्विक-वैक्रियद्विकलक्षणं वैक्रियषट्कं-तेषां '**बारससायाईणं**' ति द्वादशसातवेदनीयादिप्रकृतीनां तथा "**बारसधुवबंधिउरलाणं**' ति द्वादशध्रुवबन्धिप्रकृतय औदारिकशरीरश्च तेषामिति सर्वसङ्ख्यया सप्तत्रिंशत्प्रकृतीनां '**जेट्ठ**" ति प्रक्रमादवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति गम्यते । तच्चाऽत्र '**ओघव्व भवे**' त्ति ओघवद्भवति ।

अयमर्थः—अत्र तिर्यग्द्विक-मनुष्यद्विकगोत्रद्विकानामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमोघवदसङ्ख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणं विज्ञेयम्, वैक्रियषट्कस्य तथौदारिकशरीरस्याऽत्र प्रकृतान्तरमोघवदसङ्ख्यपुद्ग-

नुबन्धिचतुष्कं, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं, स्त्यानर्द्धित्रिकं, मिथ्यात्वञ्चेति द्वादशध्रुवबन्धिन्यस्तथाऽऽहारकद्विक-जिननामा-ऽऽयुश्चतुष्करहिताः षट्षष्टिरध्रुवबन्धिप्रकृतय इति सर्वा अष्टसप्ततिप्रकृतयः सन्ति तासां, अवक्तव्यबन्धस्य 'लहुगं' ति लध्वन्तरं 'मुहुत्तंतो' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम् । तथाऽत्र 'अडमिच्छाईण' त्ति मिथ्यात्वमोहनीयम् , स्त्यानर्द्धित्रिकमनन्तानुबन्धिचतुष्कञ्चेत्यष्टमिथ्यात्वादिप्रकृतीनां 'गुरू' ति प्रक्रमादवक्तव्यबन्धस्य गुर्वन्तरमिति गम्यते, तच्चाऽत्र 'देसूणा जेट्ठकायठिई' त्ति देशोना ज्येष्ठकायस्थितिर्भवति, यतः प्रकृतमार्गणास्थः कश्चिज्जीवो मार्गणाप्रारम्भे यथायोगं सम्यक्त्वं प्राप्य पश्चान्मिथ्यात्वगुणस्थानं याति तदोक्तप्रकृतीनां प्रथममवक्तव्यबन्धं करोति, तत्पश्चान्मार्गणायाः प्रान्तकाले पुनःसम्यक्त्वमवाप्य यदि मिथ्यात्वगुणस्थानं गच्छति, तर्हि पुनरासामवक्तव्यबन्धं विदधाति । इत्थञ्च देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं प्रकृताऽन्तरमायातीति ॥१२७॥

अथ तास्वेव सातवेदनीयादिप्रकृतीनां प्रकृतान्तरमाह—

भिन्नमुहुत्तं हवए बारससायाइगाण पयडीणं ।
पुव्वाकोडिपुहुत्तं दुइअकसायाण बोद्धव्वं ॥१२८॥

(प्रे०) "भिन्न०" इत्यादि, पूर्वोक्तास्वेव त्रिपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणासु "बारससायाइगाण पयडीणं" ति साताऽसातवेदनीय-हास्य-शोक-रत्य-ऽरति-स्थिरा-ऽस्थिर-शुभा-ऽशुभ-यशःकीर्त्य-यशःकीर्तिरूपद्वादशप्रकृतीनां प्रक्रमादवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति गम्यते, तच्चाऽत्र "भिन्नमुहुत्तं हवए" त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । यत उक्तसातवेदनीयादिप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धभवनात् तथा मार्गणाया उत्कृष्टगुणस्थानकं यावत् परावर्तमानभावेन सातवेदनीयादीनां बन्धसद्भावादिति । "दुइअकसायाण" त्ति द्वितीया-ऽप्रत्याख्यानक्रोधादिचतुष्कषायाणामत्र प्रकृतान्तरं "पुव्वाकोडिपुहुत्तं" ति पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाणं बोद्धव्यम् । कथमिति चेदुच्यते, यदा जीवो देशविरतगुणस्थानादविरतादिकं गुणस्थानकं याति तदाऽप्रत्याख्यानचतुष्कस्याऽवक्तव्यबन्धं कुरुते । अथ च प्रकृतमार्गणायां युगलिकस्य भवोऽस्ति तथाऽपि स मार्गणावसाने भवति तथा तत्र देशविरतगुणस्थानं नैव सम्भवति, अतोऽत्र युगलिककायस्थितिरहिता शेषपूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाणा कायस्थितिर्देशोना प्रकृतान्तरत्वेन दर्शितेति ॥१२८॥

अथ तास्वेव त्रिमार्गणासु शेषप्रकृतीनां तदाह—

देसूणं पल्लतिगं विण्णेयं इत्थिपुरिसवेआणं ।
देसूणपुव्वकोडी बावण्णाअ अवसेसाणं ॥१२९॥

(प्रे०) "देसूण" मित्यादि, पूर्वोक्तत्रिपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणासु "इत्थिपुरिसवेआणं"

ति स्त्रीपुरुषवेदयोरवक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमिति प्रक्रमाल्लभ्यते, तच्चाऽत्र **"देसूणं पल्लतिगं"** ति देशोनं पल्योपमत्रिकं विज्ञेयम् । यतः पुरुषवेदं बध्नन् कश्चित् स्त्रीवेदं बध्नाति तदा तस्यावक्तव्यबन्धो भवति, पुनः स पुरुषवेदं बध्नाति ततः सम्यक्त्वं प्राप्नोति पश्चात्स जीवः भवस्याऽन्तिमेऽन्तर्मुहूर्ते मिथ्यात्वगुणस्थानं गत्वा स्त्रीवेदं बध्नाति तदा प्रकृतान्तरकालः समायाति । एवं पुरुषवेदस्य युगलिकजीवः सम्यक्त्वप्राप्तेः पूर्वमवक्तव्यबन्धं कुरुते । पश्चात्सम्यक्त्वप्राप्त्यनन्तरमपि तद्बन्धं कुर्वन्स यदाऽन्तिमाऽन्तर्मुहूर्तकाले मिथ्यात्वगुणस्थानं याति तदा तत्राऽन्तर्मुहूर्तकालानन्तरं स्त्रीवेदं बध्नाति, तत्पश्चाच्च पुरुषवेदं बध्नाति, तर्हि पुरुषवेदस्य प्रकृतान्तरमागच्छति । **"बावण्णाअ अवसेसाणं"** ति द्विपञ्चाशतोऽवशेषाणामुक्तमार्गणात्रिकेऽवक्तव्यबन्धयोग्योक्तशेषप्रकृतीनामित्यर्थः, ताश्चाऽत्र द्वादशसातवेदनीयादिप्रकृति-स्त्री--पुरुषवेदा-ऽऽहारकद्विक-जिननामायुश्चतुष्काणीत्येकविंशतिप्रकृतिवर्जिताः शेषसर्वद्विपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतयो ग्राह्याः । आसामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं **"देसूणपुव्वकोडी"** त्ति देशोनपूर्वकोटिप्रमाणं विज्ञेयम् । कथमेतदवसीयत इति चेदुच्यते,–आसां शेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य युगलिकभवप्रान्तेऽसम्भवात् तासां प्रकृतान्तरं त्रिपल्योपमप्रमाणं नाऽऽयातम् । एवं जीवो यदि ससम्यक्त्वः कालं करोति तदा तु मार्गणान्तरं प्राप्नोति अतः पूर्वकोटीपृथक्त्वप्रमाणमपि प्रकृतान्तरं न सम्भवति किन्तु एकभवस्यैव सम्यक्त्वकालः प्रकृतान्तरत्वेनाऽऽयाति । तथाहि–कश्चिज्जीवो भवाद्यकाले मिथ्यात्वगुणस्थाने आसां शेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धं कृत्वा पश्चात्स शीघ्रातिशीघ्रं सम्यक्त्वं प्राप्य सम्यक्त्वगुणस्थाने समचतुरस्रादीनां निरन्तरबन्धं करोति, मध्यमसंहननादिप्रकृतीनां चाऽबन्धं करोति, तत्पश्चाच्च पुनर्भवान्तिमाऽन्तर्मुहूर्तकाले मिथ्यात्वं याति तदाऽऽसामवक्तव्यबन्धं विदधाति तेन च देशोनपूर्वकोटीप्रमाणं प्रकृतान्तरमागच्छतीति कलनीयम् ॥१२९॥

सम्प्रति त्रिमनुष्यमार्गणास्ववस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमाह—

तिणरेसुं णिरयजुगलपणरसणपुमाइपणणराईणं ।
उज्जोआहारतिरियदुगणवसुहमाइणीआणं ॥१३०॥
पुव्वाकोडिपुहुत्तं अवट्ठिअस्स परमं जिणस्स भवे ।
देसूणपुव्वकोडी सेसाणूणगुरुकायठिई ॥१३१॥

(प्रे०) **"तिणरेसुं"** इत्यादि, मनुष्यौघ-पर्याप्तमनुष्य-मनुष्ययोनिमत्याख्यासु त्रिमनुष्यमार्गणासु **"णिरयजुगल"** त्ति नरकगति-नरकानुपूर्वीरूपं नरकयुगलम् तथा **"पणरसणपुमाइ"** त्ति पञ्चदशनपुंसकवेदादयः, तद्यथा-नपुंसकवेदाऽऽद्यवर्जितसंहननपञ्चका-ऽऽद्यवर्जितसंस्थानपञ्चक-कुखगति-दुर्भगत्रिकरूपाः पञ्चदशप्रकृतयः, **"पणणराईणं"** ति नरगति-नरानुपूर्व्यौ-दारिकशरीरौ-

दारिकाङ्गोपाङ्ग-वज्रर्षभनाराचसंहनननात्मकपञ्चनरादिप्रकृतयस्तासां, "उज्जोअ" त्ति उद्योतनाम "आहारतिरियदुग" त्ति द्विकशब्दस्य पूर्वत्राऽप्यन्वयात्, आहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणमाहारकद्विकम्, तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकञ्च। "णवसुहमाइ" त्ति नवसूक्ष्मादिप्रकृतयः-सूक्ष्मत्रिक-विकलेन्द्रियत्रिका-ऽऽतपै केन्द्रियजाति-स्थावरनामरूपास्तथा "णीआण" ति नीचैर्गोत्रमिति सर्वसङ्ख्यया सप्तत्रिंशत्प्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य "परमं" ति ज्येष्ठमन्तरं "पुव्वाकोडिपुहुत्त" ति पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाणं विज्ञेयम्, यत आसां प्रकृतीनां पर्याप्तावस्थागतेषु युगलिकेषु बन्धाऽसद्भावाद् युगलिकवर्जिता या मनुष्यगतिमार्गणायाः शेषा पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाणा कायस्थितिः सा देशोना प्रकृतान्तरत्वेन प्राप्यते। तथाऽत्र "जिणस्स" त्ति जिननाम्नोऽवस्थितबन्धस्य गुर्वन्तरं "देसूणपुव्वकोडी" त्ति देशोनपूर्वकोटीप्रमाणं भवति, यतो जिननामसत्तावान्मनुष्यः कालं कृत्वा मनुष्यो न भवति तस्मादेकभवस्यैव देशोनपूर्वकोटीप्रमाणोऽवस्थितबन्धद्वयमध्यकालः प्रकृतान्तरत्वेन प्राप्यते। "सेसाण" त्ति उक्तशेषबन्धयोग्यप्रकृतीनाम्-अर्थादत्र वध्यमानायुर्वर्जषोडशोत्तरशतप्रकृतिमध्यादुपयुक्ताऽष्टात्रिंशत्प्रकृतिवर्जिता याः शेषा अष्टसप्ततिप्रकृतयः सन्ति, तासां प्रक्रान्तमवस्थितबन्धस्यज्येष्ठमन्तरं 'ऊणगुरुकायठिई" त्ति मार्गणायाः किञ्चिदूना गुरुकायस्थितिर्भवति। यत एताः शेषप्रकृतयो युगलिकाऽवस्थायामपि वध्यन्ते, अतो मनुष्यमार्गणायाः कायस्थितेर्यथायोगमाद्यन्ते च तासामवस्थितबन्धकरणात्प्रकृताऽन्तरमागच्छतीति ॥१३०-१३१॥

अथ तत्रैव मनुष्यमार्गणात्रयेऽवक्तव्यबन्धस्य लघु गुरु चान्तरं प्रदर्शयितुमाह गाथात्रिकम्—

सव्वाण मुहुत्तंतोऽवत्तव्वस्स लहुगं मुणेयव्वं।
अडमिच्छाईण गुरुं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥१३२॥
कोडिपुहुत्तं पुव्वा आहारदुगधुवबंधिसेसाणं।
बारससायाईणं भिन्नमुहुत्तं मुणेयव्वं ॥१३३॥
देसूणं पल्लतिगं बोद्धव्वं इत्थिपुरिसवेआणं।
देसूणपुव्वकोडी तेवण्णाअ अवसेसाणं ॥१३४॥

(प्रे०) "सव्वाण" इत्यादि, पूर्वोक्तासु तिसृषु मनुष्यगतिमार्गणासु "सव्वाण" ति सर्वासामायुश्चतुष्कवर्जितशेषषोडशोत्तरशतप्रकृतीनां "अवत्तव्वस्स लहुगं" ति अवक्तव्यबन्धस्य लघ्वन्तरं "मुहुत्तंतो" त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम्। "अडमिच्छाईण" त्ति मिथ्यात्वं, अनन्तानुबन्धिचतुष्कं, स्त्यानर्द्धित्रिकञ्चेत्यष्टप्रकृतीनां "गुरु" ति प्रक्रमादुत्कृष्टमन्तरं देशोना ज्येष्ठकायस्थितिर्भवति। आहारकद्विकस्य तथोक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृतान्तरं पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाणं ज्ञेयम्। तथा द्वादशसातवेदनीयादिप्रकृतीनां तदन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम्। 'इत्थिपु-

रिसवेआणं' ति स्त्रीपुरुषवेदयोः प्रकृतान्तरं "देसूणं पल्लतिगं" ति देशोनं पल्योपमत्रिकं बोद्धव्यम्। तथा 'तेवण्णाअ अवसेसाणं'' ति त्रिपञ्चाशतोऽवशेषाणाम् उक्तशेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामिति यावत्, त्रिपञ्चाशत्प्रकृतयस्तु जिननामसहिताः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणोक्ताः, तासां प्रकृतान्तरं देशोनपूर्वकोटिप्रमाणं बोध्यम्। अत्रोत्तरत्राऽप्यवक्तव्यबन्धाऽन्तरस्य सर्वाऽपि भावनोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धग्रन्थस्य भूयस्काराभिधाऽधिकारस्याऽन्तरद्वारतो द्रष्टव्या, तत्समानवक्तव्यत्वात्। अत्र तु ग्रन्थलाघवार्थं पुनर्नोच्यत इति ॥१३२-१३३-१३४॥

इदानीं सुरौघमार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमाह—

देवे मिच्छाईणं पणवीसाए अवट्ठिअस्स गुरुं।
ऊणिगतीसुदही दो अहिया तिण्हायवाईणं ॥१३५॥
तिरिदुगउज्जोआणं अट्ठारियराण ऊणतेत्तीसा।
सव्वाण मुहुत्तंतोऽवत्तव्वस्स लहुगं णेयं ॥१३६॥

(प्रे०) "देवे" इत्यादि, देवौघमार्गणायां मिथ्यात्वं, स्त्यानर्द्धित्रिकं, अनन्तानुबन्धिचतुष्कं, नीचैर्गोत्रं, स्त्री-नपुंसकवेदौ, आद्यरहितसंहननपञ्चकं, आद्यरहितसंस्थानपञ्चकं, कुखगतिः, दुर्भगत्रिकञ्चेति मिथ्यात्वादिपञ्चविंशतिप्रकृतीनाम्, अवस्थितबन्धस्य 'गुरु' ज्येष्ठमन्तरं "ऊणिगतीसुदही" त्ति देशोनैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति। तथा "तिण्हायवाईणं" ति तिसृणामातपादिप्रकृतीनाम्-आतपै-केन्द्रियजाति स्थावरनामप्रकृतीनां 'अहिया दो' त्ति अत्र 'उदही' इति पदस्य देहलीदीपकन्यायेन योजनात् साधिकसागरोपमद्वयप्रमाणं प्रकृतान्तरं विज्ञेयम्। 'तिरिदुग' इत्यादि, तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकम् तथोद्योतनामेति त्रिप्रकृतीनां प्रक्रमादवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'अट्ठार' त्ति अत्र 'उदधिः' इति पदस्याऽनुवृत्तेरष्टादशसागरोपमप्रमाणं विज्ञेयम्। 'इयराण' त्ति इतरासाम्-उक्तशेषाणामत्र बध्यमानप्रकृतीनां 'ऊणतेत्तीसा' त्ति देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाः प्रकृतान्तरं भवति। तथाऽत्र देवौघमार्गणायां 'सव्वाण' त्ति सर्वासां सम्भाव्यमानाऽवक्तव्यबन्धानां षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां 'अवत्तव्वस्स लहुगं' ति अवक्तव्यबन्धस्य जघन्यमन्तरं 'मुहुत्तंतो णेयं' ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञेयम्।

एतदुक्तं भवति—अत्र देवौघमार्गणामाश्रित्य मिथ्यात्वादिपञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धो नवमग्रैवेयकपर्यन्तदेवानामेव भवति। तत्रत्योत्कृष्टकायस्थितिरेकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा विद्यते। तत्राऽप्येकाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणाऽपर्याप्ताऽवस्थायामुक्तप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धाऽसम्भवाद् देशोनैकत्रिंशत्सागरो-

पमप्रमाणं प्रकृतान्तरमुक्तम् । आतपै-केन्द्रिय-स्थावरनाम्नां बन्धस्य द्वितीयदेवलोकपर्यन्तमेव भवनात्, तत्रत्यकायस्थितेश्च साधिकद्विसागरोपमप्रमाणत्वात्प्रकृताऽन्तरमपि देशोनतावन्मात्रमेव। तथा तिर्यग्द्विकमुद्योतनाम चेति त्रिप्रकृतीनां बन्धोऽष्टमदेवलोकपर्यन्तं भवितुमर्हति, तत्रत्यकायस्थितेरष्टादशसागरोपमप्रमाणत्वात्प्रकृतान्तरमपि देशोन तावत्प्रमाणं विज्ञेयम् । तथाऽत्र देवौघे शेषप्रकृतिनिर्णयार्थं त्विदमुच्यते—अत्र देवौघे वैक्रियाऽष्टक-विकलत्रिक-सूक्ष्मत्रिका-ऽऽहारकद्विकानीति षोडशप्रकृतिवर्जिता याश्चतुरधिकशतप्रकृतयो बध्यमानाः सन्ति, तन्मध्याद् मिथ्यात्वादिपञ्चविंशतिप्रकृतयः, तिस्र आतपादयः, तिर्यग्द्विकमुद्योतनाम चेत्येकत्रिंशत्प्रकृतीनां प्रकृतान्तरमुक्तम्। तथा बध्यमानायुर्द्वयस्योक्तत्वात् त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतिभी रहिताः शेषा या एकसप्ततिप्रकृतयः सन्ति, तासां सर्वासामनुत्तरसुरेष्वपि बन्धसद्भावात्तत्रत्यकायस्थितेस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणत्वादासां प्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमपि तावत्प्रमाणम्, किन्त्वेकाऽन्तमुहूर्तन्यूनमवधेयम्, यतस्तत्राऽपर्याप्ताऽवस्थायामेकान्तमुहूर्तपर्यंतमासामवस्थितबन्धस्याऽसद्भावात् । अग्रेऽपि यत्र यत्र 'देशोन' मन्तरं वक्ष्यते तत्राऽपि यथायोगमपर्याप्ताद्यवस्थालक्षणं कारणमभ्यूह्यमिति ॥१३५-१३६॥

पूर्वोक्तद्वितीयगाथापश्चार्धेनावक्तव्यबन्धस्य जघन्यान्तरमुक्तम्, अथ तत्रैव तस्य ज्येष्ठमन्तरमाह—

देसूणिगतीसुदही दुतीसमिच्छाइवइररिसहाणं ।
जेट्ठं भिन्नमुहुत्तं बारससायाइगाण भवे ॥१३७॥
णरतिरिदुगउज्जोआणूणाऽट्ठारअयराऽहिया दोण्णि ।
एगिंदिथावरायवपणिंदितसउरलुवंगाणं ॥१३८॥

(प्रे०) "देसू०"इत्यादि, प्रस्तुतदेवौघमार्गणायां '**दुतीसमिच्छाइ**'त्ति अन्तरद्वारप्रारम्भे संग्रहगाथायामुक्ता मिथ्यात्वादिद्वात्रिंशत्प्रकृतयो वज्रर्षभनाराचसंहननं चेति तासां त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनां "**जेट्ठ**" ति प्रक्रमादवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति गम्यते, तच्चाऽत्र "**देसूणिगतीसुदही**" त्ति देशोनैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति, '**बारस**' इत्यादि, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां देहलीदीपकन्यायेन '**जेट्ठ**' ति पदमत्राऽपि सम्बध्यते, तस्य प्रक्रमादवक्तव्यबन्धस्य च योजनादवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमित्यर्थो गम्यते। तच्चाऽन्तरमत्र "**भिन्नमुहुत्तं**" ति अन्तर्मुहूर्तं भवति । '**णरतिरिदुगउज्जोआण**' त्ति नरद्विकं तिर्यग्द्विकं उद्योतनाम चेति तेषां पञ्चकर्मणामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति पूर्वतोऽनुवर्तते । तच्च प्रकृतान्तरं '**ऊणाऽट्ठारअयरा**' त्ति देशोनाष्टादशसागरोपमप्रमाणं विज्ञेयम् । तथा '**एगिंदिथावरायवपणिंदितसउरलुवंगाणं**" ति एकेन्द्रियजाति-स्थावरा-ऽऽतप-पञ्चेन्द्रियजाति-त्रसौ-दारिकाङ्गोपाङ्गरूपषट्प्रकृतीनां प्रकृतान्तरं "**अयराहिया दोण्णि**"त्ति साधिकद्विसागरोपमप्रमाणमाऽऽख्याति। एतदपि ईशानदेव-

कायस्थितितो न्यूनमवगन्तव्यम् । अत्राऽवक्तव्यप्रदेशबन्धाऽन्तरस्य सर्वाऽपि भावना बन्धविधान-ग्रन्थस्योत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धसत्कभूयस्काराधिकारीयप्रेमप्रभावृत्तितो ज्ञातव्या ॥१३७-१३८॥

अधुना भवनपत्यादिमार्गणासु बध्यमानप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमवक्तव्य-बन्धस्य च जघन्यमन्तरं प्ररूपयितुमाह—

भवणाईसु जेट्ठं सव्वाण अवट्ठिअस्स बोद्धव्वं ।
गुरुकायठिई ऊणाऽवत्तव्वस्स लहुगं मुहुत्तंतो ॥१३९॥ (गीतिः)

(प्रे०) "**भवणाईसु**" इत्यादि, भवनपत्याद्येकोनत्रिंशन्मार्गणासु तद्यथा—भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्कमार्गणासु तथा सौधर्मसुराद्यच्युतसुरान्तासु द्वादशवैमानिकसुरमार्गणासु, प्रथमादिन-वग्रैवेयकसुरमार्गणासु तथा विजयदेवादिपञ्चाऽनुत्तरसुरमार्गणास्वित्येकोनत्रिंशन्मार्गणासु '**सव्वाण**' त्ति सर्वासां प्रकृतीनामर्थादुक्ततत्तन्मार्गणायां बध्यमानसर्वप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्यो-त्कृष्टमन्तरं तत्तन्मार्गणाया देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणमवगन्तव्यम् । अत्रोक्तमार्गणासु स्व-स्वबध्यमानप्रकृतयस्तु सत्पदद्वारतोऽवसेयाः । तथा मार्गणानां स्वगुरुकायस्थितिर्मूलप्रकृति-स्थितिबन्धविधानग्रन्थतो विज्ञेया । '**अवत्तव्वस्स**' त्ति अत्राऽपि 'भवणाईसु सव्वाण' इत्य-स्याऽन्वयः कर्त्तव्यः, ततश्च भवनपत्याद्युक्तैकोनत्रिंशन्मार्गणासु स्वस्वाऽवक्तव्यबन्धयोग्यसर्वप्रकृतीना-मवक्तव्यबन्धस्य '**लहुगं**' ति लघुकमन्तरं '**मुहुत्तंतो**' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं बोद्धव्यम् । भावना पूर्वोक्तातिदेशानुसारेण तत्रतो द्रष्टव्या ॥१३९॥

अथ तास्वेवाऽवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमाह—

बारससायाईणं अंतमुहुत्तं गुरुं मुणेयव्वं ।
सेसाणं पयडीणं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥१४०॥

(प्रे०) "**बारस०**" इत्यादि, पूर्वोक्तासु भवनपत्याद्येकोनत्रिंशन्मार्गणासु '**बारससायाईणं**' ति द्वादशसातवेदनीयादिप्रकृतीनामत्रोत्तरार्धे च 'अवत्तव्वस्स' इति पदं पूर्वतोऽनुवर्त्तते, अतोऽव-क्तव्यबन्धस्य '**गुरु**' ति ज्येष्ठमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम् । '**सेसाणं पयडीणं**' ति उक्त-शेषसम्भाव्यमानावक्तव्यबन्धानां प्रकृतीनां '**गुरु**' ति अवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमित्यन्वयः कार्यः, तच्चाऽन्तरमत्रोक्ततत्तन्मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणमवधेयम् । अत्र भावना उक्तशेषप्रकृतयश्चोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धसत्कप्रकृतविषयकग्रन्थवृत्तितो विज्ञेया । इदं तु बोध्यम्-सर्वत्र यासु यासु मार्गणासु यासां यासां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामबन्धो भवितुं नार्हति; तथाऽध्रुवबन्धि-नीष्वपि यासां यासां प्रकृतीनां यासु यासु मार्गणासु निरन्तरबन्धस्तासु तासु मार्गणासु तासां

ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां निरन्तरबन्धवतीप्रकृतीनां चाऽवक्तव्यबन्धो नैव घटते, अतस्तदन्तरप्ररूपणा न कार्येति ॥१४०॥

अधुनैकेन्द्रियौघादिमार्गणास्थानेषु तदाह—

एगक्खे तस्सुहमे सव्वाणोघव्व ऽवट्ठिअस्स गुरु ।
तह ऽवत्तव्वस्स दुहा तिरिक्खणरगोअजुगलाणं ॥१४१॥
दुविहं भिन्नमुहुत्तं सेसाणं अंतरं मुणेयव्वं ।
पणकायणिगोअसुहमणिगोअपुहवाइचउगेसु ॥१४२॥
सेढिअसंखियभागो सव्वाण अवट्ठिअस्स उक्कोसं ।
सेसस्स पयस्स दुहा भिन्नमुहुत्तं मुणेयव्वं ॥१४३॥

(प्रे०) "एगक्खे" इत्यादि, एकेन्द्रियौघमार्गणायां "तस्सुहमे" त्ति तत्सूक्ष्मे सूक्ष्मैकेन्द्रियौघमार्गणायां च "सव्वाण" त्ति सर्वासां बन्धयोग्यप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य 'गुरु'ति ज्येष्ठमन्तरमोघवद्-ओघवक्तव्यतानुसारेण विज्ञेयम् । तद्भावनाऽपि तत्रतो द्रष्टव्या, "तह" त्ति तथाऽत्रोक्तमार्गणाद्वये 'तिरिक्खणरगोअजुगलाण' ति अत्र युगलपदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते, ततश्च तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकम्, नरगति-नरानुपूर्वीरूपं नरद्विकम्, उच्चैर्गोत्र-नीचैर्गोत्ररूपं गोत्रद्विकञ्चेति षट्प्रकृतीनाम् "अवत्तव्वस्स" त्ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य "दुहा" त्ति द्विधा जघन्यत उत्कृष्टतश्चाऽन्तरम् "ओघव्व" त्ति ओघवद् भवति, अर्थात् तासां तदन्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमुत्कृष्टतश्चाऽसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणं विज्ञेयम् । "दुविहं" इत्यादि, पूर्वोक्तैकेन्द्रियौघसूक्ष्मैकेन्द्रियौघमार्गणयोरुक्तशेषाणां त्रिपञ्चाशतोऽवक्तव्यबन्धयोग्यप्रकृतीनां 'दुविहं अंतरं' ति द्विविधमन्तरं-अवक्तव्यबन्धस्य जघन्यमुत्कृष्टञ्चाऽन्तरं भिन्नमुहूर्त्तम्-अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम् । "पणकाय" इत्यादि, पृथ्वीकायौघा-ऽप्कायौघ-तेजःकायौघ वायुकायौघ-वनस्पतिकायौघरूपपञ्चकायमार्गणाभेदाः, साधारणशरीरवनस्पतिकायौघमार्गणा तथा सूक्ष्मशब्द उत्तरत्र पदद्वयेऽप्यन्वीयते । अतः सूक्ष्मसाधारणशरीरवनस्पतिकायमार्गणा, सूक्ष्मपृथ्वीकायौघ-सूक्ष्माऽप्कायौघ-सूक्ष्मतेजस्कायौघ-सूक्ष्मवायुकायौघरूपसूक्ष्मपृथ्व्यादिचतुष्कञ्चेति सर्वसङ्ख्ययैकादशमार्गणास्थानेषु "सव्वाण" त्ति सर्वासां स्वस्वबन्धयोग्यप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं 'सेढिअसंखियभागो' त्ति श्रेणेरसङ्ख्यातभागप्रमाणं ज्ञेयम् । कथमेतदवसीयत इति चेत्, शृणु ! अत्र या व्याप्तिरुच्यते तदनुसारेणाऽत्रो-त्तरत्र च प्रकृतान्तरं चिन्तनीयम् । तद्यथा—यत्र प्रकृतिबन्धस्याऽन्तरं श्रेणेरसङ्ख्यातभागतोऽधिकं भवति तत्र प्रकृतिबन्धाऽन्तरतः सातिरेकमवस्थितप्रदेशबन्धस्याऽन्तरमायाति । यत्र च प्रकृतिबन्धस्याऽन्तरं श्रेणेरसङ्ख्यातभागतः स्तोकप्रमाणं विद्यते तथा

मार्गणायाः कायस्थितिः श्रेणेरसङ्ख्यातभागादधिकाऽस्ति तत्राऽवस्थितप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं तत्कारणीभूताऽवस्थितयोगस्योत्कृष्टान्तरतुल्यं श्रेणेरसङ्ख्यातभागप्रमाणमित्यर्थः, तथा यत्र मार्गणाकायस्थितिः श्रेणेरसङ्ख्यातभागतो न्यूना तत्र प्रकृतान्तरं देशोनकायस्थितिप्रमाणमायाति। तथा तास्वेकादशमार्गणासु शेषसम्भाव्यमानसर्वप्रकृतीनां "सेसस्स पयस्स" त्ति शेषाऽवक्तव्यपदस्य 'दुहा' त्ति द्विधा जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तरं 'भिन्नमुहुत्त' ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञातव्यम्। यतोऽत्रावक्तव्यबन्धार्हप्रकृतयोऽध्रुवबन्धिन्य एव, तत उत्कृष्टतोऽप्यवक्तव्यबन्धस्यान्तरमन्तर्मुहूर्तादधिकं नैवायातीति ॥१४१-१४२-१४३॥

अथ बादरैकेन्द्रियपर्याप्तबादरैकेन्द्रियभेदयोर्बध्यमानप्रकृतीनां प्रकृतान्तरमाह—

ऊणा गुरुकायठिई अवट्ठिअस्स गुरु बायरेगक्खे ।
तप्पज्जे सव्वेसिं इयरस्स लहु मुहुत्तंतो ॥१४४॥
तिरिणरगोअदुगाणं जेट्ठं अंगुलअसंखभागोऽत्थि ।
पज्जे गुरुकायठिई ऊणाऽण्णेसिं मुहुत्तंतो ॥१४५॥

(प्रे०) "ऊणा" इत्यादि, "बायरेगक्खे" त्ति बादरैकेन्द्रियसामान्यमार्गणायां तथा "तप्पज्जे" त्ति तत्पर्याप्ते-पर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणायां च "सव्वेसिं" ति सर्वासां बन्धयोग्यप्रकृतीनाम्—नरकत्रिक-देवत्रिक-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विक-जिननामप्रकृतयस्तथाऽऽयुर्द्वयमिति त्रयोदशप्रकृतिरहितशेषसप्ताधिकशतप्रकृतीनामित्यर्थः। तासामवस्थितप्रदेशबन्धस्य 'गुरु' त्ति ज्येष्ठमन्तरम्। 'ऊणा गुरुकायठिई' त्ति मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं भवति। कथमिति चेद् उच्यते,—प्रकृतमार्गणयोः प्रत्येकं ज्येष्ठकायस्थितिः श्रेणेरसङ्ख्यातभागादल्पप्रमाणा विद्यते, अतोऽत्र प्रकृताऽन्तरं मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणमायातीति। तथाऽत्रोक्तमार्गणाद्वयेऽवक्तव्यबन्धयोग्यसर्वप्रकृतीनाम् 'इयरस्स' अवक्तव्यबन्धस्य "लहु" ति जघन्यमन्तरं 'मुहुत्तंतो' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं सम्भवति। "तिरि०" इत्यादि, द्विकपदस्य प्रत्येकमन्वयात् तिर्यग्द्विकं नरद्विकं गोत्रद्विकञ्चेति षट्प्रकृतीनां "जेट्ठं" ति अवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति गम्यते, तच्च बादरैकेन्द्रियौघमार्गणायामङ्गुलस्यासङ्ख्यातभागप्रमाणमस्ति। तथा "पज्जे" त्ति पर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणायां तासां षट्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं तु "गुरुकायठिई ऊणा" त्ति देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं विज्ञेयम्। 'ऽण्णेसिं' ति अन्यासाम्-अत्राऽवक्तव्यबन्धयोग्यत्रिपञ्चाशत्शेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति तु पूर्वतः सम्बध्यते, तच्चान्तरमत्र मार्गणाद्वये "मुहुत्तंतो" त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति। अत्रावक्तव्यबन्धान्तरस्य भावनोक्तशेषप्रकृतिनामानि चोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धसत्कभूयस्कारादिग्रन्थवृत्तितोऽवबोध्यानीति ॥१४४-१४५॥

सम्प्रति पञ्चेन्द्रियौघादिमार्गणास्थानेषु बध्यमानप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य तथाऽवक्तव्य-बन्धस्यान्तरं वक्तुकाम आह—

जेट्ठं अवट्ठिअस्स दुपणिंदियतसेसु चक्खुसण्णीसु ।
तित्थस्सोघव्व भवे सेसाणूणगुरुकायठिई ॥१४६॥
सव्वाण मुहुत्तंतोऽवत्तव्वस्स लहुमूणजेट्ठठिई ।
जेट्ठं आहारजुगलधुवबंधीणं मुणेयव्वं ॥१४७॥
णेयं चउवीसाए णीआईणं दुतीसजलहिसयं ।
पणसीइसागरसयं होज्जाट्ठारणिरयाईणं ॥१४८॥
बारससायाईणं अंतमुहुत्तं तिवट्ठिजलहिसयं ।
तिरिदुगउज्जोआणं तेत्तीसुदही य दसणराईणं ॥१४९॥ (गीतिः)

(प्रे०) "जेट्ठ" मित्यादि, 'दुपणिंदियतसेसु' त्ति पञ्चेन्द्रियौघमार्गणा पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा चेति द्वे पञ्चेन्द्रियमार्गणे तथा त्रसकायौघमार्गणा पर्याप्तत्रसकायमार्गणा चेति द्वे त्रसकायमार्गणे इति चतसृषु, तथा 'चक्खुसण्णीसु' ति चक्षुर्दर्शन-संज्ञिमार्गणयोरिति सर्वसङ्ख्यया षण्मार्गणास्थानेषु 'तित्थस्स' त्ति तीर्थकरनाम्नोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमोघवत्साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति । अत्र भावनाऽप्योघवद् द्रष्टव्या । 'सेसाण' त्ति अवस्थितबन्धयोग्यशेषपञ्चदशोत्तरशतप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरम् 'ऊणगुरुकायठिई' त्ति उक्तमार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं भवति । कथमिति चेदुच्यते, अत्रोक्तमार्गणानां ज्येष्ठकायस्थितिः श्रेणेरसङ्ख्यातभागप्रमाणतो न्यूनाऽस्ति, अतः प्रागुक्तव्याप्त्यनुसारेण प्रकृतान्तरं देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणमायाति । 'सव्वाण' इत्यादि, उक्तषण्मार्गणास्वायुर्वर्जषोडशोत्तरशतप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यमन्तरं 'मुहुत्तंतो' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं विज्ञेयम् । 'आहारजुगलधुवबंधीण' ति आहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणमाहारकद्विकं तथा सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतय इत्येकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टमन्तरम् 'ऊणजेट्ठठिई' त्ति मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं ज्ञातव्यम् । 'णेयं' इत्यादि, 'चउवीसाए णीआईणं' ति संग्रहगाथायामुक्तानां नीचैर्गोत्रादिचतुर्विंशतिप्रकृतीनाम्, तद्यथा— नीचैर्गोत्रम्, स्त्री-नपुंसकवेदौ, संहननपञ्चकं, संस्थानपञ्चकं, कुखगतिः, दुर्भग-सुभगत्रिके, सुखगतिः, प्रथमसंस्थानं, पुरुषवेदः, उच्चैर्गोत्रञ्चेति चतुर्विंशतिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति पूर्वेणाऽन्वयः । तच्चाऽन्तरमत्र 'दुतीसजलहिसयं' ति द्वात्रिंशदधिकशतसागरोपमप्रमाणं ज्ञेयम्,

•याख्यानतस्तत्सातिरेकं विज्ञेयम् । **'पणसीइसागरसयं'** ति उक्तमार्गणासु पञ्चाशीत्यधिकशतसागरोपमप्रमाणमवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठाऽन्तरं भवति, तच्च सातिरेकं व्याख्यानतो ज्ञातव्यम्, कासां प्रकृतीनाम् ? इत्याह-**'अट्ठारणिरयाईणं'** ति नरकगत्याद्यष्टादशप्रकृतीनाम्, तद्यथा—नरकगति-नरकानुपूर्वी-सूक्ष्मा-ऽपर्याप्त-साधारण-विकलेन्द्रियजात्या-तपै केन्द्रियजाति -स्थावर--पञ्चेन्द्रियजाति-त्रसनाम-पराघातो-च्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकनामानीत्यष्टादशप्रकृतीनामित्यर्थः । **'बारस०'** इत्यादि, तास्वेव मार्गणासु द्वादशसातवेदनीयादिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं विज्ञेयम् । तथा**'तिरिदुगउज्जोआणं'**ति तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकमुद्योतनाम चेति प्रकृतित्रयस्याऽत्र प्रकृताऽन्तरं **'तिवट्ठिजलहिसयं'**ति त्रिषष्ट्युत्तरशतसागरोपमप्रमाणं सातिरेकं भवति । **'दसणराईण'**ति नरगत्यादिदशप्रकृतीनां नरगति-नरानुपूर्व्यौ-दारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-वज्रर्षभनाराचसंहनन-तीर्थकरनाम-सुरद्विक-वैक्रियद्विकरूपाणामत्र **'तेत्तीसुदही'** त्ति त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं ज्ञेयम्, व्याख्यानतस्तत्सातिरेकं विज्ञेयम् । अत्राऽवक्तव्यप्रदेशबन्धाऽन्तरस्य सर्वाऽपि भावनोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धस्य भूयस्काराद्यधिकारवृत्तितोऽवसेया ॥१४६-१४७-१४८-१४९॥

अथ पञ्चमनोयोगादिमार्गणासु तदाह—

पणमणवयणेसु तह कोहाईसु चउकसायेसु ।
जेट्ठं भिन्नमुहुत्तं सव्वाण अवट्ठिअस्स भवे ॥१५०॥
इयरस्साहारजुगलजिणवज्जछसट्ठिअधुवबंधीणं ।
भिन्नमुहुत्तं दुविहं अहवा णत्थि ण उ सेसाणं ॥१५१॥
सप्पाउग्गाण गुरुं अवट्ठिअस्स विउवे तहा-ऽऽहारे ।
भिन्नमुहुत्तं णेयमवत्तव्वस्स मणजोगव्व ॥१५२॥

(प्रे०) **"पणमण"** इत्यादि, पञ्चमनोयोग-पञ्चवचनयोग-क्रोधादिचतुष्कषायमार्गणासु **'सव्वाण'** त्ति सर्वासां प्रकृतीनां **'अवट्ठिअस्स'** त्ति अवस्थितस्योत्कृष्टमन्तरं **'भिन्न०'** इत्यादि, अन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यम्, मार्गणोत्कृष्टकालस्य तावन्मितत्वादिति । **'इयरस्स'** इत्यादिना प्रकृतमार्गणास्ववक्तव्यबन्धस्यान्तरं कथयति, तद्यथा—आहारकद्विक-जिनवर्जषट्षष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्यान्तरं जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तर्मुहूर्तप्रमाणमेवाऽथवा मतान्तरे नास्ति । मतान्तरे द्विरवक्तव्यबन्धाभावाद्, एतदपि कुतः ? प्रकृतिबन्धकालतो मार्गणोत्कृष्टकालस्य स्तोकत्वादिति । **'ण उ सेसाणं'** ति ध्रुवबन्धिप्रकृति-जिननामाहारकद्विकस्यावक्तव्य-

बन्धस्य मतद्वयेऽप्यन्तरं नास्ति । अथ 'सप्पाभग्गाण' इत्यादिना वैक्रियाहारकमार्गणयोः प्रस्तुतान्तरं दर्शयति, तद्यथा–वैक्रियाहारकमार्गणयोर्बध्यमानप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य 'गुरु' ति उत्कृष्टमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेव, मार्गणोत्कृष्टकालस्यान्तर्मुहूर्तमितत्वादिति । अवक्तव्यबन्धवतीप्रकृतीनामन्तरं द्विविधमपि मनोयोगमार्गणावत् कथनीयम् ॥१५०-१५१-१५२॥

अथ काययोगसामान्ये गाथात्रयेण तदेवाऽन्तरं प्रतिपादयति--

काये भिन्नमुहुत्तं तित्थाहारदुगविउवछक्काणं ।
जेट्ठं अवट्ठिअस्स य सेसाणोघव्व वोद्धव्वं ॥१५३॥
ण अवत्तव्वस्स भवे धुववंधिविउव्वछक्कउरलाणं ।
तित्थाहारदुगाणं सेसाण लहुं मुहुत्तंतो ॥१५४॥
जेट्ठं असंखलोगा णेयं तिरियणरगोअजुगलाणं ।
सेसाणं पयडीणं तेवण्णाए मुहुत्तंतो ॥१५५॥

(प्रे०) "काये" इत्यादि, काययोगसामान्यमार्गणायां तीर्थकरनाम, आहारकशरीराऽऽहारकाङ्गोपाङ्गरूपमाहारकद्विकम्, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्ग देवगति- देवानुपूर्वी-नरकगति-नरकानुपूर्वीलक्षणं वैक्रियषट्कं चेति नवप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं बोद्धव्यं तद्बन्धकजीवानाश्रित्य मार्गणाकालस्य तावन्मात्रत्वात् । इदमुक्तं भवति–एताः प्रकृतीः पञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीव एव बध्नाति, तस्य च काययोगमार्गणाया उत्कर्षतः कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण एव, अत उक्तप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमुक्तम् । तथाऽत्र काययोगसामान्यमार्गणायामुक्तशेषसप्ताऽधिकशतप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमोघवद् बोद्धव्यम् । "ण" इत्यादि, 'धुववंधिविउव्वछक्कउरलाणं' ति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः; पूर्वोक्तस्वरूपं वैक्रियषट्कमौदारिकशरीरञ्च तेषाम्, तथा 'तित्थाहारदुगाणं' ति तीर्थकरनामा-ऽऽहारकद्विकयोरिति सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य 'ण भवे' त्ति अन्तरं नैव भवतीत्यर्थः । यतो हि एतासां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धः पञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीव एव करोति, तस्य च काययोगसामान्यमार्गणायामासां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धो द्विर्नैव जायते । तथाऽऽयुश्चतुष्कस्याऽन्तरं तु पुरैव प्रतिपादितम्, अतः 'सेसाण' त्ति काययोगसामान्यमार्गणायामुक्तशेषैकोनषष्टिप्रकृतीनां 'लहु' ति अवक्तव्यबन्धस्य जघन्यमन्तरमिति गम्यते, तच्चान्तरमत्राऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति, तासां परावर्तमानबन्धसद्भावादिति । 'जेट्ठ' मित्यादि, अत्र काययोगसामान्ये 'तिरियणरगोअजुगलाणं' ति युगलशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धात् तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकं, नरगति-नरानुपूर्वीरूपं नरद्विकम्, उच्चैर्गोत्र-नीचैर्गोत्ररूपं गोत्रद्विकञ्च-तेषां 'जेट्ठं' ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्यो-

त्कृष्टमन्तरम् '**असंखलोगा**' त्ति ओघवदसङ्ख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणं ज्ञेयम् । '**सेसाणं पयडीणं तेवण्णाए**' त्ति शेषाणां त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनामत्राऽवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं '**मुहुत्तंतो**' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञेयम् । अत्रावक्तव्यप्रदेशबन्धाऽन्तरस्य भावना त्ववक्तव्यस्थितिबन्धाऽन्तरसमानैव । अतस्तत्रतोऽवसेया जिज्ञासुभिरिति ॥१५३-१५४-१५५॥

अथौदारिककाययोगमार्गणायां प्रकृतान्तरमाह—

उरले अंतमुहुत्तं तित्थाहारदुगविउवछक्काणं
जेट्ठं अवट्ठिअस्स य सेसाणूणगुरुकायठिई ॥१५६॥
ण अवत्तव्वस्स भवे धुवबंधिविउव्वछक्कउरलाणं ।
तित्थाहारदुगाणं सेसाण दुहा मुहुत्तंतो ॥१५७॥

(प्रे०) '**उरले**' इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां '**तित्थ**' इत्यादि, तीर्थकरनामाहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणमाहारकद्विकम्, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्ग-देवगति-देवानुपूर्वी-नरकगति-नरकानुपूर्वीभेदभिन्नं वैक्रियषट्कं चेति नवप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । तद्भावना त्वत्र यथा पूर्वोक्तकाययोगसामान्यमार्गणायामुक्ता तथैव विज्ञेया । तथा "**सेसाण**" त्ति उक्तशेषबध्यमानसप्ताऽधिकशतप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं '**ऊणगुरुकायठिई**' त्ति मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं-देशोनद्वाविंशतिवर्षसहस्रप्रमाणं ज्ञातव्यम् । "**ण**"इत्यादि, '**धुवबंधि**' त्ति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः '**विउवछक्क**' त्ति 'वैक्रियषट्कं' पूर्वोक्तस्वरूपम् '**उरलाणं**' ति औदारिकशरीरञ्च तेषाम् तथा तीर्थकरनामा-ऽऽहारकद्विकयोरिति सर्वसङ्ख्यया सप्तपञ्चाशत्प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य '**ण भवे**' त्ति प्रक्रमादन्तरं न भवतीत्यर्थः । '**सेसाण**' उक्तशेषैकोनषष्टिप्रकृतीनां '**अवत्तव्वस्स**' इति पदं देहलीदीपकन्यायेनात्राऽपि सम्बध्यते; अतस्तासामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य '**दुहा**' त्ति द्विधा जघन्यमुत्कृष्टञ्चान्तरं '**मुहुत्तंतो**' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । अत्र भावना तु काययोगसामान्यमार्गणावद् द्रष्टव्या । किन्त्वयमत्र विशेषः- यत् तिर्यग्द्विकस्य, मनुष्यद्विकस्य, गोत्रद्विकस्य च तत्र काययोगसामान्ये प्रकृतान्तरमसङ्ख्यातलोकप्रमाणमस्ति, तदन्तरमत्रौदारिककाययोगमार्गणायामन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेव भवति, यतस्तत्र तु तेजोवायुकायापेक्षयाऽनेकभवानाश्रित्य तदन्तरमागच्छति, प्रकृतौदारिककाययोगमार्गणा तु देशोनैकभवं यावदेवाऽवतिष्ठते, तस्माच्च तेजो-वायुकायापेक्षया प्रकृतान्तरं नाऽऽयाति, किन्तु पृथ्वीकायाद्यपेक्षया परावर्तमानबन्धत एवा-ऽऽयाति । अतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेव तदिति॥१५६-१५७॥

अथौदारिकमिश्रवैक्रियमिश्राहारकमिश्रकाययोगमार्गणासु प्रकृताऽन्तरमाह—

'सेसाण' इत्यादि, शेषाणामुक्तशेषाऽवक्तव्यबन्धयोग्यप्रकृतीनाम् , तद्यथा-स्त्यानर्द्धित्रिकं, वेदत्रिकं,मिथ्यात्वं, सञ्ज्वलनचतुष्करहितद्वादशकषायास्तथा नाम्नः स्थिराऽस्थिर-शुभाऽशुभ-यशःकीर्त्ययशःकीर्ति-जिननाम-वर्णचतुष्क तैजस-कार्मणशरीरा-ऽगुरुलघू पघात-निर्माणनामानीति षोडशप्रकृतिरहितशेषसर्वा एकपञ्चाशन्नामकर्मप्रकृतयो गोत्रद्विकञ्चेति सर्वसङ्ख्ययोक्तशेषद्वासप्ततिप्रकृतीनाम् 'अवत्तव्वो' इति पदमत्र पूर्वगाथातोऽनुवर्त्तते, अतस्तासामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य 'लहू' ति जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं विज्ञेयम् । नन्वासां द्वासप्ततिप्रकृतीनां गुर्वन्तरं कियद्भवतीत्यत आह-- अत्र तन्मध्यात् आहारकशरीरा--ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गरूपस्याहारकद्विकस्य तथा 'सोलससेसधुवबंधीण' ति स्त्यानर्द्धित्रिकं, मिथ्यात्वं, सञ्ज्वलनरहितशेषद्वादशकषायमोहनीयरूपाणां षोडशशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चेत्यासामष्टादशप्रकृतीनां 'गुरु' ति प्रक्रमादवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'ऊणजेट्ठकायठिई' त्ति स्त्रीवेदमार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं भवति । "बारसुराइ०" इत्यादि, सुरद्विक वैक्रियद्विक-नरकद्विक-सूक्ष्मत्रिक-विकलत्रिकरूपा द्वादशसुरगत्यादिप्रकृतयः 'उरल' त्ति औदारिकशरीरं 'पणपरघायाईण' त्ति पराघातोच्छ्वास-बादरत्रिकरूपाः पञ्चपराघातादिप्रकृतयश्चेत्यष्टादशप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'पञ्चपणवण्णा अब्भहिया' त्ति अभ्यधिकाः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमा भवति, तथा 'छत्तीसाए सेसाणं' ति उक्तशेषषट्त्रिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'देसूणा' त्ति अत्र 'पञ्चपणवण्णा' इति पदस्य देहलीदीपकन्यायेन योजनाद्देशोनाः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमाः प्रकृतान्तरं भवतीति गम्यते । भावना त्वत्राऽप्युत्तरप्रकृत्यवक्तव्यस्थितिबन्धस्य भावनायास्तुल्याऽवगन्तव्या । ।।१६१-१६२-१६३-१६४।।

अथ पुरुषवेदमार्गणायां तदन्तरस्य प्रतिपादनायाऽऽह—

पुरिसम्मि होइ जेट्ठं अवट्ठिअस्स जिणणामकम्मस्स ।
साहियतेत्तीसुदही सेसाणूणगुरुकायठिई ॥१६५॥
सव्वाण मुहुत्तंतोऽवत्तव्वस्स लहुमूणजेट्ठठिई ।
जेट्ठं आहारजुगलइगूणतीसधुवबंधीणं ॥१६६॥
भिन्नमुहुत्तं हवए बारससायाइगाण पयडीणं ।
बत्तीससागरसयं णीआईण चउवीसाए ॥१६७॥
साहियतेत्तीसुदही देवविउव्वदुगपणणराईणं ।
तित्थस्स पुव्वकोडी ऊणाऽण्णेसिं तिवड्ढिजलहिसयं ॥१६८॥(गीतिः)

(प्रे०) **'पुरिसम्मि'** इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायां जिननामकर्मणोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं **'साहियतेत्तीसुदही'** त्ति साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति, तत्र जिननाम्नो बन्धार्हकालस्य तावन्मात्रत्वात् तदनन्तरञ्चाऽवश्यं मोक्षगमनसम्भवात् । **'सेसाणं'** ति शेषाणां जिननामाऽऽयुश्चतुष्करहितशेषसर्वपञ्चदशाधिकशतप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं **'ऊणगुरुकायठिई'** त्ति पुरुषवेदमार्गणाया देशोनगुरूकायस्थितिप्रमाणं भवति, मार्गणाया आदावन्ते चेति द्विस्तद्बन्धकरणेन प्रकृतान्तरस्य सम्भवात् । **'सव्वाण'** इत्यादि, पुरुषवेदमार्गणायामवक्तव्यबन्धयोग्यसर्वप्रकृतीनामर्थात् पञ्चज्ञानावरण--चतुर्दर्शनावरण--सञ्ज्वलनचतुष्कमन्तरायपञ्चकमायुश्चतुष्कञ्चेति द्वाविंशतिप्रकृतिरहितानामष्टनवतिप्रकृतीनाम् **'अवत्तव्वस्स'** त्ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य **'लहु'** जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । **'आहारजुगल'** त्ति आहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणाहारकयुगलस्य **'इगूणतीस धुवबंधीणं'** ति एकोनत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां ताश्चैताः—निद्रापञ्चकं, सञ्ज्वलनचतुष्करहितशेषद्वादशकषायाः, मिथ्यात्वं, भय-जुगुप्से तथा नाम्नो वर्णचतुष्क–तैजसकार्मणशरीरा-ऽगुरुलघू-पघात-निर्माणनामानीत्यासामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां चेति सर्वसंख्ययैकत्रिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य **'जेट्ठ'** ति उत्कृष्टमन्तरं **'ऊणजेट्ठठिई'** त्ति मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं विज्ञेयम् । **'बारससायाइगाण पयडीणं'** ति द्वादशसातवेदनीयादीनां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं **'भिन्नमुहुत्तं'** ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । **णीआईणं चउवीसाए'** त्ति द्वारप्रारम्भे सङ्ग्रहगाथोक्तानां नीचैर्गोत्र-स्त्री-नपुंसकवेदा-ऽऽद्यरहितसंहननपञ्चका-ऽऽद्यवर्जितसंस्थानपञ्चक-कुखगति-दुर्भगत्रिक सुभगत्रिक-सुखगति-प्रथमसंस्थान-पुरुषवेदो-च्चैर्गोत्राणीति चतुर्विंशतेर्नीचैर्गोत्रादिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं **'बत्तीससागरसयं'** ति द्वात्रिंशदधिकशतसागरोपमप्रमाणं भवति । **'देवविउव्वदुग'** त्ति द्विकशब्दस्य प्रत्येकमन्वयाद्देवगति-देवानुपूर्वीरूपं देवद्विकं तथा वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकं **'पणणराईणं'** ति नरगति-नरानुपूर्व्यौदारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-वज्रर्षभनाराचसंहननात्मकपञ्चप्रकृतयश्चेति नवप्रकृतीनामत्र प्रकृताऽन्तरं **"साहियतेत्तीसुदही'** त्ति साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं ज्ञेयम् । **'तित्थ'** त्ति तीर्थंकरनामकर्मणः प्रकृतान्तरमत्र देशोनपूर्वकोटीप्रमाणमायाति । **'अण्णेसिं'** ति अन्यासामुक्तशेषप्रकृतीनाम्—ताश्चाऽत्र तिर्यग्द्विक-नरकद्विक-जातिपञ्चका-ऽऽतपो-द्योत-पराघातो-च्छ्वास-त्रसचतुष्क-स्थावरचतुष्काणीत्येकविंशतिप्रकृतयः सन्ति । एतासामुक्तशेषप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं **'तेवट्ठिजलहिसयं'** ति त्रिषष्ठ्यधिकशतसागरोपमप्रमाणं बोध्यम् । अत्रत्या सर्वाऽपि भावनोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धसत्काऽवक्तव्यबन्धान्तरस्य भावनातुल्या । अतस्तद्ग्रन्थतो द्रष्टव्या जिज्ञासुभिः । लाघवार्थमत्र पुनर्नोच्यत इति ॥१६५-१६६-१६७-१६८॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायां प्रकृताऽन्तरमाह—

सव्वाण मुहुत्तंतो उरालमीसे अवट्ठिअस्स गुरु ।
तम्मि तह विउवमीसे ण अवत्तव्वस्स मिच्छस्स ॥१५८॥
सेसाण मुहुत्तंतो दुविहं आहारमीसजोगम्मि ।
बारससायाईणं भिन्नमुहुत्तं दुहा ण तित्थस्स ॥१५९॥ (गीतिः)

(प्रे०) "सव्वाण" इत्यादि, "उरालमीसे" त्ति औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां "सव्वाण" त्ति 'सर्वासाम्' अत्र बध्यमानाऽवस्थितबन्धयोग्यप्रकृतीनाम्-ताश्चाऽत्र सुरायुर्नरकत्रिका-ऽऽहारकद्विकानीति षट्प्रकृतिवर्जिताः शेषचतुर्दशाऽधिकशतप्रकृतयः सन्ति; तासु सुरद्विक-वैक्रियद्विक-जिननामप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धो नास्ति तथा तिर्यङ्नरायुषोः प्रकृतान्तरं पूर्वमुक्तमेव । अतः शेषसप्ताधिकशतप्रकृतीनामत्राऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य 'गुरु' त्ति ज्येष्ठमन्तरं 'मुहुत्तंतो' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति, मार्गणाकालस्य तावन्मात्रत्वात् । 'तम्मि' त्ति 'तस्मिन्' अत्र तत्शब्देन पूर्वोक्तम् 'उरालमीसे' इति पदं परामृश्यते । अत औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां तथा 'विउव-मीसे' त्ति वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायामिति मार्गणाद्वये 'मिच्छस्स' त्ति मिथ्यात्वमोहनीय-स्याऽवक्तव्यबन्धस्याऽन्तरं 'ण' त्ति न भवतीति शेषः । "सेसाण" इत्यादि, पूर्वोक्तमार्गणाद्वये मिथ्या-त्वरहितशेषावक्तव्यबन्धयोग्यसर्वप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य 'दुविहं' ति जघन्यमुत्कृष्टश्चाऽन्तरं अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं विज्ञेयम् । "आहार०" इत्यादि, आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां साता-ऽसात-हास्य-शोक- रत्य-ऽरति--स्थिरा-ऽस्थिर-शुभा--ऽशुभ-यशःकीर्त्य-यशःकीर्तिरूपद्वादशसातादिप्रकृतीनां 'अवत्तव्वस्स' इति पदस्य पूर्वतोऽनुवर्तनात्, अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य "दुहा" त्ति जघन्यमुत्कृष्ट-श्चान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं विज्ञेयम् । 'ण तित्थस्स' त्ति अत्राऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां तीर्थकरनामकर्मणोऽवक्तव्यबन्धस्याऽन्तरं नैव भवति । तत्र जिननाम्नो द्विरवक्तव्यबन्धस्य भवना-ऽयोगात् ।

अत्र भावना तूत्तरप्रकृत्यवक्तव्यस्थितिबन्धाऽन्तरस्य भावनातुल्या ज्ञेयेति । वैक्रियमिश्रा-हारकमिश्रमार्गणाद्वये बध्यमानानां सर्वासां प्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धाभावेन तदन्तरस्याप्यभावा-त्तस्य प्ररूपणा न कृतेति ध्येयम् । तथैवाऽऽहारकमिश्रकाययोग उक्तत्रयोदशप्रकृतिवर्जितशेषबध्य-मानप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धो नैव भवति, तेनाऽऽसां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य भावना न कृतेत्यपि ज्ञेयम् । अत्रोत्तरत्र चाऽवक्तव्यादिप्रदेशबन्धयोग्यप्रकृतीनामेव प्रायेणावक्तव्यादिप्रदेशबन्धस्य भावना क्रियते, तेन शेषप्रकृतीनां निषेधमुखेन भावना कथं न कृतेति नाऽऽशङ्कनीयम् । संक्षेपेणैव वृत्तिकरणस्येष्टत्वादिति ॥१५८-१५९॥

अथ कार्मणानाहारमार्गणयोः प्रकृतमाह—

जाणऽत्थि अवत्तव्वो कम्मावेएसु तह अणाहारे ।
सिं से णत्थि अवेए भिन्नमुहुत्तं अवट्ठिअस्स गुरु ॥१६०॥(गीतिः)

(प्रे०) 'जाण' इत्यादि, कार्मणकाययोगा-ऽपगतवेदयोस्तथाऽनाहारके यासां सातवेदनीयादिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धोऽस्ति, तासामप्यवक्तव्यस्याऽन्तरं नास्ति, द्विरवक्तव्यबन्धाभावात् । अपगतवेदेऽवस्थितबन्धस्य गुर्वन्तरं भिन्नमुहूर्त्तं ज्ञेयम् । मार्गणाद्वये त्ववस्थितबन्धाभावेन तदन्तरस्य वार्ताऽपि कुतः ? ॥१६०॥ अधुना स्त्रीवेदमार्गणायां तदाह—

इत्थीअ होइ जेट्ठं अविट्ठअस्स जिणणामकम्मस्स ।
देसूणपुव्वकोडी सेसाणूणगुरुकायठिई ॥१६१॥
बारससायाईणमवत्तव्वस्स दुविहं मुहुत्तंतो ।
णिद्दादुगभयकुच्छा धुवणामजिणाण णेवभवे ॥१६२॥
सेसाण मुहुत्तंतो लहुं गुरुं ऊणजेट्ठकायठिई ।
आहारदुगस्स तहा सोलससेसधुवबंधीणं ॥१६३॥
चारसुराइउरलपणपरघायाईण पल्लपणवण्णा ।
अब्भहिया देसूणा छत्तीसाएऽत्थि सेसाणं ॥१६४॥

(प्रे०) 'इत्थीअ' इत्यादि, स्त्रीवेदमार्गणायां जिननामकर्मणोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य उत्कृष्टमन्तरं देशोनपूर्वकोटीप्रमाणं भवति, कथमिति चेत्, कथ्यते—स्त्रीवेदमार्गणायां जिननाम्नो बन्धः कर्मभूमिमनुष्याणामेव भवति, तद्बन्धानन्तरं कालं कृत्वा जीवः पुनः स्त्रीत्वेनानन्तरभवे नैवोत्पद्यते, तस्माज्जिननाम्नोऽवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं देशोनपूर्वकोटीप्रमाणमेवाऽऽयाति, न ततोऽधिकम् । तथाऽत्र 'सेसाण' त्ति उक्तशेषाऽवस्थितबन्धयोग्यप्रकृतीनां जिननामाऽऽयुश्चतुष्कवर्जितशेषसर्वपञ्चदशाधिकशतप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरम् 'ऊणगुरुकायठिई' त्ति स्त्रीवेदमार्गणाया देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणं भवति । तच्चाऽन्तरं मार्गणायाः प्रारम्भेऽन्तकाले चावस्थितबन्धद्वयान्तरालकालप्रमाणं ज्ञेयम् । 'बारससायाईण' इत्यादि, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य 'दुविहं' ति जघन्यमुत्कृष्टश्चान्तरं 'मुहुत्तंतो' त्ति मुहूर्तान्तः—अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । तथा 'णिद्दा' इत्यादि, निद्राद्विक-भय-जुगुप्सा-नवनामध्रुवबन्धि-जिननामरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां 'णेव भवे' त्ति प्रस्तुतत्वादवक्तव्यबन्धस्यान्तरं न भवति, तासां तत्र द्विरवक्तव्यबन्धस्याप्राप्तेः, भावना तु स्थितिबन्धमनुसृत्यावसेया ।

णपुंसे हवेज्ज जेट्ठं अवट्ठिअस्स जिणणामकम्मस्स ।
अब्भहियसागरतिगं सेसाणोघव्व विण्णेयं ॥१६९॥
धुवणामणिद्ददुगभयकुच्छाणं णो भवे अवत्तव्वे ।
बारससायाईणं भिन्नमुहुत्तं भवे दुविहं ॥१७०॥
सेसाण मुहुत्तंतो लहुं गुरुं ऊणअद्धपरिअट्टो ।
आहारदुगस्स तहा सोलससेसधुवबंधीणं ॥१७१॥
साहियतेत्तीसुदही सोलससुहमाइउरलुवंगाणं ।
ऊणा तेत्तीसुदही दुवीसथीआइवइराणं ॥१७२॥
तिरिणरगोअदुगाणं असंखलोगा असंखपरिअट्टा ।
उरलविउवछक्काणं तित्थस्स य पुव्वकोडितंतो ॥१७३॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'णपुंसे' इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां जिननामकर्मणोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं साधिकत्रिसागरोपमप्रमाणं भवति । कथमेतदवगीयते ? इति चेद्, उच्यते–अत्र नपुंसकवेदमार्गणायां जिननाम्नोऽवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं साधिकत्रिसागरोपमप्रमाणं यदुक्तं, तत्तृतीयनरकमाश्रित्य विज्ञेयम्, यतश्चतुर्थादिनरकेषु जिननाम्नो बन्धो नैव भवति । तथा देवलोके तु नपुंसकवेदमार्गणाया असम्भवः । तृतीयनरकेऽपि ये जिननामबन्धका भवन्ति, तेषां साधिकत्रिसागरोपमप्रमाणादधिकमायुर्न सम्भवति, अत उक्तप्रमाणमेव तत्र प्रकृतान्तरमिति । 'सेसाणं' ति उक्तशेषप्रकृतीनां जिननामा-ऽऽयुश्चतुष्करहितशेषपञ्चदशशतप्रकृतीनामित्यर्थः । तासामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरम् 'ओघव्व विण्णेयं' ति ओघवद्विज्ञेयम् । तद्यथा वैक्रियद्विक--देवद्विक-नरकद्विकानीति षट्प्रकृतीनां प्रकृतान्तरमोघवदसङ्ख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, आहारकद्विकस्य देशोनाऽर्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनामसङ्ख्यलोकप्रमाणम्, तथा शेषचतुरधिकशतप्रकृतीनां श्रेणेरसङ्ख्यातभागप्रमाणमभ्यूह्यम् ।

अत्र भावना त्वोघवक्तव्यतानुसारेण बोध्येति । 'धुवणाम०' इत्यादि, अत्र नपुंसकवेदमार्गणायां 'धुवणाम' त्ति नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतयस्तद्यथा- वर्णचतुष्क- तैजस--कार्मणशरीरा-ऽगुरुलघू-पघात--निर्माणनामानीति 'णिद्ददुगं' ति निद्राद्विकं-निद्रा-प्रचलारूपम् 'भयकुच्छाणं' ति भयजुगुप्सामोहनीये चेति तासां त्रयोदशप्रकृतीनां 'णो भवे अवत्तव्वे' त्ति अवक्तव्यबन्धस्यान्तरं न भवति, तत्र तासामवक्तव्यबन्धस्य द्विरभवनात् । 'बारससाया ईणं' ति प्रसिद्धानां सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामत्राऽवक्तव्यबन्धस्य 'द्विविधं' जघन्यमुत्कृष्ट-

ऽन्तरं 'भिन्नमुहुत्तं भवे' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । 'सेसाण' त्युक्तशेषाणामवक्तव्यबन्धयोग्यप्रकृतीनां, तद्यथा-स्त्यानर्द्धित्रिकम्, वेदत्रयम्, मिथ्यात्वम्, सञ्ज्वलनचतुष्करहितशेषद्वादशकषायमोहनीयाः, तथा नाम्नस्तु स्थिराऽस्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्त्ययशःकीर्ति-वर्णचतुष्क-तैजसकार्मणशरीरा-ऽगुरुलघू-पघात-निर्माणनामानीति पञ्चदशप्रकृतिरहिताः शेषसर्वा द्विपञ्चाशन्नामकर्मप्रकृतयः, गोत्रद्विकञ्चेति सर्वसङ्ख्ययोक्तशेषत्रिसप्ततिप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य 'लहु' ति जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । अथैतासां त्रिसप्ततिप्रकृतीनां गुर्वन्तरं दर्शयन्नाह– 'आहारदुगस्स' त्ति आहारकद्विकस्य तथा 'सोलस धुवबंधीणं' ति स्त्यानर्द्धित्रिकम्, मिथ्यात्वं तथा सञ्ज्वलनरहितशेषद्वादशकषायमोहनीयप्रकृतय इति षोडशशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'गुरु' ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'ऊणअद्धपरिअट्टो' त्ति देशोनाऽर्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणं भवतीति पूर्वेणाऽन्वयः । 'सोलससुहुमाइउरलुवंगाणं' ति सूक्ष्मत्रिक-विकलेन्द्रियजातित्रिका–ऽऽतपै-केन्द्रियजाति-स्थावर-पञ्चेन्द्रियजाति-त्रस-पराघातो-च्छ्वास-बादरत्रिकरूपाणां षोडशप्रकृतीनां तथौदारिकाङ्गोपाङ्गस्येति सप्तदशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य गुर्वन्तरं 'साहियतेत्तीसुदही' त्ति साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं विज्ञेयम् । 'दुवीसथीआइवइराणं' ति स्त्रीवेदादिद्वाविंशतिप्रकृतीनां-स्त्री-नपुंसकवेदा-ऽऽद्यरहितसंहननपञ्चका-ऽऽद्यवर्जितसंस्थानपञ्चककुखगति दुर्भगत्रिक-सुभगत्रिक-सुखगति–प्रथमसंस्थान-पुरुषवेदरूपद्वाविंशतिप्रकृतीनां प्रथमसंहननस्य चाऽवक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टमन्तरम् 'ऊणा तेत्तीसुदही' त्ति देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं ज्ञातव्यम् । 'तिरिणरगोअदुगाणं' ति द्विकशब्दस्य प्रत्येकमन्वयात्तिर्यग्गति–तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकम्, नरगति-नरानुपूर्वीरूपं नरद्विकं, उच्चैर्गोत्रनीचैर्गोत्रलक्षणं गोत्रद्विकञ्च-तेषामिति षट्प्रकृतीनां प्रकृतान्तरं 'असंखलोगा' त्ति असङ्ख्यलोकाकाशप्रदेशतुल्यसमयप्रमाणं भवति । 'उरलविउव्वछक्काणं' ति औदारिकशरीरं तथा वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्ग-देवगति-देवानुपूर्वी-नरकगति-नरकानुपूर्वीभेदभिन्नं वैक्रियषट्कं च–तेषामिति सप्तप्रकृतीनां प्रकृतान्तरम् 'असंखपरिअट्टा' त्ति असङ्ख्यपुद्गलपरावर्तप्रमाणं बोध्यम् । 'तित्थस्स य' त्ति तीर्थकरनामकर्मणश्च प्रकृताऽन्तरं पुव्वकोडितंसूनो' त्ति देशोनपूर्वकोटितृतीयभागप्रमाणं भवति । अत्राऽवक्तव्यप्रदेशबन्धान्तरस्य भावनोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धसत्काक्तव्यबन्धान्तरस्य भावनायाः समाना द्रष्टव्येति ॥१६९-१७०-१७१-१७२-१७३॥

अथ मति-श्रुता-ऽवधिज्ञानमार्गणासु, अवधिदर्शनमार्गणायां, सम्यक्त्वौघमार्गणायां च प्रकृतान्तरमभिधित्सुराह—

णाणतिगे ओहिम्मि य सम्मे य अवट्ठिअस्स उक्कोसं ।
तित्थस्सोघव्व भवे सेसाणूणगुरुकायठिई ॥१७४॥

पंचण्ह णराईणं लहु अवत्तव्वगस्स विण्णेयं ।
पलिओवममब्भहियं सेसाण भवे मुहुत्तंतो ॥१७५॥
साहियतेत्तीसुदही मज्झऽट्ठकसायदसणराईणं ।
जेट्ठं अंतमुहुत्तं बारससायाइगाण भवे ॥१७६॥
सेसाणं देसूणा जेट्ठा कायट्ठिई भवे अहवा ।
साहियतेत्तीसुदही आहारदुगस्स बोद्धव्वं ॥१७७॥

(प्रे०) 'णाणत्ति०' इत्यादि, तिसृषु मति-श्रुताऽवधिज्ञानमार्गणासु **'ओहिम्मि'** त्ति अवधिदर्शनमार्गणायां **'सम्मे य'** त्ति सम्यक्त्वौघमार्गणायाञ्चेति पञ्चमार्गणास्थानेषु **'तित्थ-स्स'** त्ति तीर्थंकरनामकर्मणोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरम् **'ओघव्व'** त्ति ओघवत्साधिकत्रय-स्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति । तथोक्तमार्गणासु **'सेसाणं'** ति जिननामाऽऽयुर्द्विकवर्जितशेषा-ऽवक्तव्यबन्धयोग्यषट्सप्ततिप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरम् **'ऊणगुरुकायठिई'** त्ति अत्रोक्तमार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं—साधिकषट्षष्टिसागरोपमप्रमाणं भवतीत्यर्थः । **'पंचण्ह'** इत्यादि, तास्वेव पञ्चमार्गणासु **'पंचण्ह णराईणं'** ति नरद्विकौ-दारिकशरीरौ-दारिकाङ्गो-पाङ्ग-वज्रर्षभनाराचसंहननात्मकपञ्चप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य **'लहु'** ति जघन्यमन्तरं **'पलि-ओवममब्भहियं'** ति अभ्यधिकपल्योपमप्रमाणं वैमानिकप्रथमदेवलोकोत्पत्त्यपेक्षयाऽऽगच्छतीति विज्ञेयम् । **'सेसाणं'** ति आयुर्द्विक-पञ्चनरगत्यादिप्रकृतिरहितशेषबध्यमानद्विसप्ततिप्रकृतीनामवक्तव्य-प्रदेशबन्धस्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । **'साहिय०'** इत्यादि, तास्वेव पञ्चमार्गणासु **'मज्झ'** इत्यादि, अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क-प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्करूपमध्यमाऽष्टकषाया स्तथा दशनरगत्यादिप्रकृतयस्तद्यथा-नरगति-नरानुपूर्व्यौ-दारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-वज्रर्षभनाराच-संहनन-तीर्थंकरनाम-सुरगति-सुरानुपूर्वी-वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गनामानीति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टा-दशप्रकृतीनां **'जेट्ठं'** ति प्रक्रमादवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं **'साहियतेत्तीसुदही'** त्ति साधिक-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणम् । **'बारससायाइगाण'** त्ति सातवेदनीय-हास्य-रति-स्थिर-शुभ-यशः-कीर्तिरूपाः षट् तत्प्रतिपक्षभूताश्च षडिति द्वादशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । **'सेसाणं'** इत्यादि, पूर्वोक्तासु पञ्चमार्गणास्वत्रोक्तास्त्रिंशत्प्रकृतय आयुर्द्विकञ्चेति द्वात्रिंशत्प्रकृतिवर्जितशेषबध्यमानसप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीनां प्रक्रमादवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं **'देसू-णा जेट्ठा कायट्ठिई'** त्ति मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं-साधिकषट्षष्टिसागरोपमप्रमाणं भवतीत्यर्थः । **'अहवा'** त्ति अथवा मतान्तरेण **'आहारदुगस्स'** त्ति आहारकद्विकस्याऽवक्तव्यब-न्धस्य ज्येष्ठमन्तरं **'साहियतेत्तीसुदही'** त्ति साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं **'बोद्धव्वं'** ति

अवसातव्यम् । अत्राऽप्यवक्तव्यप्रदेशबन्धान्तरस्य समस्ताऽपि भावनोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धसत्कप्रकृतस्थलीयभावनावद् बोध्येति ॥१७४-१७५-१७६-१७७॥

अथ मनःपर्यवज्ञान-संयमौघमार्गणयोर्प्रकृतान्तरं वक्ति—

मणणाणसंजमेसु अवट्ठिअस्स परमं मुणेयव्वं ।
सव्वेसिं पयडीणं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥१७८॥
सव्वाण मुहुत्तंतोऽवत्तव्वस्स लहुगं गुरुं वि भवे ।
बारससायाईणं सेसाणूणगुरुकायठिई ॥१७९॥

(प्रे०) 'मण०' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञान-संयमौघमार्गणयोः 'सव्वेसिं पयडीणं' ति देवायुर्वर्जितशेषबध्यमानचतुःषष्टिप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य 'परमं' ति ज्येष्ठमन्तरं 'देसूणा जेट्ठकायठिई' त्ति मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं-देशोनपूर्वकोटीप्रमाणं ज्ञातव्यम् । 'सव्वाण' इत्यादि, उक्तमार्गणाद्वये 'सर्वासां' देवायुष्करहितशेषबध्यमानचतुःषष्टिप्रकृतीनाम् 'अवत्तव्वस्स' त्ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य 'लहुगं' ति 'लघुकं' जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । तथा द्वादशसातवेदनीयादिप्रकृतीनां तु 'गुरुं वि भवे' त्ति अवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवतीत्यर्थः । 'सेसाण' इत्यादि, उक्तसातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतयो देवायुश्चेति त्रयोदशप्रकृतिरहितबध्यमानशेषद्विपञ्चाशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं भवतीति ॥१७८–१७९॥

अथाऽज्ञानद्विके अभव्य-मिथ्यात्वमार्गणयोश्च प्रस्तुताऽन्तरमाचष्टे—

दुअणाणअभवियेसु तह मिच्छत्ते अवट्ठिअस्स गुरुं ।
ओघव्व जाणियव्वं सप्पाउग्गाण सव्वेसिं ॥१८०॥
भिन्नमुहुत्तं हवएऽवत्तव्वस्स लहुमधुवबंधीणं
छासट्ठीए णो चिअ मिच्छस्स भवे अणाणदुगे ॥१८१॥
बारससायाईणं तह पुमथीणं गुरुं मुहुत्तंतो ।
देसूणं पल्लतिगं वीसणपुमआइवइराणं ॥१८२॥
णेयं असंखलोगा तिरियणरदुगुच्चणीअगोआणं ।
उरलविउवछक्काणं भवे असंखेज्जपरिअट्टा ॥१८३॥

साहियतेत्तीसुदही सोलससुहमाइउरलुवंगाणं।
उज्जोअस्स हवेज्जा अब्भहिया एगतीसुदही ॥१८४॥

(प्रे०) 'दुअणाण०' इत्यादि, मत्यज्ञान-श्रुताऽज्ञानरूपे द्वे अज्ञानमार्गणे अभव्यमार्गणा च तासु तथा 'मिच्छत्ते' त्ति मिथ्यात्वमार्गणायामिति सर्वसङ्ख्यया चतुर्मार्गणासु 'सप्पाउग्गाण सव्वेसिं' ति स्वप्रायोग्याणामाहारकद्विक-जिननामाऽऽयुश्चतुष्करहितशेषत्रयोदशशतप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमोघवज्ज्ञातव्यम् । तद्भावनाऽप्योघवद् द्रष्टव्या । 'भिन्ने०' त्यादि, 'अधुवबंधीणं छासट्ठीए' त्ति आहारकद्विक-जिननामा-ऽऽयुश्चतुष्कवर्जितशेषपट्षष्टिप्रमिताऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम् 'अवत्तव्वस्स लहु' ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यमन्तरं 'भिन्नमुहुत्तं' ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । तथा मति-श्रुताऽज्ञानमार्गणयोः 'मिच्छस्स' त्ति मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवक्तव्यबन्धस्यान्तरं 'णो चिअ' 'भवे' त्ति नैव भवति, तत्र तस्य द्विरवक्तव्यबन्धभवनाऽभावात् । 'बारस०' इत्यादि, द्वादशसातादिप्रकृतीनां तथा 'पुमथीण' ति पुरुष-स्त्रीवेदयोः 'गुरू' ति अवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'मुहुत्तंतो' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । 'देसूणा' इत्यादि, विंशतिर्नपुंसकवेदादिप्रकृतीनां वज्रर्षभनाराचप्रकृतेश्चाऽवक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं देशोनपल्योपमत्रयं ज्ञातव्यम् । विंशतिर्नपुंसकवेदादिप्रकृतय इमाः—नपुंसकवेदा-ऽऽद्यवर्जसंहननपञ्चका-ऽऽद्यरहितसंस्थानपञ्चक-कुखगति-दुर्भगत्रिक-सुभगत्रिक--सुखगति-समचतुरस्रसंस्थाननामानीति । 'तिरियणरदुगुच्चणीअगोआण' ति तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकं, नरगति-नरानुपूर्वीलक्षणं नरद्विकं, उच्चैर्नीचैर्गोत्रे चेति षट्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरम् 'असंखलोगा' त्ति असङ्ख्यलोकाकाशप्रदेशतुल्यसमयप्रमाणं ज्ञेयम् 'उरल' त्ति औदारिकशरीरं तथा 'विउव्वछक्काणं' ति वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्ग—देवगति—देवानुपूर्वी—नरकगति-नरकानुपूर्वीस्वरूपं वैक्रियषट्कं चेति सप्तप्रकृतीनां प्रक्रमादवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरम् 'भवे असंखेज्जपरिअट्टा' त्ति ओघवदसङ्ख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणं भवति । 'साहिय' इत्यादि, 'सोलससुहमाइउरलुवंगाण' ति सूक्ष्मत्रिक-विकलेन्द्रियजातित्रिका-ऽऽतपै-केन्द्रिय-स्थावर-पञ्चेन्द्रियजाति-त्रस-पराघातो-च्छ्वास-बादरत्रिकानीति संग्रहगाथोक्तषोडशसूक्ष्मादिप्रकृतय औदारिकाङ्गोपाङ्गञ्च तासां प्रक्रमादवक्तव्यबन्धस्य गुर्वन्तरं 'साहियतेत्तीसुदही' त्ति साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति । अत्राऽवक्तव्यप्रदेशबन्धाऽन्तरस्य सर्वाऽपि भावनोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धभावनातुल्यैव । तथाऽप्यत्र स्थानाऽशून्यार्थं किञ्चिन्निगद्यते, तद्यथा-अत्रोक्तषोडशसूक्ष्मादिप्रकृतीनामवक्तव्यस्य ज्येष्ठमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं यदभिहितम् , तद्घटना त्वित्थम्--उक्तप्रकृतिमध्यात्सूक्ष्मत्रिक-विकलेन्द्रियत्रिकै-केन्द्रिय-स्थावरा-ऽऽतपनामेति नवप्रकृतीनां तु यदि कश्चिन्मनुष्यः स्वभवस्योपान्त्यान्तर्मुहूर्तकालेऽवक्तव्यबन्धं कृत्वाऽन्तिमाऽन्तर्मुहूर्तकाले तासा-

मबन्धं विदधाति । ततश्च कालं कृत्वा स सप्तमनरक उत्पद्यते, तत्राऽपि तासामबन्धकतया तिष्ठति, पश्चात् ततोऽपि कालं कृत्वा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्भवति, तत्राऽन्तर्मुहूर्तकालानन्तरं तासां सूक्ष्मत्रिकादिप्रकृतीनां पुनरवक्तव्यबन्धमुपरचयति तदा तासां प्रकृतान्तरकालः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाण आगच्छति । तथा शेषपञ्चेन्द्रियजाति-त्रसपराघातोच्छ्वास-बादरत्रिकाणीति सप्तप्रकृतीनां कश्चित्तिर्यङ् स्वाऽन्तिमान्तर्मुहूर्तकालेऽवक्तव्यबन्धं करोति, पश्चात्ततः कालं कृत्वा सप्तमनरक उत्पद्य तत्र चोक्तप्रकृतिसप्तकं निरन्तरं बद्ध्वा ततोऽपि कालं कृत्वा पुनर्तिर्यग्गतावुत्पद्यते, तदा तत्रैकाऽन्तर्मुहूर्तं यावदुक्तप्रकृतीनां बन्धं कृत्वा पश्चादबन्धं विदधाति । तदनन्तरं च यदा पुनर्तदवक्तव्यबन्धं विरचयति, तदोक्तरीत्या तासामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं जायत इति । एवमौदारिकाङ्गोपाङ्गस्याऽपि, नवरं पूर्वसत्कान्तर्मुहूर्तकालेन न्यूनत्वमत्र भाव्यम्, औदारिकोङ्गोपाङ्गस्य नारकभवाद्यसमय एव नूतनबन्धत्वेनावक्तव्यबन्धस्य सद्भावात् । 'उज्जोअस्स' त्ति उद्योतनामकर्मणोऽवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति प्रस्तावाद् गम्यते, तच्चाऽन्तरमत्र **'हवेज्जा अब्भहिया एगतीसुदही'** त्ति अभ्यधिकैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति । तद्यथा-कश्चिद् मनुष्यो द्रव्यसंयतः स्वोपान्त्यान्तर्मुहूर्तकाले उद्योतनाम्नोऽवक्तव्यबन्धं विधाय ततः क्रमेण कालं कृत्वा नवमग्रैवेयकदेवलोक उत्पद्यते, पश्चात्ततश्च्युत्वा पुनर्मनुष्यो भवति, तत्रान्तर्मुहूर्तानन्तरं पुनरुद्योतनाम्नोऽवक्तव्यबन्धं विदधाति, इत्थं तस्य प्रकृताऽन्तरं साधिकमेकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमागच्छतीति ज्ञेयम् ॥१८०-१८१-१८२-१८३-१८४॥ अधुना विभङ्गज्ञानमार्गणायां तन्निर्दिक्षित—

देसूणपुव्वकोडी विभंगणाणे अवट्ठिअस्स गुरुं ।
बारससुराइगाणं पयडीणं अंतरं णेयं ॥१८५॥
मणुयदुगुच्चाण भवे इगतीसा सागरोवमाइं च ।
अब्भहिया दो अयरा हवए तिण्हायवाईणं ॥१८६॥
सेसाणं देसूणा जेट्ठा कायट्ठिई भवे अण्णे ।
भिन्नमुहुत्तं जेट्ठं वयंति बारससुराईणं ॥१८७॥
ण अवत्तव्वस्स भवे मिच्छत्तस्स दुविहं मुहुत्तंतो ।
सेसाणं पयडीणं छासट्ठीए मुणेयव्वं ॥१८८॥

(प्रे०) **'देसूण०'** इत्यादि, विभङ्गज्ञानमार्गणायां **'बारससुराइगाणं पयडीण'** ति सुरद्विक-वैक्रियद्विक-नरकद्विक-सूक्ष्मत्रिक-विकलेन्द्रियत्रिकाणीति द्वादशप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य **'गुरुं अंतरं'** ति ज्येष्ठमन्तरं देशोनपूर्वकोटीप्रमाणं भवतीति ज्ञेयम् । कथमेतदवसीयत

इति चेद्, उच्यते, उक्तसुरगत्यादिद्वादशप्रकृतीनां मनुष्यतिर्यग्गत्योरेव बन्धसद्भावः, तत्र च विभङ्गज्ञानं देशोनपूर्वकोटीकालं यावत् सम्भवति, अत उक्तप्रकृतीनां प्रकृतान्तरमपि तावत्प्रमाणं प्रदर्शितमिति ॥ "मणुय०" इत्यादि, प्रस्तुतविभङ्गज्ञानमार्गणायां मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वीरूपं मनुष्यद्विकमुच्चैर्गोत्रञ्चेति प्रकृतित्रयस्य, तस्य किम्? उच्यते, अत्र पूर्वगाथातोऽनुवृत्तिग्रहणादवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमिति गम्यते, तच्चाऽन्तरमत्र '**इगतीसा सागरोवमाइं य**' त्ति अत्र स्वमतेन साधिकैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं ज्ञेयम् । तच्च प्रथमं मनुष्यगतौ पश्चाच्च ग्रैवेयकदेवलोकस्याऽन्तकाले बन्धकरणात्प्राप्यते । अत्र 'च' कारो मतान्तरसूचकः, मतान्तरेण--महाबन्धकारादिमतेन प्रकृतान्तरमत्र देशोनैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति, तेषां मते पर्याप्तावस्थायामेव विभङ्गज्ञानस्य सद्भावात् ।

ननु प्रकृतान्तरमत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं कथं नाऽऽयातीति चेत्, उच्यते, त्र्यस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणकायस्थितिस्तु सप्तमनरकाऽपेक्षया प्राप्यते किन्त्वत्र प्रस्तुतमार्गणागतस्य सप्तमनारकस्य मनुष्यद्विकबन्धाऽसम्भवात् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं प्रकृतान्तरं नैव प्राप्यत इत्यर्थः । '**तिण्हायवाईण**'' ति आतपैकेन्द्रिय-स्थावरनामानीति त्रिप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य गुर्वन्तरं '**अब्भहिया दो अयरा**' त्ति अभ्यधिकद्विसागरोपमप्रमाणं भवति । यत उक्ताऽऽतपादिप्रकृतीनां बन्धः ईशानदेवलोकपर्यंतमेव जायते । तत्रत्या उत्कृष्टकायस्थितिश्च साधिकसागरोपमद्वयप्रमाणा एव । अत उक्तप्रकृतीनां प्रकृतान्तरमपि एतावन्मात्रं प्रोक्तम् । '**सेसाण**' मित्यादि, तत्रैव विभङ्गज्ञानमार्गणायामुक्तशेषाऽवस्थितबन्धयोग्यप्रकृतीनामर्थादुपर्युक्ताऽष्टादशप्रकृतिरहितास्तथाऽऽहारकद्विक-जिननामाऽऽयुश्चतुष्कवर्जिताः शेषपञ्चनवतिप्रकृतयः सन्ति, तासां सर्वासामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमेतन्मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं भवति । तथा '**बारससुराईण**'' ति पूर्वोक्तद्वादशसुरगत्यादिप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरम् '**अन्ने**' त्ति अन्ये महाबन्धकाराः 'भिन्न' इत्यादि, अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं कथयन्ति, यतस्तेषां मतेन तिर्यङ्मनुष्याणामेकान्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तमेव विभङ्गज्ञानावस्थानात् । 'ण' इत्यादि, मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवक्तव्यप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं नैव भवति । '**सेसाण**' इत्यादि, 'छासट्ठीए' त्ति उक्तशेषाऽवक्तव्यबन्धयोग्यपट्पष्टेः प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य '**दुविहं**' ति द्विविधं जघन्यमुत्कृष्टञ्चान्तरं '**मुहुत्तंतो**' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । अत्रावक्तव्यप्रदेशबन्धान्तरस्य सर्वाऽपि भावनोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धसत्कभूयस्काराधिकारीयान्तरद्वारतो दर्शनीया, तत्समानवक्तव्यत्वादिति ॥१८५-१८६-१८७-१८८॥ अथ सामायिकसंयमादिमार्गणासु प्रकृतान्तरमाह--

सामाइअछेएसुं सप्पाउग्गाण सव्वपयडीणं ।
ऊणा गुरुकायठिई अवट्ठिअस्स हवए जेट्ठं ॥१८९॥

चउदससायाईणं दुहा अवत्तव्वगस्स विण्णेयं ।
भिन्नमुहुत्तं ण भवे सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥१९०॥

(प्रे०)'सामा०' इत्यादि, सामायिकसंयम-छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोः 'सप्पाउग्गाण-सव्वपयडीणं'ति अवस्थितबन्धयोग्यसर्वप्रकृतीनाम् । ताश्चाऽत्र सामायिकसंयमछेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोर्ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणस्य स्त्यानर्द्धित्रिकरहितषट्प्रकृतयः, वेदनीयद्विकं, मोहनीयस्यैकादशप्रकृतयः, नाम्नश्चतुस्त्रिंशत्प्रकृतयः, उच्चैर्गोत्रम्, अन्तरायपञ्चकञ्चेति सर्वसङ्ख्यया चतुःषष्टिप्रकृतयः सन्ति, तासामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरम् 'ऊणा गुरुकायठिई'त्ति मार्गणाया देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणं भवति । तद्धेतुस्तु प्रागनेकशः प्रोक्तः स एवाऽत्रापि चिन्तनीयः । 'चउदस०'इत्यादि, उक्तमार्गणाद्वये सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतय आहारकद्विकञ्चेति चतुर्दशप्रकृतीनाम् 'अवत्तव्वस्स दुहा' त्ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य द्विधा जघन्यमुत्कृष्टं चाऽन्तरं 'भिन्नमुहुत्तं' ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं विज्ञेयम् । 'ण भवे सप्पाउग्गाण सेसाणं' ति अवशिष्टानां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्याऽन्तरमत्र मार्गणाद्वये न भवति, द्विरवक्तव्यबन्धाभावात् । अत्र सामायिक-छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोरवशिष्टा अवक्तव्यबन्धयोग्याश्चतुस्त्रिंशत्प्रकृतयस्तासामवशिष्टानां मार्गणाद्वयेऽपि द्विरवक्तव्यबन्धाऽयोगादन्तरं न भवतीति ज्ञेयम् ॥१८९-१९०॥

अथाऽसंयममार्गणायां प्रकृतान्तरं वक्ति—

अजए ओघव्व भवे सव्वाण अवट्ठिअस्स उक्कोसं ।
जाणत्थि मुहुत्तंतो सिमवत्तव्वस्स होइ लहुं ॥ १९१॥
अडमिच्छाईण गुरुं देसूणो होइ अद्धपरिअट्टो ।
बारससायाईणं भिन्नमुहुत्तं मुणेयव्वं ॥ १९२॥
थीआइदुवीसवइरउज्जोआणूणजलहि तेत्तीसा ।
तिरिणरगोअदुगउरलविउव्वछक्काण ओघव्व ॥ १९३॥
अब्भहियो पुव्वाणं कोडितिभागो जिणस्स विण्णेयो ।
साहियतेत्तीसुदही सत्तरसण्हऽत्थि सेसाणं ॥ १९४॥

(प्रे०) 'अजए' इत्यादि, 'अजए' त्ति असंयममार्गणायां 'सव्वाण' त्ति अवस्थितबन्धयोग्यसर्वप्रकृतीनामर्थादाहारकद्विकायुश्चतुष्करहितशेषचतुर्दशाधिकशतप्रकृतीनाम् 'अवट्ठिअस्स उक्कोसं' ति अवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमोघवद् भवति । 'जाणऽत्थि सिं' ति यासां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धोऽस्ति, तासां प्रकृतीनामर्थादाहारकद्विकायुष्कचतुष्कवर्जितशेषसप्तषष्टध्रुवबन्धिप्रकृतीनां

स्त्यानर्द्धित्रयाष्टकस्य चेति पञ्चसप्ततिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य 'लहु' त्ति जघन्यमन्तरं मुहूर्तान्तः-अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति। तत्रैव असंयममार्गणायाम् 'अडमिच्छाईण' त्ति मिथ्यात्व-स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्करूपाऽष्टप्रकृतीनां 'गुरू' ति अवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं देशोनाऽर्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणं भवति, तथा प्रसिद्धानां साताऽसातादिद्वादशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति। तथा 'थीआइदुवीस' त्ति स्त्री-नपुंसकवेदाऽऽद्यरहितसंहननपञ्चका-ऽऽद्यरहितसंस्थानपञ्चक-कुखगति-दुर्भगत्रिक-सुभगत्रिक-सुखगति-प्रथमसंस्थान-पुरुषवेदरूपाणां द्वाविंशतिप्रकृतीनां तथा 'वइरउज्जोआण' त्ति वज्रर्षभनाराचसंहननोद्योतनाम्नोश्चावक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठान्तरं देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं विज्ञेयम्, तच्चैवम्—कश्चिज्जन्तुः सप्तमनरकपृथिव्यामुत्पद्यैतासां यथायोगं सर्वासां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धं कृत्वोत्पत्त्यनन्तरमन्तर्मुहूर्तकालेन सम्यक्त्वं प्राप्य देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमं यावत् तन्मध्यात् कासाञ्चित्प्रकृतीनामबन्धं कृत्वा कासाञ्चित्प्रकृतीनां च निरन्तरबन्धं कृत्वाऽन्तर्मुहूर्तावशेषे मिथ्यात्वं प्राप्य यथायोगमेतासां सर्वासां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धमुपरचयति, तस्माद्देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं प्राप्यते, अनुत्तरेषु स्त्रीवेदादीनां कासाञ्चिद् बन्धाभावात् कासाञ्चित् सुभगत्रिकादीनां निरन्तरबन्धाच्च द्विरवक्तव्यबन्धाभावात् तथाऽनुत्तरभवात्पूर्वं संयमसद्भावादसंयममार्गणाया अभावेनैतदन्तरं नैव प्राप्यते। 'तिरिणरगोअदुग' त्ति अत्र 'द्विक'शब्दस्य प्रत्येकमन्वयात्तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकम्, नरगति-नरानुपूर्वीरूपं नरद्विकम्, तथोच्चैर्गोत्रनीचैर्गोत्ररूपं गोत्रद्विकम् 'उरल' त्ति औदारिकशरीरम् 'विउव्वछक्काण' त्ति वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्ग-देवगति-देवानुपूर्वी-नरकगति-नरकानुपूर्वीस्वरूपं वैक्रियषट्कं चेति तासां त्रयोदशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरम् 'ओघव्व' त्ति ओघवद् भवति। 'अब्भहियो' इत्यादि, तत्रैव जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं किञ्चिदधिकं पूर्वकोटित्रिभागप्रमाणं विज्ञेयम्, तच्चैवम्—पूर्वकोट्यायुष्कः कश्चिन्मिथ्यादृष्टिमनुष्यस्त्रिभागाद्यन्तर्मुहूर्ते नरकायुर्बद्ध्वा क्षयोपशमसम्यक्त्वं प्राप्य जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धं कृत्वा मनुष्यभवान्तिमान्तर्मुहूर्ते मिथ्यात्वं गत्वा जिननाम्नोऽबन्धं करोति, तदनन्तरं नरकं गत्वा पर्याप्तो भूत्वा सम्यक्त्वं प्राप्नोति, तदा सम्यक्त्वप्राप्तिप्रथमसमये जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धमुपरचयति, तदेतदवक्तव्यबन्धस्यान्तरं घटामञ्चति। 'सत्तरसण्हत्थि सेसाणं' ति जाति-पञ्चकौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-पराघातो-च्छ्वासा ऽऽतप-त्रसचतुष्क-स्थावरचतुष्करूपाणां शेषाणां सप्तदशप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'साहियतेत्तीसुदही' त्ति साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं विज्ञेयम्। अत्र सर्वाऽपि भावनोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धसत्कभूयस्काराधिकारीयाऽन्तरद्वारतोऽवसेया ॥१९१-१९२-१९३-१९४॥

अथाऽचक्षुर्दर्शनमार्गणायां भव्यमार्गणायाञ्च प्रकृतान्तरमोघवदतिदिशन्नाह—

अणयणभविएसु खलु सव्वाण अवट्ठिअस्स उक्कोसं ।
तहऽवत्तव्वस्स दुहा अंतरमोघव्व बोद्धव्वं ॥१९५॥

(प्रे०) 'अणयण०' इत्यादि, अचक्षुदर्शनमार्गणायां तथा भव्यमार्गणायां, अत्र 'खलु' पादपूर्त्यर्थम्, 'सव्वाण' त्ति अवस्थितबन्धयोग्यसर्वप्रकृतीनाम्, तत्राऽऽयुश्चतुष्कस्य तु प्रकृतान्तरं पुरैव प्रतिपादितम्, अतस्तद्रहितशेषसर्वषोडशाऽधिकशतप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरमोघवद् बोद्धव्यम् । तथैव तासां षोडशाऽधिकशतप्रकृतीनाम् 'ऽवत्तव्वस्स दुहा' त्ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य द्विधा-जघन्यमुत्कृष्टञ्चाऽप्यन्तरमोघवद् बोद्धव्यम् । भावनाप्यत्रौघवदेव द्रष्टव्येति ॥१९५॥

अथाऽशुभलेश्यात्रिके तदेवाऽऽह—

तेरसतित्थाईणं अवट्ठिअस्स गुरुमसुहलेसासु ।
भिन्नमुहुत्तं णवरं जिणस्स काऊअ तिअयराऽब्भहिया ॥१९६॥ (गीतिः)
पल्लासंखयभागो तिआयवाईण सिं मुहुत्तंतो ।
बिंति परे सेसाणं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥१९७॥

(प्रे०) "तेरस०" इत्यादि, तीर्थंकरनामादित्रयोदशप्रकृतीनाम्-तीर्थंकरनाम-सुरद्विक-वैक्रियद्विक-नरकद्विक-सूक्ष्मत्रिक-विकलत्रिकरूपाणां कृष्ण-नील-कापोताऽऽख्यासु तिसृष्वशुभलेश्यामार्गणास्ववस्थितप्रदेशबन्धस्य 'गुरु' ति ज्येष्ठमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । यत उक्तप्रकृतीनां बन्धकास्तिर्यञ्चो मनुष्या वा, तेषां च प्रकृतमार्गणाकालस्याऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वादुक्तप्रकृतीनां प्रकृतान्तरमपि तावन्मात्रमेव । नवरं-तथाऽपि 'काऊअ' त्ति कापोतलेश्यामार्गणायां 'जिणस्स' त्ति जिननाम्नः प्रकृतान्तरमभ्यधिकत्रिसागरोपमप्रमाणं विज्ञेयम्, यतः कापोतलेश्यामार्गणायां नारकजीवानामपि जिननाम्नो बन्धसम्भवात्तदपेक्षया प्रकृतान्तरमाऽऽयाति । 'तिआयवाईण' त्ति तिसृणां आतपै-केन्द्रिय-स्थावरनामप्रकृतीनामशुभलेश्यात्रिकेऽवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं पल्योपमस्याऽसङ्ख्यातभागप्रमाणं भवति । कथमितिचेदुच्यते, अशुभलेश्यावतां देवानामुत्कृष्टमायुः पल्योपमस्याऽसङ्ख्यातभागप्रमाणमस्ति, अतस्तदपेक्षयाऽऽतपादित्रिप्रकृतीनां प्रकृतान्तरमपि तावत्प्रमाणमागच्छति । 'सिं' ति तासां उपर्युक्ताऽऽतपादित्रिप्रकृतीनां 'परे' त्ति अन्ये महाबन्धकारा अवस्थितबन्धस्य गुर्वन्तरं अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं 'बिंति' त्ति कथयन्ति, यतस्तेषां मतेनाऽशुभलेश्यानां देवेषु पर्याप्ताऽवस्थायामभावात् तिर्यङ्मनुष्यानाश्रित्य प्रकृतान्तरमागच्छतीति । 'सेसाणं' ति उक्तशेषाऽवस्थितबन्धयोग्यानां नारकैर्बध्यमानानां तिर्यङ्मनुष्याऽऽयुर्जिननामरहितशेषसर्वाऽष्टनवतिप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य गुर्वन्तरं मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं भवतीति विज्ञेयम् ॥१९६-१९७॥

अथ तास्वेवाऽवक्तव्यबन्धाऽन्तरं प्रदर्शयन्नाह—

ण अवत्तव्वस्स उरलअडणिरयाइपरघाइपणगाणं
सुरविउवदुगाण लहुं किण्हाए दससहस्ससमा ॥१९८॥
पल्लासंखंसो सिं णीलाए सुरदुगस्स काऊए ।
विउवदुगस्स सहस्सा दसवासा अंतरं णेयं ॥१९९॥
काऊए तित्थस्स ण बारससायाइगाण तीसु भवे ।
दुविहं भिन्नमुहुत्तं चउआलीसाअ होइ लहुं ॥२००॥
गुरु पल्लासंखंसो पणिंदिसुरदुगतसुरलुवंगाणं ।
तिण्हायवाइगाणं सेसाणूणगुरुकायठिई ॥२०१॥
णवरं बावीसुदही किण्हाअ विउवदुगस्स विंति परे ।
ण सुरदुगपणिंदिउरलुवंगतसतिआयवाईणं ॥२०२॥
वेउव्वदुगस्स लहुं णीलाए सागरोवमाणि दस ।
विण्णेयं किण्हाए सत्तरस भवे त्ति उण एगे ॥२०३॥

(प्रे०) '**ण अवत्तव्वस्स**' इत्यादि, त्र्यशुभलेश्यामार्गणासु '**उरल**' इत्यादि, औदारिकशरीरस्य नरकद्विकसूक्ष्मत्रिकविकलत्रिकरूपाष्टनरकगत्यादिप्रकृतीनां तथा पराघातो-च्छ्वास-बादर--पर्याप्त-प्रत्येकरूपपराघातादिपञ्चप्रकृतीनां सर्वसंख्यया चतुर्दशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्यान्तरं नास्ति । आसां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धकास्तिर्यङ्मनुष्याः, तेषां च लेश्यायाः परावर्तमानत्वेन लेश्याकालस्य च स्तोकत्वेन द्विरवक्तव्यबन्धाभावान्नास्त्यन्तरम् । "**सुरविउव०**" इत्यादि, कृष्णलेश्यामार्गणायां सुरद्विकवैक्रियद्विकरूपचतुष्प्रकृतीनां प्रस्तुतत्वादवक्तव्यबन्धस्य जघन्यान्तरं '**दससहस्ससमा**' त्ति दशसहस्रवर्षप्रमाणमवसातव्यम् । '**पल्ला०**' इत्यादि, नीलायां '**सिं**' त्ति अनन्तरोक्त-सुरद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनां जघन्यमन्तरं पल्योपमाऽसंख्येयभागमितं, '**सुरदुगस्स काऊए**' त्ति कापोतलेश्यायां '**लहुं पल्लासंखंसो**' इति पदद्वयस्याऽत्राप्यनुवर्तनात् तथा '**अवक्तव्य-बन्धस्यान्तरं**' इति प्रकरणवशात् ज्ञातव्यम्, तेन कापोतलेश्यामार्गणायां सुरद्विकस्य जघन्या-न्तरं पल्यासंख्येयभागप्रमाणमवसातव्यम् । इदं कथितमन्तरं व्याख्यानतोऽन्तर्मुहूर्त्तेनाऽधिकं ज्ञेयम् । इदं चान्तरं तत्तद्मार्गणावर्तिजघन्यस्थितिकदेवानाश्रित्य ज्ञेयम् । '**विउव०**' इत्यादि, '**काऊए**' इति पदस्याऽत्राऽपि सम्बन्धात् कापोतलेश्यायां वैक्रियद्विकस्य जघन्यान्तरं दशसहस्रवर्षप्रमाणमव-

सेयम्, एतदपि व्याख्यानतोऽन्तमुहूर्तेनाधिकं ज्ञेयम्, तच्च जघन्यस्थितिकनारकमाश्रित्याऽवसेयमिति । 'काउ.ए' इत्यादि, कापोतलेश्यायां जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धस्यान्तरं नास्ति, द्विरवक्तव्यबन्धाभावादिति । 'बारस.' इत्यादि, तिसृष्वपि लेश्यासु सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां "दुविहं" इत्यादि, द्विविधमपि प्रस्तुतान्तरमन्तमुहूर्तप्रमाणमवसेयम्, तच्चौघवदेव । शेषचतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य जघन्यान्तरं 'भिन्नमुहुत्तं' ति अन्तमुहूर्तप्रमाणमवसेयमिति । शेषप्रकृतय इमाः—मिथ्यात्वाद्यष्टक-वेदत्रय-गोत्रद्वय-तिर्यग्मनुष्यगतिद्वयै-केन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-संहननषट्क-संस्थानषट्क-खगतिद्वया-नुपूर्वीद्वया-तपो-द्योत-सुभगत्रिक-दुर्भगत्रिक-त्रस-स्थावररूपाश्चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतयः । अथ 'गुरु' इत्यादिना सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतिवर्जप्रकृतीनामुत्कृष्टान्तरं वक्ति । तत्र पञ्चेन्द्रियजातिसुरद्विकत्रसनामौदारिकाङ्गोपाङ्गातपस्थावरैकेन्द्रियप्रकृतीनामुत्कृष्टतस्तत् पल्योपमासंख्येयभागमात्रम्, अशुभलेश्याकदेवानामुत्कृष्टकायस्थितिस्तावन्मात्रा तथा तानेवाश्रित्य प्रस्तुतान्तरमायातीति कृत्वा, शेषाष्टात्रिंशत्प्रकृतीनां तथा वैक्रियद्विकस्य तु तद् देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणमायाति, प्रस्तुतमार्गणावर्तिप्रकृष्टायुष्कनरकजीवानाश्रित्य तासामन्तरस्य प्राप्यमाणत्वादिति । 'णवरं' इत्यादिपञ्चमगाथया वैक्रियद्विकविषयकविशेषं दर्शयति-कृष्णलेश्यामार्गणायां वैक्रियद्विकस्यावक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं द्वाविंशतिसागरोपमप्रमाणमवगन्तव्यम्, न तु कायस्थितिप्रमाणम्, तच्च पुनः प्रकृतिबन्धान्तरतः साध्यम् । अधुना मतान्तरमाश्रित्य कासाञ्चित् प्रकृतीनां प्रस्तुतान्तरं 'बिंति परे' इत्यादिना निषेधति-तद्यथा-सुरद्विकपञ्चेन्द्रियजातिनामौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसातपस्थावरैकेन्द्रियप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्यान्तरं नास्ति महाबन्धकारादीनां मते देवानाश्रित्य प्रस्तुतान्तरं नैवायतीति हेतोः । कायस्थितिमतान्तरमाश्रित्यान्येषां मते वैक्रियद्विकस्य जघन्यान्तरं नीलायां कृष्णायां क्रमेण दशसागरोपमप्रमाणं सप्तदशसागरोपमप्रमाणमवगन्तव्यम् । विस्तृतभावना तूत्तरप्रकृतिबन्धान्तरमाश्रित्य स्वयं विज्ञेयेति ॥१९८-१९९-२००-२०१-२०२-२०३॥

अथ तेजः-पद्म-शुक्ललेश्यामार्गणासु क्रमेण प्रकृतान्तरमाह—

तेउपउमासु सुरविउवाहारदुगाणऽवट्टिअस्स गुरुं ।
भिन्नमुहुत्तं णेयं सेसाणूणगुरुकायठिई ॥२०४॥
मज्झकसायसुरविउवआहारदुगुरलतित्थणामाणं ।
ण अवत्तव्वस्स तहा उरलोवंगस्स पम्हाए ॥२०५॥
बारससायाईणं अत्थि दुविहमंतरं मुहुत्तंतो ।
सेसाण लहुं जेट्ठं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥२०६॥

सुक्काए उक्कोसं अवट्ठिअस्स अहियेगतीसुदही ।
अडमिच्छाईण भवे सत्तरणीआइगाण देसूणा ॥२०७॥ (गीतिः)
भिन्नमुहुत्तं णेयं सुरविउवाहारजुगलपयडीणं ।
ऊणा गुरुकायठिई सेसाणं एगसयरीए ॥२०८॥
ण अवत्तव्वस्स भवे धुवबंधीणं इगूणचत्ताए ।
तह चउणराइगाणं पणिंदियाईण सत्तण्हं ॥२०९॥
सुरविउवदुगाण लहुं अट्ठारुदही गुरुं च तेत्तीसा ।
तित्थस्स सयं णेयं सेसाण लहुं मुहुत्तंतो ॥२१०॥
मिच्छाइदुतीसाए वइरस्सिगतीससागरा जेट्ठं ।
णेयं चउद्दसण्हं सायाईणं मुहुत्तंतो ॥२११॥

(प्रे०) ''तेउ०'' इत्यादि, तेजःपद्मलेश्यामार्गणयोर्देवद्विक-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विकरूपाणां षट्प्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य 'गुरुं' ति उत्कृष्टमन्तरं 'भिन्नमुहुत्तं' ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं 'णेयं' ति ज्ञेयम् । कुतः ? आसां बन्धकानां मनुजतिरश्चां लेश्याकालस्योत्कृष्टतोऽपि तावन्मात्रत्वात् । अत्रा-ऽऽहारकद्विकं मनुष्य एव बध्नातीति ध्येयम् । 'सेसाण' त्ति उक्तशेषाऽवस्थितबन्धयोग्यप्रकृतीनाम्, तथा चात्र तेजोलेश्यायां सूक्ष्मत्रिक-नरकत्रिक-विकलत्रिकाणीति नवप्रकृतीनां पद्मलेश्यायामेकेन्द्रियस्था-वरातपसहितानां द्वादशप्रकृतीनां च बन्धो नैव भवति, तथा देवद्विक-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विकानां बध्यमानाऽऽयुष्कस्य च प्रकृतान्तरमुक्तमेव, अतः क्रमशः एताभिरष्टादशप्रकृतिभिरेकविंशतिप्रकृतिभी रहितानां शेषसर्वासां द्व्यधिकशतप्रकृतीनां नवनवतिप्रकृतीनां चावस्थितप्रदेशबन्धस्य गुर्वन्तरं मार्ग-णाया देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणं ज्ञातव्यम् । यत एताः प्रकृतीरत्र देवा बध्नन्ति, तस्मादासां प्रकृतान्तरं मार्गणाया देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणं सम्भवति । 'मज्झ०' इत्यादि, तेजःपद्म-लेश्यामार्गणाद्वये 'मज्झकसाय' त्ति अप्रत्याख्यानावरणीय-प्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्के, 'सुर-विउवआहारदुग' त्ति द्विकशब्दस्य प्रत्येकं योजनात्सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकं, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकम्, आहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गस्वरूपमाऽऽहारकद्विकञ्च, 'उरल' त्ति औदारिकशरीरं 'तित्थणामाणं' ति तीर्थकरनाम चेति तासां षोडशप्रकृतीनाम्, पद्मलेश्यायामौ-दारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नोऽप्यवक्तव्यबन्धस्याऽन्तरं न भवति, अत्र ध्रुवक्तव्यबन्धाभावादासां प्रकृतीनाम् । 'बारस' इत्यादि, अस्मिन्नेव मार्गणाद्वये सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य द्विविध-मप्यन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेव, तच्चौघवदेव ज्ञातव्यमिति । 'सेसाण' त्ति उक्तशेषावक्तव्यबन्धयोग्यप्रकृ-

तीनां तेजोलेश्यायां स्त्यानर्द्धित्रिकाद्यष्टक-वेदत्रय-गोत्रद्वय-गतिद्वयै-केन्द्रियपञ्चेन्द्रियजातिद्वयौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-संहननषट्क-संस्थानषट्क-खगतिद्वया-ऽऽनुपूर्वीद्वया-तपो-द्योत-सुभगत्रिक-दुर्भगत्रिक-त्रस-स्थावररूपाणां चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां पद्मलेश्यायां तु जातिद्वयौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रसस्थावरातपवर्जोक्ताष्टात्रिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं विज्ञेयम् । तथाऽऽसामेवात्रोक्तशेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य 'जेट्ठ' ति उत्कृष्टमन्तरं मार्गणाया देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणं भवतीत्यन्वयः । ''सुक्काए' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायाम् 'अडमिच्छाईण'त्ति मिथ्यात्व-स्त्यानर्द्धित्रिकाऽनन्तानुबन्धिचतुष्काणीत्यष्टप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य 'उक्कोसं' ति उत्कृष्टमन्तरम् 'अहियेगतीसुदही' त्ति साधिकैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति, तच्च तासां प्रथमं मनुष्यभवस्य चरमाऽन्तर्मुहूर्ते द्वितीयवारं च देवभवस्य चरमसमये बन्धकरणात्प्राप्यते । 'सत्तरणीआइगाण' त्ति 'सप्तदशनीचैर्गोत्रादीनां' नीचैर्गोत्र स्त्रीवेद-नपुंसकवेदा-ऽऽद्यरहितसंहननपञ्चक-संस्थानपञ्चक-कुखगति-दुर्भगत्रिकाणीति सप्तदशप्रकृतीनामत्राऽवस्थितबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं 'देसूणा' त्ति अत्र 'एगतीसुदही' इति परेणाऽन्वयाद्देशोनैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवतीत्यर्थः । कथमिति चेद् , उच्यते, अत्र शुक्ललेश्यामार्गणावस्थितजीवेषूक्तसप्तदशप्रकृतीनां बन्धं ग्रैवेयकपर्यन्तदेवा एव कुर्वन्ति, अतस्तासां प्रकृतान्तरं ग्रैवेयकदेवानाश्रित्याऽऽयातीति । 'भिन्नमुहुत्तं' इत्यादि, तत्रैव सुरद्विकस्य, वैक्रियद्विकस्य, आहारकद्विकस्य चावस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं ज्ञेयम् , हेतुस्तु तेजोलेश्यायामुक्तः स एव । 'सेसाणं एगसयरीए' त्ति स्वयोग्योक्तशेषैकसप्ततिप्रकृतीनामर्थादुपर्युक्तैकत्रिंशत्प्रकृतयः, पूर्वोक्तदेव-मनुष्यायुषी तथा प्रकृतमार्गणायां बन्धायोग्यनरकत्रिक-तिर्यक्त्रिक-जातिचतुष्क-स्थावरचतुष्का-ऽऽतपोद्योतनामानीति षोडशप्रकृतयश्चेत्येताभिर्नवचत्वारिंशत्प्रकृतिभी रहिताः शेषसर्वा या एकसप्ततिप्रकृतयोऽवशिष्टाः, तासामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं बोद्धव्यम् । तच्च पुरोक्तव्याप्त्यनुसारेण चिन्तनीयम् । 'ण' इत्यादि, तत्रैव शुक्ललेश्यामार्गणायां स्त्यानर्द्ध्याद्यष्टकवर्जितशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनीनां, 'चउणराईणं' ति नरद्विकौ-दारिकद्विकरूपचतुष्प्रकृतीनां तथा 'सत्ताण्ह पणिंदियाईण' त्ति पञ्चेन्द्रियजाति-त्रस-पराघातो-च्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकनामानीति सप्तप्रकृतीनाम्, इति सर्वसङ्ख्यया पञ्चाशत्प्रकृतीनाम्'ण अवत्तव्वस्स भवे'त्ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्याऽन्तरं न भवति, द्विरवक्तव्यबन्धाभावादिति । 'सुरविउवदुगाण' त्ति देवगति-देवानुपूर्वीरूपं देवद्विकं वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकं च तयोः 'लहु' ति अवक्तव्यबन्धस्य लध्वन्तरं 'अट्ठारुदही' त्ति अष्टादशसागरोपमप्रमाणं भवति । तथा 'गुरु' ति अवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं तयोर्देव-वैक्रियद्विकयोः 'तेत्तीसा' त्ति साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति 'तित्थस्स सयं णेयं' इत्यनेन जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धस्यान्तरं स्वयं ज्ञातव्यमिति । यदि श्रमणानामेकलेश्या-

काले नूतनबन्धः पुनर्बन्धश्च सम्भाव्यते तदा जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धस्य द्विविधमप्यन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमन्यथाऽन्तराभावो वक्तव्यः, इह सम्यग्निर्णयाभावे मूलकारेण प्रोक्तं 'सयं णेयं' इति । 'सेसाण' त्ति उक्तशेषाऽवक्तव्यबन्धयोग्यप्रकृतीनाम्-उपर्युक्ता मनुष्यगत्यादिचतुष्प्रकृतयः पञ्चेन्द्रियजात्यादिसप्तप्रकृतयः, देव-वैक्रियद्विके, जिननाम , पूर्वोक्ते देव-मनुष्यायुषी तथाऽत्राऽवक्ष्यमाना नरकत्रिक-तिर्यक्त्रिक-जातिचतुष्क-स्थावरचतुष्का -ऽऽतपोद्योतनामानि चेति चतुस्त्रिंशत्प्रकृतिरहिताः शेषैकोनचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयः, स्त्यानर्द्ध्याद्यष्टकं चेति सर्वसङ्ख्यया सप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । 'मिच्छाइदुनीसाए' इत्यादि, मिथ्यात्वाद्यष्टक-नीचैर्गोत्र-स्त्रीवेद-नपुंसकवेद-संहननपञ्चक-संस्थानपञ्चक-कुखगति-दुर्भगत्रिक-सुभगत्रिक-सुखगति-प्रथमसंस्थान-पुरुषवेदोच्चैर्गोत्ररूपाणां मिथ्यात्वादिद्वात्रिंशत्प्रकृतीनां तथा 'वइरस्स' त्ति वज्रर्षभनाराचसंहननस्यावक्तव्यबन्धस्य गुर्वन्तरं देशोनैकत्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमवसेयम् । 'चउदस०' इत्यादि, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामाऽऽहारकद्विकस्य चेति चतुर्दशप्रकृतीनां प्रकृतमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमेवावसातव्यम् ॥२०३-२११॥

अधुना क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां प्रकृतान्तरं दर्शयन्नाह—

खइए सव्वाणूणा गुरुकायठिई अवट्ठिअस्स गुरुं ।
ण अवत्तव्वस्स भवे पयडीणं पणणराइणं ॥२१२॥
बारससायाईणं भिन्नमुहुत्तं दुहा मुहुत्तंतो ।
सेसाण लहुं जेट्ठं देसूणा जेट्ठकायठिई ॥२१३॥

(प्रे०) 'खइए' इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां 'सव्वाण' त्ति बध्यमानायुर्वर्जसप्तसप्ततिप्रकृतीनाम्, तद्यथा-ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणीयस्य स्त्यानर्द्धित्रिकरहिताः षट् प्रकृतयः, वेदनीयद्विकं, मोहनीयस्यैकोनविंशतिप्रकृतयः, नाम्न एकोनचत्वारिंशत्प्रकृतयः, उच्चैर्गोत्रम्, अन्तरायपञ्चकञ्चेत्यासामवस्थितप्रदेशबन्धस्य 'गुरु' ति ज्येष्ठमन्तरम् 'ऊणा गुरुकायठिई' त्ति मार्गणाया देशोना गुरुकायस्थितिः छद्मस्थजीवानाश्रित्य या ज्येष्ठकायस्थितिस्तावत्प्रमाणं भवति । कथमितिचेदुच्यते, अत्र क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायाः कायस्थितिः छद्मस्थजीवापेक्षया साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणाऽस्ति । अतः प्रकृतान्तरं देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणं पूर्वोक्तव्याप्त्यनुसारेण विज्ञेयम् ।

'पणणराइणं' ति नरगति-नरानुपूर्व्यौ-दारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-वज्रर्षभनाराचसंहननात्मकपञ्चप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य 'ण भवे' त्ति अन्तरं नैव भवति । यद्यपि क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्दुप्पहसूरेरिव पञ्चभवानपेक्ष्य प्रस्तुतपञ्चप्रकृतीनामन्तरमायाति, तथापि पञ्चभवयुक्त-

क्षायिकसम्यग्दृष्टेरतिस्तोकत्वेन तस्येहानधिकृतत्वादन्तरं निषिद्धमिति मन्तव्यम् । '**बारससाया-ईणं**' इत्यादि, द्वादशसातादिप्रकृतीनां '**दुहा**' त्ति द्विधा, अवक्तव्यबन्धस्य जघन्यमुत्कृष्टश्चान्तरं '**भिन्नमुहुत्तं**' ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । '**सेसाण**' त्ति उक्तशेषबध्यमानषष्टिप्रकृतीनामवक्त-व्यबन्धस्य '**लहु**' ति जघन्यमन्तरं '**मुहुत्तंतो**' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं तथा '**जेट्ठं**' ति उत्कृष्टम-न्तरं तासां '**देसूणजेट्ठकायठिई**' त्ति मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं सम्भवति । भावना चाऽत्रोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धसत्कावक्तव्यबन्धान्तरभावनातुल्येति ॥२१२-२१३॥

अथ वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां प्रकृतान्तरं वक्ति—

सव्वाण वेअगे गुरुमवट्ठिअस्स अवहिव्व बोद्धव्वं ।
जिणणामकम्मणो खलु णेव अवत्तव्वगस्स भवे ॥२१४॥
णेयं साहियपल्लं लहु पणणराइचउसुराईणं ।
सेसाण मुहुत्तंतो बारससायाइगाण गुरुं ॥२१५॥
साहियतेत्तीसुदही गुणवीसाएऽत्थि सेसपयडीणं ।
अहवा गुरुकायठिई ऊणाहारजुगलस्स भवे ॥२१६॥

(प्रे०) '**सव्वाण**' इत्यादि, '**वेअगे**' त्ति क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां '**सव्वाण**' त्ति आयुर्वर्जबध्यमानसप्तसप्ततिप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरम् '**अवहिव्व**' त्ति अवधि-ज्ञानमार्गणावद् बोद्धव्यम् । जिननामकर्मणोऽवक्तव्यबन्धस्या-ऽन्तरमत्र नैव भवेत् । '**पण-णराइचउसुराईणं**' ति नरद्विकौ–दारिकद्विक–वज्रर्षभनाराचसंहननात्मकपञ्चप्रकृतीनां, सुरद्विक-वैक्रियद्विकरूपचतुष्प्रकृतीनां चेति सर्वसङ्ख्यया नवप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य लघ्वन्तरं साधिकपल्यो-पमप्रमाणं ज्ञेयम् । '**सेसाणं**' ति अवक्तव्यबन्धयोग्यशेषद्वाविंशतिप्रकृतीनां जघन्यमन्तरमन्त-र्मुहूर्तप्रमाणं भवति । ताः शेषद्वाविंशतिप्रकृतयोऽत्र सातवेदनीयादिद्वादश-कषायाष्टका-ऽऽहारकद्विकरूपा विज्ञेयाः । अथोत्कृष्टमन्तरं दर्शयति–'**बारस**'इत्यादिना, '**मुहुत्तंतो**'इति पदं देहलीदीपकन्या-येनात्राऽपि सम्बध्यते, ततो द्वादशसाताऽसातादिप्रकृतीनां '**गुरु**' ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्त-रमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । '**गुणवीसाए**' त्ति नरादिपञ्चकसुरादिचतुष्क-कषायाष्टका-ऽऽहारक-द्विकरूपाणामेकोनविंशतिप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं भवति । तत्राप्याहारकद्विकस्य मतान्तरम् '**अहवा**' इत्यादिनाह-अथवाऽऽहारकद्विकस्य तद्देशोनका-यस्थितिप्रमाणं भवति । भावनादिकं पूर्वोक्तवज्ज्ञेयम् ॥२१४-२१५-२१६॥

अथाऽसंज्ञिमार्गणायां तदाह—

अमणे ओघव्व भवे सव्वाण अवट्ठिअस्स उक्कोसं ।
सव्वाण मुहुत्तंतोऽवत्तव्वस्स हवइ जहण्णं ॥२१७॥
ओघव्व जाणियव्वं जेट्ठं वेउव्वछक्कउरलाणं ।
तिरिणरगोअदुगाणं सेसाण भवे मुहुत्तंतो ॥२१८॥

(प्रे०) 'अमणे' इत्यादि, असंज्ञिमार्गणायां 'सव्वाण' त्ति बध्यमानसर्वप्रकृतीनाम्-आयुश्चतुष्काऽऽहारकद्विकजिननामरहितशेषत्रयोदशाऽधिकशतप्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरम् 'ओघव्व भवे' त्ति, ओघवद्भवति । अर्थाद्वैक्रियषट्कस्य प्रकृतान्तरमसङ्ख्येयपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, मनुष्यद्विकस्योच्चैर्गोत्रस्य चासङ्ख्येयलोकप्रमाणं तथा शेषप्रकृतीनां श्रेणेरसङ्ख्यातभागप्रमाणं भवति । भावना चाऽत्रौघवद्विज्ञेया । 'सव्वाण' त्ति अवक्तव्यबन्धयोग्याऽऽहारकद्विकाऽऽयुर्जिननामवर्जितशेषपट्पष्टयध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । अथ तत्रोत्कृष्टमन्तरं दर्श्यते, 'विउव्वछक्कउरलाणं' ति वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्ग-देवगति-देवानुपूर्वी-नरकगति-नरकानुपूर्वीरूपं वैक्रियषट्कं तथौदारिकशरीरमिति सप्तप्रकृतीनां 'जेट्ठं' ति अव्यक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमोघवदसङ्ख्यपुद्गलपरावर्तप्रमाणम्, तथा 'तिरिनरगोअदुगाणं' ति द्विकपदस्य प्रत्येकं योजनात्तिर्यग्द्विकं मनुष्यद्विकं गोत्रद्विकञ्चेति षट्प्रकृतीनामोघवदसङ्ख्यलोकाकाशप्रमाणं प्रकृतान्तरं ज्ञातव्यम् । 'सेसाण' त्ति उक्तशेषत्रिपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । भावना चाऽत्र स्थितिबन्धसत्कप्रकृतविषयकस्थानतो द्रष्टव्येति ॥२१७-२१८॥

अथाऽऽहारिमार्गणायां प्रकृतान्तरं प्रदर्शयन्नाऽऽह--

आहारे विण्णेयं तित्थस्स अवट्ठिअस्स उक्कोसं ।
साहियतेत्तीसुदही सेसाणूणगुरुकायठिई ॥२१९॥
सव्वाण मुहुत्तंतो लहुं अवत्तव्वगस्स बोद्धव्वं ।
आहारदुगस्स तहा धुवबंधीण सगचत्ताए ॥२२०॥
तिरिणरगोअदुगाणं विउव्वछक्कउरलाण उक्कोसं ।
देसूणा कायठिई जेट्ठा ओघव्व सेसाणं ॥२२१॥

(प्रे०) 'आहारे' इत्यादि, आहारिमार्गणायां 'तित्थस्स' त्ति तीर्थङ्करनाम्नोऽवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं विज्ञेयम् । भावना त्वोघवद् वक्तव्या । 'सेसाण' त्ति जिननामाऽऽयुश्चतुष्करहितशेषपञ्चदशाधिकशतप्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं मार्गणाया देशोनगुरुकायस्थितिप्रमाणमर्थादङ्गुलाऽसङ्ख्येयभागप्रदेशराशिसमयप्रमाणं विज्ञेयम् ।

'सव्वाण' त्ति आयुश्चतुष्कवर्जितशेषषोडशाऽधिकशतप्रकृतीनां 'लहु अवत्तव्वस्स' ति अवक्तव्यबन्धस्य लघ्वन्तरं 'मुहुत्तंतो' त्ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं बोद्धव्यम् । 'आहारदुगस्स' इत्यादि, आहारकद्विकस्य, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां, तिर्यग्द्विक-नरद्विक-गोत्रद्विकानां वैक्रियषट्कौदारिकशरीररूपसप्तानां च 'उक्कोसं' ति अवक्तव्यबन्धस्योत्कृष्टमन्तरं 'देसूणा कायठिई जेट्ठा' त्ति मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणम्-अङ्गुलस्याऽसङ्ख्यातभागप्रमाणं भवति । 'सेसाणं'ति उक्तशेषचतुष्पञ्चाशत् प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरमोघवद् विज्ञेयम् । अत्रोत्तरप्राप्यवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य सर्वापि भावना स्थितिबन्धस्य प्रकृतविषयकभावना समानेति तत्रत एव दर्शनीयेति ॥२१९-२२०-२२१॥

अधुनोक्तशेषासु सर्वमार्गणासु प्रकृतान्तरमाह—

सेसासुं सव्वेसिं अवट्ठिअस्स गुरुमूणजेट्ठठिई ।
अंतरमंतमुहुत्तं दुहा अवत्तव्वगस्स भवे ॥२२२॥
णवरि जिणस्स ण देसे परिहारेऽस्स सयमुवसमे णेयं ।
णो बारससायाइगआहारदुगऽडकसायवज्जाणं ॥२२३॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'सेसासु'इत्यादि, उक्तशेषासु सर्वमार्गणासु, ताश्चाऽत्र काः शेषमार्गणा इति चेदुच्यते-अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणा, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, पर्याप्ताऽपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणे, अपर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणा, नवविकलेन्द्रियमार्गणाभेदाः, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायमार्गणे, बादरपृथ्वीकाय-पर्याप्तबादरपृथ्वीकाया-ऽपर्याप्तबादरपृथ्वीकायमार्गणाः, पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्माऽप्कायमार्गणे, बादराऽप्काय-पर्याप्तबादराऽप्काया-ऽपर्याप्तबादराऽप्कायमार्गणाः, पर्याप्तसूक्ष्माऽपर्याप्तसूक्ष्मतेजस्कायमार्गणे, बादरतेजस्काय--पर्याप्तबादरतेजस्काया--ऽपर्याप्तबादरतेजस्कायमार्गणाः, पर्याप्तसूक्ष्मा--ऽपर्याप्तसूक्ष्मवायुकायमार्गणे, बादरवायुकाय--पर्याप्तबादरवायुकाया---ऽपर्याप्तबादरवायुकायमार्गणाः, तथा पर्याप्ता--ऽपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदमार्गणे, बादरनिगोद--पर्याप्तबादरनिगोदाऽपर्याप्तबादरनिगोदमार्गणाः, प्रत्येकशरीरवनस्पतिकाय--पर्याप्तप्रत्येकशरीरवनस्पतिकायाऽपर्याप्तप्रत्येकशरीरवनस्पतिकायमार्गणाः, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा, परिहारविशुद्धिक- सूक्ष्मसंपराय-देशविरतमार्गणाः, उपशमसास्वादनमिश्रसम्यक्त्वमार्गणाश्चेति सर्वसङ्ख्यया पञ्चाशदुक्तशेषमार्गणास्तासु 'सव्वेसिं' ति सर्वासां मार्गणाप्रायोग्यसर्वबध्यमानप्रकृतीनां 'अवट्ठिअस्स गुरु' ति अवस्थितप्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठमन्तरं 'ऊणजेट्ठठिई' त्ति मार्गणाया देशोनज्येष्ठकायस्थितिप्रमाणं भवति। तथैवैतासु मार्गणासु स्वस्वावक्तव्यबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां 'अन्तरमंतमुहुत्तं दुहा अवत्तव्वगस्स भवे' त्ति अवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य द्विधा जघन्यमुत्कृष्टञ्चान्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति । अवक्तव्यबन्धयोग्यप्रकृतीनां परावर्तमानबन्धसद्भावादधिकान्तरं नैव प्राप्यत इति ।

अत्र सूक्ष्मसंपरायसंयमे तु बध्यमानसप्तदशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धो नास्ति, इति न तदन्तरविचारणा कार्या। 'णवरि' इत्यादि, नवरं परिहारविशुद्धिसंयम देशविरतमार्गणयोर्जिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धस्याऽन्तरं नास्ति। 'ऽस्स' इत्यादि, अनन्तरोक्तजिननाम्नोरेवोपशमसम्यक्त्वमार्गणायामवक्तव्यबन्धस्यान्तरं स्वयं ज्ञेयं, कारणं तु शुक्ललेश्यामार्गणावज्ज्ञातव्यमिति। तथा तस्यामेवोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां द्वादशसातवेदनीयादि-जिननाम-- मध्यमाष्टकषाया---ऽऽहारकद्विकरहितानां शेषबध्यमानप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्याऽन्तरं न भवतीत्यर्थः ॥२२२-२२३॥

तदेवं प्ररूपितमादेशतोऽन्तरद्वारम्, तत्प्ररूपिते च समर्थितमोघा-ऽऽदेशाभ्यामन्तरद्वारम्। तत्समर्थने च गतं 'अन्तर' इत्यनेनोद्दिष्टं चतुर्थमन्तरद्वारम्।

इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधाने उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे द्वितीये भूयस्कारबन्धाऽधिकारे चतुर्थमन्तरद्वारं समाप्तम्।



॥ पञ्चमं भङ्गविचयद्वारम् ॥

गतमेकजीवाश्रितमन्तरद्वारम् । इतो नानाजीवाश्रितानि द्वाराणि प्ररूप्यन्ते । तत्रादौ क्रमप्राप्तं 'भङ्गविचय' इत्यनेनोद्दिष्टं पञ्चमं द्वारं प्रस्तूयते । अत्र ग्रन्थकारो भङ्गविचयोपपत्त्यर्थं भूयस्कारादिबन्धानां केवलं ध्रुवाऽध्रुवपदानि प्रदर्शयति । तेन निम्नोक्तकरणेन ध्रुवाऽध्रुवपदैर्भङ्गा उपपादनीयाः । तत्र प्रथमं तावदोघतस्तानि भण्यन्ते--

धुववंधिसत्तचत्ताउरालियाणं भवे अवत्तव्वो ।
भजणीओ अवसेसा तिण्णि पया होइरे णियमा ॥२२४॥

(प्रे०) 'धुव०' इत्यादि सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथौदारिकशरीरनाम्न इत्यष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धो भजनीयोऽस्ति, कदाचिद्बध्यते कदाचित्तु नेत्यर्थः, अध्रुवपदमेतदिति यावत् । 'अवसेसा' इत्यादि, अवशिष्टानि त्रीणि पदानि-अवक्तव्यरहितशेषभूयस्कारादीनि त्रीणि पदान्युक्तप्रकृतीनां नियमेन भवन्ति । एवमत्र ध्रुवाऽध्रुवपदान्युक्तानि, तैर्निम्नोक्तकरणेन भङ्गा निष्पादनीयाः । तेषां पदानां समुदितभङ्गसङ्ख्याज्ञापनार्थं करणं मूलकारैरनुपदमत्रैव प्रदर्शयिष्यते । किन्तु एकद्व्यादिसंयोगानां तदनन्तरमेकानेकभङ्गानामानयनार्थं करणं, विस्तरतस्तद् व्याख्यानं च मूलप्रकृतिस्थितिबन्धसत्कभूयस्काराधिकारगतभङ्गविचयद्वारे कृतमस्ति, अतो विस्तरार्थिना तत्त्रतो द्रष्टव्यम् । स्थानाऽशून्यार्थमत्राऽपि तत्करणं सङ्क्षेपतः प्रदर्श्यते । तद्यथा-आदौ यत्प्रकृतीनां भूयस्कारादीनि चत्वार्यपि पदानि भजनीयानि सन्ति, तासां भजनीयपदानां प्रथममुत्क्रमेण सङ्ख्या स्थापनीया, तदधस्ताच्च क्रमेण भजनीयपदसङ्ख्या स्थाप्या, न्यासश्चैवम्--

$\frac{४}{१}$ $\frac{३}{२}$ $\frac{२}{३}$ $\frac{१}{४}$ तत उपरितनो राशिरधस्तनेन राशिना भक्तव्यः, प्राप्ता लब्धिस्तु क्रमेण $\frac{४}{१}, \frac{३}{२}, \frac{२}{३}, \frac{१}{४}$, ततश्च प्रथमाङ्क एकसंयोगभङ्गकत्वेन प्राप्यते, अत एवैकसंयोगेन चत्वारो भङ्गा लब्धाः । प्रथमाङ्को द्वितीयसङ्ख्यया विहन्यते तदा द्विसंयोगविकल्पाः प्राप्यन्ते । अत एव द्विसंयोगेन षड्भङ्गाः प्राप्ताः । न्यासः $\frac{४}{१} \times \frac{३}{२} = ६$ । प्रथमत्रिसङ्ख्याः परस्परेण विहन्यन्ते तदा त्रिसंयोगविकल्पाः प्राप्यन्ते । अत एव त्रिसंयोगेन चत्वारो भङ्गा लब्धाः । न्यासः $\frac{४}{१} \times \frac{३}{२} \times \frac{२}{३} = ४$ । सर्वसङ्ख्याः परस्परेण विहन्यन्ते तदा चतुःसंयोगविकल्पाः प्राप्यन्ते । अत एवाऽत्र तु चतुःसंयोगेनैक एव भङ्गः प्राप्तः । न्यासः $\frac{४}{१} \times \frac{३}{२} \times \frac{२}{३} \times \frac{१}{४} = १$ अत्र पुनरेकानेकभेदाभ्यां भङ्गा इष्यन्ते । अत एकसंयोगभङ्गानामधस्ताद् द्विकं स्थाप्यं, द्विकसंयोगभङ्गानामधस्ताच्चतुष्कं, त्रिसंयोगभङ्गानामधस्तादष्टकं, चतुःसंयोगभङ्गानामधस्तात् षोडशकं स्थापनीयम् , उत्तरोत्तरं द्विगुणमिति वचनात् ।

न्यासश्चैवम्--

	एकसंयोगभङ्गाः	द्विसंयोगभङ्गाः	त्रिसंयोगभङ्गाः	चतुःसंयोगभङ्गाः	
	४	६	४	१	
	× २	× ४	× ८	× १६	
एकाऽनेकजीवाश्रित्याऽध्रुवपदभङ्गाः	= ८	= २४	= ३२	= १६	= ८०

यद्येकमपि ध्रुवपदं स्यात्तदैकेनाऽधिका भङ्गाः कार्याः तद्यथा—८०+१=८१

यत्र चत्वार्यपि पदान्यध्रुवाणि तत्रैकमपि पदं ध्रुवं न विद्यते । अत एको भङ्गो न प्रक्षेपणीयः । अतः सर्वमीलने अशीतिभङ्गाः संजाताः । भङ्गोच्चारणं तु स्वयमेव कर्तव्यमिति । एवमग्रेऽपि भङ्गा अनया नीत्याऽऽनेतव्याः ।

तथा च यत्रौघत आदेशतो वा यासां प्रकृतीनां त्रीणि पदान्यध्रुवाणि सन्ति, तासां प्रत्येकमुपरोक्तपद्धत्या षड्विंशतिभङ्गा आयान्ति, यदा तत्र ध्रुवपदं विद्यते तदा तत्रैकभङ्गस्य प्रक्षेपाद् भङ्गास्तत्र सप्तविंशतिर्ज्ञातव्याः । अथ च यासां प्रकृतीनां द्वे पदे ध्रुवे द्वे चाऽध्रुवे विद्यन्ते, तासां प्रत्येकं नवनवभङ्गा उपरोक्तकरणेन जायन्ते । तथैव यासां प्रकृतीनामेकं पदमध्रुवं, शेषपदानि च ध्रुवाणि विद्यन्ते, तासां त्रयो भङ्गाः प्राप्यन्ते ॥२२४॥

समुदितसङ्ख्याज्ञापनार्थमन्यत् करणमेवम्-यावन्त्यध्रुवपदानि सन्ति, तावद्वारमङ्कत्रयेण सह गुणनं कर्तव्यम्, तत्र यद्येकमपि ध्रुवपदं न, तर्ह्येकेन न्यूना तत्सङ्ख्या वेदितव्या । यदि ध्रुवपदं विद्यते, तदा तावत्सङ्ख्या द्रष्टव्या । तत्प्रतिपादिका गाथा त्विमा—

भयणिज्जपदा तिगुणा अण्णोण्णगुणा हवेज्ज कायव्वा ।
धुवरहिया रूवूणा धुवसहिया तत्तिया चेव ॥२२५॥

घटना चेत्थम्-यदि भजनीयपदानि चत्वारि सन्ति, तदा तावद्वारं त्रिसङ्ख्यया सह गुणनं कर्त्तव्यम् । ततश्च त्रिसङ्ख्यां चतुर्वारान् स्थापयित्वा परस्परं गुण्यते ।

न्यासः—३×३×३×३=८१ तदेकाशीतिभङ्गा जाताः । ध्रुवपदमेकमपि न विद्यते, ततश्चैकेन न्यूना तत्सङ्ख्या कार्या, अतोऽशीतिभङ्गाः सम्प्राप्ता इति । एवमन्यत्राऽपि घटना कर्त्तव्येति ।

नन्वत्र मूलगाथोक्तसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरस्य चाऽवक्तव्यपदं कथं भजनीयमस्तीति चेद्, उच्यते, अत्रोक्ताऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबन्धं कृत्वा पुनर्बन्धकारका जीवाः पञ्चेन्द्रिया एव विद्यन्ते, ते चाऽसङ्ख्यलोकराशिप्रमाणादल्पसङ्ख्यकाः सन्ति, अत एवोक्तप्रकृतीनामवक्तव्यपदं भजनीयं विद्यते । शेषभूयस्कारादिपदत्रयस्य तु स्वामिन एकेन्द्रियजीवा अपि सन्ति, तस्मात्तानि त्रीणि पदानि ध्रुवपदानि सन्ति ।

एवं भजनीयपदमत्रैकमेव विद्यते, तस्मादुपरोक्तकरणेनोक्तप्रकृतीनामत्र त्रयो भङ्गाः सञ्जायन्ते । तद्यथा—

	भूय०	अल्प०	अव०	अवक्त०
भङ्गः १	अनेकजीवाः	अनेकजीवाः	अनेकजीवाः	नास्ति
,, २	,,	,,	,,	एकजीवः
,, ३	,,	,,	,,	अनेकजीवाः

॥ इति भङ्गत्रयं विज्ञेयम् ॥

अथ जिननामादीनामोघतो भङ्गोत्पत्त्यर्थं ध्रुवाऽध्रुवपदानि प्रतिपादयन्नाह—

भूओगारप्पयरा तित्थाहारदुगविउवछक्काणं ।
णियमा हवन्ति सेसा दोण्णि पया हुन्ति भजणीआ ॥२२५॥

(प्रे०) "भूओ०" इत्यादि, तीर्थकरनाम, आहारकद्विकम् तथा वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्ग-देवगति देवानुपूर्वी-नरकगति-नरकानुपूर्वीरूपं वैक्रियषट्कमिति नवप्रकृतीनां भूयस्काराऽल्पतरबन्धौ 'णियमा हवन्ति' त्ति नियमेन भवतः । 'सेसा दोण्णि पया'त्ति शेषे द्वे पदे उक्तप्रकृतीनामवक्तव्याऽवस्थिताख्ये द्वे पदे 'हुन्ति भजणीआ'त्ति भजनीये विद्येते । कथमिति चेत्, अत्रैका व्याप्तिरस्ति । सा चेयम्—ओघवक्तव्यतायामथवा ध्रुवमार्गणासु (यद्यन्मार्गणासु सदैव जीवा विद्यन्त तास्ता ध्रुवमार्गणा उच्यन्ते तासु) यासामध्रुवबन्धिप्रकृतीनां बन्धो निरन्तरं प्राप्यते, तासु तासां भूयस्कारा-ऽल्पतरबन्धयोर्बन्धका अवश्यमेव प्राप्यन्ते । परन्तु तासां प्रकृतीनां बन्धकजीवानां सङ्ख्या यद्यसङ्ख्यलोकराशितोऽल्पा भवति, तदा तत्राऽवक्तव्या-ऽवस्थितबन्धयोर्बन्धका विकल्पेन प्राप्यन्ते । एवं प्रस्तुतगाथोक्तजिननामादिनवप्रकृतीनां बन्धकाः पञ्चेन्द्रियादिजीवाः सन्ति, तस्मादुक्तव्याप्त्यनुसारेण तद्भूयस्काराऽल्पतरबन्धयोर्बन्धका नियमेन भवन्ति । तथा शेषे द्वे ऽवक्तव्याऽवस्थितपदे भजनीये विद्येते । अतोऽत्रोक्तप्रकृतीनां प्रत्येकं नव नव भङ्गाः सञ्जायन्ते । तद्यथा— [ऽ=अनेकजीवाः]

	भूय०	अल्प०	अवस्थितः	अवक्तव्यः
१	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
२	ऽ	ऽ	ऽ	१
३	ऽ	ऽ	ऽ	०
४	ऽ	ऽ	१	ऽ
५	ऽ	ऽ	१	१
६	ऽ	ऽ	१	०
७	ऽ	ऽ	०	ऽ
८	ऽ	ऽ	०	१
९	ऽ	ऽ	०	०

अथाऽऽयुस्त्रिकस्य तथोक्तशेषप्रकृतीनामोघतो भङ्गोत्पत्त्यै ध्रुवाऽध्रुवपदानि प्रदर्शयति—

णिरयणरसुराऊणं चउरो वि पया हवेज्ज भजणीआ ।
सेसाणं पयडीणं हवन्ति णियमा पया चउरो ॥२२६॥

(प्रे०) 'णिरय०' इत्यादि, तिर्यगायुरहितशेषाऽऽयुस्त्रिकस्य चत्वार्यपि पदानि भजनीयानि सन्ति, नानाजीवानाश्रित्योक्ताऽऽयुस्त्रिकसत्कप्रकृतिबन्धकस्याऽपि भजनीयत्वेनाऽत्र तच्चतुष्पदा-

नामपि भजनीयत्वं ज्ञेयम् । तथा चाऽत्र चतुष्पदानां भजनीयत्वेनोक्तप्रकृतीनां पूर्वोक्तकरणेनाऽशीतिभङ्गाः सञ्जायन्ते । ते च स्वयमेवोत्पादनीयाः सुबुद्धिभिः । 'सेसाणं'ति उक्तशेषषष्टिप्रकृतीनां भूयस्कारादीनि चत्वार्यपि पदानि नियमेन विद्यन्ते । एकेन्द्रियेष्वपि परावर्तमानत्वेन बन्धयोग्यत्वात्तासाम् । एवं च चतुष्पदानामत्र नियमेन भवनादेक एव भङ्गस्तासां विज्ञेयः ॥२२६॥

अधुनाऽऽदेशतस्तिर्यग्गतिसामान्यादिमार्गणास्थानेषु भङ्गोत्पादनाय ध्रुवाऽध्रुवपदान्यतिदिशन्नाह--

ओघव्व सगसगपया सप्पाउग्गाण आउवज्जाणं ।
तिरिकायोरालेसुं णपुंसगे चउकसायेसुं ॥२२७॥
अण्णाणदुगे अजए अचक्खुदंसणातिअसुहलेसासुं ।
भवियाभवियेसु तहा मिच्छासण्णीसु आहारे ॥२२८॥

(प्रे०) 'ओघव्व' इत्यादि, आयुर्वर्जानां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां स्वस्वपदान्योघवद्विज्ञेयानि । कासु मार्गणासु ? इत्याह-'तिरि०' इत्यादि, तिर्यग्गतिसामान्यमार्गणा, काययोगसामान्यमार्गणा, औदारिककाययोगमार्गणा, नपुंसकवेदमार्गणा, क्रोधमानमायालोभाऽऽख्यचतुःकषायमार्गणाः, मत्यज्ञान-श्रुताज्ञानमार्गणे, असंयममार्गणा, अचक्षुर्दर्शनमार्गणा, तिस्रोऽशुभलेश्यामार्गणाः भव्याऽभव्यमार्गणे, मिथ्यात्वा-संज्ञिमार्गणे, आहारकमार्गणा चेति सर्वसङ्ख्यया विंशतिमार्गणास्वायुर्वर्जस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां स्वस्वभूयस्कारादिपदानां ध्रुवाऽध्रुवत्वमोघवदस्ति ।

तच्चेत्थमवगन्तव्यम्-अत्रोक्ततिर्यग्गत्योघे स्त्यानर्द्धयाद्यष्टका-ऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्कौदारिकशरीराणीति त्रयोदशप्रकृतीनामवक्तव्यपदं भजनीयम् , शेषभूयस्कारादिपदत्रयं च नियमेनाऽस्ति । तेन च तासां भङ्गत्रयं समुद्भवति । देव मनुष्य-नरकायुषां चाऽत्र भूयस्कारादीनि चतुष्पदानि भजनीयान्येव, अतस्तासामशीतिभङ्गा जायन्ते । वैक्रियाषट्कस्य चाऽवक्तव्या-ऽवस्थितपदौ भजनीयौ, शेषपदद्वयं तु नियमेन भवति; अतो नवभङ्गा जायन्ते । एवमुक्तशेषप्रकृतीनां चाऽत्र स्वस्वपदानि नियमेन भवन्ति, यतस्तद्बन्धकजीवा असङ्ख्यलोकतोऽधिकाः सन्ति । अतस्तासामेक एव भङ्गो विज्ञेयः । काययोगसामान्यमार्गणायामौदारिककाययोगमार्गणायां चाऽत्र सर्वमोघवज्ज्ञातव्यम् । एवं नपुंसकवेदमार्गणायां क्रोधकषायमार्गणायाञ्च ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणचतुष्कं, सञ्ज्वलनचतुष्कमन्तरायपञ्चकञ्चेत्यष्टादशप्रकृतीनामवक्तव्यपदं नास्ति, शेषसर्वमोघवद् विज्ञेयम् । मानकषायमार्गणायां ज्ञानादिचतुर्दशप्रकृतयः सञ्ज्वलनत्रिकञ्चेति सप्तदशप्रकृतीनामवक्तव्यपदं नास्ति, शेषमोघवदस्ति । मायाकषायमार्गणायां ज्ञानादिचतुर्दशप्रकृतयस्तथा सञ्ज्वलनद्विकस्याऽवक्तव्यपदं नास्ति, शेषसर्वमोघवद् । लोभकषायमार्गणायां ज्ञानादिचतुर्दशप्रकृतीनामव-

क्तव्यपदं नास्ति, शेषमोघवद् । मति-श्रुताऽज्ञानमार्गणयोस्तु षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिनीनामवक्तव्यपदं नास्ति, तथाऽऽहारकद्विकजिननाम्नोर्बन्धो नैव भवति, शेषमोघवज्ज्ञेयम् । असंयममार्गणायांस्त्यानर्द्धयाद्यष्टकं विनैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चाऽवक्तव्यपदं नास्ति, तथाऽऽहारकद्विकस्यात्र बन्धाऽभावः, अन्यत्सर्वमोघवदेव । अचक्षुर्दर्शनमार्गणायां सर्वमोघवदस्ति । कृष्णनीललेश्यामार्गणयोः सर्वमविरतमार्गणातुल्यम् । किन्तु जिननाम्नोऽवक्तव्यपदं न भवति । कापोतलेश्यामार्गणायामविरतमार्गणावदेव वक्तव्यम् । भव्यमार्गणायामोघवदेव । अभव्यमार्गणायां सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यपदं नास्ति, आहारकद्विकजिननाम्नोर्बन्धाभावः, शेषमोघवद् । मिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणयोरभव्यमार्गणावत्सर्वं ज्ञेयम् । तथाऽऽहारिमार्गणायां सर्वथौघवदनुशीलनीयमिति ॥२२७-२२८॥ अथ सान्तरमार्गणास्वाह—

अधुवा असमत्तणरविउवमीसाहारदुगअवेएसुं ।
छेए परिहारसुहमउवसमसासाणमीसेसुं ॥२२९॥

(प्रे०) '**अधुवा**' इत्यादि, '**असमत्तणर**'त्ति अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा '**विउवमीस**'त्ति वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणा '**आहारदुग**' त्ति आहारककाययोगा-ऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणे '**अवेएसु**'ति अवेदमार्गणा च तासु, '**छेए परिहारसुहम**' त्ति छेदोपस्थापनीय-परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसम्परायाऽऽख्यसंयममार्गणात्रिकम् '**उवसमसासाणमीसेसु**' ति उपशम-सास्वादन-मिश्राऽऽख्यसम्यक्त्वमार्गणात्रिकञ्चेति सर्वसङ्ख्ययैकादशमार्गणासु, किमुक्तं भवति ? उच्यते, अत्राऽपि 'सप्पाउग्गाण आउवज्जाण सगसगपया' इति पदत्रयस्य पूर्वगाथातोऽन्वयः कर्तव्यः । ततश्चाऽयमर्थः--उक्तैकादशमार्गणास्थानेषु स्वबन्धप्रायोग्याऽऽयुर्वर्जसर्वप्रकृतीनां स्वस्वसम्भाव्यमानभूयस्कारादिपदानि '**अधुवा**' त्ति अध्रुवाणि सन्ति । अतो यासां प्रकृतीनां भूयस्कारादीनि चत्वारि पदानि सन्ति तासामशीतिभङ्गाः प्राप्यन्ते, यासाञ्च त्रीणि पदानि सन्ति तासां षड्विंशतिभङ्गाः, यासां च द्वे पदे तासामष्टौ भङ्गाः प्राप्यन्ते, यासां चैकमेव पदं तासां द्वौ भङ्गौ प्राप्येते । ते च भङ्गाः पूर्वोक्तकरणेन स्वयमेवोत्पादनीयाः ॥२२९॥

अथैकेन्द्रियादिमार्गणासु तदाह—

णियमा हुन्ति वणसयलएगिंदिणिगोअसेससुहमेसुं ।
पुहवाइचउगतब्बायरपज्जोअतदपज्जेसुं ॥२३०॥

(प्रे०) '**णियमा**' इत्यादि, निम्नोक्तासु मार्गणासु स्वसम्भाव्यमानपदानि नियमेन सन्ति । ताश्चेमा मार्गणाः-'**वण**' त्ति वनस्पत्योघः, '**सयलएगिंदिनिगोअसेससुहमेसु**' ति सकलैकेन्द्रियमार्गणाभेदाः, सकलनिगोदभेदाः, शेषद्वादशसूक्ष्मभेदाश्च तेषु, '**पुहवाइचउग**'त्ति पृथव्य-

तेजोवायुकायरूपचतुरोघभेदाः 'तब्बायर' त्ति बादरौघपृथ्व्यप्तेजोवायुकायभेदाः, 'पत्तेअ' त्ति प्रत्येकवनस्पतिकायौघमार्गणा, 'तदपज्जेसु' ति तेषां बादरपृथ्व्यादिप्रत्येकवनस्पतिकायान्तानामपर्याप्तभेदा इति सर्वसङ्ख्ययैकचत्वारिंशन्मार्गणाभेदेषु, अत्राऽपि 'सप्पाउग्गाण आउवज्जाणं सगसगपया' इति पदत्रयं पूर्वतोऽन्वीयते, ततश्चाऽयमर्थो लब्धः-उक्तमार्गणास्वाऽऽयुर्वर्जितशेषस्वबन्धयोग्यप्रकृतीनां स्वस्वसम्भाव्यमानभूयस्कारादिसर्वपदानि 'णियमा हुन्ति' त्ति नियमेन भवन्ति । ततश्च तासामेक एव भङ्गः समुत्पद्यत इति ॥२३०॥

अथौदारिकमिश्रकाययोगादिमार्गणासु तदाह—

ओरालमीसजोगे कम्मणजोगे तहा अणाहारे ।
सुरविउवदुगजिणाणं भूओगारोऽत्थि भजणीओ ॥२३१॥
मिच्छस्स अवत्तव्वो अधुवो णियमा हवेज्ज सेसपया ।
सेसाणं पयडीणं हवए णियमा सगसगपया ॥२३२॥

(प्रे०) 'ओरालमीस०' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायाम्, कार्मणकाययोग- [illegible] 'सुरविउवदुगजिणाणं' ति सुरगतिसुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकम्, वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकम्, जिननाम चेति पञ्चप्रकृतीनां 'भूओगारोऽत्थि भजणीओ' त्ति भूयस्कारपदं भजनीयमस्ति, शेषपदानि तु नैव विद्यन्ते । अतस्तासां भङ्गद्वयं प्राप्यते । तथा 'मिच्छस्स' त्ति मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवक्तव्यपदमध्रुवमस्ति । शेषपदानि तु नियमेन सन्ति । तस्मात्तस्य भङ्गत्रयं लभ्यते । 'सेसाणं' ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां तूक्तमार्गणासु स्वस्वपदानि नियमेन विद्यन्ते, अतस्तासामेक एव भङ्गो जायत इति ॥२३१-२३२॥

अथोक्तशेषासु मार्गणासु प्रस्तुतमाह—

सेसासु मग्गणासु सप्पाउग्गाण सव्वपयडीणं ।
भूओगारप्पयरा णियमा सेसाऽत्थि भजणीआ ॥२३३॥

(प्रे०) 'सेसासु' इत्यादि, उक्तशेषासु मार्गणासु, ताश्चेमाः शेषमार्गणाः-अष्टौ नरकगतिमार्गणाः, तिर्यग्गतिसामान्यरहितशेषचत्वारस्तिर्यग्गतिमार्गणाभेदाः, अपर्याप्तमनुष्यरहितमनुष्यगतिमार्गणात्रयम्, त्रिंशद्देवगतिमार्गणाभेदाः, त्रयो द्वीन्द्रियमार्गणाभेदाः, त्रयस्त्रीन्द्रियमार्गणाभेदाः, त्रयश्चतुरिन्द्रियमार्गणाभेदाः, त्रयः पञ्चेन्द्रियमार्गणाभेदाः तथा पर्याप्तबादरपृथ्वीकायमार्गणा, पर्याप्तबादराऽप्कायमार्गणा, पर्याप्तबादरतेजस्कायमार्गणा, पर्याप्तबादरवायुकायमार्गणा, पर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणा, त्रयस्त्रसकायमार्गणाभेदाः, पञ्चमनोयोग-पञ्चवचनयोगभेदाः, वैक्रियकाययोगमार्गणा, स्त्रीपुरुषवेदमार्गणे, मति-श्रुताऽवधिमनःपर्यवज्ञानमार्गणाः, विभङ्गज्ञानमार्गणा,

संयमौघ-सामायिकसंयम-देशविरतसंयममार्गणाः, चक्षुरवधिदर्शनमार्गणे, शुभलेश्यात्रिकम् , सम्यक्त्वौघ-क्षायिकसम्यक्त्व-क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणाः संज्ञिमार्गणा चेति सर्वसङ्ख्यया पञ्चनवतिमार्गणास्थानेषु, किमित्याह-स्वप्रायोग्याणां सर्वप्रकृतीनां तत्तन्मार्गणाप्रायोग्याणामायुर्वर्जप्रकृतीनां **'भूओगारप्पयरा णियमा'**त्ति भूयस्काराऽल्पतरबन्धौ नियमेन भवतः, **'सेसाऽत्थि भजणीआ'** त्ति शेषे-अवक्तव्या-ऽवस्थितपदे भजनीये विद्येते, अतस्तत्तत्प्रकृतीनामत्र पूर्वोक्तव्याप्त्यनुसारेण नव नव भङ्गा उत्पद्यन्ते । ते च भङ्गा अत्रोक्ततत्तत्प्रकृतीनां स्वयमेवोपपादनीयाः । विस्तरभयात्सुगमत्वाच्चाऽत्र न प्रदर्श्यन्त इति ॥२३३॥

अथाऽऽदेशत आयुश्चतुष्कस्य भङ्गविचयं दर्शयति--

जहि णत्थि अट्ठभङ्गा तिरियाउस्स उ अगुरुपएसस्स ।
तहि णियमाऽत्थि चउपया बासट्ठीअ तिरियाउस्स ॥२३४॥
सप्पाउग्गाऊणं सेसाणं चउपयाऽत्थि भजणीआ ।
सप्पाउग्गाऊणं भजणीआ सप्पयाऽण्णासु ॥२३५॥

(प्रे०) **'जहि'** इत्यादि, यासु मार्गणासु तिर्यगायुषोऽगुरुप्रदेशबन्धस्याष्टभङ्गा न भवन्ति **'तहि बासट्ठिअ'** त्ति तासु द्वाषष्टिमार्गणासु तिर्यगायुषश्चत्वार्यपि भूयस्कारादिपदानि नियमेन भवन्ति । ताश्चैताः द्वाषष्टिमार्गणाः—तिर्यगोघः, सर्वैकेन्द्रियभेदाः, सर्वनिगोदभेदाः, शेषा द्वादशकायसूक्ष्मभेदाः, वनस्पत्योघः, पृथ्व्यप् तेजो-वायुकायौघभेदाः, बादरपृथ्व्य-प्-तेजोवायुकायाः, अपर्याप्तबादरपृथ्व्य-प् तेजो-वायुकायाः, प्रत्येकवनस्पतिकायौघः, अपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायश्चेति चतुस्त्रिंशत्कायभेदाः; काययोगौघः, औदारिकद्विकम्, नपुंसकवेदः, कषायचतुष्कम्, मति-श्रुताऽज्ञाने, असंयमः, अचक्षुर्दर्शनम् , अप्रशस्तलेश्यात्रिकम्, भव्याऽभव्यौ, मिथ्यात्वम् , असंज्ञी, आहारकश्चेति ।

'सप्पाउग्गाणं' इत्यादि, अत्राऽपि पूर्वोक्तानां **'जहि णत्थि'** इत्यादिपदानामनुवृत्तिर्ग्रहणीया, ततश्चाऽयमर्थः—यासु मार्गणासु तिर्यगायुषोऽगुरुप्रदेशबन्धस्याऽष्टभङ्गा न भवन्ति, तासु मार्गणासु **'सप्पाउग्गाऊणं सेसाणं'**ति उक्ततिर्यगायुर्वर्जितशेषस्वसम्भाव्यमानाऽऽयुषां **'चउपया भजणीआ'**ति भूयस्कारादीनि चत्वार्यपि पदानि भजनीयानि सन्ति तत्तदायुष्प्रकृतिबन्धस्यापि भजनीयत्वात् । **'अण्णासु'** इत्यादि, उक्तव्यतिरिक्तासु मार्गणासु स्वस्वप्रायोग्यायुष्प्रकृतीनां स्वपदानि स्वस्वसम्भाव्यमानभूयस्कारादिपदानि भजनीयानि विद्यन्त इति ॥२३४-२३५॥

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे द्वितीये भूयस्काराऽधिकारे पञ्चमं भङ्गविचयद्वारम् समाप्तम् ॥

॥ षष्ठं भागद्वारम् ॥

उक्तं भङ्गविचयद्वारमधुना क्रमप्राप्तं 'भाग' इत्यनेनोद्दिष्टं नानाजीवाश्रितं षष्ठं भागद्वारं प्ररूप्यते । अत्र विवक्षितप्रकृतीनां बन्धकजीवापेक्षया भूयस्कारादितत्तत्पदानां बन्धकजीवाः कतितमभाग आयान्ति तच्चिन्त्यते । तद्यथा–वैक्रियशरीरनाम्नो बन्धकजीवेभ्यस्तद्भूयस्कारपदस्य बन्धकजीवाः कतितमभागे सन्ति ? उच्यते, वैक्रियशरीरनाम्नो बन्धकजीवेभ्यस्तद्भूयस्कारस्य बन्धकजीवाः साधिकाऽर्धभागे सन्ति । ननु वैक्रियशरीरनाम्नो भूयस्कारस्य बन्धकाः साधिकाऽर्धभागे कथमायान्ति ? वैक्रियशरीरस्य बन्धकजीवास्त्वोघेऽनन्तभाग एव सन्ति, यत ओघेऽनन्तजीवसद्भावेन वैक्रियशरीरस्य बन्धकजीवानामसङ्ख्येयत्वेनानन्तजीवापेक्षया तेऽनन्तभाग एवाऽऽयान्तीति चेत्, सत्यम् , किन्त्वत्रेत्थं सर्वजीवाऽपेक्षया ते कियत्तमे भागे सन्ति, इत्येवं न चिन्तनीयम् , परन्तु तत्तत्प्रकृतेर्बन्धकजीवाऽपेक्षया तत्तत्प्रकृतेर्भूयस्कारादिपदानां प्रत्येकं बन्धकजीवाः कियत्तमे भागे आयान्तीत्येवं चिन्तनीयम् ।

अथ तदेव प्रथममोघतश्चिचिन्तयिषुराह ग्रन्थकारः—

होअन्ति बंधगा खलु भूओगारस्स सव्वपयडीणं ।
अहियदुभागो णेया अप्पयरस्स य दुभागंतो ॥२३६॥

(प्रे०) 'होअ०' इत्यादि, 'सव्वपयडीणं' ति सर्वप्रकृतीनां प्रत्येकं यावन्तो बन्धकाः सन्ति, तस्य 'अहियदुभागो' त्ति अधिकद्विभागः-साधिकाऽर्धभागप्रमाणास्तत्तत्प्रकृतेर्भूयस्कारस्य बन्धका ज्ञेयाः । एवं सर्वप्रकृतीनां प्रत्येकं यावन्तो बन्धकजीवा विद्यन्ते, तस्य 'दुभागंतो' त्ति 'द्विभागान्तः' देशोनाऽर्धभागप्रमाणा जीवास्तत्तत्प्रकृतेरल्पतरस्य बन्धका ज्ञेया इत्यर्थः ॥२३६॥

अथाऽवस्थितप्रदेशबन्धस्य भागप्रमाणमोघतो दर्शयन्नाह—

संखेज्जइमो भागो अवट्ठिअस्स खलु बंधगा णेया ।
आहारदुगस्संसो असंखियमोऽत्थि सेसाणं ॥२३७॥

(प्रे०) 'संखेज्ज०' इत्यादि, आहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गयोरवस्थितप्रदेशबन्धस्य बन्धकाः प्रत्येकं स्वबन्धकजीवाऽपेक्षया सङ्ख्यातभागप्रमाणा भवन्ति, स्वबन्धकजीवानां सङ्ख्यातत्वात् । 'सेसाणं' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामवस्थितपदस्य बन्धकास्तत्प्रकृतेः सर्वबन्धकजीवेभ्योऽसङ्ख्येयभागप्रमाणा भवन्ति । यतो हि जीवानामवस्थितबन्धः सामान्यतोऽसङ्ख्यातकालेन प्राप्यत इति ॥२३७॥

अथाऽवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य भागप्रमाणं निर्वक्ति—

एवमवत्तव्वस्स वि णेया णवरि धुवबंधिउरलाणं ।
पयडीण बंधगा खलु हवंति भागो अणंतयमो ॥२३८॥

(प्रे०) 'एव०' इत्यादि, 'एवमवत्तव्वस्स वि' त्ति एवमेव पूर्वगाथावदेवाऽवक्तव्यबन्धस्याऽपि सर्वं वक्तव्यम्; अर्थादाहारकद्विकस्य बन्धकाः सङ्ख्याता विद्यन्ते, तस्मादाहारकशरीराऽऽहारकाङ्गोपाङ्गयोः प्रत्येकमवक्तव्यप्रदेशबन्धकास्तत्प्रकृत्योर्भूयस्कारादिसर्वपदबन्धकजीवाऽपेक्षया सङ्ख्याततमभागे ज्ञातव्याः । अनन्तरं 'णवरि' इत्यादिनाऽपवदिष्यमाणसप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्ध्यौदारिकशरीरवर्जानां शेषप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धका असङ्ख्याततमभागे ज्ञेयाः । तथा चात्र पूर्वगाथातो यो विशेषः स उच्यते, 'णवरि' इत्यादि, णवरि–किन्तु 'धुवबंधिउरलाणं' ति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरस्य चेत्यष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यपदस्य बन्धका अनन्ततमे भागे ज्ञेया इति विशेषः । कुतः ? उक्तप्रकृतिबन्धकानामानन्त्यात्तथाऽवक्तव्यप्रदेशबन्धकानामसङ्ख्याततत्वात्सङ्ख्याततत्वाद्वा ॥२३८॥

इदानीमादेशत औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनां स्वस्वपदानां भागप्रमाणमाह—

ओरालमीसजोगे देवविउवदुगजिणाण णो भागो ।
ओघव्व सगसगपया सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥२३९॥

(प्रे०) 'ओराल०' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां 'देवविउवदुगजिणाण' त्ति देवद्विक-वैक्रियद्विक-जिननाम्नामिति पञ्चप्रकृतीनां 'णो भागो' त्ति भागो नैव भवति, यतस्तासामेकं भूयस्कारपदमेव विद्यते । तथाऽऽहारकद्विकस्य, नरकद्विकस्य देवनारकायुषोश्चाऽत्र बन्धाभाव एव । 'सप्पाउग्गाण सेसाणं' ति स्वप्रायोग्यशेषाणाम्–उक्तव्यतिरिक्तमार्गणाप्रायोग्यशेषसर्वबध्यमानप्रकृतीनां स्वस्वसम्भाव्यमानपदानां भागवक्तव्यता 'ओघव्व' त्ति ओघवत्कथनीया । तद्यथा–अत्र मिथ्यात्वमोहनीयस्य बन्धकजीवेभ्यस्तदवक्तव्यस्य बन्धकजीवा अनन्ततमभागप्रमाणा विज्ञेयाः । तथा देव-नरकायुर्द्विक-देवद्विक-वैक्रियाद्विका-नरकद्विका-ऽऽहारकद्विकजिननामानीत्येकादशप्रकृतिरहितानां शेषसर्वाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां स्वस्वबन्धकजीवापेक्षया तदवक्तव्यप्रदेशबन्धकजीवा असङ्ख्याततमभागप्रमाणा विद्यन्ते । एवमत्रौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायामुपर्युक्तदेवद्विकाद्येकादशप्रकृतिवर्जितशेषसर्वतत्तत्प्रकृतिबन्धकजीवाऽपेक्षया तत्तत्प्रकृतेरवस्थितप्रदेशबन्धकजीवा असङ्ख्याततमे भागे विद्यन्ते । एवमत्र देवद्विकाद्येकादशप्रकृतिरहितशेषबध्यमानतत्तत्प्रकृतेर्बन्धकजीवाऽपेक्षया तत्तत्प्रकृतेरल्पतरबन्धका देशोनाऽर्धभागप्रमाणा ज्ञातव्याः । एवमुपर्युक्तैकादशप्रकृतिवर्जितशेषबन्धयोग्यप्रकृतीनां स्वस्वबन्धकजीवाऽपेक्षया स्वभूयस्कारबन्धकारकाः साधिकाऽर्धभागप्रमाणा ज्ञेया इति ॥२३९॥

अथ वैक्रियमिश्रकाययोगादिमार्गणास्थानेषु प्रकृतभागप्रमाणमाह—

विक्कियमीसे कम्मेऽणाहारे जाण भूअगारो च्चिअ ।
सिं भागो णियराणमवत्तव्वस्स य असंखंसो ॥२४०॥
णवरं अणंतभागो कम्माणाहारगेसु मिच्छस्स ।
तीसु अवि मुणेयव्वा भूओगारस्स सेसंसा ॥२४१॥

(प्रे०)'विक्कियमीसे' इत्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोग-कार्मणकाययोगा-ऽनाहारकमार्गणासु 'जाण भूअगारो च्चिअ' त्ति यासां प्रकृतीनां केवलं भूयस्कारपदमेव सत्तयाऽभिहितं तासां प्रकृतीनां भागप्ररूपणा नास्ति। 'इयराण' इत्यादि, शेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धका असङ्ख्याततमे भागे ज्ञेयाः। अत्र 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादपदमाह-तद्यथा-कार्मणानाहारकमार्गणयोर्मिथ्यात्वस्यावक्तव्यबन्धका अनन्ततमे भागे ज्ञेयाः, कुतः? मार्गणागतबन्धकानामानन्त्येन प्रस्तुतबन्धकानामसङ्ख्येयत्वादिति। 'तीसु अवि' इत्यादि, तिसृषु मार्गणासु पदद्वयवर्तिनीनां प्रकृतीनां बन्धकाः शेषेषु भागेषु वर्तन्ते, अर्थाद् वैक्रियमिश्रे सातवेदनीयाद्यध्रुवबन्धिनीनां मिथ्यात्वस्य च भूयस्कारबन्धका असङ्ख्येयबहुभागे, तथा शेषमार्गणाद्विके सातवेदनीयाद्यध्रुवबन्धिनीनां भूयस्कारबन्धका असङ्ख्येयबहुभागे मिथ्यात्वस्य पुनस्तद्बन्धका अनन्तबहुभागे वर्तन्त इति ॥२४०-२४१॥

अथाऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां प्रक्रान्तं भागप्रमाणमाचष्टे—

जाणाहारगमीसे भूगारो चेव सिं ण सेसाणं ।
संखंसोऽवत्तव्वस्स भूअगारस्स संखंसा ॥२४२॥

(प्रे०) 'जाण' इत्यादि, आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां 'जाण भूगारो चेव' त्ति यासां प्रकृतीनामेको भूयस्कारबन्ध एव जायते 'सिं ण' त्ति तासां प्रकृतीनां भागप्ररूपणं न सम्भवति, अनेकपदाभावात्। 'सेसाणं' ति उक्तशेषप्रकृतीनां यासामत्र भूयस्कारो बन्धोऽवक्तव्यबन्धश्चेति बन्धद्वयं सम्भवति तासामित्यर्थः। ताश्चाऽत्र सातादिद्वादशप्रकृतयः, जिननाम, देवायुश्च सन्ति। तासां किमित्याह-'संखंसोऽवत्तव्वस्स' त्ति तासां सर्वबन्धकजीवाऽपेक्षया तदवक्तव्यपदबन्धकाः सङ्ख्येयतमभागप्रमाणा बोध्याः 'भूअगारस्स संखंसा' त्ति तासां भूयस्कारपदस्य बन्धकाः स्वसर्वबन्धकाऽपेक्षया सङ्ख्यातबहुभागप्रमाणा बोद्धव्याः ॥२४२॥

अथोक्तशेषेषु मार्गणास्थानेषु स्वस्वबध्यमानप्रकृतिसत्कस्वस्वभूयस्कारादिपदानां भागप्रमाणं वक्तुकाम आह—

सेसासु बंधगा खलु भूओगारस्स सव्वपयडीणं ।
अहियदुभागो णेया अप्पयरस्स य दुभागंतो ॥२४३॥

जाण हवन्ते संखा अगुरुपएसस्स बंधगा णेया ।
सिमवट्ठिअस्स संखियभागोऽण्णेसिं असंखंसो ॥२४४॥
एवमवत्तव्वस्स वि णेया णवरि धुवबंधिउरलेहि ।
जाण हवन्ति अणंता सिमवत्तव्वस्सऽणंतंसो ॥२४५॥

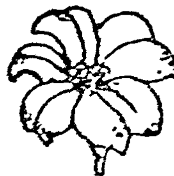
(प्रे०)'**सेसासु**' इत्यादि, उक्तशेषसर्वमार्गणासु-उक्तौदारिकमिश्रकाययोगादिपञ्चमार्गणाव्यतिरिक्तासु शेषसर्वपञ्चषष्ट्यधिकशतमार्गणासु प्रत्येकं स्वस्वबध्यमानप्रकृतिमध्यात्तत्तत्प्रकृतेः '**भूओगारस्स**' त्ति भूयस्कारपदस्य बन्धकाः '**अहियदुभागो णेया**' त्ति साधिकार्धभागप्रमाणा ज्ञेयाः । '**अप्पयरस्स य दुभागंतो**' त्ति तत्तत्प्रकृतेः सर्वबन्धकजीवाऽपेक्षया तत्तत्प्रकृतेरल्पतरपदस्य बन्धकाः '**दुभागंतो**'त्ति देशोनाऽर्धभागप्रमाणा ज्ञातव्याः । '**जाण हवन्ते**' इत्यादि, तथा चाऽत्र यासां प्रकृतीनामगुरुप्रदेशस्य बन्धकाः सङ्ख्याता विद्यन्ते, तासां प्रकृतीनां प्रत्येकं स्वस्वसर्वबन्धकजीवेभ्यः स्वस्वाऽवस्थितपदस्य बन्धकाः '**संखियभागो**' त्ति संख्याततमभागप्रमाणा विज्ञेयाः । '**अण्णेसिं**'ति अन्यासां शेषप्रकृतीनां यासां प्रकृतीनामगुरुप्रदेशबन्धस्य बन्धका सङ्ख्याता न सन्ति तासां प्रकृतीनामिति यावत् , तासामवस्थितपदस्य बन्धकानां कियान् भागः ? इत्याह–'**असंखंसो**' त्ति तासां प्रकृतीनां स्वसर्वबन्धकेभ्यः स्वाऽवस्थितपदस्य बन्धका असङ्ख्याततमभागे ज्ञेयाः । '**एवमवत्तव्वस्स वि णेया**'त्ति एवं यथाऽवस्थितपदस्य बन्धकाः कथिताः, तथैवाऽवक्तव्यपदस्याऽपि कथनीयाः । अर्थादत्रोक्तशेषपञ्चषष्ट्यधिकशतमार्गणासु यासामवक्तव्यबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनामगुरुप्रदेशबन्धस्य बन्धकाः सङ्ख्याताः सन्ति; तासां प्रत्येकं स्वस्वबन्धकजीवेभ्यः स्वाऽवक्तव्यपदस्य बन्धकाः सङ्ख्याततमे भागे ज्ञेयाः । '**अण्णेसिं असंखंसो**' त्ति अन्यासां तद्बन्धका असङ्ख्याततमे भागे सन्ति । अन्यासामवक्तव्यबन्धप्रायोग्याणां सर्वासां प्रकृतीनां प्रकृतबन्धकाः किमसङ्ख्याततमभागे सन्ति ? उत न ? इत्याशङ्कापरिहारार्थमपवादं दर्शयन्नाह '**णवरि धुवबंधिउरलेहि जाण हवन्ति अणंता सिमवत्तव्वस्सऽणंतंसो**' त्ति नवरि-किन्तु सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृयत औदारिकशरीरञ्चेत्यष्टचत्वारिंशत्प्रकृतिभ्यो यासामवक्तव्यबन्धकजीवा यासु मार्गणासु प्राप्यन्ते, तथाऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका अनन्ता विद्यन्ते तासु मार्गणासु तासां प्रकृतीनां प्रत्येकं तदवक्तव्यपदस्य बन्धका अनन्ततमभागे ज्ञातव्याः । एतासु शेषावक्तव्यबन्धार्हप्रकृतीनामवक्तव्यपदस्य बन्धका असंख्यातभागमात्रा विज्ञेयाः । तथा यासु मार्गणासु च तदनुत्कृष्टप्रदेशबन्धका असङ्ख्यातास्सन्ति, तासु तदवक्तव्यस्य बन्धका असङ्ख्याततमे भागे कथनीयाः । अत्र च यासु मार्गणासूक्ताऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धका अनन्ततमे भागे विद्यन्ते, तद् दर्श्यते-तथा च तिर्यग्गतिमार्गणायां स्त्यानर्द्धित्रिक-मिथ्यात्वा-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्का-ऽप्रत्याख्यानचतुष्कौ-दारिकशरीराणीति त्रयोदशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धका अनन्ततमे भागे ज्ञेयाः ।

काययोगौघौ-दारिककाययोगा-ऽचक्षुर्दर्शन-भव्या-ऽऽहारकमार्गणा इति मार्गणाषट्के ओघवदेव-अर्थादष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धका अनन्ततमभागे विज्ञेयाः ।

नपुंसकवेद-क्रोधमार्गणयोर्ज्ञानादिचतुर्दशप्रकृतीनां सञ्ज्वलनचतुष्कस्य चाऽवक्तव्यबन्धो नैव भवति, शेषाणामोघवद् द्रष्टव्यम् । एवं मान-माया-लोभमार्गणासु वक्तव्यम्, नवरं माने सञ्ज्वलनक्रोधस्य, मायायां सञ्ज्वलनक्रोधमानयोः, लोभे सञ्ज्वलनचतुष्कस्याऽप्यवक्तव्यबन्धका अनन्ततमे भागे विज्ञेयाः । मतिश्रुताऽज्ञानद्विके मिथ्यात्वौ-दारिकशरीरयोरवक्तव्यबन्धका अनन्ततमभागे ज्ञेयाः । असंयममार्गणायामशुभलेश्यात्रिके च स्त्यानर्द्धित्रिक-मिथ्यात्वा-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्कौ-दारिकशरीराणीति नवप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धका अनन्ततमे भागे विद्यन्ते। अभव्य-मिथ्यात्वा-संज्ञिमार्गणात्रिके औदारिकशरीरस्याऽवक्तव्यबन्धका अनन्ततमभागे बोध्याः । शेषमार्गणासूक्त-ऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतिभ्यो यासामवक्तव्यबन्धकाः प्राप्यन्ते, तासामवक्तव्यबन्धका असङ्ख्याततमे भागे बोध्याः । शेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धका अनन्तराशिकमार्गणास्वसंख्यातराशिकमार्गणासु चाऽसंख्यातभाग एव ज्ञेयाः ॥२४३-२४४-२४५॥

तदेवं कथितमादेशतो भागद्वारम्, तस्मिन्कथिते च निरुपितमोघादेशाभ्यां भागद्वारम्; तन्निरूपणे च 'भागो' इत्यनेनोद्दिष्टं षष्ठं भागद्वारं व्याख्यातम् ।

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे द्वितीये भूयस्काराऽभिधेऽधिकारे षष्ठं भागद्वारं समाप्तम् ॥



॥ परिणामादीनि पञ्चद्वाराणि ॥

निरूपितं भागद्वारम् । इदानीं क्रमप्राप्तान्यनेकजीवाऽऽश्रितानि परिणामादिपञ्चद्वाराणि निरूपयितुमाह--

तत्राऽऽदौ चतुर्णामायुषामोघत आदेशतश्च चतुर्णामपि पदानां वक्तव्यतामगुरुप्रदेशबन्धवत्साप-वादमतिदिशन्नाह--

पणपरिमाणाईसुं अगुरुपएसव्व अत्थि आऊणं ।
सव्वाण पयाण णवरि जेसिं जेट्ठो मुहुत्तंतो ॥२४६॥
सिं संखियसमयाऽवट्ठिअऽवत्तव्वाण होअए जेसिं ।
पल्लासंखियभागो सिं आवलिआअसंखंसो ॥२४७॥

(प्रे०) '**पण०**' इत्यादि, '**पणपरिमाणाईसु**' ति परिमाणद्वारम्, क्षेत्रद्वारम्, स्पर्शनाद्वारम्, कालद्वारम्, अन्तरद्वारञ्चेति पञ्चसु द्वारेषु '**आऊणं**' ति ओघे सर्वमार्गणासु च स्वस्वबध्यमानाऽऽयुषां '**सव्वाण पयाण**' त्ति सम्भाव्यमानसर्वभूयस्कारादिपदानां सर्वाऽपि वक्तव्यता '**अगुरुपएसव्व**' त्ति अगुरुप्रदेशबन्धवदस्ति । अत्र कालद्वारेऽपवादं '**णवरि**' इत्यादिना दर्शयति-'**णवरि जेसिं जेट्ठो मुहुत्तंतो सिं संखियसमयाऽवट्ठिअऽवत्तव्वाण होअए**' त्ति नवरं यासु मार्गणासु यद्यदायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालोऽनेकजीवाऽऽश्रयैकान्तर्मुहूर्तप्रमाणः कथितोऽस्ति, तासु मार्गणासु तत्तदायुषामवक्तव्याऽवस्थितप्रदेशबन्धयोरुत्कृष्टकालः संख्यातसमयप्रमाणः कथनीयः । '**जेसिं पल्लासंखियभागो सिं आवलिआ असंखंसो**' त्ति यासु मार्गणासु यद्यदायुषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य गुरुकालः पल्योपमस्याऽसंख्यातभागप्रमाण आख्यातः, तासु मार्गणासु तत्तदायुषामवक्तव्याऽवस्थितप्रदेशबन्धयोः काल आवलिकाया असंख्यातभागप्रमाणो वक्तव्यः ॥२४६-२४७॥

अथाऽऽयुर्वर्जप्रकृतीनां भूयस्कारादिपदत्रयस्य परिमाणादिद्वारपञ्चकसत्कं सर्ववर्णनमतिदिशन्नाह-

अगुरूपएसव्व भवे परिमाणाईसुं पंचदारेसुं ।
तिपयाणं सत्तण्ह अवत्तव्वस्स ठिइबंधव्व ॥२४८॥

(प्रे०) '**अगुरु०**' इत्यादि, '**सत्तण्ह**' त्ति आयुर्वर्जितशेषसप्तमूलप्रकृतिसत्कसर्वषोडशाऽधिकशतप्रकृतीनां '**तिपयाणं**'ति अवक्तव्यरहितशेषभूयस्कारादित्रिपदानां '**परिमाणाईसु पंचदारेसु**' ति परिमाण-क्षेत्र-स्पर्शना-काला-ऽन्तराभिधानेषु पञ्चद्वारेषु परिमाणादीनां सर्वं निरूपणम् '**अगुरुप-**

एसव्व' त्ति अगुरूप्रदेशबन्धवदेव भवति । 'अवत्तव्वस्स ठिइबंधव्व' त्ति आयुर्वर्जसर्वप्रकृतीनामवक्तव्यप्रदेशबन्धस्य परिमाणादिपञ्चद्वाराणां सर्वं वक्तव्यं स्थितिबन्धसत्कप्रकृतविषयतुल्यमेव । अतो नाऽत्र विस्तरेण प्रपञ्च्यते ।

अयम्भावः—भूयस्कारा-ऽल्पतरा-ऽवस्थितप्रदेशबन्धा अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धवदेवोघे मार्गणायां च कस्यचिदपि जीवस्य सामान्यतो भवितुमर्हन्ति, अत एव तत्परिमाणादिपञ्चद्वाराणां वर्णनमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धतुल्यमेवाऽऽयाति । तद्गतपरिमाणद्वारस्य वर्णनं वयं यन्त्ररूपेणाऽग्रे दर्शयिष्यामः । प्रकृतेऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धाऽपेक्षया यो विशेषोऽस्ति तं दर्शयितुं मूलकारस्तदपवादगाथाः 'णवरं' इत्यादिना कथयति—

णवरं णो चेव भवे णियमा जेसिं अवट्ठिओ बंधो ।
सिमवट्ठिअस्स ह्रस्सो कालो समयो मुणेयव्वो ॥२४९॥
जेसिं हवेज्ज संखा तेसिं संखसमया भवे जेट्ठो ॥
जाण असंखा तेसिं आवलिआए असंखंसो ॥२५०॥

(प्रे०) **णवरं** इत्यादि, अनन्तरपूर्वगाथायां यत्प्रकृतद्वारपञ्चकस्य पदत्रयसत्कं सर्वं निरूपणमगुरुप्रदेशवदतिदिष्टम्, तस्मिन् भूयस्कारा-ऽल्पतरबन्धौ तु पौनःपुन्येन, अथ चाऽन्तर्मुहूर्ता-ऽन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं भवनार्हौ विद्येते, अतः प्रकृते सर्वत्र तयोर्निरपवादेनैव सर्वं वक्तव्यमनुत्कृष्टप्रदेशबन्धतुल्यं भवति । किन्त्ववस्थितबन्धस्य प्राप्तिस्तु क्वचिदेव दीर्घकालाऽनन्तरं सम्भवति, अत एव कालद्वारेऽन्तरद्वारे च कासुचिन्मार्गणास्वतिप्रसक्तिमुद्धर्तुमपवादपदानि 'णवरं' इत्यादिना दर्शयति । तस्मिन् प्रथमं कालद्वारे यदपवादपदं विद्यते तदुक्तगाथाद्विके दर्शितम् । तदर्थस्त्वयम्—'**णवरं**' किन्तु '**णो चेव भवे णियमा जेसिं अवट्ठिओ बंधो**' त्ति यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामवस्थितबन्धो नियमेन न भवति '**सिमवट्ठिअस्स ह्रस्सो कालो समयो मुणेयव्वो**' त्ति तासां प्रकृतीनामवस्थितबन्धस्य ह्रस्वः-जघन्यकाल एकसमयप्रमाणो ज्ञातव्यः । '**जेसिं**' इत्यादि, अत्र '**णो चेव भवे णियमा**' इत्यादिपदानामनुवृत्तिर्ग्राह्या, ततश्चायमर्थः-यासां प्रकृतीनां यासु मार्गणास्ववस्थितबन्धोऽनियमेन भवति, तासां प्रकृतीनां तासु मार्गणासु किमित्याह—'**जेसिं हवेज्ज संखा तेसिं संखसमया भवे जेट्ठो जाण असंखा तेसिं आवलिआए असंखंसो**' त्ति यासां प्रकृतीनां बन्धकाः संख्येया विद्यन्ते तासामवस्थितप्रदेशबन्धस्योत्कृष्टकालः संख्यातसमयप्रमाणो भवति । यासां च प्रकृतीनां बन्धकजीवा असङ्ख्येयास्तासामवस्थितबन्धस्योत्कृष्टकाल आवलिकाया असङ्ख्याततमभागगतसमयप्रमाणो विज्ञेयः ॥२४९-२५०॥ अथाऽन्तरद्वारे यदपवादपदं विद्यते तदभिधित्सुराह—

एएसिं सव्वेसिं अवट्ठिअस्संतरं मुणेयव्वं ।
हस्सं समयो जेट्ठं असंखभागोऽत्थि सेढीए ॥२५१॥

(प्रे०) 'एएसिं' इत्यादि, 'एएसिं सव्वेसिं' ति एतासाम्=अनन्तरपूर्वोक्तगाथाप्रदर्शितकालानां सर्वासां प्रकृतीनाम्, यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धो नियमेन न भवति, अर्थाद् भजनया भवति तासां प्रकृतीनाम्, किमित्याह-'अवट्ठिअस्संतरं हस्सं समयो, जेट्ठं असंखभागोऽत्थि सेढीए' त्ति उक्तासु तासु तासु मार्गणासु तासां तासां प्रकृतीनामवस्थितप्रदेशबन्धस्य ह्रस्वं-जघन्यमन्तरमेकसमयप्रमाणम् । उत्कृष्टश्चान्तरं श्रेणेरसङ्ख्याततमभागप्रमाणमस्तीति गाथार्थः । एवमत्र संक्षेपेणाऽपवादपदानि दर्शितानि, विस्तरतस्तु निर्दिष्टातिदेशस्थानान्यपवादपदानि च परिभाव्य पञ्चद्वारसत्कं निरूपणं स्वयं वक्तव्यं, सुगमत्वात् । परिमाणद्वारस्य विशेषनिरूपणं यन्त्रे दर्श्यते, तज्जिज्ञासुभिस्ततो द्रष्टव्यमिति ॥२५१॥

तदेवं सातिदेशमुक्तान्यनेकजीवाश्रितानि परिमाणादीनि पञ्चद्वाराणि । तदुक्तं च 'परिमाणं खेत्तफोसणाउ तहा कालो अंतरं' इत्यनेनोद्दिष्टानि सप्तमाद्येकादशपर्यंतानि पञ्चद्वाराणि समर्थितानि ।

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्री बन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे द्वितीये भूयस्काराऽभिधेऽधिकारे सप्तमाद्येकादशान्तानि परिमाण-क्षेत्र-स्पर्शना-काला-ऽन्तराऽऽख्यानि द्वाराणि समाप्तानि ॥

॥ द्वादशं भावद्वारम् ॥

प्ररूपितं परिमाणादिद्वारपञ्चकम्, अथ क्रमप्राप्तं भावद्वारं प्ररूपयन्नाह—

भावेणोदइएणं बंधइ सव्वपयडीण संतपया ।
एवं संतपयाणं सप्पाउग्गाण सव्वासु ॥२५२॥

(प्रे०) 'भावे०' इत्यादि, ओघतः सर्वप्रकृतीनां 'संतपया' त्ति भूयस्कारादीनि सत्पदानि जीवः 'भावेणोदइएणं बंधइ' त्ति औदयिकभावेन बध्नाति । 'एवं' त्ति तथैवाऽऽदेशतः 'सव्वासु' ति सर्वासु मार्गणासु 'सपाउग्गाण' ति स्वप्रायोग्याणां प्रकृतीनां 'संतपयाणं' ति सम्भाव्यमानभूयस्कारादिसत्पदानां बन्धोऽप्यौदायिकभावेन विज्ञेय इति ॥२५२॥

तदेवमुक्तमोघादेशाभ्यां भावद्वारम्, तदुक्ते च 'भावा' इत्यनेनोद्दिष्टं द्वादशं भावद्वारं प्ररूपितम् ।

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे द्वितीये-भूयस्काराभिधेऽधिकारे भावद्वारं समाप्तम् ॥

॥ परिमाणद्वारयन्त्रम् ॥

आयुःप्रकृतीनां भूयस्कारादिचतुर्णां पदानां बन्धकपरिमाणम्

मा सं.	मार्गणास्थानानि	प्रकृतयः	प्र० सं०	बन्धकपरिमाणम्
—	ओघतः	तिर्यगायुः	१	अनन्ताः
—	,,	शेषाणि त्रीणि	३	असंङ्ख्येयाः
१६	आदेशतः सर्वैकेन्द्रियभेदाः-७, सर्वनिगोदभेदाः-७, वनस्पतिकायौघः, औदा० मिश्र० ।	तिर्यगायुः मनुष्यायुः	१ १	अनन्ताः असङ्ख्येयाः
२०	तिर्यग्गत्योघः, काययोगौघः, औदा० काय०, नपुं० वेदः, कषायभेदाः ४ अज्ञान २, अयत०, अचक्षुर्द०, अप्र० लेश्या-३, भव्याभव्यौ, मिथ्यात्वं, असंज्ञी, आहारी ।	तिर्यगायुः शेषाऽऽयुस्त्रिकम्	१ ३	अनन्ताः असङ्ख्येयाः
२९	नरकौघः, आद्यषण्नरक०, सहस्राराऽन्ता देवमार्गणाः १२, वै. काय०, तेजोले०, पद्मले०, सास्वा०, ३ ज्ञानानि, अवधिद०, सम्यक्त्वौघः, क्षायोपशमिकस० ।	मनुष्यायुः शेषस्वप्रायोग्य० (यथासम्भवं)	१ २	सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयाः
१	मनुष्यौघः,	नरकदेवायुषी मनुष्यतिर्यगायुषी	२ २	सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयाः
२६	पर्याप्तमनुष्यः, मानुषी, १८ आनतादयः देवाः, आहा० काय०, आहा० मिश्र०, मन.पर्यव०, संयमौघः, सामायिक-छेदोपस्थापनीय-परिहारवि०, शुक्लले०, क्षायिकस० ।	स्वबन्धयोग्या-यु.प्रकृ०	—	सङ्ख्येयाः
१५	सप्तमनरकं, सर्वतेजोवायुकायभेदाः १४,	तिर्यगायुः	१	असङ्ख्येयाः
२२	पञ्चेन्द्रियतिर्यग्० ३, त्रसकाय०, पर्या० त्रस०, पञ्चेन्द्रियौघः, पर्या० पञ्चे०, मनोयोगाः ५, वचनयोगाः ५, स्त्रीवेदः, पुरुषवेदः, विभङ्गज्ञानम्, चक्षुर्दर्शनम्, संज्ञी ।	चत्वार्यप्यायूंषि	४	असङ्ख्येयाः
३०	अपर्या० मनु०, अपर्या० पञ्चे० तिर्यग्०, विकलेन्द्रियभेदाः ९, अपर्या० पञ्चे०, अपर्या० त्रस०, पृथ्व्यप्कायभेदाः १४; प्रत्येकवनस्पतिभेदाः ३,	तिर्यग्मनुष्यायुषी	१ १	असङ्ख्येयाः ,,
१	देशविरतस०,	देवायुः	१	असङ्ख्येयाः

मा.सं०	ओघतः	प्रकृतयः	प्र०सं०	बन्धकपरिमाणम्
	ओघतः	आहारकद्विकम् ,	२	सङ्ख्येयाः
		वैक्रियषट्कम् , जिननाम,	७	असङ्ख्येयाः
		शेषाः	१०७	अनन्ताः
	आदेशत.			
१७	तिर्यग्गत्योघः, काययोगौघः, नपुं०वेदः, कषायाः४, अज्ञान २, अयत० अचक्षु०, कापोतलेश्या, भव्या-ऽभव्यौ, मिथ्यात्वम् , असंज्ञि०, आहारि०,	तत्तन्मार्गणाबन्धप्रायोग्याः सर्वाः		ओघवत्
२	कृष्णले०, नीलले०,	जिननाम वैक्रियषट्कम् शेषाः	१ ६ —	सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयाः अनन्ताः
१	औदा० काययोगः	आहा०२, जिननाम वैक्रियषट्कम् शेषाः	३ ६ —	सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयाः अनन्ताः
१	मनुष्योघः	आहा०२, जिन०, वैक्रिय० ६, शेषाः	९ १०७	सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयाः
१२	पर्या० मनु०, मानुषी, सर्वार्थ० सुर०, आहा० काय०, आहा० मिश्रकाय०, अवेदः, मनःपर्यव०, संयमौघः, सामा०, छेदो०, परिहार०, सूक्ष्म०,	मार्गणाबन्धयोग्याः सर्वाः	—	सङ्ख्येयाः
१५	सर्वैकेन्द्रियाः-७, सर्वनिगोदभेदाः७, वनस्पत्योघः,	सर्वाः	१०७	अनन्ताः
२७	पञ्चेन्द्रियौघः, पर्या० पञ्चे०, त्रसौघः, पर्याप्तत्रस०, मनोयोगाः ५, वचनयोगाः ५, पुरुषवेदः, मति-श्रुता-ऽवधिज्ञानानि ३, अवधिदर्शनं, चक्षुर्दर्शनं, प्र० लेश्याः ३, सम्यक्त्वौघः, क्षायोप०, क्षायिक०, संज्ञी ।	आहा० २ मार्गणाप्रायोग्याः शेषाः सर्वाः	२ —	सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयाः
३	औदा० मिश्रकाय०, कार्मणकाय०, अनाहारी०	सुर २, वै०२, जिन०, शेषाः	५	सङ्ख्येयाः अनन्ताः
२	वै० मिश्रकाय०, देशविरत०,	जिन०, स्वप्रायोग्याः शेषाः	१ —	सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयाः
२	स्त्रीवेद०, उपश० स०	जिन०, आहारक०२, मार्गणाप्रायो०शेषाः	३ —	सङ्ख्येयाः असङ्ख्येयाः
८८	नारकाः ८, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः ४, अप० मनुष्यः, देवभेदाः २६ (सर्वार्थ० वर्जाः), विकलेन्द्रियाः ९, अपर्या० पञ्चे०, पृथ्व्यादिकायचतुष्कभेदाः २८, प्र० वन० ३, अप० त्रसकाय०, वै०काय०, विभङ्गज्ञानम् , मिश्र-सम्य०, सास्वा० सम्य०,	मार्गणाबन्धप्रायोग्याः सर्वाः	— —	असङ्ख्येयाः

मा सं०	मार्गणाः	प्रकृतयः	प्र०सं०	परिमाणम्
	ओघतः	तीर्थकरनाम, आहा० २,३५ ध्रुव०,	३८	सङ्ख्याताः
	,,	अनन्ता० ४, अप्रत्या० ४, स्त्या० ३, मिथ्या० १, वैक्रिय ६, औदा० ग०,	१९	असङ्ख्याताः
	,,	शेष ५६ अध्रुवब० तद्यथा—मनु०२, ति०२, जाति ५, औदा० अङ्गो०, संह०६, संस्था० ६, खगति-२, परा०, आतप०, उद्योत०, उच्छ्०, त्रस १०, स्था० १०, गोत्र२, वेदनीय २, हास्य-रती,शोकारती, वेद ३,	५६	अनन्ताः
६	आदेशतः नरकौघः, प्रथमादित्रिनरक०३,वैक्रि०-काय०, देशवि०	जिननाम शेषाऽवक्तव्यबन्धयोग्याः प्रकृतयः, ताश्चात्र नरकौघ-प्रथमादित्रिनरकभेदेषु (५०,पञ्चाशत्सङ्ख्याकाः, वैक्रियकाययोगे ५६ सङ्ख्याकाः, देशविरतौ १२ प्रकृ० ज्ञेयाः।	१	संख्याताः असंख्याताः
८४	चतुर्थादिसप्तमान्तनरक०, सर्वपञ्चेन्द्रियतिर्यग्०४, सर्वविकल०९ सर्वपृथ्व्यप्तेजोवायु० २८भेदाः) अपर्या० मनु०, अपर्या० पञ्चे०, त्रस०, सर्वार्थमुररहितशेषाः २९ देवभेदाः, प्रत्येकवन० त्रिक, वै० मिश्र०, विभङ्गज्ञान०, सास्वा०, मिश्र०,	आयुर्वर्जस्वस्वावक्तव्यबन्धयोग्याः प्रकृतयः		असंख्येयाः
१	मनुष्यौघः	४७ ध्रुवब०, औदा० श०, वैक्रि०षट्कम्, आहा०२, तीर्थ०, उक्तशेषा आयुर्वर्जसर्वाः	५७ ५९	संख्येयाः असंख्येयाः
११	पर्या० मनु०, मनु०योनि० सर्वार्थसि०, आहा० २, अप० वेद, मनःप० संयमौघः, सामा०, छेदो०, परिहा०।	स्वस्वाऽवक्तव्यबन्धयोग्याः प्रकृतयः		संख्याताः

मा.सं०	मार्गणाः	प्रकृतयः	प्र०सं०	परिमाणम्
१६	पञ्चे० ओघः, पर्या० पञ्चे०, त्रसका०, पर्या० त्रस०, ५ मनोयोगाः, ५ वचनयोगाः, चक्षुर्द०, संज्ञि०,	आहा०२, जिन०, ३५ ध्रुवबन्धि०,	३८	सङ्ख्याताः
		शेषसर्वाः ७८ प्रकृ०,	७८	असंख्याताः
२	स्त्री-पुंवेद०,	पूर्वोक्ताऽष्टत्रिंशत्प्रकृतिमध्यात् सञ्ज्वलन ४, ज्ञानाव० आदि १४ प्रकृतिरहिता २० प्र०	२०	संख्येयाः
		शेषाः पूर्ववत् ७८	७८	असंख्येयाः
५	ज्ञानत्रयं, अवधिद० सम्य०,	सातादि १२, अप्रत्या० ४, नर २, औदा० २, वज्र०,	२१	असंख्येयाः
		उक्तशेषाः ५६ प्र०	५६	संख्येयाः
२	तेजः-पद्मलेश्या०,	प्रत्या०४, सुर २, वै० २, आहा० २, जिन०,	११	संख्येयाः
		उक्तशेषाऽवक्तव्यबन्धयोग्याः		असंख्येयाः
१	शुक्लले०,	अनन्ता० ४, अप्रत्या० ४, स्त्या०३, मिथ्या०, साताऽसात-हास्य-रति-शोका-ऽरतिमोह०, वेदत्रिकं, संहनन ६, संस्था० ६, खगति २, स्थिर ६, अस्थिर ६, गोत्र २,	४९	असंख्येयाः
		उक्तशेषाः ५३ प्रकृ०	५३	संख्येयाः
१	क्षायिकसम्य०,	सातादि १२,	१२	असंख्येयाः
		शेषाः ६५ प्रकृतयः	६५	संख्येयाः
१	क्षायोपशमिकसम्य०	सातादि १२, अप्रत्या०४, नर०२, औदा० २, वज्र०,	२१	असंख्येयाः
		प्रत्या०४, देव० २, वै० २, आहा०२, जिन०,	११	संख्येयाः
१	उपशमसम्य०,	सातादि-१२, अप्रत्या० ४,	१६	असंख्येयाः
		उक्तशेषाऽवक्तव्ययोग्याः ६१	६१	संख्येयाः
१	तिर्यगोघः,	१२ ध्रुवबन्धि०, वैक्रिय-६, औदा०,	१९	असंख्येयाः
		उक्तशेषाः ५९ अध्रुव०,	५९	अनन्ताः

मा स०	मार्गणा:	प्रकृतय:	प्र०स०	परिमाणम्
१५	सकलैकेन्द्रि० ७, सकल-साधा० ७, वनस्पत्योघ: १	४ आयूंषि ६ वैक्रियषट् २ आहा० २ १ जिन० १ औ० श० विना शेषा: ५९ अध्रुवब० प्रकृ०	५६	अनन्ता:
५	काययोगौघ:,औदा०काय०, अचक्षुर्द०, भव्यमा०, आहारी,	३५ ध्रुवब०, आहा० २, जिन०, अप्रत्या० ४, स्त्या० ८, वैक्रिय ६, औ० श०, शेषा: ५६ प्रकृ०	३८ १९ ५९	संख्याता: असंख्याता: अनन्ता:
३	औदा० मिश्रकाय०, कार्मणकाय०. अनाहारी,	मिथ्यात्वम् शेषा: ५९ (सकलैकेन्द्रियादिमार्गणोक्ता:)	१ ५९	असंख्याता: अनन्ता:
२	नपुंसकवेदमा० क्रोधकषायमा०,	ज्ञानाव० आदि १४+सञ्ज्वल० ४ रहिता: शेषा:	९८	काययोगौघवत् ज्ञेयम्
१	मानकषायमा०,	ज्ञाना० आदि १४+सञ्ज्व० ३ विना	९९	काययोगौघवत्
१	मायाकषायमा०	ज्ञाना० आदि० १४ सञ्ज्व० मायालोभविना शेषा:	१००	काययोगौघवत्
१	लोभकषायमा०	ज्ञाना०आदि० १४ विना शेषा:	१०२	काययोगौघवत्
२	मत्यज्ञानमा० श्रुताज्ञानमा०	१ मिथ्यात्वम्, वैक्रि० ६, औदा० श० अध्रुवब० ५६ आयु-४, आहा० २, जिनरहिता:शेषसर्वा:)	८ ५९	असंख्याता: अनन्ता:
१	सूक्ष्मसंपराय:	०	०	०
२	अविरतमा० कापोतले०,	जिननाम स्त्या० ८, वैक्रि० ६, औदा० श० शेषा: ५६ अध्रुव० प्र०,	१ १५ ५६	संख्याता: असंख्याता: अनन्ता:
२	कृष्ण-नीलले०	स्त्या० ८, वैक्रिय-६, औदा० श०, शेषा: ५९		असंख्येया: अनन्ता:
३	अभव्यमा० मिथ्यात्वमा० असंज्ञिमा०	औदा० श० १,वैक्रि० ६ शेषा: ५९ अध्रुव०	७ ५६	असंख्येया: अनन्ता:

सूक्ष्मसंपरायमार्गणायामवक्तव्यबन्धाभाव: ।

॥ त्रयोदशमल्पबहुत्वद्वारम् ॥

अथ क्रमप्राप्तमल्पबहुत्वद्वारं निजिगदिषुस्तत्तत्प्रकृतीनां भूयस्कारादितत्तत्पदबन्धकानामन्योन्यमल्पबहुत्वं प्रथममोघत आह--

धुवउरलाण अवत्तव्वऽवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं ।
कमसोऽत्थि बंधगाऽप्प-अणंत-असंखगुण-अब्भहिया ॥२५३॥

(प्रे०) 'धुव०'इत्यादि, 'धुवउरलाण'त्ति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतय औदारिकशरीरञ्चेत्यष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनाम् 'अवत्तव्व ऽवट्ठिअ-ऽप्पयर भूअगाराणं'ति अवक्तव्या-ऽवस्थिता-ऽल्पतर-भूयस्कारपदानां बन्धकाः क्रमशः 'अप्प अणंत-असंखगुण अब्भहिया' त्ति अल्पा-ऽनन्ता-ऽसंख्यगुणा-ऽभ्यधिकाः सन्ति ।

इदमुक्तं भवति–सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यपदबन्धकाः सम्यग्दृष्टयोऽथवा सम्यक्त्वादिगुणस्थानेभ्यो निपतिता एव भवन्ति । अत एव ते जीवा भूयस्कारादिपदबन्धकेभ्योऽल्पतरा एव भवन्ति । एवमौदारिकशरीरस्याऽवक्तव्यबन्धकाः पञ्चेन्द्रिया एव, तस्मात्तेऽप्यल्पा विद्यन्ते । एवमुक्तप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धकजीवाऽपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धकजीवा अनन्तगुणा विज्ञेयाः; निगोदजीवानामपि तद्बन्धकत्वात् , श्रेणेरसंख्याततमे भागे व्यतीते सति प्रत्येकं जीवस्याऽवस्थितबन्धस्य प्राप्तेर्निश्चयेन सम्भवाच्च । एवं प्रकृतेऽवस्थितबन्धकेभ्योऽप्यल्पतरपदबन्धका असंख्यातगुणा विद्यन्ते; अल्पतरबन्धस्य प्रत्यन्तर्मुहूर्तं जायमानत्वान्नैरन्तर्येणाऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं प्रवर्तनाच्च । अल्पतरबन्धकाऽपेक्षया भूयस्कारपदस्य बन्धका विशेषाधिकाः सन्ति, अल्पतरपदस्य निरन्तरकालाऽपेक्षया भूयस्कारपदनिरन्तरकालस्य विशेषाधिकत्वादिति ॥२५३॥

अथैवमाहारकद्विकस्य भूयस्कारादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वमाचष्टे--

अह बंधगा अवट्ठिअ-ऽवत्तव्व-ऽप्पयर-भूअगाराणं ।
आहारदुगस्स कमाऽप्प-संख-संखगुण-अब्भहिया ॥२५४॥

(प्रे०) 'अह' इत्यादि, अथाऽऽहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणस्याऽऽहारकद्विकस्याऽवस्थिता-ऽवक्तव्या-ऽल्पतर भूयस्काराणां बन्धकाः क्रमशोऽल्प-सङ्ख्यगुण-संख्यगुण-विशेषाधिका उत्तरोत्तरं ज्ञेयाः । अर्थादाहारकद्विकस्याऽवस्थितबन्धस्य क्वचिदेव जायमानत्वात्तदवस्थितपदबन्धका अन्यपदबन्धकेभ्योऽल्पा विद्यन्ते, अवस्थितबन्धकेभ्योऽवक्तव्यपदबन्धकाः सङ्ख्यातगुणप्रमाणाः सन्ति, आहारकद्विकसत्तावतामप्रमत्तगुणस्थानकं प्रविशतां जीवानामवक्तव्यबन्धस्य निश्चयेन भवनात् । अल्पतरबन्धकास्तु ततोऽपि सङ्ख्येयगुणप्रमाणाः; अल्पतरबन्धस्याऽन्तर्मुहूर्तं यावन्नैरन्तर्येण जायमा-

नत्वात्, ततोऽपि भूयस्कारबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः, अल्पतरबन्धस्य निरन्तरकालाऽपेक्षया भूयस्कारसत्कनिरन्तरबन्धकालस्याऽऽधिक्यादिति ॥२५४॥

अथ जिननामसत्कप्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

तित्थयरस्स अवत्तव्वऽवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं ।
कमसोऽत्थि बंधगाऽप्पअसंखअसंखगुणअब्भहिया ॥२५५॥

(प्रे०) 'तित्थ०' इत्यादि, गाथार्थस्तु सुगमः । भावार्थः पुनरयम्–जिननाम्नोऽवक्तव्यपदबन्धकाः स्तोकाः सन्ति, यतो हि तदवक्तव्यबन्धकाः केचन श्रेणेर्निपतन्तो वा नूतनबन्धविधायिनो मनुष्या वा केचन नारका वा विद्यन्ते, तेषां च सङ्ख्येयप्रमाणत्वात्प्रकृतबन्धकाः स्तोका इत्युक्तम् । तदवक्तव्यबन्धकाऽपेक्षयाऽवस्थितबन्धका असंख्येयगुणप्रमाणाः, असंख्येयदेव नारकजीवानां तद्बन्धकत्वात् । अल्पतरबन्धकास्ततोऽप्यसंख्येयगुणप्रमाणाः प्रत्यन्तमुहूर्तं तत्राऽपि चान्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तमल्पतरबन्धसम्भवात् । ततोऽपि भूयस्कारस्य बन्धका विशेषाधिकाः, अल्पतराऽपेक्षया भूयस्कारनिरन्तरबन्धकालस्याऽऽधिक्यात् । उत्तरत्राऽपि यत्र यत्राऽल्पतराऽपेक्षया भूयस्कारस्य बन्धका विशेषाधिका उक्ताः स्युः, तत्राऽयमेव हेतुरनुशीलनीय इति ॥२५५॥

अथोक्तशेषप्रकृतीनामोघतः प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

सेसाण खलु अवट्ठिअ-ऽवत्तव्व-ऽप्पयर-भूअगाराणं ।
कमसोऽत्थि बंधगाऽप्पअसंखअसंखगुणअब्भहिया ॥२५६॥

(प्रे०) 'सेसाण' इत्यादि, गाथार्थः सुगमः । भावार्थस्त्वयम्—उक्तशेषसर्वासामेकोनसप्ततिसंख्याकप्रकृतीनामवस्थितपदस्य बन्धका अल्पास्सन्ति, तद्बन्धाऽन्तरकालस्य दीर्घत्वात् । तदपेक्षया चाऽवक्तव्यपदबन्धका असंख्येयगुणाः, देव नरकमनुष्यायूंषि विना प्रत्यन्तमुहूर्तकाले सामान्यतो बहुजीवानामवक्तव्यबन्धस्य प्राप्तिसम्भवात्तथाऽऽयुस्त्रयस्य बन्धप्रारम्भसमये नियमतोऽवक्तव्यबन्धस्य भावात् ,अवस्थितबन्धस्तु न तथा, कस्यचिदेव तद्भावादित्यर्थः । अवक्तव्यबन्धकाऽपेक्षयाऽल्पतरस्य बन्धका असंख्येयगुणा अवक्तव्यबन्धकालस्यैकजीवाऽऽश्रयस्योत्कृष्टतोऽप्येकसामयिकत्वात्, अल्पतरबन्धस्य चाऽन्तर्मुहूर्तकालं यावन्निरन्तरं सम्भवात् प्रत्यन्तमुहूर्तं च भवनात् । अल्पतराऽपेक्षया भूयस्कारस्य बन्धका विशेषाऽधिकाः । तद्धेतुस्तु पूर्ववदेवेति ॥२५६॥

अथाऽऽदेशतो मार्गणास्थानेषु प्रकृताऽल्पबहुत्वं निरूपयिषुः प्रथमं काययोगादिषु कासुचिन्मार्गणासु स्वयोग्यप्रकृतीनां भूयस्कारादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वं कथयितुमाऽऽह—

ओघव्व अत्थि काये लोहअचक्खुभवियेसु आहारे ।
परमत्थि अवत्तव्वो लोहे णावरणणवगविग्घाणं ॥२५७॥ (गीतिः)

(प्रे०) **'ओघव्व'** इत्यादि, **'काये'** त्ति काययोगसामान्यमार्गणायां **'लोह'** त्ति लोभमार्गणा **'अचक्खु'** त्ति अचक्षुर्दर्शनमार्गणा **'भवियेसु'** त्ति भव्यमार्गणा च तासु, **'आहारे'** त्ति आहारकमार्गणायां चेति पञ्चमार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनामवक्तव्यादितत्तत्पदबन्धकानामल्पबहुत्वमोघवदेव द्रष्टव्यम्, यत ओघवक्तव्यतायामवक्तव्यादितत्तत्पदानां संख्येयत्वादिना यावन्तो बन्धकाः प्राप्यन्ते; तावन्त एव बन्धकाः उक्तपञ्चमार्गणास्वपि तत्तत्पदानां प्राप्यन्ते, अत ओघवद्विज्ञेयम्। किन्तु **'लोहे'** त्ति लोभकषायमार्गणायाम् **'आवरणणवग'** त्ति पञ्चज्ञानावरणानि चतुर्दर्शनावरणानि चेत्यावरणनवकम् **'विग्घाणं'** ति पञ्चान्तरायप्रकृतय इति तासां चतुर्दशप्रकृतीनाम् **'अत्थि अवत्तव्वो ण'** त्ति अवक्तव्यबन्धो नास्ति । अतस्तत्राऽवस्थितपदबन्धका अल्पाः कथनीया इति विशेषः । शेषं त्वोघवदेवेति ॥२५७॥

अथ नरकगत्यादिमार्गणासु प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

णिरयपढमाइछणिरयतइआइगअट्ठमंतदेवेसु ।
थीणद्धितिगस्स तहा चउअणमिच्छत्ततित्थाणं ॥२५८॥
कमसोऽत्थि अवत्तव्वऽवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं ।
थोवा असंखियगुणा असंखियगुणा विसेसहिया ॥२५९॥

(प्रे०) **'णिरय'** इत्यादि, नरकौघमार्गणा, प्रथमादिषण्नरकमार्गणाः, तृतीयसनत्कुमाराद्यष्टमसहस्रारान्तदेवमार्गणाश्चेति त्रयोदशमार्गणासु **'थीणद्धितिगस्स'** त्ति स्त्यानर्द्धित्रिकस्य तथा **'चउअण'** त्ति क्रोधादयश्चत्वारोऽनन्तानुबन्धिकषायाः **'मिच्छत्त'** त्ति मिथ्यात्वमोहनीयम् **'तित्थाणं'** ति तीर्थकरनाम चेति नवप्रकृतीनामवक्तव्याऽवस्थिता-ऽल्पतर-भूयस्काराणां बन्धकाः क्रमशोऽल्पाः-असंख्येयगुणाः-असंख्येयगुणाः-विशेषाधिका उत्तरोत्तरं सन्ति ।

अयमर्थः—अत्रोक्तमार्गणासूक्ताष्टप्रकृतीनामवक्तव्यपदबन्धका जीवाः सम्यक्त्वपतिता एव सम्भवन्ति, ते च पुनः पल्योपमस्याऽसङ्ख्यातभागप्रमाणाः सन्ति, तथा जिननाम्नस्त्ववक्तव्यबन्धकाः संख्याता एव, अतोऽन्यपदबन्धकेभ्योऽवक्तव्यबन्धका अल्पा विज्ञेयाः । अवक्तव्याऽपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धका असंख्येयगुणप्रमाणाः, मार्गणागतजीवानामसंख्येयत्वात् । अल्पतरबन्धकास्तु ततोऽप्यसंख्येयगुणाः । तद्धेतुस्त्वोघवदेव । भूयस्कारस्य बन्धका अल्पतराऽपेक्षया विशेषाऽधिकाः; हेतुस्त्वोघवत् । उत्तरत्राऽपि यत्र यत्राऽवस्थिताऽपेक्षयाऽल्पतरस्य बन्धका असङ्ख्येयगुणाः स्युः, अल्पतराऽपेक्षया च भूयस्कारस्य बन्धका अधिका उक्तास्स्युः,तत्र सर्वत्राऽवस्थिताऽल्पतर-भूयस्कारबन्धकानां हेतव ओघवदेवाऽवगन्तव्या इति ॥२५८-२५९॥

अथ तास्वेव मार्गणासु ध्रुवबन्ध्यादिप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

धुवपंचिंदियउरलदुगपरघाऊसासतसचउक्काणं ।
थोवअसंखगुणहिया अवट्ठिआईण हुन्ति कमा ॥२६०॥

(प्रे०) 'धुव०' इत्यादि, स्त्यानर्द्ध्याद्यष्टकरहितशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, पञ्चेन्द्रियजातिनाम, औदारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्गलक्षणमौदारिकद्विकम्, पराघातनाम, उच्छ्वासनाम, त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकस्वरूपं त्रसचतुष्कञ्चेति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां पूर्वोक्तासु नरकगत्यादित्रयोदशमार्गणास्ववक्तव्यपदस्याभावात् 'अवट्ठिआईण' त्ति अवस्थिता-ऽल्पतर-भूयस्कारपदानां बन्धकाः 'कमा' त्ति क्रमशः, 'थोवअसंखगुणहिया' त्ति अल्पा-ऽसङ्ख्येयगुण-विशेषाधिकाः पूर्वपूर्वपदाऽपेक्षया ज्ञातव्याः । हेतवस्त्वत्र पूर्वगाथातुल्या एवेति ॥२६०॥

अथ तास्वेव मनुष्यायुषः प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

मणुयाउस्स अवट्ठिअऽवत्तव्वऽप्पयरभूअगाराणं ।
कमसोऽत्थि बंधगाऽप्पासंखियसंखगुणअब्भहिया ॥२६१॥

(प्रे०) 'मणु०' इत्यादि, गाथार्थः सुगमः । भावार्थस्त्वयम्—पूर्वोक्तास्वेव नरकगत्यादित्रयोदशमार्गणासु मनुष्यायुषोऽवस्थितपदबन्धका अल्पाः सन्ति, तद्बन्धस्य क्वचिदेव जायमानत्वात् । तदपेक्षया चाऽवक्तव्यपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणा विद्यन्ते, आयुषो नूतनबन्धकाले तदवक्तव्यबन्धस्य जायमानत्वात् मनुष्यायुर्बन्धकानां सङ्ख्येयत्वाच्च । तदपेक्षया चाऽल्पतरपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणप्रमाणा अल्पतरपदबन्धकालस्य दीर्घत्वात् । ततोऽपि भूयस्कारपदबन्धका विशेषाधिकाः, ते च पूर्वोक्तहेत्वनुसारेण ज्ञेयाः ॥२६१॥

अथ तास्वेव मार्गणासूक्तशेषप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

सेसाणोघव्व णवरि तइआइगअट्ठमंतदेवेसु ।
तित्थस्स अवत्तव्वो णो तम्हाऽवट्ठिअस्सऽप्पा ॥२६२॥

(प्रे०) 'सेसाण' इत्यादि, पूर्वोक्तनरकगत्यादित्रयोदशमार्गणासु उक्तशेषसर्वप्रकृतीनाम्, ताश्चाऽत्र जिननामौ-दारिकद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति--पराघातो-च्छ्वास- त्रसचतुष्क—मनुष्यायूरहितशेषबन्धार्हाऽध्रुवबन्धिप्रकृतयो विज्ञेयाः, तासां प्रकृताऽल्पबहुत्वम् 'ओघव्व' त्ति ओघवदेव, अर्थात्तासामवस्थितपदबन्धका अल्पाः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽप्यल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततश्च भूयस्कारपदबन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः । सद्धेतवोऽप्योघवदेव द्रष्टव्याः ।

अथाष्टापञ्चाशदधिकद्विशततमया गाथया यज्जिननाम्नोऽल्पबहुत्वं दर्शितं तत्राऽपवादं "णवरि" इत्यादिना कथयति, 'णवरि' त्ति किन्तु 'तइआइगअट्ठमंतदेवेसु' ति तृतीयाद्यष्टमान्तदेवमार्गणासु 'तित्थस्स' त्ति तीर्थकरनाम्नः 'अवत्तव्वो णो तम्हा अवट्ठिअस्सऽप्पा' त्ति अवक्तव्यबन्धो नैव भवति, तस्मात्तत्राऽवस्थितपदबन्धका अल्पाः कथनीया इति विशेषः ।

एवं तत्रोक्तचतुर्थादिनरकमार्गणासु जिननाम्नो बन्ध एव नास्ति, अतस्तदल्पबहुत्वमपि न सम्भवतीत्यपि सम्यगवधेयमिति ॥२६२॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायां प्रकृताल्पबहुत्वमाह—

णिरयव्व तमतमाए सप्पाउग्गाण होइ अप्पबहू ।
परमत्थि तिरिणरदुगदुगोआणं थीणगिद्धिव्व ॥२६३॥

(प्रे०) 'णिरय०' इत्यादि, 'तमतमाए' त्ति तमस्तमानामसप्तमनरकमार्गणायां 'सप्पाउग्गाण' त्ति स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां भूयस्कारादिपदानामल्पबहुत्वं 'णिरयव्व' त्ति नरकौघमार्गणावदस्ति, तच्च तत्रतो द्रष्टव्यम् । यश्चाऽत्र नरकौघमार्गणाऽपेक्षया विशेषोऽस्ति, तं तु 'परम्' इत्यादिना दर्शयति, तद्यथा- 'परम्' किन्तु 'तिरिणरदुगदुगोआणं' ति तिर्यग्द्विकम्, मनुष्यद्विकम्, गोत्रद्विकञ्चेति षट्प्रकृतीनामल्पबहुत्वं 'थीणगिद्धिव्व' त्ति नरकौघे स्त्यानर्द्धित्रिकस्याऽल्पबहुत्वं यथोक्तं तथैवात्र कथनीयम् । अर्थादुक्तषट्प्रकृतिषु मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोरवक्तव्यपदबन्धकाः सम्यग्दृष्टयस्तथा तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रयोस्तु सम्यक्त्वगुणस्थानपतिताः सन्ति, अतस्त अल्पा एव प्राप्यन्ते । तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, सर्वे सम्यग्दृष्टयो मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रप्रकृतीनामवस्थितबन्धार्हास्तथैव सर्वे मिथ्यादृष्टयस्तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रप्रकृतीनामवस्थितबन्धार्हाः, प्रथमसमयमिथ्यादृष्टिभ्यः प्रथमसमयसम्यग्दृष्टिभ्यश्च ते प्रत्येकमसङ्ख्येयगुणाः अतोऽवक्तव्यबन्धकेभ्योऽवस्थितबन्धका असङ्ख्येयगुणा इति । ततोऽप्यल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, तद्बन्धकालस्य दीर्घत्वात् । ततश्च भूयस्कारपदबन्धका विशेषाधिकाः पूर्वनिर्दिष्टहेतुना ज्ञातव्या इति ॥२६३॥

सम्प्रति तिर्यगोघमार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

तिरिये अप्पाबहुगं सप्पाउग्गाण होइ ओघव्व ।
णवरं ण अवत्तव्वो धुवबंधीण पणतीसाए ॥२६४॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यग्गत्योघमार्गणायां 'सप्पाउग्गाण' त्ति स्वप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां भूयस्कारादिपदानां 'अप्पाबहुगं' ति अल्पबहुत्वम् 'होइ ओघव्व' त्ति ओघवद्भवति । अतस्तिर्यग्मार्गणायामाहारकद्विक-जिननामरहितशेषसर्वप्रकृतयो बन्धयोग्याः सन्ति,

तन्मध्ये कासाञ्चित्प्रकृतीनां बन्धका मुख्यतयौघवदसङ्ख्येयाः कासाञ्चिचाऽनन्ताः सन्ति, अत एवाऽत्राऽल्पबहुत्वमोघवद् द्रष्टव्यम् । यश्चौघतोऽत्र विशेषोऽस्ति स त्वयम्- 'णवरं' ति किन्तु 'धुवबधीण पणतीसाए' त्ति निद्राद्विकं, चतुर्दशज्ञानावरणादयः, अन्तिमकषायाऽष्टकं, भयजुगुप्से, नाम्नो नवध्रुवबन्धिन्य इति पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'न अवत्तव्वो' त्ति अवक्तव्यबन्धो नैव भवति, अतस्तासामवस्थितबन्धकाः सर्वाऽल्पा वक्तव्या इति ॥२६४॥

अथपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायां तदाह—

णेयं पणिंदितिरिये तिरिव्व सव्वाण परमसंखगुणा ।
थीणद्धितिगाडकसायमिच्छउरलाणऽवट्ठिअस्सऽत्थि ॥२६५॥(गीतिः)

(प्रे०) 'णेयं' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणायां 'सव्वाण' त्ति सर्वासां बध्यमानप्रकृतीनां प्रक्रमात्तद्भूयस्कारादिपदानां बन्धकाऽल्पबहुत्वं कथं भवतीत्याह— 'तिरिव्व' त्ति पूर्वोक्ततिर्यग्गत्योघमार्गणातुल्यमेव भवतीत्यर्थः । अतो लाघवार्थं न पुनरुच्यते । यस्तु तिर्यगोघमार्गणाऽपेक्षया विशेषोऽस्ति, स एवम्-'परम्' किन्तु 'थीणद्धितिग' त्ति स्त्यानर्द्धित्रिकम् 'अडकसाया' त्ति अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानकषायाष्टकम् 'मिच्छ' त्ति मिथ्यात्वमोहनीयम् 'उरलाण' त्ति औदारिकशरीरनामेति तासां त्रयोदशप्रकृतीनाम् 'अवट्ठिअस्स' त्ति अवस्थितपदस्य बन्धकाः 'असंखगुणा' त्ति अवक्तव्यबन्धकेभ्योऽसङ्ख्येयगुणप्रमाणाः कथनीयाः, न त्वनन्तगुणप्रमाणाः, एकेन्द्रियनिगोदादिजीवानामप्रवेशेनोक्तमार्गणागतजीवानामसङ्ख्येयप्रमाणत्वादित्यर्थः ।।२६५॥ अथ द्वितिर्यक्पञ्चेन्द्रियमार्गणयोः प्रकृतमाह—

दुपणिंदियतिरियेसु पणिंदितिरियव्व णवरि उरलस्स ।
हुन्ति अवत्तव्वस्स उ अवट्ठिआ खलु असंखगुणा ॥२६६॥

(प्रे०)'दुपणिंदि०' इत्यादि, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्-तिरश्चीमार्गणयोरौदारिकदेहवर्जप्रकृतीनामल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघवज्ज्ञेयम् । औदारिकदेहस्य पुनरेवम् अवस्थितबन्धकेभ्योऽवक्तव्यबन्धका असङ्ख्यगुणाः, शेषं तु तिर्यगोघवदेव ज्ञेयमिति ।।२६६॥

अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यादिमार्गणास्थानेषु प्रकृताऽल्पबहुत्वं वक्ति—

असमत्तपणिंदितिरियमणुयपणिंदियतसेसु सव्वेसु ।
एगिंदियविगलिंदियपुहविदगवणेसु विण्णेया ॥२६७॥
धुवउरलाणं कमसो अवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं ।
थोवा असंखियगुणा अब्भहियोघव्व सेसाणं ॥२६८॥

(प्रे०) '**असमत्त०**' इत्यादि, '**असमत्तपणिंदितिरियमणुयपणिंदियतसेसु**' त्ति '**असमत्त**' अपर्याप्तः, अत्र 'असमत्त' इति शब्दस्य प्रत्येकमन्वयादपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणा, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणा, अपर्याप्तत्रसकायमार्गणा च–तासु '**सव्वेसु एगिंदियविगलिंदियपुहविदगवणेसु**' त्ति अत्र 'सव्वेसु' इति पदस्योत्तरत्र प्रत्येकं योजनात्सर्वैकेन्द्रियभेदाः, सर्वविकलेन्द्रियभेदाः, सर्वपृथ्वीकायभेदाः, सर्वाऽप्कायभेदाः, सर्ववनस्पतिकायभेदाश्च तेषु, इति सर्वसङ्ख्यया पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणाभेदेषु किमित्याह–'**धुवउरलाणं**' ति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतय औदारिकशरीरञ्च तासाम् '**अवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं**' ति अवस्थिताऽल्पतरभूयस्कारपदानां बन्धका इति यावत् , ते चाऽत्र '**कमसो**' त्ति क्रमशः '**थोवा असंखियगुणा भऽभहिया**' त्ति अल्पा अवस्थितबन्धकाः, तदपेक्षयाऽसङ्ख्येयगुणा अल्पतरबन्धकाः, ततोऽपि विशेषाऽधिका भूयस्कारबन्धका विज्ञेया इत्यर्थः । '**ओघव्व सेसाणं**' ति तत्तन्मार्गणाबन्धार्होक्तशेषप्रकृतीनां प्रकृतबन्धका ओघवदेव विज्ञेयाः । हेत्वादिकं पूर्ववदेव द्रष्टव्यमिति ॥२६७-२६८॥

अथ मनुष्यगत्योघमार्गणायां कासाञ्चित्प्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वं गाथाद्विकेनाऽऽह––

मणुये कमा अवट्ठिअऽवत्तव्वऽप्पयरभूअगाराणं ।
हुन्ति विउवऽट्ठगस्सऽप्पसंखगुणसंखगुणअहिया ॥२६९॥
तित्थस्सऽत्थि अवट्ठिअऽवत्तव्वाणं तु बंधगा थोवा ।
ताओ संखगुणहिया अप्पयरगभूअगाराणं ॥२७०॥

(प्रे०) '**मणुये**' इत्यादि, मनुष्यगतिसामान्यमार्गणायां '**विउवऽट्ठगस्स**' त्ति वैक्रियशरीर- वैक्रियाङ्गोपाङ्ग-देवगति--देवानुपूर्वी-देवायु-नरकगति--नरकानुपूर्वी--नरकायुर्भेदभिन्नं वैक्रियाऽष्टकम् , तासामष्टप्रकृतीनामवस्थिता-ऽवक्तव्या-ऽल्पतर-भूयस्कारपदानां बन्धकाः क्रमशोऽल्प-सङ्ख्येयगुण-सङ्ख्येयगुण-विशेषाऽधिका उत्तरोत्तरं विज्ञेयाः । यतो वैक्रियाऽष्टकबन्धका अत्र पर्याप्तजीवाः सन्ति । तेऽपि सङ्ख्याता एव, अतोऽत्राऽवक्तव्यादिपदबन्धका उत्तरोत्तरं क्रमशोऽल्प-सङ्ख्यातगुण-सङ्ख्यातगुण-विशेषाऽधिकाः प्रोक्ताः, न त्वसङ्ख्यातगुणादिका इति । अथ '**तित्थस्स**' इत्यादिना जिननाम्नोऽल्पबहुत्वं कथयति, तद्यथा–तस्यावस्थितावक्तव्यपदयोर्बन्धका अल्पाः, परस्परं तु स्वयं ज्ञेयाः; ततोऽल्पतरबन्धकाः सङ्ख्यातगुणा एव प्रकृतिबन्धकानां संख्येयत्वात्, ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाधिका इति ॥२६९-२७०॥

अथ तत्रैवोक्तशेषप्रकृतिसत्कं प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह––

सेसाणोघव्व भवे अप्पाबहुगं परं असंखगुणा ।
णेया अवट्ठिअस्स उ धुववंधीण तह उरलस्स ॥२७१॥

(प्रे०) 'सेसाण' इत्यादि, पूर्वोक्तमनुष्यगत्योघमार्गणायां 'सेसाण' त्ति उक्तशेषवक्ष्यमानप्रकृतीनाम् 'अप्पाबहुगं' ति अवक्तव्यादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वमित्यर्थः । तच्चाऽत्र 'ओघव्व भवे' त्ति ओघवद्भवति । अत ओघत एव द्रष्टव्यम् । यच्चाऽत्राऽपवादपदं तत्त्वेवम्—'परं' परन्तु 'धुववंधीण तह उरलस्स' त्ति ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरस्य च 'अवट्ठिअस्स' त्ति अवस्थितपदस्य बन्धका इति गम्यते, ते चाऽत्र 'असंखगुणा णेया' त्ति असङ्ख्येयगुणाः—अवक्तव्यबन्धकेभ्योऽसङ्ख्यातगुणप्रमाणा ज्ञेयाः । अयमर्थः—ओघवक्तव्यतायां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरस्य चाऽवस्थितपदबन्धका अवक्तव्यपदबन्धकेभ्योऽनन्तगुणप्रमाणा उक्ताः, किन्त्वत्र तेऽवस्थितबन्धका अवक्तव्यापेक्षयाऽसङ्ख्येयगुणा एव वक्तव्या मार्गणागतजीवानामसङ्ख्येयप्रमाणत्वादिति ।

तेनाऽत्रौदारिकशरीरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामल्पबहुत्वमित्थम्——अवक्तव्यपदबन्धका अल्पाः, तदपेक्षयाऽवस्थितबन्धका असङ्ख्येयगुणास्ततोऽल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततश्च भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका इति । शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं सर्वथौघवद् द्रष्टव्यम् ॥२७१॥

अथ मनुष्यद्विकेऽल्पबहुत्वमाह——

दुणरेसु कमाऽवत्तव्वऽवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं ।
धुववंधीणं थोवा संखियगुण-संखगुण-अहिया ॥२७२॥

(प्रे०) 'दुणरेसु' इत्यादि, 'दुणरेसु' त्ति अत्र प्राकृतत्वाद् द्विवचने बहुवचनान्तप्रयोगः, अतो द्वयोर्नरगतिमार्गणयोः पर्याप्तमनुष्य-मनुष्ययोनिमतीसंज्ञकमार्गणाद्विक इत्यर्थः । 'धुववंधीणं' ति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम् 'ऽवत्तव्व०' इत्यादि, अवक्तव्या-ऽवस्थिता-ऽल्पतर-भूयस्कारपदानां प्रक्रमाद् बन्धका जीवा अत्र 'कमा' त्ति क्रमशः 'थोवा-संखियगुण-संखगुण-अहिया' त्ति अल्पाः, सङ्ख्यातगुणाः, सङ्ख्यातगुणाः, विशेषाधिकाः पूर्वपूर्वपदापेक्षयाऽवगन्तव्याः । तद्युक्तयोऽपि मनुष्यगत्योघवदेव विज्ञेयाः । यच्चाऽत्राऽवस्थितादिबन्धकानामसङ्ख्येयगुणत्वमनुक्त्वा सङ्ख्येयगुणमित्यादि यदुक्तम्, तत्तु प्रकृतमार्गणागतजीवानामेव सङ्ख्येयप्रमाणत्वाद्विज्ञेयम् ॥२७२॥

अथ तत्रैव शेषप्रकृतीनामाह——

तित्थस्स णरव्व कमाऽप्पसंखगुणसंखगुणअहिया ।
सेसाणऽत्थि अवट्ठिअऽवत्तव्वऽप्पयरभूअगाराणं ॥२७३॥ (उद्गीतिः)

(प्रे०) **'तित्थस्स'** इत्यादि, जिननाम्नोऽल्पबहुत्वं **'णरव्व'** त्ति मनुष्यौघवज्ज्ञेयम् । **'सेसाण'** त्ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां जिननामवर्जद्वि सत्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनामित्यर्थः, **'अवट्ठिअ०'** इत्यादि, अवस्थिता-ऽवक्तव्या-ऽल्पतर-भूयस्कारपदानां बन्धकाः **'कमा'** त्ति क्रमात् अल्पाः सङ्ख्येयगुणाः-सङ्ख्येयगुणाः विशेषाऽधिकाः पूर्वपूर्वाऽपेक्षया सन्ति ।

इदं तु बोध्यम्—औदारिकशरीर-जिननामरहितशेषाणामत्रोक्तसर्वप्रकृतीनां पदक्रम ओघवदेवाऽस्ति । किन्त्ववक्तव्यादिपदबन्धका अवस्थितपदबन्धकेभ्यः सङ्ख्येयगुणा इत्यादि यदुक्तं तदत्र मार्गणागतजीवानामेव सङ्ख्येयत्वाज्ज्ञेयम् । औदारिकशरीरस्यौघतोऽयं विशेषः-तस्याऽत्राऽवस्थिताऽपेक्षयाऽवक्तव्यपदबन्धकाः सङ्ख्यातगुणप्रमाणाः सन्ति । तदवस्थितबन्धकान्तरतोऽवक्तव्य पदबन्धकाऽन्तरस्याऽल्पत्वात् , मार्गणागतजीवानां च सङ्ख्येयप्रमाणत्वादिति । जिननाम्न ओघतोऽयं विशेषः—अत्रावक्तव्यावस्थितपदयोः पृथगल्पबहुत्वं न वक्तव्यम् , 'णरव्व' इत्यनेनातिदेशात् तत्र युगपत्पदद्वयस्य कथनाच्च ।।२७३।।

अथेशानान्तसुरमार्गणासु वैक्रियकाययोगमार्गणायां च प्रकृताऽल्पबहुत्वमाचष्टे—

जाइदुगुवंगथावरतसायवाण सुरकप्पदुगअन्ते ।
ओघव्व जिणस्स वि खलु विउवे सेसाण तइअकप्पव्व ।।२७४।। (गीतिः)

(प्रे०) **'जाइदुगु०'** इत्यादि, **'सुरकप्पदुगअन्ते'** त्ति देवौघ-भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क-सौधर्मे-शानदेवमार्गणासु **जाइदुगुवंग०'** इत्यादि, एकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गस्थावर-त्रसातपनामकर्मणां प्रकृताल्पबहुत्वमोघवज्ज्ञेयम् । तच्चैवम्-अवस्थितबन्धकाः अल्पाः, ततोऽवक्तव्य-बन्धका असङ्ख्यगुणास्ततोऽल्पतरबन्धकाः असङ्ख्यगुणास्ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाधिकाः । **'जिणस्स वि खलु विउवे'** इत्यनेन वैक्रियमार्गणायां जिननामकर्मणोऽपि 'अपि' शब्देनोक्त-षट्कर्मणां चेति सप्तकर्मणामल्पबहुत्वमोघवज्ज्ञातव्यम् । शेषप्रकृतीनामीशानान्तदेवमार्गणासु वैक्रिय-मार्गणायाश्चाल्पबहुत्वं तृतीयसनत्कुमारदेवमार्गणावज्ज्ञातव्यम् । तच्च नरकौघादिमार्गणाभिः सह दर्शितमिति ।।२७४।।

अथाऽऽनतादिमार्गणासु तदाह—

णिरयव्वऽप्पाबहुगं गेविज्जंतेसु आणताईसु ।
सप्पाउग्गाण परं ण अवत्तव्वोऽत्थि णरदुगजिणाणं ।।२७५।।(गीतिः)

(प्रे०) **'णिरयव्व'** इत्यादि, **'गेविज्जंतेसु आणताईसु'** ति आनतादिग्रैवेयक-सुराऽन्तासु मार्गणासु आनत-प्राणता-ऽऽरणा-ऽच्युताऽऽख्यचतुर्वैमानिकसुरमार्गणास्थानेषु नवग्रैवेयक-

सुरभेदेषु चेति त्रयोदशमार्गणासु 'सप्पाउग्गाण' त्ति स्वप्रायोग्यप्रकृतीनाम् 'अप्पाबहुगं' ति भूयस्कारादिपदानामन्योन्यं बन्धकाऽल्पबहुत्वं 'णिरयव्व' ति नरकौघमार्गणावद्विज्ञेयम्, तत्तुल्यवक्तव्यत्वात्। 'परं ण अवत्तव्वोऽत्थि णरदुगजिणाणं' ति किन्तु मनुष्यद्विकजिननाम्नोऽवक्तव्यबन्धोऽत्र न भवति, तस्मात्तदवस्थितबन्धकाः सर्वाऽल्पाः कथनीयास्ततोऽल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणास्ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाधिका वक्तव्या इति विशेषः ॥२७५॥

अथ सर्वार्थसिद्धवर्जासु चतुर्ष्वनुत्तरसुरेषु तदेवाऽऽह—

अप्पाबहुगं चउसु अणुत्तरेसु सुरेसु णिरयव्व ।
बारससायाईणं तहा णराउस्स विण्णेयं ॥२७६॥
सेसाण बंधगा खलु अवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं ।
कमसो णेया थोवा असंखियगुणा विसेसहिया ॥२७७॥

(प्रे०) 'अप्पा०' इत्यादि, 'चउसु अणुत्तरेसु सुरेसु' त्ति चतुर्ष्वनुत्तरसुरेषु—सर्वार्थसिद्धरहितशेषचतसृष्वनुत्तरसुरमार्गणासु 'बारस सायाईणं' ति साताऽसात-हास्य-शोक-रत्य-रति-स्थिरा-ऽस्थिर-शुभाऽशुभ-यशःकीर्त्य-यशःकीर्तिस्वरूपद्वादशप्रकृतीनां तथा 'णराउस्स' त्ति नरायुषः 'अप्पाबहुगं' ति प्रक्रमाद्भूयस्कारादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वं 'णिरयव्व' त्ति नरकौघमार्गणावदेव ज्ञातव्यम्। 'सेसाण' इत्यादि, उक्तशेषबध्यमानैकोनषष्टिप्रकृतीनामवस्थिता-ऽल्पतर-भूयस्कारपदानां बन्धकाः क्रमशोऽल्पाः, ततोऽसङ्ख्येयगुणाः, ततो विशेषाऽधिकाः पूर्वपूर्वपदाऽपेक्षयाऽवसातव्या इति। तद्वैतवस्तु पूर्वोक्तताः प्रसिद्धा एवेति ॥२७६-२७७॥

अथ सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणायां पञ्चेन्द्रियसामान्यादिमार्गणासु च सम्भाव्यमानभूयस्कारादिपदानामन्योन्यं बन्धकाऽल्पबहुत्वं वक्तुकाम आह—

सव्वत्थे सव्वेसिं अणुत्तरसुरव्व णवरि संखगुणा ।
ओघव्व दुपंचिंदियतसदुयचक्खूसु सव्वेसिं ॥२७८॥
णवरं धुवबंधीणं अप्पाबहुगं जिणव्व उरलस्स ।
होइ पणिंदितसेसुं णरव्व सेसासु सायव्व ॥२७९॥

(प्रे०) 'सव्वत्थे' इत्यादि, सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणायां 'सव्वेसिं' ति सर्वबध्यमानप्रकृतीनां प्रक्रमाद् भूयस्कारादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वम् 'अणुत्तरसुरव्व' त्ति चतुर्ष्वनुत्तरसुरमार्गणासु यथा प्रतिपादितं तथैवाऽत्रापि प्रतिपादनीयम्, किन्तु यो विशेषः स इत्थम्— 'णवरि' त्ति किन्तु 'संखगुणा' त्ति अनुत्तरसुरमार्गणास्ववक्तव्यादिपदबन्धका यत्राऽसङ्ख्येयगुणाः प्रोक्तास्तत्र

प्रकृतसर्वार्थसिद्धसुरमार्गणायां ते बन्धकाः सङ्ख्येयगुणा अभिधातव्या मार्गणागतजीवानां सङ्ख्येयत्वादिति तात्पर्यम् ।

अयमर्थः —उक्तरीत्याऽत्र सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणायामल्पबहुत्वमित्थं जातम्–सातादिद्वादशप्रकृतीनां नरायुषश्चाऽत्राऽवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः ज्ञेयाः; तदपेक्षयाऽवक्तव्यपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, तदपेक्षया चाऽल्पतरपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽपि भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका ज्ञेयाः । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां त्ववस्थितपदबन्धका अल्पाः, ततोऽल्पतरबन्धकाः सङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, ततोऽपि भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका विज्ञेयाः ।

अथाऽन्यमार्गणासु तदाह–**'ओघव्व'** इत्यादि, **'दुपंचिंदियतसवयचक्खूसु'** त्ति अत्र **'द्वि'** शब्दो वचःपर्यन्तेषु प्रत्येकं योज्यः, अतः पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियरूपं पञ्चेन्द्रियद्विकम्, त्रसौघ-पर्याप्तत्रसकायलक्षणं त्रसकायद्विकम्, वचनयोगसामान्य--व्यवहारवचनयोगस्वरूपं वचोयोगद्विकम्, चक्षुर्दर्शनञ्च तेष्विति सप्तमार्गणास्थानेषु **'सव्वेसिं'** ति विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनाम् **'ओघव्व'** त्ति ओघवदेव भूयस्कारादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वं विज्ञेयम् । यासां प्रकृतीनामत्र प्रकृताऽल्पबहुत्वमोघतो भिन्नमस्ति, तदत्र **'णवरं'** इत्यादिना कथयति-**'नवरं'** किन्तु **'धुवबंधीणं अप्पाबहुगं'** ति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वम् **'जिणव्व'** ओघवक्तव्यतायां जिननाम्नोऽल्पबहुत्वं यथा प्रतिपादितमस्ति, तथैव तत्तुल्यमेवाऽत्र कथनीयम्, कथमिति चेदुच्यते, ओघवक्तव्यतायां ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्याऽपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धका अनन्तगुणाः सन्ति, अत्र तु ते बन्धका असङ्ख्यगुणाः प्राप्यन्ते, अत एव 'जिननामवत्' इति निर्दिष्टम् । अथ प्रकृतेऽन्यदपवादपदमौदारिकशरीरसत्कमस्ति, तत्कथयति–**'उरलस्स'** त्ति औदारिकशरीरनाम्नः प्रकृताऽल्पबहुत्वम् **'पणिंदितसेसु'** ति पञ्चेन्द्रियौघ-त्रसकायौघमार्गणयोः **'णरव्व'** मनुष्यगत्योघमार्गणायामौदारिकशरीरस्याऽवक्तव्यादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वं यथा पूर्वं निरूपितम्, तथैवाऽत्र निरूपणीयम्, कथमितिचेदुच्यते, ओघे तु औदारिकशरीरबन्धका अनन्तप्रमाणाः सन्ति, अत्र च ते बन्धका असङ्ख्येयप्रमाणा एव, अतस्तदल्पबहुत्वं मनुष्यगतिमार्गणावत्प्रोक्तम् । तदित्थम् –औदारिकशरीरस्याऽवक्तव्यबन्धका अल्पाः, ततोऽवस्थितबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाऽधिकाः । अत्राऽवस्थितबन्धकानामवक्तव्यबन्धकतोऽसङ्ख्येयगुणत्वम्, मार्गणागतजीवेष्वपर्याप्तजीवानामसङ्ख्येयबहुभागप्रमाणत्वात्तेषां चाऽवक्तव्यबन्धाऽभावात् ।

'सेसासु' त्ति पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-पर्याप्तत्रसकाय--वचनयोगसामान्य-व्यवहारवचनयोगचक्षुर्दर्शनमार्गणास्विति मार्गणापञ्चके औदारिकशरीरस्य प्रकृताऽल्पबहुत्वं **'सायव्व'** त्ति ओघनिरूपणे सातवेदनीयस्याऽल्पबहुत्वं यथा निरूपितम्, तथैव तत्समानमेवाऽत्र निरूपणीयम् । कथमिति

येदुच्यते, अत्राऽवस्थितबन्धका अल्पाः प्राप्यन्ते, तदपेक्षया चाऽवक्तव्यबन्धका असङ्ख्येयगुणाः प्राप्यन्ते । यत उक्तमार्गणास्वौदारिकशरीरस्याऽवक्तव्यबन्धः मार्गणावर्तिसङ्ख्येयबहुभागगतजीवानां प्रत्यन्तमुहूर्तं सम्भवति, अवस्थितबन्धस्तु श्रेणेरसङ्ख्याततमभागकालेऽपि भवेत् । एवमत्राऽवस्थित-बन्धान्तरस्य दीर्घत्वात्तद्बन्धका अल्पाः, ततोऽवक्तव्यबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽप्यल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाऽधिका विज्ञेया इति ॥२७८-२७९॥

अधुना सर्वतेजस्काय-वायुकायभेदेषु प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

सव्वागणिवाऊसुं सप्पाउग्गाणऽपज्जमणुयव्व ।
णवरं ण अवत्तव्वो हवेज्ज तिरियदुगणीआणं ॥२८०॥

(प्रे०) 'सव्वा०' इत्यादि, सर्वाऽग्निकायमार्गणाभेदेषु सर्ववायुकायमार्गणाभेदेषु चेति सर्व-सङ्ख्यया चतुर्दशमार्गणास्थानेषु 'सप्पाउग्गाण' त्ति स्वप्रायोग्याणां-बन्धार्हाणां प्रकृतीनां प्रक्रमा-द्भूयस्कारादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वम् 'ऽपज्जमणुयव्व' त्ति अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावत्—तत्र यथा निर्दिष्टम् तथैवाऽत्र द्रष्टव्यमित्यर्थः । 'णवरं' किन्तु 'तिरियदुगणीआणं' ति तिर्यग्गति-तिर्य-गानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकम् नीचैर्गोत्रं च तयोः 'ण अवत्तव्वो हवेज्ज' त्ति अत्राऽवक्तव्यबन्धो न भवति, मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धित्वात्तयोरिति विशेषः, शेषं तु तद्वदेवेति ॥२८०॥

अथ मनोयोगादिमार्गणाभेदेषु तदाह—

सुरविउवदुगुरलाणं परघाऊसासबायरतिगाणं ।
दुपयाण बंधगाऽप्पा हुन्ते पणमणवयतिगेसुं ॥२८१॥
ताओ कमा असंखियगुणअहियाऽप्पयरभूअगाराणं ।
सेसाणोघव्व णवरि धुवबंधीणं जिणव्वऽत्थि ॥२८२॥

(प्रे०) 'सुर०' इत्यादि, 'पणमण' त्ति पञ्चमनोयोगमार्गणाभेदाः, 'वयतिगेसु' ति वचोयोगसामान्य-व्यवहारवचोयोगरहितशेषवचोयोगत्रिकञ्चेति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टमार्गणा-भेदेषु 'सुरविउवदुगुरलाणं' ति सुरद्विकम्, वैक्रियद्विकम्, औदारिकशरीरञ्च तेषां 'परघा-ऊसासबायरतिगाणं' ति पराघातः, उच्छ्वासः, बादर-पर्याप्त-प्रत्येकस्वरूपं बादरत्रिकञ्चेति सर्वसङ्ख्यया दशप्रकृतीनां 'दुपयाण बंधगाऽप्पा' त्ति द्वयोः पदयोः-समुदितयोरवस्थिता-ऽवक्तव्यपदयोर्बन्धका अल्पाः सन्ति, परस्परमल्पबहुत्वं त्वनयोः स्वयमेवाऽभ्यूह्यम् । 'ताओ' इत्यादि, ततः-अवस्थिताऽवक्तव्यपदाऽपेक्षयाऽल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणा विद्यन्ते, ततोऽपि विशेषाऽधिका बन्धका भूयस्कारपदस्य ज्ञेया इति । 'सेसाणोघव्व' त्ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनामत्र प्रस्तुताऽल्प-

बहुत्वमोघवक्तव्यतानुसारेणैव बोध्यम्। अत्रौघवदतिदेशे कृते योऽपवादः, तं तु **'णवरि'** इत्यादिना दर्शयति–'णवरि' किन्तु **'धुवबंधीणं'** ति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वं **'जिणव्वऽत्थि'** त्ति एतस्मिन्द्वार ओघवक्तव्यतायां जिननाम्नो यदल्पबहुत्वमुक्तं तद्वदेव-तत्तुल्यमेवाऽत्रापि भवतीत्यर्थः। तद्यथा–अवक्तव्यबन्धका अल्पाः तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, अल्पतरबन्धकास्ततोऽप्यसङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, ततश्च भूयस्कारबन्धका विशेषाऽधिका अवसेयाः। मार्गणागतजीवानामसङ्ख्येयप्रमाणत्वादवस्थितपदबन्धकानामनन्तगुणत्वमत्र न सम्भवति, किन्त्वसङ्ख्येयगुणत्वमेव सम्भवति, अत एव ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामल्पबहुत्वमत्र 'जिनवत्' इति प्रोक्तम् ॥२८१-२८२॥

अथौदारिकौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणयोः प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

सव्वाणोघव्वुरले परं जिणस्स उ णरव्वुरलमीसे।
सुरविउवदुगजिणाण ण मिच्छस्सोघव्व सेसाणं ॥२८३॥
असमत्तणरव्व भवे............................

(प्रे०) **'सव्वाण'** इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां जिनवर्जसर्वप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवदेव ज्ञातव्यम्, श्रेणेर्निगोदजीवानां च सद्भावादिति। परं **'जिणस्स'** इत्यादिना जिननामकर्मणोऽल्पबहुत्वं मनुष्यौघवज्ज्ञातव्यमिति दर्शितम्। कुतः ? प्रस्तुतमार्गणायां जिननामबन्धकतया मनुष्याणामेव प्राप्तेरिति। अथ **'उरलमीसे'** इत्यादिना औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां प्रस्तुताल्पबहुत्वमाह—

'सुरविउवदुगजिणाण ण' त्ति द्विकशब्दस्य पूर्वत्राऽप्यन्वयात्सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकम्, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकम्, जिननाम च तासामिति पञ्चप्रकृतीनां अल्पबहुत्वं न भवति। कथमिति चेत्–तत्रैकस्य भूयस्कारपदस्यैव जायमानत्वान्न तदल्पबहुत्वसम्भवः। **'मिच्छस्सोघव्व'** त्ति मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽत्र प्रक्रान्तमल्पबहुत्वमोघवदेव भवति। तद्यथा–अवक्तव्यपदबन्धका अल्पाः तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धका अनन्तगुणप्रमाणाः, ततश्चाऽल्पतरपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽपि भूयस्कारबन्धका विशेषाऽधिका इति। **'सेसाणं'** ति उक्तशेषाणामत्र वक्ष्यमानप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वम् **'असमत्तणरव्व भवे'** इति द्वितीयगाथातोऽनुकर्षणीयम्, तेनापर्याप्तमनुष्यमार्गणावत्–तत्तुल्यमेव भवतीत्यर्थः। तच्चैवम्–अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः,ततश्चाऽल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणाः ततोऽपि भूयस्कारबन्धका विशेषाऽधिका इति। नवरमत्र यासां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्यैवाऽसम्भवः तासां ध्रुवबन्धिनीनां षट्चत्वारिंशत औदारिकशरीरनाम्नश्चेति सप्तचत्वारिंशतस्त्ववस्थितबन्धकाः सर्वाऽल्पा वक्तव्या इति ॥२८३॥

अथ वैक्रियमिश्रकाययोगे तदाह—

................ताण असंखियगुणा विउव्वमीसे ।
जाणऽत्थि अवत्तव्वो सिं भूगारस्स णऽण्णेसिं ॥२८४॥

(प्रे०) 'ताण' इत्यादि, 'विउव्वमीसे' त्ति वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां 'जाणऽत्थि अवत्तव्वो' त्ति यासां पञ्चाशत्प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धोऽस्ति, तासां पञ्चाशत्प्रकृतीनामवक्तव्यपदबन्धकेभ्यो 'सिं भूगारस्स' त्ति भूयस्कारपदबन्धकाः 'असंखियगुणा' त्ति असङ्ख्येयगुणा विज्ञेयाः । इति द्वे एव पदेऽत्र विद्येते । 'णऽण्णेसिं' ति उक्तशेषप्रकृतीनां त्वत्र वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायामल्पबहुत्वं नैव सम्भवति, तासामेकस्य भूयस्कारपदस्यैव सम्भवादिति ॥२८४॥

अथाऽऽहारककाययोगमार्गणायां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमाचष्टे—

पज्जणरव्वाहारे बारससायाइजिणसुराऊणं ।
सव्वत्थव्व हवेज्जा सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥२८५॥

(प्रे०) 'पज्ज०' इत्यादि, 'आहारे' त्ति आहारककाययोगमार्गणायां 'बारससायाइ' त्ति साताऽसात-हास्य-शोक-रत्यरति-स्थिराऽस्थिर-शुभाऽशुभ-यशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपा द्वादशसातादिप्रकृतयः 'जिण' त्ति जिननाम 'सुराऊणं' ति सुरायुश्चेति चतुर्दशप्रकृतीनां प्रक्रमाद्भूयस्कारादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वं 'पज्जणरव्व' त्ति पर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्भवति । तद्यथा–अवस्थितपदबन्धका अल्पाः, अवक्तव्यपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततश्चाऽल्पतरबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽपि भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका अवसेयाः । 'सप्पाउग्गाण सेसाणं' ति मार्गणाप्रायोग्योक्तशेषप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वं 'सव्वत्थव्व हवेज्जा' त्ति सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणावद्भवति, तेनाऽत्र शेषप्रकृतीनामवक्तव्यपदं नास्तीति तु विज्ञेयम् । ततश्चाऽत्राऽल्पबहुत्वमित्थम्-अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षयाऽल्पतरबन्धकाः सङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, ततोऽपि भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका इति । भावना च पूर्वोक्तैवाऽत्र द्रष्टव्येति ॥२८५॥

अथाऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां तद्वक्ति—

आहारमीसजोगे बारससायाइजिणसुराऊणं ।
संखगुणाऽवत्तव्वा भूगारस्स ण उ सेसाणं ॥२८६॥

(प्रे०) 'आहारमीस०' इत्यादि, आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां 'बारससायाइजिणसुराऊणं' ति द्वादशसातादिप्रकृतयः, जिननाम, सुरायुश्चेति चतुर्दशप्रकृतीनामवक्तव्यपदबन्धका अल्पा ज्ञेयाः । 'भूगारस्स' त्ति भूयस्कारपदस्य बन्धकाः 'संखगुणाऽवत्तव्वा' त्ति अवक्तव्य-

पदबन्धकेभ्यः सङ्ख्येयगुणप्रमाणाः सन्तीत्यर्थः । इति द्वे एव पदेऽत्र विद्येते । 'ण उ सेसाणं' ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां त्वल्पबहुत्वमत्र न भवति,एकस्य भूयस्कारपदस्यैव जायमानत्वादिति। ॥२८६॥ अथ कार्मणा-ऽनाहारकमार्गणयोः प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं वक्तुकाम आह—

कम्माणाहारेसुं छायालीसधुवबंधिणीण तहा ।
देवविउव्वदुगाणं उरालतित्थाण णेव भवे ॥२८७॥

(प्रे०) 'कम्मा०' इत्यादि, कार्मणकाययोगा-ऽनाहारकमार्गणयोर्मिथ्यात्वरहितशेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा 'देवविउव्वदुगाणं' ति अत्र बहुवचनान्तप्रयोगस्तु प्राकृतत्वात्, द्विकशब्दस्य च प्रत्येकं योजनाद्देवगतिदेवानुपूर्वीरूपं देवद्विकम् , वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकञ्च तयोः 'उरालतित्थाण' त्ति औदारिकशरीर--तीर्थकरनाम्नोरिति सर्वसङ्ख्यया द्विपञ्चाशत्प्रकृतीनां 'णेव भवे' त्ति प्रस्तुतत्वाद्भूयस्कारादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वं नैव भवति । तासामत्रैकस्य भूयस्कारपदस्यैव सद्भावात्तदल्पबहुत्वमत्र नाऽऽयातीत्यर्थः ॥२८७॥

अथ तत्रैवाऽन्यप्रकृतीनामल्पबहुत्वमाह—

मिच्छस्स अणंतगुणा विण्णेया बंधगा अवत्तव्वा ॥
भूगारस्स असंखियगुणाऽत्थि सेसाण पयडीणं ॥२८८॥

(प्रे०) 'मिच्छस्स' इत्यादि, पूर्वोक्तकार्मणकाययोगा-ऽनाहारकमार्गणयोः 'मिच्छस्स' त्ति मिथ्यात्वमोहनीयस्याऽवक्तव्यपदबन्धका अल्पा ज्ञातव्याः। 'बंधगा अवत्तव्वा भूगारस्स अणंतगुणा' त्ति अवक्तव्यपदबन्धकेभ्यो भूयस्कारपदबन्धका अनन्तगुणप्रमाणा विज्ञेयाः, संज्ञिजीवानामेव मिथ्यात्वस्याऽवक्तव्यपदबन्धकत्वात् । 'सेसाण' त्ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनाम् 'असंखियगुणाऽत्थि' त्ति अत्राऽपि 'बंधगा अवत्तव्वा भूगारस्स' इति पदत्रयं संयोजनीयम् , ततश्चायमर्थः-उक्तशेषप्रकृतीनामत्राऽवक्तव्यपदबन्धका अल्पाः, अवक्तव्यपदबन्धकेभ्यो भूयस्कारपदबन्धका असङ्ख्येयगुणा बोध्याः, निगोदजीवानामपि तत्राऽवक्तव्यबन्धकत्वादिति ॥२८८॥

अधुना स्त्रीपुरुषवेदमार्गणयोरल्पबहुत्वमाह--

सव्वाण मणव्व भवे पुमथीसुं णवरि णो अवत्तव्वो ।
संजलणावरणणवगविग्घाण णरव्व थीअ तित्थस्स ॥२८९॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, 'पुमथीसु' इत्यत्र प्राकृतत्वाद् द्विवचने बहुवचनप्रयोगः, ततः पुरुषवेदस्त्रीवेदमार्गणयोः 'सव्वाण' त्ति सर्वासां बध्यमानप्रकृतीनां प्रस्तुतत्वाद्भूयस्कारादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वं 'मणव्व' त्ति पूर्वोक्तमनोयोगसामान्यमार्गणावज्ज्ञातव्यम् ,अत्रापि सुरद्विकादिदश-

नामवक्तव्यावस्थितपदयोर्विशेषस्तु श्रुतानुसारेण ज्ञातव्यः । मनोयोगसामान्यमार्गणावत , इत्यतिदेशे कृते यदत्र तस्माद्भिन्नवक्तव्यमस्ति तदाचष्टे 'णवरि' इत्यादिना-'नवरं' किन्तु 'संजलण' त्ति क्रोधादिचत्वारः सञ्ज्वलनकषायाः, 'आवरणणवग' त्ति पञ्चज्ञानावरणानि, चतुर्दर्शनावरणानि च 'विग्घाण' त्ति विघ्नाः-पञ्चान्तरायाणीति तासामष्टादशप्रकृतीनां 'णो अवत्तव्वो' त्ति अत्राऽवक्तव्यपदं न सम्भवतीति । 'णरव्व थीअ तित्थस्स' त्ति स्त्रीवेदमार्गणायां तीर्थंकरनामकर्मणः प्रकृताऽल्पबहुत्वं मनुष्यगत्योघमार्गणातुल्यं भवति । तद्यथा—अवक्तव्यावस्थितपदबन्धका अल्पाः, ततोऽल्पतरबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततश्च भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका विज्ञेयाः । यतोऽत्र स्त्रीवेदे जिननामबन्धका मनुष्यगतिस्था एव सम्भवन्ति, नत्वन्य इति ॥२८९॥

अथ नपुंसकवेदमार्गणायां लोभरहितत्रिकषायमार्गणासु च प्रकृताऽल्पबहुत्वं प्रकटयन्नाह—

णपुमे तिकसायेसुं सव्वाणोघव्व होइ अप्पबहू ।
णवरं ण अवत्तव्वो णवावरणपञ्चविग्घाणं ॥२९०॥
तह णपुमम्मि चउण्हं चउण्ह कोहम्मि तिण्ह माणम्मि ।
मायाअ दोण्ह ण भवे संजलणाणं अवत्तव्वो ॥२९१॥

(प्रे०) 'णपुमे' इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां, लोभवर्जितक्रोधादित्रिकषायमार्गणासु च स्वबध्यमानसर्वप्रकृतीनामोघवत्—ओघवक्तव्यतातुल्यमेव प्रस्तुताऽल्पबहुत्वं भवति । ओघवदतिदेशे कृते यदत्रौघवक्तव्यतापेक्षया भिन्नत्वम्, तत्तु 'णवरं' इत्यादिना वक्ति—नवरं-किन्तु 'णवावरण' त्ति पञ्चज्ञानावरणानि, चतुर्दर्शनावरणानि च 'पञ्चविग्घाणं' ति पञ्चविघ्नाः-पञ्चान्तरायाणीति तासां चतुर्दशप्रकृतीनामत्रोक्तमार्गणाचतुष्के 'ण अवत्तव्वो' त्ति अवक्तव्यपदं न भवति । तथा 'णपुमम्मि' त्ति नपुंसकवेदमार्गणायां 'चउण्हं' ति पदस्योत्तरार्द्धस्थितैः 'ण भवे संजलणाणं अवत्तव्वो' इति पदैस्सहाऽन्वयः कार्यः, अतश्चतुर्णां क्रोधादिसञ्ज्वलनकषायाणामवक्तव्यपदमत्र नपुंसकवेदमार्गणायां न भवतीत्यर्थो लब्धः । एवं 'कोहम्मि चउण्ह' त्ति क्रोधमार्गणायामपि चतुर्णां कषायाणामवक्तव्यपदं न भवति । 'तिण्ह माणम्मि' त्ति मानकषायमार्गणायां क्रोधवर्जितत्रिसञ्ज्वलनकषायाणां तथा 'मायाअ दोण्ह' त्ति मायाकषायमार्गणायां द्वयोः सञ्ज्वलनमायालोभयोरवक्तव्यपदं न भवतीति विशेषः ॥२९१॥

अधुनाऽपगतवेदमार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

गयवेए सव्वेसिं थोवा संखगुण-संखगुण-अहिया ।
कमसो अत्थि अवट्ठिअऽवत्तव्वऽप्पयरभूअगाराणं ॥२९२॥(गीतिः)

(प्रे०) 'गयवेए' इत्यादि, अपगतवेदमार्गणायां सर्वासां बध्यमानसर्वप्रकृतीनामवस्थिता-ऽवक्तव्या-ऽल्पतर भूयस्कारपदानां बन्धकाः 'कमसो' त्ति क्रमशोऽल्प-सङ्ख्येयगुण-सङ्ख्येयगुण-विशेषाऽधिका उत्तरोत्तरं सन्ति । अर्थादवस्थितबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षयाऽवक्तव्यपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽल्पतरबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः मार्गणागतजीवानां सङ्ख्येयत्वात् । ततोऽपि भूयस्कारबन्धका विशेषाऽधिका ज्ञेया इति ॥२९२॥

अथ ज्ञानत्रिकादिमार्गणाभेदेषु तदाह—

आहारदुगसुराऊणोघव्व तिणाणओहिसम्मेसु ।
बारसमायाईणं तहा णराउस्स णिरयव्व ॥२९३॥

(प्रे०) 'आहार०' इत्यादि, 'तिणाण' त्ति मति-श्रुता ऽवधिज्ञानलक्षणास्तिस्रो ज्ञानमार्गणाः 'ओहि' त्ति अवधिदर्शनमार्गणा 'सम्मेसु' ति सम्यक्त्वौघमार्गणा च तास्विति पञ्चमार्गणास्वा-हारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणमाहारकद्विकं सुरायुश्चेति प्रकृतित्रयस्य प्रकान्तत्वादवक्तव्यादिपद-बन्धकाऽल्पबहुत्वम् 'ओघव्व' त्ति ओघवदेवावगन्तव्यम् । द्वादशसातादीनाम्—साताऽसात-हास्य-रति-शोका-ऽरति-स्थिरा-ऽस्थिर-शुभा-ऽशुभ-यशःकीर्त्य-यशःकीर्तिरूपद्वादशप्रकृतीनां तथा नरायुषोऽत्रा-वक्तव्यादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वं 'णिरयव्व' त्ति नरकौघमार्गणावदेव विज्ञेयम् । नरकौघवदुक्त-मार्गणास्वपि नरायुर्बन्धकानां सङ्ख्येयत्वात् शेषबन्धकानामसङ्ख्येयत्वादिति ॥२९३॥

अथ तास्वेव मार्गणासूक्तशेषप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

सेसाण खलु अवत्तव्वऽवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं ।
कमसोऽत्थि बंधगाऽप्पअसंखअसंखगुणअब्भहिया ॥२९४॥

(प्रे०) 'सेसाण' इत्यादि, पूर्वोक्तासु ज्ञानत्रया-ऽवधिदर्शन-सम्यक्त्वौघमार्गणासु उक्तशेष-बध्यमानप्रकृतीनामवक्तव्या-ऽवस्थिता-ऽल्पतर-भूयस्कारपदानां बन्धकाः क्रमशोऽल्पा-ऽसङ्ख्येयगुणा-ऽसङ्ख्येयगुण-विशेषाऽधिकाः सन्ति, अर्थादवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, सर्वबन्धकजीवेभ्यो-ऽसङ्ख्याततमभागप्रमाणत्वात्तेषाम्, तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धका असङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, तत्तत्प्रकृतेः सर्वबन्धकजीवेभ्योऽसङ्ख्याततमभागप्रमाणत्वात्तेषाम्, ततोऽप्यल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, तत्तत्प्रकृतेः सर्वबन्धकजीवेभ्यो देशोनार्द्धभागप्रमाणत्वात्तेषाम्, तदपेक्षया च भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिकाः, तत्तत्प्रकृतेः सर्वबन्धकेभ्यः साधिकार्द्धभागप्रमाणत्वात्तेषामिति ॥२९४॥

सम्प्रति मनःपर्यवज्ञान—संयमौघमार्गणयोस्तदेवाऽऽह—

मणणाणसंजमेसुं पज्जत्तणरव्व होइ अप्पबहू ।
बारससायाइगजिणसुराउआहारजुगलाणं ॥२९५॥

(प्रे०) "मण०" इत्यादि, मनःपर्यवज्ञान-संयमौघमार्गणयोः 'बारससायाइग' इत्यादि, प्रसिद्धानां द्वादशसातादिप्रकृतीनां जिननाम्नः सुरायुष आहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्ग-लक्षणस्याहारकयुगलस्य चेति सर्वसङ्ख्यया षोडशप्रकृतीनां अक्रमाद्भूयस्कारादिपदानामन्योन्यं बन्धकाऽल्पबहुत्वं 'पज्जत्तणरव्व' त्ति पर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्भवति । तद्यथा—जिनवर्जशेषप्रकृतीना-मवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षयाऽवक्तव्यपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽल्पतरपद-बन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः; ततोऽपि भूयस्कारपदबन्धका विशेषाधिकाः, जिननामकर्मणस्त्ववस्थिता-ऽवक्तव्यबन्धका अल्पास्ततोऽल्पतरबन्धकाः सङ्ख्यातगुणास्ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाधिका इति । ॥२९५॥ अथ तत्रैवोक्तशेषप्रकृतीनां तदाह—

सेसाणऽत्थि अवत्तव्वऽवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं ।
कमसोऽप्पा संखगुणा संखेज्जगुणा विसेसहिया ॥२९६॥

(प्रे०) 'सेसाण' इत्यादि, पूर्वोक्तमनःपर्यवज्ञान-संयमौघमार्गणयोः उक्तशेषसर्वबध्यमान-प्रकृतीनामवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽल्पतर-बन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽपि भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका ज्ञेयाः । अवक्तव्यपदमासां श्रेणेर्निपतदवस्थायामेव सम्भवति । अतोऽवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वाऽल्पा उक्ताः । शेषपदानां कारणानि तु सुगमानि प्राग्दर्शितान्येवेति ।।२९६।।

अथाऽज्ञानत्रिके प्रकृताऽल्पबहुत्वमाचष्टे—

धुवबंधिछचत्ताए अण्णाणतिगे अपज्जमणुयव्व ।
सेसाणोघव्व णवरि मणव्व मिच्छस्स विभंगे ॥२९७॥
थोवा ओरालियतणुपरघाऊसासबायरतिगाणं ।
हुन्ति अवत्तव्वस्स असंखगुणाऽवट्ठिअस्स तओ ॥२९८॥

(प्रे०) 'धुव०' इत्यादि, अज्ञानत्रिके-मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभङ्गज्ञानमार्गणासु षट्चत्वारिंश-द्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां भूयस्कारादिपदानामन्योन्यं बन्धकाऽल्पबहुत्वम् 'अपज्जमणुयव्व' त्ति अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्भवति । तच्चैवम्-अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, ततोऽल्पतरपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, तदपेक्षया भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिकाः, अवक्तव्यबन्धस्त्वत्र तासां न भवतीति । 'सेसाणोघव्व' त्ति उक्तशेषाणां मिथ्यात्वाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामोघवदल्पबहुत्वं ज्ञेयम् । यः कश्चिद् विशेषः स 'णवरि' इत्यादिना 'विभंगे' त्ति विभङ्गज्ञानमार्गणायां कथ्यते, तद्यथा-'मिच्छस्स' त्ति मिथ्यात्वमोहनीयस्या-ऽल्पबहुत्वं मनोयोगमार्गणावज्ज्ञेयम् । 'थोवा'

इत्यादिनौदारिकदेहादिप्रकृतीनामल्पबहुत्वं विभङ्गज्ञाने एवापवादरूपेण कथयति-औदारिकदेहपराघातोच्छ्वासबादरत्रिकप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धका अल्पास्ततो '**अवट्ठिअस्स**' त्ति अवस्थितबन्धका असङ्ख्यातगुणाः, कुतः ? आसां प्रकृतीनां मार्गणावर्तिबहुसङ्ख्यभागगतजीवानां निरन्तरबन्धकत्वेन तेषामवक्तव्यबन्धायोगादिति । अल्पतरबन्धका भूयस्कारबन्धकाश्चौघवत् क्रमेणाऽसङ्ख्येयगुणा विशेषाधिकाश्च विज्ञेया इति ॥२९७-२९८॥

अथ सामायिकसंयमच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोः प्रकृताऽल्पबहुत्वं वक्ति—

समइअछेएसु भवे सव्वेसिं संजमव्व णवरि भवे ।
विग्घणवावरणचरमलोहुच्चाण ण अवत्तव्वो ॥२९९॥

(प्रे०) '**समइअ०**' इत्यादि, सामायिकसंयम-च्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोः '**सव्वेसिं**' ति बन्धार्हाणां सर्वासां प्रकृतीनां प्रक्रमाद् भूयस्कारादिपदबन्धकानामन्योन्यमल्पबहुत्वं "**संजमव्व**" ति संयमौघमार्गणावद्भवतीति । अतस्तत्रत एव द्रष्टव्यम् ।

किञ्च सर्वमपि वक्तव्यमत्र संयमौघमार्गणातुल्यमस्त्युत नेत्याशङ्कामपनेतुं तत्र प्राप्तातिप्रसक्तिं चोद्धर्तुं 'णवरि' इत्यादिनाऽपवादं दर्शयति, '**णवरि**' किन्तु '**विग्घ**' त्ति पञ्चान्तरायाणि '**णवावरण**' त्ति पञ्चज्ञानावरणानि चतुर्दर्शनावरणानि च '**चरमलोह**' त्ति सञ्ज्वलनलोभः '**उच्चाण**' त्ति उच्चैर्गोत्रश्च तासामिति षोडशप्रकृतीनां '**ण अवत्तव्वो**' त्ति अवक्तव्यपदं न '**भवे**' त्ति भवेदिति विशेषः ॥२९९॥ अधुना परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां तदेवाऽऽह—

बारससायाइसुराउजिणाहारजुगलाण परिहारे ।
पज्जणरव्वऽप्पबहू सेसाणाहारजोगव्व ॥३००॥

(प्रे०) '**बारस०**' इत्यादि, '**परिहारे**' त्ति परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां '**बारससायाइ**' त्ति द्वादशसाता-ऽसातादिप्रकृतयः; '**सुराउ**' त्ति सुरायुः '**जिणाहारजुगलाण**' त्ति जिननामाहारकयुगलञ्चेति तासां षोडशप्रकृतीनां '**पज्जणरव्वऽप्पबहू**' त्ति पर्याप्तमनुष्यमार्गणावत्प्रकृताऽल्पबहुत्वं कथनीयम् । तद्यथा–जिननाम्नोऽवक्तव्यावस्थितबन्धका अल्पास्ततोऽल्पतरबन्धकाः सङ्ख्यातगुणास्ततोभूयस्कारबन्धका विशेषाधिकाः, शेषप्रकृतीनां पुनरवस्थितबन्धकाः सर्वाऽल्पाः ततोऽवक्तव्यपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततश्च भूयस्कारबन्धका विशेषाऽधिकाः '**सेसाण**' त्ति उक्तवर्जितशेषबध्यमानप्रकृतीनामत्र परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वम् '**आहारजोगव्व**'त्ति आहारककाययोगमार्गणावदेवाऽभिधातव्यम् । तच्चेत्थम्-अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षयाऽल्पतरबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततश्च भूयस्कारबन्धका विशेषाधिका अवक्तव्यपदं तु नास्ति । भावना चाऽत्र पूर्ववतोऽवसेयेति ॥३००॥

अथ सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां तदाह—

सव्वाण बन्धगा खलु अवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं ।
सुहुमे कमाऽत्थि थोवा संखेज्जगुणा विसेसहिया ॥३०१॥

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, ''सुहुमे' त्ति सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां सर्वासां बध्यमानसप्तदशप्रकृतीनां 'कमा' त्ति क्रमशोऽवस्थितपदस्य बन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षयाऽल्पतरपदस्य सङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, ततो भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिकास्सन्ति, अवक्तव्यबन्धकास्तु नैव सन्ति, हेतुस्तु पूर्ववदेवेति ॥३०१॥ अथाऽसंयम-कापोतलेश्यामार्गणयोरल्पबहुत्वमाह—

ओघव्वऽप्पाबहुगं सप्पाउग्गाण अजयकाऊसु ।
णवरं ण अवत्तव्वो धुवबंधीण गुणचत्ताए ॥३०२॥

(प्रे०) 'ओघव्व' इत्यादि, 'अजयकाऊसु' त्ति असंयत-कापोतलेश्यामार्गणयोः 'सप्पाउग्गाण' त्ति स्वप्रायोग्यप्रकृतीनाम् 'अप्पाबहुगं' ति प्रकृताऽल्पबहुत्वम् 'ओघव्व' त्ति ओघवदेव विज्ञेयम् । नवरं-किन्तु 'ण अवत्तव्वो धुवबंधीण गुणचत्ताए' त्ति स्त्यानर्द्ध्याद्यष्टकरहितशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यपदं न भवति, तेन पदत्रयस्यैवाऽल्पबहुत्वं कथनीयम् ॥३०२॥ साम्प्रतं कृष्ण-नीललेश्यामार्गणयोस्तदाह—

तित्थस्सऽप्पाबहुगं सव्वत्थव्व खलु किण्हणीलासु ।
विण्णेयं सेसाणं सप्पाउग्गाण अजयव्व ॥३०३॥

(प्रे०) 'तित्थस्स' इत्यादि, 'किण्हणीलासु' त्ति कृष्णलेश्या-नीललेश्यामार्गणयोः 'तित्थस्स' त्ति तीर्थंकरनामकर्मणः ''ऽप्पाबहुगं' ति भूयस्कारादिपदबन्धकानामल्पबहुत्वं 'सव्वत्थव्व' त्ति सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणायां यथा प्रतिपादितं तथैव भवति । तद्यथा—अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षयाऽल्पतरबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाऽधिकाः, अत्र मार्गणाद्वये मनुष्या एव जिननाम्नो बन्धकाः, ते च सङ्ख्येयाः । अवक्तव्यपदं तु न भवतीति ।

उक्तशेषस्वप्रायोग्यबध्यमानप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वमत्रायतमार्गणावत् कथनीयम् , अर्थादेकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यपदं न भवति । शेषाणां चौघवदल्पबहुत्वं द्रष्टव्यम् । ॥३०३॥ अथ तेजोलेश्यामार्गणायामल्पबहुत्वमाह—

मज्झऽट्ठकसायाणं सुराउआहारदुगजिणाणं च ।
तेऊअ मणव्व भवे सुरवेउव्वदुगउरलाणं ॥३०४॥

हुन्ति कमाऽवत्तव्वाऽवट्ठिअअप्पयरभूअगाराणं ।
थोवअसंखअसंखियगुणाहिया-ऽण्णाण देवव्व ॥३०५॥

(प्रे०) 'मज्झऽट्ठ०' इत्यादि, तेजोलेश्यामार्गणायां, मध्यकषायाष्टक-देवायु-राहारकद्विक-जिननामप्रकृतीनां प्रकृताल्पबहुत्वं मनोयोगमार्गणावज्ज्ञातव्यम् ,तच्चैवम्-आहारकद्विकदेवायुर्वर्जशेषकथितप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धका अल्पाः, ततोऽवस्थितबन्धका असङ्ख्यातगुणाः, ततोऽल्पतरबन्धका असंख्यातगुणास्ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाधिका ज्ञातव्याः । आहारकद्विकस्य देवायुपश्चाल्पबहुत्वमत्र सर्वथौघवदथवा मनोयोगमार्गणातुल्यमतस्तत्रतोऽवसेयमिति । 'सुरविउव्व०' इत्यादि, सुरद्विकवैक्रियद्विकौदारिकदेहप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धका अल्पाः, मार्गणावर्तिभवप्रथमसमयस्थजीवानामेव प्रकृतप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धार्हत्वात् । ततोऽवस्थितबन्धका असङ्ख्यातगुणास्ततोऽल्पतरबन्धका अङ्ख्यातगुणास्ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाधिका ज्ञातव्या इति ।

अथ 'ऽण्णाण देवव्व' इत्यादिना शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वमतिदेशमुखेन कथयति, तद्यथा-मार्गणाप्रायोग्यशेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं देवौघवज्ज्ञातव्यम् । शेषप्रकृतय इमाः-पञ्चज्ञानावरण-नवदर्शनावरण-सञ्ज्वलनानन्तानुबन्धिकषायचतुष्क-नवनोकषाय--मिथ्यात्व--वेदनीयद्विक--गोत्रद्विक-तिर्यग्मनुष्यायु-तिर्यग्द्विक-मनुष्यद्विकै-केन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजात्यौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग संहननषट्क-संस्थानषट्क-खगतिद्वय-नवनामध्रुवबन्धि-पराघातो-च्छ्वासा-तपो-द्योत-त्रसदशक-स्थावरनामा-ऽस्थिरषट्का--ऽन्तरायपञ्चकरूपाश्चतुर्नवतिः प्रकृतय इति ॥३०४-३०५॥ अथ पद्मलेश्यामार्गणायामाह—

पम्हाए सव्वेसिं तेउव्व परं पणिंदियतसाणं ।
णिरयव्व सगपुमाइगउरलोवंगाण उरलव्व ॥३०६॥

(प्रे०) 'पम्हाए'इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायां सर्वासां प्रकृतीनामल्पबहुत्वं तेजोलेश्यामार्गणावत् । किन्तु यो विशेषः तं 'परं' इत्यादिना दर्शयति, तद्यथा—पञ्चेन्द्रियजातित्रसनाम्नोरल्पबहुत्वं नरकमार्गणावत् , तद्यथा-अवस्थितबन्धका अल्पास्ततोऽल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणास्ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाधिकाः, अवक्तव्यपदं तु न भवति । 'सग' इत्यादि, पुरुषवेदशुभाकृतिशुभखगतिसुभगत्रिकोच्चैर्गोत्ररूपाणां पुरुषवेदादिसप्तप्रकृतीनां तथौदारिकाङ्गोपाङ्गनामप्रकृतेरल्पबहुत्वमौदारिकदेहवत्कथनीयम् । तद्यथा—अवक्तव्यावस्थिताल्पतरभूयस्कारबन्धकाः क्रमेणाल्पा-ऽसङ्ख्येयगुणा-ऽसङ्ख्येयगुण-विशेषाधिका ज्ञेयाः । देवेभ्यस्तिरश्चां प्रस्तुतमार्गणायामसङ्ख्येयगुणत्वात् , तेषाञ्च पुमादिसप्तप्रकृतीनामप्रतिपक्षत्वेन निरन्तरं बध्यमानत्वादवक्तव्यबन्धका अल्पाः, शेषं तु सुगमम् ॥३०६॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

सुक्काअ दुआऊणं पज्जणरव्व इयराण उ मणव्व ।
णवरि असंखेज्जगुणा अवट्ठिअस्स उ अवत्तव्वा ॥२०७॥
पुम-णर-सुर-उरल-विउवदुग-सुहआगिइखगइपणिंदीणं।
परघाऊसाससुहगतिगतसचउगुच्चगोआणं ॥२०८॥
अण्णे उ असंखगुणाऽवत्तव्वस्स उ अवट्ठिआ बिंति ।
पुरिससुहआगिइखगइसुहगतिगुच्चाण पयडीणं ॥२०९॥

(प्रे०) 'सुक्काअ' इत्यादि, शुक्ललेश्यामार्गणायां 'दुआऊण' त्ति मनुष्यदेवायुषोरल्पबहुत्वम् 'पज्जणरव्व' त्ति पर्याप्तमनुष्यमार्गणावज्ज्ञातव्यम्, आयुर्बन्धकानामुभयत्र सङ्ख्येयत्वादिति । 'इयराण' इत्यादि, शेषप्रकृतीनां प्रकृताल्पबहुत्वं मनोयोगमार्गणावद्भवति । कुतः ? । उभयत्र श्रेणेः सद्भावात् मार्गणागतजीवानामसङ्ख्येयत्वाच्च । यः कश्चिद् विशेषः, तं तु 'णवरि' इत्यादिना सार्धगाथया दर्शयति, तद्यथा–पुरुषवेद-मनुष्यद्विक-सुरद्विकौदारिकद्विक-वैक्रियद्विक-शुभाकृति-शुभखगति-पञ्चेन्द्रियजाति-पराघातो-च्छ्वास-सुभगत्रिक-त्रसचतुष्को-च्चैर्गोत्रप्रकृतीनाम् 'अवत्तव्वा' अवक्तव्यबन्धकेभ्योऽवस्थितबन्धका असङ्ख्यगुणा ज्ञातव्याः । कुतः ? इति चेदुच्यते,-मार्गणागतजीवेष्वेकासङ्ख्यातभागप्रमाणा एव जीवा आसां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धं कर्तुं प्रभवन्ति, तेन प्रकृताल्पबहुत्वमित्थम्-अवक्तव्यबन्धका अल्पास्ततोऽवस्थितबन्धका असङ्ख्यातगुणास्ततोऽप्यल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणास्ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाधिकाः ।

अथ 'अण्णे उ' इत्यादिना मतान्तरं दर्शयति, तद्बीजं त्वेवम्-महाबन्धकारादीनां मते शुक्ललेश्यामार्गणायां देवराशिः प्रधानतया वर्तते, प्रथममते तिर्यग्राशिः प्रधानतया ज्ञातव्यः, अतो मतान्तरेण पुरुषवेद-शुभाकृति-शुभखगति-सुभगत्रिको-च्चैर्गोत्रप्रकृतीनामवस्थितबन्धकेभ्योऽवक्तव्यबन्धका असङ्ख्यातगुणा वक्तव्या इति ॥२०७-२०८-२०९॥ अथाऽभव्यादिमार्गणासु तदाह—

अभवे मिच्छे अमणे धुवबंधीणं अपज्जमणुयव्व ।
अप्पबहू सेसाणं सप्पाउग्गाण ओघव्व ॥२१०॥

(प्रे०) 'अभवे' इत्यादि, अभव्यमार्गणायां 'मिच्छे' त्ति मिथ्यात्वमार्गणायाम् 'अमणे' त्ति असंज्ञिमार्गणायां 'धुवबंधीणं' ति ध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम् 'अप्पबहू' त्ति प्रक्रान्तत्वाद्भूयस्कारादिपदबन्धकाऽल्पबहुत्वम् 'अपज्जमणुयव्व' त्ति अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्भवति । तद्यथा–अवस्थितपदबन्धकास्सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षया चाऽल्पतरपदबन्धका असङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, ततोऽपि

भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका विज्ञेयाः । 'सप्पाउग्गाण सेसाणं' ति उक्तमार्गणात्रिके स्वप्रायोग्यशेषप्रकृतीनाम् 'अप्पबहू' इति पदं देहलीदीपकन्यायादत्राऽपि सम्बध्यते । अत उक्तप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वम् 'ओघव्व'त्ति ओघवद्भवति । तच्चाऽल्पबहुत्वमोघवक्तव्यतानुसारेणाऽत्र दर्श्यते, तद्यथा-औदारिकशरीरस्याऽवक्तव्यपदबन्धकास्सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धका अनन्तगुणप्रमाणाः, ततो ऽल्पतरपदबन्धका असङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, ततो भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका विज्ञेयाः । तथोक्तवर्जितशेषस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां नवषष्टिरूपाणामवस्थितपदबन्धका अल्पाः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽपि भूयस्कारबन्धका विशेषाऽधिका इत्यवधेयम् ॥३१०॥

सम्प्रत्युपशमसम्यक्त्व-क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोः प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमभिदधाति—

ओहिव्वऽप्पाबहुगं सप्पाउग्गाण उवसमे खइए ।
णवरं खइअम्मि भवे देवाउस्स मणुयाउव्व ॥३११॥
तित्थस्स अवत्तव्वग-अवट्ठिआणुवसमम्मि थोवा तो ।
संखगुणाऽप्पयरस्स य हुन्ति तओ भूअगारस्स ॥३१२॥

(प्रे०) 'ओहिव्व'इत्यादि, उपशमसम्यक्त्व-क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोः स्वबध्यमानप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वम् 'ओहिव्व' त्ति अवधिदर्शनमार्गणावदभिधेयम् । जिज्ञासुना तत्तत्रतोऽवसेयम् ।

अत्र 'णवरं' इत्यादिनाऽपवादं दर्शयति—नवरं क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां देवायुषः प्रकृताऽल्पबहुत्वं मनुष्यायुःसत्काऽल्पबहुत्वतुल्यं ज्ञेयम् । प्रकृतमार्गणायामायुर्बन्धकानां सङ्ख्येयत्वात् । 'तित्थस्स'इत्यादिना उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां तीर्थकरनाम्नोऽल्पबहुत्वं दर्शयति, तद्यथा—अवक्तव्यपदस्याऽवस्थितपदस्य च बन्धका अल्पाः, तदपेक्षयाऽल्पतरपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततो भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका विज्ञेयाः । अत्राऽपि तीर्थकरनाम्नो बन्धकानां सङ्ख्येयत्वात्कथितोऽपवाद इति ॥३११-३१२॥

अधुना क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाचष्टे—

ओहिव्वऽप्पाबहुगं सप्पाउग्गाण वेअगे णेयं ।
णवरं पणचत्ताए णो चेव भवे अवत्तव्वो ॥३१३॥

(प्रे०) 'ओहिव्व' इत्यादि, 'वेअगे' त्ति वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां 'सप्पाउग्गाण' त्ति स्वप्रायोग्यबध्यमानप्रकृतीनाम् 'अप्पाबहुगं' ति प्रकृताऽल्पबहुत्वम् 'ओहिव्व' त्ति अवधिदर्शनमार्गणावज्ज्ञेयम् । 'नवरं' किन्त्वत्रापि 'पणचत्ताए' त्ति आहारकद्विक-जिननाम-सातादिषड्युगल—मध्यमकषायाऽष्टक-मनुष्यद्विक देवद्विकौ-दारिकद्विक-वैक्रियद्विक-वज्रर्षभनाराचसंहनन—देव-

मनुष्यायुर्वर्जितशेषवक्ष्यमाणपञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनां 'णो चेव भवे अवत्तव्वो' त्ति अवक्तव्यपदं न भवति, अतस्तासामवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षयाऽल्पतरपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततो भूयस्कारबन्धका विशेषाऽधिका विज्ञेया इति विशेषः ॥२१३॥

अथ देशविरतौ मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायाञ्चाल्पबहुत्वमाह--

देसे मणुयव्व भवे जिणस्स मीसे तहेत्थ ओहिव्व ।
बारसगायाईणऽण्णाण वि णवरि ण अवत्तव्वो ॥२१४॥

(प्रे०) 'देसे' इत्यादि. देशविरतमार्गणायां जिननाम्नोऽल्पबहुत्वं मनुष्यमार्गणावज्ज्ञेयम् । 'मीसे तहेत्थ' त्ति मिश्रमार्गणायां तथा अत्र देशविरतमार्गणायां च 'बारससायाईण' त्ति साताऽसात-हास्यरति-शोकाऽरति स्थिराऽस्थिर-शुभाऽशुभ यशःकीर्त्ययशःकीर्तिरूपद्वादशसातादिप्रकृतीनां भूयस्कारादिपदबन्धकाऽल्पबहुत्वम् 'ओहिव्व' त्ति अवधिज्ञानमार्गणावद्भवति, तद्यथा- अवस्थितपदबन्धका अल्पाः, ततोऽवक्तव्यबन्धका असङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, ततोऽल्पतरपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽपि भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका इति । 'ऽण्णाण वि' त्ति उक्तशेषवक्ष्यमाणप्रकृतीनामप्यल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावद्विज्ञेयमित्यर्थः । 'णवरि ण अवत्तव्वो' त्ति परंतु तासां शेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्तु न भवति । अतस्तदवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, ततोऽल्पतरपदबन्धकाअसङ्ख्येयगुणाः, ततो भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका इति ॥२१४॥

सम्प्रति सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं गाथात्रिकेण वक्ति—

धुवपंचिंदियपरघाऊसासतसचउगाण सासाणे ।
थोवअसंखगुणहिया अवट्ठिआईण होन्ति कमा ॥२१५॥
सुरविउवदुगस्स मणव्वुरलदुगस्सऽप्पऽसंखऽसंखगुणा ।
अहिया कमा अवत्तव्वऽवट्ठिअऽप्पयरभूअगाराणं ॥२१६॥(गीतिः)
सेसाण खलु अवट्ठिअऽवत्तव्वऽप्पयरभूअगाराणं ।
कमसोऽत्थि बंधगाऽप्पअसंखअसंखगुणअब्भहिया ॥२१७॥

(प्रे०) 'धुव०' इत्यादि, 'धुव०' त्ति मिथ्यात्वरहितशेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयोऽत्र ग्राह्याः, तथा 'पंचिंदियपरघाऊसास' त्ति पञ्चेन्द्रियजातिपराघातोच्छ्वासनामानि 'तस चउगाण' त्ति त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकरूपं त्रसचतुष्कमिति सर्वसङ्ख्यया त्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनां 'सासाणे' त्ति सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायाम् अवट्ठिआईण' त्ति अवस्थिता-ऽल्पतर-भूयस्कार-पदानां बन्धकाः 'कमा' त्ति क्रमशः 'थोवअसंखगुणहिया' त्ति स्तोकाः, ततोऽसङ्ख्येयगुणाः ततो विशेषाऽधिकाः 'होन्ति' त्ति भवन्तीत्यर्थः । अवक्तव्यपदन्त्वाऽत्र न सम्भवति ।

'सुरविउवदुगस्स मणव्व' त्ति सुरद्विक-वैक्रियद्विकयोः प्रकृताऽल्पबहुत्वं **'मणव्व'** त्ति मनोयोगमार्गणायां यथा दर्शितं तथैवेहाऽवसातव्यम् , तच्चेत्थम्-अवक्तव्याऽवस्थितपदयोर्निरुक्तप्रकृतीनां बन्धका अल्पाः,परस्परं तु स्वयमूह्याः, ततोऽल्पतरबन्धका असङ्ख्येयगुणाः ततो भूयस्कारपदस्य बन्धका विशेषाऽधिका इति । **'वुरलदुगस्स'** इत्यादि, औदारिकशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्गलक्षणस्यौदारिकद्विकस्याऽवक्तव्याऽवस्थिताऽल्पतरभूयस्कारपदानां बन्धकजीवाः **'ऽप्पऽसंख०'** इत्यादि, अल्पाऽसङ्ख्येयगुणाऽसङ्ख्येयगुणविशेषाधिकाः पूर्व-पूर्वाऽपेक्षयाऽवसातव्याः । **'सेसाण'** इत्यादि, 'शेषाणाम्' उक्तशेषप्रकृतीनां-शेषबध्यमानद्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनामवस्थिताऽवक्तव्याऽल्पतरभूयस्कारपदानां बन्धकजीवाः क्रमशोऽल्पाऽसङ्ख्येयगुणाऽसङ्ख्येयगुण-विशेषाऽधिकाः पूर्वपूर्वाऽपेक्षया सन्ति । अत्राऽवस्थितबन्धस्य क्वचिदेव जायमानत्वात्तद्बन्धकास्सर्वाऽल्पाः कथिताः, ततोऽवक्तव्यबन्धका असङ्ख्येयगुणा निगदिताः, अन्तर्मुहूर्तादिकालेनैव तद्बन्धस्य सम्भवादिति । शेषपदानां कारणानि तु प्रागभिहितान्येवाऽत्राप्यभ्यूह्यानीति ।'३१५-३१६-३१७॥

अथ संज्ञिमार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वं दर्शयन्नाह—

सण्णिम्मि सुरविउवदुगपरघाऊसासबायरतिगाणं ।
उरलस्स मणव्व भवे पज्जपणिंदिव्व सेसाणं ॥३१८॥

(प्रे०) **'सण्णिम्मि'** इत्यादि, संज्ञिमार्गणायां **'सुरविउवदुग'** त्ति सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकं, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गरूप वैक्रियद्विकञ्च**'परघाऊसासबायरतिगाणं'**ति पराघातनामोच्छ्वासनाम बादरपर्याप्तप्रत्येकलक्षणं बादरत्रिकम् तेषाम् **'उरलस्स'** त्ति औदारिकशरीरस्य चेति सर्वसङ्ख्यया दशप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं **'मणव्व'** त्ति मनोयोगमार्गणावद्भवति । तद्यथा---अवक्तव्याऽवस्थितपदबन्धकास्स्तोकाः; परस्परं तु स्वयमूह्याः, तदपेक्षयाऽल्पतरपदबन्धका असङ्ख्येयगुणप्रमाणाः, ततो भूयस्कारपदबन्धका विशेषाऽधिका इति । **'सेसाणं'** ति उक्तशेषसर्वदशाधिकशतप्रकृतीनां बन्धकाऽल्पबहुत्वं**'भवे पज्जपणिंदिव्व'**त्ति पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावद्भवति । अतस्तत्रत एव प्रकृताऽल्पबहुत्वं प्रेक्षणीयं प्रज्ञावद्भिरिति ॥३१८॥

तदेवं प्रपञ्चितमादेशतोऽल्पबहुत्वद्वारम् , तत्प्रपञ्चिते च प्ररूपितमोघादेशाभ्यामल्पबहुत्वद्वारम् । तत्प्ररूपणे च **'अप्पाबहुगं'** इत्यनेनोद्दिष्टं त्रयोदशमल्पबहुत्वद्वारं व्याख्यातम् । तद्व्याख्याने च **'भूगार'** इत्यनेनोद्दिष्टो द्वितीयो भूयस्काराऽऽख्योऽधिकारः समाप्तः ।

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे
द्वितीये भूयस्काराऽभिधेऽधिकारे त्रयोदशमल्पबहुत्वद्वारं समाप्तम् ॥

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे
द्वितीयो भूयस्काराऽऽख्योऽधिकारः समाप्तः ॥

॥ पदनिक्षेपाधिकारः ॥

तदेवं निरूपितो भूयस्काराभिधो द्वितीयोऽधिकारः। साम्प्रतं 'यथोद्देशं निर्देशः' इति न्यायमवलम्ब्य पदनिक्षेपसंज्ञं तृतीयमधिकारं व्याख्यातुं प्रक्रमते। तत्रादौ प्रस्तुताऽधिकारगत-द्वाराऽभिधेयप्रतिपादिकां गाथामाह—

तइए पयणिक्खेवे अहिगारे तिण्णि हुन्ति दाराइं।
संतपयं सामित्तं अप्पाबहुगं ति जहक्कमसो ॥३१९॥

(प्रे०) 'तइए' इत्यादि, तृतीये पदनिक्षेपाख्येऽधिकारे त्रीणि द्वाराणि भवन्ति। कानि तानी-त्याह-'संतपयं' इत्यादि, अनुक्रमेण प्रथमं द्वारं सत्पदं, द्वितीयं स्वामित्वं, तृतीयमल्पबहुत्वमिति। तत्र सत्पदद्वारे जघन्योत्कृष्टभेदभिन्नानां प्रदेशबन्धसत्कवृद्धिहान्यवस्थानानां सत्ता विभावयिष्यते।

इदमत्र हृदयम्–प्रत्येकं कर्मणो योगादिकारणकलापमुपजीवमानः प्रदेशबन्धः समुपस्थि-तेषु प्राग्भूयस्काराधिकारगतसत्पदद्वाराभिहितेषु योगवृद्ध्यादिहेतुषु कदाचिद् वर्धते, योगहान्यादिव-शात्कदाचिद्धीयते, कदाचिच्च तावानेवावतिष्ठते। तत्र प्रदेशबन्धवृद्धिः कदाचित्स्तोकतमा, कदा-चित्स्तोकतरा, कदाचित्स्तोका, कदाचिदधिका, कदाचिदधिकतरा, कदाचिच्चाऽधिकतमा, इत्येवमनेकधा प्रदेशबन्धवृद्धिः सञ्जायते। तत्र या स्तोकाऽतिस्तोका प्रदेशबन्धवृद्धिः, अर्थात् केवलिप्रज्ञयाऽपि यदपेक्षया स्तोका प्रदेशबन्धवृद्धिर्न प्रवर्तते, सा प्रदेशबन्धवृद्धिर्जघन्या, एवमन्तिमा या प्रदेशबन्धवृद्धिः, यदपेक्षयाऽन्याऽधिका प्रदेशबन्धवृद्धिर्भवितुं नार्हतीति यावत्, सोत्कृष्टा-प्रदेशबन्धवृद्धिः। एवं वृद्धिशब्दस्थाने हानिशब्दं प्रयुज्य प्रदेशबन्धहानावपि एवं वक्तव्यम्।

अथ पूर्वसमये यावतां प्रदेशानां बन्धस्तावतामेव प्रदेशानां यो बन्धस्तत्प्रदेशबन्धाऽवस्थान-मुच्यते, तदपि वृद्धिहानिवदनेकभेदं भवति, तस्य पूर्वसमयवृद्धिहानिमूलत्वाद्। इदमुक्तं भवति—अवस्थानपूर्वसमयेऽनन्तरदर्शितासु स्तोकतमादिषु वृद्धिषु हानिषु वा स्तोकतमा, अधिकतमेत्यादिरूपा यादृशी वृद्धिर्हानिर्वा स्यात् तादृगेवावस्थानमपि भवति। तत्र जघन्याया वृद्धेर्हानेर्वाऽनन्तरसमये प्रवर्तमानं प्रदेशबन्धावस्थानं जघन्यम्, उत्कृष्टाया वृद्धेर्हानेर्वाऽनन्तरक्षणे जायमानं प्रदेश-बन्धाऽवस्थानमुत्कृष्टमुच्यते। तत्राऽपि तत्तत्प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धाऽवस्थानं निर्णयितुं प्रथममिदं चिन्तनीयं यद् विवक्षितप्रकृतेः प्रदेशबन्धहानौ जघन्यत्वमुत वृद्धौ? अर्थाद् विवक्षितप्रकृतेर्जघन्य-हानौ यावतां प्रदेशानां हानिस्तदपेक्षया जघन्यवृद्धौ प्रदेशानां वृद्धिरल्पतराऽधिका वा? इति चिन्त-नीयम्। तत्र यदि हान्यपेक्षया वृद्धिरल्पतरा स्यात्तर्हि तज्जघन्यवृद्ध्यनन्तरक्षणभावितावत्प्रादेशिक-बन्धो जघन्यप्रदेशबन्धाऽवस्थानमुच्यते। यदि च तत्प्रकृतेः प्रदेशवृद्ध्यपेक्षया तत्प्रदेशहानि-रल्पतरा तर्हि तज्जघन्यहान्यनन्तरक्षणभावितावत्प्रादेशिकबन्धो जघन्यप्रदेशबन्धाऽवस्थानमुच्यते।

एवमेवोत्कृष्टमवस्थानमपि तत्तत्प्रकृतीनां यदि चोत्कृष्टवृद्धित उत्कृष्टहानौ प्रदेशानां हानिरधिका सम्भवेत्, तर्हि हान्यनन्तरक्षणभावी तावत्प्रादेशिको बन्ध उत्कृष्टप्रदेशावस्थानम्। यदि च तत्प्रकृतेरुत्कृष्टप्रदेशहानित उत्कृष्टवृद्धौ प्रदेशानां वृद्धिरधिकतरा भवेत्, तर्हि तद्वृद्ध्यनन्तरक्षणभावी तावत्प्रादेशिको बन्ध उत्कृष्टप्रदेशबन्धावस्थानं कथ्यते।

एतावता प्रपञ्चेन प्रस्तुते किमायातम्? इदमेव, यदनेकविधवृद्धिहान्यवस्थानमध्येऽत्र सत्पदाऽभिधप्रथमद्वारे जघन्योत्कृष्टभेदभिन्नेषु वृद्धिहान्यवस्थानलक्षणत्रिपदेष्वोघत आदेशतश्च प्रत्येककर्मप्रकृतेः कियन्ति पदानि भवितुमर्हन्तीति प्रतिपादनम्।

एवं स्वामित्वाऽऽख्ये द्वितीयद्वारे जघन्योत्कृष्टप्रदेशबन्धवृद्ध्यादेः स्वामी, अर्थात् को जीवो जघन्योत्कृष्टप्रदेशबन्धवृद्ध्यादेर्विधाता भवतीति प्ररूपयिष्यते।

एवमल्पबहुत्वसंज्ञके तृतीयद्वारे जघन्यज्येष्ठप्रदेशबन्धवृद्ध्यादिमध्ये कस्मात्कस्मिन्नधिकाः स्तोका वा प्रदेशा बन्धमायान्तीति निर्दर्शयिष्यते ॥३१९॥

॥ प्रथमं सत्पदद्वारम् ॥

तदेवं नामग्राहं द्वाराण्युद्दिष्टानि। सम्प्रति तान्युद्देशानुक्रमेण निर्देष्टुकामः प्रथमं तावदोघत आदेशतश्चाऽनन्तरनिर्दिष्टवृद्ध्यादिपदानां सत्तामाह—

अत्थि जहण्णा जेट्ठा वड्ढी हाणी तहा अवट्ठाणं।
सव्वाणमेवभवे सप्पाउग्गाण सव्वासु ॥३२०॥

(प्रे०) 'अत्थि' इत्यादि, 'जहण्णा जेट्ठा' इति पदे 'वड्ढीहाणी तहा अवट्ठाणं' इति त्रिपदेषु प्रत्येकं संयुज्येते। ततोऽयमर्थः–जघन्या वृद्धिः, जघन्या हानिः, जघन्यमवस्थानम्, उत्कृष्टा वृद्धिः, उत्कृष्टा हानिः, उत्कृष्टमवस्थानं च सम्भवन्ति। ओघतः 'सव्वाण' त्ति सर्वोत्तरप्रकृतीनां जघन्योत्कृष्टभेदभिन्नानि वृद्ध्यादीनि त्रीण्यपि पदानि सम्भवन्तीति यावत्।

अथ उत्तरार्धेन तदेवाऽऽदेशतोऽतिदेशमुखेनाऽऽह—

'एमेव भवे सप्पाउग्गाण सव्वासु' त्ति सर्वासु-सप्ततिशतमार्गणासु प्रत्येकं स्वप्रायोग्याणां-स्वस्यां याः प्रकृतयो बध्यन्ते तासां प्रकृतजघन्यवृद्ध्यादिपदानि एवमेव-ओघवदेव भवन्तीत्यर्थः। ननु तत्कथं ज्ञायेत? इति चेद्, एतानि जघन्यवृद्ध्यादिपदानि कदा कथं च प्रवर्तन्ते इत्यादिकां जिज्ञासां तु स्वामित्वद्वारमपनेष्यतीत्यत्र तदर्थं न प्रयतामहे। सत्यम्, ननु तथाऽपि सुज्ञात-भूयस्काराधिकाराणामस्माकमत्रेयं शङ्का तु भवितुमर्हत्येव, तद्यथा-वैक्रियमिश्रा-ऽऽहारकमिश्र-कार्मणा-ऽनाहारकरूपासु चतुर्मार्गणासु भूयस्काराधिकारप्रथमद्वार एकं भूयस्कारपदमेव सम्भवति,

यतो मार्गणाचरमसमयं यावदसङ्ख्येयगुणयोगवृद्धिर्भवति । अतो वैक्रियमिश्रादिमार्गणासु योगस्य हानेरवस्थानस्य चाऽभावः सुतरां सिद्धो भवति । ततश्च प्रस्तुते प्रदेशबन्धस्य हानेरवस्थानस्य चाऽभावः सिद्धः, एवं वैक्रियमिश्रादिषु वृद्धिपदमेव सम्भवति । तत्कथमत्र ग्रन्थकृता सर्वासु मार्गणासु ओघवत् सर्वपदानां सत्ता समाऽऽख्याता ? इति चेत्, सत्यम्, सुज्ञातभूयस्काराधिकारैस्तादृक्शङ्काशङ्कितैर्भवितव्यमेव ॥३२०॥

अत एव ग्रन्थकारः सम्प्रति कृतातिदेशमपवदितुकाम आह—

हाणिअवट्ठाणाइं दुमीसकम्मेसु तह अणाहारे ।
सव्वाण णत्थि तह सुरविउवदुगजिणाणुरलमीसे ॥३२१॥

(प्रे०)'हाणि०' इत्यादि, '**दुमीस**' त्ति वैक्रियमिश्रकाययोगा-ऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणे '**कम्मेसु**' त्ति कार्मणकाययोगमार्गणा च तासु, तथाऽनाहारमार्गणायां '**सव्वाण**' त्ति उक्तमार्गणाप्रायोग्यसर्वबध्यमानप्रकृतीनामित्यर्थः, तासां किमित्याह–'**हाणिअवट्ठाणाइं णत्थि**' त्ति प्रकृतहान्यवस्थानबन्धौ न स्तः–न भवतः, कथमिति चेद्, उच्यते, उक्तमार्गणाचतुष्केऽसङ्ख्येयगुणयोगवृद्धेः प्रतिक्षणं जायमानत्वात्तत्राऽल्पतरा-ऽवस्थितपदे न सम्भवतः । अतस्तत्र हान्यवस्थाने भवितुमनर्हे एव । '**उरलमीसे**' त्ति औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां '**सुरविउवदुगजिणाण**' त्ति सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकम्, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गरूपं वैक्रियद्विकम्, जिननाम चेति पञ्चप्रकृतीनां '**हाणिअवट्ठाणाइं णत्थि**' इत्येतत्पदद्वयं मध्यमणिन्यायादत्राऽपि संयोज्यम्, ततश्चोक्तपञ्चप्रकृतीनां हान्यवस्थाने न भवत इत्यन्वयार्थः । **इयमत्र भावना**–औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां लब्ध्यपर्याप्तकजीवानामेवाऽल्पतराऽवस्थाने भवितुमर्हतः, न तु करणापर्याप्तकजीवानामपि । तथा चैता उक्तपञ्चप्रकृतीस्तु करणाऽपर्याप्तकजीवा एव बध्नन्ति, अतः प्रस्तुतपञ्चप्रकृतीनामल्पतराऽवस्थितबन्धस्याऽजायमानत्वात्तद्धान्यवस्थानयोरभावेन तज्जघन्योत्कृष्टहानी जघन्योत्कृष्टावस्थाने च न सम्भवन्ति । उक्तशेषप्रकृतीस्तु लब्ध्यपर्याप्तजीवा अपि बध्नन्ति, तेषामनुभूयमानाऽऽयुषो द्वयोर्भागयोर्व्यतीतयोस्त्रिविधयोगस्याऽपि भावादुक्तशेषप्रकृतीनां षट् पदानि सत्तया प्राप्यन्त इति ॥३२१॥

तदेवं समर्थितमोघादेशाभ्यां सत्पदद्वारम् । तत्समर्थने च '**संतपयं**' इत्यनेनोद्दिष्टं प्रथमं सत्पदद्वारं समाख्यातम् ।

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे तृतीये पदनिक्षेपाभिधेऽधिकारे प्रथमं सत्पदद्वारं समाप्तम् ॥

॥ द्वितीयं स्वामित्वद्वारम् ॥

उक्तं सत्पदद्वारम् । इदानीं स्वामित्वद्वारं प्ररूपयिषुरादौ तावदायुश्चतुष्कस्यौघत आदेशतश्चोत्कृष्टवृद्ध्यादीनां स्वामिनः प्ररूपयति—

तदरिहलहुजोगा गुरुजोगगओ आउगाण गुरुवड्ढिं ।
विवरीओ गुरुहाणिं अणंतरं गुरुअवट्ठाणं ॥३२२॥
एमेव बंधगो खलु सप्पाउग्गाण आउगाण भवे ।
सव्वासु मग्गणासु जेट्ठाण पयाण तिण्हं पि ॥३२३॥

(प्रे०) **'तदरिह०'** इत्यादि, **'आउगाण'** त्ति चतुर्णामायुषामोघतः **'गुरुवड्ढिं'** ति उत्कृष्टवृद्धिं को विदधातीत्याह **'तदरिहलहुजोगा गुरुजोगगओ'** त्ति तद्योग्यात्–गुरुयोगस्थानगमनप्रायोग्याद् लघुयोगाज्जघन्ययोगस्थानाद् गुरुम्-उत्कृष्टयोगस्थानं गतः-प्राप्तो जीवः कुरुते, अर्थात् स एव प्रकृताऽऽयुश्चतुष्कस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धवृद्धेर्विधाता भवति । उत्कृष्टप्रदेशबन्धवृद्धेरनन्तरपूर्वसमयाऽल्पप्रदेशबन्धसापेक्षत्वात् । विवक्षितसमयाऽनन्तरपूर्वसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगवान् भवतीति तु उत्तरत्राऽपि सर्वत्र ज्ञेयम् । **'विवरीओ'** त्ति उक्तविपरीतोऽर्थाद् गुरुयोगस्थानात् तद्योग्यजघन्ययोगस्थानमागतो जीव आयुश्चतुष्कस्य **'गुरुहाणिं'** ति उत्कृष्टप्रदेशबन्धहानेः स्वामी भवति । **'अणंतरं'** ति उत्कृष्टप्रदेशबन्धहान्यनन्तरसमये यो जीव आयुश्चतुष्कस्य तावत्प्रमाणंतावत्प्रादेशिकमेव बन्धं विदधाति, स तस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धाऽवस्थानस्य स्वामी निगद्यते । प्रकृत उत्कृष्टहान्यनन्तरमुत्कृष्टमवस्थानं कथितम्, उत्कृष्टवृद्ध्यनन्तरं न कथितं तत्कारणमत्रोत्कृष्टवृद्ध्यपेक्षयोत्कृष्टहानेरुत्कृष्टत्वमधिकतरम्, अतस्तदनन्तरमेवोत्कृष्टमवस्थानं वाच्यमिति तु पुराऽपि प्रतिपादितमेवेति ।

अथोत्कृष्टवृद्ध्यपेक्षयोत्कृष्टहानेरधिकत्वं कथम् ? इति चेत्, शृणु, इह विवक्षितयोगस्थानाज्जीवस्य यावद् दूरमुपरितनयोगस्थानाऽऽरोहणं भवति, तदपेक्षया विवक्षितयोगस्थानाज्जीवस्याऽवरोहणमधिकतरं दूरं भवति । योगाऽपेक्षया च प्रदेशबन्धे हानिवृद्धी भवतः, अतो वृद्ध्यपेक्षया हानिरधिकतरेति । अथाऽऽदेशतः प्रकृतस्वामित्वमोघवदऽतिदिशति—

'एमेव' इत्यादि, एवमेव-ओघवदेव किमित्याह-**'सव्वासु मग्गणासु'** त्ति सर्वासु मार्गणासु स्वमार्गणाप्रायोग्याऽऽयुष्प्रकृतीनां **'जेट्ठाण पयाण तिण्हं पि'** त्ति पूर्वोक्तानां त्रयाणामपि ज्येष्ठपदानाम्–उत्कृष्टवृद्ध्युत्कृष्टहान्युत्कृष्टाऽवस्थानसंज्ञकानां त्रिपदानां **'बंधगो'** त्ति बन्धकजीवाः

स्वामिन ओघवदेवावगन्तव्याः । व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेः, आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां हान्यवस्थानयोरसत्त्वात् तत्स्वामी न कथनीयः । उत्कृष्टवृद्धेः स्वामी तु स ज्ञेयो यो मार्गणाद्विचरमसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगवान् मार्गणाचरमसमये चोत्कृष्टयोगवान् भवेदिति ॥३२२-३२३॥

अथ ओघत आयुर्नामवर्जानां यशःकीर्तिनाम्नश्चेति पञ्चाशतः प्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामिनः प्रदिदर्शयिषुर्ग्रन्थकारो लाघवार्थं तत्करणगाथामाह--

जेट्ठपएसस्स भवे जाणाउजसूणणामवज्जाणं ।
जो सामी तदरिहलहुजोगबहुविहागओ स गुरुवड्ढिं ॥३२४॥(गीतिः)

(प्रे०) 'जेट्ठ०' इत्यादि, 'जाणाउजसूणणामवज्जाणं'ति यासामायुर्वर्जानां तथा यशःकीर्तिरहितशेषनामप्रकृतिवर्जानां प्रकृतीनामर्थाज्ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणनवकम्, वेदनीयद्वयम्, मोहनीयस्य षड्विंशतिप्रकृतयः, यशःकीर्तिनाम, गोत्रद्वयमन्तरायपञ्चकञ्चेति सर्वसङ्ख्यया पञ्चाशत्प्रकृतीनां 'गुरुवड्ढिं'ति उत्कृष्टवृद्धेः स्वामी को भवतीत्याह-'तदरिहलहुजोगबहुविहागओ' त्ति तद्योग्योत्कृष्टयोगस्थानगमनप्रायोग्यजघन्ययोगस्थानयुक्तो बहुविधप्रकृतिबन्धको जीवस्तत आगत्य 'जेट्ठपएसस्स भवे' 'जो सामी' त्ति ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य यः स्वामी भवति 'स' त्ति स एवोक्तपञ्चाशत्प्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी विज्ञेयः । इदमुक्तं भवति-ज्ञानावरणपञ्चकम्, दर्शनावरणचतुष्कम्, सातवेदनीयम्, यशःकीर्तिनाम, उच्चैर्गोत्रम्, अन्तरायपञ्चकञ्चेति सप्तदशप्रकृतीनां सप्तविधमूलप्रकृतिबन्धकोऽनिवृत्तिकरणचरमसमयस्थो जीव उत्कृष्टयोगस्थानगमनयोग्यजघन्ययोगस्थानादुत्तरसमये सूक्ष्मसम्परायप्रथमसमये वर्तमानः षड्विधमूलप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगी उत्कृष्टवृद्धेः स्वामी भवति । ननु पूर्वसमये योऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्तदुत्तरसमये मूलसप्तप्रकृतीर्बध्नाति तमगृहीत्वा यः पूर्वसमये सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्तदुत्तरसमये षड्मूलप्रकृतीर्बध्नाति तमेव कथमत्र प्रकृष्टज्येष्ठवृद्धिबन्धकारकत्वेन गृहीतवानिति चेत्, श्रूयताम्, मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धाऽनन्तरसमये सप्तमूलप्रकृतिबन्धं यो विदधाति, तस्य सप्तमूलप्रकृतिबन्धकाले प्रकृष्टयोगेन बध्यमानदलिकेभ्यो ज्ञानावरणादिमूलप्रकृतिरूपेणैकसप्तमांशभागप्रमाणैव दलिकप्राप्तिर्भवति । किन्तु यः पूर्वं सप्तमूलप्रकृतीर्बद्ध्वोत्तरसमये षड्मूलप्रकृतीनां बन्धं विदधाति, तस्य षड्मूलप्रकृतिबन्धसमये ज्ञानावरणादिमूलप्रकृतिरूपेणैकषष्ठांशभागदलिकानां प्राप्तिर्जायते । इयं च वृद्धिरधिकदलिकप्राप्तिप्रयोज्या, तेन पूर्वाऽपेक्षया ज्यायसी, अत एवैषाऽत्र गृहीतेति । निद्रापञ्चकं सञ्ज्वलनचतुष्करहितद्वादशकषाया मिथ्यात्वं स्त्रीनपुंसकवेदौ हास्यषट्कमसातवेदनीयं नीचैर्गोत्रञ्चेति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टात्रिंशत्प्रकृतिषु यः पूर्वसमये मूलाष्टप्रकृतिबन्धकजीव उत्कृष्टयोगगमनयोग्यजघन्ययोगादुत्तरसमये मूलसप्तप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगी भवति । तथा पुरुषवेद-सञ्ज्वलनचतुष्कयोस्तु पूर्वसमये मूलसप्तप्रकृतिबन्धको मोहनीयस्य चाऽनु-

क्रमेण नव-पञ्च-चतुस्त्रि-द्विप्रकृतीर्बध्नन्नुत्तरसमये मोहनीयस्य पञ्च चतस्रः तिस्रो द्वे एकां च प्रकृतीरनुक्रमेण बध्नन्नुत्कृष्टयोगी पुरुषवेद-सञ्ज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभप्रकृतीनां प्रत्येकमनुक्रमेण तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी भवतीति ज्ञेयम् ॥३२४॥

अथ तासामेवोत्कृष्टावस्थानस्य स्वामिनं दर्शयितुं तत्करणगाथामाह—

जेट्ठपएसस्स भवे यो सामी स चिअ ताउ परिभट्ठो ।
कुणइ गओ तदरिहलहुजोगबहुविहे गुरुं अवट्ठाणं ॥३२५॥(गीतिः)

(प्रे०) 'जेट्ठ०' इत्यादि, पूर्वोक्तानां पञ्चाशत्प्रकृतीनां यो जीवः पूर्वसमये ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्वामी भवति, स एव ततः परिभ्रष्टः सन्नुत्तरसमये यदि तद्योग्यजघन्ययोगं प्राप्य बहुविधप्रकृतिबन्धको भवेत् , पश्चाच्च तदनन्तरसमयेऽपि तावत्प्रमाणमेव बन्धं विदध्यात् ,तदा तत्समयस्थः स उक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टाऽवस्थानस्य स्वाम्युच्यते ।

घटना त्वित्थम्—ज्ञानावरणपञ्चकम् , दर्शनावरणचतुष्कम् , सातवेदनीयम् , यशःकीर्तिनाम, उच्चैर्गोत्रम् , अन्तरायपञ्चकञ्चेति पूर्वोक्तानां सप्तदशप्रकृतीनामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्य स्वामी स एव भवितुमर्हति, यो पतन्नुपशमकः सूक्ष्मसम्परायचरमसमयस्थो जीवः मूलषट्प्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगे च वर्तमानोऽनन्तरसमये नवमगुणस्थानकं तत्प्रायोग्यजघन्ययोगस्थानं च प्राप्य मूलसप्तप्रकृतीर्बद्ध्वाऽनन्तरसमये तावतीनामेव प्रकृतीनां तावतामेव प्रदेशानां बन्धं करोति । निद्रापञ्चक-द्वादशकषाय-मिथ्यात्व-स्त्री-नपुंसकवेद--हास्यषट्का-ऽसातवेदनीय-नीचैर्गोत्ररूपाणामष्टाविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्य स्वामी स एव भवितुमर्हति, यो जीवः पूर्वसमये सप्तमूलप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगे च वर्तमानोऽनन्तरसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगं प्राप्याऽष्टमूलप्रकृतीर्निबध्य तदनन्तरसमये तावतीनामेव प्रकृतीनां तावतामेव प्रदेशानां बन्धं विदधाति । तथा पुरुषवेद-सञ्ज्वलनकषायचतुष्कयोरुत्कृष्टावस्थानस्य स्वामी कः? अत्रोच्यते,-यो जीवः पूर्वसमये उत्कृष्टयोगेन क्रमशः सञ्ज्वलनलोभं सञ्ज्वलनलोभमाये सञ्ज्वलनलोभ-माया-मानकषायान् सञ्ज्वलनचतुष्कं सञ्ज्वलनचतुष्कपुरुषवेदौ च बध्नन्ननन्तरसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगं प्राप्य पूर्वोक्तानां सञ्ज्वलनलोभादिद्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-नवप्रकृतीनां क्रमेण बन्धं कुर्वन्पश्चात्तदनन्तरसमये यदि तासां तावत्प्रादेशिकमेव बन्धमुपरचयति, तदा क्रमेण स तासामुत्कृष्टाऽवस्थानस्य स्वामी भवतीति ॥३२५॥

अथ तासामेव प्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामिनं दिदर्शयिषुस्तत्करणगाथामाह—

जेट्ठपएसस्स भवे यो सामी स मरिउं भवज्जखणे ।
तदरिहजहण्णजोगं पत्तो कुणए गुरुं हाणिं ॥३२६॥

तत्थवि थीणद्धियतिगअसायणपुमअणमिच्छणीआणं ।
सुहुमापज्जणिगोओ कुणए थीए उण असण्णी ॥३२७॥

(प्रे०) 'जेट्ठ०' इत्यादि, पूर्वोक्तानामेव प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य यः स्वाम्यस्ति, स मृत्वा-कालं कृत्वा 'भवज्जखणे' त्ति देवादिगत्युत्पत्तिप्रथमसमये तद्योग्य-गुरुयोगस्थानात् प्राप्त्यप्रायोग्यजघन्ययोगस्थानं प्राप्त उत्कृष्टहानिं विदधाति ।

अत्र पूर्वोक्तपञ्चाशत्प्रकृतिमध्यायासु प्रकृतिषु कश्चिद् विशेषोऽस्ति तं वक्ति 'तत्थवि' इत्यादिना, तत्राऽपि पूर्वोक्तप्रतिपादने यासां प्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामिन उक्तास्तस्मिन्नपि 'थीणद्धि०' इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकम् , असातवेदनीयम् , नपुंसकवेदः, अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्कं, मिथ्यात्वं, नीचैर्गोत्रञ्चेत्येकादशप्रकृतीनां ज्येष्ठहानिबन्धस्य विधाता तु यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्वामी कालं कृत्वा सूक्ष्माऽपर्याप्तनिगोद उत्पद्य तद्योग्यजघन्ययोगवान्भवति स तत्रोत्पत्तिप्रथमसमयस्थो ज्ञेयः । 'थीए उण असण्णी' त्ति तत्र स्त्रीवेदस्य पुनरुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु यः पूर्वसमये ज्येष्ठप्रदेशबन्धकर्ता कालं कृत्वा तत्प्रायोग्यजघन्ययोगं प्राप्याऽसंज्ञित्वेनोत्पद्यते, स तत्र प्रथमसमयस्थो बोध्यः । ॥३२६-३२७॥ अथ यशःकीर्तिरहितशेषनामप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामिनमाचष्टे—

सेसाणं णामाणं जेट्ठपएसस्स जो भवे सामी ।
स च्चिअ कुणइ तदरिहलहुजोगअडविहागओ गुरुं वड्ढिं॥३२८॥(गीतिः)

(प्रे०) 'सेसाणं' इत्यादि, यशःकीर्तिरहितशेषसर्वनामप्रकृतीनां पूर्वसमये तद्योग्य-गुरुयोगस्थानगमनयोग्यजघन्ययोगस्थाने वर्तमानो मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धकश्च यो जीवस्तत आगत्याऽनन्तरसमये ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्वाम्यर्थात् सप्तमूलप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगी भवति, 'स च्चिअ' त्ति स एवाऽत्र नामप्रकृतीनां 'गुरुं वड्ढिं' ति उत्कृष्टवृद्धिं 'कुणइ' त्ति करोति ॥३२८॥

अथ तासामेवोत्कृष्टाऽवस्थानस्य स्वामिनमाह—

जेट्ठपएसस्स भवे जो सामी स च्चिअ ताउ परिभट्ठो।
कुणइ गओ तदरिहलहुजोगअडविहं गुरुं अवट्ठाणं॥३२९॥(गीतिः)
णवरि गुरुमवट्ठाणं आहारदुगस्स सत्तविहवंधी ।
कुणए इगतीसविहं वंधंतो तीसविहवंधी ॥३३०॥

(प्रे०) 'जेट्ठ०' इत्यादि, पूर्वोक्तानां यशःकीर्तिरहितशेषनामकर्मप्रकृतीनां यो जीवः पूर्वसमययुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य स्वाम्यस्ति, अर्थाद् मूलसप्तप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोग्यस्ति, स 'ताउ

परिभट्ठो' त्ति ततः परिभ्रष्टः-पतित उत्तरसमये **'तदरिह०'** इत्यादि, तद्योग्यजघन्ययोगस्थानं मूलाष्टविधप्रकृतिबन्धं च प्राप्तोऽनन्तरसमयेऽपि तावत्प्रदेशबन्धक उक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टाऽवस्थानस्य स्वामी भवति । अत्राऽप्यपवादं दर्शयति **'णवरि'** इत्यादिना, नवरं-किन्तु आहारकद्विकस्य तूत्कृष्टाऽवस्थानबन्धस्य स्वामी यः पूर्वसमये सप्तमूलप्रकृतिबन्धं विधाय नाम्नश्च त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धं कृत्वाऽनन्तरसमयेऽपि सप्तमगुणस्थान आयुर्बन्धप्रारम्भायोगात् मूलसप्तप्रकृतीनामेव तथा नाम्नो जिननामाऽधिकपूर्वोक्तत्रिंशत्प्रकृतीनामर्थादेकत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धं विदध्यात् ,तत्सहैव चोत्कृष्टयोगात्तत्प्रायोग्यजघन्ययोगं प्राप्नुयात्स एव भवितुमर्हतीति ॥३२९-३३०॥

अथ तासां नामप्रकृतीनामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनं वक्तुकामः प्रथमं तन्मध्यान्नरकाऽऽहारकद्विकयोस्तमाह—

णिरयाहारदुगाणं जेट्ठअवट्ठाणपुव्वसमये च्च ।
कुणइ गुरुं हाणिं सुरविउवदुगाण वि परे बिंति ॥३३१॥

(प्रे०) **'णिरय०'** इत्यादि, **'णिरयाहारदुगाणं'** ति अत्र द्विवचने बहुवचनान्तप्रयोगः प्राकृतत्वात् , ततश्चाऽयमर्थः-नरकगति-नरकानुपूर्वीरूपं नरकद्विकम् , आहारकशरीरा-ऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणमाहारकद्विकश्च तयोः **'गुरुं हाणिं'** ति उत्कृष्टां हानिं **'जेट्ठअवट्ठाणपुव्वसमये च्च कुणइ'** त्ति ज्येष्ठाऽवस्थानबन्धपूर्वसमये जीवः करोति, अर्थात्पूर्वगाथायामुक्तप्रकृतीनां ज्येष्ठाऽवस्थानबन्धस्य यः स्वाम्युक्तः, स एव तदवस्थानपूर्वसमयस्थ उत्कृष्टहानेः स्वामी विज्ञेयः । **'सुरविउवदुगाण वि परे बिंति'** त्ति परे-अन्ये तु सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकम् , वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकश्च तयोरित्यासां चतुष्प्रकृतीनामपीत्थमेव तज्ज्येष्ठावस्थानपूर्वसमयस्थो जीव एव तदुत्कृष्टहानिबन्धविधाता भवतीत्येवं कथयन्ति ॥३३१॥

अथ सुरद्विक-वैक्रियद्विकयोरुत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनं स्वमतेन दर्शयति—

सुरविउवदुगाण गुरुं हाणिं गुरुजोगओ णरो सम्मो ।
कालं करिअ युगलिके तदरिहलहुजोगठाणगओ ॥३३२॥

(प्रे०) **'सुर०'** इत्यादि, **'सुरविउवदुगाण'** त्ति सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकम् , वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकश्च तयोः **'गुरुं हाणिं'** उत्कृष्टां हानिं कः कुरुते ? इत्याह-**'गुरुजोगओ'** इत्यादि, उत्कृष्टयोगस्थानवर्तिसम्यग्दृष्टिमनुष्यः कालं कृत्वा तद्योग्यलघुयोगस्थानं गतः-प्राप्तो युगलिकत्वेनोत्पद्यते तदा स उक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टहानिं विदधातीति ॥३३२॥

अथ शेषनामकर्मप्रकृतीनामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनं दिदर्शयिषुराह—

सेसाणं णामाणं जेट्ठपएसस्स जो भवे सामी ।
स च्चिअ करिअ तं बंधं कालं किच्चा भवे जाओ ॥२३३॥
तव्बंधठाणजोगे जहसंभवमहियरपयडिबंधी ।
तदरिहलहुजोगगओ पढमखणे कुणइ गुरुहाणिं ॥२३४॥

(प्रे०) 'सेसाणं' इत्यादि, उक्तशेषनामप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्य स्वामी यो भवति स एव जीवस्तद्बन्धं विधाय कालं कृत्वा 'भवे जाओ' त्ति अन्यस्मिन्भवे जातः-उत्पन्नः 'तव्बंधठाणजोगे' इत्यादि, तत्र तत्तत्प्रकृतेर्बन्धयोग्ये योगस्थाने यथासम्भवमधिकतरप्रकृतिबन्धी, अर्थात् विवक्षिततत्तत्प्रकृतेर्यावन्ति बन्धस्थानानि सम्भवेयुः, तन्मध्यादधिकतमप्रकृतियुतं तद्बन्धस्थानं बध्नन् 'तदरिह०' इत्यादि, तद्योग्यं जघन्ययोगं प्राप्तो जीवः प्रथमक्षण उक्तप्रकृतीनां ज्येष्ठां हानिं विदधातीति ॥

इत्थं सामान्यरूपेणौघविवक्षायां सर्वप्रकृतीनां वृद्धि-हान्यवस्थानस्वामिनः प्ररूपिताः । सम्प्रति त एव सर्वप्रकृतीनां वृद्धिहान्यवस्थानस्वामिनो ओघे विशेषतः प्ररूप्यन्ते—

तत्राऽपि प्रथमं तद्विषयकास्त्रयो नियमा अत्र दर्श्यन्ते, ते सम्यगवधेयाः । तथाहि– ओघवक्तव्यतायामादेशवक्तव्यतायां चाऽऽयुर्बन्धकाले गुणस्थानकस्य परावृत्तिर्नैव सम्भवति । अर्थात्तदा गुणस्थानकतादवस्थ्यं भवति । नवरं षष्ठगुणस्थानात्सप्तमगुणस्थानकगमनं तु शक्यमिति विशेषः । द्वितीयो नियमस्त्वयम्– आयुर्बन्धकाले तद्बन्धकालात्पूर्वमुत्तरं चाऽन्तर्मुहूर्तकालं यावन्नाम्नो बन्धस्थानं तादवस्थ्येनैकमेवाऽवतिष्ठते । नवरं तत्राऽप्याहारकद्विकस्य बन्धः कर्तुं शक्यत इति विशेषः । तृतीयो नियमश्चाऽयम्-वर्तमानभवाज्जीव आगामिनि भवे यद्गतावुत्पत्स्यमानः स्यात्, तद्गतिप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धं वर्तमानभवस्य चरमाऽन्तर्मुहूर्तकाले करोति । उक्तं च **कर्मप्रकृतिसत्कोदोरणाकरणस्य त्रयस्त्रिंशत्तमगाथायाश्चूर्णौ**–जो जत्थ उववज्जइ सो तप्पाउग्गं पगति अंतोमुहुत्तं बन्धिऊण उववज्जति त्ति । यदि स सम्यक्त्वादिगुणविरहितो भवेत् । यतः सम्यग्दृष्टिमनुष्यास्तु नरकतिर्यग्मनुष्यगत्यभिमुखा अपि देवगतिप्रायोग्यप्रकृतीनामेव बन्धमुपरचयन्तीति ।

अधुना तत्तत्प्रकृतीनां ज्येष्ठवृद्धि-हान्य-वस्थानबन्धस्वामिनो दर्श्यन्ते—

तत्र ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणचतुष्कं, सातवेदनीयम्, उच्चैर्गोत्रं, यशःकीर्तिनाम, अन्तरायपञ्चकञ्चेत्यासां सप्तदशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धयोग्यो मूलसप्तविधप्रकृतिबन्धकः तत्प्रायोग्यजघन्ययोगी योऽन्यक्षणे मूलषट्प्रकृतिबन्धं कुर्वन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्नोति, स तासामुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्य स्वामी भवितुमर्हति । एवमेतासां सप्तदशप्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वाम्युत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभव-

युत्पन्नस्तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानो ज्ञेयः । एवमेतासामवस्थानबन्धस्वामी तु यः पतन्नुपशमको जीव उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता षड्मूलप्रकृतिबन्धकोऽनन्तरक्षणे च नवमगुणस्थानप्रथमसमये सप्तमूलप्रकृतिबन्धं कुर्वन्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तस्तदनन्तरक्षणेऽपि तावन्मात्रप्रदेशबन्धकर्ता भवति स ज्ञेयः ।

स्त्यानर्द्धित्रिकं, मिथ्यात्वम्, अनन्तानुबन्धिचतुष्कम्, असातवेदनीयं, नीचैर्गोत्रं, नपुंसकवेदश्चेत्येकादशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धयोग्योऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोग्युत्तरसमये च सप्तमूलप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्तस्तदुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्य स्वामी भवति । एवं तासामवस्थानबन्धस्वामी तु यो ज्येष्ठयोगं प्राप्तः सप्तमूलप्रकृतीनां बन्धक उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्तोत्तरक्षणे चाऽष्टमूलप्रकृतीर्बध्नन्तदर्हजघन्ययोगे पतितोऽनन्तरक्षणेऽपि तावतः प्रदेशान्बध्नाति स ज्ञेयः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी त्वासामेकादशप्रकृतीनां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मृत्युमित्वाऽपर्याप्तनिगोद उत्पद्य भवप्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो भवेत् स बोध्यः ।

निद्राद्विकम्, हास्यषट्कम्, अप्रत्याख्यानकषायचतुष्कञ्चेति द्वादशप्रकृतीनां मूलाऽष्टविधप्रकृतीरूपरचयन्तद्योग्यजघन्ययोगं प्राप्तः सम्यग्दृष्टिजीवोऽनन्तरसमये मूलसप्तविधप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्तः सन्नुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी ज्ञातव्यः । एवमेतासामुत्कृष्टावस्थानस्य स्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता मूलसप्तविधप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगे च वर्तमानोऽनन्तरसमयेऽष्टमूलप्रकृतिबन्धं कुर्वंस्तद्योग्यजघन्ययोगं प्राप्तस्तदनन्तरक्षणेऽपि तावतः प्रदेशान्बध्नाति स विज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मृतः सन्देवभव उत्पन्नस्तत्र भवप्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो भवेत् स बोद्धव्यः ।

अत्रेदं ध्येयं चिन्तनचतुरैः—निद्राद्विक-हास्यषट्क-प्रत्याख्यानचतुष्का-ऽप्रत्याख्यानचतुष्करूपाणां षोडशप्रकृतीनां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी प्रदर्शितः स उत्कृष्टप्रदेशबन्धं कृत्वा निधनं प्राप्य भवाद्यसमये वर्तमान उत्कृष्टयोगस्थानात् तत्प्रायोग्यजघन्ययोगस्थानं प्राप्तः सन्नुत्कृष्टहानिस्वामी भवतीति "जेट्ठपएसस्स भवे जो सामी" इत्यादिना प्रदर्शितम् । एतासां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी यथासम्भवं चतुर्थाद्यष्टमान्तगुणस्थानेषु वर्तमानः सम्यग्दृष्टिर्भवतीति प्राग् निरूपितम् । एतासु प्रकृतिषु सम्यग्दृष्टिर्जीव उत्कृष्टप्रदेशबन्धं कृत्वा पञ्चत्वं प्राप्य देवगतावुत्पद्यते । अत एतासु प्रकृतिषूत्कृष्टप्रदेशबन्धं कृत्वा निधनं प्राप्य देवगतिप्रथमसमये वर्तमानस्तत्प्रायोग्यजघन्ययोगं प्राप्तः सन्नुत्कृष्टहानिं विदधातीति समापतितम् । परमत्र युक्त्या चिन्त्यमाने तु मिथ्यादृष्टिर्जीव उत्कृष्टप्रदेशबन्धं विधाय पञ्चत्वं प्राप्य सूक्ष्माऽपर्याप्तनिगोदभव उत्पद्य तत्प्रथमसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगं प्राप्तः सन्नुत्कृष्टहानिं विदधातीति प्रतिभाति । तद्यथा—सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टयुभयजीवावुत्कृष्टयोगप्राप्तिप्रायोग्यौ, तथाऽपि एतासां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकः सम्यग्दृष्टिः प्रदर्शितः, यतो मिथ्यादृष्टेरधिकप्रकृतीनां बन्धः सम्यग्दृष्टेस्तु स्त्यानर्द्धि-

त्रिकादीनामबन्धः, अतोऽबध्यमानप्रकृतिसत्कदलिकानि बध्यमानतत्तत्प्रकृतावधिकानि प्राप्यन्ते, इति मिथ्यादृष्टितः सम्यग्दृष्टेरधिकानि दलिकानि संजायन्ते । अतोऽत्रोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी मिथ्यादृष्टिर्न प्रोक्तः । परं सम्यग्दृष्टेरबध्यमानप्रकृतिसत्कानि यानि दलिकान्यधिकानि भवन्ति तान्यनन्तभागमात्राणि । यतोऽबध्यमानप्रकृतयः सर्वघातिन्यस्तासां स्वविभागतया परिणतानि दलिकानि मूलप्रकृतिसत्कदलिकाऽपेक्षयाऽनन्तभागमात्राणि प्राप्यन्ते, ततोऽनन्तभागबहुभागदलिकानि देशघातिनीनां भवन्ति । अतोऽबध्यमानप्रकृतिसत्कदलिकान्यनन्तभागमात्राणि प्राप्यन्ते, यतोऽनन्तबहुभागदलिकानि देशघातिनीनां भवन्ति । अतोऽबध्यमानप्रकृतिसत्कदलिकान्यनन्तभागमात्राणि निद्राद्विकादिषु प्राप्यन्ते । अथ भवप्रथमसमयस्थसूक्ष्माऽपर्याप्तनिगोदस्य जघन्ययोगो देवगतिप्रथमसमयभाविजघन्ययोगाऽपेक्षयाऽसङ्ख्यगुणो न्यूनः । अतो देवगतिप्रथमसमयभाविजघन्ययोगेन बद्धदलिकेभ्यः सूक्ष्माऽपर्याप्तनिगोदभवप्रथमसमयजघन्ययोगेनाऽसङ्ख्यगुणन्यूनानि दलिकानि बध्यन्ते । तथा सम्यग्दृष्टिर्जीव उत्कृष्टप्रदेशबन्धं कृत्वा पञ्चत्वं प्राप्य देवगतिप्रथमसमये जघन्ययोगं प्राप्तः सन् यावन्ति कर्मदलिकानि बध्नाति, तेषां दलिकानामुत्कृष्टयोगेन बद्धदलिकेभ्यो विश्लेषे कृते यावन्ति भवन्ति, तावन्ति दलिकानि तदीयोत्कृष्टहानौ भवन्ति । एवं मिथ्यादृष्टिर्जीवः स्वप्रायोग्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं कृत्वा निधनं प्राप्य सूक्ष्मापर्याप्तनिगोदभवप्रथमसमये जघन्ययोगं प्राप्तः सन् यावन्ति कर्मदलिकानि बध्नाति तेषां दलिकानामुत्कृष्टयोगेन बद्धदलिकेभ्यो विश्लेषे कृते यावन्ति भवन्ति तावन्ति दलिकानि तदीयोत्कृष्टहानौ भवन्ति । तानि च सम्यग्दृष्टिजीवसत्कोत्कृष्टहानिविषयगतदलिकेभ्यो मिथ्यादृष्टिजीवसत्कोत्कृष्टहानिविषयगतदलिकान्यसङ्ख्यातभागाधिकानि भवन्ति । सान्यसत्कल्पनयैवम्-अष्टतः प्रारभ्य सहस्रं यावदसङ्ख्यातराशिः कल्प्यते । अत्र सम्यगदृष्टिजीवेनोत्कृष्टप्रदेशबन्धे दशाधिकैककोटिदलिकानि (१००००१०) बद्धानि, तथा पञ्चत्वं प्राप्य देवगतिप्रथमसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगं प्राप्य लक्षदलिकानि (१०००००) बद्धानि, दशाधिककोटिदलिकेभ्यो लक्षदलिकानां विश्लेषे कृते दशाधिकनवनवतिलक्षदलिकानि (९९००१०) भवन्ति । मिथ्यादृष्टिजीवेनोत्कृष्टयोगेन कोटिदलिकानि (१०००००००) बद्धानि, तथा पञ्चत्वं प्राप्य सूक्ष्मापर्याप्तनिगोदभवप्रथमसमये जघन्ययोगं प्राप्य दशसहस्रदलिकानि (१००००) बद्धानि, कोटिदलिकेभ्यो दशसहस्रदलिकानां विश्लेषे कृते नवतिसहस्राधिकनवनवतिलक्षाणि (९९९००००) भवन्ति । दशाधिकनवनवतिलक्षदलिकेभ्यो नवतिसहस्राधिकनवनवतिलक्षदलिकानि दशन्यूननवतिसहस्रैरधिकानि दशन्यूननवतिसहस्राणि च दशाधिकनवनवतिलक्षदलिकेभ्यः किञ्चिदधिकदशोत्तरशततमे भागे भवन्ति । किञ्चिदधिकदशोत्तरशततमभागः प्रकृतासत्कल्पनापेक्षयाऽसङ्ख्येयतमो भागः ।

एवं युक्त्या चिन्त्यमाने मिथ्यादृष्टिरुत्कृष्टयोगेन स्वप्रायोग्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं कृत्वा मृत्युमित्वा सूक्ष्मापर्याप्तनिगोदभवप्रथमसमये जघन्ययोगं प्राप्तः सन्नुत्कृष्टप्रदेशबन्धहानिस्वामी भवतीति

प्राप्तेऽप्यत्र "जेट्ठपएसस्स भवे जो सामी" इति यन्निरूपितं तद् "यदोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामिजीव एवोत्कृष्टप्रदेशबन्धोत्तरसमये स्वप्रायोग्यजघन्ययोगेन जघन्यप्रदेशबन्धं करोति तदोत्कृष्टहानिर्भवति" इत्युत्कृष्टहानिव्याख्यामाश्रित्य, न तु "यदपेक्षयाऽन्योत्कृष्टहानिर्न भवति सोत्कृष्टहानिः" इत्येवंविधां हानिव्याख्यामाश्रित्य । यद्यत्र "यदपेक्षयाऽन्योत्कृष्टहानिर्न भवति सोत्कृष्टहानिः" इति हानेर्व्याख्याऽऽश्रियते तर्हि मिथ्यादृष्टिः स्वप्रायोग्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं कृत्वा पञ्चत्वं प्राप्य सूक्ष्मापर्याप्तनिगोदभवप्रथमसमये जघन्ययोगं प्राप्तः सन्नुत्कृष्टप्रदेशबन्धहानिं विदधातीति वक्तव्यमित्यलं प्रसङ्गेन ।

प्रत्याख्यानचतुष्कस्य तु यो विवक्षितसमयेऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगवान्देशविरतस्तदनन्तरसमये सप्तमूलप्रकृतिबन्धं कुर्वन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्तः, उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः स तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वाम्यवगन्तव्यः । एवं विवक्षितप्रथमसमय उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः सप्तविधमूलप्रकृतिबन्धको यो देशविरतजीवो द्वितीयसमयेऽष्टविधमूलप्रकृतिबन्धं विदधत् तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तस्तृतीयसमयेऽपि तावतः प्रदेशान्बध्नाति स प्रत्याख्यानचतुष्कस्योत्कृष्टावस्थानस्वामी भवति । तथा तदुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तूत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवतयोत्पद्य भवप्रथमसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगवान् ज्ञेयः ।

पुरुषवेदस्य सञ्ज्वलनक्रोधादिकषायचतुष्कस्य चोत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी तु स भवति यः प्रथमक्षणे क्रमशो मोहनीयस्य यथाक्रमं नव-पञ्च-चतु-स्त्रि-द्विप्रकृतीनां बन्धकस्तदर्हजघन्ययोग्युत्तरक्षणे मोहनीयस्य यथाक्रमं पञ्च-चतु-स्त्रि-द्वि-एकप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगं संधत्ते । एवं सञ्ज्वलनलोभ-माया-मान क्रोध-पुरुषवेदानामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी स ज्ञेयो यः प्रथमक्षणे मोहनीयसत्कैक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चप्रकृतीः क्रमेण बध्नंस्तदुत्तरसमये च द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-नवप्रकृतीर्यथाक्रमं बध्नञ्जघन्ययोगी तदनन्तरसमयेऽपि तावतःप्रदेशान्नेव बध्नातीति । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी त्वासां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धविधाता व्युपरतः सन् देवभव उत्पद्य तत्र प्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो भवेत् स ज्ञेयः ।

अत्राऽपीदं बोध्यम्-यः प्रथमसमय उत्कृष्टयोगवानुत्कृष्टप्रदेशबन्धक एकं सञ्ज्वलनलोभं बध्नन्मृत्वा देवभवप्रथमसमये जघन्ययोगं प्राप्तः सप्तदशप्रकृतीर्बध्नँस्तदुत्कृष्टहानेः स्वामी ज्ञेयः । एवं द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चप्रकृतीर्बध्नन्मृत्वा देवभवप्रथमक्षणे मायादीनामुत्कृष्टहानेः स्वामी भवति ।

स्त्रीवेदस्य तु यो मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो मिथ्यादृष्टिजीवोऽनन्तरसमये मूलसप्तविधबन्धकस्तदर्हमुत्कृष्टयोगं प्राप्त उत्कृष्टप्रदेशबन्धकस्तदुत्कृष्टवृद्धिबन्धविधाता ज्ञेयः । एवं प्रथमसमय उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता मूलसप्तप्रकृतिबन्धको मिथ्यादृष्टिरुत्तरसमये मूलाऽष्टविधबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तस्तदनन्तरसमये पुनस्तावन्तमेव बन्धं विरचयन्स्त्रीवेदस्योत्कृष्टावस्थानबन्ध-

स्वाम्युच्यते । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं प्राप्याऽसंज्ञिपर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-भव उत्पद्य तत्र प्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो भवति स ज्ञेयः ।

आयुश्चतुष्कस्य चाऽष्टविधमूलप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगवान्तदनन्तरक्षणे च ज्येष्ठयोगं प्राप्तो मूलाऽष्टप्रकृतीनामेव बन्धमुपरचयन्नुत्कृष्टप्रदेशबन्धकस्तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी ज्ञेयः । यः पुन-रुत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोग्युत्तरक्षणे च तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदनन्तरक्षणेऽपि तथैव बन्धं विरचयन्तदुत्कृष्टावस्थानस्वामी वेदितव्यः । उत्कृ-ष्टहानिबन्धस्वामी त्वत्र स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्ती स एव विज्ञेयः ।

नरकगतेर्नरकानुपूर्वीनाम्नश्च यो मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोग्यनन्तरक्षणे सप्तमूलप्रकृ-तिबन्धं कुर्वन्नुत्कृष्टयोग्युत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता तदुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी ज्ञातव्यः । तदुत्कृष्टावस्थान-बन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता सप्तमूलप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोग्यनन्तरक्षणे चाऽष्टमूलप्रकृति-बन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोगे स्थितस्तदुत्तरसमयेऽपि तथैवाऽवस्थितः सन्तदुत्कृष्टावस्थानस्वामी भवति । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी त्वस्य नरकगतिद्विकस्य स्वाऽवस्थानपूर्वसमयवर्ती स एव बोद्धव्यः । एवं देवद्विक-वैक्रियद्विकयोर्यो मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोग्युत्तरक्षणे मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्तो नामकर्मणो देवप्रायोग्याऽष्टाविंशतिप्रकृतीनां बन्धको भवति स तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी विज्ञेयः । यश्च पूर्वक्षण उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः सप्तमूलप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगी नाम्नश्च देवयोग्याऽष्टाविंशति-प्रकृतिबन्धक उत्तरक्षणेऽष्टमूलप्रकृतीर्बध्नंस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानस्तदनन्तरक्षणेऽपि तथैव बन्धमु-परचयन्स देव-वैक्रियद्विकयोर्ज्येष्ठावस्थानस्वामी बोध्यः । एवं तयोर्ज्येष्ठहानिबन्धस्वामी तु मता-न्तरेण स एव तदवस्थानबन्धपूर्वक्षणस्थो बोध्यः । स्वमते तूत्कृष्टप्रदेशबन्धकः सम्यग्दृष्टिः कालं कृत्वा युगलिकतयोत्पन्नो भवप्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमान उत्कृष्टहानेः स्वामी ज्ञेयः ।

तिर्यग्द्विकं, तैजस-कार्मणौ-दारिकशरीराणि, वर्णचतुष्कं, हुंडकसंस्थानं, अगुरुलघू-पघात-निर्माण-नामानि, दुःस्वररहितमस्थिरपञ्चकञ्चेति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टादशप्रकृतीनां योऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्य-योगी नाम्नश्च त्रयोविंशतिप्रकृत्यात्मकबन्धस्थानं बध्नन्तदनन्तरसमये च सप्तविधबन्धक उत्कृष्टयो-ग्युत्कृष्टप्रदेशबन्धको नाम्नस्त्रयोविंशतिप्रकृतिबन्धकश्च भवेत् स तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वाम्यवगन्तव्यः ।

एवमेतासामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी तु यः पूर्वक्षणे प्रकृष्टप्रदेशबन्धकर्ता मूलसप्तविधबन्धक उत्कृ-ष्टयोगी नाम्नस्त्रयोविंशतिप्रकृत्यात्मकं बन्धस्थानं बध्नन्नुत्तरसमये चाऽष्टमूलप्रकृतिबन्धको तद्योग्य-जघन्ययोगी नाम्नस्त्रयोविंशतिं प्रकृतीर्बध्नन्तदनन्तरसमयेऽपि तावन्तमेव प्रदेशबन्धं कुरुते स ज्ञेयः ।

उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी चाऽऽसां स ज्ञेयो य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा सूक्ष्माऽपर्याप्तनिगो-दतया उत्पन्नस्तदर्हजघन्ययोगे स्थितो नाम्नश्च पञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रायोग्याणामुद्योतसहितानां त्रिंश-त्प्रकृतीनां बन्धमुपरचयतीति ।

एवमेकेन्द्रिय–स्थावरनाम्नोरप्युत्कृष्टवृद्ध्यादित्रिविधबन्धस्वामिनोऽनन्तरोक्ततिर्यग्द्विकादि–प्रकृतीनामिव वक्तव्याः, नवरमत्र हानिबन्धस्वामी नाम्नः षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकस्थानस्य बन्धकः कथनीय इति विशेषः ।

तथैव सूक्ष्माऽपर्याप्त-साधारणनाम्नामपि त्रिविधबन्धस्वामिनस्तिर्यग्द्विकादिवद् बोध्याः । किन्तु तत्र सूक्ष्मनाम्न उत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनः सूक्ष्मपर्याप्तप्रायोग्यो नाम्नः पञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्ध आवश्यकः । एवमपर्याप्तनाम्नो ज्येष्ठहानिबन्धस्वामिनां त्रसाऽपर्याप्तप्रायोग्यपञ्चविंशतिनामप्रकृतीनां बन्ध आवश्यकः । साधारणनामकर्मणश्च ज्येष्ठहानिबन्धस्वामिनां साधारणपर्याप्तप्रयोग्यपञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्ध आवश्यक इत्यत्र विशेषोऽवगन्तव्यः ।

बादरप्रत्येकनाम्नोरपि उत्कृष्टवृद्ध्यादित्रिविधबन्धस्वामिनः तिर्यग्गत्या देवदेव द्रष्टव्याः । नवरमत्र प्रत्येकनाम्नो हानिबन्धस्वामी सूक्ष्माऽपर्याप्तपृथ्व्यादिषूत्पन्नो बादरनाम्नश्च स बादराऽपर्याप्तैकेन्द्रिययुत्पन्न एव ग्राह्य इति विशेषः ।

मनुष्यद्विकस्य च मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगी नाम्नश्चाऽपर्याप्तमनुष्यप्रायोग्यपञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धविधाताऽनन्तरक्षणे च सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्तदर्होत्कृष्टयोगं प्राप्य नाम्नस्ता एव पञ्चविंशतिप्रकृतीर्बध्नन्तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वाम्यवसेयः । एवं प्रथमसमये सप्तमूलप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगी नाम्नः पञ्चविंशतिप्रकृतीर्बध्नन् द्वितीयसमये चाऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोगे पतितो नाम्नस्ता एव प्रकृतीर्बध्नंस्तृतीयसमयेऽपि तथैव द्वितीयसमयतुल्यं बन्धं विदधाति स मनुष्यद्विकस्योत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी वक्तव्यः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी त्वस्य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता व्युपरतः सन्नपर्याप्तमनुष्यत्वेनोत्पद्य भवप्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तो नाम्नश्च पर्याप्तमनुष्यप्रायोग्यैकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धविधाता भवति स ज्ञेयः ।

एवं द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजातिनामप्रकृतीनामपि प्रक्रान्तोत्कृष्टवृद्धिबन्धा-ऽवस्थानबन्धस्वामिनः पूर्ववद् मनुष्यद्विकतुल्या वक्तव्याः । किन्त्वत्र ते स्वामिनो नाम्नोऽपर्याप्तद्वीन्द्रियादिप्रायोग्यपञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धका भवन्तीति तु पूर्वापेक्षया विशेषः । एवमेतासामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी स ज्ञेयो य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्तोत्तरसमयेऽपर्याप्तद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिया-ऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु यथाक्रममुत्पद्य तत्रोद्योतसहितानां पर्याप्तद्वीन्द्रियादिप्रायोग्यत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धविधाता भवेत् ।

तथैवौदारिकाङ्गोपाङ्गं, सेवार्तसंहननं, त्रसनाम चेति प्रकृतित्रयस्याऽपि त्रिविधबन्धस्वामिनो द्वीन्द्रियजातिनामादिसत्कबन्धस्वामितुल्या, विज्ञेयाः, केवलमुत्कृष्टहानौ द्वीन्द्रियेष्वेवोत्पादो वाच्यः । एवं संहननपञ्चकसंस्थानचतुष्कयोरपि ज्येष्ठवृद्ध्यवस्थानबन्धस्वामिनः पञ्चेन्द्रियजातिनामतुल्या अवसेयाः । नवरमत्र तेषां नाम्न एकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धः कथयितव्य इति विशेषः । ज्येष्ठहा-

निबन्धस्वामी चाऽत्र य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता पर्याप्ताऽसंज्ञितयोत्पन्नो नाम्न उद्योतसहितास्त्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नाति स विज्ञेयः ।

पराघातो-च्छ्‌वास-पर्याप्त-स्थिर-शुभनामप्रकृतीनां तु योऽष्टमूलप्रकृतीर्बध्नन्जघन्ययोगी नाम्नश्च पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यपञ्चविंशतिप्रकृतीनां च बन्धकर्तोत्तरसमये सप्तमूलप्रकृतीर्बध्ननुत्कृष्टयोगं प्राप्योत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता नाम्नस्तासामेव पञ्चविंशतीनां बन्धं विरचयति स तदुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी भवति । एवमुक्तप्रकृतीनां यः प्रथमक्षण उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगी नाम्नः सूक्ष्मपर्याप्तैकेन्द्रिययोग्यपञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धको द्वितीयक्षणेऽष्टमूलप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे स्थितो नाम्नश्च ता एव पञ्चविंशतिप्रकृतीर्बध्नँस्तदनन्तरसमयेऽपि तथैव पूर्वसमयतुल्यं बन्धं विदधाति स तासामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी ज्ञेयः । एतासामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ताऽनन्तरसमये कालं कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तैकेन्द्रिययुत्पद्य प्रथमसमये नाम्न उद्योतयुक्तानां त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धं विदधाति स ज्ञेयः ।

सुखगतिः, समचतुरस्रसंस्थानं, सुभगत्रिकञ्चेति पञ्चप्रकृतीनां यः पूर्वक्षणे मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोगी नाम्नश्च देवप्रायोग्याऽष्टाविंशतीर्बध्नँस्तदनन्तरसमये मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोग्युत्कृष्टप्रदेशबन्धको नाम्नस्ता एव प्रकृतीर्बध्नँस्तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी भवति । एवं यः सप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगी नाम्नोऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नँस्तदुत्तरसमये चाऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तो नाम्नस्ता एवाऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नँस्तदनन्तरसमयेऽपि तावन्तमेव बन्धं विदधाति स तासामुत्कृष्टाऽवस्थानस्वामी निगद्यते। उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु तासामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभवयुत्पद्य प्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो नाम्नश्चोद्योतसहिताः पर्याप्ततिर्यक्प्रायोग्यास्त्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नाति स ज्ञेयः ।

कुखगतिदुःस्वरनाम्नोरपि प्रक्रान्तवृद्धि-हान्य-वस्थानबन्धस्वामिनः पूर्वोक्तसुखगतिनामवदेवाऽवसेयाः । नवरमत्र तत्स्वामी नाम्नो नरकप्रायोग्याऽष्टाविंशतिप्रकृतीनां बन्धको वाच्यः । एवमेतयोर्ज्येष्ठहानिबन्धस्वामी नरकगतावुत्पन्नो ग्राह्य इत्यत्र विशेषः ।

आहारकद्विकस्य तु यः पूर्वक्षणेऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगी नाम्नो देवप्रायोग्यत्रिंशत्प्रकृतिबन्धक उत्तरक्षणे सप्तमूलप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोग्युत्कृष्टप्रदेशबन्धको नाम्नश्च ता एव प्रकृतीर्बध्नाति स तदुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी भवति । एवं य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकस्तदर्होत्कृष्टयोगी नाम्नश्च देवयोग्यत्रिंशत्प्रकृतिबन्धकोऽनन्तरक्षणेऽपि सप्तमगुणस्थान आयुर्बन्धप्रारम्भाभावात् सप्तानामेव मूलप्रकृतीनां बन्धकस्तदर्हजघन्ययोगं गतो नाम्नश्च जिननामयुक्तदेवप्रायोग्यैकत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नँस्तदुत्तरक्षणेऽपि सर्वथा तथैव बन्धं विरचयन्नाऽऽहारकद्विकस्योत्कृष्टावस्थानबन्धस्य स्वामी ज्ञेयः । एवं तदुत्कृष्टहानिबन्धविधाता तु पूर्वोक्ततदवस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्ती स एव बोध्यः ।

आतपनामकर्मणस्तु यः प्रथमक्षणेऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे स्थितो नाम्नश्चै-केन्द्रियप्रायोग्यषड्विंशतिप्रकृतिबन्धको द्वितीयक्षणे च सप्तमूलप्रकृतिबन्धकर्ता उत्कृष्टयोगं गत उत्कृष्टप्रदेशबन्धको नाम्नश्च ता एव प्रकृतीर्बध्नाति स तदुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी विज्ञेयः। यश्च पूर्वक्षण उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता मूलसप्तप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगी नाम्नश्चैकेन्द्रिययोग्यषड्विंशति-प्रकृतीर्बध्नन्नुत्तरक्षणे मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तो नाम्नश्च ता एव प्रकृतीर्बध्नँस्त-दनन्तरक्षणेऽपि तत्समानमेव बन्धं कुर्वन्नवतिष्ठते तदा स आतपनाम्न उत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी निगद्यते। तदुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता कालं कृत्वा बादरपर्याप्तैकेन्द्रिय-युत्पद्य प्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगं गतो नाम्नश्च षड्विंशतिप्रकृतीर्बध्नन्जीवो बोध्यः। उद्योत-नाम्नोऽपि प्रकृतोत्कृष्टवृद्ध्यादित्रिविधबन्धस्वामिन आतपनामतुल्या एव; किन्त्वत्रोत्कृष्टहानिबन्ध-स्वामी नाम्नस्त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धकः कथनीय इति विशेषः।

जिननाम्नश्च यः प्रथमक्षणेऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोगवान्देवप्रायोग्यैकोनत्रिंश-न्नामप्रकृतिबन्धकश्चाऽन्यक्षणे सप्तमूलप्रकृतिबन्धं कुर्वन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्त उत्कृष्टप्रदेशबन्धको नाम्नश्च ता एव प्रकृतीर्बध्नाति स तदुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी ज्ञेयः। यश्च प्रथमक्षणे सप्तमूलप्रकृति-बन्धकर्ता तदर्होत्कृष्टयोगं प्राप्तो नाम्नश्चैकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन्नुत्तरक्षणे चाऽष्टमूलप्रकृतिबन्धं विद-धत्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तो नाम्नश्च ता एव प्रकृतीर्बध्नँस्तदनन्तरक्षणे पुनस्तावन्तमेव बन्धं विरचयति स जिननाम्न उत्कृष्टावस्थितबन्धस्वामी भवितुमर्हति। एवं तदुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु य उत्कृष्ट-प्रदेशं बध्नँस्तदनन्तरक्षणे व्युपरतः सन्देवभवे नरकभवे वोत्पद्य प्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे वर्त-मानो नाम्नश्च जिननामसहिता मनुष्यप्रायोग्यास्त्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नाति स ज्ञेयः।

इत्थमोघवक्तव्यतायां विस्तरेणोत्कृष्टवृद्धि-हान्यवस्थानबन्धस्वामिनो निरूपिताः॥२२३-२२४॥

एवमोघत उत्कृष्टवृद्ध्यादीनां स्वामिनो विस्तरेण प्रतिपाद्याऽधुनाऽऽदेशतः=मार्गणास्थानेषु तत्तत्प्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिहान्यवस्थानस्वामिनः प्रतिपिपादयिषुराह तत्करणगाथाम्—

सव्वह जेट्ठपएसं बंधइ जो स उ तदरिहलहुजोगा।
बहुविहपयडीबंधा जहसंभवमागओ गुरुं वड्ढिं॥२२५॥

(प्रे०) '**सव्वह**' इत्यादि, सर्वत्र=सर्वमार्गणासु, स्वबध्यमानप्रकृतीनां '**गुरुं वड्ढिं**' ति उत्कृष्टवृद्धिबन्धं कः करोतीत्याह–'**जेट्ठ०**' इत्यादि, अत्राऽक्षरार्थः सुगमः। भावार्थस्त्वयम्–पूर्व-समये उत्कृष्टयोगस्थानगमनयोग्यजघन्ययोगस्थानस्थितस्तत्र यथासम्भवमधिकप्रकृतीर्बध्नँस्तदनन्तर-समयेऽल्पप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगस्थानमागत उत्कृष्टप्रदेशं बध्नँस्तदुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्य स्वामी निग-द्यत इति संक्षेपाऽर्थः। विस्तरतः प्रतिमार्गणाभेदेषु तत्तत्प्रकृतीनां वृद्धिबन्धस्वामिनोऽग्रे वक्ष्यामः।
॥२२५॥

अधुना तत्रैवोत्कृष्टावस्थानस्वामिदर्शकं करणमाचष्टे—

बंधइ जेट्ठपएसं जो खलु जहसंभवं स परिभट्ठो ।
बहुमूलपयडितदरिहलहुजोगे गुरुमवट्ठाणं ॥३३६॥

(प्रे०) 'बंधइ' इत्यादि, 'सव्वह' इति पदं पूर्वगाथातोऽत्राऽनुवर्तते, ततश्च सर्वमार्गणास्थानेषु स्वयोग्यप्रकृतीनां 'गुरुमवट्ठाणं' ति ज्येष्ठमवस्थानवन्धं कः करोतीत्याह—'बंधइ जेट्ठपएसं जो खलु जहसंभवं स परिभट्ठो बहुमूलपयडितदरिहलहुजोगे' त्ति यो जीवः प्रथमसमये विवक्षितप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशवन्धं विरचयन्द्वितीयसमय उत्कृष्टयोगान्निपत्य तद्योग्यजघन्ययोगस्थानमवाप्तस्तत्र यथासम्भवमधिकप्रकृतीर्वध्नँस्तदनन्तरसमये च तावति योगे वर्तमानः तावतीः प्रकृतीर्वध्नाति, अर्थाद् द्वितीयसमयबद्धदलिकतुल्यदलिकं तुल्यप्रकृतीश्च तृतीयसमयेऽपि बध्नाति स तासामुत्कृष्टावस्थानवन्धस्य स्वामी भवितुमर्हतीति । तत्स्वामिनो विस्तरतस्त्वग्रे वक्ष्यामः ।

अथ तत्रैवोत्कृष्टहानेः स्वामिनं दर्शयितुमाह तत्करणम्—तत्र हानिर्द्विप्रकारा सम्भवति, एका स्वस्थानहानिः, अपरा च परस्थानहानिः । यस्मिन् भवे जीव उत्कृष्टप्रदेशवन्धं विदधाति तस्मिन्नेव भवे योत्कृष्टहानिः सम्भवति सा स्वस्थानहानिरुच्यते । तथा यस्मिन्भवे उत्कृष्टप्रदेशवन्धं जीवो विदधाति, ततः कालं कृत्वा स भवान्तरं प्राप्य तद्भवप्रथमसमये यां हानिं विदधाति सा हानिः परस्थानहानिर्निगद्यते ॥३३६॥

तत्राऽऽदौ सार्धचतुर्गाथाभिः परस्थानहानिस्वामिनो दर्शयति मूलकारः—

जहि जाण गुरुपएसं सम्माई बंधिउं जहाजोग्गं ।
लहुजोगि सुराइभवे जाओ तहि कुणइ सिं स गुरुहाणिं॥३३७॥(गीतिः)
मग्गणपयडिउदयऽरिहलहुजोगभवम्मि बंधिउं जाओ ।
जाण गुरुपएसं सिं स चेव कुणए गुरुं हाणिं ॥३३८॥
देवविउव्वदुगाणं सम्मणरो बंधिउं गुरुपएसं ।
उप्पज्जेइ युगलिए स चेव सिं कुणइ गुरुहाणिं ॥३३९॥
णामाण जाण बंधिअ जेट्ठपएसं जहण्णजोगिभवे ।
तब्बंधठाणजोगे उप्पज्जइ बंधए ताओ ॥३४०॥
जहसंभवमहियरं बंधंतो सिं स कुणइ गुरुहाणिं ।

(प्रे०) 'जहि' इत्यादि, यत्र यासु मार्गणासु 'जाण' त्ति यासां प्रकृतीनां 'सम्माइ' त्ति सम्यग्दृष्टि-देशविरतादिजीवो 'गुरुपएसं' ति उत्कृष्टप्रदेशं 'बंधिउं' ति बद्ध्वा 'जहा-जोग्गं' इत्यादि, यथायोग्यं सुरादिभवे जातो जघन्ययोगी तत्र सुरादिभवप्रथमसमये 'सिं' तासां प्रकृतीनां स ज्येष्ठहानिं करोति ।

तदुदाहरणं त्वत्र दर्श्यते, तथा च ज्ञानावरणादिचतुर्दशप्रकृतयः, यशःकीर्तिनाम, उच्चैर्गोत्रं, सातवेदनीयञ्चेत्यासां प्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियसामान्यादिमार्गणास्थानेषु जीवः श्रेणौ दशमगुण-स्थानकं प्राप्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं विरच्य ततः कालं कृत्वा देवभव उत्पद्य तत्प्रथमसमये तद्योग्य-जघन्यप्रदेशबन्धं विरचयति, तदा स उत्कृष्टहानेः स्वामी भवतीति ॥

अथ सम्यग्दृष्ट्यादिवर्जानां प्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामित्वस्य दर्शनायाऽऽह–'मग्गण०' इत्यादि, अत्र चैवमन्वयः-यासां गुरुप्रदेशं बद्ध्वा मार्गणाप्रकृत्युदयार्हलघुयोगभवे जातः, स एव तासां गुरुं हानिं करोति । अर्थस्त्वयम्–यः कश्चिद् यासां विवक्षितप्रकृतीनां प्रायोग्ये विवक्षितमार्गणायाः प्रायोग्ये चोत्कृष्टयोगे वर्त्तमानो यथार्हमल्पतराः प्रकृतीर्बध्नँस्तासामुत्कृष्टं प्रदेशबन्धं कृत्वा प्रस्तुतमार्गणायां तासामेव विवक्षितप्रकृतीनां बन्धश्चाजहद् भवान्तरं प्राप्तः सन् भवप्रथमसमये मार्गणाप्रायोग्यं तत्प्रकृ-तिप्रायोग्यं वा जघन्ययोगस्थानं गतस्तासां प्रकृतीनां तत्प्रायोग्यजघन्यप्रदेशबन्धं करोति, स प्रदेश-बन्धसत्कामुत्कृष्टां हानिं करोतीति भावः । यद्युत्कृष्टप्रदेशबन्धानन्तरं भवान्तरं गतस्य प्रस्तुतमार्गणा-ऽवतिष्ठते, प्राग्बद्धप्रकृतीनां बन्धश्च प्रवर्तते तर्हि तासां प्रकृतीनामुत्कृष्टहानिः परस्थाने प्राप्यते, अन्यथा स्वस्थानेऽवस्थानस्य प्राक्क्षणे साऽऽयातीति हृदयम् । उदाहरणञ्चैवम्–कश्चित् त्रसौघमार्गणा-वर्तिपर्याप्तसंज्ञिजन्तुर्मार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टयोगस्थानं गतोऽपर्याप्तद्वीन्द्रियत्वेनोत्पित्सुः स्वभवचरम-समयेऽपर्याप्तद्वीन्द्रियप्रायोग्यपञ्चविंशतिप्रकृतीर्बध्नन् द्वीन्द्रियजातिनाम्न उत्कृष्टप्रदेशबन्धको भवति, बन्धविषयभूतानां प्रकृतीनां स्तोकत्वाद् योगस्य चोत्कृष्टत्वात् । ततः कालं कृत्वाऽपर्याप्तद्वीन्द्रिय-तयोत्पन्नः सन् भवप्रथमसमयेऽधिकृतमार्गणायां वर्तमान एव तत्प्रकृतिबन्धप्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानः पर्याप्तद्वीन्द्रियप्रायोग्याणां त्रिंशतः प्रकृतीनां बन्धं करोति स द्वीन्द्रियजात्यादीनां प्रदेश-बन्धसत्काया उत्कृष्टहानेः स्वामी भवति, बध्यमानप्रकृतीनां प्रभूतत्वात् योगस्य चाल्पत्वात् । पर्याप्तत्रसकायमार्गणायां तु द्वीन्द्रियजात्यादीनां प्रदेशबन्धसत्कोत्कृष्टहानिः स्वस्थाने लभ्यते । अथ तत्प्रकृतिबन्धप्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमान इति पदस्य सार्थक्यं प्रदर्शयामः- निरुक्तमार्गणायां त्रीन्द्रियजातिप्रदेशबन्धसत्कोत्कृष्टहानेः स्वामित्वं तत्प्रकृतिबन्धप्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानस्य भवति, तद्यथा- स एव संज्ञी उत्कृष्टप्रदेशबन्धं कृत्वाऽपर्याप्तत्रीन्द्रियत्वेनोत्पन्नः सन् तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानस्त्रीन्द्रियजातिनाम्नः प्रदेशबन्धसत्कोत्कृष्टहानेः स्वामी भवितुमर्हति । अथ भवान्तरं गत-स्य मार्गणा अवतिष्ठते, इति पदस्य सार्थक्यं दर्श्यते-पर्याप्तत्रसमार्गणायां तस्यैव संज्ञिनो द्वीन्द्रि-

यजातिसत्कोत्कृष्टहानिः स्वस्थाने लभ्यते भवान्तरं गतस्य तस्यापर्याप्तभावापन्नस्य प्रस्तुतमार्गणाऽपगमात् । स्वस्थाने चैवम्–मार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टयोगस्थाने वर्तमानोऽपर्याप्तद्वीन्द्रियप्रायोग्याणां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां बन्धं करोति, ततश्चोत्कृष्टयोगस्थानकात्प्रतिपत्य तत्प्रायोग्ये जघन्ययोगस्थाने संक्रान्तः सन्नाऽऽयुःसहितापर्याप्तद्वीन्द्रियप्रायोग्याः पञ्चविंशतिप्रकृतीर्बध्नाति, एवं स विवक्षितभवगत एवोत्कृष्टहानेः स्वामी भवति ।

यद्यपि भवान्तरं गतस्यापर्याप्तावस्थायां स्वल्पयोगसद्भावेनाल्पतरप्रदेशबन्धः सम्भवति तथाऽपि तत्सत्का हानिः प्रस्तुतपर्याप्तत्रसमार्गणायां न घटते । यतः सम्यक्त्वादिरहितो जन्तुर्भवचरमान्तर्मुहूर्ते यद्गत्यादिप्रायोग्यप्रकृतीनां बन्धं करोति, कालं कृत्वा तद्गत्यादिष्वेव स उत्पद्यते । एवं प्रकृतेऽपर्याप्तभावासादनेन प्रस्तुतमार्गणाऽपगमात् स्वस्थानहानिर्दर्शिता ।

अथ '**देवविउव्व**' इत्यादिना देवद्विक-वैक्रियद्विकयोरुत्कृष्टहानेः स्वामिनः कासुचिन्मार्गणासु विशेषतो वक्ति–'**देवविउव्वदुगाणं**' ति अत्र प्राकृतत्वाद्बहुवचनान्तप्रयोगः, द्विकपदस्य पूर्वत्राऽप्यन्वयाद्देवगति-देवानुपूर्वीरूपं देवद्विकम् , वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकञ्च, तयोरुत्कृष्टहानिबन्धविधाता क इत्याह–'**सम्मणरो०**' इत्यादि, तस्य चाऽयमर्थः-उक्तदेव-वैक्रियद्विकयोर्यन्मार्गणास्वविरतसम्यग्दृष्टिजीवः स्वामी भवेत् । स च कालं कृत्वा यदि युगलिकयुत्पद्येत, तर्हि स तन्मार्गणायामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं विधाय युगलिकभवप्रथमसमये तदर्हजघन्यप्रदेशबन्धं विरचयन्नुत्कृष्टहानेः स्वामी भवितुमर्हति । '**णामाण**' इत्यादि, अथ नामप्रकृतीनामुत्कृष्टहानिबन्धस्य स्वामिनो दर्शयति,- नामप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं विधाय '**जहण्णजोगिभवे तब्बंधठाणजोगे उप्पज्जइ बंधए ताओ**' त्ति तत्प्रकृतेर्बन्धस्थानप्रायोग्ये जघन्ययोगयुक्ते भवे यदोत्पद्यते, तत्र च '**जहसंभव०**' इत्यादि, यथासम्भवमधिकतरप्रकृतिबन्धको भवति तदा स तासामुत्कृष्टहानेर्बन्धकर्ता भवितुमर्हति, तद्यथा–पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणावर्ती कश्चिज्जीवः पञ्चेन्द्रियजातेरुत्कृष्टप्रदेशबन्धं कृत्वा यद्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रिये तत्प्रायोग्यजघन्ययोग उत्पद्यते, तर्हि स तत्र नाम्न उद्योतसहितत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन्पञ्चेन्द्रियजातेर्बन्धं विरचयन् तदुत्कृष्टहानेर्बन्धको भवति । इति परस्थानहानिः । ॥३३६–३४०॥

अधुना यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धानन्तरं तद्बन्धकैः कालं कृत्वा तत्तत्प्रकृतयो न बध्यन्तेऽथवा कालं कृत्वा तेषामन्यस्मिन्भवे यदि सैव मार्गणा न तिष्ठेत् , अर्थान्मार्गणापरावृत्तिर्भवेत्तदा तासु मार्गणासु वर्तमानभव एव तासामुत्कृष्टहानेः स्वामिनः सम्भवन्ति । ते कथम्भूताः स्वामितया प्राप्यन्ते ? इत्याशङ्कापनोदार्थमाह स्वस्थानहानेः प्ररूपणं '**सव्वह**' इत्यादि गाथार्धेन—

सव्वह सेसाण कुणइ जेट्ठअवट्ठाणपुव्वखणे ॥३४१॥

(प्रे०) 'सव्वह' इत्यादि, सर्वत्र-सर्वमार्गणास्थानेषु शेषसर्वप्रकृतीनां, किम् ? अत्र 'गुरुहाणिं' इति पदं मध्यमणिन्यायेन पूर्वार्धस्थितमत्राऽपि सम्बन्धनीयम् । ततश्च तासामुत्कृष्टहानिबन्धं 'जेट्ठअवट्ठाणपुव्वखणे' त्ति ये जीवा उत्कृष्टावस्थानस्य स्वामिनः सन्ति, त एव उत्कृष्टावस्थानस्य पूर्वक्षणे कुर्वन्ति । उत्कृष्टावस्थानपूर्वक्षणस्थास्ते जीवा उत्कृष्टहानेः स्वामिनो व्यपदिश्यन्त इति । यतः संयमादिमार्गणस्था जीवा यदा कालं कुर्वन्ति तदा तत्सहैव संयमादिमार्गणा अपि तेषां नश्यन्ति, मार्गणान्तरं ते प्राप्नुवन्ति, अतस्तादृग्मार्गणासूत्कृष्टहानिबन्धस्तस्मिन्नेव भव उत्कृष्टावस्थानपूर्वक्षणे भवितुमर्हति । एषा च हानिः स्वस्थानहानिर्निगद्यत इति ।

इत्थमुत्कृष्टवृद्धि-हान्य-वस्थानस्वामिदर्शककरणगाथानां सामान्याऽर्थ उक्तः । अथ विशेषेण सर्वतत्तद्मार्गणास्थानेष्वायुर्वर्जसर्वतत्तत्प्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धि-हान्यवस्थानस्वामिनो दर्श्यन्ते—

तद्यथा—सर्वनरकमार्गणाभेदेषु सर्वदेवमार्गणाभेदेषु वैक्रियकाययोगमार्गणायां च सर्वासां बध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्य स्वामी यः पूर्वसमयेऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमान उत्तरसमये तु सप्तमूलप्रकृतिबन्धकोत्कृष्टयोगी तत्तत्प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धको भवति स ज्ञेयः । उत्कृष्टहान्यवस्थानयोः स्वामिनौ त्वित्थम्–पूर्वोक्तोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वाम्यनन्तरसमयेऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे स्थित उत्कृष्टहानेः स्वामी भवति । उत्कृष्टहान्यनन्तरसमयेऽपि तावतः प्रदेशान्बध्यमान उत्कृष्टावस्थानस्य स्वामी विज्ञेयः ।

नवरं सप्तमनरकमार्गणायां मनुष्यद्विको-च्चैर्गोत्रयोस्त्रिविधबन्धस्वामी पूर्वक्षणयुत्तरक्षणे च सप्तविधबन्धक एव ज्ञेयः । प्रकृतित्रयस्य बन्धकः प्रस्तुतमार्गणायां सम्यग्दृष्टिः, सम्यक्त्वावस्थायां च तन्मार्गणास्थितैरायुर्नैव बध्यत इति कृत्वा ।

तिर्यग्गोघमार्गणायां सर्वबध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी यः पूर्वसमयेऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमान उत्तरसमये च सप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगी तत्तत्प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धको भवति स ज्ञेयः । उत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी त्वत्र तत्तत्प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकस्तदनन्तरसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानोऽष्टविधमूलप्रकृतिबन्धकश्च तदनन्तरसमयेऽपि तावन्तमेव प्रदेशबन्धं करोति स ज्ञेयः । प्रस्तुतमार्गणायां नरकद्विक-देवद्विक-मनुष्यद्विक-वैक्रियद्विक-प्रथमसंस्थान-खगतिद्विक-सुभगत्रिक-दुःस्वरोच्चैर्गोत्ररूपाणां षोडशाऽघातिप्रकृतीनां तथा दर्शनावरणषट्कं, अनन्तानुबन्धिवर्जितद्वादशकषायाः, हास्यषट्कम् , पुरुषवेदश्चेति पञ्चविंशतिघातिप्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामी तु य उत्कृष्टावस्थानस्य पूर्वसमये वर्तमानो जीवः स एव बोध्यः । स्वस्थाने एव तदुत्कृष्टहानेः प्राप्यमाणत्वात् । अन्यथा-युक्त्या विचार्यमाणे पञ्चविंशतिघातिप्रकृतीनां हानिबन्धस्वामी त्वोघवद् कथनीयः ।

ज्ञानावरणपञ्चकम् , स्त्यानर्द्धित्रिकम् , अनन्तानुबन्धिचतुष्कम् , मिथ्यात्वम् , नपुंसकवेदः, नीचैर्गोत्रम् , वेदनीयद्विकम् , अन्तरायपञ्चकम् , तिर्यग्द्विकम् , एकेन्द्रियजातिः, औदारिकशरीरं, तैजस-कार्मण-शरीरे, हुण्डकसंस्थानं, वर्णचतुष्कम् , अगुरुलघूपघात-निर्माण-स्थावर-सूक्ष्मा-ऽपर्याप्त-साधारणा-ऽस्थिरा-ऽशुभ-दुर्भगा-ऽनादेया-ऽयशःकीर्तिनामानि चेति सर्वसङ्ख्यया पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी कालं कृत्वा सूक्ष्मनिगोदाऽपर्याप्तभवे उत्पद्य तत्र भवाद्यक्षणे यथार्हमधिकप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे स्थितो भवेत् स तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी विज्ञेयः । प्रत्येकनाम्न एवमेव केवलं सूक्ष्मापर्याप्तप्रत्येकजीवभेदे़त्पादो वक्तव्यः । एवं पर्याप्तस्थिर-शुभ-पराघातो-च्छ्वासनामानीति पञ्चप्रकृतीनां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी कालं कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तभव उत्पद्य भवप्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे स्थितो यथार्हमधिकप्रकृतीनां बन्धकस्तदुत्कृष्टहानेर्विधाता भवति । बादरनामकर्मणस्तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वाऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रिययुत्पद्य भवप्रथमसमयेऽधिकप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो भवेत् स तदुत्कृष्टहानेः स्वामी भवितुमर्हति। आतपो-द्योत-यशःकीर्तिनाम्नां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः पर्याप्तप्रत्येकबादरैकेन्द्रिययुत्पद्य तत्र प्रथमसमये तद्योग्यजघन्ययोगं प्राप्तस्तदर्हाधिकप्रकृतीर्बध्नन्तदुत्कृष्टहानेर्बन्धको भवति । एवं द्वीन्द्रियजाति-त्रसनामौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-सेवार्तसंहनननाम्नां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वाऽपर्याप्तद्वीन्द्रिये समुत्पद्य तत्र प्रथमसमये तद्योग्यजघन्ययोगे वर्तमानो नाम्नस्त्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन् तासामुत्कृष्टहानेर्बन्धकर्ता ज्ञेयः । त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नां ज्येष्ठप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वाऽपर्याप्तस्वजातावर्थात् स्वाऽपर्याप्तत्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजातिषूत्पद्यते, तदाऽऽद्यक्षणे तदर्हजघन्ययोगं प्राप्याऽधिकप्रकृतिबन्धकस्तदुत्कृष्टहानेः स्वामी भवति । आद्यपञ्चसंहनन-मध्यमचतुःसंस्थान-स्त्रीवेदप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा पर्याप्ताऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियतयोत्पद्य तत्र प्रथमसमये तद्योग्यजघन्ययोगं प्राप्तस्तासामुत्कृष्टहानिबन्धविधाता भवतीति ।

अत्रेदमपि बोध्यम् ,–उपर्युक्तस्थानेषु दर्शनावरण-मोहनीयनामकर्मणामुत्तरप्रकृतिसत्कोत्कृष्टहानेः स्वामिन उक्ताः, तत्र तासां बन्धकाः कालं कृत्वा यदा यथायोग्यं तत्तद्भव उत्पद्यन्ते तदा तद्भवप्रथमसमये तैर्यथासंभवं सजातीयाऽधिकोत्तरप्रकृतिबन्धकैरपि भवितव्यम् । अन्यथा ते तासामुत्कृष्टहानेः स्वामिनो भवितुमनर्हा एवेत्यपि ज्ञेयम् ।

अथ पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघः पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमती चेति तिसृषु पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणासूत्कृष्टवृद्धि-हान्यवस्थानबन्धानां स्वामिनः प्ररूप्यन्ते––

तत्र सर्वबध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामिन उत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामिनश्च तिर्यगोघमार्गणातुल्या अभिधेयाः, अर्थात् तत्तत्प्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामिन उत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामिनश्च तिर्यगोघमार्गणायां यथा प्रतिपादितास्तथैवाऽत्राऽपि द्रष्टव्याः । उत्कृष्टहानिबन्धस्य

स्वामिनस्त्वत्रोक्तपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्-तिरश्चीमार्गणाद्विके इत्थमवसेयाः, तद्यथा-तिर्यगोघमार्गणायामुक्तानां नरकद्विकाद्येकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां तथा तिर्यग्द्विक-जातिपञ्चकौ-दारिक-तैजस-कार्मणशरीर-हुण्डक-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघू-पघात-निर्माणा--ऽऽतपो-द्योत-पराघातो-च्छ्वास-बादरत्रिक-स्थावर-सूक्ष्मा-ऽपर्याप्त-साधारण दुःस्वरवर्जाऽस्थिरपञ्चक-त्रसौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-सेवार्त्त--स्थिर-शुभ--यशःकीर्तिप्रकृतीनामिति सर्वसङ्ख्यया एकाशीतिप्रकृतीनामुत्कृष्टावस्थानपूर्वसमयवर्तिजीवस्तदुत्कृष्टहानिबन्धस्य स्वामितया बोध्यः । तथा ज्ञानावरणपञ्चका-ऽन्तरायपञ्चक-स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-स्त्री-नपुंसकवेद-मिथ्यात्व-सातासातवेदनीय-नीचैर्गोत्र-प्रथमादिसंहननपञ्चक-मध्यमसंस्थानचतुष्क-रूपाणां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषूत्पन्नः सन् तत्र भवाद्यसमये यथार्हमधिकप्रकृतीर्बध्नन् तदर्हजघन्ययोगे स्थितस्तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी विज्ञेयः ।

नवरं तिरश्चीमार्गणायां नपुंसकवेदस्याप्युत्कृष्टहानिबन्धकस्तदवस्थानबन्धपूर्वसमयस्थो ज्ञेयः ।

पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघे तु ज्ञानावरणपञ्चकम्, स्त्यानर्द्धित्रिकम्, वेदनीयद्विकमनन्तानुबन्धिचतुष्कं, मिथ्यात्वं, नपुंसकवेदः, नीचैर्गोत्रम्, अन्तरायपञ्चकम्, पञ्चेन्द्रियजातिः, औदारिकाङ्गोपाङ्गम्, सेवार्तसंहननम्, त्रसनाम चेति षड्विंशतेः प्रकृतीनामसंज्ञ्यपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्तयोत्पन्नस्य भवप्रथमसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानस्य यथायोगमधिकतरप्रकृतिबन्धकस्योत्कृष्टहानिबन्धो भवितुमर्हति, स तासामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी भवतीत्यर्थः । तथैव स्त्रीवेदप्रथमादिसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्करूपाणां दशानामपि, नवरं पर्याप्तासंज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यक्तयोत्पन्नो वक्तव्यः । उक्तशेषबध्यमानसप्तसप्ततिप्रकृतीनामत्रावस्थानपूर्वसमयवर्तिजीवस्तदुत्कृष्टहानिबन्धस्वामितया बोध्य इति ।

अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायामपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां च सर्वासां बन्धयोग्यप्रकृतीनां वृद्धिबन्धस्वामिनोऽवस्थानबन्धस्वामिनश्च तिर्यगोघमार्गणावदेव ज्ञातव्याः । उत्कृष्टहानेः स्वामिनस्तूक्तमार्गणयोरित्थम्—नाम्नो नवबन्ध्रुवबन्धिन्योऽष्टात्रिंशत् प्रकृतयः, वेदनीयद्विकम्, नपुंसकवेदः, हास्य-रति-शोका-ऽरतिमोहनीयानि, नीचैर्गोत्रम्, पञ्चेन्द्रियजातिः औदारिकाङ्गोपाङ्गम्, सेवार्त्तसंहननं, त्रसनाम चेति सर्वसङ्ख्यया पञ्चाशत्प्रकृतीनां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मार्गणावर्तिसंज्ञिजीवः कालं कृत्वाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियतयोत्पद्य प्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो यथायोगमधिकतरप्रकृतिबन्धको भवति स एतासामुत्कृष्टहानेः स्वामी भवति ।

अत्राऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायां मनुष्यद्विकस्य य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वाऽपर्याप्तमनुष्यत्वेनोत्पद्य प्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो यथायोगमधिकतरप्रकृतिबन्धको भवति स तदुत्कृष्टहानेर्बन्धविधाता भवति ।

अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणायामुक्तशेषबन्धार्हपञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीनां तथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायामप्युक्तशेषबन्धार्हसप्तपञ्चाशत्प्रकृतीनामुत्कृष्टावस्थानबन्धपूर्वसमयवर्तिजीवा उत्कृष्टहानेः स्वामिनोऽवगन्तव्याः ।

अथ मनुष्यौघ-पर्याप्तमनुष्य-मानुषीमार्गणासु स्वबध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेरुत्कृष्टावस्थानस्य च स्वामिनः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणावज्ज्ञातव्याः । किन्त्वत्राऽपि ज्ञानादिचतुर्दशप्रकृतयः, सातवेदनीयं, सञ्ज्वलनचतुष्कं, पुरुषवेदः, उच्चैर्गोत्रम्, आहारकद्विकं, जिननाम, यशःकीर्तिनाम चेत्यासां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां वृद्ध्यवस्थानस्वामिनस्त्वोघवक्तव्यतानुसारेण द्रष्टव्याः ।

उत्कृष्टहानेः स्वामिनश्चोक्तत्रिमार्गणासु सर्वबध्यमानप्रकृतीनां स्वस्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणे स्वस्थाने वक्तव्याः । नवरं मार्गणात्रयेऽपि स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्व-नपुंसकवेदासातवेदनीय-नीचैर्गोत्ररूपाणामेकादशप्रकृतीनां ज्येष्ठप्रदेशबन्धस्वामी कालं कृत्वा यथासम्भवमपर्याप्तमनुष्यादिषूत्पन्नः तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे च वर्तमान उत्कृष्टहानेः स्वामी विज्ञेयः । तथा मनुष्यौघपर्याप्तमनुष्यभेदद्वये हास्यषट्का-ऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-देवद्विक-वैक्रियद्विक-समचतुरस्रसंस्थान-सुखगति-सुभगत्रिकरूपाणामेकोनविंशतिप्रकृतीनां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको कालं कृत्वा युगलिकमध्ये समुत्पद्य तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानः प्रदेशबन्धस्य ज्येष्ठहानेः स्वामी भवति । तथा मार्गणात्रये आद्यसंहननपञ्चकमध्यमसंस्थानचतुष्करूपाणां नवप्रकृतीनां स्त्रीवेदस्य च यो ज्येष्ठप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा पर्याप्तमनुष्य-मानुषीत्वेनोत्पन्नः तत्प्रयोग्यजघन्ययोगे वर्तमानः तिर्यग्गतिप्रायोग्याः त्रिंशतं बध्नाति स ज्येष्ठहानेः स्वामी भवति ।

तथा मनुष्यगत्योघमार्गणायां मनुष्यद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति-सेवार्त्तौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-त्रसनामरूपाणां षण्णामुत्कृष्टहानेः स्वामी स ज्ञेयः, य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वाऽपर्याप्तमनुष्यभव उत्पद्य जघन्ययोगे वर्तमानोऽधिकप्रकृतिबन्धको भवति ।

अपर्याप्तमनुष्यगतिमार्गणायां तु सर्वासां प्रकृतीनां त्रिविधबन्धस्वामिनोऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणातुल्या अभिधातव्याः । नवरं तत्र यासां प्रकृतीनां स्वामितयाऽसंज्ञ्यपर्याप्तपञ्चेन्द्रियभवप्रथमसमयस्थस्तासां प्रकृतीनां तथा मनुष्यद्विकस्याऽपर्याप्तमनुष्यभवप्रथमसमयस्थो ज्ञेयः ।

अथ पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणयोः सर्वासां बध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धि-हान्यवस्थानबन्धानां स्वामिन ओघवदेव बोद्धव्याः । किन्त्वत्राऽनन्तानुबन्धिचतुष्कं, स्त्यानर्द्धित्रिकं, मिथ्यात्वं, नीचैर्गोत्रम्, नपुंसकवेदा-ऽसातवेदनीये, औदारिकाङ्गोपाङ्गम्, त्रसनाम, सेवार्तसंहननञ्चेति चतुर्दशप्रकृतीनां ज्येष्ठहानेः स्वामी स ज्ञेयः, य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वाऽसंज्ञ्यपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतयोत्पद्यमानः, भवप्रथमसमये यथायोगमधिकतरप्रकृतिबन्धको जघन्ययोगे वर्तमानो भवति । नवरं पर्याप्तपञ्चेन्द्रिये मिथ्यात्वाद्यष्टकनीचैर्गोत्रनपुंसकवेदासातवेदनीयप्रकृतीनामुत्कृष्ट-

हानौ पर्याप्तासंज्ञिपञ्चेन्द्रियभवप्रथमसमयस्थो वक्तव्यस्तथा मनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्गत्रससेवार्तनाम्नामुत्कृष्टहानेः स्वाम्यवस्थानपूर्वक्षणस्थः कथनीयः । तथा तस्मिन्नेव मार्गणाद्वये तिर्यग्द्विक-जातिचतुष्कौ-दारिक-तैजस-कार्मणशरीर- हुण्डक-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघू-पघात-पराघातोच्छ्वास--निर्माणा-ऽऽतपो--द्योत--स्थावरचतुष्क--बादरत्रिक-स्थिरा-ऽस्थिर--शुभा--ऽशुभ-दुर्भगा-ऽनादेया-ऽयशःकीर्तिनामप्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामिनः स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्तिनो ज्ञेयाः ।

तथैव त्रसौघमार्गणायां पञ्चेन्द्रियौघमार्गणावत् , त्रसपर्याप्तमार्गणायां च पर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावत्प्रकृतोत्कृष्टवृद्धि- हान्य–वस्थानबन्धस्वामिनश्चिन्तनीयाः । नवरं मिथ्यात्वा–ऽनन्तानुबन्धिचतुष्क-स्त्यानर्द्धित्रिका-ऽसातवेदनीय-नीचैर्गोत्र-नपुंसकवेदप्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामी त्रसौघमार्गणायामपर्याप्तद्वीन्द्रियतयोत्पद्यमानः, पर्याप्तत्रसमार्गणायां पर्याप्तद्वीन्द्रियतयोत्पद्यमानो भवप्रथमसमयस्थो ज्ञातव्यः । तथा त्रसौघमार्गणायां तु द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्ग-सेवार्तसंहनन-त्रसनामरूपाणां प्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामिन ओघवद् विज्ञेया इति विशेषः ।

ननु त्रसपर्याप्तमार्गणायामपि द्वीन्द्रियादिजात्यादीनामुत्कृष्टहानेः स्वामी त्रसौघमार्गणावत्पृथक कथं नोच्यते ? तत्तज्जात्यादिषूत्पन्नेऽपि मार्गणाया अपरावर्तनादिति चेत् , सत्यम् , किन्त्वत्र द्वीन्द्रियादिजात्यादीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकोऽपर्याप्तद्वीन्द्रियादिप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नन्नेव यदि स भवचरमसमयेऽपि ता एव बध्नाति तदाऽपर्याप्तेष्वेव तस्योत्पादेन मार्गणापरावर्तनाद्धानेः स्वामी स्वस्थानस्थ एवेति कृत्वा पृथग् न कथितः ।

अथाऽपर्याप्तत्रसमार्गणायामेते त्रिविधबन्धस्वामिनोऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणावद् द्रष्टव्याः । किन्तु द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजात्यौदारिकाङ्गोपाङ्ग--सेवार्त--त्रसनामप्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामिनोऽत्रौघवद् दर्शनीया इति विशेषः ।

ओघाऽपर्याप्त-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियमार्गणाभेदेषु बध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिहान्यवस्थानस्वामिनोऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणावद् बोद्धव्याः । नवरं पञ्चेन्द्रियजातिस्थाने स्वद्वीन्द्रियादिजातिरत्र कथनीया । तथा पञ्चेन्द्रियजातिप्रकृतेश्चोत्कृष्टहानिं स्वज्येष्ठावस्थानपूर्वसमय एव करोति । तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियसामान्यमार्गणायां दुःस्वरकुखगतिनाम्नोर्ज्येष्ठप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा पर्याप्तद्वीन्द्रियादित्वेनोत्पन्नस्तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानो ज्येष्ठहानिबन्धकतया बोध्य इति विशेषः ।

एवं पर्याप्तद्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियमार्गणास्वपि तथैव द्वीन्द्रियाद्योघवत् त्रिविधस्वामिनः कथनीयाः । नवरं स्व-स्वजातेः, तथा त्रस-सेवार्तसंहननौ-दारिकाङ्गोपाङ्गनामकर्मणामुत्कृष्टहानेः स्वामी स्वज्येष्ठा-ऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणस्थ एव बोध्यः ।

एकेन्द्रियौघमार्गणायामुत्कृष्टवृद्ध्यवस्थानबन्धस्वामिनोऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणासमाना एव विज्ञेयाः ।

उत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनस्त्वत्रैकेन्द्रियौघयित्थम्—

सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयस्तथा साता-ऽसात-नपुंसकवेद-हास्य-रति-शोका-ऽरति-नीचैर्गोत्र-तिर्यग्द्विकै- केन्द्रियजात्यौदारिकशरीर-हुंडकसंस्थान--स्थावरचतुष्का-ऽस्थिरा--ऽशुभ-दुर्भगा-ऽनादेया-ऽयशःकीर्तिनामानीति सर्वसङ्ख्ययैकोनसप्ततिप्रकृतीनां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता कालं कृत्वा सूक्ष्मा-ऽपर्याप्तेषूत्पद्य भवप्रथमसमये यथायोगमधिकप्रकृतिबन्धको जघन्ययोगे च वर्तमानो भवति स तासामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी ज्ञेयः । एवमत्र प्रत्येकनामकर्मण उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तिर्यग्द्विक-वज्ज्ञेयः । नवरं सूक्ष्माऽपर्याप्तपृथ्व्यादिषूत्पन्न एवाऽत्र ग्राह्य इति विशेषः । पराघातो-च्छ्वास-स्थिर-शुभ-पर्याप्तनाम्नामपि पूर्ववत्किन्तु तत्सूक्ष्मपर्याप्तैकेन्द्रियेषुत्पन्नो बोध्यः ।

एवं बादरनाम्नः सोऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियेषुत्पन्नो ग्राह्यः । आतपो-द्योत-यशःकीर्तिनाम्नां च स यथासम्भवं पर्याप्तबादरपृथ्व्य- प्- वनस्पतिकायेषूत्पन्नोऽवसेयः । उक्तशेषप्रकृतीनामत्रोत्कृष्टहानि-बन्धस्वामी स्वस्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्ती स एव ज्ञातव्यः ।

एवं पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायौघभेदेष्वपि त्रिविधबन्धस्वामिन एकेन्द्रियौघमार्गणातुल्याः प्रतिपादनीयाः । नवरमत्र पृथ्व्यादिचतुर्मार्गणासु साधारणनामकर्मण उत्कृष्टहानेः स्वामी तदवस्थान-बन्धपूर्वक्षणवर्ती ज्ञेयः । तथाऽप्काय-वनस्पतिकायमार्गणयोरातपनाम्नः, तेजोवायुकायमार्गणयोश्चा-ऽऽतपो-द्योत-यशःकीर्तिनामप्रकृतीनामप्युत्कृष्टहानिबन्धस्वामी स्वस्थानेऽवस्थितबन्धपूर्वक्षणस्थ एव ज्ञेय इति विशेषः ।

एवं निगोदौघेऽपि त्रिविधबन्धस्वामिन एकेन्द्रियौघमार्गणावदेवाऽनुशीलनीयाः, नवरं प्रत्येका-ऽऽतपो-द्योत-यशःकीर्तिरूपप्रकृतिचतुष्कस्योत्कृष्टहानिबन्धस्वामी स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणव-र्त्येव ज्ञेय इति विशेषः ।

सूक्ष्मैकेन्द्रियौघेऽप्येकेन्द्रियौघवदेव त्रिविधबन्धस्वामिनो विज्ञेयाः । किन्तु बादरा-ऽऽतपो-द्योत-यशःकीर्तिनाम्नामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी स्वाऽवस्थितबन्धपूर्वक्षणस्थ एव भवतीति विशेषः ।

एवं सूक्ष्मनिगोदौघे तथा पृथ्व्यादिचतुर्णां सूक्ष्मौघभेदेष्वपि सूक्ष्मैकेन्द्रियौघवदेव सर्वं ज्ञेयम् । नवरं निगोदमार्गणायां प्रत्येकनामकर्मणस्तथा मार्गणाचतुष्के साधारणनामकर्मण उत्कृष्ट-हानेः स्वामी स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणस्थो ज्ञेयः ।

अपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणायां त्रिविधबन्धस्वामिनः सूक्ष्मैकेन्द्रियौघमार्गणासमाना अव-गन्तव्याः । नवरं पराघातो-च्छ्वास-पर्याप्त-स्थिर-शुभनाम्नां ज्येष्ठहानिबन्धस्वामी स्वाऽव-

स्थानबन्धपूर्वक्षणवर्ती बोध्यः । एवमपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्व्यादिमार्गणाचतुष्केऽपि सर्वं तथैव, नवरं साधारणनाम्न उत्कृष्टहानिबन्धविधाता स्वस्थानेऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणस्थितो विज्ञेयः ।

अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदमार्गणायां प्रकृतत्रिविधस्वामिनोऽपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणातुल्या एव किन्त्वत्र प्रत्येकनाम्न उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी स्वस्थानेऽवस्थितबन्धपूर्वक्षणस्थोऽवगन्तव्यः ।

पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणायामुत्कृष्टवृद्ध्यवस्थानबन्धस्वामिन एकेन्द्रियौघवद् द्रष्टव्याः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी त्वत्र नामवर्जध्रुवबन्धिन्यष्टात्रिंशत्प्रकृतीनां तथा वेदनीयद्विक-नपुंसकवेद-हास्य-रति-शोका-ऽरति-नीचैर्गोत्र-पर्याप्त-पराघातो-च्छ्वास-स्थिर-शुभनामप्रकृतीनां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता व्युपरतः सन्नूतनभवप्रथमसमये यथायोग्यं जघन्ययोगं प्राप्तोऽधिकप्रकृतिबन्धं विरचयति स ज्ञेयः । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनामत्रोत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनः स्वस्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्तिन एव बोध्याः ।

एवमेव पर्याप्तसूक्ष्मपृथ्व्यादिपञ्चमार्गणाभेदेषु प्रकृतत्रिविधबन्धस्वामिनः पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणातुल्या एव ज्ञेयाः ।

बादरैकेन्द्रियौघमार्गणायां त्रिविधबन्धस्वामिन एकेन्द्रियौघवद् द्रष्टव्याः । नवरमुत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनो यत्र भवप्रथमसमयस्थाः सूक्ष्माऽपर्याप्ताः कथितास्तत्र बादराऽपर्याप्ता भवप्रथमसमयस्थाः प्रकृते कथनीयाः । तथा सूक्ष्मनामकर्मण उत्कृष्टहानेः स्वामी स्वस्थान एवाऽवस्थानपूर्वक्षणस्थो वक्तव्य इत्यत्र विशेषः ।

एवं बादरपृथ्वीकायेऽपि त्रिविधबन्धस्वामिनो बादरैकेन्द्रियौघतुल्या अभिधेयाः । नवरं साधारणनाम्न उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी स्वस्थानेऽवस्थानपूर्वक्षणवर्ती वक्तव्यः । तथैव बादराऽप्काय-प्रत्येकवनस्पतिकायमार्गणयोरपि त्रिविधस्वामिनो बादरपृथ्वीकायवद् वाच्याः । नवरमातपनाम्नो ज्येष्ठहानिबन्धस्वामी स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वसमयवर्ती बोध्यः ।

एवं बादरतेजःकाय-वायुकायमार्गणयोस्त्रिविधस्वामिनो बादरैकेन्द्रियमार्गणावदेव कथनीयाः । नवरमातपो-द्योत-यशःकीर्ति-साधारणनाम्नामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनः स्व-स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वसमयस्थिता एव बोध्याः ।

एवं बादरनिगोदेऽपि सर्वं तथैव कथनीयम् । नवरं प्रत्येकाऽऽतपो द्योत-यशःकीर्तिनाम्नामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनः स्वस्थानेऽवस्थानपूर्वक्षणस्था बोध्या इति विशेषः ।

अपर्याप्तबादरैकेन्द्रियमार्गणायां त्रिविधबन्धस्वामिनो बादरैकेन्द्रियौघवज्ज्ञेयाः । नवरं पर्याप्त-स्थिर-शुभ-यशःकीर्ति-पराघातो-च्छ्वासा-ऽऽतपो-द्योतनाम्नामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनः स्वस्थानेऽवस्थानपूर्वसमयस्थाः कथनीयाः ।

एवमपर्याप्तबादरपृथ्व्यादिचतुर्षु भेदेषु तथाऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकाये सर्वमपर्याप्तबादरैकेन्द्रिय-मार्गणातुल्यमभिधेयम् । नवरं साधारणनाम्न उत्कृष्टहानेः स्वामी स्वस्थानेऽवस्थितबन्धपूर्वक्षण-स्थितो बोध्यः ।

एवमपर्याप्तबादरनिगोदमार्गणायामपि सर्वं तथैव ज्ञेयम् । नवरं प्रत्येकनाम्न उत्कृष्टहानेः स्वामी स्वस्थाने तदवस्थितबन्धपूर्वक्षणस्थो विज्ञेयः ।

पर्याप्तबादरैकेन्द्रियेऽपि पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियवत्त्रिविधबन्धस्वामिनो विज्ञेयाः । नवरमातपो-द्योत-यशःकीर्तिनाम्नामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी परस्थाने य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता मृत्युमित्वा भवान्तर उत्पद्य प्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तोऽधिकप्रकृतीर्बध्नाति स ज्ञेयः । एवं पर्याप्तबादरपृथ्वीकायेऽपि ज्ञेयम् । एवं बादरपर्याप्ताऽप्काये पर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकाये च सर्वं पूर्ववद् विज्ञेयम् । किन्तु आतपनाम्न उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी स्वस्थानेऽवस्थितपूर्वक्षणवर्ती बोध्यः ।

बादरपर्याप्ततेजोवायुकायमार्गणयोर्बादरपर्याप्तनिगोदमार्गणायां च त्रिविधबन्धस्वामिनः सर्वथा पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियमार्गणातुल्या बोध्याः ।

पञ्चमनोयोग-पञ्चवचनयोगमार्गणाभेदेष्वौदारिककाययोगमार्गणायां च सर्वबध्यमानप्रकृती-नामुत्कृष्टवृद्ध्यवस्थानयोः स्वामिन ओघवक्तव्यतानुसारेणैव वाच्याः । अत्रोत्कृष्टहानिबन्धस्वामि-नस्तु तत्तत्सर्वप्रकृतीनां स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वसमयवर्तिनो ज्ञेयाः ।

काययोगौघा-ऽचक्षुर्दर्शन-भव्या-ऽऽहारिमार्गणासु स्वबध्यमानप्रकृतीनां त्रिविधबन्धस्वामिनः सर्वथौघतुल्या एव प्रतिपादनीयाः ।

औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां च सुरद्विक-वैक्रियद्विक-जिननाम्नामुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी यो द्विचरमसमये तत्प्रायोग्यजघन्यप्रदेशबन्धकश्चरमसमये चोत्कृष्टप्रदेशबन्धको भवति स ज्ञेयः । उक्तपञ्चप्रकृतीनामत्राऽवस्थितहानिबन्धौ तु भवितुमनर्हावेव । अतस्तत्स्वामिनोऽत्राऽनुक्ताः । उक्त-शेषसर्वबध्यमानप्रकृतीनामत्रोत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी यः संज्ञी करणाऽपर्याप्तजीवो मार्गणाद्विचरमसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानो यथासम्भवमधिकप्रकृतीर्बध्नन् जघन्यप्रदेशबन्धं कृत्वा चरमसमये च मार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टयोगं प्राप्तोऽल्पप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टप्रदेशबन्धकश्च भवति स ज्ञेयः ।

एवमेतासामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी तु यो मूलसप्तविधबन्धको लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञी जीव-स्तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगं प्राप्तः तत्प्रायोग्याऽल्पप्रकृतीर्बध्नन्नुत्तरक्षणे उत्कृष्टयोगात्पतित्वा तत्प्रायोग्य-जघन्ययोगं लब्धोऽष्टमूलप्रकृतिबन्धकस्तदनन्तरक्षणेऽपि तावत एव प्रदेशान्बध्नाति स विज्ञेयः ।

एवमुत्कृष्टाऽवस्थाननिरूपणे य उत्कृष्टप्रदेशबन्धक उक्तः स कालं कृत्वा तत्प्रायोग्यगति-मुत्पद्य तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे स्थित उक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टहानिबन्धस्य स्वामी भवति तथा च तत्तत्प्रकृतीरधिकृत्योत्कृष्टहानेः स्वाम्योघवक्तव्यतायां यस्यां गतावुत्पद्य यावतीनां च प्रकृतीनां बन्धको

दर्शितः, तत्समान एवात्राऽपि तत्तत्प्रकृतिसत्कस्वाम्यनुशीलनीयः। किन्त्वत्र समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तखगति-सुभग--सुस्वरा-ऽऽदेयरूपपञ्चप्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामी पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रा-योग्यप्रकृतीर्बध्नन्कालं कृत्वाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियभवप्रथमसमये स्थितो वक्तव्य इति विशेषः। तथैव कुखगतिदुःस्वरनाम्नोः, किन्तु पर्याप्तद्वीन्द्रियेषूत्पन्नो वक्तव्यः।

वैक्रियमिश्रे कार्मणकाययोगा--ऽनाहारकयोश्च स्व-स्वबध्यमानसर्वप्रकृतीनां यः क्रमेण मार्गणाद्विचरमसमये मार्गणाप्रथमसमये च मूलसप्तविधप्रकृतिबन्धको मार्गणाप्रायोग्यजघन्ययोगी संज्ञी यथासम्भवमधिकप्रकृतिबन्धकश्चरमसमये द्वितीयसमये च मूलसप्तविधबन्धको मार्गणाप्रा-योग्योत्कृष्टयोगी यथासम्भवमल्पप्रकृतिबन्धकर्तोत्कृष्टप्रदेशबन्धको भवति, स तासामुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्य स्वामी विज्ञेयः।

उत्कृष्टहान्य-वस्थानबन्धयोरत्रोक्तमार्गणास्वसम्भवात्तत्स्वामीनामप्यसद्भावः।

आहारककाययोगमार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी यो मूलाऽष्टविधबन्धकस्त-दर्हजघन्ययोग्युत्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धकस्तद्योग्योत्कृष्टयोगं प्राप्त उत्कृष्टप्रदेशबन्धको नाम-कर्मणश्च जिननामरहिताऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नाति स ज्ञातव्यः। एवमत्रोत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धकस्तद्योग्योत्कृष्टयोगे वर्तमानो नाम्नश्च जिननामरहिताऽष्टा-विंशतिं प्रकृतीर्बध्नन्नुत्तरसमये च मूलाऽष्टविधबन्धकस्तद्योग्यजघन्ययोगमवाप्तो नाम्नश्च तावतीरेव प्रकृतीर्बध्नँस्तदनन्तरसमयेऽपि तथैव बन्धमुपरचयति स ज्ञेयः। अत्रोत्कृष्टहानेः स्वामी त्ववस्थान-बन्धपूर्वक्षणवर्ती स एवाऽवगन्तव्यः। नवरमत्राऽसातवेदनीया-ऽरति-शोकमोहनीया-ऽस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्तिनाम्नां प्रकृतत्रिविधबन्धस्वामिसत्कवक्तव्ये पूर्वसमय उत्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धक एव कथनीयस्तथा जिननाम्नः प्रस्तुतत्रिविधबन्धस्वामिनो नामकर्मण एकोनत्रिंशत्प्रकृतिबन्धका ज्ञेया इति विशेषः।

आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां तु यो मार्गणाद्विचरमसमये मूलाऽष्टविधबन्धकस्तद्योग्य-जघन्ययोगवान्चरमसमये च मूलसप्तविधबन्धकस्तद्योग्योत्कृष्टयोगं प्राप्तोऽस्थिरनामादिषट्प्रकृति-वर्जितशेषसर्वबध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी विज्ञेयः। अत्राऽस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्त्य-सात-शोकाऽरतिरूपषट्प्रकृतिष्वपि सर्वं तथैव विज्ञेयम्, किन्तु द्विचरमसमये सप्तमूलप्रकृतिबन्धकः कथ-नीयः। यतः प्रकृतमार्गणायां देवायुष एव बन्धसद्भावः, तेन सह चाऽस्थिरादिप्रकृतीनां बन्धस्या-ऽसम्भव एव।

स्त्रीवेदमार्गणायां स्वबध्यमानप्रकृतीनां वक्ष्यमाणापवादपदानि विहाय ज्येष्ठवृद्धिहान्यवस्थान-स्वामिनस्तिरश्चीमार्गणातुल्या अभिधेयाः। नवरं सुभगत्रिक-सुखगति-समचतुरस्रसंस्थानोच्चैर्गोत्र-रूपाणां षट्प्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवीतयोत्पद्य प्रथम-

समये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो भवति स ज्ञेयः । उच्चैर्गोत्रस्य मनुष्यगतावप्युत्पद्यमानो ज्येष्ठहानिबन्धकतया योग्य इति । एवं यशःकीर्तिनाम्न उत्कृष्टवृद्धेः स्वाम्यत्र यस्तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानोऽष्टमगुणस्थानकस्य षष्ठभागे जिननामसहिता देवप्रायोग्यप्रकृतीर्बध्नँस्तदनन्तरसमये त्वेकस्य यशःकीर्तिनाम्न एव बन्धं विरचयन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्नोति स ज्ञेयः । अस्योत्कृष्टावस्थानस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धक एकस्य यशःकीर्तिनाम्न एव बन्धं विरचयन्नुत्कृष्टयोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये चाऽष्टमगुणस्थानस्य षष्ठभागे देवयोग्यैकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानश्च तदनन्तरसमयेऽपि तथैव बन्धं विरचयति स ज्ञेयः । उत्कृष्टहानेः स्वामी तु तस्य स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्ती स एव बोध्यः ।

दर्शनावरणचतुष्कस्योत्कृष्टवृद्ध्यवस्थानबन्धस्वामिनः स्वयमूह्याः । तत्र यदि य उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य स्वामी स एवोत्कृष्टवृद्ध्यादिस्वामितया योग्य इत्यादिकमुत्कृष्टवृद्ध्यादिस्वामिविषय आवश्यकं, तर्हि यो जीवः प्रथमसमये दर्शनावरणषट्कस्य बन्धकस्तत्प्रायोग्यजघन्ययोग्यनन्तरसमये च दर्शनावरणचतुष्कस्य बन्धक उत्कृष्टयोगी च भवति स दर्शनावरणचतुष्कस्योत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी भवति । अन्यथा तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः सम्यग्दृष्टिजीवो मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोगवाननन्तरसमये च सप्तमूलप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्होत्कृष्टयोगं प्राप्तस्तदुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी निगद्यते । इत्थमुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वाम्यपि प्रकारद्वयेन स्वयं विचारणीयः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी त्वत्रोत्कृष्टावस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्ती ज्ञेयः । अन्यथा च यो मिथ्यादृष्टिर्दर्शनावरणनवकं बध्नँस्तद्योग्योत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वाऽसंज्ञिस्त्रीत्वेनोत्पद्य भवप्रथमसमये तत्प्रायोग्यजघन्यप्रदेशबन्धको दर्शनावरणस्योत्कृष्टहानिबन्धस्वामी कथ्यते ।

निद्राद्विकस्योत्कृष्टहानिबन्धस्वामित्वमोघोक्तप्रकारद्वयेनाऽत्राऽपि भावनीयम् । नवरं तत्र सूक्ष्मनिगोदतयोत्पद्यमानमाश्रित्य यत्रोक्तम्, तत्राऽस्मिन्स्थाने त्वसंज्ञिस्त्रीत्वेनोत्पद्यमानमाश्रित्य ज्ञेयम् ।

पुरुषवेदस्योत्कृष्टवृद्ध्यवस्थानबन्धस्वाम्योघवद् विज्ञेयः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु तस्योत्कृष्टावस्थानपूर्वक्षणवर्ती बोध्यः ।

सञ्ज्वलनचतुष्कस्योत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी षष्ठ-सप्तमगुणस्थानवर्तिजीवो तदर्हजघन्ययोगे च वर्तमानो मूलाऽष्टविधप्रकृतिबन्धं कृत्वाऽनन्तरसमये मूलसप्तप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्त उत्कृष्टप्रदेशबन्धको ज्ञातव्यः । एवं तदुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः प्रमत्तजीवो मूलसप्तप्रकृतिबन्धं कुर्वन्नुत्कृष्टयोगं च प्राप्तोऽनन्तरसमये च मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानस्तदुत्तरसमयेऽपि पुनस्तावत एव प्रदेशान्बध्नाति स ज्ञेयः । तदुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु तदवस्थानबन्धपूर्वसमयस्थितः स एव ज्ञेयः । अत्र ज्येष्टहान्यवस्थानबन्धौ प्रमत्तसंयतस्यैव भवतः । आहारकद्विकजिननाम्नोस्त्रिविधस्वामी मानुषीमार्गणावज्ज्ञेय इति ।

पुरुषवेदमार्गणायां तूत्कृष्टवृद्धि-हान्य-वस्थानबन्धस्वामिनो यथा स्त्रीवेदमार्गणायां दर्शितास्तथैव प्रतिपादनीयाः । नवरं दर्शनावरणषट्कं, हास्यषट्कं, पुरुषवेदः, अप्रत्याख्यानचतुष्कं, प्रत्याख्यानचतुष्कं, सञ्ज्वलनचतुष्कं चेति पञ्चविंशतिप्रकृतीनां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभवमुत्पद्य तत्र प्रथमसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानो भवति स तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी ज्ञेयः । यशःकीर्तिनाम्नस्तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभवमुत्पद्य तत्र प्रथमसमये जिननामयुक्तत्रिंशन्नामप्रकृतीनां बन्धं विरचयति स तदुत्कृष्टहानेः स्वामी विज्ञेयः । देवद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां ज्येष्ठहानिबन्धका ओघवद्विज्ञेयाः, नवरं जिननाम्नो नरकतयोत्पन्नो न वक्तव्य इति।

नपुंसकवेदमार्गणायां दर्शनावरणचतुष्क-पुरुषवेद-सञ्ज्वलनचतुष्क-प्रत्याख्यानचतुष्क-यशःकीर्तिरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धि-हान्य-वस्थानबन्धस्वामिनः स्त्रीवेदमार्गणातुल्या अभिधेयाः । तथा निद्राद्विक हास्यषट्का-ऽप्रत्याख्यानचतुष्काणामाहारकद्विक-कुखगति-दुःस्वर-जिननामप्रकृतीनां च त्रिविधबन्धस्वामिन ओघवदेव द्रष्टव्याः । किन्तु तत्र यासामुत्कृष्टहानिस्वामी देवभवमुत्पन्नः कथितस्तासामत्रोत्कृष्टहानेः स्वामी नरकभवमुत्पन्नो वक्तव्य इति विशेषः । शेषप्रकृतीनामत्र त्रिविधबन्धस्वामिनस्तिर्यगोघमार्गणावदभिधेयाः । नवरं मनुष्यद्विको-च्चैर्गोत्रयोरुत्कृष्टहानिर्मनुष्येषूत्पन्नस्यैव भवति ।

अपगतवेदमार्गणायां च ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणचतुष्कं, सातवेदनीयम्, उच्चैर्गोत्रं, यशःकीर्तिनाम, सञ्ज्वलनचतुष्कमन्तरायपञ्चकञ्चेत्यासां प्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्ध्यवस्थानबन्धस्वामिन ओघवदवसेयाः । उक्तैकविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनस्त्ववस्थानपूर्वक्षणस्था विज्ञेयाः, नवरमत्र सञ्ज्वलनक्रोधस्य ज्येष्ठवृद्ध्यवस्थानबन्धस्वामी यः पूर्वक्षणयुत्तरक्षणे च मोहनीयस्य चतुष्प्रकृतिबन्धको भवति स वाच्यः ।

क्रोधकषायमार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिहान्यवस्थानबन्धस्वामिन ओघवद् द्रष्टव्याः, नवरं ज्ञानावरणपञ्चकम्, अन्तरायपञ्चकं, सातवेदनीयञ्चेत्येकादशप्रकृतीनां प्रकृतत्रिविधस्वामिनस्तिर्यगोघमार्गणातुल्या विज्ञेयाः । तथा दर्शनावरणचतुष्को-च्चैर्गोत्र-यशःकीर्तिनामरूपाणां षट्प्रकृतीनां त्रिविधस्वामिनः पुरुषवेदमार्गणावदभिधेयाः । सञ्ज्वलनमान-माया लोभकषायप्रकृतीनां चोत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी यो मोहनीयपञ्चप्रकृतीनां बन्धकस्तदर्हजघन्ययोगवाँस्तदनन्तरसमये च मोहनीयसत्कचतुष्प्रकृतीनां बन्धकर्ता उत्कृष्टयोगं प्राप्त उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः स ज्ञेयः ।

उत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी तूक्तसञ्ज्वलनत्रिकस्य यो मार्गणाप्रायोग्योत्कृष्टप्रदेशबन्धको मोहनीयस्य चतुष्प्रकृतीनां बन्धक उत्कृष्टयोग्यनन्तरसमये च मोहनीयस्य पञ्चप्रकृतीनां बन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानस्तदनन्तरसमयेऽपि तावन्तमेव बन्धं प्रकुरुते स ज्ञेयः । एवमत्रोत्कृष्टहानेः स्वामी यो मार्गणार्होत्कृष्टप्रदेशबन्धको मोहनीयचतुष्प्रकृतिबन्धकर्ता मृत्युमित्वा देवभवमुत्पद्य

भवप्रथमसमये तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे च वर्तमानो मोहनीयस्य सप्तदशप्रकृतीर्बध्नाति स विज्ञेयः। अर्थादोघवक्तव्यतायां ये सञ्ज्वलनक्रोधस्योत्कृष्टवृद्धिहान्यवस्थानबन्धस्वामिनो दर्शितास्ते एवाऽत्र मान-माया लोभप्रकृतीनामपि ज्ञातव्याः।

मानकषायमार्गणायां प्रकृतत्रिविधबन्धस्वामिनः क्रोधकषायमार्गणातुल्या अभिधेयाः, नवरं सञ्ज्वलनमानस्य वृद्धिहान्यवस्थानस्वामिन ओघवद् विज्ञेयाः। सञ्ज्वलनमाया-लोभयोस्तु यो मोहनीयस्य चतस्रः प्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये च मोहनीयस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्त उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः स उत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी विज्ञेयः। एवं तयोरुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः प्रथमक्षणे मोहनीयस्य प्रकृतित्रयस्य बन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्तोऽनन्तरक्षणे च मोहनीयस्य चतस्रः प्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तस्तदनन्तरक्षणेऽपि तावत एव प्रदेशान्बध्नाति स ज्ञेयः। उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु तयोर्य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभवयुत्पन्नस्तत्र प्रथमसमये तदर्हजघन्यप्रदेशबन्धं कुरुते स विज्ञेयः। अर्थादोघवक्तव्यतायां ये सञ्ज्वलनमानस्योत्कृष्टवृद्ध्यादिस्वामितया दर्शितास्त एवात्र मायालोभयोरपि ज्ञातव्या इति।

मायाकषायमार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनां त्रिविधबन्धस्वामिनः क्रोधकषायमार्गणावदभ्यूह्याः, नवरमत्र सञ्ज्वलनमानमायाकषाययोरुत्कृष्टवृद्ध्यादित्रिविधबन्धस्वामिन ओघवदभिधेयाः। तथाऽत्र सञ्ज्वलनलोभस्योत्कृष्टवृद्धिस्वामी यो मोहनीयस्य तिस्रः प्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानोऽनन्तरक्षणे मोहनीयस्य द्वे प्रकृती बध्नन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्त उत्कृष्टप्रदेशबन्धको भवति स विज्ञेयः। एवं तस्योत्कृष्टावस्थानबन्धविधाता य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मोहनीयस्य द्वे प्रकृती बध्नन्नुत्कृष्टयोगे वर्तमानोऽनन्तरक्षणे च तिस्रो मोहनीयप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानस्तदुत्तरक्षणेऽपि तावन्तमेव बन्धं विदधाति स ज्ञेयः। एवमस्य सञ्ज्वलनलोभस्योत्कृष्टहानिस्वामी तु यो मार्गणार्होत्कृष्टप्रदेशबन्धको व्युपरतः सन्देवभवयुत्पद्य तत्प्रथम समये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो भवति स बोध्यः।

लोभकषायमार्गणायामपि त्रिविधबन्धस्वामिनः क्रोधमार्गणातुल्या भवन्ति, नवरं सञ्ज्वलनमान-माया-लोभप्रकृतीनां त्रिविधबन्धस्वामिन ओघवद् भवन्तीति विशेषः।

अथ मतिश्रुताऽवधिज्ञानमार्गणास्ववधिदर्शनमार्गणायां च त्रिविधबन्धस्वामिनो दर्श्यन्ते, तद्यथा—ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणषट्कं, सातवेदनीयम्, उच्चैर्गोत्रं, यशःकीर्तिनाम, अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-सञ्ज्वलनचतुष्काणि, पुरुषवेदः, षड् नोकषायाः, देवद्विकं, वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं, जिननामाऽन्तरायपञ्चकञ्चेति पञ्चचत्वारिंशत्प्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिहान्यवस्थानबन्धस्वामिन ओघवदवगन्तव्याः। असातवेदनीयस्य चाऽत्रोत्कृष्टवृद्धिस्वामी यो मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगवान्

सम्यग्दृष्टिर्देवो नारको वाऽनन्तरसमये च मूलसप्तप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्नोति स ज्ञेयः । एवं तदुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी यः प्रथमसमययुत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगे वर्तमानः सम्यग्दृष्टिर्देवो नारको वा द्वितीयसमये मूलाऽष्टप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्य तदनन्तरसमयेऽपि तथैव बन्धं विदधाति स ज्ञेयः । तदुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको देवो नारको वा मृत्युमित्वा मनुष्यत्वेनोत्पन्नस्तत्प्रथमसमये वर्तमानो भवति स विज्ञेयः । एवमुक्तमार्गणाचतुष्केऽस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्तिनामप्रकृतीनां यो मूलसप्तप्रकृतिबन्धकस्तद्योग्यजघन्ययोगी नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति स एव विज्ञेयः । तदुत्कृष्टाऽवस्थानबन्धस्वामी तु यः प्रथमसमय उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धको नाम्नोऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नँस्तदनन्तरसमये मूलसप्तविधबन्धं कुर्वंस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो नाम्नश्च तथैव बन्धं कुर्वंस्तदुत्तरसमयेऽपि तथैव बन्धं विधत्ते स ज्ञेयः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु तस्य य उत्कृष्टप्रदेशं बध्नन्व्युपरतः सन्देवभवयुत्पद्य तत्र प्रथमसमये वर्तमानो भवति स बोध्यः ।

मनुष्यद्विकौ-दारिकद्विक-वज्रर्षभनाराचसंहनननाम्नां प्रकृतमार्गणाचतुष्के यो मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगी नाम्न एकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन्देवोऽनन्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धको नाम्नस्ता एव प्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं विदधाति स तासामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी ज्ञेयः । यश्च पूर्वसमये सप्तमूलप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगी नाम्नश्चैकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नँस्तदुत्तरसमयेऽष्टमूलप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तते स तासामुत्कृष्टावस्थानस्य स्वामी भवति । एवं तदुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु यस्तदवस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्ती स एव बोध्यः ।

एवमुक्तमार्गणाचतुष्के पञ्चेन्द्रियजाति-तैजसकार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-सुखगति-वर्णचतुष्का-ऽगुरुलघू-पघात-पराघातो-च्छ्वास-निर्माण-त्रसनवकरूपाणां त्रयोविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी यः प्रथमसमये मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगी नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नँस्तदनन्तरसमये च मूलसप्तप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्तो नाम्नस्तथैव बध्ननुत्कृष्टप्रदेशबन्धं विदधाति स ज्ञेयः । एवं तासां ज्येष्टावस्थानबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगे वर्तमानो नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नँस्तदुत्तरसमये च मूलाऽष्टविधबन्धकस्तद्योग्यजघन्ययोगे वर्तमानो नाम्नश्च तथैव बन्धं विकुर्वंस्तदनन्तरसमयेऽपि सर्वथा तथैव बन्धं विधत्ते स बोध्यः । एवं तासामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता मृत्युमित्वा देवभवयुत्पद्य तत्प्रथमसमये वर्तमानो भवेत् स विज्ञेयः ।

मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां संयमौघमार्गणायां च बध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धि-हान्यवस्थानबन्धस्वामिनोऽवधिज्ञानमार्गणातुल्या अभिधेयाः । नवरमत्र सर्वासां प्रकृतीनामुत्कृष्टहानेः स्वामिनः स्व-स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्तिन एव वक्तव्याः । तथाऽत्राऽरति-शोका-ऽस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्त्य-

सातवेदनीयरूपाणां षट्प्रकृतीनां ज्येष्ठवृद्धेः स्वामी तत्प्रायोग्यजघन्ययोगी मूलसप्तविधबन्धक उत्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्तः स विज्ञेयः । उत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी चाऽऽसां य उत्कृष्टयोगवान्मूलसप्तविधबन्धकोऽनन्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तस्तदनन्तरसमये पुनस्तत्समानं बन्धं विदधाति स बोध्यः । एवं तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी तु स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्ती स एव बोध्यः ।

मति-श्रुताऽज्ञाना-ऽभव्य-मिथ्यात्वरूपमार्गणाचतुष्के स्वबध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धि-हान्यवस्थानबन्धस्वामिन ओघवदवगन्तव्याः । किन्त्वत्र पञ्चज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-द्वादशकषाय-भयजुगुप्साऽन्तरायपञ्चकरूपाणां त्रिंशद्ध्रुवबन्धिनीनां प्रकृतस्वामिन इत्थम्- तत्र यः प्रथमक्षणे मूलाऽष्टप्रकृतिबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोग्यनन्तरसमये मूलसप्तप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगं च प्राप्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धं विदधाति स तासामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी विज्ञेयः । यश्च मूलसप्तप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्तोऽनन्तरसमये च मूलाऽष्टप्रकृतीर्बध्नंस्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तस्तदनन्तरसमये पुनस्तत्समानं बन्धं विदधाति स तासामुत्कृष्टावस्थानस्वामी ज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मृत्युमित्वा सूक्ष्माऽपर्याप्तनिगोदतयोत्पन्नस्तत्प्रथमसमये तद्योग्यजघन्ययोगमवाप्तो विज्ञेयः ।

एवं हास्य-रति-शोका-ऽरति-पुरुषवेद-सातवेदनीयरूपाणां षट्प्रकृतीनां प्रकृतमार्गणाचतुष्कमुत्कृष्टवृद्ध्यवस्थानबन्धस्वामिनावेवमेव विज्ञेयौ । किन्तूक्तपञ्चप्रकृतीनामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा सूक्ष्माऽपर्याप्ततया तथा पुरुषवेदबन्धकोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियतयोत्पद्य तत्प्रथमसमये तद्योग्यजघन्ययोगं च प्राप्तः स ज्ञेयः ।

अत्रोच्चैर्गोत्रस्याऽप्येवमेव विज्ञेयम् । नवरं तदुत्कृष्टहानेः स्वामी देवतया पर्याप्तमनुष्यतया वोत्पन्नः सन्भवप्रथमसमये जघन्ययोगे वर्तमानो ज्ञातव्यः । अत्र देवद्विक-वैक्रियद्विक-यशःकीर्तिनामप्रकृतीनां त्रिविधस्वामिनो यथा तिर्यगोघमार्गणायां दर्शिताः, तद्वदत्राऽपि दर्शनीया इत्यपि विशेषः ।

विभङ्गज्ञानमार्गणायां सर्वबध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्ध्यवस्थानबन्धस्वामिनो मत्यज्ञानमार्गणातुल्या अभिवक्तव्याः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी त्वत्र नामध्रुवबन्धिनीवर्जाष्टात्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयः, वेदनीयद्विकं, हास्य-रत्य-रति-शोकमोहनीयानि, वेदत्रिकम् , समचतुरस्रसंस्थानं, खगतिद्विकं, सुभगत्रिकं, गोत्रद्विकं, दुःस्वरनाम चेत्येतासां प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धको व्युपरतः सन्यथायोगं देवगतौ नरकगतौ वोत्पन्नस्तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानो यथायोगमुद्योतसहितास्तिर्यक्प्रायोग्यत्रिंशतं प्रकृतीर्बध्नन्भवप्रथमसमययुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी भवितुमर्हति ।उक्तशेषप्रकृतीनामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनस्तु स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्तिन एव विज्ञेयाः । अन्यमतेन चाऽत्र विभङ्गज्ञानमार्गणायां

सर्वबध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामिनः स्वाऽवस्थानबन्धपूर्वसमयवर्तिनः सम्भवन्तीति विज्ञेयम् ।

सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोस्तु ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणचतुष्कं, सातवेदनीयम् , उच्चैर्गोत्रम् , अन्तरायपञ्चकञ्चेत्यासां षोडशप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी यो मूलाऽष्टप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये च मूलसप्तप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति स विज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टावस्थानस्य स्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तप्रकृतिबन्धकस्तदर्होत्कृष्टयोगं प्राप्तोऽनन्तरसमये च मूलाऽष्टप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानस्तदनन्तरसमयेऽपि तावन्तमेव बन्धं विदधाति स ज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी तु तदवस्थानबन्धपूर्वसमयस्थ एव विज्ञेयः ।

यशःकीर्तिनामकर्मणश्चोक्तमार्गणाद्वये यो मूलसप्तप्रकृतीर्बध्नन्नाम्नश्चैकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानस्तदनन्तरसमये मूलसप्तप्रकृतिबन्धको नाम्नश्चैकं यशःकीर्तिनामैव बध्नन्नुत्कृष्टयोगे प्राप्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं विदधाति स तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वाम्यवसेयः । एवमत्र यशःकीर्तिनाम्नो य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तप्रकृतिबन्धं कुर्वन्नुत्कृष्टयोगे वर्तमानो नाम्नश्चैकं यशःकीर्तिनाम बध्नन्ननन्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो नाम्नश्चैकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नँस्तदनन्तरसमयेऽपि तथैव बन्धं विदधाति स तदुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी ज्ञेयः । एतदुत्कृष्टावस्थानबन्धपूर्वसमयस्थः स एव तदुत्कृष्टहानेः स्वाम्यवगन्तव्यः । उक्तशेषप्रकृतीनामत्र मार्गणाद्वये उत्कृष्टवृद्ध्यादित्रिविधबन्धस्वामिनो मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां यथा प्रोक्तास्तथैव विज्ञेया इति ।

परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायामुत्कृष्टवृद्ध्यादित्रिविधबन्धस्वामिन आहारककाययोगमार्गणातुल्या वक्तव्याः । नवरमाहारकद्विकस्य त्रिविधबन्धस्वामिन ओघवदेवाऽत्र ज्ञेयाः ।

सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां स्वप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये तद्योग्योत्कृष्टयोगं प्राप्त उत्कृष्टप्रदेशबन्धकस्तासामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी विज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टावस्थानस्य स्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धक उत्कृ॰योगे वर्तमानोऽनन्तरसमये तदर्हजघन्ययोगं प्राप्य तदनन्तरसमयेऽपि तावतः प्रदेशान्बध्नाति स ज्ञेयः । एवमुत्कृष्टावस्थानबन्धपूर्वक्षणस्थः स एव तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी बोध्यः ।

देशविरतसंयममार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनां त्रिविधबन्धस्वामिन आहारककाययोगमार्गणावदभिधेयाः । नवरं प्रत्याख्यानचतुष्कस्य त्रिविधबन्धस्वामिनः सञ्ज्वलनचतुष्कतुल्या वक्तव्याः ।

असंयममार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनां त्रिविधबन्धस्वामिनो मत्यज्ञानमार्गणातुल्या वक्तव्याः । नवरमत्राऽनन्तानुबन्धिरहितद्वादशकषायाः, हास्य-रति-शोका-ऽरति-भय-जुगुप्सा-पुरुषवेदप्रकृतयः,

दर्शनावरणषट्कञ्चेति पञ्चविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी यो मूलाऽष्टविधबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानः सम्यग्दृष्टिरनन्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धं करोति स विज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगवान् सम्यग्दृष्टिरनन्तरसमये मूलाष्टप्रकृतीर्बध्नँस्तद्योग्यजघन्ययोगं प्राप्य तदनन्तरक्षणेऽपि तावन्तमेव प्रदेशबन्धं विदधाति स ज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मृत्युमित्वा देवाद्यन्यतमगतावुत्पद्य जघन्ययोगे वर्तमानो भवप्रथमसमयस्थितो भवति स बोध्यः । अत्र देवद्विक-वैक्रियद्विक-जिननाम्नां त्रिविधबन्धस्वामिन ओघवदभिधेयास्तत्समानवक्तव्यत्वादिति ।

चक्षुर्दर्शनमार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धि-हान्य-वस्थानबन्धानां स्वामिनस्त्रसपर्याप्तमार्गणातुल्या अवसेयाः । नवरं त्रसपर्याप्तमार्गणायां यत्रोत्कृष्टहानेः स्वामी भवप्रथमसमयस्थो द्वीन्द्रियो दर्शितस्तत्र प्रकृतमार्गणायां भवप्रथमसमयस्थश्चतुरिन्द्रियजीवः कथनीयः ।

अचक्षुर्दर्शना-ऽवधिदर्शनमार्गणयोः प्रकृतस्वामिनस्तु पूर्वं प्ररूपिता इति ।

कृष्ण--नील--कापोतलेश्यामार्गणासूत्कृष्टवृद्ध्यादित्रिविधबन्धस्वामिनोऽसंयममार्गणातुल्या वक्तव्याः । नवरं तत्राऽप्रत्याख्यानावरणादिपञ्चविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टहानिस्वामी कालं कृत्वा देवादिचतुर्गतिषु भवप्रथमसमयस्थ उक्तः, अत्र तु स यथासमयं मनुष्य-तिर्यग् नारकभवप्रथमसमयस्थो ज्ञातव्यस्तथा कृष्णनीलमार्गणाद्वये जिननाम्नो ज्येष्ठहानिः स्वावस्थानस्य पूर्वक्षणे कथनीया, परस्थानहानेरभावात् ।

तेजोलेश्यामार्गणायां तु प्रकृतबन्धस्वामिन इत्थम्—तथा चाऽत्र दर्शनावरणषट्क-हास्यषट्क-पुरुषवेदरूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां यः प्रथमक्षणे तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो मूलाऽष्टविधबन्धकश्चतुर्थादिसप्तमान्तेभ्योऽन्यतमगुणस्थानकवर्ती सम्यग्दृष्टिरनन्तरसमये मूलसप्तप्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धं विदधाति स तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी ज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टावस्थानस्य स्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगे वर्तमानश्चतुर्थादिषष्ठपर्यन्ताऽन्यतमगुणस्थानस्थः सम्यग्दृष्टिरनन्तरसमये च मूलाऽष्टविधबन्धकस्तद्योग्यजघन्ययोगं प्राप्य तदनन्तरसमयेऽपि तावत एव प्रदेशान्बध्नाति स बोध्यः । एवं तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी तूत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा भवान्तरप्रथमसमयवर्ती सम्यग्दृष्टिर्बोध्यः ।

एवमत्राऽप्रत्याख्यानचतुष्कस्योत्कृष्टवृद्धेः स्वामी यः प्रथमसमये जघन्ययोगी सम्यग्दृष्टिरष्टविधमूलप्रकृतिबन्धकोऽनन्तरसमये सप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्य ज्येष्ठप्रदेशबन्धं करोति स ज्ञेयः । उत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी तु तस्य य उत्कृष्टप्रदेशबन्धक उत्कृष्टयोगवान् सप्तविधबन्धकः सम्यग्दृष्टिरनन्तरसमये चाऽष्टविधबन्धको जघन्ययोगमवाप्तस्तदनन्तरसमयेऽपि तथैव स्थितो बोध्यः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वाम्यत्रोत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवतया मनुष्यतया वोत्पद्य यः प्रथमसमये

जघन्ययोगी स ज्ञेयः । अत्र प्रत्याख्यानचतुष्कस्योत्कृष्टवृद्धिस्वामी यः प्रथमक्षणे जघन्ययोगवानष्टविधबन्धको देशविरतोऽनन्तरक्षणयुत्कृष्टयोगं प्राप्तः सप्तविधबन्धको ज्येष्ठप्रदेशबन्धकश्च स विज्ञेयः । उत्कृष्टावस्थानस्वामी च तस्य य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्तोत्कृष्टयोगी सप्तविधबन्धको देशविरतजीवोऽनन्तरसमये जघन्ययोगमवाप्याष्टविधबन्धकस्तदनन्तरसमयेऽपि तथैव बन्धं विधत्ते स ज्ञेयः । उत्कृष्टहानिस्वामी तु तस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवतयोत्पन्नो भवप्रथमसमयस्थो ग्राह्यः । अत्र सञ्ज्वलनचतुष्कस्य तु यः प्रथमक्षणेऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगवान्षष्ठं सप्तमं वा गुणस्थानकं स्थितोऽनन्तरसमययुत्कृष्टयोगमवाप्नोति तथा सप्तविधबन्धकः स तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वाम्यवसेयः । एवं तदुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकर्ता सप्तविधबन्धकस्तदर्होत्कृष्टयोगवान् षष्ठं गुणस्थानं प्राप्तोऽनन्तरसमये जघन्ययोगं प्राप्याष्टविधबन्धकश्च तदनन्तरसमयेऽपि तावन्तमेव बन्धं करोति स विज्ञेयः । एवं तदुत्कृष्टहानेः स्वाम्युत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभवयुत्पन्नो भवप्रथमसमयस्थो बोध्यः ।

एवमत्र तेजोलेश्यामार्गणायां नपुंसकवेद-नीचैर्गोत्र-मनुष्यद्विक तिर्यग्द्विकौ-दारिकद्विकै-केन्द्रिय-संहननषट्का-ऽऽद्यरहितसंस्थानपञ्चका-ऽशुभखगत्या-ऽऽतप-स्थावर-दुर्भगत्रिक-स्थिर-शुभ-यशःकीर्त्य-ऽस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्ति-नवध्रुवबन्धिनाम-बादरत्रिको-द्योत-पराघातो-च्छ्वासनामरूपाणां सप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीनां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धयोग्यजीवो मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये च मूलसप्तविधप्रकृतिबन्धकस्तदर्होत्कृष्टयोगवान्नाम्नश्च यथायोगमल्पप्रकृतीर्बध्नाति स तासामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी विज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टावस्थानस्य स्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धको नाम्नश्च यथायोगमल्पप्रकृतिबन्धक उत्कृष्टयोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये च मूलाष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगवान्भवति स विज्ञेयः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु तासामुत्कृष्टावस्थानबन्धपूर्वक्षणवर्ती स एव ज्ञेयः । शुभलेश्यायुक्तानामपि मिथ्यादृष्टिदेवानां च्यवनं भवतीति मते तु कासाञ्चित्प्रकृतीनां ज्येष्ठा हानिः परस्थानगता प्राप्यत इति तु स्वयमेव बोध्यम् ।

देवद्विक-वैक्रियद्विकयोस्तु त्रिविधबन्धस्वामिनोऽत्रौघवदभिधेयाः । पञ्चेन्द्रियजाति-समचतुरस्रसंस्थान-सुखगति-त्रस-सुभगत्रिकरूपाणां नामप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामिनो ये तिर्यग्-मनुष्या मूलाऽष्टविधबन्धं नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतीनां बन्धं कुर्वन्तस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमाना अनन्तरसमये च मूलसप्तप्रकृतिबन्धका उत्कृष्टयोगे वर्तन्ते ते ज्ञातव्याः । एवं तासामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्तो नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतिबन्धकस्तिर्यङ् मनुष्यो वाऽनन्तरसमये च मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानः स्याच्चदनन्तरसमये तथैव बन्धं विधत्ते स विज्ञेयः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी चाऽऽसां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभवयुत्पद्य भवप्रथमसमये नाम्नस्तिर्यक्प्रायोग्योद्योतयुक्तत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नाति सो-ऽवसेयः ।

अत्र ज्ञानावरणपञ्चकम् , अन्तरायपञ्चकं, साताऽसातवेदनीये, उच्चैर्गोत्रं, स्त्रीवेदः, स्त्यानर्द्धित्रयाद्यष्टकञ्चेति द्वाविंशतिप्रकृतीनां यो मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्तः स तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी ज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगवाननन्तरसमये मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्नोति तदन्तरसमये तथैव बन्धं करोति स ज्ञेयः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु तासां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा भवान्तरोत्पत्तिप्रथमसमये तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानः स्यात् स विज्ञेयः । तथा जिननाम्नो यो मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो नाम्नश्च देवप्रायोग्यैकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन्ननन्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धक उत्कृष्टयोगं प्राप्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं विदधाति स बोध्यः । एवं तदुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धको नाम्नो देवयोग्यैकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोगं च प्राप्तोऽनन्तरसमये मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानस्तदनन्तरसमयेऽपि तावन्तमेव बन्धं करोति स बोध्यः । तस्योत्कृष्टहानिबन्धस्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभवयुत्पन्नो भवप्रथमसमये नाम्नस्त्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तते स ज्ञातव्यः । अत्राऽऽहारकद्विकस्य त्रिविधबन्धस्वामिनस्त्वोघवदेवाऽभिधातव्याः ।

पद्मलेश्यामार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिहान्यवस्थानबन्धस्वामिनस्तेजोलेश्यामार्गणातुल्याः कथनीयाः । नवरमत्र स्त्रीवेदस्य देवद्विकवैक्रियद्विकयोश्चोत्कृष्टहानिबन्धस्वामी स्वस्वावस्थानबन्धपूर्वक्षणस्थो वक्तव्यः । पद्मलेश्याकदेवानां स्त्रीवेदस्योदयाभावात् युग्मिषु पद्मशुक्ललेश्ययोरभावाच्च । तथाऽत्र स्थिर-शुभ-यशःकीर्ति-बादरत्रिक-नवनामध्रुवबन्धि-पराघातो-च्छ्वासरूपाणां सप्तदशप्रकृतीनां त्रिविधबन्धस्वामिनस्तेजोलेश्यामार्गणायां पञ्चेन्द्रियजातिनाम्नस्त्रिविधबन्धस्वामिनो यथा दर्शितास्तथैव तत्तुल्या एव दर्शनीयाः ।

अस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्तिनाम्नामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी त्वत्र यः सप्तविधमूलप्रकृतिबन्धको नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये च सप्तमूलप्रकृतिबन्धकस्तदर्होत्कृष्टयोगं प्राप्नोति स ज्ञेयः ।

एवं तासामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धकस्तदर्होत्कृष्टयोगी नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नन्ननन्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानस्तदनन्तरसमयेऽपि तावन्तमेव बन्धं करोति स विज्ञेयः । एवमेतासामुत्कृष्टहानेः स्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभवयुत्पद्य तत्प्रथमसमयवर्तमानो भवति स बोध्यः ।

शुक्ललेश्यामार्गणायां प्रकृतस्वामिन इत्थम्—ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणचतुष्कं, सातवेदनीयं, सञ्ज्वलनचतुष्कं, पुरुषवेदः, उच्चैर्गोत्रं, यशःकीर्तिनाम, अन्तरायपञ्चकञ्चेति द्वाविंशति-

प्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धि-हान्य-वस्थानबन्धस्वामिन ओघतुल्या द्रष्टव्याः । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनामत्र त्रिविधबन्धस्वामिनः पद्मलेश्यामार्गणातुल्या अभिधेयाः । नवरं पञ्चेन्द्रियजात्यादीनामुत्कृष्टहानेः स्वामी त्वेवम्-तत्रोद्योतयुक्तनामप्रकृतिबन्धक उक्तः, अत्र तु स मनुष्यप्रायोग्यैकोनत्रिंशन्नामप्रकृतिबन्धको वक्तव्य इति विशेषः ।

सम्यक्त्वौघ-क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोरुत्कृष्टवृद्धि-हान्यवस्थानबन्धस्वामिनः सर्वथा मतिज्ञानमार्गणावदभिधेयास्तुल्यवक्तव्यत्वादिति ।

उपशमसम्यक्त्वमार्गणायामपि त्रिविधबन्धस्वामिनो मतिज्ञानमार्गणातुल्या एव । किन्तु मतिज्ञाने यत्र मूलाऽष्टविधबन्धक उक्तस्तत्र प्रकृतमार्गणायां सप्तविधमूलप्रकृतिबन्धकः कथनीयः । तथाऽत्र देवद्विक-वैक्रियद्विकयोरुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी स्वोत्कृष्टावस्थानबन्धपूर्वक्षणस्थः स एव बोध्यः ।

वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां च ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्कं सातवेदनीयं सञ्ज्वलनचतुष्कं पुरुषवेद उच्चैर्गोत्रं यशःकीर्तिनामाऽन्तरायपञ्चकञ्चेति द्वाविंशतिप्रकृतीनां त्रिविधबन्धस्वामिनः पद्मलेश्यामार्गणायां यथाऽभिहितास्तथैवाऽभिधेयाः । उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां चाऽत्र त्रिविधबन्धस्वामिनो मतिज्ञानमार्गणातुल्या वक्तव्याः ।

मिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनां यः प्रथमसमये मूलसप्तविधबन्धकस्तद्योग्यजघन्ययोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये च मूलसप्तविधबन्धकर्तोत्कृष्टयोगं प्राप्नोति स तदुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी ज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धकस्तदर्होत्कृष्टयोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये मूलसप्तविधबन्धकर्ता तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानस्तदनन्तरसमयेऽपि तावन्तमेव बन्धं विदधाति स ज्ञेयः । उत्कृष्टावस्थानबन्धपूर्वक्षणस्थः स एव तासामुत्कृष्टहानिबन्धस्वामी विज्ञेयः । नवरमत्र नामप्रकृतिसत्कमनुष्यद्विकौदारिकद्विक-वज्रर्षभनाराचसंहननात्मकपञ्चप्रकृतीनां त्रिविधबन्धस्वामिभिर्नाम्न एकोनत्रिंशत्प्रकृतिबन्धकतया भाव्यम् । तद्व्यतिरिक्तानामत्र बध्यमानशेषनामप्रकृतीनां तु प्रकृतबन्धस्वामिभिर्नामसत्काऽष्टाविंशतिप्रकृतिबन्धकतया भवितव्यमिति विशेषः ।

सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां नामकर्मवर्जितशेषषड्मूलकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां प्रकृतस्वामिन इत्थम् ,तद्यथा- तासामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी यस्तत्प्रायोग्यजघन्ययोगे वर्तमानोऽष्टविधबन्धकोऽनन्तरसमये तद्योग्योत्कृष्टयोगं प्राप्तः सप्तविधबन्धक उत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति स ज्ञेयः । एवं तासामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः प्रथमसमये तदर्होत्कृष्टयोगं प्राप्तोऽनन्तरसमये च सप्तविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानस्तदनन्तरसमयेऽपि तथैवाऽवतिष्ठते स बोध्यः । उत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु तासां य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको व्युपरतः सन्भवान्तरं प्राप्तस्तत्प्रथमसमयस्थो बोध्यः । नाम्न उत्तरप्रकृतीनां तु प्रकृतत्रिविधबन्धस्वामिनोऽत्र पद्मलेश्यामार्गणावद् वक्तव्याः ।

नवरं तिर्यग्द्विक-मनुष्यद्विकौ-दारिकद्विक-संहननपञ्चक-संस्थानचतुष्का-ऽशुभखगति-दुर्भगत्रिको-द्योतनामरूपाणामत्र य उत्कृष्टप्रदेशबन्धयोग्यजीवो मूलाऽष्टप्रकृतीर्बध्नंस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानो नाम्नश्चैकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नंस्तदनन्तरसमये च मूलसप्तप्रकृतीर्नाम्नश्चैकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नँस्तदर्होत्कृष्टयोगं प्राप्त उक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी ज्ञेयः । यश्चोत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तप्रकृतिबन्धकर्ता नाम्नश्चैकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नँस्तदर्होत्कृष्टयोगवाननन्तरसमये च मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तो नाम्नश्च तथैव बन्धं विरचयन्ननन्तरसमयेऽपि तथैवावतिष्ठते स उक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी भवितुमर्हति । एवं तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मृत्युमित्वा तिर्यग्भवे मनुष्यभवे वोत्पन्नो भवप्रथमसमयस्थस्तत्प्रायोग्यजघन्ययोगी यथायोगमधिकप्रकृतिबन्धकश्च विज्ञेयः । नवरमत्रोद्योतनाम्नस्त्रिविधबन्धस्वामिनो नामसत्कत्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धका वक्तव्या इति ।

एवमत्र सास्वादनमार्गणायामस्थिरा-ऽशुभा-ऽयशःकीर्तिनाम्नामुत्कृष्टवृद्धिबन्धस्वामी स भवति य उत्कृष्टप्रदेशबन्धयोग्यजीवः प्रथमसमये मूलसप्तविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगवान्नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नंस्तदनन्तरसमयेऽपि तथैव बन्धं कुर्वन्नुत्कृष्टयोगं प्राप्नोति । एवमुक्तप्रकृतित्रयस्योत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी स ज्ञेयो य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तप्रकृतीर्नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्होत्कृष्टयोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये च मूलाऽष्टविधबन्धकस्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तो नाम्नश्च तथैव बन्धं विरचयन्तदनन्तरसमयेऽपि तथैव बन्धं कुर्वंस्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तः पुनस्तदनन्तरसमयेऽपि तावन्तमेव बन्धं कुर्वन्नवतिष्ठते ।

उक्तप्रकृतित्रयस्योत्कृष्टहानिबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभवयुत्पन्नो नाम्नस्त्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन्भवप्रथमसमयस्थः स्यात्स ज्ञेयः । अत्र देवद्विक-वैक्रियद्विकयोस्त्रिविधबन्धस्वामिनः पद्मलेश्यामार्गणावद् विज्ञेयाः ।

उक्तशेषबध्यमानचतुर्विंशतिप्रकृतीनामत्र सास्वादनमार्गणायामुत्कृष्टवृद्धेः स्वामी स भवति, य उत्कृष्टप्रदेशबन्धयोग्यो मूलाऽष्टविधप्रकृतीर्नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगे वर्तमानोऽनन्तरसमये मूलसप्तविधबन्धको नाम्नस्ता एव प्रकृतीर्बध्नँस्तदर्होत्कृष्टयोगं प्राप्नोति । एवं तासामुत्कृष्टावस्थानबन्धस्वामी तु य उत्कृष्टप्रदेशबन्धको मूलसप्तविधबन्धो नाम्नश्चाऽष्टाविंशतिप्रकृतीर्बध्नँस्तदर्होत्कृष्टयोगवाननन्तरसमये च मूलाऽष्टविधबन्धको नाम्नस्ता एव बध्नँस्तदर्हजघन्ययोगं प्राप्तस्तदनन्तरसमयेऽपि तथैव बन्धं विदधाति सोऽवगन्तव्यः । एवं तासामुत्कृष्टहानेः स्वामी य उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः कालं कृत्वा देवभवयुत्पद्य भवप्रथमसमये नाम्नस्त्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नाति स बोध्यः ।

संज्ञिमार्गणायां बध्यमानप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिहान्यवस्थानबन्धस्वामिनः पञ्चेन्द्रियसामान्यमार्गणावदभिधेयाः । नवरं पञ्चेन्द्रियमार्गणायां यत्रोत्कृष्टहानेः स्वामी कालं कृत्वाऽसंज्ञिषूत्पन्नः कथितस्तत्र प्रकृतमार्गणायां स संज्ञिषूत्पन्नः कथनीय इति विशेषः ।

असंज्ञिमार्गणायां चतुर्घातिकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनामुत्कृष्टवृद्धिहान्यवस्थानबन्धस्वामिनो मिथ्यात्वमार्गणायां यथोक्तास्तथैव ज्ञातव्याः ।

चतुरघातिकर्मसत्कोत्तरप्रकृतीनां त्रिविधबन्धस्वामिनस्तिर्यगोघमार्गणातुल्या वक्तव्याः । नवरमुत्कृष्टप्रदेशबन्धकतयाऽत्राऽसंज्ञिपर्याप्तपञ्चेन्द्रियस्तदर्होत्कृष्टयोगवान्वक्तव्य इति विशेषः ॥३४१॥

दर्शिता ओघत आदेशतश्चोत्कृष्टवृद्धि-हान्यवस्थानबन्धस्वामिनः । साम्प्रतं जघन्यवृद्धि-हान्यवस्थानबन्धस्वामिनो दर्शयितुकामः प्रथमं तावज्जघन्यवृद्ध्यादिपदान्यत्र योगसापेक्षाणि ग्राह्याणीति दर्शयन्नाह—

इहिमाउ वड्ढिहाणी सावेक्खा जोगवड्ढिहाणीणं ।
ताउ ण अग्गे सामी एआऽणंतंसवड्ढिहाणीणं ॥३४२॥ (गीतिः)

(प्रे०) '**इहि०**' इत्यादि, '**इह**' त्ति अत्रौघतो जघन्यवृद्धि-हानिबन्धस्वामिसत्कप्ररूपणायां '**इमाउ वड्ढिहाणी**' त्ति एतौ वृद्धि-हानिबन्धौ, तौ च '**सावेक्खा जोगवड्ढिहाणीणं**' ति योगसत्कवृद्धिहान्योः सापेक्षौ भवतः । उपलक्षणत्वादवस्थानबन्धस्वाम्यवस्थानयोगाधीन इत्यपि ज्ञातव्यम् । '**ताउ**' इत्यादि, ततोऽनन्तभागवृद्धिहान्योः स्वामिन एते न भवन्ति योगसापेक्षत्वाभावात्तयोरिति गाथार्थः ।

भावार्थः पुनरेवम्—अत्र मुख्यत्वेन योगसत्कवृद्धि-हान्यवस्थानसापेक्षतया तत्तत्सर्वप्रकृतीनां प्रदेशस्य वृद्धि-हान्यवस्थानबन्धानां प्ररूपणा क्रियते ।

अतो यत्र योगस्य जघन्यवृद्धिर्भवति तत्र प्रदेशबन्धस्याऽपि जघन्यवृद्धिर्भवति । यत्र च योगस्य जघन्यहानिर्भवति तत्र प्रदेशबन्धस्याऽपि जघन्यहानिर्भवति । अवस्थानबन्धस्तु वृद्धिबन्धाऽनन्तरक्षणे हानिबन्धाऽनन्तरक्षणे वा भवितुमर्हति । एवमत्र जघन्यवृद्धि-हान्यवस्थानबन्धस्वामिभिर्यथासम्भवमधिकमूलप्रकृतिबन्धकैरधिकोत्तरप्रकृतिबन्धकैश्च भवितव्यमिति ।

अत्र योगमुख्यताग्रहणमपि सहेतुकमेव । यतः पञ्चविंशतिघातिप्रकृतीनामत्र यद्यप्यनन्तभागहानिस्तादृग्वृद्धिरपि प्राप्तुं शक्यते । किन्तु तत्प्राप्तिकाले जीवस्य योगोऽवस्थित एव विद्यते । अतोऽनन्तभागवृद्धिः प्रस्तुते जघन्यवृद्धित्वेनाऽविवक्षिता तस्य योगसापेक्षत्वाभावादिति । अत्र यदा पुनर्योगवृद्धिहानिविरहितां प्राप्यमाणां जघन्यवृद्धिं हानिं वा प्रधानीकृत्य विचारयामस्तदा त्वेतासां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां कासुचिन्मार्गणास्वनन्तभागवृद्ध्यादीनां स्वामिनो जघन्यवृद्ध्यादिस्वामित्वेनाऽऽगच्छन्तीति चिन्त्यम् ॥३४२॥

अथौघतः सर्वप्रकृतीनां जघन्यवृद्धेः स्वामी कथयन्नाह—

सव्वाण कुणइ सारिहमूलुत्तरपयडिअहियरबंधी ।
लहुवड्ढिमहोठाणा अणंतरुवरिल्लठाणगओ ॥३४३॥

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, ओघतः सर्वासां प्रकृतीनां लघुवृद्धि=जघन्यवृद्धिबन्धं कः कुरुत इत्याह-स्वयोग्याऽधिकतरमूलोत्तरप्रकृतिबन्धकस्तथाऽधस्तनयोगस्थानादनन्तरोपरितनयोगस्थानं गतः कुरुते । स तासां जघन्यवृद्धेः स्वामी भवतीत्यर्थः ।

अत्रायमाशयः--स्वयोग्याधिकतरमूलोत्तरप्रकृतिबन्धकोऽधस्तनयोगस्थानादसङ्ख्याततमभागयोगवृद्धिरूपमनन्तरमुपरितनयोगस्थानं प्राप्तः कोऽपि जीवो जघन्यवृद्धिं विदधाति ।

अत्र मूलप्रकृतिप्रदेशवृत्तौ योगस्थानप्ररूपणायां परिणामयोगस्य योगस्थानेषु पूर्वपूर्वद्विगुणहानिगतयोगस्थानत उत्तरोत्तरद्विगुणहानिगतयोगस्थानानां द्विगुणत्वमुक्तं तेन कस्मादपि योगस्थानात्तदनन्तरयोगस्थानं तुल्ययोगेनैवाधिकमत उक्तम् 'अणंतर' इत्यादि, तथाऽधिकप्रकृतिबन्धकः स यदि स्यात्तदा भागहराणामाधिक्याद् विवक्षितप्रकृतितया बध्यमानानि दलिकान्यल्पानि प्राप्यन्ते तदैव जघन्यवृद्धिः सम्भवति, तेनोक्तम् 'मूलुत्तरपयडिअहियरबंधी' इति ॥३४३॥

अधुनौघतो जघन्यहान्यवस्थानयोः स्वामिनं दर्शयति, आदेशतश्च सर्वमार्गणास्वोघवदेवाऽतिदिशति—

लहुहाणिमुवरिठाणा कुणइ खलु अणंतराहठाणगओ ।
अण्णयरोऽवट्ठाणं जहण्णमेमेव सव्वासु ॥३४४॥

(प्रे०) 'लहु०' इत्यादि, 'सर्वासां प्रकृतीनां' इति पूर्वस्मादत्राऽप्यनुवर्तते, अतः सर्वप्रकृतीनामोघतो जघन्यहानिबन्धं स करोति, यः स्वयोग्योपरितनयोगस्थानात्तदनन्तराऽधो योगस्थानं प्राप्नोति । **'अण्णयरोऽवट्ठाणं'** ति अन्यतरः-जघन्यवृद्धेर्जघन्यहानेर्वाऽनन्तरसमये यस्तमेव योगस्थानमवतिष्ठते स तासां जघन्याऽवस्थानबन्धस्वामी निगद्यते । **'एमेव सव्वासु'** ति एवमेव-ओघवक्तव्यतातुल्या एव सर्वासु मार्गणासु जघन्यवृद्धि-हान्यवस्थानबन्धस्वामिनो वक्तव्या इति ।

अत्रेदं ध्येयम्—अत्र जघन्यवृद्ध्यादेः स्वाम्येकयोगस्थानात्तदनन्तरयोगस्थानं गतो जीवः कथितः । किन्तु स जीव एकयोगस्थानात्तदनन्तरयोगस्थानं कदा गन्तुं शक्नोतीति चेत्, श्रूयताम्, अत्र यः पर्याप्ताऽवस्थायोग्यजीवोऽस्ति स यदा करणपर्याप्तावस्थायां वर्तते तदा तदनन्तरयोगस्थानं गन्तुं प्रभवति । लब्ध्यपर्याप्तजीवस्तु स्वाऽऽयुषि त्रिभागावशेषकालेऽनन्तरयोगस्थानं गन्तुं शक्नोतीति ॥३४४॥

एवमादेशतः सर्वमार्गणासु प्रकृतबन्धस्वामिन ओघवदतिदिश्य तत्र योऽपवादः सम्भवति तं दर्शयति- 'णवरं' इत्यादिना—

णवरं उरालमीसे देवविउव्वदुगजिणाण लहुवड्ढि ।
मग्गणबीअखणत्थो दुमीसजोगेसु सव्वेसिं ॥३४५॥
कम्माणाहारेसुं लहुवड्ढीए उरालमीसव्व ।
सुरविउव्वदुगजिणाणं सुहमो अण्णाण विण्णेयो ॥३४६॥

(प्रे०) 'णवरं' इत्यादि, 'उरालमीसे' त्ति औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां देवगति-देवानुपूर्वीरूपं देवद्विकं, वैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकं, जिननाम चेति पञ्चप्रकृतीनां '**लहुवड्ढि मग्गणबीअखणत्थो**' त्ति जघन्यवृद्धिं मार्गणाद्वितीयक्षणस्थो मनुष्यः करोति । यत एतासां पञ्चप्रकृतीनां बन्धकः करणाऽपर्याप्तस्य प्रतिसमयमसङ्ख्येयगुणयोगस्य वृद्धेर्जायमानत्वात्त-स्योक्तपञ्चप्रकृतीनां प्रदेशस्याऽपि वृद्धिर्जायते । तत्र प्रथमसमयाऽपेक्षया द्वितीयसमये या वृद्धि-र्जायते सा लघुवृद्धित्वेनाऽभिमन्यते । अत एवाऽत्र लघुवृद्धेः स्वामी मार्गणाद्वितीयसमयस्थ उक्त इति । '**दुमीसजोगेसु**'त्ति द्वयोर्मिश्रयोगयोः=वैक्रियमिश्रकाययोगाऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्ग-णयोः सर्वासां=सर्वबध्यमानप्रकृतीनां 'लघुवृद्धिं मार्गणाद्वितीयक्षणस्थः' इति पदद्वयं मध्यमणिन्या-येनाऽत्राऽपि सम्बध्यते, ततश्च तल्लघुवृद्धिबन्धं मार्गणाद्वितीयसमयस्थितो जीवः कुरुते, करणाऽपर्याप्त-जीवानामेव तद्बन्धकत्वादिति ।

कार्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणयोः सुरद्विक-वैक्रियद्विक-जिननाम्नामिति पञ्चप्रकृतीनां जघन्यवृद्धिबन्धः '**उरालमीसव्व**'त्ति औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणावदेव वक्तव्यः । '**अण्णाण**' त्ति अन्यासामुक्तव्यतिरिक्तानां बध्यमानप्रकृतीनामत्र जघन्यवृद्धिबन्धकः '**सुहमो**' त्ति 'मग्गण-बीअखणत्थो' इति पदस्यात्राऽपि सम्बन्धनान्मार्गणाद्वितीयक्षणस्थः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तजीवोऽवगन्तव्य इति विशेषः । कुतः ? इति चेदुच्यते, उक्तमार्गणयोर्लब्ध्यपर्याप्तसूक्ष्मजीवानामेव जघन्ययोगप्राप्तिरतः स्वामितया त एवोक्तास्तथा द्वितीयसमययोगस्थानात् तृतीयसमययोगस्थानस्याऽसङ्ख्यगुणत्वात् ते मार्गणाद्वितीयसमयस्था उक्ता इति ॥३४५-३४६॥

तदेवं प्रतिपादितमोघादेशाभ्यां स्वामित्वद्वारम् । तत्प्रतिपादने च '**सामित्तं**' इत्यनेनो-द्दिष्टं द्वितीयं स्वामित्वद्वारं व्याख्यातम् ।

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधान उत्तरप्रकृति-
प्रदेशबन्धे तृतीये पदनिक्षेपाभिधेऽधिकारे
द्वितीयं स्वामित्वद्वारं समाप्तम् ॥

॥ तृतीयमल्पबहुत्वद्वारम् ॥

प्रस्तुतद्वारे वृद्धि-हान्य-वस्थानबन्धकानामन्योन्यं यदल्पबहुत्वं भवति तज्जघन्यपदेनोत्कृष्टपदेन चेति द्विविधयाऽत्र प्रदर्श्यते । तत्रोत्कृष्टपदेन वृद्धि-हान्य-वस्थानसत्कालपबहुत्वविषये त्विदं चिन्तनीयं यत् प्रदेशानां तारतम्यं वृद्धावधिकमस्ति, हानावधिकमस्ति, अवस्थाने वाऽधिकमस्तीति । तत्र च यस्मिन्प्रदेशतारतम्यमल्पमागच्छति तत्पदं प्रथमं वक्ष्यते । तत्पश्चादुक्ततारतम्याद् यस्य यस्य पदस्योत्तरोत्तरं तारतम्यमधिकं सम्भवति तत्तत्पदमुत्तरोत्तरं वक्ष्यते ।

अत्र च सामान्यतो वैक्रियमिश्रादिमार्गणा विवर्ज्य सर्वत्र वृद्ध्यपेक्षया हानेस्तारतम्यमधिकमागच्छति ।

अथोत्कृष्टहानेरनन्तरं स्वस्थान एवाऽवस्थानं यत्र सम्भवति तत्र वृद्धिरल्पा, हान्यवस्थाने च तदपेक्षया विशेषाधिके परस्परं तुल्ये च सम्भवतः ।

अथ यत्रोत्कृष्टहानेः परस्थानेऽर्थात् स्वोत्तरभवप्रथमसमये भवितुमर्हति, तत्राऽवस्थानं तत्प्रायोग्योत्कृष्टहानेरनन्तरं प्रागर्थाज्ज्येष्ठवृद्धितोऽनन्तरं तथा मार्गणाप्रायोग्यज्येष्ठहानितः प्रागागच्छति । अत एव तत्राऽल्पबहुत्वमित्थम्—वृद्धिरल्पा, तदपेक्षयाऽवस्थानं विशेषाधिकं ततश्च हानिर्विशेषाधिका सम्भवतीति ॥

अधुना प्रक्रान्तमल्पबहुत्वमोघत आदेशतश्च करणगाथया विवक्षुराह—

जाण सठाणे हाणी तेसिं थोवाऽत्थि जेट्ठवड्ढी तो ।
हाणिअवट्ठाणाइं जेट्ठाणि विसेसअहियाइं ॥३४७॥
अण्णाण गुरू वड्ढी थोवा तत्तो गुरुं अवट्ठाणं ।
णेयं विसेसअहियं तो गुरुहाणी विसेसहिया ॥३४८॥

(प्रे०) 'जाण' इत्यादि, ओघतः सर्वप्रकृतिमध्यादादेशतश्च सर्वमार्गणासु यासां प्रकृतीनां हानिः स्वस्थाने, अर्थात्तस्मिन्नेव भवे स्वाऽवस्थानबन्धाऽनन्तरपूर्वक्षणे भवति, तासां प्रकृतीनामत्र ज्येष्ठवृद्धिः सर्वाल्पा ज्ञेया, तदपेक्षया च ज्येष्ठहान्यवस्थानबन्धौ विशेषाधिकौ परस्परं तुल्यौ च । 'अण्णाण' इत्यादि, अन्यासां=यासां प्रकृतीनां हानिबन्धस्वामिनः परस्थाने—अनन्तरभवप्रथमसमय आगच्छन्ति तासां प्रकृतीनामत्र ज्येष्ठवृद्धिरल्पा ततश्च ज्येष्ठाऽवस्थानबन्धो विशेषाधिकस्ततोऽपि ज्येष्ठहानिबन्धो विशेषाधिको भवतीत्यर्थः ॥३४७ ३४८॥

इत्थं सर्वमार्गणासु प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं सममेव दर्शितम् । किन्तु तत्र यासु मार्गणासु किञ्चिद् विशेषमस्ति तद् दर्शयति 'पर' मित्यादिना ग्रन्थकारः—

परमप्पबहू मिस्सदुजोगेसु कम्मणे अणाहारे।
सव्वाण णो सुरविउवदुगतित्थाणं उरलमीसे ॥३४९॥

(प्रे०) 'परम०'इत्यादि, नवरं 'मिस्सदुजोगेसु' ति वैक्रियमिश्राऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोस्तथा 'कम्मणे' त्ति कार्मणकाययोगमार्गणायाम् 'अणाहारे' त्ति अनाहारकमार्गणायां च 'सव्वाण' सर्वबध्यमानप्रकृतीनाम् 'अप्पबहू' त्ति अल्पबहुत्वं 'णो' त्ति नैव भवति तत्रैकस्य वृद्धिपदस्यैव सद्भावात्। अल्पबहुत्वं त्वनेकपदसद्भावे एव भवति। 'उरलमीसे' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां सुरद्विक-वैक्रियद्विक-जिननामरूपाणां पञ्चप्रकृतीनाम् 'अप्पबहु' इति पदं पूर्वार्द्धस्थितं देहलीदीपकन्यायेनाऽत्राऽपि सम्बध्यते अतस्तासामत्राऽल्पबहुत्वं 'णो' त्ति न भवत्यनेकपदाभावात्, एकस्य वृद्धिपदस्यैव तत्र सम्भवादिति ॥३४९॥

अथौदारिकमिश्रकाययोगे उक्तशेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वमाह—

सेसाण उरलमीसे सव्वप्पं होइ गुरुमवट्ठाणं।
तो गुरुहाणी अहिया तो गुरुवड्ढी असंखगुणा ॥३५०॥

(प्रे०) 'सेसाण' इत्यादि, पूर्वोक्तौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां शेषाणां=पूर्वोक्तसुरद्विकादिपञ्चप्रकृतिवर्जितानां शेषबध्यमानप्रकृतीनामवस्थानमल्पं भवति, ततो हानिर्विशेषाधिका, ततश्च वृद्धिरसङ्ख्येयगुणा भवति।

अत्राऽवस्थानबन्धो लब्ध्यपर्याप्तजीवस्यैव सम्भवादल्प उक्तः, हानिरपि तस्यैव भवति किन्तु परस्थाने तत्सद्भावात्साऽवस्थानापेक्षया विशेषाधिका भवति। वृद्धिस्तु करणाऽपर्याप्तजीवस्य सम्भवात्सा हानितोऽसङ्ख्येयगुणा विज्ञेया ॥३५०॥

सम्प्रति जघन्यपदेन प्रक्रान्तमल्पबहुत्वमोघत आदेशतश्च दर्शयन्नाह—

सव्वाण जहण्णपया तिण्णि वि तुल्ला हवेज्ज एमेव।
अप्पाबहुगं णेयं सप्पाउग्गाण सव्वासु ॥३५१॥
णवरऽप्पबहू मिस्सदुजोगेसु कम्मणे अणाहारे।
सव्वाण णो सुरविउवदुगतित्थाणं उरलमीसे ॥३५२॥

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, ओघतः सर्वासां प्रकृतीनां 'तिण्णि वि तुल्ला' त्ति त्रयोऽपि जघन्यवृद्धि-हान्य-वस्थानबन्धाः परस्परं तुल्या भवन्ति 'एमेव अप्पाबहुगं णेयं सप्पाउग्गाण सव्वासु' ति एवमेव-ओघवदेवाऽल्पबहुत्वं सर्वमार्गणासु स्वस्वप्रायोग्यप्रकृतीनां

ज्ञेयम् । अर्थात् सर्वमार्गणास्थानेषु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां त्रयोऽपि जघन्यवृद्धि-हान्य-वस्थानबन्धाः परस्परं समाना एव भवन्तीत्यर्थः । अत्र योऽपवादस्तमाह–'णवर' इत्यादि, नवरं वैक्रियमिश्रा-ऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोस्तथा कार्मणकाययोगाऽनाहारकमार्गणयोश्चेति मार्गणाचतुष्के सर्वासां बध्यमानप्रकृतीनां तथा औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां सुरद्विक-वैक्रियद्विक-जिननामरूपाणां पञ्चप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं न भवति तासामुक्तमार्गणास्वेकस्य वृद्धिबन्धस्यैव सद्भावात्, अल्पबहुत्वं चाऽनेकपदसद्भाव एव भवितुमर्हतीति ॥३५१-३५२॥

तदेवमुक्तमोघादेशाभ्यामल्पबहुत्वद्वारम् । तदुक्ते च 'अप्पाबहुगं' इत्यनेनोद्दिष्टं तृतीय-मल्पबहुत्वद्वारं निरूपितम् । तन्निरूपणे च 'पयणिक्खेवो' इत्यनेनोद्दिष्टः पदनिक्षेपाधिकारः समाप्तः ।

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधाने उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे
तृतीये पदनिक्षेपाभिधेऽधिकारे तृतीयमल्प-
बहुत्वद्वारं समाप्तम् ॥

॥इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधाने उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे तृतीयः पदनिक्षेपाधिकारः समाप्तः॥



॥ वृद्धिबन्धाधिकारः ॥

तदेवं तृतीयः पदनिक्षेपनामाधिकारः प्ररूपितः । साम्प्रतं चतुर्थं वृद्धिबन्धाभिधमधिकारं प्रतिपादयितुमुपक्रमते । तत्रादौ गाथाद्विकेन द्वाराणि प्ररूपयन्नाह—

तुरिअम्मि वड्ढिबंधे अहिगारम्मि हविरे दुआराइं ।
तेरस संतपयं तह सामी कालंतराइं च ॥३५३॥
भंगविचयो य भागो परिमाणं खेत्तफोसणाउ तहा ।
कालो अंतरभावा अप्पाबहुगं जहाकमसो ॥३५४॥

(प्रे०) '**तुरिअम्मि**' इत्यादि, निगदसिद्धम् । भूयस्काराधिकारे यानि द्वाराणि येन क्रमेण निरूपितानि तान्येवात्र तेनैव क्रमेण निरूपयिष्यन्ते ॥३५३ ३५४॥

॥ प्रथमं सत्पदद्वारम् ॥

अथाऽवस्थिता-ऽवक्तव्यपदसत्कं सत्पदादिद्वाराणां सर्वं प्ररूपणं भूयस्कारबन्धाऽधिकारवद-तिदिशन्नाह—

संतपयाईसु तहा सव्वाण अवट्ठिओ अवत्तव्वो ।
विण्णेयो जहविहिअं भूओगाराहिगारम्मि ॥३५५॥

(प्रे०) '**संत०**' इत्यादि, '**संतपयाईसु**' त्ति सत्पदादिद्वारेषु भूयस्काराद्यधिकारे यानि सत्पद-स्वामित्व-कालेत्यादीनि त्रयोदशद्वाराण्युक्तानि, तन्मध्यादन्तिमा-ऽल्पबहुत्वद्वारवर्जितशेष-सर्वद्वादशसंख्यकेषु द्वारेष्वित्यर्थः । तेषु किमित्याह–'**सव्वाण**' त्ति सर्वासां-सर्वप्रकृतीनाम् '**अवट्ठिओ अवत्तव्वो**' त्ति अवस्थितबन्धोऽवक्तव्यबन्धश्च '**जहविहिअं भूओगाराहिगारम्मि**' त्ति भूयस्काराधिकारे यथा विहितः, तथैवाऽत्र विज्ञेयः । अर्थादुक्तद्वादशद्वारेष्वस्थिताऽवक्तव्यबन्धसत्कं सर्वमपि प्ररूपणं भूयस्काराधिकारे यथा वर्णितम् , तथैवाऽत्राऽप्यनुशीलनीयम् , स्वयं तत्रतो द्रष्टव्यम् । लाघवार्थं न पुनः प्रपञ्च्यतेऽत्रेति ॥३५५॥

अधुनौघतस्सर्वप्रकृतीनां वृद्धि-हानी प्रकटयन्नाह—

छदरिसणावरणाणं बारकसायसगणोकसायाणं ।
अत्थि पणवड्ढिहाणी सेसाणऽत्थि चउवड्ढिहाणीओ ॥३५६॥(गीतिः)

(प्रे०) 'छद्दरि०' इत्यादि, सामान्यतः षड्विधा वृद्धयः षड्विधा हानयश्च रसबन्धादिग्रन्थेषु प्ररूपितास्सन्ति । तद्यथा–अनन्तभागवृद्धिः, असङ्ख्येयभागवृद्धिः, सङ्ख्येयभागवृद्धिः, सङ्ख्येयगुणवृद्धिः, असङ्ख्येयगुणवृद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिश्चेति षड्विधा वृद्धयः, एवमेव षड्विधा हानयोऽपि बोध्याः ।

एताभ्यः षड्विधवृद्धि-हानिभ्योऽत्र प्रस्तुताऽधिकारे त्वनन्तगुणवृद्धिहानिरहितशेषपञ्चप्रकारा वृद्धिहानयस्सम्भवन्ति । यतो योगस्य वृद्धिर्हानिर्वाऽत्रोत्कृष्टतोऽसङ्ख्येयगुणप्रमाणैव सम्भवति । अत्र पुनरसङ्ख्येयभागवृद्धिहानी, सङ्ख्येयभागवृद्धिहानी सङ्ख्येयगुणवृद्धिहानी, असङ्ख्येयगुणवृद्धिहानी चेति चतुष्प्रकाराणां वृद्धिहानीनां बाहुल्यतः कारणं त्वत्र योगस्य चतुःप्रकारा वृद्धिहानय एव । तथाऽनन्तभागवृद्धिहानी तु मात्र सर्वघातिप्रकृतीनां बन्धविच्छेदात्पुनर्बन्धाद्वाऽनुक्रमेण भवतः, तत्समये च योगस्याऽवस्थितिरेवाऽपेक्षिता । **'छद्दरिसणावरणाणं'** ति चक्षुरचक्षुरवधि-केवलदर्शनावरणानि निद्रा प्रचला चेति षड्दर्शनावरणीयप्रकृतीनां **'बारकसायसगणोकसायाणं'**ति अनन्तानुबन्धिवर्जितशेषद्वादशकषायाः, स्त्री-नपुंसकवेदरहितशेषसप्तनोकषायाः तेषामिति सर्वसङ्ख्यया पञ्चविंशतिप्रकृतीनाम् **'अत्थि पणवड्ढिहाणी'**त्ति पञ्चप्रकारा वृद्धि-हानयस्सन्ति । **'सेसाण'** त्ति उक्तशेषाणां पञ्चनवतिसङ्ख्याकप्रकृतीनां **'चउवड्ढिहाणीओ अत्थि'** त्ति चतुष्प्रकारा वृद्धिहानयः सन्ति ।

इदमत्राऽवधेयम्–यः कश्चिज्जीवो यदा प्रथमगुणस्थानकाच्चतुर्थादिगुणस्थानकं तथा चतुर्थादिगुणस्थानकात् प्रथमादिगुणस्थानकं याति तदा क्रमेण स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बन्धविच्छेदात् पुनर्बन्धात् षड्दर्शनावरणीयप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी सम्भवतः । शेषाश्चतुःप्रकारा वृद्धिहानयस्तु योगस्य वृद्धिहानिभ्यामेव सम्भवन्ति ।

अनन्तानुबन्धिरहितद्वादशकषायेषु तथा स्त्री-नपुंसकवेदरहितसप्तनोकषायेषु प्रथमाच्चतुर्थादिगुणस्थानगमने सति समयोग एव भवति । अतो मिथ्यात्वाऽनन्तानुबन्धिकषायसत्कानि दलिकानि यथासंभवं बध्यमानप्रकृतितया परिणतानीति कृत्वाऽनन्तभागवृद्धिर्भवति । एवं चतुर्थादिगुणस्थानात्प्रथमगुणस्थानकगमने सति तेषामनन्तभागहानिस्सम्भवति । शेषा असङ्ख्येयभागवृद्ध्यादिचतुष्प्रकारा वृद्धयः, एवं चतुष्प्रकारा हानयश्च योगसत्कवृद्धिहानिभ्यां सञ्जायन्ते । ननु स्त्रीनपुंसकवेदयोरनन्तभागवृद्धिहान्यत्र कथं न जायेत इति चेदुच्यते, स्त्री-नपुंसकवेदयोश्चतुर्थगुणस्थानके बन्धाऽभावेन मिथ्यात्वभागस्य तयोरप्राप्तेरनन्तभागवृद्धेस्तत्राऽसम्भव एव । उक्तशेषपञ्चनवतिप्रकृतीनां त्वनन्तगुणाऽनन्तभागरहिताः शेषचतुर्विधा वृद्धिहानयः पूर्वोक्तकारणाद्भवन्तीति ज्ञेयम् ।

अत्रेदमवधेयम्–सङ्ख्यातभागवृद्धौ सङ्ख्यातभागहानौ वाऽऽयुर्वर्जसर्वप्रकृतीनां योगस्याऽवस्थितत्वेऽप्यल्पतरप्रकृतिबन्धस्याऽधिकप्रकृतिबन्धस्य क्रमेण कारणत्वमवगन्तव्यं यथासम्भवं

विपर्यासद्विरोघप्ररूपणायामादेशप्ररूपणायां वा। किन्तु सर्वत्र तस्य पृथक्प्रतिपादनं न करिष्यते गौरवभयादिति ध्येयम् ॥३५६॥

अधुना सर्वनरकादिमार्गणाभेदेषु वृद्धिहान्योघवद तिदिशन्नाह गाथायुग्मम्—

ओघव्व वड्ढिहाणी सप्पाउग्गाण सव्वणिरयेसु ।
चउतिरिभेअतिणरसुरगेविज्जंतदुपणिंदियतसेसु ॥३५७॥ (गीतिः)
पणमणवयकायउरलवेउव्वतिवेअचउकसायेसु ।
अजयणयणियरलेसाभविसण्णीसु तह आहारे ॥३५८॥

(प्रे०) 'ओघव्व' इत्यादि, 'सव्वणिरयेसु' त्ति नरकौघे प्रथमादिसप्तनरकगतिमार्गणाभेदेषु च '**चउतिरिभेअ**' त्ति अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वर्जशेषचतुस्तिर्यग्गतिमार्गणाभेदेषु '**तिणर**' त्ति अपर्याप्तमनुष्यरहितशेषत्रिमनुष्यगतिमार्गणाभेदेषु '**सुर**' त्ति सुरौघमार्गणायां '**गेविज्जंत**' त्ति भवनपत्यादिग्रैवेयकपर्यन्तेषु चतुर्विंशतिसुरमार्गणाभेदेषु '**दुपणिंदिय**' त्ति अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियवर्जशेषपञ्चेन्द्रियमार्गणाद्विके '**तसेसु**' त्ति ओघपर्याप्तत्रसकायमार्गणयोः '**पणमणवय**' त्ति पञ्चमनोयोगभेदेषु पञ्चवचनयोगभेदेषु च '**काय**' त्ति काययोगौघे '**उरल**' त्ति औदारिककाययोगे '**वेउव्व**' त्ति वैक्रियकाययोगे '**तिवेअ**' त्ति त्रिषु वेदेषु '**चउकसायेसु**' ति चतुर्षु कषायभेदेषु '**अजय**' त्ति असंयतमार्गणायां '**णयणियर**' त्ति चक्षुस्तदितराऽचक्षुर्दर्शनमार्गणयोः '**लेसा**' त्ति षड्लेश्यामार्गणासु '**भविसण्णीसु**' त्ति भव्यमार्गणायां संज्ञिमार्गणायां च '**आहारे**' त्ति आहारिमार्गणायामिति सर्वसङ्ख्यया षट्सप्ततिसङ्ख्याप्रमितासु मार्गणासु '**सप्पाउग्गाण**' त्ति स्वप्रयोग्याणामुक्तमार्गणाप्रायोग्यप्रकृतीनां '**वड्ढिहाणो**' त्ति वृद्धिहानयः '**ओघव्व**' त्ति ओघवक्तव्यतायास्तुल्या अभिधातव्याः। अर्थादुपयुक्तमार्गणासु सर्वबध्यमानप्रकृतीनामनन्तगुणाऽनन्तभागरहिताः शेषचतुर्विंशा वृद्धयो हानयश्च योगमाश्रित्याऽत्र भवन्त्येव। तथा दर्शनावरणषट्कस्यैकोनविंशतिमोहनीयप्रकृतीनाञ्चानन्तभागवृद्धिहान्यपि भवतः, तद्धेतुश्चौघवज्ज्ञेयः। ॥३५७-३५८॥

अथौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां वृद्धिहानी कथयति—

ओरालमीसजोगे हवेज्ज एगा असंखगुणवड्ढी ।
सुरविउवदुगजिणाणं सेसाणऽत्थि चउवड्ढिहाणीओ ॥३५९॥(गीतिः)

(प्रे०) '**ओराल०**' इत्यादि, औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां '**सुरविउवदुगजिणाणं**' ति द्विकशब्दस्य पूर्वत्रापि योजनात् सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकम्, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गरूपं वैक्रियद्विकम्, जिननाम चेति पञ्चप्रकृतीनां '**हवेज्ज एगा असंखगुणवड्ढी**' त्ति एका-

ऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिरेव भवितुमर्हति । 'सेसाणऽत्थि चउवड्ढिहाणीओ' त्ति उक्तशेषनवाऽधिकशतसङ्ख्याकप्रकृतीनामसङ्ख्येयगुणादिचतुर्विधा वृद्धयश्चतुर्विधा हानयश्च सन्ति ।

अयम्भावः—औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां लब्ध्यपर्याप्तजीवानां याः प्रकृतयो बध्यन्ते, तासां प्रकृतीनां चतुःप्रकारेण वृद्धिहानी सम्भवतः । एवं तत्र करणाऽपर्याप्तकजीवानामेव याः प्रकृतयो बन्धयोग्याः सन्ति, तासां त्वेकाऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिरेव सम्भवति, तेषां योगस्य वृद्धेरुत्तरोत्तरसमयेऽसङ्ख्येयगुणत्वात् । एतेनैव कारणेन सुरद्विकादिपञ्चप्रकृतीनामेकैव वृद्धिस्सम्भवति, शेषप्रकृतीनाञ्च चतुष्प्रकारा वृद्धिहानयो भवितुमर्हन्तीति ॥३५९॥

अथ वैक्रियमिश्रादिचतुर्षु मार्गणाभेदेषु प्रकृतवृद्धिहानी वक्ति—

मीसदुजोगेसु तहा कम्माणाहारगेसु सव्वेसिं ।
सप्पाउग्गाणं खलु एगात्थि असंखगुणवड्ढी ॥३६०॥

(प्रे०) 'मीस०' इत्यादि, 'मीसदुजोगेसु' त्ति वैक्रियमिश्रकाययोगा-ऽऽहारकमिश्रकाययोगमार्गणयोरित्यर्थः । तथा 'कम्माऽणाहारगेसु' त्ति कार्मणकाययोगा-ऽऽनाहारकमार्गणयोरिति मार्गणाचतुष्के 'सव्वेसिं सप्पाउग्गाणं' ति स्वस्वप्रायोग्यसर्वप्रकृतीनां 'खलु' निश्चितार्थद्योतकः 'एगात्थि असंखगुणवड्ढी' त्ति एकाऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिरेवाऽस्ति मार्गणागतानां योगस्य प्रतिसमयमसंख्येयगुणवृद्धत्वात् ॥३६०॥

अथ ज्ञानत्रिकादिसप्तमार्गणासु प्रकृतवृद्धिहानी दर्शयितुमाह—

अत्थि पणवड्ढिहाणी तिणाणऽवहिसम्मखइउवसमेसुं ।
चउदंसणऽडकसायाणियराणऽत्थि चउवड्ढिहाणीओ ॥३६१॥(गीतिः)

(प्रे०) 'अत्थि' इत्यादि, 'तिणाण' त्ति तिस्रो ज्ञानमार्गणाः=मति-श्रुता-ऽवधिज्ञानमार्गणा इति 'ऽवहि' त्ति अवधिदर्शनमार्गणा 'सम्म' त्ति सम्यक्त्वमार्गणा 'खइउवसमेसु' ति क्षायिकसम्यक्त्वो-पशमसम्यक्त्वमार्गणे चेति सर्वसङ्ख्यया सप्तमार्गणासु 'चउदंसण' त्ति चत्वारि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि 'अडकसायाण' त्ति प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कं सञ्ज्वलनकषायचतुष्कञ्चेत्यष्टकषायमोहनीयप्रकृतयश्चेति द्वादशप्रकृतीनाम् 'अत्थि पणवड्ढिहाणी' त्ति अनन्तगुणरहितशेषपञ्चप्रकारा वृद्धिहानयस्सन्ति । कथमेतदवसीयत इति चेत्, उच्यते, अप्रत्याख्यानकषायस्य बन्धविच्छेदादुक्तकषायाऽष्टके अनन्तभागवृद्धिर्जायते । पुनश्चाऽप्रत्याख्यानकषायबन्धो यदा भवति तदा कषायाऽष्टकस्याऽनन्तभागहानिस्सञ्जायते । एवं निद्राद्विकस्य बन्धविच्छेदादिकमाश्रित्य चतुर्दर्शनावरणीयप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी प्राप्येते । शेषाश्चतुष्प्रकारा वृद्धिहानयस्तु योगसत्कवृद्धिहानिभिः प्राप्यन्ते । 'इयराण' त्ति इतरासाम्-उक्तशेषसप्तषष्टि-

बध्यमानप्रकृतीनाम् 'अत्थि चउवड्ढिहाणीओ' त्ति अनन्तभागरहितशेषाश्चतस्रो वृद्धयश्चतस्रो हानयश्च सन्ति । ओघे तु निद्राद्विकस्य अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्य सप्तनोकषायाणां चाऽनन्तभागवृद्धिहान्यपि भवतः । किन्त्वत्र तासामनन्तभागवृद्धिहानी न सम्भवतः प्रथमगुणस्थानकस्याभावात् । तेन किम् ? यासु मार्गणासु प्रथमगुणस्थानकं चतुर्थगुणस्थानकञ्चेति द्वे अपि गुणस्थानके विद्येते, तास्वेव निद्राद्विकादीनामनन्तभागवृद्धिहानी भवितुमर्हत इति ॥३६१॥

अथ मनःपर्यवज्ञानादिमार्गणासु वृद्धिहानी वक्तुकाम आह—

मणणाणसंजमेसुं समइअछेएसु वड्ढिहाणीओ ।
चउवीआवरणाणं पंच हवेज्ज चउरोऽण्णेसिं ॥३६२॥

(प्रे०) 'मण०' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानमार्गणा संयमौघमार्गणा सामायिकसंयमच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणे चेत्यासु चतसृषु मार्गणासु '**चउवीआवरणाणं**' ति चतुर्णां दर्शनावरणानां चक्षु-रचक्षु-रवधि-केवल-दर्शनावरणानामित्यर्थः, तेषां किमित्याह-'**पंच**' '**वड्ढिहाणीओ**' त्ति अनन्तगुणरहिताः शेषाः पञ्च वृद्धयः पञ्च हानयश्च भवन्ति । तच्च निद्राद्विकस्य विच्छेदाद् दर्शनावरणचतुष्कस्याऽनन्तभागवृद्धिर्भवति । एवं निद्राद्विकस्य पुनर्बन्धाद् दर्शनावरणचतुष्कस्याऽनन्तभागहानिर्भवतीति ज्ञेयम् ।

'**चउरो अण्णेसिं**' ति अन्यासाम्=उक्तव्यतिरिक्तानामत्र बध्यमानानामेकषष्टिप्रकृतीनामनन्तभागरहिताः शेषाश्चतुष्प्रकारा वृद्धयो हानयश्च भवन्ति, हेतुः पूर्ववदिति ॥३६२॥

अथ वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां तथा शेषसर्वमार्गणासु प्रकृतवृद्धिहानी प्रकटयन्नाह—

अत्थि पणवड्ढिहाणी अट्ठकसायाण वेअगेऽण्णेसिं ।
अत्थि चउवड्ढिहाणी सेसासुं अत्थि सव्वेसिं ॥३६३॥

(प्रे०) '**अत्थि**' इत्यादि, '**वेअगे**' त्ति वेदकसम्यक्त्वमार्गणायाम् '**अट्ठकसायाण**' त्ति अष्टानां--प्रत्याख्यानावरणचतुष्क--सञ्ज्वलनचतुष्करूपकषायमोहनीयप्रकृतीनाम् '**अत्थि पण वड्ढिहाणी**' त्ति पञ्चप्रकारा वृद्धिहानयस्सन्ति । '**ऽण्णेसिं**' ति अन्यासाम्=उक्तशेषैकसप्ततिबध्यमानप्रकृतीनाम् '**अत्थि चउवड्ढिहाणी**' त्ति चतुष्प्रकारा वृद्धिहानयो भवन्ति । '**सेसासु**' ति उक्तशेषसप्तसप्ततिमार्गणाभेदेषु प्रत्येकं '**सव्वेसिं**' ति सर्वासां स्वस्वबध्यमानप्रकृतीनाम् '**अत्थि चउवड्ढिहाणी**' इति पदे देहलीदीपकन्यायेनाऽत्रापि संयोजनीये, ततश्चाऽनन्तगुणाऽनन्तभागरहिताः शेषचतुष्प्रकारा वृद्धयो हानयश्च भवन्ति । यतोऽत्र बध्यमानासु दर्शनावरण-मोहनीयप्रकृतिष्वनन्तभागवृद्धिहान्योरत्राऽसम्भवः । शेषाश्चतुर्विधा वृद्धिहानयोऽत्र योगसत्कवृद्धिहानिभिर्भवितुमर्हन्तीति ।

शेषमार्गणा नामत पुनरिमाः-अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग-ऽपर्याप्तमनुष्या-ऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रिया-ऽपर्याप्तत्रसकाय--सप्तैकेन्द्रिय--नवविकलाक्षै--कोनचत्वारिंशत्स्थावरकायमार्गणाभेदा--ऽनुत्तरसुरपञ्चका-ऽऽहारककाययोगा--ऽपगतवेदा-ऽज्ञानत्रय-परिहारसंयम--सूक्ष्मसंपराय-देशविरतसंयमा -ऽभव्य--मिश्र-सास्वादन-मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञिरूपाः सप्तसप्ततिरिति ॥३६३॥

तदेवमुक्तमादेशतः सत्पदद्वारम्। तस्मिन्नुक्ते च समर्थितमोघादेशाभ्यां सत्पदद्वारम्। तत्समर्थने च 'संतपयं' इत्यनेनोद्दिष्टं प्रथमं सत्पदद्वारं व्याख्यातम्।

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीवन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशवन्धे चतुर्थे वृद्धिवन्धाधिकारे प्रथमं सत्पदद्वारं समाप्तम् ॥

॥ स्वामित्वादीनि भावपर्यन्तान्येकादश द्वाराणि ॥

सम्प्रति स्वामित्वाद्येकादशद्वारेषु वृद्धिहानीनां समानवक्तव्यत्वात्तेषु द्वारेषु तासां समुदित-मेवातिदेशमुखेन प्ररूपणं कुर्वन्नाह—

सामित्ताईसुं खलु अत्थि असंखगुणवड्ढिहाणीओ।
भूगारप्पयरव्व उ अवट्ठिअव्व य तिवड्ढिहाणीओ ॥३६४॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'सामि०' इत्यादि, स्वामित्वादिषु=स्वामित्वाद्येकादशद्वारेषु, तद्यथा-स्वामित्वं कालो-ऽन्तरं भङ्गविचयो भागः परिमाणं क्षेत्रं स्पर्शना कालोऽन्तरं भावश्चेत्येतेषु स्वामित्वादिभावपर्यन्तेषु एकादशद्वारेषु 'असंखगुणवड्ढिहाणीओ' असङ्ख्येयगुणवृद्धेरसङ्ख्येयगुणहानेश्च निरूपणं **'भूगारप्पयरव्व'**त्ति भूयस्काराऽल्पतरबन्धवद्-द्वितीयभूयस्कारादिबन्धाऽधिकारे भूयस्काराऽल्पत-रबन्धयोर्निरूपणमुक्तैकादशद्वारेषु यथा कृतमस्ति तथैव करणीयमित्यर्थः। अर्थादसङ्ख्येयगुणवृद्धेर्नि-रूपणं भूयस्कारबन्धतुल्यम्, असङ्ख्येयगुणहानेर्निरूपणं चाऽल्पतरबन्धतुल्यम्। अर्थादसङ्ख्येयगुण-वृद्धिहान्योरोघत आदेशतश्च मार्गणास्थानेषु के जीवाः स्वामिनः, कियान् कालः, कियच्चाऽन्तरमित्या-दिकं सर्वमप्युक्तैकादशद्वारसत्कं वक्तव्यं प्रस्तुतग्रन्थोक्तद्वितीयभूयस्कारादिबन्धाऽधिकारप्रतिपादितभू-यस्कारा-ऽल्पतरबन्धवक्तव्यतुल्यम्। **'अवट्ठिअव्व य तिवड्ढिहाणीओ'**त्ति शेषत्रिवृद्धिहानिनि-रूपणमवस्थितबन्धवदर्थात्-असङ्ख्यातभागवृद्धि-सङ्ख्यातभागवृद्धि-सङ्ख्यातगुणवृद्धिरूपाणां त्रिवृद्धीनां तथैव त्रिहानीनां स्वामित्वादिद्वारसत्कप्ररूपणमवस्थितप्ररूपणतुल्यम्। अतस्तत्रत एव द्रष्टव्यम् जिज्ञा-सुभिः। नवरं स्वामित्वद्वारे स्वामित्वमपि सर्वथा तुल्यमित्येवं नैव गणनीयम्, अपि त्ववस्थित-वन्धको यथोघे मार्गणासु च तत्तत्प्रकृतिवन्धकेष्वन्यतमो भवितुमर्हति तथैवात्रापि बोध्यः, किन्तु तत्र सोऽवस्थितयोगवान्, अत्र तु स सङ्ख्यातभागवृद्ध्यादियोगवान् पूर्वसमयत इत्यादिकं स्वय-

मवगन्तव्यमिति । अत्र तु ग्रन्थगौरवभिया न पुनः प्रपञ्च्यते सर्वम् , किन्तु प्रकृतविषये यानि कानिचिदपवादपदानि विद्यन्ते तेषामेव निदर्शनमग्रिमगाथाभिः प्रस्तुम इति ॥३६४॥

अथ पूर्वोक्तप्रतिपादन एकजीवाश्रितकालद्वारेऽपवादं दर्शयितुकाम आह—

परमोहाएसेहिं सव्वाण भवे तिवड्ढिहाणीणं ।
तइए काले जेट्ठो आवलिआए असंखंसो ॥३६५॥

(प्रे०) 'परमो'इत्यादि, 'परं' किन्तु 'तइए काले' त्ति तृतीये कालद्वारे-एकजीवाश्रितकालद्वार इत्यर्थः । 'ओहाएसेहिं' ति ओघत आदेशतश्च 'सव्वाण' त्ति सर्वासां बध्यमानप्रकृतीनां 'तिवड्ढिहाणीणं' ति असङ्ख्येयभाग-संख्येयगुण-संख्येयभागरूपत्रिवृद्धिहानीनां 'जेट्ठो' त्ति ज्येष्ठकालः'आवलिआए असंखंसो' त्ति आवलिकाया असंख्येयभागप्रमाणो भवतीति, तत्कारणभूतत्रिप्रकाराणां योगवृद्धिहानीनामुत्कृष्टकालस्य तावन्मात्रत्वात् ॥३६५॥

अथ चतुर्थाऽन्तरद्वारेऽपवादं वक्ति—

तुरिअम्मि अंतरे खलु अत्थि असंखंसवड्ढिहाणीणं ।
भूगारप्पयरव्व उ कमसो सव्वाण पयडीणं ॥३६६॥

(प्रे०) 'तुरि०' इत्यादि, 'तुरिअम्मि अंतरे' त्ति चतुर्थेऽन्तराऽऽख्ये द्वार ओघत आदेशतश्चेति तु पूर्वगाथातोऽनुवर्तनीयम् । तत्र च सम्भाव्यमानबन्धानां सर्वप्रकृतीनाम् 'असंखंसवड्ढिहाणीणं' ति असङ्ख्येयभागवृद्धिहान्योः, द्विवचने बहुवचनान्तप्रयोगस्तु प्राकृतत्वात् , तयोरन्तरं 'भूगारप्पयरव्व' त्ति द्वितीयभूयस्कारादिबन्धाऽधिकारस्यैकजीवाश्रितभूयस्काराऽल्पतरबन्धान्तरतुल्यं 'कमसो' त्ति क्रमशः—अर्थादसङ्ख्येयभागवृद्धेरन्तरं भूयस्कारबन्धान्तरसमानम् ,न त्ववस्थितबन्धवदित्यर्थः । यतोऽत्राऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिहान्योरिवाऽसङ्ख्येयभागवृद्धिहान्योः प्रकृताऽन्तरस्योत्कृष्टतोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वादिति । अत्र चतुर्थेऽन्तरद्वारे मतान्तरेण पुनरवस्थितप्रदेशबन्धान्तरवदन्तरं विज्ञेयम् , अत एव चाऽल्पबहुत्वद्वारे सङ्ख्येयभागादिबन्धकेभ्योऽप्यसङ्ख्येयभागबन्धकानामल्पत्वम् , अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणप्रस्तुतान्तरमते तु तेषां सङ्ख्येयगुणवृद्धिहानिबन्धकेभ्योऽप्यधिकत्वं स्यात् , तदपेक्षया चाल्पबहुत्वं स्वयं भावनीयमिति । नानाजीवाश्रयाऽन्तरद्वारेऽपि एतन्मतद्वयं विज्ञाय परिभावनीयम् ॥३६६॥

अथ दशमेऽनेकजीवाश्रितकालद्वारेऽपवादं वक्ति—

दसमे कालदुआरे तिवड्ढिहाणीण बंधगा संखा ।
जाणऽत्थि ताण जेट्ठो आवलिआए असंखंसो ॥३६७॥

(प्रे०) 'दसमे' इत्यादि, दशमे कालद्वारे=अनेकजीवाश्रितकालद्वार इत्यर्थः । तत्र किमित्याह–'तिवड्ढिहाणीणं' ति असङ्ख्येयभाग-सङ्ख्येयभाग-सङ्ख्येयगुणरूपास्त्रिप्रकारा वृद्धयस्तथैव त्रिप्रकारा हानयश्च तासां 'बंधगा' त्ति बन्धकजीवाः 'संखा जाण०' इत्यादि, यासां प्रकृतीनां सङ्ख्येयास्सन्ति तासां प्रकृतीनां ज्येष्ठकालः आवलिकाया असङ्ख्येयतमभागप्रमाणो ज्ञातव्यः । यत एकजीवमाश्रित्योक्तत्रिवृद्धिहानीनामुत्कृष्टकाल आवलिकाया असङ्ख्येयभागप्रमाण एवाऽस्ति । सङ्ख्यातबन्धकानाश्रित्याऽपि प्रकृष्टकाल आवलिकाऽसंख्यभागतोऽधिको नाऽऽगच्छति । किन्तु स पूर्वोक्तकालात्सङ्ख्येयगुणो द्रष्टव्यः ॥३६७॥

सम्प्रत्यनन्तभागवृद्धिहान्योर्वर्णनं स्वामित्वाद्येकादशद्वारेषु चिकीर्षुरादौ तावत्स्वामित्वद्वार ओघत आदेशतश्च तद् वर्णयति–

जेसिं पणवीसाए अत्थि खलु अणंतभागवड्ढी सिं ।
सम्मादिट्ठीयाई पढमखणे कुणइ तं वड्ढिं ॥३६८॥
तारिच्छं खलु हाणिं मिच्छाई कुणइ संजमाइचुओ ।
सव्वणिरयपणऽणुत्तरवज्जसुरविउवअजयकुलेसासु ॥३६९॥ (गीतिः)
पढमखणत्थो सम्मो तं वड्ढिं कुणइ पंचवीसाए ।
हाणिं सम्मत्तचुओ मिच्छो उअ सासणो कुणए ॥३७०॥

(प्रे०) 'जेसिं' इत्यादि; 'जेसिं पणवीसाए' त्ति अनन्तानुबन्धिरहिता द्वादशकषायमोहनीयप्रकृतयः, स्त्रीनपुंसकवेदरहिताः सप्तनोकषायाः, दर्शनावरणचतुष्कम् , निद्रा प्रचला चेति यासां पञ्चविंशतिप्रकृतीनाम् 'अत्थि खलु अणंतभागवड्ढी' त्ति अनन्तभागवृद्धिरस्ति, 'सिं' ति तासामुक्तपञ्चविंशतिप्रकृतीनां 'तं वड्ढिं' ति तामनन्तभागवृद्धिं 'सम्मादिट्ठीयाई पढमखणे कुणइ' त्ति सम्यग्दृष्ट्यादिः प्रथमसमये करोति, अर्थाद् मिथ्यात्वगुणस्थानात्सम्यग्दृष्टित्वं देशविरतत्वं सर्वविरतत्वं वा प्राप्नुवतोऽवस्थितयोगयुक्तजीवस्य यदा मिथ्यात्वादिसर्वघातिप्रकृतीनां दलिकं तत्समये बध्यमानशेषप्रकृतितया परिणमति, तदा तासु बध्यमानशेषप्रकृतिष्वनन्तभागवृद्धिर्भवति । अतस्सम्यग्दृष्ट्यादिजीवाः स्वगुणस्थानप्रथमसमये तद्वृद्धेस्स्वामिनः कथिताः । 'तारिच्छं खलु हाणिं' ति तादृशीमेवोक्तपञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तभागहानिमित्यर्थः, 'मिच्छाई कुणइ संजमाइचुओ' त्ति संयमादिगुणस्थानकात्प्रथमादिगुणस्थानकं गतो जीवो मिथ्यात्वादिसर्वघातिप्रकृतीनां बन्धं विरचयति तदा तासु बध्यमानप्रकृतिष्वनन्तभागहानिर्जायते । अथ विशेषप्रतिपत्त्यर्थमुक्तपञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहान्योस्स्वामिनो विस्तरेणाऽभिधीयन्ते, प्रथमं चाऽत्र प्रकृतवृद्धिबन्धस्वामिनो दर्श्यन्ते, तद्यथा–प्रथमगुणस्थाना-

तृतीयं चतुर्थं वा गुणस्थानकं प्राप्तो जीवोऽनन्तानुबन्धिरहितद्वादशकषायाणां सप्तनोकषायाणां दर्शनावरणषट्कस्य चेति पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिं विदधाति । एवं प्रथमगुणस्थानात्पञ्चमगुणस्थानकं गतो जीवः प्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनकषायाऽष्टकं सप्तनोकषायाः षड्दर्शनावरणीयप्रकृतयश्चेत्यासामेकविंशतिप्रकृतीनां प्रकृतवृद्धिं करोति । प्रथमगुणस्थानात् षष्ठं गुणस्थानकं सप्तमगुणस्थानकं वा गतो जीवस्सञ्ज्वलनचतुष्कं सप्तनोकषायाः षड्दर्शनावरणानीति सप्तदशप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिं करोति । तृतीयगुणस्थानाच्चतुर्थगुणस्थानं गतो जीव उक्तपञ्चविंशतिप्रकृतिभ्यः कस्या अपि प्रकृतेर्वृद्धिं न विदधाति । चतुर्थगुणस्थानात्पञ्चमगुणस्थानं प्राप्तोऽष्टकषायाणां प्रकृतवृद्धिस्वामी भवति । चतुर्थात्पञ्चमगुणस्थानाद्वा षष्ठगुणस्थानकं सप्तमगुणस्थानकं वा प्राप्तः सञ्ज्वलनचतुष्कस्य प्रकृतवृद्धिस्वामी भवति । षष्ठगुणस्थानात्सप्तमगुणस्थानं सप्तमगुणस्थानादष्टमगुणस्थानकं वा प्राप्त उक्तप्रकृतिभ्यो न कस्या अपि प्रकृतेः प्रकृतवृद्धिं कर्तुं शक्नोति । अष्टमगुणस्थानकस्य प्रथमभागात्तद्द्वितीयभागे य आगच्छति स दर्शनावरणचतुष्कस्यैव प्रकृतवृद्धिस्वामी भवति । अथ तासामेवोक्तपञ्चविंशतिप्रकृतीनां प्रकृताऽनन्तभागहानिः कदा सञ्जायत इत्याशङ्कायां दर्शयामः, तद्यथा-यः कश्चिच्छ्रेणेरवरोहन्नष्टमगुणस्थानकस्य द्वितीयभागात्प्रथमे भागे समायाति स दर्शनावरणचतुष्कस्य प्रकृतहानिं कुरुते । अष्टमगुणस्थानात्सप्तमगुणस्थानं गतस्तूक्तप्रकृतिमध्यान्न कस्या अपि प्रकृतां हानिं विदधाति । षष्ठगुणस्थानकात्पञ्चमं चतुर्थं तृतीयं वा गुणस्थानकं सम्प्राप्तो जीवः सञ्ज्वलनचतुष्कस्य प्रकृतहानिं कुरुते । षष्ठगुणस्थानकाद् द्वितीयगुणस्थानकं गतः सञ्ज्वलनचतुष्कस्य दर्शनावरणषट्कस्य च प्रस्तुतहानिं विरचयति । षष्ठगुणस्थानकात्प्रथमगुणस्थानकं यदा याति तदा सञ्ज्वलनकषायचतुष्कस्य स्त्रीनपुंसकवेदवर्जितसप्तनोकषायमोहनीयप्रकृतीनां दर्शनावरणषट्कस्य चेति सप्तदशप्रकृतीनामनन्तभागहानिं विदधाति । एवं पञ्चमगुणस्थानकाच्चतुर्थं तृतीयं वा गुणस्थानकं यदा गच्छति तदा तत्र सञ्ज्वलन-प्रत्याख्यानावरणकषायाऽष्टकस्य प्रकृतहानिं कुरुते । पञ्चमाद् द्वितीयगुणस्थानकगमने सति कषायाऽष्टकस्य दर्शनावरणषट्कस्य च तद्धानिर्भवितुमर्हति । पञ्चमात्प्रथमगुणस्थानगमने तु कषायाऽष्टकस्य सप्तनोकषायाणां दर्शनावरणषट्कस्य चेत्येकविंशतिप्रकृतीनां प्रकृतहानिस्सम्भवति । एवं चतुर्थगुणस्थानात् तृतीयगुणस्थानगमन उक्तप्रकृतिमध्यान्न कस्या अपि प्रकृतहानिस्सम्भवति । चतुर्थाद् द्वितीयगुणस्थानकगमने त्वनन्तानुबन्धिरहितद्वादशकषायाणां दर्शनावरणषट्कस्य चेत्यष्टादशप्रकृतीनां तथा चतुर्थात्प्रथमगुणस्थानगमने सति द्वादशकषाय-सप्तनोकषाय-षड्दर्शनावरणरूपाणां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां प्रस्तुतहानिर्भवति । तृतीयगुणस्थानकात्प्रथमगुणस्थानकगतो जीव उक्तपञ्चविंशतिप्रकृतीनां प्रकृतहानिं विदधाति । इत्येवमनन्तभागवृद्धिहान्योर्विशेषस्वामित्वमुक्तमोघतः ।

अधुनाऽऽदेशतो मार्गणास्थानेष्वनन्तभागवृद्धिहान्योर्निरूपणं **'सव्वणिरय'** इत्यादिना वक्ति-**'सव्वणिरय'** त्ति नरकगत्योघः रत्नप्रभादिसप्तनरकगतिमार्गणाश्चेति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टनरक-

गतिमार्गणाः 'पणऽणुत्तरवज्जसुर' त्ति पञ्चाऽनुत्तरवर्जाः शेषाः पञ्चविंशतिः सुरमार्गणा-भेदाः 'विउव' त्ति वैक्रियकाययोगमार्गणा 'अजय' त्ति असंयतमार्गणा 'कुलेसासु' ति तिस्रोऽशुभलेश्यामार्गणा इति सर्वसङ्ख्यया-ऽष्टत्रिंशन्मार्गणाभेदेषु 'पणवीसाए' त्ति पूर्वोक्तानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां 'तं वड्ढि' ति तां वृद्धिम्-अनन्तभागवृद्धिमित्यर्थः । तां वृद्धिमत्र कः करोतीत्याह–'पढमखणत्थो सम्मो कुणइ' त्ति प्रथमक्षणस्थः सम्यक्त्व्यर्थाद् यः कश्चिज्जीवो मिथ्यात्वगुणस्थानकं परित्यज्य तृतीयं चतुर्थं वा गुणस्थानकं समायाति स तद्वृद्धिं कर्तुं प्रभवति । 'हाणिं' ति प्रक्रमादनन्तभागहानिं प्रकृते कः करोतीत्याह–'सम्मत्तचुओ मिच्छो उअ सासणो कुणए' त्ति सम्यक्त्वगुणस्थानाच्च्युत्वा मिथ्यात्वगुणस्थानं सास्वादनगुणस्थानं वा समाश्रितो जीव उक्तप्रकारां हानिं विदधाति । किन्त्वत्र सम्यक्त्वगुणस्थानात्सास्वादनगुणस्थानं गतो जीव उक्तपञ्चविंशतिप्रकृतिमध्यात्सप्तनोकषायरहितशेषाऽष्टादशप्रकृतीनामेव प्रकृतहानिं विदधातीति विशेषः । उत्तरत्राऽन्यमार्गणास्वपि सप्तनोकषायाणां प्रकृतहानिं सास्वादनजीवो न कदाचिदपि करोतीति विज्ञेयम् । तृतीयगुणस्थानात्प्रथमगुणस्थाने गतः पञ्चविंशतेरपि प्रकृतहानिं विदधाति अत्र चोक्तमार्गणास्वाद्यचतुर्णामेव गुणस्थानानां सम्भवात् 'सम्मत्तचुओ' इत्येवमुक्तम् । शेषं तु सर्वं पूर्ववद्भावनीयम् ।।३६८-३६९-३७०।।

अथ तिर्यगोघे पञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्रिके च प्रकृतवृद्धिहानी प्रदर्शयन्नाऽऽह–

पढमखणे सम्मत्ती देसो व तिरितिपणिंदितिरियेसुं ।
वड्ढि कुणए हाणिं देसाइचुओ उ सम्माई ।।३७१।।

(प्रे०) 'पढमखणे' इत्यादि, 'तिरि' त्ति तिर्यग्गत्योघमार्गणायां 'तिपणिंदितिरियेसु' त्ति तिसृषु पञ्चेन्द्रियतिर्यग्गतिमार्गणासु=पञ्चेन्द्रियतिर्यक्- पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमती-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मार्गणास्विति यावत्, एतासु चतसृषु मार्गणासु स्वसम्भाव्यमानप्रकृतीनां 'वड्ढि' ति प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिं कः करोतीत्याह–पढमखणे सम्मत्तो देसो व' त्ति मिथ्यात्वगुणस्थानात्सम्यक्त्वगुणस्थानं देशविरतिगुणस्थानं वा सम्प्राप्तो जीवः करोति । 'हाणिं' ति अनन्तभागहानिं चाऽत्र 'देसाइचुओ उ सम्माई' त्ति देशविरत्यादिगुणस्थानाच्च्युतः सम्यक्त्वी कर्तुमर्हति । अत्रोक्तमार्गणास्वाद्यपञ्चमगुणस्थानकसद्भावादत्र 'देसाइचुओ' इत्युक्तम् । विशेषार्थस्तु पूर्ववदिति ।।३७१।।

अथ मतिज्ञानादिमार्गणासु प्रस्तुतस्वामित्वं प्रतिपादयति गाथात्रिकेण––

चउवीआवरणाणं तिणाणऽवहिसम्मखइउवसमेसुं ।
वड्ढि हाणिं कमसो णिद्दजुगलखयबंधखणे ।।३७२।। (गीतिः)

तइअकसायाण कुणइ वड्ढिं पढमसमयम्मि देसजई ।
देसजइत्तो भट्ठो सम्मादिट्ठी कुणइ हाणिं ॥३७३॥
संजलणाणं वड्ढिं पढमखणे कुणइ देसियरविरई ।
सम्मादिट्ठीआई देसाइचुओ कुणइ हाणिं ॥३७४॥

(प्रे०) **'चउ०'** इत्यादि, **'तिणाण'** त्ति त्रीणि ज्ञानानि-मति-श्रुता-ऽवधिलक्षणानि **'ऽवहि'** त्ति अवधिदर्शनमार्गणा **'सम्म'** सम्यक्त्वौघमार्गणा **'खइ'** क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणा **'उवसमेसु'** ति उपशमसम्यक्त्वमार्गणा चेति सर्वसङ्ख्यया सप्तसु मार्गणाभेदेषु **'चउबीआवरणाणं'** ति चतसृणां द्वितीयदर्शनावरणप्रकृतीनां चक्षु-रचक्षु-रवधि-केवलदर्शनावरणानामित्यर्थः **'वड्ढिं हाणिं'** ति प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिं प्रकृतानन्तभागहानिं च क्रमशः **'णिद्दाजुगलखयबंधखणे'** त्ति निद्राद्विकस्य क्षयक्षणे बन्धक्षणे अर्थान्निद्राद्विकस्य बन्धविच्छेदसमये प्रकृतवृद्धिर्निद्राद्विकस्य पुनर्बन्धभवनकाले च प्रकृतहानिर्भवितुमर्हति । **'तइअकसायाण'** त्ति तत्रैव पूर्वोक्तसप्तमार्गणासु तृतीयप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कस्य **'वड्ढिं'** ति प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिं **'पढमसमयम्मि देसजई'** त्ति सम्यक्त्वगुणस्थानाद् देशविरतगुणस्थानं गतो जीवस्तत्र प्रथमसमये करोति । **देसजइत्तो भट्ठो सम्मादिट्ठी कुणइ हाणिं** ति देशविरतगुणस्थानाद् भ्रष्टस्सम्यग्दृष्टिजीवोऽत्र प्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्याऽनन्तभागहानिं विदधाति । **'संजलणाणं'** ति सञ्ज्वलनकषायचतुष्कस्य पूर्वोक्तसप्तमार्गणाभेदेषु **'वड्ढिं'** ति प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिं **'पढमखणे कुणइ देसियरविरई'** त्ति देशविरतिजीवस्तदितरसर्वविरतजीवश्च अर्थाच्चतुर्थगुणस्थानकात्पञ्चमं षष्ठं सप्तमं वा गुणस्थानं गतो जीवस्तत्र प्रथमसमये कुरुते ।

'सम्मादिट्ठीआई देसाइचुओ कुणइ हाणिं' ति पञ्चमषष्ठगुणस्थानाभ्यां च्युत्वा चतुर्थादिगुणस्थानकमागतो जीवोऽत्रोक्तप्रकृतीनां प्रकृताऽनन्तभागहानिं विदधाति । हेतुश्चात्र पूर्ववदिति ॥ ३७२-३७३-३७४॥

अथ मनःपर्यवज्ञानादिमार्गणासु तदाह—

मणणाणसंजमेसुं समइअछेएसु वेअगे जेसिं ।
सप्पाउग्गाणं सिं ओहिव्वोघव्व सेसासुं ॥३७५॥

(प्रे०) **'मण०'** इत्यादि, मनःपर्यवज्ञानसंयमौघमार्गणयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोः क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायाञ्चेति पञ्चसु मार्गणास्थानेषु **'जेसिं सप्पाउग्गाणं'** ति स्वबन्धप्रायोग्यप्रकृतीनां यासामनन्तभागवृद्धिहानी सम्भवतः **'सिं'** ति तासामनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकाः **'ओहिव्व'** त्ति अवधिदर्शनमार्गणावत्-तत्र यथा प्रोक्ता-

स्तथैवाऽत्र द्रष्टव्या इति । 'सेसासु' ति अत्राऽपि यासु मार्गणास्वनन्तभागवृद्धिहानी सम्भवत-स्तासूक्तशेषमार्गणास्वित्येवं योजना कार्या ततश्च उक्तशेषासु चतुस्त्रिंशत्सङ्ख्यकासु मार्गणासु स्व-सम्भाव्यमानबन्धानां प्रकृतीनां प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकजीवाः 'ओघव्व' त्ति ओघव-क्तव्यताऽनुसारेण वक्तव्याः । अत्रेदमपि बोध्यम्–तेजोलेश्या-पद्मलेश्यालक्षणमार्गणाद्वये दर्शनावर-णस्यानन्तभागवृद्धिहान्योः स्वाम्यपूर्वकरणगुणस्थानकस्थो न भवति, प्रस्तुतमार्गणाद्वये तस्याभावात् । इमाश्चेता उक्तशेषचतुस्त्रिंशन्मार्गणाः-अपर्याप्तवर्जमनुष्यगतिमार्गणात्रयम् , अपर्याप्तवर्जपञ्चेन्द्रियमार्ग-णाद्वयम् , त्रसकाय-पर्याप्तत्रसकायमार्गणे, काययोगसामान्यमार्गणा, औदारिककाययोगमार्गणा, पञ्च-मनोयोगभेदाः, पञ्चवचनयोगभेदाः, वेदत्रिकम् , क्रोधादिकषायमार्गणाचतुष्कम् , चक्षुरचक्षुर्दर्शने, शुभलेश्यात्रिकम् , भव्यमार्गणा, संज्ञिमार्गणा, आहारिमार्गणा चेति ॥३७५॥

अथ प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिहान्योः कालमानमोघत आदेशतश्च वक्तुकाम आह—

जेसिं खलु पयडीणं अत्थि अणंतंसवड्ढिहाणीओ ।
तेसिं जहण्णजेट्ठो कालो समयो मुणेयव्वो ॥३७६॥

(प्रे०) 'जेसिं' इत्यादि, अत्रौघत आदेशतश्च यासां प्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी भवितु-मर्हतः, तासां प्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहान्योः 'जहण्णजेट्ठो कालो' त्ति जघन्यकालो ज्येष्ठकालश्च 'समयो मुणेयव्वो' त्ति एकसमयप्रमाण एव ज्ञातव्यः, तयोर्द्विसामयिकादिकालस्य नैरन्तर्येण प्राप्तुमशक्यत्वादिति ॥३७६॥

साम्प्रतमनन्तभागवृद्धिहान्योरोघतोऽन्तरकालमानं व्याहरन्नाह—

जेसिं खलु पयडीणं अत्थि अणंतंसवड्ढिहाणीओ ।
सिं लहुमंतमुहुत्तं जेट्ठं ऊणद्धपरिअट्टो ॥३७७॥

(प्रे०) 'जेसिं' इत्यादि, यासां प्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी सम्भवतः 'सिं' ति तासां 'लहु' ति लघु जघन्यमन्तरमिति गम्यते, तच्च 'अंतमुहुत्तं' ति अन्तर्मुहूर्तप्रमाणमवसातव्यम् । ज्येष्ठमन्तरं तु तासां 'ऊणद्धपरिअट्टो' ति देशोनाऽर्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणमवसेयम् ।

अयम्भावः–प्रकृते जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं कथमुक्तमिति चेदुच्यते, अनन्तभाग-वृद्धिहानी गुणस्थानकपरावृत्त्या भवितुमर्हतः । गुणस्थानपरावृत्तिश्च जघन्येनैकान्तर्मुहूर्तकालाऽनन्तरं भवितुमर्हति । अतः प्रकृतवृद्धिहान्योर्जघन्यमन्तरमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमिति ।

एवमनन्तभागवृद्धिहान्योर्ज्येष्ठमन्तरं देशोनाऽर्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणमुक्तम् । तच्चेत्थमव-सीयते–वृद्धिबन्धः सम्यक्त्वादिगुणस्थानकगमने सति भवति, हानिबन्धश्च सम्यक्त्वादिगुणस्थाना-

निपतने सति जायते । एवमत्र सम्यक्त्वस्याऽऽवश्यकत्वाच्चास्य च पुनः प्राप्तावुत्कृष्टान्तरस्य देशोनाऽर्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणत्वात्प्रकृताऽन्तरस्याऽपि तावत्प्रमाणत्वमेवेति ॥३७७॥

अथ पञ्चमनोयोगादिमार्गणास्थानेषु प्रकृताऽन्तरं निषेधयन्नाह—

पणमणवयकायउरलविउवकसायेसु समइए छेए ।
सव्वाण अंतरं णो अत्थि अणंतंसवड्ढिहाणीणं ॥ ३७८॥ (गीतिः)

(प्रे०) '**पण०**' इत्यादि, '**पणमणवय**' त्ति मनोयोगसामान्य-सत्या-ऽसत्य-सत्यासत्या-ऽसत्यामृषारूपाः पञ्चमनोयोगमार्गणाभेदाः तथैव पञ्चवचनयोगभेदाः '**काय**' त्ति काययोगौघः, '**उरल**' त्ति औदारिककाययोगः '**विउव**' त्ति वैक्रियकाययोगः '**कसायेसु**' त्ति क्रोधादिचतुः-कषायभेदाः '**समइए**' त्ति सामायिकसंयममार्गणा '**छेए**' त्ति छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणेति सर्वसङ्ख्ययैकोनविंशतिमार्गणाभेदेषु सर्वासामुक्तमार्गणाप्रायोग्यप्रकृतीनाम् '**अणंतंसवड्ढिहाणीणं**' ति अनन्तभागवृद्धिहान्योः '**अंतरं णो अत्थि**' त्ति अन्तरं नास्ति ।

अयमर्थः— अत्र यद्गुणस्थानगमने सति प्रकृतवृद्धिहानी सम्भवतः, तं गुणस्थानकं जीवः प्रकृतमार्गणायां न पुनः प्राप्तुं शक्नोति । अर्थादुक्तमार्गणासु प्रकृतवृद्धिहानी सकृदेव भवितुमर्हतः । अतस्तयोरन्तरमुक्तमार्गणासु न सम्भवतीति ॥३७८॥

अथोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां शेषमार्गणासु चाऽनन्तभागवृद्धिहान्योरन्तरं प्रतिपादयन्नाह—

अट्ठण्ह कसायाणं भवे उवसमे दुहा मुहुत्तंतो ।
सेसाण अंतरं णो सेसासु लहुं मुहुत्तंतो ॥३७९॥

(प्रे) '**अट्ठण्ह**' इत्यादि, '**उवसमे**' त्ति उपशमसम्यक्त्वमार्गणायाम् '**अट्ठण्ह कसायाणं**' ति अष्टकषायाणां=प्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनक्रोधादिकषायाष्टकस्य '**दुहा**' त्ति द्विधा, अत्रोत्तराऽर्धस्थितम् '**अंतरं**' इति पदं योजनीयम् ततश्च प्रक्रमादनन्तभागवृद्धिहान्योर्द्विधा जघन्यमुत्कृष्टञ्चाऽन्तरमिति गम्यते । तच्च मुहुत्तन्तः=अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं भवति मार्गणाकालस्य तावन्मात्रत्वादिति । '**सेसाण**' त्ति उपशमसम्यक्त्वमार्गणायामुक्तशेषप्रकृतीनां ताश्चाऽत्र चक्षुरचक्षुरवधिकेवलाऽऽख्याः चतस्रो दर्शनावरणप्रकृतय एव, तासामुक्तशेषचतुर्दर्शनावरणप्रकृतीनाम् '**अंतरं णो**' त्ति प्रकृतवृद्धिहान्योरन्तरं न भवतीत्यर्थः ।

कथमिति चेत्, शृणु, दर्शनावरणचतुष्कस्य प्रकृतवृद्धिहानी उपशमश्रेणावेव संभवतः, उपशमसम्यक्त्वाद्धायान्तु वारद्वयमुपशमश्रेणिर्न सम्भवति । अतः प्रकृताऽन्तरमपि नाऽऽयातीति ।

'**सेसासु**' त्ति उक्तशेषमार्गणासु, यासु-अनन्तभागवृद्धिहानी भवितुमर्हतः तासु मार्गणासु इत्यर्थः, ताश्च मार्गणा नामत इमाः-सर्वनरकमार्गणाभेदाः, तिर्यगोघः, पञ्चेन्द्रियतिर्यक्त्रिकम्, अप

र्याप्तवर्जाः त्रयः मनुष्यभेदाः, सुरौघः, पञ्चाऽनुत्तरवर्जसर्वसुरमार्गणाभेदाः, पञ्चेन्द्रियौघः, पर्याप्त-पञ्चेन्द्रियः, त्रसकायसामान्यः, पर्याप्तत्रसकायः, वेदत्रिकम् ,ज्ञानचतुष्कम् , संयमौघः, असंयत-चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनमार्गणाः, लेश्याषट्कम् , सम्यक्त्वौघः, वेदकसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं, भव्य-संज्ञ्याहारिमार्गणाश्चेत्यष्टषष्टिः । आस्वष्टषष्टिमार्गणासु यासां प्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी भवतः तासामनन्तभागवृद्धिहान्योः प्रत्येकं 'लहु मुहुत्तंतो' त्ति जघन्यमन्तरमेकाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणं बोद्धव्यम् । यत आसु मार्गणासु प्रकृतवृद्धिहानियोग्यगुणस्थानकस्य पुनः प्राप्तिर्जघन्यतोऽप्येकान्त-र्मुहूर्तकालानन्तरमेव प्राप्यत इति ॥३७९॥

अथ तास्वेव शेषमार्गणासु प्रकृतवृद्धिहान्योः उत्कृष्टमन्तरमाह--

तिरिणपुमाजयअणयणभवियेसु होज्ज जेट्ठमोघव्व ।
सेसासु देसूणा हवेज्ज कायट्ठिई जेट्ठा ॥३८०॥

(प्रे०) 'तिरि०' इत्यादि तिर्यगोघः, नपुंसकवेदः, असंयतमार्गणा, अचक्षुर्दर्शनमार्गणा, भव्यमार्गणा चेति पञ्चमार्गणाभेदेषु प्रत्येकं स्वयोग्यप्रकृतीनां प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिहान्योः 'जेट्ठमोघव्व' त्ति ज्येष्ठमन्तरमोघवद् देशोनाऽर्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणं भवति, उक्तमार्गणानां कायस्थितेरर्धपुद्गलपरावर्तकालतोऽधिकत्वात्प्रकृताऽन्तरं देशोनाऽर्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणमवगन्तव्यम् । 'सेसासु' ति अनन्तरपूर्वगाथावृत्तौ शेषमार्गणा दर्शितास्तन्मध्यादत्रोक्तपञ्चमार्गणावर्जितासु शेष-सर्वमार्गणासु प्रकमादनन्तभागवृद्धिहान्योः ज्येष्ठमन्तरमिति गम्यते, तच्चाऽन्तरं 'देसूणा हवेज्ज कायट्ठिई जेट्ठा' त्ति मार्गणाया देशोना ज्येष्ठकायस्थितिर्भवतीति । तदेवं भावितं वृद्धि-बन्धाऽधिकारे चतुर्थमन्तरद्वारम् ॥३८०॥

अधुना भङ्गविचयद्वारे तदेशाऽनन्तभागवृद्धिहान्योर्भजनीयत्वमोघत आदेशतश्चाह--

जेसिं पणवीसाए अत्थि अणंतंसवड्ढिहाणीओ ।
तेसिं ता भजणीया णेया एमेव सव्वासु ॥३८१॥

(प्रे०) 'जेसिं' इत्यादि, अनन्तानुबन्धिचतुष्करहितशेषद्वादशकषायप्रकृतयः, स्त्रीनपुंसकवेद-वर्जितशेषसप्तनोकषायाः, दर्शनावरणचतुष्कम् , निद्राप्रचले चेति यासां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्त-भागवृद्धिहानी सम्भवतः 'तेसिं' ति तासां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां 'ता भजणीया णेया' त्ति ते अनन्तभागवृद्धिहानी भजनीये स्त इति ज्ञेयम् । 'एमेव सव्वासु' ति एवमेव-ओघवदेव आदेशतः सर्वासु मार्गणास्वप्यर्थात् यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी सम्भवतः तासु सर्वासु प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिहानी भजनीय एवेति ज्ञेयम् ॥३८१॥

अधुना भागद्वारे तद्वक्तुकाम आह—

तत्तिअभागो तेसिं हुन्ति अणंतंसवड्ढिहाणीणं ।
जाणऽत्थि बंधगा खलु अगुरुपएसस्स जावइआ ॥३८२॥

(प्रे०) 'तत्तिअ०' इत्यादि, '**जाणऽत्थि बंधगा खलु अगुरुपएसस्स जावइआ**' त्ति यासां प्रकृतीनामगुरुप्रदेशस्य वन्धकजीवाः संख्याताऽसंख्यातादिरूपेण यावन्तः सन्ति '**तत्तिअभागो**' इत्यादि, तावतिथः संख्यातासंख्यातादिभागः तासां प्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहान्योरवगन्तव्यः ।

भावार्थस्त्वयम्—यासां प्रकृतीनामगुरुप्रदेशस्य वन्धकाः सङ्ख्येयाः सन्ति, तासां प्रकृतानन्तभागवृद्धिहान्योर्वन्धकाः सङ्ख्याततमभागप्रमाणा विज्ञेयाः । तद्यथा-पर्याप्तमनुष्यादिसङ्ख्यातराशियुक्तासु मार्गणासु स्वयोग्यप्रकृतीनां प्रकृतवन्धका उक्तरीत्या सङ्ख्यातभागप्रमाणा विद्यन्ते । एवं पञ्चेन्द्रियादिमार्गणासु स्वयोग्यप्रकृतीनामगुरुप्रदेशवन्धका असङ्ख्येयाः सन्ति, अतः तासामनन्तभागवृद्धिहान्योर्वन्धका असङ्ख्याततमभागप्रमाणा ज्ञेयाः । एवमोघत आदेशतश्च तिर्यगोघादिमार्गणासु स्वस्वयोग्यप्रकृतीनामगुरुप्रदेशवन्धका अनन्तप्रमाणाः सन्ति, तासामनन्तभागवृद्धिहान्योर्वन्धका अनन्ततमभागप्रमाणा अवसातव्या इति ॥३८२॥

अधुना परिमाणद्वारे अनन्तभागवृद्धिहान्योः परिमाणनिरूपणं चिकीर्षुराह—

पणवीसाअ असंखा हुन्ति अणंतंसवड्ढिहाणीणं ।
तिणरमणणाणसंजमसमइअछेअखइएसु संखेज्जा ॥३८३॥ (गीतिः)

(प्रे०) '**पणवीसाअ**' इत्यादि, पूर्वोक्तानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तानुबन्धिरहितशेषद्वादशकषाय-स्त्रीनपुंसकवेदवर्जितशेषसप्तनोकषाय-दर्शनावरणचतुष्क-निद्रा-प्रचलानामनन्तभागवृद्धिहान्योर्वन्धकाः '**असंखा**' त्ति असङ्ख्येयाः सन्ति । एवमोघतः परिमाणं दर्शयित्वाऽऽदेशतः तदेव '**तिणर**' इत्यादिना दर्शयति, '**तिणर**' इत्यादि, अपर्याप्तवर्जत्रिमनुष्यगतिमार्गणाभेदेषु, मनःपर्यवज्ञानमार्गणायां, संयमौघमार्गणायां, सामायिकसंयम-च्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोः, क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां चेति सर्वसंख्ययाऽष्टमार्गणासु '**संखेज्जा**' त्ति प्रस्तुताऽनन्तभागवृद्धिहान्योर्वन्धकपरिमाणं सङ्ख्यातजीवप्रमाणं ज्ञातव्यम् । यत उक्तमार्गणासु प्रकृतवृद्धिहान्योर्वन्धकाः पर्याप्तकमनुष्या एव, ते च सङ्ख्याता एव भवन्तीति ॥३८३॥

अधुना मतिज्ञानादिमार्गणासु शेषमार्गणासु चाऽनन्तभागवृद्धिहान्योर्वन्धकपरिमाणं वक्ति—

चउवीआवरणाणं अत्थि तिणाणोहिसम्मुवसमेसुं ।
संखाऽण्णाण असंखा सेसासुं अत्थि सव्वेसिं ॥३८४॥

(प्रे०) 'चउ०' इत्यादि, 'तिणाण' त्ति मति-श्रुताऽवधिलक्षणज्ञानत्रिके 'ओहि' त्ति अवधिदर्शनमार्गणायां 'सम्म' त्ति सम्यक्त्वौघे 'उवसमेसु' ति उपशमसम्यक्त्वमार्गणायां चेति उक्तषड्मार्गणासु 'चउबीआवरणाणं' ति चतुर्णां द्वितीयदर्शनावरणानां चक्षुरचक्षुरवधि-केवलदर्शनावरणरूपाणां 'संखा' ति प्रक्रमादनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकाः सङ्ख्येयाः सन्ति, श्रेणिपतितानां श्रेण्यारोहकाणां तद्बन्धकत्वात् । 'ऽण्णाण' त्ति अन्यासामुक्तमार्गणासु प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिहानियोग्योक्तशेषप्रकृतीनां प्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनकषायरूपाष्टप्रकृतीनां बन्धकाः 'असंखा' त्ति असंख्येया ज्ञेयाः । यतस्तद्बन्धकानां चतुर्थगुणस्थानात्पञ्चमगुणस्थानकगन्तृणामत्र प्रकृतवृद्धिसम्भवात् तेषां चाऽसङ्ख्येयत्वेन प्रकृतवृद्धिबन्धका असङ्ख्येयाः । एवं पञ्चमगुणस्थानाच्चतुर्थगुणस्थानकगन्तृणामसङ्ख्येयत्वेन प्रकृतहानिबन्धका अप्यसङ्ख्येया उक्ताः । निद्राद्विकाऽप्रत्याख्यानचतुष्कसप्तनोकषायरूपत्रयोदशप्रकृतीनां तु अत्रोक्तमार्गणासु प्रस्तुतवृद्धिहानी न सम्भवत एव, तासां प्रकृतवृद्धिहान्योः क्रमेण मिथ्यात्वात्सम्यक्त्वगमने सम्यक्त्वान्मिथ्यात्वगमने च सम्भवात् । 'सेसासु' ति सम्भाव्यमानाऽनन्तभागवृद्धिहानिवतीषु उक्तशेषासु चतुःसप्ततिमार्गणासु 'सव्वेसिं' ति अनन्तभागवृद्धिहानियोग्यपूर्वोक्तपञ्चविंशतिप्रकृतिमध्यात्सम्भाव्यमानसर्वप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकजीवाः 'असंखा' इति पदं देहलिदीपकन्यायेनाऽत्राऽपि योजनीयम् । अतोऽसङ्ख्येयाः प्रकृतबन्धका भवन्ति, यतश्चतुर्थगुणस्थानात्प्रथमगुणस्थानं प्रथमाच्च चतुर्थगुणस्थानकं गन्तारोऽसङ्ख्येयप्रमाणा जीवाः सन्तीति ॥३८४॥

अथाऽनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकक्षेत्रमोघत आदेशतश्च निरूपयन्नाह—

जाणोहाएसेहिं अत्थि अणंतंसवड्ढिहाणीओ ।
लोगस्स असंखयमे भागे सिं बंधगा णेया ॥३८५॥

(प्रे०) 'जाणो०' इत्यादि, ओघत आदेशतश्च पूर्वोक्तानां यासां प्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी स्तः 'सिं' ति तासां प्रकृतीनां प्रस्तुतवृद्धिहानिबन्धकजीवा लोकस्याऽसङ्ख्याततमे भागे ज्ञेयाः । इदमुक्तं भवति–अत्र बन्धकजीवा असङ्ख्येयाः सन्ति तथाऽपि तेऽसङ्ख्यलोकप्रदेशपरिमाणतोऽत्यल्पसङ्ख्यका एव, अर्थात् क्षेत्रपल्योपमाऽसङ्ख्येयभागतः कुत्राऽपि नाऽधिकाः । अतस्तेषां क्षेत्रमपि लोकस्याऽसङ्ख्याततमभागप्रमाणमिति ॥३८५॥

अथाऽनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकजीवानां कियत्स्पर्शना भवतीत्योघतो दर्शयितुमाह—

जेसिं पणवीसाए अत्थि अणंतंसवड्ढिहाणीओ ।
भागाऽट्ठ बंधगेहिं तेसिं छुहिआ मुणेयव्वा ॥३८६॥

'जेसिं' मित्यादि, यासां पूर्वोक्तानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी सम्भवतः, तासां प्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकैः 'भागाऽट्ठ' त्ति चतुर्दशभागरूपत्रसनाड्या अष्टभागाः 'छुहिआ मुणेयव्वा' त्ति स्पृष्टा ज्ञातव्याः । एषा चाऽष्टभागस्पर्शना देवानां गमनागमनाऽपेक्षया विज्ञेया ॥३८६॥

अथ नरकौघादिमार्गणासु प्रकृतवृद्धिहान्योः स्पर्शनामाचष्टे—

लोगासंखियभागो सप्पाउग्गाण सव्वणिरयेसुं ।
तिरितिपणिंदितिरियणरणवगेविज्जुरलणपुमेसुं ॥३८७॥
चउणाणसंजमेसुं समइअछेओहिसम्मखइएसुं ।
वेअगुवसमेसु भवे छुहिओऽणंतंसवड्ढिहाणीणं ॥३८८॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'लोगा०' इत्यादि, 'सव्वणिरयेसु' त्ति सर्वनरकमार्गणाभेदेषु 'तिरि' त्ति तिर्यग्गतिसामान्यमार्गणा 'तिपणिंदितिरिय' त्ति त्रिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्भेदाः=पञ्चेन्द्रियतिर्यक्-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमती-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणारूपाः 'णर' त्ति 'त्रि' शब्दस्याऽत्राप्यन्वयात्तिस्रो नरगत्योघ-पर्याप्तमनुष्य मानुषीमार्गणाः 'णवगेविज्जुरलणपुमेसु' ति नवग्रैवेयकसुरभेदाः, औदारिककाययोगौघः, नपुंसकवेदमार्गणा तथा 'चउणाणसंजमेसु' ति मति-श्रुता-ऽवधि-मनःपर्यवाऽऽख्याश्चतस्रो ज्ञानमार्गणाः संयमौघश्च 'समइअछेओहिसम्मखइएसु' ति सामायिक-च्छेदोपस्थापनीयसंयमा-ऽवधिदर्शन-सम्यक्त्वौघ-क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणाः 'वेअगउवसमेसु' त्ति वेदकसम्यक्त्वोपशमसम्यक्त्वमार्गणेति सर्वसङ्ख्यया अष्टात्रिंशन्मार्गणास्थानेषु 'सप्पाउग्गाण' त्ति स्वमार्गणाप्रायोग्यप्रकृतीनाम् 'अणंतंसवड्ढिहाणीणं' ति अनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकजीवानाश्रित्य स्पर्शनाक्षेत्रं कियद्भवतीत्याह—'लोगासंखियभागो' त्ति लोकस्याऽसङ्ख्याततमभागः 'छुहिओ भवे' ति स्पृष्टो भवति । कथमिति चेत्, शृणु, अत्रोक्तमार्गणासु देवानां गमनागमनक्षेत्रस्याऽलाभात्प्रकृतवृद्धिहान्योर्बन्धकानां स्पर्शना लोकस्याऽसङ्ख्येयतमभागप्रमाणा एवा ऽऽगच्छति । तथा श्रेणिभिन्नाऽवस्थायामनन्तभागवृद्धिहानी विदधतां जीवानां मारणान्तिकसमुद्घातक्षेत्रस्याऽप्यलाभात् प्रकृतबन्धकानां क्षेत्रस्य च लोकासङ्ख्येयभागमात्रत्वाच्च । श्रेण्यां मारणान्तिकसमुद्घातक्षेत्रस्याऽपि लोकासङ्ख्यभागमात्रत्वादत्राऽधिका स्पर्शना न सम्भवति ॥३८७-३८८॥ अथ आनतसुरादिमार्गणासु प्रकृतस्पर्शनामाह——

भागाणयाइचउसुरसुक्कासु छ फोसिआऽट्ठ सेसासुं ।
लोगासंखियभागो विंति परे असुहलेसासुं ॥३८९॥

(प्रे०) 'आगा०' इत्यादि, 'आणयाइचउसुरसुक्कासु' त्ति चतसृष्वानत-प्राणता-ऽऽरणा-ऽच्युता-ऽऽख्यसुरमार्गणासु शुक्ललेश्यामार्गणायाञ्चेति पञ्चमार्गणासु प्रक्रमादनन्तभागवृद्धिहानियोग्यप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकजीवैः 'छ'त्ति चतुर्दशभिर्विभाजितायास्त्रसनालिकायाः तादृक्षड्भागाः स्पृष्टाः सन्ति । 'ऽट्ठ सेसासु' त्ति उक्तशेषासु प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिहानियोग्यमार्गणास्वनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकजीवैरुक्तरूपायास्त्रसनालिकाया अष्टभागाः स्पृष्टाः सन्ति । शेषमार्गणा नामतः पुनरिमाः—देवौघः, भवनपत्यादिसहस्रारान्ता एकादश सुरगतिभेदाः, पञ्चेन्द्रियौघः, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियः, त्रसौघः, पर्याप्तत्रसः, पञ्च मनोयोगाः, पञ्च वचोयोगाः, काययोगौघः, वैक्रियकाययोगः, पुरुष-स्त्रीवेदौ, कषायचतुष्कम्, असंयमः, चक्षुरचक्षुर्दर्शने, शुक्लवर्जाः पञ्चलेश्याः, भव्यः, संज्ञी, आहारी चेति पञ्चचत्वारिंशत् ।

अत्र परमतेन यो विशेषस्तं दर्शयति—

'परे बिंति' त्ति अन्ये केचन ब्रुवन्ति, किम्? 'असुहलेसासु' ति अशुभलेश्यामार्गणात्रिके प्रक्रमादनन्तभागवृद्धिहान्योर्बन्धकानाश्रित्य स्पर्शनाक्षेत्रम् 'लोगासंखियभागो' त्ति लोकस्याऽसङ्ख्येयभागप्रमाणं ज्ञेयमिति । परमतेऽशुभलेश्यासु देवा अपर्याप्तावस्थायामेव सन्ति, एवं गमनागमनक्षेत्रस्यालाभात् लोकासंख्यभागमात्रा स्पर्शना तैरुक्ता इत्याशयः ॥३८९॥

अथ प्रकृताऽनन्तभागवृद्धिहान्योरनेकजीवाश्रितं कालप्रमाणमोघत आदेशतश्च निर्वक्ति—

जाणोहाएसेहिं अत्थि अणंतंसवड्ढिहाणीओ ।
तेसिं सव्वाण लहू कालो समयो मुणेयव्वो ॥३९०॥
जाणऽत्थि बंधगा खलु संखा संखसमया गुरू तेसिं ।
जाण असंखा तेसिं आवलिआए असंखंसो ॥३९१॥

(प्रे०) 'जाणो०' इत्यादि, ओघत आदेशतश्च यासां प्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी स्तः, तासां सर्वासां प्रकृतीनामर्थात् पूर्वोक्तपञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहान्योरनेकजीवानाश्रित्य जघन्यकालः 'समयो'त्ति समयप्रमाणो ज्ञातव्यः, बन्धकजीवानामल्पीयस्त्वेन प्रस्तुतबन्धस्य कादाचित्कत्वात् । 'जाण०' इत्यादि, प्रकृते यासु मार्गणासु यासां प्रकृतीनां बन्धकाः 'संखा' त्ति सङ्ख्येयाः सन्ति तासु मार्गणासु, अर्थादपर्याप्तवर्जाः त्रिमनुष्यमार्गणा-मनःपर्यवज्ञान-संयमौघ-सामायिकसंयम-च्छेदोपस्थापनीयसंयम-क्षायिकसम्यक्त्वरूपासु मार्गणासु स्वसम्भाव्यमानप्रकृतीनां प्रकृतबन्धकाः संख्येयाः सन्ति, अतस्तासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां 'गुरू' त्ति प्रकृतत्वादनन्तभागवृद्धिहान्योरनेकजीवाश्रितोत्कृष्टकालः 'संखसमया' त्ति संख्यातसमयप्रमाणो ज्ञातव्यः । तथैव मति-श्रुता-ऽवधिज्ञानमार्गणासु, अवधिदर्शनमार्गणायां, सम्यक्त्वौघोपशमसम्यक्त्वमार्गणयोश्चेति

षड्मार्गणासु दर्शनावरणचतुष्कस्य प्रकृतबन्धकाः सङ्ख्येया विद्यन्ते, अतस्तासु दर्शनावरणचतुष्क-
स्याऽनेकजीवाश्रितः प्रकृतोत्कृष्टकालः सङ्ख्येयसमयप्रमाणो ज्ञेयः । शेषाणां सम्भाव्यमानप्रकृतीनां
त्वत्र षड्मार्गणासु प्रकृतवृद्धिहानिबन्धका असङ्ख्येयाः, अतस्तासां प्रकृत उत्कृष्टकालः '**आवलि-
आए असंखंसो**' त्ति आवलिकाया असङ्ख्याततमभागप्रमाणो विज्ञेयः ।

एवमोघे तथोक्तशेषासु चतुःसप्ततिमार्गणासु प्रकृतबन्धका असङ्ख्येयाः सन्ति, अतस्ता-
स्वप्यनन्तभागवृद्धिहान्योरनेकजीवाश्रित उत्कृष्टकाल आवलिकाया असङ्ख्याततमभागप्रमाणो
विज्ञेयः । ताश्चोक्तशेषमार्गणा नामत इमाः—सर्वनरकभेद-पञ्चानुत्तरवर्जसर्वदेवभेद-तिर्यगोघ-पञ्चे-
न्द्रियतिर्यक्त्रिक-पञ्चेन्द्रियसामान्य-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-त्रसौघ पर्याप्तत्रसकाय-पञ्चमनोयोग-पञ्चवचन-
योग-काययोगौघौदारिककाययोग-वैक्रियकाययोग-वेदत्रिक-कषायचतुष्का-ऽसंयम-चक्षु रचक्षुदर्शन-
लेश्याषट्क-भव्य-वेदकसम्यक्त्व-संज्ञि-आहारिरूपाश्चतुःसप्ततिमार्गणा इति ।

अयमर्थः—प्रकृते एकजीवमधिकृत्योत्कृष्टकालस्यैकसमयप्रमाणत्वाद्यासु मार्गणासु प्रकृत-
वृद्धिहानिबन्धकजीवाः सङ्ख्येया भवेयुः तत्र प्रकृतोत्कृष्टकालः संख्यातसमयप्रमाण आयाति, यासु
च प्रकृतबन्धका असंख्येया असङ्ख्यलोकतोऽल्पसङ्ख्यकाः सन्ति तासु प्रकृतोत्कृष्टकाल आवलिकाया
असङ्ख्यातभागप्रमाण आगच्छति ॥३९०-३९१॥

अथ प्रकृते अनेकजीवाश्रितमन्तरं वक्तुकाम आह——

जाणोहाएसेहिं अत्थि अणंतंसवड्ढिहाणीओ ।
सिं समयो लहुमियरं असंखभागोऽत्थि सेढीए ॥३९२॥

(प्रे०) '**जाणो०**' इत्यादि, यासां पूर्वोक्तानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी भवतः,
'**सिं**'ति तासां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामोघत आदेशतश्च '**समयो लहु**'त्ति जघन्यमन्तरमेकसमय-
प्रमाणमनेकजीवापेक्षया भवति,तद्यथा—विवक्षितसमये कश्चिज्जीवोऽनन्तभागवृद्धिं तादृग्हानिं वा विद-
धाति, तत्पश्चादेकसमयाऽन्तरेणाऽन्यजीवस्तामेवाऽनन्तभागवृद्धिं हानिं वा करोति,तदा जघन्यमन्तर-
मेकसमयप्रमाणमायाति । '**इयरं**'ति जघन्यत इतरद्—उत्कृष्टमित्यर्थः;तच्च पूर्वोक्तपञ्चविंशतिप्रकृती-
नामनन्तभागवृद्धिहान्योरोघत आदेशतश्च '**असंखभागोऽत्थि सेढीए**'त्ति श्रेणेरसङ्ख्यातभागप्रमाण-
मस्ति । कथमेतदवसीयत इति चेद् , उच्यते,अनन्तभागवृद्धिहानी संज्ञिजीवानामेव भवतः, तेषा-
मपि अवस्थितयोगकाले एव तत्सम्भवः । अथ संज्ञिजीवेष्ववस्थितयोगस्याऽन्तरमुत्कृष्टतः श्रेणे-
रसङ्ख्याततमभागप्रमाणमस्ति । अतः प्रकृतान्तरमपि तावत्प्रमाणमिति ॥३९२॥

अधुनाऽनन्तभागवृद्धिहानी कस्मिन्भावे जायेत इति वक्तुकामो भावद्वारमाह —

भावेणोदइएणं कुणइ अणंतंसवड्ढिहाणीओ ।
जाणऽत्थि ताण एवं सप्पाउग्गाण जत्थऽत्थि ॥३९३॥

(प्रे०) 'भावेण०' इत्यादि, यासां प्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानी सम्भवतस्तासां ते वृद्धिहानी जीव औदयिकेन भावेन 'कुणइ' त्ति करोति–निर्वर्तयतीत्यर्थः । 'सप्पाउग्गाण जत्थऽत्थि' त्ति यत्र=यासु मार्गणासु स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां यासामनन्तभागवृद्धिहानी भवितुमर्हतः तासां ते वृद्धिहानी जीव 'एवं' ति एवमेवौदयिकेन भावेनैव करोतीति भावः ॥३९३॥

तदेवं समर्थितान्योघादेशाभ्यां स्वामित्वाद्येकादशद्वाराणि । तत्समर्थने च 'सामी......' इत्यादिनोद्दिष्टानि भावपर्यन्तान्येकादशद्वाराणि प्ररूपितानि ।

इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे चतुर्थे वृद्धिबन्धाऽभिधेऽधिकारे द्वितीयस्वामित्वादीनि द्वादशभावपर्यन्तान्येकादशद्वाराणि समाप्तानि ॥

॥ त्रयोदशमल्पबहुत्वद्वारम् ॥

निरूपितानि वृद्धिबन्धाऽधिकारे सत्पदादीनि द्वादशद्वाराणि, साम्प्रतं क्रमप्राप्तं त्रयोदशमल्पबहुत्वद्वारं निरूरूपयिषुराह–

पणणाणावरणाणं थीणद्धितिगाणमिच्छविग्घाणं ।
तह धुवणामुरलाणमवत्तव्वस्सऽत्थि सव्वप्पा ॥३९४॥
तत्तो अणंतगुणिआ अवट्ठिअस्स य तओ असंखगुणा ।
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा णेया ॥३९५॥ (गीतिः)
सव्वत्थ बंधगुज्झा सयं असंखंसहाणीणं ।
संखंसहाणिउप्पिं अहवा संखगुणहाणिअहो ॥३९६॥
सव्वत्थ सहाणिसमा वड्ढीणं बंधगा मुणेयव्वा ।
णवरं विसेसअहिया अत्थि असंखगुणवड्ढीए ॥३९७॥

(प्रे०) पण०' इत्यादि, पञ्चज्ञानावरणीयप्रकृतीनां 'थीणद्धितिग' त्ति स्त्यानर्द्धित्रिकस्य 'अण' त्ति अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य 'मिच्छ' त्ति मिथ्यात्वमोहनीयस्य 'विग्घाणं' ति पञ्चान्तरायाणां तथा 'धुवणामुरलाणं' ति नाम्नोऽगुरुलघु-निर्माणो-पघात-वर्णचतुष्क-तैजस-

कार्मणरूपनवध्रुवबन्धिप्रकृतयः, औदारिकशरीरञ्चेति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाविंशतिप्रकृतीनामवक्तव्य-
पदस्य बन्धकाः **'सव्वप्पा'** त्ति सर्वाऽल्पाः सन्त्यल्पानां संज्ञिजीवानामेव तद्बन्धकत्वात्, **'तत्तो'**
त्ति ततः-अवक्तव्यबन्धकाऽपेक्षया **'अणंतगुणिआ अवट्ठिअस्स'** त्ति अवस्थितपदस्य बन्धका
अनन्तगुणा विज्ञेयाः, निगोदजीवानामपि तद्बन्धकत्वात् । **'तओ य'** त्ति ततश्च **'संखंसगुण-**
असंखियगुणहाणीणं' ति सङ्ख्यातभागहानिबन्धकाः सङ्ख्यातगुणहानिबन्धकाः असङ्ख्या-
तगुणहानिबन्धकाः **'असंखगुणा'** त्ति पूर्वपूर्वाऽपेक्षया असङ्ख्येयगुणाः क्रमशो विज्ञेयाः ।

'सव्वत्थ' इत्यादि, सर्वत्र=अस्मिन्नल्पबहुत्वद्वारे सर्वत्र **'बंधगुज्झा सयं असंखंस-**
हाणीणं' ति असङ्ख्येयभागहानिवृद्धयोर्बन्धकाः स्वयं ज्ञातव्याः । एतच्चाऽसङ्ख्येयभागहानिपदं **'संखं-**
स०' इत्यादि, सङ्ख्येयभागहानेरुपरि सङ्ख्येयगुणहानेरधो वेति स्वयं ज्ञातव्यमिति शब्दार्थः ।
भावार्थः पुनरयम्–अत्राऽसङ्ख्येयभागहानेस्तथोपलक्षणादसङ्ख्येयभागवृद्धेरपि बन्धकाः सङ्ख्येय-
भागहानितोऽन्या अथवा सङ्ख्येयगुणहानिबन्धकेभ्योऽधिकाः सम्भवन्ति । उक्तविकल्पद्वये विशेष-
निर्णयाऽभावादेव **'उज्झा सयं'** स्वयं ज्ञेया इत्येवमुक्तम् । ननु उक्तविकल्पद्वये किं बीजमिति
चेत्, श्रूयताम्, मूलप्रकृतिप्रदेशबन्धे वृद्धिबन्धाऽधिकारस्यैकजीवाश्रिताऽन्तरप्ररूपणायां प्रकृताऽन्त-
रमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमुक्तमस्ति । तत्र मतान्तरेणानेकजीवानप्याश्रित्य प्रकृताऽन्तरं श्रेणेरसङ्ख्यात-
भागप्रमाणं निरूपितमस्ति । अतः सुतरामेकजीवाश्रिताऽन्तरस्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वेनाऽनेकजीवाना-
श्रित्याऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमाणं तद् भवितुमर्हति । इत्थमसंख्यभागहानेः श्रेणेरसङ्ख्येयभागप्रमाणमन्तर-
मभ्युपगम्यते, तर्हि प्रकृतबन्धकाः सङ्ख्येयभागहानिबन्धकेभ्योऽन्याः प्राप्यन्ते । यदि चाऽन्तर्मुहूर्त-
प्रमाणमन्तरमभ्युपगम्यते, तर्हि प्रकृताऽसङ्ख्येयभागहानिबन्धकाः सङ्ख्येयगुणहानिबन्धकेभ्योऽ-
धिकाः प्राप्यन्त इति ।

अथ चतुर्थगाथया वृद्धेर्बन्धकानामल्पबहुत्वमाह—

'सव्वत्थ' इत्यादि, अस्मिन्द्वारे सर्वत्र तत्तद्वृद्धेर्बन्धकाः स्वस्वहानिसमानाः कथनीया
अर्थात् यद्यद्धानेर्बन्धका यावन्तो वक्ष्यन्ते, तावन्त एव बन्धकाः तत्तद्वृद्धेरपि वक्तव्याः । तद्यथा-
अत्राऽवस्थितबन्धकेभ्यः सङ्ख्यातभागहानेर्बन्धका असङ्ख्येयगुणाः कथिताः, एवमत्र सङ्ख्यातभाग-
वृद्धेर्बन्धका अपि तावत्प्रमाणाः स्वहानिसमाना अर्थात्सङ्ख्येयभागहानिबन्धकतुल्या एवाऽभ्यूह्याः,
इत्थं चाऽस्मिन्द्वारे सर्वत्र योजनीयम् । नवरं **'विसेसअहिया अत्थि असंखगुणवड्ढीए'** त्ति
किन्त्वत्राऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका असङ्ख्येयगुणहानिबन्धकेभ्यो विशेषाधिका एवाऽस्मिन्द्वारे सर्वत्र
वक्तव्या इति ।

अमुना प्रकारेणाऽत्रोक्ताऽष्टाविंशतिप्रकृतीनामल्पबहुत्वमित्थं वर्ण्यते—

अत्रावक्तव्यबन्धकाः सर्वाल्पाः, तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धका अनन्तगुणाः, ततः सङ्ख्यातभागहानिबन्धकाः सङ्ख्यातभागवृद्धिबन्धकाश्चाऽसङ्ख्येयगुणाः परस्परं समानाश्च, ततश्च सङ्ख्यातगुणहानिबन्धकाः सङ्ख्यातगुणवृद्धिबन्धकाश्चाऽसङ्ख्येयगुणाः परस्परं तुल्याः । ततोऽसङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका विज्ञेया इति ॥३९४-३९७॥

अधुनोक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनामोघतः प्रकृताऽल्पबहुत्वं वक्ति—

सेसधुवबंधिणीणऽत्थि अवत्तव्वस्स बंधगा थोवा ।
ताउ असंखेज्जगुणा हुन्ति अणंतंसवड्ढीए ॥३९८॥
तत्तो अणंतगुणिआ अवट्ठिअस्स य तओ असंखगुणा ।
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा णेया ॥३९९॥

(प्रे०) 'सेस०' इत्यादि, अक्षरार्थः सुगमः, **भावार्थः पुनरेवम्**—अनन्तानुबन्धिरहितद्वादशकषायाः, भयजुगुप्से, दर्शनावरणचतुष्कं, निद्रा-प्रचले चेत्यासामुक्तशेषविंशतिध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यपदबन्धकाः **'थोवा'**त्ति अल्पाः सन्ति, यतस्ते बन्धका देशविरतादिजीवा अथवा देशविरतगुणस्थानादागता एव भवन्ति । अवक्तव्यपदबन्धकेभ्योऽनन्तभागवृद्धिबन्धका अनन्तभागहानिबन्धकाश्चाऽसङ्ख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याश्च । यतो मिथ्यात्वगुणस्थानादविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानाऽऽगमने प्रकृतवृद्धिरविरतगुणस्थानान्मिथ्यात्वगुणस्थानकगमने च प्रकृतहानिः सञ्जायते, एते च मिथ्यादृष्टिजीवा अविरतसम्यग्दृष्टिजीवा वा पूर्वोक्तदेशविरतिप्रापकजीवेभ्यो देशविरतिपतितजीवेभ्यो वाऽसङ्ख्येयगुणप्रमाणा इति । एतेभ्यः पुनरवस्थितपदबन्धका अनन्तगुणाः, एकेन्द्रियजीवानां तद्बन्धकत्वात् । **'संखंसगुण०'** इत्यादि, अवस्थितपदबन्धकेभ्यः सङ्ख्यातभागहानिबन्धकाः सङ्ख्यातभागवृद्धिबन्धकाश्चाऽसङ्ख्येयगुणाः परस्परं तुल्याः । ततश्च सङ्ख्यातगुणहानिबन्धकाः सङ्ख्यातगुण-वृद्धिबन्धकाश्चाऽसङ्ख्येयगुणाः परस्परं तुल्याः । ततोऽप्यसङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः ।ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः । भावना चाऽत्र पूर्ववदनुशीलनीया इति ॥३९८-३९९॥

अथौघतः पुरुषवेदादिप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वमाह—

पुमदुजुगलाण णेया सव्वऽप्पाऽणंतभागहाणीए ।
ताओ अणंतगुणिआ अवट्ठिअस्स य तओ असंखगुणा ॥४००॥(गीतिः)
संखेज्जभागसंखियगुणहाणीणं कमा मुणेयव्वा ।
ताउ अवत्तव्वस्स उ तओ असंखगुणहाणीए ॥४०१॥

(प्रे०) 'पुम०' इत्यादि, पुरुषवेदः 'दुजुगलाण' त्ति हास्य-रतिमोहनीय-शोका-ऽरतिमोहनीयलक्षणे द्वे युगले च तेषामोघतः प्रकृताऽल्पबहुत्वं किमित्याह-'सव्वप्पा०'इत्यादि, अत्राऽनन्तभागहानिबन्धका अनन्तभागवृद्धिबन्धका वा सर्वाऽल्पाः, अल्पानां संज्ञिजीवानामेव तद्बन्धकत्वात् । तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धका अनन्तगुणाः । 'संखेज्ज' इत्यादि, ततः सङ्ख्यातभागहानिबन्धकाः सङ्ख्यातभागवृद्धिबन्धका वाऽसङ्ख्येयगुणाः । ततश्च सङ्ख्यातगुणहानिबन्धकाः सङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका वाऽसङ्ख्येयगुणाः, हेतुस्तु पूर्ववद् दर्शनीयः । ततोऽवक्तव्यपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, परावर्तमानबन्धसद्भावात् । ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, असङ्ख्येयगुणकालसम्भवात् । ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिकाः, हेतुः पूर्ववदिति ॥४००-४०१॥

अथाऽऽहारकद्विकस्य तदाह--

आहारदुगस्स कमा अवट्ठिआ बंधगाऽत्थि संखगुणा ।
संखंसगुणिअहाणिअवत्तव्वअसंखगुणिअहाणीणं ॥४०२॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'आहार०' इत्यादि, आहारकद्विकस्याऽवस्थितपदबन्धका अल्पा ज्ञेयाः । ततश्च सङ्ख्यातभागवृद्धिबन्धकास्तद्धानिबन्धकाश्च सङ्ख्येयगुणाः, अन्योन्यं तुल्याः । ततश्च सङ्ख्येयगुणहानिबन्धकास्तद्वृद्धिबन्धकाश्च सङ्ख्येयगुणाः, परस्परं समानाः । ततोऽपि अवक्तव्यपदबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणहानिबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततः पुनरसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति । अत्र बन्धकानां सङ्ख्येयत्वादेव सर्वत्र सङ्ख्येयगुणत्वमुक्तम्, असङ्ख्येयगुणत्वं नोक्तमित्यर्थः । अत्र परत्र चाऽसङ्ख्यातभागहान्यसङ्ख्यातभागवृद्धिबन्धकाः स्वयं ज्ञेयाः । ॥४०२॥ अथ तीर्थकरनाम्नोऽल्पबहुत्वं दर्शयति--

तित्थरस अवत्तव्वा असंखियगुणा अवट्ठिअस्स तओ ।
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा णेया ॥४०३॥

(प्रे०) 'तित्थ०'इत्यादि, तीर्थकरनाम्नोऽवक्तव्यबन्धकेभ्योऽवस्थितबन्धका असङ्ख्यगुणा अर्थादवक्तव्यबन्धका अल्पाः, ततोऽवस्थितपदबन्धका असङ्ख्यगुणाः, कुत इति चेदुच्यते,-केषाञ्चिन्मनुष्यगतिस्थानां मनुष्यगतेर्निर्गत्य नारकत्वेनोत्पन्नानां च सङ्ख्यातजीवानामेवाऽवक्तव्यबन्धकत्वादवक्तव्यबन्धकाः सङ्ख्याताः,अवस्थितबन्धकाः पुनरसङ्ख्याता देवनारकाः, अतोऽवक्तव्यबन्धकेभ्योऽवस्थितबन्धका असङ्ख्येयगुणा इति । 'तओ' त्ति अवस्थितपदबन्धकेभ्यः सङ्ख्यातभागसङ्ख्येयगुणाऽसंख्येयगुणहानीनां प्रत्येकमुत्तरोत्तरं बन्धकाः 'असंखियगुणा' त्ति असङ्ख्येयगुणाः । अयमर्थः-अवस्थितपदबन्धकेभ्यः सङ्ख्येयभागवृद्धिहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः । ततश्च सङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, परस्परं समानाः । ततोऽप्य

सङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणप्रमाणाः । ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिकाः । ॥४०३॥ अथौघत उक्तशेषप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाचष्टे--

सेसाण बंधगाऽप्पा अवट्ठिअस्स य कमा असंखगुणा ।
संखंसगुणिअहाणिअवत्तव्वअसंखगुणिअहाणीणं ॥४०४॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'सेसाण'इत्यादि, उक्तशेषाणामर्थात् पुरुषवेद-हास्यरति-शोका-ऽरत्यौ-दारिकशरीर-जिननामा-ऽऽहारकद्विकरहितशेषाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां चतुःषष्टेरवस्थितपदस्य बन्धकाः सर्वाल्पाः सन्ति 'कमा असंखगुणा'इत्यादि,-ततः सङ्ख्यातभागहानिबन्धकाः सङ्ख्यातगुणहानिबन्धका अवक्तव्यबन्धका असङ्ख्यातगुणहानिबन्धकाः क्रमश उत्तरोत्तरमसङ्ख्येयगुणा वक्तव्याः । 'सव्वत्थ सहाणिसमा' इत्यादिगाथया हानिबन्धकतुल्या वृद्धिबन्धका वक्तव्यास्तत्राऽप्यसङ्ख्यातगुणवृद्धिबन्धका असङ्ख्यातगुणहानिबन्धकेभ्यो विशेषाधिका ज्ञेयाः, ततश्चाऽल्पबहुत्वमेवम्-अवस्थित बन्धका अल्पाः, ततः सङ्ख्यातभागहानिबन्धकाः सङ्ख्यातभागवृद्धिबन्धका वाऽसंख्येयगुणाः परस्परं च तुल्याः, ततः सङ्ख्यातगुणहानि-सङ्ख्यातगुणवृद्धिबन्धका वाऽसङ्ख्येयगुणाः परस्परं च समाना इति । ततोऽप्यवक्तव्यपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः । ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः ।

अत्रावक्तव्यपदे हेतुस्तु पुरुषवेदसत्काऽल्पबहुत्वे यथोक्तस्तथैव विज्ञेयः । तथाऽत्राऽनन्तभागवृद्धिहानी न सम्भवतः, अतस्ते न कथनीय इति ॥४०४॥

अथादेशतः कायौघादिमार्गणासु प्रकृताल्पबहुत्वमोघवदतिदिशन्नाह--

ओघव्व अत्थि काये लोहअचक्खुभवियेसु आहारे ।
परमत्थि अवत्तव्वो लोहे णावरणणवगविग्घाणं ॥४०५॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'ओघव्व' इत्यादि, काययोगौघे लोभकषाय-अचक्षु-र्भव्यमार्गणास्वाहारिमार्गणायां चेति सर्वसङ्ख्यया पञ्चसु मार्गणाभेदेषु स्वस्वसम्भाव्यमानप्रकृतीनां सम्भाव्यमानवृद्धिहान्यादीनां बन्धकानामल्पबहुत्वम् 'ओघव्व' त्ति ओघवक्तव्यतातुल्यमेव ज्ञातव्यम् । 'परम्' ति किन्त्वत्र 'अवत्तव्वो लोहे णावरणणवगविग्घाणं' इति लोभकषायमार्गणायां पञ्चज्ञानावरणानि चतुर्दर्शनावरणानि चेत्याऽऽवरणनवकं पञ्चाऽन्तरायप्रकृतयश्चेति चतुर्दशप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धो न भवतीति ओघतो विशेषः, शेषं तु ओघवदेवाऽत्र । तत्कारणं चाऽत्रोक्तमार्गणास्वपि बन्धका जीवा ओघवदनन्ताः सम्भवन्ति, तथैव तासु मार्गणासु श्रेणिरपि सम्भवतीति ॥४०५॥

अथ नरकौघादिमार्गणासु अल्पबहुत्वमाह--

णिरयपढमाइछणिरयतइआइगअट्ठमंतदेवेसुं ।
णाणावरणपणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणं ॥४०६॥ (गीतिः)
धुवणामुरलदुगाणं विग्घाण अवट्ठिआ असंखगुणा ।
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा णेया ॥४०७॥

(प्रे०) 'णिरय०' इत्यादि, नरकौघः, प्रथमादिषण्नरकमार्गणाः, 'तइआइगअट्ठमंतदेवेसु' ति तृतीयसनत्कुमाराद्यष्टमसहस्रारान्तसुरभेदाश्चेति सर्वसङ्ख्यया त्रयोदशमार्गणासु कासां प्रकृतीनामित्याह-'णाणा'इत्यादि,ज्ञानावरणपञ्चक-पञ्चेन्द्रियजाति-पराघातो-च्छ्वास-त्रसचतुष्काणां तथा नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतीनामगुरुलघू-पघात-निर्माण-वर्णचतुष्क-तैजस-कार्मणरूपाणां तथौदारिकद्विकस्य विघ्नानां=पञ्चान्तरायाणामिति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाविंशतिप्रकृतीनाम् 'अवट्ठिआ असंखगुणा' इत्यादि, अत्राऽवस्थितपदबन्धकाः सर्वाल्पा इत्यनुक्तमपि तात्पर्येण बोध्यम् । ततोऽवस्थितपदबन्धकेभ्यश्च सङ्ख्यातभागहानेस्तद्वृद्धेश्च बन्धका असङ्ख्येयगुणाः, परस्परं समानाश्च । तदपेक्षया पुनः सङ्ख्यातगुणहानि-वृद्धिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः । ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः ततोऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति ज्ञेयम् ॥४०६-४०७॥

अथ तत्रैव नरायुषोऽल्पबहुत्वं वक्ति—

हुन्ति कमा संखगुणा अवट्ठिआ बंधगा णराउस्स ।
संखंसगुणूणअवत्तव्वअसंखगुणहाणीगं ॥४०८॥

(प्रे०) 'हुन्ति' इत्यादि, पूर्वोक्तासु नरकौघादित्रयोदशमार्गणासु 'णराउस्स' त्ति नरायुषः 'कमा संखगुणा अवट्ठिआ' इत्यादि, अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाल्पाः, ततः क्रमशः 'संखंसगुणूणअवत्तव्वअसंखगुणहाणीणं' ति संख्येयभागहानि-वृद्धिबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, परस्परं समानाश्च, ततः सङ्ख्येयगुणहानि-वृद्धिबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, परस्परं समानाः, ततोऽवक्तव्यबन्धकाः संख्येयगुणाः ततोऽप्यसंख्येयगुणहानिबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः, ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिकाः समधिगम्याः ।

मनुष्यायुषो बन्धकानां सङ्ख्येयत्वादत्रोत्तरोत्तरं वृद्धिहानिबन्धकाः सङ्ख्येयगुणाः प्रोक्ताः न त्वसङ्ख्येयगुणा इति ॥४०८॥

अथ तत्रैवोक्तशेषप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

सेसाणोघव्व परमणंतगुणा जहि तहिं असंखगुणा ।
णत्थि अवत्तव्वो धुववीसाए तह सुरेसु तित्थस्स ॥४०९॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'सेसाण' इत्यादि, पूर्वोक्तासु नरकौघादित्रयोदशमार्गणासु उक्तशेषाणां सम्भाव्यमानोक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वम् ओघवत्=ओघवक्तव्यतानुसारेणैव भवति, अत ओघत एव द्रष्टव्यम् । अत्र चौघतो यो विशेषोऽस्ति तं तु 'परम्' इत्यादिना कथयति 'परमणंतगुणा जहिं तहिं असंखगुणा' त्ति किन्तु ओघवक्तव्यतायां यासां प्रकृतीनां यत्र पदेऽनन्तगुणा बन्धकाः कथिताः, तासां तत्र पदेऽत्राऽसङ्ख्येयगुणा बन्धका वाच्याः, कुतः ? मार्गणागतजीवानामसङ्ख्येयत्वादिति । अन्यच्च 'णत्थि अवत्तव्वो धुवबीसाए' त्ति विंशतिध्रुवबन्धिप्रकृतीनामुक्तमार्गणास्ववक्तव्यबन्धो न सम्भवति पञ्चमादिगुणस्थानकानामभावात् । ताश्चेमा विंशतिप्रकृतयः—स्त्यानर्धित्रिकरहिताः षड्दर्शनावरणप्रकृतयः, अनन्तानुबन्धिरहिता द्वादशकषायाः, भय-जुगुप्से चेति । 'तह सुरेसु तित्थस्स' त्ति तथोक्ततृतीयाद्यष्टमान्तसुरमार्गणाभेदेषु तीर्थकरनाम्नोऽवक्तव्यबन्धो नास्तीत्यपि विशेषः ॥४०९॥

अथ सप्तमनरकमार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वं दर्शयति—

णिरयव्व तमतमाए सप्पाउग्गाण होइ अप्पबहू ।
परमत्थि तिरिणरदुगदुगोआणं थीणगिद्धिव्व ॥४१०॥

(प्रे०) 'णिरयव्व' इत्यादि, 'तमतमाए' त्ति सप्तमतमस्तमानरकमार्गणायां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनाम् 'अप्पबहू' त्ति प्रक्रान्तं वृद्धिहान्यादिबन्धकानामन्योन्याऽपेक्षयाऽल्पबहुत्वं 'णिरयव्व' त्ति नरकौघमार्गणावदेव भवति । अत्र च नरकौघमार्गणावदतिदेशे कृते यदपवादपदं सम्भवति तदत्र 'परम०' इत्यादिना वक्ति 'परम्' किन्त्वत्र 'तिरिणरदुगदुगोआणं' ति तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वीरूपं तिर्यग्द्विकम्, एवं मनुष्यद्विकम्, उच्चैर्नीचैर्लक्षणं गोत्रद्विकञ्चेति षट्प्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वं 'थीणगिद्धिव्व' त्ति स्त्यानर्द्धिवद्भवति । अर्थात् मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोरवक्तव्यपदबन्धका सम्यग्दृष्टयः प्रथमसमयस्था एव तथा तिर्यग्द्विक-नीचैर्गोत्रयोरवक्तव्यपदबन्धका मिथ्यादृष्टयः प्रथमसमयस्था एव । इत्थमवक्तव्यबन्धस्याऽत्र विवक्षितसमये जायमानत्वादवक्तव्यबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, ततोऽवस्थितपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः । हेतुः पूर्ववद् भावनीयः । शेषसर्वं तु नरकौघमार्गणावदेव विज्ञेयम् ॥४१०॥

अथ तिर्यगोघमार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

तिरिये अप्पाबहुगं सप्पाउग्गाण होइ ओघव्व ।
णवरं ण अवत्तव्वो धुवबंधीण पणतीसाए ॥४११॥

(प्रे०) 'तिरिये' इत्यादि, तिर्यगोघमार्गणायां स्वप्रायोग्यप्रकृतीनां प्रकृतमल्पबहुत्वं ओघवक्तव्यतातुल्यं भवतीति तत्रत एव द्रष्टव्यम् । नवरं पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां 'ण अवत्तव्वो'

त्ति अवक्तव्यबन्धो न वाच्य इति विशेषः । अत्राऽनन्तानुबन्धिचतुष्काऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-स्त्यानर्द्धित्रिक-मिथ्यात्वरहिताः शेषाः पञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतयो ग्राह्याः । अत्रोक्तपञ्चत्रिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतिषु दर्शनावरणषट्कं, भय-जुगुप्से, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं, सञ्ज्वलनचतुष्कञ्चेति षोडशप्रकृतीनां प्रकृताल्पबहुत्वमित्थम्—अनन्तभागवृद्धिहानिबन्धकाः सर्वाल्पाः, परस्परं तुल्याश्च । ततोऽवस्थितबन्धका अनन्तगुणाः ।ततश्च संख्येयभागवृद्धिहानिबन्धका असंख्येयगुणाः ।ततश्च सङ्ख्येयगुणवृद्धिहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः । ततोऽसङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति । तथा ज्ञानावरणपञ्चकम्, अन्तरायपञ्चकम्,नाम्नो नवध्रुवबन्धिन्य इत्येकोनविंशतिप्रकृतीनामल्पबहुत्वमित्थम्—अवस्थितबन्धका अल्पाः, ततः सङ्ख्येयभागवृद्धिहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततो दर्शनावरणषट्कवज्ज्ञेयम् ।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्यावक्तव्यपदबन्धका अल्पाः, ततोऽनन्तभागवृद्धि-हानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः परस्परं तुल्याश्च । कुतः ? पञ्चमादिगुणस्थानतश्चतुर्थादिगुणस्थानं गच्छतां जीवानां चतुर्थादिगुणस्थानतो प्रथमगुणस्थानं यद्वा प्रथमगुणस्थानतश्चतुर्थादिगुणस्थानं प्राप्तजीवेभ्योऽसंख्येयगुणहीनत्वादिति । ततोऽवस्थितपदबन्धका अनन्तगुणाः, ततः संख्येयभागवृद्धिहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः परस्परं समानाः,ततः सङ्ख्येयगुणवृद्धिहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः परस्परं तुल्याः,ततोऽसङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽप्यसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः ।

हास्य-रति-शोका-ऽरति-पुरुषवेदरूपाणां पञ्चप्रकृतीनामनन्तभागवृद्धिहानिबन्धका अल्पाः, ततोऽवस्थितपदबन्धका अनन्तगुणाः, ततः सङ्ख्यातभागवृद्धिहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः परस्परं तुल्याः, ततः सङ्ख्यातगुणवृद्धिहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणा अन्योन्यं तुल्याः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽसङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिकाः ।

स्त्यानद्ध्र्यष्टकौ-दारिकशरीरनाम्नोरवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वाल्पाः, ततोऽवस्थितपदबन्धका अनन्तगुणाः, तदनन्तरं सर्वं पूर्वोक्तज्ञानावरणादिवदल्पबहुत्वं ज्ञेयम् ।

उक्तशेषचतुःषष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतीनां त्ववस्थितपदबन्धकाः सर्वाल्पाः, ततः सङ्ख्येयभागवृद्धिहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणा इत्यादिकं सर्वमल्पबहुत्वं पूर्वोक्तहास्य-रत्यादिवत्कथनीयमिति ॥४११॥

अथ पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

णेयं पणिंदितिरिये तिरिव्व सव्वाण परमणंतगुणा ।
जेसिं चउतीसाए अवट्ठिअस्स सिमसंखगुणा ॥४१२॥

(प्रे०) 'णेयं' इत्यादि, 'पणिंदितिरिये' त्ति पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणायां 'सव्वाण' त्ति सर्वासां बध्यमानप्रकृतीनां प्रक्रमात्सम्भाव्यमानतत्तद्वृद्धिहान्यादीनां बन्धकाऽल्पबहुत्वं 'तिरिव्व' त्ति पूर्वगाथादर्शिततिर्यगोघमार्गणातुल्यं वक्तव्यम् । यश्चाऽत्र तिर्यगोघमार्गणातो विशेषस्तं दर्शयति 'परम०' इत्यादिना 'परम्' किन्तु यासां चतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनामवस्थितपदस्य बन्धकाः तिर्यगोघमार्गणायामनन्तगुणाः प्रोक्तास्तासां चतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनामवस्थितपदबन्धका अत्राऽसङ्ख्येयगुणा वक्तव्याः,मार्गणागतजीवानामसङ्ख्येयत्वात् । ताश्चेमा नामतश्चतुस्त्रिंशत्प्रकृतयः-दर्शनावरणनवकम् , मिथ्यात्वम्, औदारिकशरीरम् , षोडशकषायाः,स्त्री-नपुंसकवेदरहितशेषसप्तनोकषायाश्चेति ॥४१२॥

अथ पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्-तिरश्चीमार्गणयोस्तदाह–

दुपणिंदियतिरियेसुं पणिंदितिरियव्व होइ सव्वेसिं ।
अप्पबहू णवरि भवे ओरालतणुस्स सायव्व ॥४१३॥

(प्रे०) 'दुपणिदि०'इत्यादि, सुगमा, औदारिकशरीरस्य सातावदतिदेशे हेतुस्तु पर्याप्तत्वेनौदारिकशरीरस्य परावर्तमानत्वादवक्तव्यबन्धका सङ्ख्यातगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धकेभ्योऽसङ्ख्यगुणाः सन्तीति ॥४१३॥

अथाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिमार्गणासु प्रकृताऽल्पबहुत्वं दर्शयितुकाम आह––

असमत्तपणिंदितिरियमणुयपणिंदियतसेसु सव्वेसुं ।
एगिंदियविगलिंदियपुहविदगवणेसु णायव्वा ॥४१४॥
धुवउरलाणं थोवा अवट्ठिअस्स य तओ असंखगुणा ।
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा णेया ॥४१५॥
सेसाण कमा णेया अवट्ठिआ बंधगा असंखगुणा ।
संखंसगुणिअहाणिअवत्तव्वअसंखगुणिअहाणीणं ॥४१६॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'असमत्त०'इत्यादि, 'असमत्तपणिंदितिरियमणुय' त्ति अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मार्गणा, अपर्याप्तमनुष्यमार्गणा, 'पणिंदियतसेसु'त्ति अपर्याप्तशब्दस्याऽत्राऽपि सम्बन्धादपर्याप्तपञ्चेन्द्रियमार्गणाऽपर्याप्तत्रसमार्गणा च तासु 'सव्वेसुं एगिंदियविगलिंदियपुहविदगवणेसु' त्ति अत्र 'सर्वेषु' इति पदं प्रत्येकं योजनीयम् , ततश्चाऽयमर्थः–सर्वेष्वेकेन्द्रियभेदेषु, सर्वेषु विकलेन्द्रियभेदेषु, सर्वेषु पृथ्वीकायभेदेषु, सर्वाऽप्कायभेदेषु, सर्ववनस्पतिकायभेदेषु चेति सर्वसङ्ख्यया पञ्चचत्वारिंशन्मार्गणासु 'धुवउरलाणं' ति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरस्य च ''अवट्ठिअस्स थोवा''त्ति अवस्थितपदस्य बन्धका अल्पाः, 'तओ असंख-

गुणा संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा' त्ति ततोऽवस्थितबन्धकाऽपेक्षया सङ्ख्येयभागवृद्धिहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, परस्परं समानाः, तदपेक्षया सङ्ख्येयगुणवृद्धिहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततश्चाऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका वेदितव्याः । **'सेसाण'** त्ति उक्तशेषाणां अत्रोक्तमार्गणासु स्वस्वप्रायोग्याऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरवैक्रियाष्टकाहारकद्विकजिननामवर्जानामेकषष्टेरध्रुवबन्धिप्रकृतीनामित्यर्थः, तासां किमित्याह–**'कमा णेया'** इत्यादि, अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, ततः क्रमशोऽर्थादवस्थितपदबन्धकेभ्यः संख्येयभागहानिबन्धकाः संख्येयभागवृद्धिबन्धका वा असंख्येयगुणाः, परस्परं समानाश्च, तदपेक्षया संख्येयगुणहानि वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं समानाः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धका असंख्येयगुणाः । ततश्चाऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽप्यसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति ॥४१४-४१५-४१६॥

अथ मनुष्यौघमार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

ओघाहारदुगव्व उ आहारदुगविउवऽट्ठगाण णरे ।
तित्थस्स सयं णेयाऽवत्तव्वस्सऽत्थि संखगुणा ॥४१७॥
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं अवट्ठिआ कमसो ।
सेसाणोघव्व णवरि धुवुरलपणणोकसायाणं ॥४१८॥
हुन्ति असंखेज्जगुणा अवट्ठिआण धुवबंधिवीसाए ।
पयडीणं संखगुणा अत्थि अणंतंसहाणीए ॥४१९॥

(प्रे०) **'ओघा०'** इत्यादि, **'णरे'** त्ति नरौघमार्गणायाम् **'आहारदुग'** त्ति आहारकशरीराऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणमाहारकद्विकम् , **'विउवऽट्ठगाण'** त्ति वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्ग-देवगति-देवानुपूर्वी-नरकगति-नरकानुपूर्वी-देवायुर्नरकायुर्भेदभिन्नं वैक्रियाऽष्टकञ्चेति दशप्रकृतीनां प्रस्तुतसंख्येयभागवृद्ध्यादिपदानां बन्धकाऽल्पबहुत्वम् **'ओघाहारदुगव्व'** त्ति ओघवक्तव्यतायामाहारकद्विकस्याऽल्पबहुत्वं यथा प्रोक्तं तथैव तत्तुल्यमेवाऽत्र वक्तव्यम् ।

तथाहि अत्राऽवस्थितपदबन्धकाः सर्वाल्पाः, तदपेक्षया संख्येयभागहानि-वृद्धिबन्धकाः संख्येयगुणाः, परस्परं समानाः, ततः संख्येयगुणहानिवृद्धिबन्धकाः संख्येयगुणा अन्योन्यं तुल्याः । ततोऽप्यवक्तव्यपदबन्धकाः संख्येयगुणाः । ततश्चाऽसंख्येयगुणहानिबन्धकाः संख्येयगुणास्ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका भवन्तीति ।

'तित्थस्स' इत्यादि, **'तित्थस्स'** त्ति तीर्थस्य=तीर्थकरनामकर्मणोऽवक्तव्यबन्धकाना-

मल्पबहुत्वं स्वयं ज्ञेयम्- स्वयं विचारणीयम् , अयमत्राभिप्रायः—यद्यवक्तव्यपदबन्धका अवस्थितपदबन्धकेभ्योऽल्पास्तर्हि अवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वस्तोका वक्तव्याः, यद्यवक्तव्यपदबन्धकेभ्योऽवस्थितपदबन्धका अल्पास्तर्हि संख्यातगुणहानिपदबन्धकेभ्योऽप्यवक्तव्यबन्धकाः संख्यातगुणा वाच्याः । **'अवट्ठिआ'** त्ति अवस्थितात्=अवस्थितबन्धकेभ्यः **'कमसो'** त्ति क्रमशः संख्येयभागहानि-संख्येयभागवृद्धिबन्धकाः संख्येयगुणाः, परस्परं च तुल्याः । ततः संख्येयगुणहानिसंख्येयगुणवृद्धिबन्धकाः संख्येयगुणाः, अन्योन्यं च समानाः ततश्चाऽसंख्येयगुणहानिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततोऽप्यसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः । **'सेसाण'**इत्यादि, अत्र मनुष्यौघमार्गणायां शेषाणां पूर्वोक्तैकादशप्रकृतिवर्जितशेषसर्वनवाऽधिकशतप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वम् ओघवत्=ओघवक्तव्यता तुल्यं भवति ।

अत्रौघवक्तव्यतापेक्षया यदपवादपदं सम्भवति तद्दर्शयति **'णवरि'** इत्यादिना—**'णवरि'** त्ति किन्तु **'धुवरल०'** इत्यादि, सर्वध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीरस्य हास्यरतिशोकारतिपुरुषवेदरूपपञ्चनोकषायाणां चाऽवस्थितपदस्य बन्धका असंख्येयगुणा वक्तव्याः । अन्यच्च **'धुवबंधिवीसाए'** इत्यादि, स्त्यानर्द्धित्रिकरहितषण्णां दर्शनावरणप्रकृतीनामनन्तानुबन्धिरहितशेषद्वादशकषायाणां, भयजुगुप्सानोकषाययोश्चेति सर्वसंख्यया विंशतिध्रुवबन्धिप्रकृतीनां अनन्तभागहानेर्बन्धकाः संख्येयगुणा वक्तव्या इत्यपि विशेषः ।

ततश्चाऽत्राऽल्पबहुत्वमित्थं जातम्—पञ्चज्ञानावरणानि, स्त्यानर्द्धित्रिकम् , अनन्तानुबन्धिचतुष्कम् , मिथ्यात्वम् , पञ्चाऽन्तरायाणि, नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतयः, औदारिकशरीरञ्चेत्यष्टाविंशतिप्रकृतीनामवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वाल्पाः,ततोऽवस्थितपदबन्धका असंख्यगुणाः,ततश्च संख्येयभागहानितद्वृद्धिबन्धकाः, संख्येयगुणहानितद्वृद्धिबन्धकाः, असंख्येयगुणहानिबन्धकाश्च क्रमशः पूर्वपूर्वाऽपेक्षयाऽसंख्येयगुणा विज्ञेयाः । ततोऽप्यसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः । एवमत्र या उक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतयः सन्ति ताश्चैताः- अनन्तानुबन्धिरहितद्वादशकषायाः, भयजुगुप्से, दर्शनावरणचतुष्कम् , निद्रा प्रचला चेत्यासां विंशतिप्रकृतीनामवक्तव्यपदबन्धका अल्पास्तदपेक्षया चाऽनन्तभागवृद्धिबन्धका अनन्तभागहानिबन्धकाश्च संख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याश्च, ततोऽवस्थितपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततश्च सङ्ख्यातभागहानि-तद्वृद्धिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, परस्परं च तुल्याः, ततः संख्यातगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं समानाः, ततश्चाऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः । पुरुषवेद-हास्य-रति-शोका-ऽरतिमोहनीयानामनन्तभागहानिबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, ततोऽवस्थितपदबन्धका असंख्यगुणाः, ततश्च क्रमशः संख्यातभागहानि-तद्वृद्धिबन्धकास्ततः संख्येयगुणहानितद्वृद्धिबन्धकास्ततोऽवक्तव्यपदबन्धकास्ततश्चाऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः पूर्वपूर्वाऽपेक्षया ज्ञातव्याः ।

ततोऽप्यसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः । तथोक्तशेषाणां पुरुषवेद-हास्य-रति-शोका-ऽरति जिननामा-ऽऽहारकद्विक-वैक्रियाऽष्टकौदारिकशरीरनामरहितशेषसर्वाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवस्थि-तपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः । ततः क्रमशः संख्येयभागहानिबन्धकाः संख्येयगुणहानिबन्धका अव-क्तव्यबन्धका असंख्यातगुणहानिबन्धका पूर्वपूर्वाऽपेक्षयाऽसंख्येयगुणा वक्तव्याः । '**सव्वत्थ सहाणिसमा**'इत्यादि गाथया सर्वत्र स्वहानिबन्धकतुल्या वृद्धिबन्धका वक्तव्याः । तत्राऽप्यसंख्येय-गुणवृद्धिबन्धका असंख्येयगुणहानिबन्धकेभ्यो विशेषाधिका वेदितव्याः ॥४१७-४१८-४१९॥

अधुना पर्याप्तमनुष्य-मनुष्ययोनिमतीमार्गणयोः प्रस्तुताऽल्पबहुत्वमभिधित्सुराह—

पज्जणरमणुस्सीसु पणणाणावरणविग्घमिच्छाणं ।
थीणद्धितिगाणाणं तह णवधुवबंधिणामाणं ॥४२०॥
थोवाऽवत्तव्वस्स उ तो संखगुणा अवट्ठिअस्स तओ ।
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा णेया ॥४२१॥

(प्रे०) 'पज्ज०' इत्यादि, अक्षरार्थस्तु सुगमः । भावार्थः पुनरयम्- पर्याप्तमनुष्यमनुष्ययो-निमतीमार्गणयोः पञ्चज्ञानावरणानि, पञ्चाऽन्तरायाणि, मिथ्यात्वम्, स्त्यानर्द्धित्रिकम्, अन-न्तानुबन्धिचतुष्कम्, नाम्नो नवध्रुवबन्धिप्रकृतयश्चेति सर्वसंख्यया सप्तविंशतिप्रकृतीनां '**थोवा**' इत्यादि, अवक्तव्यपदबन्धकाः स्तोकाः सन्ति, तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततः संख्येयभागहानेस्तादृग्वृद्धेश्च बन्धकाः संख्येयगुणाः, अन्योन्यं च समानाः,ततः संख्येयगुणहानेस्ता-दृग्वृद्धेश्च बन्धकाः संख्येयगुणाः, परस्परं समानाश्च, ततश्चाऽसंख्येयगुणहानिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका वेदितव्याः । अत्र मार्गणागतजीवानां संख्येयत्वादेवा-ऽवस्थितादिपदबन्धकाः पूर्वपूर्वपदापेक्षया संख्येयगुणाः प्रोक्ता इति ॥४२०-४२१॥

अथ तत्रैवाऽन्यासां बध्यमानप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं दर्शयितुमाऽऽह—

सेसधुवबंधिणीणमवत्तव्वाऽणंतभागहाणीए ।
संखगुणा ताउ अवट्ठिअस्स पुव्वव्व तेण परं ॥४२२॥
पुमदुजुगलाण णेया सव्वऽप्पाऽणंतभागहाणीए ।
ताओ अवट्ठिअस्स य संखेज्जगुणा मुणेयव्वा ॥४२३॥
ताहिन्तो विण्णेया कमसो संखंसगुणिअहाणीणं ।
ताउ अवत्तव्वस्स उ तओ असंखगुणहाणीए ॥४२४॥

मणुयव्व जिणस्स कमा संखगुणाऽवट्ठिआऽण्णेसिं।
संखंसगुणिअहाणिअवत्तव्वअसंखगुणिअहाणीणं ॥४२५॥(उद्गीतिः)

(प्रे०) 'सेस०' इत्यादि, पूर्वोक्तपर्याप्तमनुष्य-मनुष्ययोनिमतीमार्गणयोरुक्तशेषध्रुवबन्धिप्रकृतीनाम्, ताश्च नामत इमाः-अनन्तानुबन्धिरहितद्वादशकषायाः, भय-जुगुप्से, दर्शनावरणचतुष्कम्, निद्रा-प्रचले चेत्यासां विंशतिप्रकृतीनाम् 'अवत्तव्वाऽणंतभागहाणीए संखगुणा' त्ति अवक्तव्यपदबन्धकेभ्योऽनन्तभागहानेर्बन्धकाः संख्येयगुणाः, अर्थादवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वाल्पाः, तदपेक्षया चाऽनन्तभागहानिबन्धका उपलक्षणादनन्तभागवृद्धिबन्धका अपि संख्येयगुणा ज्ञेयाः। 'तओ अवट्ठिअस्स' त्ति ततः-अनन्तभागहानिबन्धकेभ्योऽवस्थितपदबन्धकाः 'संखगुणा' इति पदमत्राऽपि मध्यमणिन्यायेन योजनीयम्, ततश्च संख्येयगुणा बन्धका इति गम्यते। 'पुव्वव्व तेण परं' ति अवस्थितपदादनन्तरं सर्वमल्पबहुत्वं पूर्वगाथावदेव विज्ञेयम्, तच्चैवम्-अवस्थितपदबन्धकेभ्यः संख्येयभागहानेस्तद्वृद्धेश्च बन्धकाः संख्येयगुणाः, अन्योन्यं समानाः। तदपेक्षया च संख्येयगुणहानेस्तद्वृद्धेश्च बन्धकाः संख्येयगुणाः, परस्परं समानाः। ततश्चाऽसंख्येयगुणहानेर्बन्धकाः संख्येयगुणाः। ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः। 'पुमदुजुगलाण' इत्यादि, गाथार्थः सुगमः। भावार्थस्त्वयम्-पुरुषवेदस्तथा हास्य-रतिमोहनीय-शोका-ऽरतिमोहनीयस्वरूपं युगलद्वयमिति पञ्चप्रकृतीनां प्रस्तुतमार्गणाद्वये अनन्तभागहानिवृद्धिबन्धकाः सर्वाल्पाः सन्ति। तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धकाः संख्येयगुणा ज्ञातव्याः। ततश्च संख्येयभागहानिबन्धकास्तद्वृद्धिबन्धकाश्च संख्येयगुणाः, परस्परं समानाः। ततः संख्येयगुणहानिबन्धकास्तद्वृद्धिबन्धकाश्च संख्येयगुणाः परस्परं तुल्याः। ततोऽप्यवक्तव्यपदबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धकाः संख्येयगुणाः। ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः। अत्र जीवानां संख्येयत्वादेव बन्धकानामपि पूर्व-पूर्वापेक्षया संख्येयगुणत्वं निरूपितमस्ति। 'मणुयव्व जिणस्स' त्ति जिननाम्नोऽल्पबहुत्वमत्र सर्वथा मनुष्यौघवत् कथनीयम्। 'कमा' इत्यादि, पूर्वोक्तमार्गणाद्विके उक्ताऽन्यप्रकृतीनामुक्तशेषसप्तषष्टिसंख्याकाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामित्यर्थः। तासामत्राऽवस्थितपदबन्धकाः सर्वस्तोकाः, अवस्थितपदबन्धकेभ्यः संख्येयभागहानि-वृद्धिबन्धकाः संख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याश्च ज्ञेयाः। ततश्च संख्येयगुणहानिबन्धकास्तद्वृद्धिबन्धका वा संख्येयगुणाः, अन्योन्यं समानाश्च। तदपेक्षयाऽवक्तव्यपदबन्धकाः संख्येयगुणाः, परावर्तमानप्रकृतित्वादवक्तव्यबन्धका अधिका उक्ताः। ततश्चासंख्येयगुणहानिबन्धकाः संख्येयगुणाः। ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः। ॥४२२-४२५॥

अथेशानान्तसुरभेदेषु वैक्रियकाययोगे च प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं दर्शयति—

जाइदुगुवंगथावरतसायवाण सुरकप्पदुगअंते ।
ओघव्व जिणस्स वि खलु विउवे सेसाण तइअकप्पव्व ॥४२६॥(गीतिः)

(प्रे०) 'जाइदुग०' इत्यादि, 'सुरकप्पदुगअंते' त्ति ईशानसुरान्तेषु सुरमार्गणाभेदेषु, सुरगत्योघः,भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क-सौधर्मे-शानसुरमार्गणाभेदाश्चेति षण्मार्गणास्वित्यर्थः 'जाइदुगुवंगथावरतसायवाणं' ति 'जातिद्विकम्' एकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियरूपं जातिद्विकम्, औदारिकाऽङ्गोपाङ्ग-स्थावर-त्रसा-ऽऽतपनाम्नां चेति सर्वसङ्ख्यया षट्प्रकृतीनां तथा जिणस्स वि खलु विउवे' त्ति वैक्रियकाययोगे जिनस्यापि=तीर्थंकरनाम्नोऽपीति सप्तप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वम् ओघवत्=ओघवक्तव्यतातुल्यं कथनीयम् । एकेन्द्रियादिषट्प्रकृतीनामल्पबहुत्वमेवम्—अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षया सङ्ख्येयभागहानि-तादृग्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं तुल्या भवन्ति, ततः सङ्ख्येयगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धका असङ्ख्येयगुणा अन्योन्यं समानाः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततश्चाऽसङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः । तथा वैक्रियकाययोगे जिननाम्नोऽल्पबहुत्वमेवम्—अवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वाल्पाः, ततोऽवस्थितपदबन्धका असंख्यगुणाः,ततः संख्यातभागहानि-तादृग्वृद्धिबन्धका असंख्यगुणाः, ततः संख्येयगुणहानि-तादृग्वृद्धिबन्धका असङ्ख्यगुणाः,ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्यगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति । 'सेसाण' त्ति शेषाणाम्—उक्तशेषसम्भाव्यमानबन्धानां प्रकृतीनामल्पबहुत्वं 'तइअकप्पव्व' त्ति 'तृतीयकल्पवत्' तृतीयसनत्कुमारसुरमार्गणावदर्थादस्मिन्द्वारे पुरा नरकौघादिना समं तृतीयसुरमार्गणायामल्पबहुत्वं यथा प्रोक्तम्,तत्तुल्यमेवाऽत्र शेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वमस्ति । अतस्तत्रत एव द्रष्टव्यं जिज्ञासुभिः॥४२६॥

अथ ग्रैवेयकसुरेष्वानतादिसुरेषु च तदाह—

तइअसुरव्वऽप्पबहू गेविज्जंतेसु आणयाईसु ।
सप्पाउग्गाण परं ण अवत्तव्वो णरदुगस्स ॥४२७॥

(प्रे० 'तइअ०'इत्यादि, 'गेविज्जंतेसु आणयाईसु' ति आनत-प्राणता-ऽऽरणा-ऽच्युतसुरमार्गणासु नवसु ग्रैवेयकसुरभेदेषु चेति सर्वसङ्ख्यया त्रयोदशमार्गणासु 'सप्पाउग्गाण'त्ति स्वस्वप्रायोग्यबध्यमानप्रकृतीनामल्पबहुत्वं 'तइअसुरव्व' त्ति सनत्कुमारसुरमार्गणावदेव कथनीयम् । 'परं' त्ति किन्तु 'ण अवत्तव्वो णरदुगस्स' त्ति नरगति-नरानुपूर्वीरूपस्य नरद्विकस्याऽवक्तव्यबन्धो न भवति तद्बन्धस्य नियमेन जायमानत्वादिति विशेषः । अत्र बध्यमानप्रकृतयोऽपि सनत्कुमारसुरमार्गणायामुक्तास्तिर्यक्त्रिकोद्योतरहिताः शेषसर्वा ग्राह्याः । तासां चाऽल्पबहुत्वं तत्र यथा प्ररूपितं तथैवाऽत्राऽपि दर्शनीयमिति ॥४२७॥

अथ पञ्चाऽनुत्तरसुरेष्वल्पबहुत्वमाचष्टे—

पणऽणुत्तरेसु बारससायाइणराउगाण विण्णेया ।
तइअसुरव्वऽण्णेसिं अवट्ठिअस्सऽत्थि बंधगा अप्पा ॥४२८॥(गीतिः)
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा असंखगुणा ।
णवरं संखेज्जगुणा सव्वेसिं अत्थि सव्वत्थे ॥४२९॥

(प्रे०) 'पण०' इत्यादि, पञ्चस्वनुत्तरसुरमार्गणाभेदेषु '**बारससायाइ**' त्ति द्वादशसातवेदनीयादयः, साता-ऽसात-हास्य-रति-शोका-ऽरति-स्थिरा-ऽस्थिर-शुभा-ऽशुभ-यशःकीर्त्य-यशःकीर्तिरूपाः, '**णराउगाण**' त्ति नरायुश्चेति सर्वसंख्यया त्रयोदशप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं '**तइअसुरव्व**'त्ति तृतीयसनत्कुमारसुरमार्गणावद्विज्ञेयम् । तच्चैवम्-द्वादशसातादीनामत्राऽवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः,तदपेक्षया संख्येयभागहानि-तादृग्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः,परस्परं समानाः, ततः संख्येयगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं च समानाः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततश्चाऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः ।

नरायुपश्चाऽत्राऽवस्थितपदबन्धका अल्पाः, ततः संख्येयभागहानि-तादृग्वृद्धिबन्धकाः संख्येयगुणाः । ततः संख्येयगुणहानिबन्धकास्तद्वृद्धिबन्धकाः संख्येयगुणाः, अन्योन्यं तुल्याः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततश्चाऽसंख्येयगुणहानिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततस्तादृग्वृद्धिबन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः ।

'**अण्णेसिं**' इत्यादि, '**अन्यासाम्**' उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनामत्राऽनुत्तरसुरमार्गणास्ववस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, ततस्संख्येयभागहानि-तादृग्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः परस्परं तुल्याः, ततः संख्येयगुणहानि-तादृग्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः परस्परं समानाः, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, ततोऽसङ्ख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेयाः । आसां प्रकृतीनां मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धित्वादवक्तव्यपदं नास्ति । '**नवरं**' किन्तु '**संखेज्जगुणा सव्वेसिं अत्थि सव्वत्थे**'त्ति यत्र पूर्वपदापेक्षयोत्तरपदेऽसंख्यगुणा उक्तास्तत्र सर्वपदेषु उत्तरोत्तरं संख्येयगुणा एव बन्धकाः सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणायां वक्तव्याः, मार्गणागतजीवानां संख्यातत्वादिति ॥४२८-४२९॥ अथ पञ्चेन्द्रिय-सामान्यादिमार्गणास्थानेषु प्रक्रान्तमल्पबहुत्वमाह—

ओघव्वऽत्थि पणिंदियतसेसु णवरं असंखियगुणेवं ।
पज्जपणिंदितसदुवयचक्खूसु परमुरलस्स सायव्व ॥४३०॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'ओघव्व' इत्यादि, पञ्चेन्द्रियौघ-त्रसौघमार्गणयोः सर्वबध्यमानप्रकृतीनामल्पबहुत्वमोघवद्भवति । ओघवदतिदेशे कृते यदपवादपदं तदाह 'णवरं' इत्यादिना, 'नवरं' किन्तु 'असंखगुणा' त्ति अत्र बन्धका असंख्येयगुणाः कथनीयाः । अर्थादोघवक्तव्यतायां येषु स्थानेष्वनन्तगुणा बन्धकाः प्रोक्ताः सन्ति, तेषु स्थानेष्वेवाऽसङ्ख्येयगुणा बन्धका कथनीया इति विशेषः । कुतः ? मार्गणागतजीवानामसंख्येयत्वात् । 'एवं पज्जपणिंदितसदुवयचक्खूसु' त्ति पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-पर्याप्तत्रसकाय-वचोयोगसामान्यव्यवहारवचोयोग-चक्षुर्दर्शनलक्षणासु पञ्चसु मार्गणासु अनन्तरोक्तमार्गणावदल्पबहुत्वं भवति । अथातिदेशे कृते यदपवादपदं तत् 'पर' मित्यादिना दर्शयति, 'परं' ति किन्तु 'उरलस्स सायव्व' त्ति औदारिकशरीरनाम्नोऽत्राऽल्पबहुत्वं सातवेदनीयवदर्थादोघवक्तव्यतायां सातवेदनीयस्याल्पबहुत्वं यथा वर्णितम् , तथैवाऽत्रौदारिकशरीरस्य प्रकृताऽल्पबहुत्वं वर्णनीयम् । तच्चैवम्—अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षया संख्यातभागहानि-तादृग्वृद्धिपदबन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं समानाः, ततः संख्यातगुणहानि-तादृग्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः, अन्योन्यं समानाः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति ॥४२०॥

अथ सर्वाऽग्निकाय-वायुकायभेदेष्वल्पबहुत्वं कथयन्नाह—

सव्वागणिवाऊसु सप्पाउग्गाणऽपज्जमणुयव्व ।
णवरं ण अवत्तव्वो हवेज्ज तिरियदुगणीआणं ॥४३१॥

(प्रे०) 'सव्वा०' इत्यादि, सर्वसप्ताऽग्निकायभेदेषु सर्वसप्तवायुकायभेदेषु च 'सप्पाउग्गाण' त्ति स्वप्रायोग्यबध्यमानप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वम् 'अपज्जमणुयव्व' त्ति अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्भवति । 'णवरं' इत्यादि, किन्त्वत्र तिर्यग्गति-तिर्यगानुपूर्वी नीचैर्गोत्राणामवक्तव्यपदं न भवतीति विशेषः । ततश्चाऽत्राऽल्पबहुत्वमित्थम्-सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामौदारिकशरीर-तिर्यग्द्विक-नीचैर्गोत्राणां चाऽवस्थितपदबन्धकाः स्तोकाः, तदपेक्षया संख्येयभागवृद्धिहानिबन्धका असंख्येयगुणाः परस्परं समानाः, ततः संख्येयगुणवृद्धिहानिबन्धका असंख्येयगुणा अन्योन्यं तुल्याः । ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः ततश्चाऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञातव्याः । उक्तशेषबन्धयोग्यचतुःपञ्चाशदध्रुवबन्धिप्रकृतीनां त्ववस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, ततः संख्येयभागहानि-तद्वृद्धिबन्धकाश्चाऽसंख्येयगुणाः, ततः संख्येयगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धकाश्चाऽसंख्येयगुणाः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धका असंख्येयगुणाः, ततश्चाऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः; ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति ज्ञेयम् ॥४३१॥

अथ मनोयोगादिमार्गणासु प्रकृतं दर्शयन् संज्ञिमार्गणायाश्चातिदिशन्तदाह—

सुरविउवदुगोरालियपरघाऊसासबायरतिगाणं ।
पणमणतिवयेसु सयमवत्तव्वस्स उ अवट्ठिअस्सऽप्पा ॥४३२॥(गीतिः)
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा असंखगुणा ।
पंचिंदियव्व णेयं सेसाणेमेव सण्णिम्मि ॥४३३॥

(प्रे०) 'सुर०' इत्यादि, शब्दार्थस्तु सुगमः । स चैवम्-सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकम्, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकम्, औदारिकशरीरं, पराघातो च्छ्वासौ, बादरत्रिकञ्चेति सर्वसंख्यया दशप्रकृतीनां 'पणमणतिवयेसु' त्ति पञ्चमनोयोगमार्गणाभेदाः तथा सत्यवचनयोगा-ऽसत्यवचनयोग-मिश्रवचनयोगाऽऽख्यास्त्रयो वचनयोगभेदास्तेषु प्रत्येकं प्रक्रमादल्पबहुत्वम् 'सयमवत्तव्वस्स' त्ति अवक्तव्यपदबन्धकाः कस्मिन्स्थाने कियद्गुणा इति स्वयं वक्तव्याः । अतोऽवक्तव्यपदवर्जशेषपदानामल्पबहुत्वमेवम्-'अवट्ठि०' इत्यादि, अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाल्पाः, ततः संख्येयभागहानि-तादृग्वृद्धिबन्धकाश्चाऽसंख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याश्च । ततः संख्येयगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः, अन्योन्यं समानाश्च । ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः । ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति । 'सेसाण' त्ति उक्तशेषपदशाधिकशतबध्यमानप्रकृतीनामत्राऽल्पबहुत्वं पञ्चेन्द्रियसामान्यमार्गणावद् भवति, तत्स्वयमेव ततो द्रष्टव्यम् । लाघवार्थं न पुनरुच्यते । 'एमेव' इत्यादि, संज्ञिमार्गणायां सर्वमल्पबहुत्वं मनोयोगमार्गणावज्ज्ञेयमिति ॥ ४३२-४३३ ॥

अथौदारिककाययोगमार्गणायामौदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायाञ्च तदाह--

सव्वाणोघव्वुरले परं जिणस्स उ णरव्वुरलमीसे ।
सुरविउवदुगजिणाण ण मिच्छस्सोघव्व सेसाणं ॥४३४॥
असमत्तणरव्व.........................

(प्रे०) 'सव्वाण०' इत्यादि, औदारिककाययोगमार्गणायां सर्वप्रकृतीनामोघवदल्पबहुत्वं भवति, निगोदजीवानां श्रेणिगतादिजीवानाञ्च सद्भावादिति । अत्रातिदेशे प्राप्तामतिव्याप्तिमुद्धरन्नाह-'परं' इत्यादि, 'परं' ति किन्तु 'जिणस्स' त्ति जिननाम्नोऽल्पबहुत्वं 'णरव्व' त्ति नरौघवद्भवति, प्रस्तुतमार्गणायां मनुष्याणामेव तद्बन्धकत्वात् ।

अथ 'उरलमीसे' त्ति औदारिकमिश्रकाययोगमार्गणायां 'सुरविउवदुगजिणाण' त्ति सुरगति-सुरानुपूर्वीरूपं सुरद्विकम्, वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकम्, जिननाम चेति पञ्चप्रकृतीनां 'ण' त्ति अल्पबहुत्वं न भवति । कथमिति चेत्, उच्यते, अत्रौदारिकमिश्रकाय-

योगमार्गणायामुक्तपञ्चप्रकृतीनां केवलमसङ्ख्येयगुणवृद्धेरेव बन्धकाः सम्भवन्ति, अवस्थिताद्यन्यपदानां बन्धो नैव भवति, अतोऽत्र तदल्पबहुत्वस्याऽप्यभाव एव । 'मिच्छस्सोघव्व' त्ति मिथ्यात्वमोहनीयप्रकृतेरोघवदेवाऽल्पबहुत्वं भवति, तच्चैवम्—अवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षयाऽवस्थितपदबन्धका अनन्तगुणा ज्ञेयाः, ततः संख्येयभागवृद्धितद्धानिबन्धका असङ्ख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः, ततः सङ्ख्येयगुणवृद्धितद्धानिबन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं समानाः, ततोऽसङ्ख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततस्तद्वृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति । शेषाणां= उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां सुरत्रिक-नरकत्रिकौ—दारिकशरीर-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विक-जिननामानीति द्वादशप्रकृतिवर्जितशेषैकषष्टिसंख्याकाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा मिथ्यात्ववर्जितशेषषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामिति सर्वसंख्यया सप्ताऽधिकशतप्रकृतीनामित्यर्थः । तासां च प्रक्रान्तमल्पबहुत्वम् 'असमत्तणरव्व' त्ति अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्भवति । अतोऽपर्याप्तमनुष्यमार्गणायां यथाऽल्पबहुत्वं निर्दिष्टं तथैवाऽत्राऽपि विज्ञेयमिति ॥४३४॥

अथ वैक्रियमिश्रकाययोगे तदाह—

............विउवमीसे वड्ढीअ सिं असंखगुणा ।
जाणऽत्थि अवत्तव्वो गुणवण्णाए ण सेसाणं ॥४३५॥

(प्रे०) 'विउवमीसे' इत्यादि, वैक्रियमिश्रकाययोगमार्गणायां यासामेकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनामवक्तव्यपदं सम्भवति 'सिं' ति तासां अवक्तव्यबन्धकेभ्यो 'वड्ढीअ' त्ति असंख्येयगुणवृद्धेर्बन्धका 'असंखगुणा' त्ति असंख्येयगुणाः । अर्थादवक्तव्यपदबन्धका अल्पाः, तदपेक्षयाऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका असंख्येयगुणा ज्ञातव्याः । अत्रावस्थितादिपदानामभावान्न तद्विषयकमल्पबहुत्वमिति । अत्रैकोनपञ्चाशत्प्रकृतयस्तु इमाः—तिर्यग्-मनुष्यायु-र्वैक्रियाऽष्टकौ-दारिकशरीरा-ऽऽहारकद्विक-पराघातोच्छ्वास-जिननाम-बादरत्रिक-सूक्ष्मत्रिक-विकलत्रिकरूपाः पञ्चविंशतिप्रकृतिवर्जिताः शेषाऽष्टचत्वारिंशदध्रुवबन्धिप्रकृतयः मिथ्यात्वमोहनीयञ्चेत्येकोनपञ्चाशत्प्रकृतयोऽत्र ग्राह्याः । 'ण सेसाणं' ति उक्तशेषबध्यमानत्रिपञ्चाशत्प्रकृतीनामत्राऽल्पबहुत्वं नास्ति । यतोऽत्रैकाऽसंख्येयगुणवृद्धिरेव भवितुमर्हति । अन्यपदानामऽसद्भावादत्र तदल्पबहुत्वस्याऽप्यसम्भव एव ॥ ४३५ ॥

अथाऽऽहारककाययोगे तदाह—

पज्जणरव्वाहारे बारससायाइजिणसुराऊणं ।
सव्वत्थव्व हवेज्जा सप्पाउग्गाण सेसाणं ॥४३६॥

(प्रे०) 'पज्ज०' इत्यादि, 'आहारे' त्ति आहारककाययोगमार्गणायां 'बारससायाइ' त्ति द्वादशसातादिप्रकृतीनां 'जिणसुराऊणं' ति जिननाम-सुरायुषोश्चेति सर्वसंख्यया चतुर्दश-

प्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वं 'पज्जणरव्व'त्ति पर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्भवति । अर्थादस्मिन्द्वारे पर्याप्तमनुष्यमार्गणायामुक्तप्रकृतीनामल्पबहुत्वं पूर्वं यथा प्रतिपादितमस्ति तथैवाऽत्राऽपि द्रष्टव्यम् । ग्रन्थगौरवभिया न पुनरुच्यतेऽत्रेति । 'सप्पाउग्गाण सेसाणं' ति एतन्मार्गणाप्रायोग्योक्तशेषैकोनपञ्चाशत्प्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं 'सव्वत्थव्व हवेज्जा' त्ति सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणावद्भवति, उभयत्र शेषप्रकृतीनामवक्तव्यपदस्याभावाद् मार्गणागतजीवानां संख्येयत्वाच्च । तच्चैवमल्पबहुत्वम् अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाल्पाः, ततः संख्येयभागहानि-तद्वृद्धिबन्धकाः संख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः, ततः संख्येयगुणहानितद्वृद्धिबन्धकाः संख्येयगुणाः, परस्परं समानाः, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञेया इति। ॥४३६॥

अथाऽऽहारकमिश्रकाययोगे प्रकृताऽल्पबहुत्वं व्याहरन्नाह—

आहारमीसजोगे बारससायाइजिणसुराऊणं ।
संखगुणाऽवत्तव्वा वड्ढीए णत्थि सेसाणं ॥४३७॥

(प्रे०) 'आहार०' इत्यादि, आहारकमिश्रकाययोगमार्गणायां साताऽसातादिद्वादशप्रकृतयो जिननाम सुरायुश्चेति चतुर्दशप्रकृतीनां 'संखगुणाऽवत्तव्वा वड्ढीए' त्ति अवक्तव्यपदबन्धकेभ्योऽसंख्येयगुणवृद्धेर्बन्धकाः संख्येयगुणा भवन्ति, अर्थादवक्तव्यपदबन्धकाः स्तोकाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धेर्बन्धकाः संख्येयगुणा ज्ञातव्याः । 'णत्थि सेसाणं' ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनामत्राऽल्पबहुत्वं नास्ति । कुत इति चेत् , तासामत्राऽसंख्येयगुणवृद्धिरूपमेकमेव पदं सम्भवति, अल्पबहुत्वं त्वनेकपदसद्भाव एव भवतीति ॥४३७॥

अथ कार्मणाऽनाहारकमार्गणयोः प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं वक्ति—

कम्माणाहारेसु छायालीसधुवबंधिणीण तहा ।
देवविउव्वदुगाणं उरालतित्थाण णेव भवे ॥४३८॥
मिच्छस्स अवत्तव्वा अणंतगुणिआ असंखियगुणाए ।
वड्ढीअ बंधगा खलु असंखियगुणाऽत्थि सेसाणं ॥४३९॥

(प्रे०) 'कम्मा०' इत्यादि, कार्मणकाययोगानाहारकमार्गणयोर्मिथ्यात्वरहितषट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा 'देवविउव्वदुगाणं' ति प्राकृतत्वाद् द्विवचने बहुवचनान्तप्रयोगः, अतो देवगति-देवानुपूर्वीरूपं देवद्विकम् , वैक्रियशरीर-वैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियद्विकञ्च तयोरित्यर्थः । 'उरालतित्थाण' त्ति औदारिकशरीरं तीर्थकरनाम च तयोरिति सर्वसंख्यया द्विपञ्चाशत्प्रकृतीनां नैव भवति । किमिति चेत् , वृद्ध्यादिपदानामल्पबहुत्वमत्र नैव सम्भवति, तासामेकस्यैव पदस्याऽत्र

सद्भावात्, अल्पबहुत्वं चाऽनेकपदसद्भाव एव भवतीत्यर्थः। 'मिच्छस्स' त्ति मिथ्यात्वमोहनीयस्य 'अवत्तव्वा अणंतगुणिआ असंखियगुणाए' त्ति अवक्तव्यात्-अवक्तव्यबन्धकेभ्योऽनन्तगुणा बन्धका असंख्येयगुणवृद्धेर्ज्ञातयाः। अवक्तव्यबन्धका अल्पाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका अनन्तगुणा इत्यर्थः। 'सेसाणं' ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनाम्, ताश्चाऽत्र सुरत्रिक-नरकत्रिकौदारिकशरीर-वैक्रियद्विका-ऽऽहारकद्विक-जिननाम-तिर्यग्मनुष्यायूरहिता एकोनषष्ट्यध्रुवबन्धिप्रकृतयो ग्राह्याः। तासां चाऽत्र 'वड्ढीअ बंधगा खलु असंखियगुणाऽत्थि' त्ति अत्र पूर्वार्धस्थितं 'अवत्तव्वा' इति पदमपि योजनीयम्, ततश्चाऽयमर्थः—अवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, अवक्तव्यबन्धकेभ्योऽसंख्येयगुणवृद्धेर्बन्धका असंख्येयगुणा भवन्तीत्यर्थः ॥४३८-४३९॥

अधुना स्त्री-पुरुषवेदमार्गणयोरल्पबहुत्वमाह—

सव्वाण मणव्व भवे पुमथीसु णवरि णो अवत्तव्वो।
संजलणावरणणवगविग्घाण णरव्व थीअ तित्थस्स ॥४४०॥

(प्रे०) 'सव्वाण' इत्यादि, 'पुमथीसु' त्ति पुरुषवेद-स्त्रीवेदमार्गणयोः 'सव्वाण' त्ति विंशत्युत्तरशतबध्यमानप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं 'मणव्व भवे' त्ति मनोयोगसामान्यमार्गणावद्भवति, अतस्तत्रत एव द्रष्टव्यम्। यश्चाऽत्र मनोयोगमार्गणाऽपेक्षया विशेषस्तमाह 'णवरि' इत्यादिना, नवरं=किन्त्वत्र सञ्ज्वलनकषायचतुष्कम्, पञ्चज्ञानावरणप्रकृतयश्चतुर्दर्शनावरणप्रकृतयश्चेति नवाऽऽवरणप्रकृतयः, विघ्नाः=पञ्चान्तरायप्रकृतयश्चेति सर्वसंख्ययाऽष्टादशप्रकृतीनामवक्तव्यपदं न सम्भवति, अतस्तन्न वक्तव्यमिति विशेषः। तथा 'णरव्व थीअ तित्थस्स' त्ति स्त्रीवेदमार्गणायां तीर्थकरनाम्नोऽल्पबहुत्वं नरौघमार्गणावत्कथनीयम्, मानुषीणां तद्बन्धकत्वात्, तच्च तत्रतो द्रष्टव्यमिति ॥४४०॥

अथ नपुंसकवेदे कषायत्रिके च प्रक्रान्तमल्पबहुत्वमभिदधाति—

णपुमे तिकसायेसु सव्वाणोघव्व होइ अप्पबहू।
णवरं ण अवत्तव्वो णवावरणपंचविग्घाणं ॥४४१॥
णपुमे चउण्ह कोहे चउण्ह माणम्मि तिण्ह मायाए।
दोण्हं संजलणाणं णो चेव भवे अवत्तव्वो ॥४४२॥

(प्रे०) 'णपुमे' इत्यादि, नपुंसकवेदमार्गणायां 'तिकसायेसु' त्ति तिसृषु क्रोध-मान-मायाकषायमार्गणासु च 'सव्वाण' त्ति सर्वासामत्र बध्यमानप्रकृतीनामल्पबहुत्वम् 'ओघव्व होइ' त्ति ओघवद् ओघवक्तव्यतातुल्यं भवति। ओघवदतिदेशं कृत्वाऽत्र यदपवादः सम्भवति तमाह 'णवरं'

इत्यादिना नवरं=किन्तु 'णवावरणपंचविग्घाणं' ति पञ्चज्ञानावरणानि चतुर्दर्शनावरणानि च तथा पञ्चविघ्नाः=पञ्चान्तरायाणीति चतुर्दशप्रकृतीनाम्, किमित्याह 'ण अवत्तव्वो' त्ति अवक्तव्यपदमत्र न भवतीति। एवं 'णपुमे चउण्ह' इत्यादि, तदर्थश्चाऽयम्–नपुंसकवेदमार्गणायां चतुर्णां सञ्ज्वलनकषायाणां क्रोधकषायमार्गणायामपि चतुर्णां सञ्ज्वलनकषायाणां, मानकषायमार्गणायां क्रोधरहिततिसॄणां सञ्ज्वलनानां, मायाकषायमार्गणायां च क्रोध-मानरहितशेषसञ्ज्वलनद्विकस्य 'णो चेव भवे अवत्तव्वो'त्ति अवक्तव्यपदं नैव भवतीति विशेषः ॥४४१-४४२॥

अधुनाऽवेदमार्गणायामल्पबहुत्वमाह—

सव्वेसिं संखगुणा अवट्ठिआ बंधगा कमाऽवेए।
संखंसगुणिअहाणिअवत्तव्वअसंखगुणिअहाणीणं ॥४४३॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'सव्वेसि' मित्यादि, 'ऽवेए' त्ति अवेदमार्गणायां सर्वासां=सर्वबध्यमानैकविंशतिप्रकृतीनाम् 'संखगुणा अवट्ठिआ बंधगा कमा' त्ति अवस्थितपदबन्धकेभ्यः क्रमशः संख्येयगुणा वक्तव्याः। तत्क्रमं दर्शयितुमाह-'संखंस०' इत्यादि, तदर्थश्चायम्-अवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः,तदपेक्षया संख्येयभागहानि-तद्वृद्धिबन्धका संख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः, ततश्च संख्येयगुणहानि तद्वृद्धिबन्धकाः संख्येयगुणाः, अन्योन्यं समानाः, ततोऽवक्तव्यपदबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततश्चाऽसंख्येयगुणहानिबन्धकाः संख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः। ॥४४३॥

सम्प्रति ज्ञानत्रयादिमार्गणास्थानेषु प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं निरूपयन्नाह—

आहारदुगसुराऊणोघव्व तिणाणओहिसम्मेसुं।
बारसकसायाईणं तहा णराउस्स णिरयव्व ॥४४४॥
चउवीआवरणाणं संखगुणाऽणंतभागहाणीओ।
अत्थि अवत्तव्वस्स असंखगुणाऽवट्ठिअस्स तओ ॥४४५॥
ओघव्वेत्तो उड्ढमवत्तव्वस्सऽत्थि अडकसायाणं।
थोवा य बंधगा खलु तओ अणंतसहाणीए ॥४४६॥
हुन्ति असंखगुणा तो होअन्ति अवट्ठिअस्स तेण परं।
ओघव्व बंधगाऽप्पाऽत्थि अवत्तव्वस्स सेसाणं ॥४४७॥
ताउ असंखेज्जगुणा होअन्ति अवट्ठिअस्स ताउ कमा।
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा णेया ॥४४८॥

(प्रे०) '**आहार०**' इत्यादि, '**तिणाण**' त्ति मति श्रुता-ऽवधिलक्षणत्रिज्ञानमार्गणाः '**ओहि**' त्ति अवधिदर्शनमार्गणा '**सम्मेसु**' ति सम्यक्त्वौघमार्गणा चेति पञ्चमार्गणासु '**आहारदुगसुराउण**'त्ति आहारकशरीराऽऽहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणमाहारकद्विकं सुरायुष्कं च तयोः प्रक्रमादवक्तव्यादिपदानामल्पबहुत्वम् ओघवत्=तदोघवक्तव्यतातुल्यमेवाऽत्र बोद्धव्यम् । '**बारससायाईणं तहा णराउस्स णिरयव्व**'त्ति साता-ऽसात-हास्य-रति-शोका-ऽरति-स्थिरा--ऽस्थिर-शुभा--ऽशुभ-यशःकीर्त्य-यशःकीर्तिरूपद्वादशप्रकृतीनां तथा मनुष्यायुषः प्रकृताल्पबहुत्वं नरकौघमार्गणावदवसेयम् , नरकौघे यथा दर्शितम् ,तथैवाऽत्र स्वयं द्रष्टव्यम् । '**चउवीआवरणाणं**'इत्यादि,चतसृणां दर्शनावरणप्रकृतीनामित्यर्थः, तासामनन्तभागहानिवृद्धितोऽवक्तव्यस्य बन्धकाः संख्येयगुणा अर्थादनन्तभागहानिबन्धकाः तद्वृद्धिबन्धकाश्च सर्वस्तोकास्तदपेक्षयाऽवक्तव्यपदबन्धकाः संख्येयगुणा ज्ञेयाः, ततोऽप्यवस्थितबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति । ततः '**ओघव्वेत्तो उड्ढं**'ति एतस्मादूर्ध्वं सर्वमोघवदभिधेयम् । तच्चैवम्-अवस्थितपदबन्धकेभ्यः संख्यातभागहानिबन्धकाः–तद्वृद्धिबन्धकाश्चाऽसंख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः, ततः संख्येयगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः, अन्योन्यं समानाः, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततश्चाऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका अवसातव्याः । अत्रेदमवगन्तव्यम्-दर्शनावरणचतुष्कस्यानन्तभागवृद्धिबन्धार्हतया केवलं पतदुपशमका एव, अनन्तभागहानिबन्धार्हतया तु क्षपकास्तथोपशमश्रेणेरारोहकाः, अतोऽनन्तभागवृद्धिबन्धकेभ्योऽनन्तभागहानिबन्धका अधिका इति सम्भाव्यते, तत्त्वं तु तद्विदो जानन्ति । '**अडकसायाणं**'ति सञ्ज्वलन-प्रत्याख्यानरूपाणामष्टकषायाणां त्ववक्तव्यबन्धका अल्पाः, ततोऽनन्तभागहानेस्तद्वृद्धेश्च बन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं समानाः,ततश्चाऽवस्थितबन्धका असंख्येयगुणा ज्ञेयाः । '**तेण परं ओघव्व**' त्ति तत्पश्चात्सर्वमोघवत् । तद्यथा-अवस्थितबन्धकेभ्यः संख्यातभागहानि-तद्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः,अन्योन्यं समानाश्च, ततश्च संख्यातगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः,परस्परं तुल्याश्च, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति ज्ञेयम् । '**सेसाणं**' ति उक्तव्यतिरिक्तानां सर्वबध्यमानप्रकृतीनां '**अप्पाऽत्थि अवत्तव्वस्स**' इत्यादि, अत्राऽवक्तव्यपदबन्धकाः सर्वस्तोकाः, तदपेक्षया चाऽवस्थितपदस्य बन्धका असंख्येयगुणाः,ततः संख्येयभागवृद्धिहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः, ततः संख्येयगुणवृद्धिहानिबन्धका-असंख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततश्चाऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका विज्ञेयाः । शेषप्रकृतयो नामत इमाः–ज्ञानावरणपञ्चकम् , निद्राद्विकं, अप्रत्याख्यानचतुष्कं, भयजुगुप्से, पुरुषवेदः, नाम्नः स्थिर-शुभ-यशःकीर्तिरहिता देवप्रायोग्यपञ्चविंशतिप्रकृतयः,जिननाम, उच्चैर्गोत्रम् , मनुष्यपञ्चकमन्तरायपञ्चकञ्चेति सर्वसंख्ययैकपञ्चाशत्प्रकृतय इति ॥४४४-४४८॥

अधुना मनःपर्यवज्ञान-संयमौघमार्गणयोः प्रक्रान्तमल्पबहुत्वमाचष्टे—

मणणाणसंजमेसु सप्पाउग्गाण होइ अप्पबहू ।
ओहिव्व परमसंखियगुणठाणे अत्थि संखगुणा ॥४४९॥

(प्रे०) 'मण०' इत्यादि, मनःपर्यवज्ञान-संयमौघमार्गणयोः स्वप्रायोग्याणां बध्यमानप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वमवधिदर्शनमार्गणावदभिधेयम् । परमवधिदर्शनमार्गणायां यत्र यत्राऽसंख्येयगुणा बन्धकाः प्रतिपादिताः तत्र स्थानेषु प्रकृतमार्गणयोः संख्येयगुणा बन्धकाः प्रतिपादनीया इति विशेषः । व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायेनाऽत्र सञ्ज्वलनचतुष्कस्याऽनन्तभागवृद्धिहान्यो-रसम्भवात्तदल्पबहुत्वं न वक्तव्यम् ॥४४९॥

अथाऽज्ञानत्रिके तदाह—

धुवबंधिछवत्तापुमजुगलदुगाणं अपज्जमणुयव्व ।
अण्णाणतिगेऽण्णेसिं ओघव्व परं विभंगम्मि ॥४५०॥
मिच्छस्स तसव्व उरलपरघाऊसासबायरतिगाणं ।
थोवा-ऽवत्तव्वस्स असंखगुणाऽवट्ठिअस्स तओ ॥४५१॥

(प्रे०) 'धुव०' इत्यादि, 'अण्णाणतिगे' त्ति अज्ञानत्रिके=मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभङ्गज्ञान-लक्षणमार्गणात्रये षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां तथा पुरुषवेद हास्य-रति शोका-ऽरतिप्रकृतीनाञ्च 'अपज्जमणुयव्व' त्ति प्रक्रान्तमल्पबहुत्वमपर्याप्तमनुष्यमार्गणावद्भवति, तद्यथा—षट्चत्वारिंशद्ध्रुव-बन्धिनीनामवस्थितबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, ततः संख्यातभागहानि तद्वृद्धिबन्धका असंख्यातगुणाः, परस्परं समानाः, ततः संख्येयगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धका असंख्यातगुणाः, परस्परं तुल्याः, ततोऽ-संख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽप्यसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति । एवमेव पुरुषवेदादिपञ्चप्रकृतीनामल्पबहुत्वं बोध्यम् । नवरं विशेषतः संख्यगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धकेभ्योऽ-वक्तव्यबन्धका असंख्यगुणा वक्तव्या इति । 'ऽण्णेसिं ओघव्व' त्ति उक्तातिरिक्तानां मिथ्यात्वस्य पुरुषवेद-हास्य-रत्यरति-शोका ऽऽहारकद्विक-जिनवर्जपञ्चषष्टयध्रुवबन्धिनीनाञ्चे'ति सर्वसंख्यया षट्-षष्टिप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वमोघवद् भवति । अथाऽत्रातिदेशेऽतिव्याप्तिमुद्धर्तुकाम आह—'परं' इत्यादि, नवरं 'विभंगम्मि' त्ति विभङ्गज्ञानमार्गणायां 'मिच्छस्स' त्ति मिथ्यात्वमोहनीय-स्याल्पबहुत्वं 'तसव्व' त्ति त्रसकायमार्गणावद् भवति । त्रसकायमार्गणावत्प्रस्तुतमार्गणाया-मपि जीवानामसंख्येयत्वेनाऽमिथ्यात्वस्यावक्तव्यबन्धकेभ्योऽवस्थितबन्धका असंख्येयगुणा भवन्ति, नत्वोघवदनन्तगुणा इति । अथ तस्यामेव मार्गणायां द्वितीयमपवादमाह—'उरल०' इत्यादि, औदारिक-

शरीर-पराघातो-च्छ्वास-बादरत्रिकरूपाणां षण्णां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धका अल्पाः सन्ति; ततोऽवस्थितपदबन्धका असंख्यगुणा ज्ञेयाः, न त्वोघवत्संख्यगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धकेभ्योऽवक्तव्यबन्धका असंख्यगुणा इति । तथा च विभङ्गज्ञानमार्गणायामुक्तशेषैकषष्टिप्रकृतीनां तथा शेषाज्ञानद्वये षट्षष्टेः प्रकृतीनामल्पबहुत्वं सर्वथौघवज्ज्ञेयम् ॥४५०-४५१॥

अथ सामायिक-छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोः प्रकान्तमल्पबहुत्वमाचष्टे—

सामाइअछेएसु सव्वेसिं संजमव्व होइ परं ।
विग्घणवावरणचरमलोहुच्चाण ण अवत्तव्वो ॥४५२॥

(प्रे०) '**सामा०**' इत्यादि, सामायिक-च्छेदोपस्थापनीयसंयममार्गणयोः सर्वबध्यमानप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं संयमौघमार्गणावदेव भवति । अतस्तद्वदेव स्वयं द्रष्टव्यम् । '**परं**' किन्तु '**विग्घ**' त्ति विघ्नाः पञ्चान्तरायाणि '**णवावरण**' त्ति पञ्चज्ञानावरणानि चतुर्दर्शनावरणानि च '**चरमलोहुच्चाण**'त्ति सञ्ज्वलनलोभ उच्चैर्गोत्रञ्चेति षोडशप्रकृतीनां उक्तमार्गणाद्वये '**ण अवत्तव्वो**' त्ति अवक्तव्यबन्धो न भवति । अतस्तासामवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पा वक्तव्या इति विशेषः ॥४५२॥

अथ परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां प्रकृताऽल्पबहुत्वमाह—

बारससायाइसुराउजिणाहारजुगलाण परिहारे ।
मणणाणव्व हवेज्जा सेसाणाहारजोगव्व ॥४५३॥

(प्रे०) '**बारस०**' इत्यादि, प्रसिद्धा द्वादशसातादिप्रकृतयः सुरायुर्जिननामाऽऽहारकद्विकञ्चेति सर्वसंख्यया षोडशप्रकृतीनां परिहारविशुद्धिसंयममार्गणायां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं '**मणणाणव्व**' त्ति मनःपर्यवज्ञानमार्गणावदेव भवति । '**सेसाणाहारजोगव्व**'त्ति उक्तशेषबध्यमानप्रकृतीनां त्वत्र प्रकृताऽल्पबहुत्वमाहारककाययोगमार्गणावद् भवति । अतस्तत्रतोऽवेक्ष्य यथा तत्र प्रतिपादितं तथैवाऽत्राऽपि स्वयं प्रतिपादनीयमिति ॥४५३॥

अथ सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां तदाह—

सव्वाण वंधगाऽप्पा अवट्ठिअस्स सुहमे तओ कमसो ।
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणऽत्थि संखगुणा ॥४५४॥

(प्रे०) '**सव्वाण**' इत्यादि, सूक्ष्मसंपरायसंयममार्गणायां सर्वबध्यमानप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वं किमित्याह—'**बंधगाऽप्पा**'इत्यादि, तासामवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षया संख्येयभागहानेस्ताद्वृद्धेश्च बन्धकाः संख्येयगुणाः, अन्योन्यं तुल्याश्च, ततस्संख्येयगुणहानेस्ताद्वृद्धेश्च

बन्धकाः संख्येयगुणाः, अन्योन्यं च तुल्याः। ततोऽसंख्येयगुणहानेर्बन्धकाः संख्येयगुणाः,ततोऽप्यसंख्येयगुणवृद्धेर्बन्धका विशेषाधिका विज्ञेया इति ॥४५४॥

अथ क्रमप्राप्तायां देशविरतमार्गणायां प्रकृताल्पबहुत्वं कथयति—

ओहिव्व मुणेयव्वं बारससायाइणिज्जराऊणं।
देसे अप्पाबहुगं जिणस्स मणुयव्व विण्णेयं ॥४५५॥
सेसाण बंधगाऽप्पा अवट्ठिअस्स हविरे तओ कमसो
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं असंखगुणा ॥४५६॥

(प्रे०) 'ओहिव्व' इत्यादि, 'देसे' त्ति देशविरतमार्गणायां 'बारस' इत्यादि, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनां देवायुपश्चाल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावज्ज्ञातव्यम्, उभयत्र द्वादशप्रकृतिबन्धकानामसंख्येयत्वाद्, देवायुर्बन्धकानामप्यसंख्येयत्वाच्च। 'जिणस्स' इत्यादि, जिननामकर्मणोऽल्पबहुत्वं मनुष्यमार्गणावज्ज्ञातव्यम्, उभयत्र केषांचित्सम्यग्दृष्टिमनुष्याणां तद्बन्धकत्वात्। 'सेसाण' इत्यादि, उक्तशेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धाभावादवस्थितपदबन्धका अल्पास्ततः संख्यातभागवृद्धिहानिबन्धका असंख्येयगुणाः ततः संख्यातगुणवृद्धिहानिबन्धका असंख्येयगुणाः,ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति ॥४५५-४५६॥

अथाऽसंयत कपोतलेश्यामार्गणयोः प्रकृताऽल्पबहुत्वमाचष्टे—

ओघव्वऽप्पाबहुगं सप्पाउग्गाण अजयकाऊसु।
णवरं ण अवत्तव्वो धुवबंधीण गुणवत्ताए ॥४५७॥

(प्रे०) 'ओघव्व' इत्यादि, शब्दार्थस्तु सुगमः। भावार्थः पुनरयम्—असंयम कापोतलेश्यामार्गणयोः स्वप्रायोग्यबध्यमानप्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वमोघवद् भवति। नवरमत्रोक्तमार्गणाद्वये स्त्यानर्द्धित्रिकाष्टकवर्जितशेषैकोनचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धो न भवति, तासां बन्धस्य व्यवच्छिद्यमानत्वात्। शेषसर्वं वक्तव्यमत्रौघवक्तव्यतातुल्यं ज्ञेयम् ॥४५७॥

अथ कृष्णनीललेश्यामार्गणयोस्तदेवाऽऽह—

तित्थस्सऽप्पाबहुगं सव्वत्थव्व खलु किण्हणीलासु।
विण्णेयं सेसाणं सप्पाउग्गाण अजयव्व ॥४५८॥

(प्रे०) 'तित्थस्स' इत्यादि, सुगमम्। भावार्थश्चाऽयम्- कृष्णनीललेश्यामार्गणयोस्तीर्थकरनाम्नः प्रकृताऽल्पबहुत्वं सर्वार्थसिद्धसुरमार्गणावद् विज्ञेयम्,उभयत्रावक्तव्यपदस्याभावात् प्रस्तुतप्रकृतिबन्धकजीवानां संख्येयत्वाच्च। शेषसर्वबध्यमानप्रकृतीनामत्र मार्गणाद्वये प्रक्रान्तमल्पबहुत्वम्

'अजयव्व' त्ति अनन्तरपूर्वगाथादर्शिताऽसंयतमार्गणासत्कप्रकृताऽल्पबहुत्वतुल्यमेव वक्तव्यमिति । ॥४५८॥

अथ तेजोलेश्यामार्गणायामल्पबहुत्वमाह—

सुरविउव्वदुगुरलाणमसंखगुणा बंधगा अवत्तव्वा ।
णेया अवट्ठिअस्स उ तेऊअ मणव्व तेण परं ॥४५९॥
मणजोगव्व हवेज्जा मज्झाडकसायनिज्जराऊणं ।
तित्थाहारदुगाणं देवव्व हवेज्ज सेसाणं ॥४६०॥

(प्रे०) 'सुर०' इत्यादि, 'तेऊअ'त्ति तेजोलेश्यामार्गणायां 'सुर०' इत्यादि, सुरद्विक-वैक्रियद्विकौदारिकशरीरप्रकृतीनां अवक्तव्यबन्धकतोऽवस्थितबन्धका असंख्यातगुणा वक्तव्याः । देवगतितो मनुष्यतयोत्पद्यमाना देवद्विकवैक्रियद्विकप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धकतया प्राप्यन्ते तथा तिर्यग्मनुष्यगतितो देवेषूत्पद्यमाना औदारिकदेहस्यावक्तव्यबन्धकतया प्राप्यन्त अतस्ते स्तोकाः, ततस्तासामवस्थितबन्धका असंख्यातगुणाः, 'मणव्व तेण परं'इत्यनेन शेषाल्पबहुत्वं मनोयोगमार्गणावत् कथनीयम् ।

'मणजोगव्व' इत्यादि, मध्यमकषायाष्टक-देवायु-जिननामाहारकद्विकरूपाणां द्वादशप्रकृतीनामल्पबहुत्वं मनोयोगमार्गणावज्ज्ञातव्यम् । कथितशेषप्रकृतीनामल्पबहुत्वं 'देवव्व' त्ति देवगत्योघमार्गणावत् कथनीयम् । शेषप्रकृतय इमाः—पञ्चज्ञानावरण-नवदर्शनावरण-वेदनीयद्वय-कषायाष्टकवर्जाऽष्टादशमोहनीय-तिर्यग्मनुष्यायु--गोत्रद्वया-ऽन्तरायपञ्चकरूपा नामकर्मवर्जत्रयश्चत्वारिंशत्प्रकृतयस्तथा नामकर्मणस्तिर्यग्द्विक-मनुष्यद्विकैकेन्द्रियपञ्चेन्द्रियजाति-तैजसकार्मणशरीरौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-षट्संहननषट्संस्थान-वर्णचतुष्क-खगतिद्वय-जिनवर्जप्रत्येकसप्तक-त्रसदशक--स्थावरनामा-ऽस्थिरषट्क-रूपा एकपञ्चाशत्प्रकृतयः सर्वसंख्यया चतुर्नवतिप्रकृतयो ज्ञातव्याः ॥४५९-४६०॥

अथ पद्मलेश्यायां तदाह—

पम्हाए सव्वेसिं तेउव्व परं पणिंदियतसाणं ।
ण उ होइ अवत्तव्वो पुमवेओरालुवंगाणं ॥४६१॥
तह पढमागिइसुखगइसुहगतिगुच्चाण बंधगा थोवा ।
हुन्ति अवत्तव्वस्स असंखगुणाऽवट्ठिअस्स तओ ॥४६२॥

(प्रे०) 'पम्हाए' इत्यादि, पद्मलेश्यामार्गणायां सर्वासां बध्यमानप्रकृतीनां तेजोलेश्यामार्गणातुल्यमेव प्रकृताऽल्पबहुत्वं ज्ञेयम् । 'परं' किन्त्वत्र पञ्चेन्द्रियजाति-त्रसनाम्नोरवक्तव्यबन्धो

न भवति, तयोर्मार्गणाप्रायोग्यध्रुवबन्धित्वात् 'पुम०' इत्यादि, पुरुषवेदौ-दारिकाङ्गोपाङ्ग-समचतुरस्र-संस्थान-सुखगति-सुभगत्रिको-च्चैर्गोत्ररूपाष्टप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धका अल्पाः, मार्गणागतासंख्य-बहुभागगततिर्यग्जीवानामवक्तव्यबन्धायोगात् । ततोऽवस्थितपदबन्धका असंख्यगुणाः । ततः परं तेजोलेश्यावत् ।

सर्वाल्पबहुत्वञ्चैवम्–अवक्तव्यबन्धका अल्पाः, ततः क्रमेणाऽवस्थितपदसंख्यातभागवृद्धि-हानिपदसंख्यातगुणवृद्धिहानिपदासंख्यगुणहानिपदबन्धका असंख्यगुणा ज्ञातव्याः, ततोऽसंख्यगुण-वृद्धिपदबन्धका विशेषाधिका इति ॥४६१-४६२॥

अथ शुक्ललेश्यामार्गणायां प्रस्तुताल्पबहुत्वमाह––

सुक्काअ दुआऊणं पज्जणरव्व इयराण उ मणव्व ।
णवरि असंखेज्जगुणा अवट्ठिअस्स उ अवत्तव्वा ॥४६३॥
पुम-णर-सुर-उरल-विउवदुग-सुहआगिइ-खगइ-पणिंदीणं ।
परघा-ऊसास-सुहगतिग-तसचउगु-च्चगोआणं ॥४६४॥
पुरिससुहागिइसुखगइसुहगतिगुच्चाण बिंति अण्णे उ ।
संखियगुणवड्ढित्तोऽवत्तव्वस्स उ असंखगुणा ॥४६५॥

(प्रे०) 'सुक्काअ' इत्यादि शुक्ललेश्यामार्गणायां 'दुआऊणं' ति मनुष्यदेवायुषोरल्प-बहुत्वं 'पज्जणरव्व' त्ति पर्याप्तमनुष्यमार्गणावज्ज्ञेयम् , आयुर्बन्धकानामुभयत्र संख्येयत्वादिति । शेष-प्रकृतीनां किम् ? इत्यत आह 'इयराण उ मणव्व' उक्तशेषाणां प्रकृतीनां प्रकृताल्पबहुत्वं मनो-योगमार्गणावत् कथनीयम् । कथमिति चेत् , उभयत्र श्रेणेः सद्भावात् मार्गणागतजीवानामसंख्येय-त्वादिति । कृतातिदेशे यो विशेषोऽस्ति तं तु 'णवरि' इत्यादिना दर्शयति, तद्यथा–द्वितीय-गाथोक्तानां पुरुषवेद-मनुष्यद्विक-देवद्विकौ-दारिकद्विक वैक्रियद्विक-शुभाकृति-शुभखगति-पञ्चेन्द्रिय-जाति-पराघातो च्छ्वास-सुभगत्रिक-त्रसचतुष्को-च्चैर्गोत्ररूपाणां द्वाविंशतिप्रकृतीनाम् 'अवत्तव्वा' अवक्तव्यबन्धकतोऽवस्थितपदबन्धका असंख्येयगुणा ज्ञातव्याः, मार्गणागतबहुसंख्येयभागगतानां तिर्यग्जीवानामासां प्रकृतीनामवक्तव्यबन्धायोगात् कासाचित्प्रकृतीनां तु प्रकृतिबन्धायोगाच्च । शेषाल्पबहुत्वमासां प्रकृतीनां तथा शेषप्रकृतीनां सर्वाल्पबहुत्वं मनोयोग मार्गणावज्ज्ञातव्यमिति । अथ तृतीयगाथया मतान्तरं दर्शयति, तद्यथा–'अण्णे उ' त्ति अन्ये महाबन्धकारादयः, तेषां मते पुरुषवेद-शुभखगति-शुभाकृति सुभगत्रिको-च्चैर्गोत्ररूपसप्तप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धकाः संख्यातगुणवृद्धि-हानिबन्धकेभ्योऽसंख्येयगुणा वक्तव्याः । तेषां मते मार्गणागतजीवेषु देवराशिरेव प्रधाना, मिथ्या-

दृष्टिशुक्ललेश्याकदेवानां प्रत्यन्तर्मुहूर्त्तं सप्तप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धसद्भावादल्पबहुत्वमेवं ज्ञातव्यम्, तद्यथा–सप्तप्रकृतीनामवस्थितपदबन्धका अल्पाः ततः क्रमेण संख्यातभागवृद्धिहानिबन्धकाः संख्यातगुणवृद्धिहानिबन्धकाः अवक्तव्यबन्धकाः असंख्येयगुणहानिबन्धकाः पूर्वपूर्वापेक्षयाऽसंख्येयगुणा वक्तव्याः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति ॥४६३-४६४-४६५॥

अथाऽभव्य-मिथ्यात्वा-ऽसंज्ञिमार्गणासु प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं वक्ति—

विउवऽट्ठगउरलाणं ओघव्व अभवियमिच्छअमणेसुं ।
णेयं अप्पाबहुगं अपज्जमणुयव्व सेसाणं ॥४६६॥

(प्रे०) '**विउव०**' इत्यादि, अभव्य-मिथ्यात्वाऽसंज्ञिमार्गणासु '**विउवऽट्ठगउरलाणं**' ति वैक्रियद्विक-देवत्रिक-नरकत्रिकरूपं वैक्रियाऽष्टकमौदारिकशरीरञ्चेति नवप्रकृतीनां प्रस्तुताऽल्पबहुत्वम् '**ओघव्व**' त्ति ओघवक्तव्यतायां यथा प्रतिपादितं तथैव वाच्यम् । '**सेसाणं**' ति उक्तशेषाणामत्र बध्यमानप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वम् '**अपज्जमणुयव्व**' त्ति अपर्याप्तमनुष्यमार्गणावज्ज्ञेयम् । तच्चैवम्–अत्र ध्रुवबन्धिप्रकृतीनामवस्थितबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, ततः संख्येयभागवृद्धि-तद्धानिबन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं तुल्याः, ततः संख्येयगुणहानि-तद्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः, अन्योन्यं तुल्याश्च, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका इति । वैक्रियाऽष्टकौदारिकशरीरवर्जितशेषाणां बध्यमानाऽध्रुवबन्धिप्रकृतीनामत्राऽवस्थितपदबन्धकाः सर्वस्तोकाः, ततः क्रमशः संख्येयभागहानेस्तद्वृद्धेर्वा, ततः संख्येयगुणहानेस्तद्वृद्धेर्वा, ततोऽवक्तव्यपदस्य, ततश्चाऽसंख्येयगुणहानेर्बन्धकाः पूर्वापूर्वाऽपेक्षयाऽसंख्येयगुणप्रमाणा उत्तरोत्तरं विज्ञेयाः । ततोऽसंख्येयगुणवृद्धेर्बन्धका विशेषाधिका इति ॥४६६॥

अधुनोपशम क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणयोः प्रक्रान्तमल्पबहुत्वं दर्शयन्नाह—

सप्पाउग्गाणोहिव्व खइउवसमेसु णवरि मणुयव्व ।
देवाउगस्स खइए जिणस्सुवसमे मुणेयव्वं ॥४६७॥

(प्रे०) '**सप्पा०**' इत्यादि, क्षायिकसम्यक्त्वो–पशमसम्यक्त्वमार्गणयोः स्वप्रायोग्याणां बध्यमानप्रकृतीनां प्रकृताऽल्पबहुत्वम् '**ओहिव्व**' त्ति अवधिज्ञानमार्गणातुल्यं ज्ञेयम् । '**णवरि**' त्ति किन्तु क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां देवायुषोऽल्पबहुत्वं तथोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां जिननामकर्मणोऽल्पबहुत्वं '**मणुयव्व**' त्ति मनुष्यवत्=मनुष्यमार्गणावदस्ति, उभयत्राऽपि तत्तद्बन्धकानां संख्येयत्वात् । शेषसर्वमत्र सर्वथाऽवधिज्ञानमार्गणातुल्यं द्रष्टव्यमिति ॥४६७॥

अथ क्षयोपशमसम्यक्त्वमार्गणायां तदाह—

ओहिव्व वेअगे खलु बारससायाइअडकसायाणं ।
णरसुरतिगजिणुरालियविउवाहारदुगवइराणं ॥४६८॥
सेसाण बंधगाऽप्पा अवट्ठिअस्स उ तओ असंखगुणा ।
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा णेया ॥४६९॥

(प्रे०) 'ओहिव्व' इत्यादि, 'वेअगे' त्ति क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमार्गणायां साताऽसातादिप्रसिद्धा द्वादशप्रकृतयः, प्रत्याख्यानावरणचतुष्का-ऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करूपा अष्टकषायाः, मनुष्यत्रिकं, सुरत्रिकं, जिननाम, औदारिकद्विकं, वैक्रियद्विकं, आहारकद्विकं, वज्रर्षभनाराचसंहननं चेति सर्वसंख्यया चतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनां प्रक्रान्तमल्पबहुत्वम् 'ओहिव्व' त्ति अवधिदर्शनमार्गणातुल्यमभिधातव्यम् । 'सेसाण' इत्यादि, अवक्तव्यबन्धरहितानामुक्तशेषप्रकृतीनामवस्थितपदबन्धकाः सर्वाऽल्पाः, तदपेक्षया संख्येयभागहानि-तद्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः, परस्परं समानाः, ततः संख्येयगुणहानि तद्वृद्धिबन्धका असंख्येयगुणाः, अन्योन्यं च तुल्याः, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततश्चाऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका विज्ञेया इत्यर्थः ॥४६८-४६९॥

अथ क्रमप्राप्तमिश्रसम्यक्त्वमार्गणायां प्रस्तुताल्पबहुत्वमाह—

बारससायाईणं मीसे ओहिव्वऽवट्ठिआऽण्णेसिं ।
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा असंखगुणा ॥४७०॥ (गीतिः)

(प्रे०) 'बारस०' इत्यादि, सातवेदनीयादिद्वादशप्रकृतीनामल्पबहुत्वमवधिज्ञानमार्गणावत्कथनीयं, उभयत्र बन्धकानामसंख्येयत्वादिति । शेषप्रकृतीनां किम् ? इत्यत आह-'ऽवट्ठिआऽण्णेसिं' ति अन्यासां प्रकृतीनामवस्थितपदबन्धकेभ्यः क्रमेण संख्यातभागहानि-वृद्धिबन्धकास्ततः संख्यातगुणहानिवृद्धिबन्धकास्ततोऽसंख्यातगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणा ज्ञातव्याः । ततोऽप्यसंख्यातगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिका ज्ञातव्याः । अत्र शेषप्रकृतीनामवक्तव्यबन्धस्यासद्भावात्तस्याल्पबहुत्वं नोक्तमिति ॥४७०॥

अथ क्रमप्राप्तसास्वादनमार्गणायां प्रकृताल्पबहुत्वं वक्ति—

धुवबंधीण पणिंदियपरघाऊसासतसचउक्काणं ।
सासाणे सव्वप्पा विण्णेयाऽवट्ठिअस्स तओ ॥४७१॥
संखंसगुणअसंखियगुणहाणीणं कमा असंखगुणा ।
सुक्खुरलदुगस्स उ मिच्छव्व हवेज्ज सेसाणं ॥४७२॥

(प्रे०) 'धुव' इत्यादि, 'सेसाणे' त्ति सास्वादनसम्यक्त्वमार्गणायां 'धुव' इत्यादि, षट्चत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिप्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियजाति-पराघातो-च्छ्वास-त्रसचतुष्करूपाणां सप्तप्रकृतीनां चावक्तव्यबन्धाभावात्तेन विना शेषपदानामल्पबहुत्वमेवं ज्ञातव्यम् । तद्यथा-आसां प्रकृतीनामवस्थितपदबन्धका अल्पाः, ततः संख्यातभागावृद्धिहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततः संख्यातगुणवृद्धिहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणहानिबन्धका असंख्येयगुणाः, ततोऽसंख्येयगुणवृद्धिबन्धका विशेषाधिकाः । अथ 'सुक्कव्व' इत्यादिनौदारिकद्विकस्य प्रकृताल्पबहुत्वं कथयति, तस्याल्पबहुत्वं शुक्ललेश्यावज्ज्ञातव्यमित्यर्थः । तद्यथा-अवक्तव्यपदबन्धका अल्पास्ततोऽवस्थितपदबन्धका असंख्येयगुणाः, शेषं पूर्वोक्तवत् । अत्रावक्तव्यपदस्य बन्धका भवप्रथमसमये वर्तमाना देवाः, ते च मार्गणागतजीवेभ्योऽसंख्येयगुणहीनाः, अतस्ते सर्वाल्पा इति ज्ञातव्यम् । शेषाणां प्रकृतीनामल्पबहुत्वं मिथ्यात्वमार्गणावज्ज्ञेयमिति । शेषप्रकृतयः पुनरिमाः-सातासात-हास्यादियुगलद्वय-स्त्री-पुरुषवेदद्वय-नरकवर्जायुस्त्रिक-तिर्यग्द्विक—मनुष्यद्विक-सुरद्विक—वैक्रियद्विक-चरमवर्जसंहननपञ्चक-संस्थानपञ्चक-खगतिद्वयो-द्योत-स्थिरषट्का-ऽस्थिरषट्क-गोत्रद्वयरूपाः षट्चत्वारिंशदिति ॥४७१ ४७२॥

तदेवं निरूपितमादेशतो-ऽल्पबहुत्वम् , तस्मिन्निरूपिते च निदर्शितमोघादेशाभ्यामल्पबहुत्वद्वारम् , तन्निदर्शने च 'अप्पाबहुग' मित्यनेनोद्दिष्टं त्रयोदशमल्पबहुत्वद्वारं व्याख्यातम् । व्याख्याते चास्मिन् समाप्तस्त्रयोदशद्वारात्मकश्चतुर्थो वृद्धिबन्धाधिकारः ॥

॥ इति प्रेमप्रभाटीकासमलङ्कृते श्रीबन्धविधान उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धे चतुर्थे वृद्धिबन्धाऽभिधेऽधिकारे त्रयोदशमल्पबहुत्वद्वारं समाप्तम् ॥

॥ तत्समाप्तौ च चतुर्थो वृद्धिबन्धाधिकारः समाप्तः ॥

॥ तत्समाप्तौ च उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धः समाप्तः ॥

॥ तत्समाप्तौ च प्रदेशबन्धः समाप्तः ॥



* उत्तरार्धटीकाकृत्प्रशस्तिः *

रागद्वेषविजेतारं ज्ञातारं विश्ववस्तुनः । अनन्तानन्दसन्दोहं वीरं भक्त्या नतोऽस्म्यहम् ॥१॥

[अनुष्टुब्]

वीरेशानां रसमुनितमे (७६) पट्टसौवर्णकूटेऽस्माकम् , योऽभूद्विमलगुणभृद् गच्छनेतावरिष्ठः ।
शिष्यो दक्षो विनयनिलयो दानसूरीश्वराणाम् , तं वन्दे श्रीविजयकलितं प्रेमसूरीश्वराऽऽख्यम् ॥२॥

[मन्दाक्रान्ता]

सिद्धान्ताब्धिः प्रवरगुणभृद्यो महाब्रह्मचारी, कर्मग्रन्थे विलसितमभूद्यस्य चित्तं विशालम् ।
वात्सल्याब्धिः सरलहृदयः प्रेमनामा मुनीशः, स्वर्गं प्राप्तः स भवतु सदा सङ्घशान्तेर्विधाता ॥३॥

[मन्दाक्रान्ता] [युग्मम्]

शिष्योऽस्ति तेषां भुवनाग्रभानुः सूरीशमुख्यस्तपसा लसन्तः ।
धर्मोपदेष्टा-प्रगुरुर्यशस्वी त्यक्तप्रमादस्स सदाऽवताद्वः ॥४॥

[इन्द्रवज्रा०]

तेषां शिष्यो विदग्धो योऽमरेन्द्राऽऽख्यो गुरुर्मम ।
स्वाध्यायध्यानमग्नोऽसौ विद्वद्वन्द्यः सदा जयेत् ॥५॥ [अनुष्टुब्]

इयं संशोधिता वृत्तिः श्रीप्रेमसूरिपुङ्गवैः ।
श्रीजम्बूसूरिपूज्यैश्च आगमज्ञैर्गुणालयैः ॥६॥ [,,]

संग्राहकौ पदार्थानां वृत्तिसंशोधकावपि ।
आगमशास्त्रविज्ञौ च शमादिगुणभूषितौ ॥७॥ [,,]

कर्मशास्त्रप्रवीणौ च मार्गदौ वृत्तिलेखने ।
जयघोष—धर्मानन्दौ जयतां मुनिपुङ्गवौ ॥८॥ [,,] युग्मम्

संग्राहकः पदार्थानां वृत्तिसंशोधकस्तथा ।
व्याकरणादिशास्त्रज्ञः ज्ञानादिगुणसंयुतः ॥९॥ [,,]

शोधकः कर्मशास्त्राणां बन्धविधानमूलकृत् ।
विनयानां मुनिप्रष्ठः श्रीवीरशेखराऽऽभिधः ॥१०॥ [,,]

एवं संमार्जिता श्रीमज्जितेन्द्रमुनिपुङ्गवैः ।
क्षान्त्यादिगुणशालिभिर्विद्वद्वर्यैस्तपस्विभिः ॥११॥ [,,]

दृष्टा मया तथापि स्युः क्षतयो मतिमान्द्यजाः ।
छाद्मस्थ्यप्रभवा याश्च ताः शोध्याः कृपया बुधैः ॥१२॥ [,,]

※ द्रव्यसहायकप्रशस्तिः ※

यत्र पदे पदे विश्वानन्ददायकविमलत्वसहितैर्लोक्यदीपकप्रमुखजिनप्रासादादिनां दर्शनमात्रेण भव्या अञ्जसा कर्मचौरैर्विमुच्यन्ते तत्र मरुधरदेशेऽस्ति चातिरम्यं श्रीवीरविक्रमादिजिनप्रासाद-गुरुमन्दिरज्ञानमन्दिरपौषधशालाज्ञानशालादिविविधधर्मसामग्र्या मुमुक्षूणां मुक्तिनगरीमासन्नी-कुर्वत् पिण्डरवाटकापरनाम पिण्डवाडा नाम नगरम्। तत्राऽऽसीज्जिनधर्मवासितान्तःकरणः सादरी-वास्तव्यः कानाजीनामा व्यवहारी। तस्य च संसारसुखमनुभवतो नरसिंहजी, गुलाबचंदजी, हंसराजजी कस्तुरचंदजी इतिनामधेयाः क्रमेण चत्वारः पुत्राः सञ्जज्ञिरे। ते सर्वेऽपि परिपाट्या प्राप्तयौवनाः संजातव्यवहारकुशला धर्मकर्मपरायणाः सादरिया इति ख्यातिमापुः।

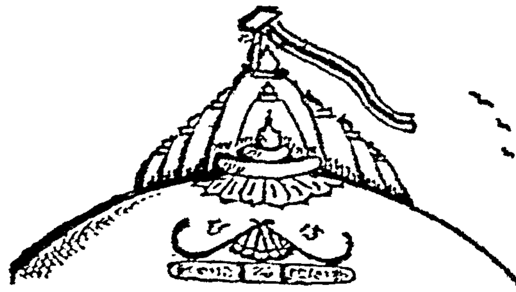
आद्यस्य नरसिंहजी इत्यभिधेयस्य भगवानजी सरेमलजी जवानमलजी पुनमचंदजी इति संज्ञकाश्चत्वारः सूनवो बभूवुः। तेषां मध्ये ज्येष्ठो भगवानजी इतिनामधेय औदार्यादिगुणाकरो धर्मकर्मरुचिः, तस्यासीत् सधर्मिणी शीलादिगुणमणिमाला कुंकुंबाई इति नाम्ना। तत्कुक्षितः शुक्तितो मुक्ताफलमिव नभोवेदनारदचन्द्राङ्किते (१९४०) विक्रमसंवत्सरे फाल्गुनशुक्लचतुर्दश्यां लोकोत्तरगुणैकधाम जगज्जन्तूनां प्रेमपात्रं प्रेमचंदनामाऽभूत् पुत्ररत्नम्। अप्राप्तयौवन एव स गृहा-न्निष्क्रम्य ऋषिपरमेष्ठिनन्दशशिप्रमिते(१९५७) विक्रमाब्दे मार्गशीर्षकृष्णषष्ठ्यां श्रीसिद्धाचल-महातीर्थस्य पवित्रशीतलछायायां सकलागमरहस्यवेदिश्रीमद्विजयदानसूरीश्वरपार्श्वे भागवतीप्रव्रज्यां प्रपद्य श्रीप्रेमविजयमुनिः नाम्ना संजातः। क्रमशः सज्ज्ञानवैराग्यवात्सल्याद्यसाधारणगुणैस्तृतीयपर-मेष्ठिपदमलञ्चकार "परमपूज्याः सिद्धान्तमहोदधयः कर्मसाहित्यनिष्णाताः सुविशालगच्छाधिपाः श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरा" इति ख्यातिं च प्राप्तः। स्वजनकं च वार्धक्ये बहुशः स्वशिष्यप्रशिष्यैः सद्धर्मोपदेशदापनेनाऽन्ते च संस्तारकप्रव्रज्यां प्रव्राज्य मोक्षाध्वनि विश्रांतिवृक्षकल्पं स्वर्गं प्रापय्य स्वयमपि वेदनेत्रगगनपाणिसंख्ये(२०२४)विक्रमवर्षे ज्येष्ठकृष्णैकादश्यां श्रीस्थंभनतीर्थे दिवं गताः।

एषामेव पूज्यपादानां गृहस्थपर्यायेण स्वजनैरस्य ग्रन्थरत्नस्य मुद्रापणव्ययार्थं द्रव्यं समर्पितम् ततः प्रसङ्गोपात्तस्तेषां स्वल्पपरिचयोऽत्र सद्गुणानुमोदनार्थं न्यासीक्रियते, तथाहि—द्विती-यस्य सरेमलजी इत्याख्यस्य सुपुत्रो भूरमलजीनामा पापभीरुर्धर्मरुचिर्देवगुरुधर्माराधको देश-विरतः संजाततत्त्वदृष्टिर्मध्यमवयसि यावज्जीवं चतुर्थव्रतं स्वीकृत्य स्वकीयग्रामे परमाराध्यपा-दानां निश्रायामुपधानतपोऽनुष्ठापने श्रीज्ञानमन्दिर—निर्मापणे च द्रव्यसहायप्रदानेन पौषधशाला-निर्मापणेन तत्त्वज्ञानवितरणार्थं च श्रीसंघं स्वानल्पधनार्पणेनाऽनादिपरिग्रहसंज्ञां कृशीकृत्य स्वयं पुण्यानुबन्धिपुण्यपुष्टः सन्नास्ते। तृतीयस्य जवानमलजीनाम्नस्तनुजो मनरूपचंदजी इत्यभिधेयो देशविरतस्तत्त्वजिज्ञासुः परिणतधर्मा मध्यमवयसि चतुर्थव्रतमङ्गीकृत्य स्वर्गं प्राप्तः।

कनिष्ठस्य पुनमचंदजी इत्यभिधस्य तनयो वीरचंदजी इतिसंज्ञको व्यवहारी सदा धर्मकर्मपरायणस्तिष्ठति ।

आद्यपुरुषस्य द्वितीयसुतो गुलाबचंदजी इत्याख्यस्तस्य तनयो हिराचंदजी इतिनामधेयो धनिको व्यवहारकुशलो धर्मकर्मरुचिः संवर्तते । तृतीयाङ्गजो हंसराजजीनामा तस्य च दारको मूलचंदजी इति संज्ञकस्तस्याऽपि पुत्रश्चुनीलालजी इत्याख्यस्तस्य तनयो बाबुलालजी इतिनामधेयो व्यवहारी धर्मरुचिर्धर्मपालनपरश्च समस्ति । चतुर्थपुत्रः कस्तुरचंदजी इत्यभिख्यस्तस्य पुत्रो भवुतमलजी इतिसंज्ञक ऋजुतादिगुणसंपन्न औचित्यादिपालनतत्परो धर्मधनसंपन्नोऽस्ति ।

एते सर्वे श्रुतभक्त्युपार्जितपुण्या विमुच्यन्तां बन्धविधानात् । इति शम् ।



॥ पूर्वार्धस्य शुद्धिपत्रकम् ॥

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२	६	भेद :	भेदाः	६५	२५	सावदा	मावादा
२	९	तस्या तस्या	तस्यास्तस्या	६७	१०	भागा	भागाः
४	१२	न्यूना	न्यूनाः	६७	१९	पञ्चविंशति	पञ्चविंशतिं
१०	१७	प्रदेशकाः	प्रदेशबन्धकाः	६९	१८	स्यानुपादनं	स्यानुपादानं
१६	८	देवायुषोबन्धका	देवायुषो बन्धका	७०	२०	त्पिरसूनं	त्पिसूनां
१८	१६	बन्धका	बन्धकाः	७१	२३	चतु क	चतुष्क
२२	२७	"पावर"	"पावरं"	७२	१०	विज्ञेया	विज्ञेयाः
२४	२२	जीव नामेव	जीवानामेव	७२	२७	"एगिंदिय"	'एगिंदिये'
२४	२५	दृष्टिं	दृष्टि	७३	१९	वोघवद्	वौघवद्
२५	१६	पेऽक्ष्यैव	पेक्ष्यैव	७५	२	अत त	अनस्त
२८	३	कायोगी	काययोगी	७५	४	प्रमाणातिर्यग	प्रमाणा तिर्यग्
२९	२६	पुनर्ज्ये	पुनर्ज्ये	७५	२०	अत्रो	अत्रा
३०	२८	पञ्चेन्द्रियय	पञ्चेन्द्रिय	७६	२२	च्यूत	च्युत
३१	१७	बन्धका	बन्धकाः	७७	६	तीनां	प्रकृतीनां
३२	८	त्यादि,	इत्यादि,	७७	११	ऽपदार्थ	ऽपपदार्थ
३३	२९	युभ्र्या	युभ्र्यां	७	१७	गमनेक्रिय	गमने क्रिय
३४	१३	अनुकृष्ट	अनुत्कृष्ट	७८	२३	देवपेक्षया	देवाऽपेक्षया
३५	१४	जघन्य प्रदेश	जघन्यप्रदेश	८१	१२	ठन्ध	बन्ध
३५	२५	मार्गणायोः	मार्गणयोः	८१	२१	मनुष्याश्चा	मनुष्यांश्चा
३८	७	षष्टत्रिंशत्	षष्टात्रिंशत्	८३	१९	प्रायोग्या	प्रायोग्यां
३९	२०	बन्धका	बन्धकाः	८४	१	रपएम	पएस
३९	२९	बन्धः	बन्धं	८४	९	निरूपितनेति	निरूपितेति
४२	२३	पगि	एगिं	८४	९	मागणायां	मार्गणायां
४३	३	मागणा	मार्गणा	८५	१९	भागुक्ता	भागुत्ता
४३	१०	हीना;	हीनाः	८५	२२	भणिताः	भणिता
४३	२५	बन्धक	बन्धका	८६	१२	विज्ञया,	विज्ञेयाः
४४	२	ऽपिमार्गणा	ऽपि मार्गणा	८७	११	द्वे	द्वौ
४४	१७	बन्धकाना	बन्धकानां	८७	११	वेदितव्या	वेदितव्याः
४७	१७	१०१	१००	८८	१	रस	पएम
४९	९	अतो	अतः	८९	७	नाम्नालोका	नाम्ना लोका
५२	२२	रूरूपयिपु	रुरूपयिपु	८९	२३	यद् मनु	यन्मनु
५७	१३	देशोन एक	देशोनैक	९४	६	एकादश माग	एकादशभाग
५८	३०	बन्धका च	बन्धकाश्च	९६	११	बन्धकेनैव	बन्धकैनैव
५९	१६	या।	या	९८	६	नवति	नवतिः

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
९८	२७	व्य.प्त्य	व्याप्ति
१००	८	युपोर्ज्येष्ठ	युपो ज्येष्ठ
१००	९	युपोर्ज्येष्ठ	यूषो ज्येष्ठ
१००	२१	प्रमाणेव	प्रमाणैव
१०१	२५	दर्शना ऽवधि	दर्शनाऽवधि
१०४	८	संयतना	संयताना
१०५	१४	चेत्रैव	क्षेत्र एव
१०७	२८	एकादशं	द्वादशं
१०८	१	द्वादश	त्रयोदशं
१०९	१२	प्राप्यते	प्राप्यन्ते
१०९	१५	स्यचैक	स्य चैक
११०	२७	भवन्ति	भवति
११२	२०	कालाऽऽवलि	काल आवलि
११३	९	सर्वद्धा	सर्वाद्धा
११३	२५	जघन्यो	जघन्य
११४	१९	भवति;	भवति
११५	१	श्रित्य	श्रितं
११७	१	श्रित्य	नाश्रित्य
११७	१०	कारेणेति	कारेणेति।
"	१२	योगाकषाय	योगकषाय
११८	२९	तासां ओघे	तासामोघे
११९	६	जघन्यत	जघन्यतः
११९	७	जघन्यत	जघन्यतः
११९	१४	णोघेऽऽदेशे	णोघ आदेशे
१२०	१९-२०	कोघेऽऽद्य	कौघ आद्य
१२१	२५	वन्धोऽऽ	बन्ध आ
१२१	२७	प्रकृतीन द्वा	प्रकृतीनां द्वा
१२२	४	वन्धोऽऽ	बन्ध आ
१२२	१५	पएस स	पएसस्स
१२४	२३	सख्यांशः	संख्यांशः
१२४	२७	कष्टस्य	ष्टकस्य
१२४	३५	मुहूर्तं	मुहूर्तम्
१२५	३	प्रदर्शयामः	प्रदर्श्यंते
१२६	१४	जघन्यतो	जघन्यतः
१२९	२५	मुंहूर्तं	मुहूर्तं
१३१	१	प्र	प्र०
१.२	१६	दर्शितं	दर्शितम्
१३२	१८	प्रम	प्रेम
१३३	१	द्वार	द्वारम्
१३३	१०	तथाचात्र	तथा चाऽत्र
१३४	२	प्रदेशना	प्रदेशाना
१३६	६	नाम्नो ज्येष्ठ	नाम्नोर्ज्येष्ठ
१३८	२८	सत्वा	सत्त्वा
१३९	५	गेन	भागेन
१४२	७	स्थानऽ	स्थानाऽ
१४२	२६	वहुत्व	बहुत्वं
१४३	१३	मघस्तन	मधस्तन
१४४	१	प्रकृतिप्रदेश	पयडिपएस
१४४	१२	र्ज्येष्ठ	ज्येष्ठ
"	२४	रोत्तरेत्तर	रोत्तरोत्तर
१४५	१७	ऽनाम	नाम-
१४८	८	नाम्नोर	नाम्नोऽ
१५३	१८	दिशे	देशे
१५४	२	ऽवानन्तर	ऽवान्तर
१५५	१७	(गीतिः	(गीतिः)
१५५	१९	ऽनन्त	ऽन्त
१५६	२०	यश कीतः	यशःकीर्तेः
१५८	२५	त्रिंशतित	त्रिंशति त
१५९	३	देवकार्या	देव कार्या
१६१	२०	संगच्छेदिति	संगच्छेतेति
१६७	१	बन्धालपः	बन्धाऽल्प०
१६८	४	तस्त् नि	तस्तन्नि
१६८	२६	विशषा	विशेषा
१७०	२०	मनुष्यायुश्च	मनुष्यायुष्कश्च
१७१	२	बन्धः, सर्वस्तोकः	बन्धः सर्वस्तोकः,
१७१	६	देवप्रायोग्या जिननामसहिता	देवप्रायोग्यां जिननामसहितां
१७३	२१	आणाण	आणण
१७६	७	पर्डिवशतिः	षड्विंशतिः
१७८	१	अपर्या	अपर्या
१८४	१६	पञ्चन्त	पञ्चान्त
१८७	६	चैंगो	चैगों

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१९२	२३	पञ्चेन्द्रि	पञ्चेन्द्रिय	२२१	१०	सत्का	सत्क
१९३	२२	संघयणप्रमुखानां	संहननप्रमुखाणां	२२३	२७	गत	गते
१९८	२५	शेषां	शेषा	२२४	१	पद्मः	पद्म
२०१	१६	दसणा	दंसणा	२२६	२	२२२-२२३	४२०-४२३
२०२	४	रभ्यकेवल	रभ्य केवल	२३१	२६	मिति इति	मिति
२०२	१३	यश	यशः	२३६	२६	बन्धोतुल्यै	बन्धस्तुल्यै
२०२	२३	युगपद	युगपद्	२३०	२२	प्राप्यते	प्राप्यन्ते
२०३	२५	पणिदि	पणिंदि	२४८	२७	त्वामिति	त्वादिति
२०६	२६	गेविज्ज	गेविज्जं	२६०	२६	प्राप्ताः	प्राप्ता
२०६	२८	चऽऽ-	च	२६१	२६	मध्य	मध्या
२०८	२०	प्रायाग्या	प्रायोग्याः	२६६	२०	तासाम जघन्य॰	तासामजघन्य॰
२१०	१२	चक्षुदर्श	चक्षुर्दर्श	२७१	५	संगच्छेत्	संगच्छेत
२१०	२६	शरीरस्यो	शरीरस्य	२७१	१५	तिरश्चयः	तिरश्च्यः
२१२	१	गतवेद	गतवेदे	२७१	२३	असमत	असमत्त
२१३	२५	दलिकनां	दलिकानां	२७२	५	चतुरिं	चतुरि
२१४	२२	पुम चरम	पुमचरम	२७४	१	बधो	बंधो
२१४	२४	वरणं२	वरणं	२७५	१	पञ्चेन्दिय	पञ्चेन्द्रिय
२१५	७	श्रत	श्रुत	२७७	१	वहुत्वं	वहुत्वम्
२१७	२६	उक्शेत	उक्कस	२८१	५	प्रवेशोऽपि । मार्गणा॰	प्रवेशोऽपि मार्गणा
२१८	२	सम्यत्व	सम्यक्त्व	२८३	३	ज्येष्ठप्रदेशबन्धकाश्च	ज्येष्ठप्रदेश-बन्धकाः
२१८	१३	मसुभयत्र	मुभयत्र				
२२०	१८	द्विण	द्विगुण	२८४	१	बध	बंध



॥ उत्तरार्धस्य शुद्धिपत्रकम् ॥

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२	१८	चेः विद्वद्	चर्विद्वद्	११	७-८	द्वंद्वा	द्वन्द्वा
२	२४	जीवाः इतस्ततः	जीवा इतस्ततो	११	१२	सर्व पृथ्वी	सर्वपृथ्वी
२	२५	तमाः	तमा	११	१४	कर्मण	कर्मण-
३	३	विंदेन	विन्देन	११	२५	कारादि चतु	कारादिचतु
३	३	विन	वीन	११	२८	वन्धिनश्च	वन्धिन्यश्च
३	१७	विध्यं	विंध्यं	१२	४	वौघे	वौघे
४	६	पञ्च	पञ्च-	१२	११	त्ति	ति
४	१०	सप्तत्यु	सप्तत्यु	१२	११	सम्भवा	सम्भवा-
४	२२	वन्धेउत्तर	वन्ध उत्तर	१३	११	व्य श्चेति	व्यश्चेति
५	६	वधइ	वंधइ	१३	१९	व्यंतर	व्यन्तर
५	१८	प्रारभतस	प्रारममाणस्य	१४	२	पद	पद्
६	७	विवक्षित प्रदेशान्	विवक्षितप्रदेशान्	१४	१०	भावार्थ	भावार्थः
६	१०	ऽस	ऽसं	१४	१२	कलशा	कलशा
७	२	समयप्रभृत्य	समयं यावद	१४	१४	पर्यतानां	पर्यन्तानां
७	१३	भवतः	भवन्ति	१४	१५	दारिक	दारिका
७	१३	सर्वा समसंख्याका-	सर्वाः समसंख्याक	१४	२१	प्रकृतयः	प्रकृतयः
७	१४	बन्धा	वन्धाः	१५	४	मार्गणा	मार्गणा
७	१५	वृद्धिहानिभ्यां	वृद्धिहानिभ्यां	१५	६	विधो	विंधो
७	१६	यथाकश्चिन	यथा कश्चिन	१५	१२	प्रकृतयोः	प्रकृत्योः
८	५	द्वे ऽपि	द्वे अपि	१५	१५	गृहीतव्याः	गृहीतव्याः
८	६	तद् भावना	तद्भावना	१५	२६	दि	त्ति,
८	१८	दर्शन	दर्शन	१६	१	त्ति	ति
८	१८ १९	मार्गणायां,	मार्गणायाम्,	१६	५	द्विसप्ततिः प्रकृतय एव	द्विसप्तति प्रकृतीरेव
९	४	वधीणं	बंधीणं	१६	९	त्रि	त्री
९	१६	भूयस्कारादि चतु	भूयस्कारादिचतु	१६	११	चतुष्कानि	चतुष्काणि
९	१७	प्रकृतय-	प्रकृतयः—	१६	१३	षष्ठि	षष्टि
९	१८	लोभात्मक	लोभात्मक-	१६	१९-२०	णायां आसां	णायामासां
९	२६	जाता	जाताः	१६	३०	त्ति	ति
१०	७	तिर्यग	तिर्यक्	१७	१५	वास-आ	वासा-ऽऽ
१०	१२	बन्धो	वंधो	१७	२५	तासां इति	तासामिति
१०	१७	शेषा	शेषाः	१८	१	वध	वंध
१०	१८	अगुरू	अगुरु	१८	३	सयोगी	सयोगि
१०	२१	द्वय	द्वय	१८	११	दृष्टिना	दृष्टीनां
१०	२४	मिथ्या	मिथ्या-				

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१८	११	पाणं औ	पायामौ
१८	१५	षा	चा-
१८	१६	भूयस्कार बन्ध	भूयस्कारबन्ध
१९	७	त्ति	ति
१९	२१	त्येतेषां	त्येतासां
२१	१६	भिधो	भिध
२१	१९	यत तद्	यतस्तद्
२१	२८	कोपाङ्ग	काऽङ्गोपाङ्ग
२२	२०	सर्वा	सर्वाः
२२	२९	या श्च	याश्च
२३	१७	अन्या रीत्या अक्तोक्त	अन्यया रीत्या-ऽत्रोक्त
२३	२८	प्रकृतयो	प्रकृतय
२४	१	चतुष्कानि	चतुष्काणि
२४	१७	ऽयश	ऽयशः
२४	१७	च।	च
२४	१९	नामेति-	नामानीति
२५	२	लोमाणाम	लोमानाम
२५	४	प्रारम्भा	प्रारम्भको
२६	३०	हिताऽत्रो	हितानामत्रो
२७	१२	प्रकृतीनां	प्रकृतिनाम्
२७	१८	द्व	दव
२७	२८	मार्गणायां, अवि	मार्गणायामवि
२९	१५	बन्धाऽप्यत्र	बन्धा अप्यत्र
३०	१	वधा	वंधा
३०	१३	कानीतिपोडश	काणीति षोडश
३०	२०	मष्ट	मष्टा
३१	१४	त्ति	ति
३२	९	या	याः
३२	२४	पुनंव	पुनर्व
३३	२	मागणासख्या	मार्गणासंख्या
३३	२	प्रकारा	प्रकाराः
३३	२०	नाम्न	नाम्नः
३४	२	प्रकारा	प्रकाराः
३४	७	सातं	सात
३४	६-७	१२/६०	१३/५९
३४	८	षट् प्र०।	षट् प्र० मनुष्यायुश्च
३४	९-१०	१५, मनुष्यायुः, १५, नाम्नः २६	नाम्नः २७ १३।५९
३४	११	रोक्त	रोक्ताः
३४	१६	रहिता	रहिताः
३४	२०	वर्जिता	वर्जिताः
३५	६	यश	यशः
३६	१	संख्याः	संख्या
३७	१४	सप्ततिशत	सप्तत्यधिकशत
३७	१५	सप्तति	सप्तत्यधिक
३७	२७	एवं एते	एवमेते
३९	७	प्राप्तो	प्राप्तः
४३	५	द्विकं,	द्विकं
४४	१०	बन्धः	बन्धं
४६	१	बध	वंध
४६	२०	सम्भाव्य	संभाव्य
४८	२१	ज्ञेयाः	ज्ञेया
५०	८	व्य	क्तव्य
५०	२२	संस्थान	संस्थान
५२	२६	गन्तव्याः	गन्तव्या
५४	६	द्विकं,	द्विकम्,
५५	७	गन्तव्याः	गन्तव्या
५५	८-९	सम्यकत्व	सम्यक्त्व
५५	२४-२५	सम्यकत्व	सम्यक्त्व
५५	२६-२७	द्विकं,	द्विकम्,
५९	१४	तस्मिंन्	तस्मिन्
६१	१५	पर्यंत	पर्यन्त
६१	१८	यां ओघ	यामोघ
६३	८	प्रकृतीनां,	प्रकृतीनाम्,
६३	२३	मार्गणायां	मार्गणायाम्
६६	१९	द्विकं,	द्विकम्,
६७	२	वेदनीयं,	वेदनीयम्,
६७	५	वक्ष्यामः	वक्ष्यन्ते
६७	७	प्रकृतयः	प्रकृतयो
६७	९	मिथ्यात्वं,	मिथ्यात्वम्,

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
६७	१०	त्रिकं,	त्रिकम्,
६७	१३	रूपणाया	प्ररूपणाया
७०	३	पृथक्त्वं.	पृथक्त्वम्.
७०	६	पर्यंत	पर्यन्त
७०	६	कथितं,	कथितम्,
७१	१०	च्वादौ	पुरादौ
७२	६	सम्यक्त्व	सम्यक्त्वं
७२	१६	पुहुत्तं	पुहुत्तं
७४	५	न्तरं,	न्तरम्,
७४	२८-२६	पर्यंतं	पर्यन्तं
८८	१५	णायां,	णायाम्,
८६	१५	कथितं,	कथितम्,
८६	५	गत्यौघ	गत्योघ
६१	२०	द्विकं,	द्विकम्
६२	२	चतुष्कं,	चतुष्कम्,
६२	२	त्रिकं,	त्रिकम्
६२	४	तासां,	तासाम्,
६४	७	पृथक्त्व	पृथक्त्व
६४	२४	ति	त्ति
६४	२६	मिथ्यात्वं,	मिथ्यात्वम्,
६४	२७	चतुष्कं,	चतुष्कम्,
६६	१२	पर्यंत	पर्यन्त
१०३	१३	ज्येष्ठ	ज्येष्ठाऽ
१०३	२०	प्रकृतीनां	प्रकृतीनाम
१०४	१५-१६	ऽन्तर अन्त	अन्तरमन्त
१०६	१६	त्रिशत्	त्रिंशत्
११२	४	मागणा	मार्गणा
११२	२४	त्रिकानीति	त्रिकाणीति
११३	९	पनर्तद	पुनस्तद
११३	११	कोङ्क्षो	काङ्क्षो
११३	११	नूतन	नूतन-
११४	१६	पर्यंत	पर्यन्त
११७	२२	मितिचेद्दु	मिति चेद्दु
११८	१	स्वक्त	स्ववक्त
११८	२१	त्ति	ति
१२१	२६	वर्वी	पूर्वी

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१२१	२८	ज्येयेष्ठ-	ज्येष्ठ-
१२२	१३	२०३	२०४
१२२	२४	मितिचेद्दु	मिति चेद्दु
१२४	१३	अव्यक्त	अवक्त
१२५	२	लध्यन्तरं	लद्यन्तरं
१२५	७	शत् प्रकृती	शतप्रकृती
१२६	२	संयमे	असंयमे
१२८	२८	जीवाश्रित्य	जीवानाश्रित्य
१२९	४	२२५	२२६
१	९	इत आरभ्य गाथाङ्कसंख्याया एकैकेन वृद्धिर्वोद्धव्या, यथा २२५=२२६ २२६=२२७ इत्यादि।	
१२९	१०	विद्यन्त	विद्यन्ते
१३०	२१	वैक्रिया	वैक्रिय
१३१	८	रिशद्	रिंशद्
१३२	१९	णार्गासु	गणासु
१३२	२३	सोसपु	सेमासु
१३३	१८	मागणासु	मार्गणासु
१३७	१४	वन्धका	बन्धकाः
१३८	१०-११	सूक्तऽष्टनत्वा	सूक्ताऽष्टचत्वा
१४०	५	वोघे	वौघे
१४१	१२	पर्यंतानि	पर्यन्तानि
१४१	१५	श्री वन्ध	श्रीबन्ध
१४१	२२	'एवं' त्ति	'एवं' ति.
१४१	२४	दायिक	दयिक
१४२	१२	मिथ्यात्वं,	मिथ्यात्वम्,
१४२	१०	सवे	सर्व
१४३	१४	सर्व	सर्वे
१४३	२०	शपाः	शेषाः
१४४	१३	प्रकृ	प्रकृतयो
१४५	८	ऽष्टत्रिंशत्	ऽष्टात्रिंशत्
१४६	१२	लोमविना	'लोमरहिता;
१५२	४	वधीण	बंधीण
१५२	७	अथप ञ्चे	अथ पञ्चे
१५४	२४	मनुष्य	मनूष्य
१५५	३	द्वि प्र	द्विसप्र

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१५७	२२	मितिचेदु	मिति चेदु	१९४	२५	ययौघ	यौघ
१५७	२६	त्तर्षां	त्तेषां	१९५	१३	पृथक	पृथक्
१५८	५	ब्रन्धा	ब्रन्धा	२०३	१	वृद्ध्या	वृद्ध्यादि
१५९	२०-२१	तीनां अ	तीनाम	२०४	२१	वक्रिय	वैक्रिय
१६०	८	णोसि	णोर्सि	२०५	१७	स्वाभ्य	स्वाम्य
१६३	१	सयमोघे	संयमौघे	२०७	१३	केन्द्रिय-	केन्द्रियजाति-
१६३	२१	ऽङ्ख्येय	ऽसङ्ख्येय	२१०	१६	तर्ह	तदर्ह
१६५	२	विभङ्ग	विभङ्ग	२११	१९	जधन्य	जघन्य
१६७	१५	तिर्यग	तिर्यग	२१७	१९	ष्वस्थिता	ष्ववस्थिता
१६०	१६	बन्धकाअ	बन्धका अ	२१८	१९	मन्त	मनन्त
१७१	१	स्तथा	तथा	२१८	२६	हान्यत्र	हानी अत्र
१७१	२५	तद्व्य । याने	तद्व्याख्याने	२१८	२६	जायेत	जायेते
१७२	२१	हाने	हाने	२१९	२२	हान्यपि	हानी अपि
१७५	२	दा म्	द्वारम्	२२१	१	सत्पदं	सत्पदम्
१७५	२४	त्ति	त्ति	२२१	४	हान्यपि	हानी अपि
१७६	२५	नाममु	नामु	२२१	२	नामत	नामतः
१७६	२०-२१	प्रकृज्ज्येष्ठ	प्रकृतज्येष्ठ	२२८	७	चेता	चैता
१७७	१४	यो	यः	२२८	८	णाद्वयम्	णाद्वयम्
१७८	१	प्रकृतीनातमोघ	प्रकृतीनामोघत	२२८	२३	ति	त्ति
१८०	७	भवे	'भवे	२२९	२२	मुहुर्त्तान्तः	मुहूर्तान्तः
१८०	१८	बन्धः	बन्धं	२२९	२३	ऽक्षु	चक्षु
१८०	२१	पगति	पगर्ति	२३०	५	माग	भाग
१८१	४	कुर्वन	कुर्वन्	३३०	२८	भजनीय	भजनीये
१८१	८-९	कुर्वन	कुर्वन्	२३२	५	ति	त्ति
१८२	१३	रचयन	रचयन्	२३३	२८	मार्गणेति	मार्गणे इति
१८२	२४	मर्याप्त	पर्याप्त	२३३	२२	ति	त्ति
१८३	६	श्रियते	श्रीयते	२३३	२२	स्पशना	स्पर्शना
१८३	१७	संघत्ते	संघत्ते	२३५	१०	दर्शन	दर्शन
१८५	४	विशति	विंशति	२३५	२३	मित्यर्थः,	मित्यर्थः
१८५	२८	तुल्या,	तुल्या	२४०	१७	कथनीय	कथनीये
१८६	१४	विंशतीर्वं	विंशतिं ब	२४४	१३	पणिदि	पणिंदि
१८७	१६	घत्त	घत्त	२४६	१	ष्योघे	ष्योघे
१९०	२३	चेन्दिय	चेन्द्रिय	२४६	१२	धुवरल	धुवुरल
१९१	१४	नौ त्वि	नस्त्वि	२४८	२५	संख्ये	संख्येय
१९४	१७	प्रयोग्य	प्रायोग्य	२५१	५	बन्धका	बन्धकाः

उत्तरार्धस्य शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२५३	७	शेपाणां-	शेपाणाम्-
२५५	४	ज्ञातयण:	ज्ञातव्या.
२५६	१२	सखंस	संखंस
२५६	१४	वन्धका	वन्धकाः
२५७	२६	ऽसख्येय	ऽसंख्येय
२५८	१८	हानि तद्द	हानितद्द
२५८	२०	सख्येय	संख्येय
२५८	२८	नत्वोग	न त्वोग
२५९	११	विघ्ना:	विघ्ना:
२६२	२	मार्गणा	मार्गणा
२६२	२५	योग मा	योगमा
२६३	२०	शम क्षा	शमक्षा
२६४	१२	हानि तद्द	हानितद्द

